Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिशंकर परसाई

चुनी हुई रचनाएँ

सम्पादक
कमला प्रसाद • प्रकाश दुबे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
122609

परसाई एक खतरनाक लेखक हैं, खतरनाक इस अर्थ में कि उन्हें पढ़कर हम ठीक वैसे ही नहीं रह जाते जैसे उनको पढ़ने से पहले होते हैं। वे पिछले तीस वर्षों के हमारे राजनीतिक-सांस्कृतिक जीवन के यथार्थ के इतिहासकार हैं। स्वतंत्रता के बाद हमारे जीवनमूल्यों के विघटन का इतिहास जब भी लिखा जाएगा तो परसाई का साहित्य संदर्भ-सामग्री का काम करेगा। उन्होंने अपने लिए व्यंग्य की विधा चुनी, क्योंकि वे जानते हैं कि समसामयिक जीवन की व्याख्या, उसका विश्लेषण और उसकी भर्त्सना एवं विडंबना के लिए व्यंग्य से बड़ा कारगर हथियार और दूसरा नहीं हो सकता।

व्यंग्य की सबसे बड़ी विशेषता उसकी तात्कालिकता और संदर्भों से उसका लगाव है। जो आलोचक शाश्वत साहित्य की बात करते हैं उनकी दृष्टि में व्यंग्य पत्रकारिता के दर्जे की वस्तु मान लिया गया है। और उन्हें लगता है कि साहित्यकार व्यंग्य का उपयोग चटखारेबाज़ी के लिए भले ही कर ले, किसी गंभीर लक्ष्य के लिए उसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। ऐसे विचारकों ने साहित्य के लिए जो आदर्श स्वीकृत कर रखे हैं, व्यंग्य उनकी धज्जियाँ उड़ाता है। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं कि व्यंग्य लेखक ऐसे मर्यादावादियों की दृष्टि में हल्का लेखक, सड़कछाप लेखक या फनी लेखक होता है। व्यंग्य को साहित्य की 'शेड्यूल्ड-कास्ट' विधा मान लिया गया है, पर कबीर को भी इन मर्यादावादी विचारकों ने कवि मानने से परहेज़ करना चाहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
0 c9
166.2

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या............ आगत संख्या............ 122609

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित हैं। इस तिथि सहित ३०वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिशंकर परसाई : चुनी हुई रचनाएँ

(भाग-दो)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाणी प्रकाशन
नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

122609

हरिशंकर परसाई : चुनी हुई रचनाएँ

122609

(भाग-दो)

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

सम्पादक

कमला प्रसाद

प्रकाश दुबे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण : 2000
© सम्पादकगण
मूल्य : 500.00

शब्द-संयोजक
विनायक कम्प्यूटर्स, शाहदरा, दिल्ली-110032

नागरी प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
में मुद्रित

HARISHANKAR PARSAI :
CHUNI HUI RACHNAYAN (Part-2)
Edited by Kamla Prasad, Prakash Dube

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुक्रम

ईश्वर की सरकार 9
नूरजहाँ! यादें 11
लोकतंत्र की नौटंकी 14
बाजारभाव पति का 17
राजनीतिक कुत्ते 19
सबको सन्मति दे भगवान 21
ईसा और गांधी 24
कहाँ है भारत-भाग्यविधाता? 26
विधायकों की महँगी गरीबी 29
दस्यु सुंदरी और कोयला सुंदरी 31
क्रांति और भ्रांति 34
भूत के पाँव पीछे 37
कवीर और श्रोता 40
सूर और तुलसी का नए सिरे से अध्ययन 44
साहित्य में ईमानदारी 46
ऋतुराज आया है! 49
माँ और भाई 52
पुलिस जनता की सहायक है 54
नाममात्र का समाजवाद 55
गुड़िया सम्मेलन 57
समाजवादी ढाँचे में साहित्य 58
उपवास से वर्षा 60
साधुओं के लिए काम! 62
कांग्रेसी मिनिस्टर और कम्युनिस्ट कुआँ! 63
बच्चों पर अलाउंस! 64
बम-विस्फोट बंद 65
हारा कांग्रेसी कहाँ जाय? 66
शर्मनाक 67
देशवासियों के नाम संदेश 68
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे 70
प्रेम पुजारी : अगर मैं फिल्म बनाता 75
फिल्मी रोमांच 77
मुक्तिबोध : एक संस्मरण 81
जीते हुए उम्मीदवार के नाम 88
एक दीक्षांत भाषण 91
लेखक : संरक्षण, समर्थन और असहमति 94
कवीर समारोह क्यों नहीं 98
तीसरी आजादी का जाँच कमीशन-1 103
तीसरी आजादी का जाँच कमीशन-2 106
तीसरी आजादी का जाँच कमीशन-3 110
आत्मकथ्य 114
नया खून--पुराना खून 119
सांस्कृतिक हुल्लड़ 121
पुलिस-शताब्दी समारोह 123
गणेशजी और गधाजी 125
बकरी पौधा चर गई 127
एक अच्छी घोषणा 129
'सरकार चिंतित है 131
बाएँ क्यों चलें? 133
किस्सा मुहकमा तालीमात 134

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलिहारी गुरु आपकी 136
रेलवे में सुधार 138
फिल्म डिवीजन के अंग्रेज 140
भूख मारने की जड़ी 141
मिलावट का हक 143
भूलें, शताब्दी-समारोह की 144
आखिर एकता क्यों हो? 146
कमेटियों पर कयामत 147
सदाचार और जुआ 149
मंत्रियों का फोटो-खर्च 151
अकाली-निरंकारी सत्संग 152
अब और लोकतंत्र नहीं 154
कैसे बुरे दिन आ गए 155
महात्मा गांधी भी निपट गए 157
भाजपा भ्रष्टाचार का विरोध कैसे करेगी? 159
तूफान के बाद 160
यशोदा मैया का माखन 162
दूसरी आजादी का अंत 163
बँधुआ मुख्यमंत्री 165
अपनी कब्र खोदने का अधिकार 166
किस विधि नारि रचेऊ जग माहीं 168
बदलाहट कहाँ है? 170
नैतिक लोगों के इस्तीफे 171
आरोप ही आरोप 173
असुरक्षा की राजनीति 175
टिकिट की खिड़की बंद 176
महात्मा गांधी के खून का 178
दो के बाद कभी-कभी 180
सिद्धान्तों का छुरा 181
मंडन करें—खंडन नहीं 182
नेहरू का फोटो और नीतियाँ 184
वसंत की शीतलहर 186
संसद में चुंबन-विवाद 187
जात-बदल शादी 189
भारतीय राजनीति का बुलडोजर 190
महान दर्शन भजनलालवाद 192
अभी दिल्ली दूर है 194
हरिजनों का ब्राह्मण भोजन 196
निगम भंग की मिठाई 198
तीन बूढ़े और आठ जवान 200
वैष्णवजन और चौधरी की पीर 201
नारी का राजनैतिक शिकार 203
बड़ी सुंदरियों की दुख-कथा 205
मेघ भटक गए 206
खटिया खड़ी हो गई 208
किसका जनतंत्र हारा 210
ताला, चूड़ियाँ और सिंदूर 211
इस नेहरू का क्या करें? 212
कविता, विज्ञान और धार्मिक मूढ़ता 214
जॉर्ज का जेरुसलम 216
स्वस्थ विपक्ष की बीमारी 218
क्या संतों का दिमाग खराब होता है? 220
तेरा-मेरा मनुआ बंदे कैसे एक होय रे! 222
अभिनंदन की उपहास कथा 224
कबीर का स्मारक बनेगा 226
काम नहीं करना ही देशभक्ति है 228
वैज्ञानिक इतिहास का डर 230
शब्द पीछा कर रहे हैं 232
विदेशियों का आकर्षण 234
भूत-पिशाच का हनुमान चालीसा 235
इंगलैंड की रानी के चर्चे 237
संन्यासी की वापसी 238
'पति-मंच' भी बन गया 240
तेरी जुल्फों के पेचो-ख़म नहीं हैं! 241

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षक सम्मान से इनकार करें 243
राखीबंध राजनीति 245
लोकनायकजी, दिल्ली मत जाना 248
जनरल जिया-उल-हक के नाम 250
एक डॉक्टरेट की कथा 252
प्रधानमंत्री के नाम 254
उस्ताद के चेले 255
एक पिद्दी का शोरबा 257
महामिलन की कथा 259
दलितों के मसीहा 261
दोनों में कौन भारत है 263
यह 'अवकाशवाणी' है 264
कैम्प फ्रॉड में एक भेंट 266
आदम का नया घोषणापत्र 268
देवरसजी से संवाद 272
मार्गरेट थैचर को बधाई 272
शोध-संस्थान में शोध 273
राजनीति के रंगा-बिल्ला 275
देशहित जिज्ञासा 277
वादे पूरे करो--मत करो 278
जनता अल्पसंख्यक सम्मेलन 279
चिली के तानाशाह पिनोशे से भेंट 281
इंदिरा गाँधी से भेंट 284
जयप्रकाश नारायण से भेंट 289
राष्ट्रपति निक्सन से भेंट 295
जनाब भुट्टो से भेंट 301
विनोबा भावे से भेंट 305
राजनारायण सिंह से भेंट 310
डाक्टरों से भेंट 315
सरकार और साहित्यकार 320
'क्वाँरा' की दुर्गति 322
रेडियो की बात 323
हिंदी-विरोधी शक्तियाँ 324
आलोचना की आवश्यकता 326
पीढ़ियों का संघर्ष 328
ढलवाँ साहित्य 330
हिंदी कवि-सम्मेलन 332
साहित्य और राज्य-संरक्षण 334
सरकारी पुरस्कार 338
दुराग्रह 339
बेपढ़ी समीक्षा 341
साहित्यकार का साहस 342
नर-नारी पात्र 344
नामदेव ढसाल की कविता और अश्लीलता का प्रश्न 346
कैफियत 349
कहत कबीर 354
व्यंग्य क्यों? कैसे? किसलिए? 356
यह कैसा वसंत आया! 359
पर, राजा भूखा था 361
समाज के गुरु का यह उपहास! 362
हमारे समाज में वर-विक्रय 363
वैश्य-ब्राह्मण वार्ता 367
जनता की कष्ट-कथाएँ 372
भाषण का शौक 373
कल्लू के जन्म का मरसिया 374
पूँजीवादी अमेरिका की नैतिक पूँजी का दिवाला 378
साहित्य के अमृत-घट में राजनीति का घासलेट! 380
बुखार आ गया 382
स्वागत की विडंबना 384
कुल्हाड़ी के बेंट 385
गप्पियों का देश 386
मुक्तिबोध 387
स्वागत भाषण 391
सांप्रदायिकता : प्रकृति, कारण और निदान 394

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानरंजन द्वारा लंबी बातचीत	401	हिंदी और हिंदिंगलिश	462
श्यामसुंदर मिश्र से चर्चा	409	हास्य और व्यंग्य	467
किस भारत भाग्य विधाता को पुकारें	420	हुसेन के नंगे पाँव और भारतीयता	472
जरूरत है सामाजिक आंदोलनों की	424	दहेज और विवाह-पूर्व आत्महत्या	476
दलित-कल्याण के कई ठेकेदार	428	हम इक उम्र से वाकिफ़ हैं	479
ओ. हेनरी	432	परिवार	483
भारत मानव महासागर तीरे	436	क्या कहूँ आज जो	488
अंधविश्वास से वैज्ञानिक दृष्टि	439	गाँधी जी रसोईघर में	494
धर्म और विज्ञान	443	अध्यापकों का संगठन	499
धर्म और सामाजिक परिवर्तन	446	तब जबलपुर के कुछ व्यक्तित्व	505
पाकिस्तान में इकबाल की फजीहत	451	कुछ लेखकों से रिश्ते	514
		मुक्तिबोध का साथ और 'वसुधा'	522
चेखव की संवेदना	455	'संतन कहा सीकरी सों काम!'	529
ब्राह्मण से शूद्र तक	458	साधु संगत में	535

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर की सरकार

प्रधानमंत्री और विदेशमंत्री कहते हैं कि दुनिया में भारत की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ी है।

किसने एकाएक भारत की प्रतिष्ठा बढ़ा दी? क्या भारतीय जनता ने बढ़ाई है? मैं एक भारतीय जन की हैसियत से कह सकता हूँ कि हमने पिछले दिनों ऐसा कोई कर्म नहीं किया जिससे भारत की प्रतिष्ठा बढ़े। 'आई प्लीड नॉट गिल्टी।' हमारा कोई कसूर नहीं। हमारे बावजूद भारत की प्रतिष्ठा बढ़ गई हो तो हमारी जिम्मेदारी नहीं। हम रात को सोए हैं और कोई खिड़की से घर में सोना डाल जाए, तो सवेरे धनवान हो जाना हमारी जिम्मेदारी नहीं है।

हम तो पहले जैसे ही हैं। वही कर रहे हैं। भूखे मरते हैं और चुप रहते हैं। महँगाई बरदाश्त करते हैं, बेखटके बच्चे पैदा करते हैं, घटिया फिल्में देखते हैं, कच्ची दारू उतारते हैं और पीकर मरते हैं। हरिजनों को जिंदा जलाते हैं, कृष्णार्पण करके घूस लेते हैं, सस्पेंड होने पर ग्रह शांति करवाते हैं।

हमने कुछ ऐसा नया नहीं किया, जिससे भारत की प्रतिष्ठा बढ़े। हमने सिर्फ इतना किया कि नकारात्मक वोट देकर जनता सरकार को बन जाने दिया। यह भी हमने इसलिए किया कि इंदिरा सरकार ने हमारे बच्चा पैदा करने के गृह-उद्योग पर रोक लगा दी थी।

नहीं, हमने भारत की प्रतिष्ठा नहीं बढ़ाई। भारत की प्रतिष्ठा बढ़ी है, तो हमारी सरकार ने बढ़ाई है।

इस सरकार ने एक बार फिर विश्व को सिद्ध करके बता दिया है कि ईश्वर है। अगर ईश्वर न होता तो यह सरकार चल नहीं सकती थी। जहाँ पार्टी और सरकार में सब एक-दूसरे की टाँग पीछे से पकड़े हैं, फिर भी गोल-गोल चल रहे हैं, यह किसकी लीला है? क्या मनुष्य के वश की यह बात है? नहीं, यह सर्वशक्तिमान ईश्वर की लीला है। सरकार ने ईश्वर में विश्वास जगाकर भारत की प्रतिष्ठा बढ़ाई है। आखिर सिद्ध हुआ कि भारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व का गुरु है। बिन पग चलै सुने बिन काना—यह सिद्ध कर दिया।

भारत की प्रतिष्ठा कई तरह से बढ़ाई गई है। दुनिया में कोई सरकार ऐसी न हुई है, न होगी, जो लगातार जमानत पर रहे और रोज जिसकी पेशी होती हो। हमारी सरकार को यह गौरव प्राप्त है। यह ऐसी सरकार है जिसका गृहमंत्री, प्रधानमंत्री के बेटे और अपने साथी मंत्रियों पर भ्रष्टाचार के आरोप लगाकर, और सबको बेईमान कहकर अलग हो गया है और फिर उन्हीं बेईमानों में लौट आने को लपलपा रहा है। देश पर वह सरकार राज कर रही है जिसे उसी के गृहमंत्री ने भ्रष्टाचारी कह दिया है।

यह ब्रजलाल वर्मा कहते तो न मानते। क्योंकि उन्हें अभी टेलीफोन और टेलीग्राम का फर्क नहीं मालूम। आरिफ बेग कहते तो भी कोई बात नहीं थी, क्योंकि वे तो सभामंच पर अपने संघी मास्टरों को खुश करने के लिए 'भारत माता! मेरी भारत माता!' कहकर रोने लगते हैं। भ्रष्टाचार के आरोप भूतपूर्व लौहपुरुष चरणसिंह ने लगाए हैं। और वही फिर मंत्रिमंडल में जाने के लिए रो रहे हैं। चरणसिंह ने उस शोहदे की तरह काम किया है जो मुहल्ले की किसी स्त्री को चिट्ठी लिखता है और लोगों से कह भी देता है कि वह औरत बदचलन है। उसके पास लोगों के प्रेमपत्र आते हैं। फिर उस औरत से कहता है—तू बदनाम तो हो ही गई है, अब मेरे पास ही आ जा।

इस सरकार को अपनी बदनामी के लिए विरोध पक्ष की जरूरत ही नहीं है। यह अपनी बदनामी खुद कर लेती है। यह विरोध पक्ष की मोहताज नहीं है। आत्मनिर्भर है। इससे भी भारत की प्रतिष्ठा बढ़ी है।

भारत की प्रतिष्ठा बढ़ाई है प्रधानमंत्री ने जो अपनी सरकार की नीतियों का कम और स्वमूत्रपान का अधिक प्रचार करते हैं। प्रधानमंत्री ने दुनिया के सबसे बड़े सरकस को चलाकर भी बता दिया है। उनकी सरकार और पार्टी सरकस है, जिसमें गेंडा, बारहसिंघा, सियार, जंगली भैंसा वगैरह हैं। मोरारजी को दुनिया के सबसे बड़े सरकस का मैनेजर होने का गौरव प्राप्त है।

भारत की प्रतिष्ठा इसलिए भी बढ़ी है कि पुलिस लाठीचार्ज अब नहीं के बराबर है। इससे दुनिया के लोग समझते हैं कि पुलिस बहुत दयालु हो गई है। पर हमारी पुलिस अब सीधे गोली चलाती है, लाठीचार्ज के झंझट में नहीं पड़ती। गोली बनाने के कारखाने जनता के पैसे से चलते हैं। उनमें बना माल जनता के काम आना चाहिए।

इस सरकार ने नारी को अभूतपूर्व सम्मान दिया है। इंदिरा गांधी नाम की नारी के डर से पूरी सरकार काँपती रहती है। इतना सम्मान दुनिया में किसी नारी को नहीं दिया। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।' इस सरकार ने यह भी बता दिया है कि सरकार नीतियों से नहीं, डर से चलती है। अगर इंदिरा गांधी का डर नहीं होता तो यह सरकार कभी की टूट जाती।

भारत की प्रतिष्ठा हमारे विदेशमंत्री ने भी बढ़ाई है, जिन्होंने झूठ बोलने का दुनिया में रिकॉर्ड कायम किया है। यह विदेशमंत्री मास्को में ऐसा बोलता है जैसे भारत लौटकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फौरन साम्यवादी क्रांति में लग जाएगा। उधर साइरस वांस से ऐसी बातें करता है जैसे भारत 'सेंटो' में शामिल हो ही रहा है। और अगर अखबारों में छपनेवाली खबरें सही हैं, तो भारत को क्रिस्टीन कीलर ख्याति का प्रोफ्यूमो मिलनेवाला है।

मैं भूल रहा हूँ। बहुत प्रतिष्ठा बढ़ाई हमारे राजनारायण ने। उन्होंने दुनिया के सामने यह सिद्ध कर दिया है कि भारत इतना प्रौढ़ लोकतंत्र है कि यहाँ सरकार पागलखाने को सौंप दी जाए, तो भी देश चलता रहेगा। प्रतापी राजनारायण ने विन्ध्यवासिनी देवी के सामने मुंडन कराया था। इसका शुभ परिणाम यह हुआ कि कुछ दिनों बाद देवी के वस्त्र और आभूषण चोरी चले गए। जिसका ऐसा चमत्कार है, वह अगर सरकार में रहे तो कोई भी देश हम पर हमला नहीं कर सकता। राजनारायण उसके सिपाहियों की वर्दी और बंदूक की चोरी करवा देंगे।

दुनिया के एकमात्र स्वास्थ्य मंत्री रहे राजनारायण, जिन्होंने ऑपरेशन का एक नया तरीका बताकर सर्जनों को चकरा दिया—यह कि 'हनुमान चालीसा' का पाठ करके ऑपरेशन करना चाहिए। हनुमानभक्त राजनारायण ने हनुमान चालीसा ठीक पढ़ा है। उसमें लिखा है—

महावीर विक्रम बजरंगी,
कुमति निवार सुमति के संगी।

विक्रम बजरंगी तो ठीक है, पर उसके आगे है—सुमति निवार कुमति के संगी। सही पाठ यही है। 'सुमति' का निवारण करके 'कुमति' के संगी हो जाओ। राजनारायण ने यही सीखा है।

तो भारत की प्रतिष्ठा अगर बढ़ी है तो इसकी तोहमत जनता के सिर पर नहीं मढ़ी जाए। इसकी जिम्मेदारी हमारी इस सरकार की है।

नूरजहाँ ! यादें !*

ग़ज़ल उसने छेड़ी मुझे साज देना,
ज़रा उम्रे-रफ़्ता को आवाज़ देना।

आहें न भरीं शिकवे न किए
कुछ भी न जुबाँ से काम लिया
तिस पर भी मुहब्बत छिप न सकी
जब तेरा किसी ने नाम लिया
हम दिल को पकड़कर बैठ गए।

---
*करंट, 27 फरवरी, 1982

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथों से कलेजा थाम लिया

नूरजहाँ ने फिल्म में यह कव्वाली गाई थी, तब वह भी जवान थी और हम भी जवान थे। फिर नौका-विहार करते हुए नूरजहाँ ने गाया था—'हवा में उड़ता जाए, मेरा लाल दुपट्टा मलमल का।' तब वह भी जवान थी और हम भी जवान थे।

35 साल बाद नूरजहाँ भारत आई। पाकिस्तान की सनकी तानाशाही ने नूरजहाँ के भारत में गाने पर रोक लगा दी। मेंहदी हसन ने गाया, मगर नूरजहाँ को पाकिस्तान सरकार ने क्यों नहीं गाने दिया?

एक तरह से अच्छा ही हुआ। हमारी पीढ़ी के जिन लोगों ने नूरजहाँ को जवानी में गाते देखा-सुना था, उन्हें बड़ा सदमा लगता, लगभग बुढ़ा गई नूरजहाँ को देखकर। अभी हमने काननबाला का चित्र देखा—चश्मा लगाए, श्वेतकेशी बुढ़िया नाती-पोतों को खिला रही है। बड़ा बुरा लगा। प्रथमेश बरुआ के साथ अभिनय करती कानन को हमने देखा-सुना था—'दूर देश का रहनेवाला आया देश पराए।' और याद आया, कानन ने सहगल के साथ कलेजा उलीच दिया था।

नूरजहाँ 35 साल बाद आई तो पुरानी किशोरावस्था और जवानी की यादें ताजा हो गईं। पहली अवाक् (साइलेंट) फिल्म हमने देखी थी—भक्त बोधन। प्रवासी सिनेमा भी होते थे। टिकट के पीछे लिखा रहता था—'यह टिकिट सिर्फ एक आदमी के लिए है। नशा करके ऊधम करनेवाले को बाहर निकाल दिया जाएगा। मशीन फेल होने पर पैसा वापस नहीं किया जाएगा।' एक आदमी पर्दे के सामने कोने में एक छड़ी लिये खड़ा रहता था। वह छड़ी से पात्र बताकर—यह बतलाता था कि वह पात्र क्या बोल रहा है। वह डॉयलॉग बोलता था। अगर उसे देर हो जाती या वह भूल जाता तो दर्शक चिल्लाते थे—अबे, बता न, तेरा बाप क्या बोल रहा है। स्वर को बाँधना तब विज्ञान को आ चुका था। तवे का बाजा—ग्रामोफोन चल चुका था और पहला गाना जो हमने सुना था वह था—'छोटी-बड़ी सुइयाँ री, जाली का मेरा काढ़ना।'

फिर देखा पहला सवाक चित्र—अछूत कन्या। अशोककुमार देविकारानी। हमारे कस्बे से तीसरा स्टेशन था—हरदा। यहाँ टाकीज था। 'अछूत कन्या' चल रहा था। जो देख आते वे चर्चा करते और हमारा जी ललचाता। हम अब मैट्रिक में पढ़ते थे। हम तीन दोस्त रोज शाम को स्टेशन घूमने जाया करते थे। एक शाम हरदा जानेवाली रेलगाड़ी खड़ी थी। हम तीनों उसमें बिना टिकिट बैठ गए। अपने घर में हमने नहीं बतलाया था। हरदा पहुँचे। चटाई का टिकिट लेकर 'अछूत कन्या' देखा।

'मैं वन का पंछी बनके वन-वन डोलूँ रे
मैं वन की चिड़िया बनके वन-बन डोलूँ रे।
तू डाल-डाल मैं पात-पात बिन पकड़े
कभी न छोड़ूँ रे।'

हमारे मन में अशोककुमार और देविकारानी बस गए। शादी करेंगे तो किसी अछूत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की लड़की से, अगर वह देविकारानी जैसी हुई। सुबह की गाड़ी से जब बिना टिकिट घर लौटे तो तीनों की खूब पिटाई हुई। बहुत तकलीफ सही है हमने अशोककुमार और देविकारानी के लिए। अभी हमने देविकारानी का चित्र उनके पति चित्रकार निकोलस रोरिक के साथ देखा। बूढ़ी हो गई है और मोटी हो गई है। आदमी चाहे बूढ़ा हो जाए, पर जिस स्त्री को उसने जवानी में पसंद किया है, उसे बूढ़ी देखकर उसे दुःख होता है।

अशोककुमार की दूसरी फिल्म 'बंधन' तब देखी, जब मैं खंडवा में नया-नया अध्यापक हुआ था। 20-21 साल की उम्र होगी। अशोककुमार खंडवा के रहनेवाले हैं। उनके पिता वहाँ वकील थे। किशोरकुमार मेरा छात्र था। जब 'बंधन' फिल्म लगी, तो खंडवा में हल्ला—अपना अशोककुमार हीरो। हमने फिल्म देखी। अशोककुमार युवा अध्यापक हैं। हम भी युवा अध्यापक थे। लीला चिटनीस कस्बे के प्रतिष्ठित परिवार की लड़की है। अशोककुमार लड़कों से गाना गवाते हैं—

चल चल रे नौजवान
कहना मेरा मान मान—
चल रे नौजवान!

हमारे अध्यापक मन को, यह अध्यापक के प्रेम की फिल्म बहुत भा गई थी। रूमानी हीरो में मुझे अशोककुमार सबसे पसंद है। सुंदर, सौम्य, शरीफ, कोमल। 'हीमेन' की परंपरा फिल्मों में बाद में आई। लात, घूँसे, तेरी ऐसी-तैसीवाला हीरो बाद में आया। सुंदरी उचक्के पर मोहित होने लगी। अशोककुमार के जमाने की बात दूसरी थी। तब देवदास होता था, जो एक आत्मघाती मोह का शिकार हो जाता था। जो किशोर दिलीपकुमार और सहगल को देवदास के रूप में देखते थे, वे मन में यह रूमान पालते थे कि किसी दिन वे क्षय रोग की आखिरी स्टेज में पारो के घर के सामने पहुँचेंगे और मर जाएँगे।

धंधे की मजूबरी में अशोककुमार को एक फिल्म में हमने हाथ में तलवार लिये लड़ते देखा। बहुत भद्दा लगता था। दिलीपकुमार तभी से पसंद है—दूसरे के लिए हर बार बलिदान करनेवाला। अच्छा भाई, तुझे यह पसंद है, तो तू ही इससे शादी कर ले। हम कहीं जाकर रोएँगे और हमेशा तुम दोनों का भला करते रहेंगे। तभी सोहराब मोदी के पारसी थियेटर के डॉयलॉग भी फिल्म में सुने थे—सुन लो और आँख खोलकर देख लो। मोतीलाल को तभी देखा था और अपना ये सबसे अच्छा अभिनेता था। अद्‌भुत था।

उन दिनों फिल्मों में समाज-सुधार की हल्की-सी कोशिश होती थी। इसके बाद के युग में 'इंटरटेनमेंट' और ग्लेमर प्रमुख हो गए। दस गाने, चार नाच, यह चटक, वह मटक, जमीन-आसमान के कुलाबे एक किए, रंगीन और खूबसूरत बेवकूफियों को जोड़ा और बॉक्स ऑफिस कर दिया। पिछले दशक से सामाजिक समस्याएँ फिल्मों में आने लगी हैं, जबसे शिक्षित, चेतन और वामपंथी विचारधारा के डायरेक्टर होने लगे हैं। मगर 'आवारा' से मशहूर हुए राजकपूर अभी भी निरर्थक 'सत्यं शिवं सुंदरं' बना लेते हैं। रहते किस दुनिया में हैं और फिल्म किस दुनिया की बनाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाँ, याद आया, अपने भी एक चार्ली थे—चार्ली चैपलिन की तरह मूँछें रखते थे। बाद में चार्ली चैपलिन की तरह मूँछें राजकपूर ने भी रखीं। अपने चार्ली में मूँछों के सिवा चार्ली चैपलिन का कुछ नहीं था। यों देवानंद ग्रेगरी पेक बन रहे थे और एक रिचर्ड बर्टन भी थे। सुरैया ग्रेटा गार्बो होते-होते बच गई। अपने चार्ली हँसी पैदा करने की कोशिश करते थे। कैसी हँसी रात को सो रहे हैं। खटमल काटते हैं, तो 'ओ मेरी माँ' चिल्लाते हैं।

जिन दिनों नूरजहाँ गाती थी, तब सब अपना-अपना गाते थे, खुर्शीद कानन, अशोककुमार और दिलीपकुमार भी। तब 'बैक ग्राउंड म्यूजिक' नहीं था। बाद में तो सबके कंठ से लता मंगेशकर और मोहम्मद रफी गाने लगे।

पहले की यह खबर गलत थी कि नूरजहाँ के भारत में गाने पर रोक लगी है। नूरजहाँ ने समारोह में गाया 'अनमोल घड़ी' का गाना 'आवाज दे कहाँ है' बहुत पसंद किया गया। 60 साल की उम्र में जवानी का स्वर था—

ग़ज़ल उसने छेड़ी मुझे साज़ देना
ज़रा उम्रे रफ़्ता को आवाज़ देना।

लोकतंत्र की नौटंकी*

कुछ लोग कहते हैं—चेन्ना रेड्डी क्या बुरे थे! दूसरे कहते हैं—अंजैया भी क्या बुरे थे ! वैसे तो बहुत पहले संजीव रेड्डी भी बुरे नहीं थे और ब्रह्मानंद रेड्डी भी बुरे नहीं थे। ये सब अच्छे हैं। अच्छे-ही-अच्छे आंध्र के मुख्यमंत्री हुए हैं। वेंकटराम रेड्डी जो अभी मुख्यमंत्री हुए हैं, वे भी अच्छे हैं। सभी अच्छे हैं—सो 'आर दे ऑल, आर ऑनरेबल मैन!' मगर हैदराबाद में एक हफ्ता जो नाटक हुआ वह जरूरी था। लोकतांत्रिक प्रक्रिया का एक चक्र पूरा हो गया। अब मैं भारत में लोकतंत्र के भविष्य के बारे में पूर्ण आश्वस्त हूँ। लोकतंत्र का पाँव अंगद के पाँव की तरह जम गया है। अब लोकतंत्र विरोधी 100 रावण भी इस पैर को उखाड़ नहीं सकते।

दिलचस्प और अर्थवान नाटक रहा यह हैदराबाद में, लोकतंत्र की नौटंकी थी। 'सरूप' थे। नगाड़े थे। डॉयलॉग थे। रहस्य था। तिलिस्म था। चमत्कार था। बर्नार्ड शॉ ने हैदराबाद और दिल्ली में होनेवाली नौटंकी देखी होती तो दूसरा 'एपिल कार्ट' लिखता।

नगाड़े की चोट पर उद्घोषक ऐलान कर रहा था—अंजैया जा रहे हैं। अंजैया इस्तीफा दे रहे हैं। लो, अंजैया ने इस्तीफा दे दिया। अब विधान सभा पार्टी का दूसरा नेता चुना जाएगा। दूसरा नेता। दूसरा मुख्यमंत्री!!

कांग्रेस का हाईकमान है। एक केंद्रीय पार्लियामेंटरी बोर्ड है। लेकिन इन दोनों के

*करंट, 13 मार्च, 1982

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर भी एक आलाकमान है, इंदिरा गांधी। दिल्ली में केंद्रीय पार्लियामेंटरी बोर्ड ऐलान करता है आंध्र के नए नेता का चुनाव होगा। आखिर यह लोकतंत्र है, मजाक नहीं।

नारायणदत्त तिवारी और मूपनार पर्यवेक्षक नियुक्त किए गए। ये दोनों अपने सामने आंध्र विधायक-दल के नेता का चुनाव कराएँगे। नारायणदत्त और मूपनार ने सूटकेस में मतपेटी और मतपत्र रखे और उड़ गए हैदराबाद। घर्र-घर्र—घर्र!

विधायक-दल बैठा है। नारायणदत्त तिवारी और मूपनार बैठे हैं। दोनों पर्यवेक्षक हैं। पर्यवेक्षक कहते हैं—हमें केंद्रीय पार्लियामेंटरी बोर्ड ने भेजा है।

विधायक कहते हैं—यह क्या होता है? क्यों भेजा है?

नारायणदत्त कहते हैं—आप लोग अंजैया की जगह नया नेता चुन लो।

विधायक पूछते हैं—नेता साथ में लेकर आए हो?

मूपनार कहते हैं—हम नेता क्यों लाएँगे। नेता तो तुम्हें चुनना है।

विधायक पूछते हैं—किसे नेता चुनना है? कुछ खबर लेकर आए हो? नाम लाए हो?

नारायणदत्त ने कहा—हम कोई नाम नहीं लाए। आप लोग चुनने को स्वतंत्र हैं।

विधायक बोले—हमें स्वतंत्र नहीं होना।

मूपनार ने कहा—ये मतपेटी और मतपत्र हैं। मतपत्र पर नेता का नाम लिखकर मतपेटी में डालो।

विधायक बोले—दूसरी पेटी खोलो। उसमें से नेता निकालो।

नारायणदत्त ने कहा—हम दिल्ली से कोई नेता नहीं लाए।

विधायक बोले—नहीं लाए तो आता होगा। बताओ कौन आ रहा है?

नारायणदत्त ने कहा—दिल्ली से नेता नहीं भेजा जाएगा। तुम्हें ही चुनना है।

विधायकों ने कहा—ऐसा नहीं होता। नेता भेजा जाता है।

मूपनार ने कहा—नहीं, ऐसा नहीं होगा। नेता चुनने का तुम्हें लोकतांत्रिक अधिकार है।

विधायकों ने कहा—हमें नेता नहीं चुनने का भी लोकतांत्रिक अधिकार है।

नारायणदत्त ने कहा—तुम में से हरेक को मत देने का अधिकार है।

विधायकों ने कहा—हममें से हर एक को मत नहीं देने का भी अधिकार है। छुपाओ मत। हमें बताओ, इदिराजी ने किसे नामजद किया है।

तभी खबर फैली कि दिल्ली से गृहराज्य मंत्री वेंकट सुबैया आ रहे हैं। शोर हुआ—आ गए! दिल्ली से भेजे हुए आ गए! इंदिराजी ने वेंकट सुबैया को नेता बनाकर भेज दिया। दिल्ली का विमान रुका। वेंकट सुबैया उतरे। कई कांग्रेसी नेता मालाएँ लेकर बढ़े—बधाई है। आंध्र के नेता मुख्यमंत्री का स्वागत है। वेंकट सुबैया घबराए। बोले—ऐसी जल्दबाजी मत करो। मुझे नारायणदत्त तिवारी और मूपनार से तो मिलने दो।

विधायकों ने कहा—उनसे क्या पूछना है?

वेंकट सुबैया ने कहा—उनसे पूछना है कि आप लोगों ने नया नेता किसे चुना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधायकों ने कहा—उनसे क्या पूछना है; हमने चुना ही नहीं। आपको इंदिराजी ने भेजा है तो हमने आपको ही चुना।

वेंकट सुबैया ने कहा—नहीं, नहीं, मैं तो पहले से तय दूसरे कार्यक्रम के लिए आया हूँ।...और किसी तरह से बचकर राज्य अतिथिगृह पहुँचे।

वहाँ भी मालावालों ने उन्हें घेरा। आ गए! दिल्ली से भेजे हुए आ गए! आंध्र के नए मुख्यमंत्री का स्वागत है। बेचारे वेंकट सुबैया बड़े परेशान! क्या सचमुच इंदिराजी ने पर्यवेक्षकों को यह आदेश देकर भेजा है कि मुझे चुनवा दें? क्या इन लोगों ने मुझे बाकायदा चुन लिया है? मामला क्या है?

उधर नारे लग रहे हैं—वेंकट सुबैया जिंदाबाद! आंध्र के नए मुख्यमंत्री वेंकट सुबैया! वेंकट सुबैया ने घबराकर कहा—मैं तो मंदिर जा रहा हूँ। और अतिथिगृह से भाग गए।

पर्यवेक्षकों ने दिल्ली बात की—ये विधायक नेता नहीं चुनना चाहते।

हाईकमान ने कहा—उनसे नेता चुनवाओ। एक लोकतांत्रिक प्रक्रिया पूरी होनी चाहिए।

पर्यवेक्षकों ने कहा—पर वे चुनने को तैयार नहीं हैं। हम क्या जबरदस्ती उनके हाथ पकड़कर उनसे मतपत्र भरवाएँ? वे कहते हैं कि दिल्ली का फरमान बताओ। इंदिराजी ने किसे नामजद किया है?

हाईकमान ने कहा—इंदिराजी कहती हैं कि मुझे वैसे ही बदनाम किया जाता है कि मैं अधिनायकवादी हूँ। मैं किसी को नामजद नहीं करूँगी। विधायक स्वतंत्र मत से नेता चुन लें।

पर्यवेक्षकों ने यह बात विधायकों से कही। विधायकों ने कहा—हमारा स्वतंत्र मत यह है कि इंदिराजी जिसे कहें उसे हम अपना नेता मान लेंगे। हम मतपत्र पर इसके सिवा कुछ और लिखने को तैयार नहीं हैं। पर्यवेक्षकों ने दिल्ली यह खबर कर दी।

लोकतांत्रिक प्रक्रिया के नाटक में घोर सस्पेंस का क्षण है यह! अब क्या होता है ? क्या वेंकट सुबैया नए नेता बनाए जाते हैं? क्या दिल्ली से उन्हीं का नाम आता है ?

उधर दिल्ली में पर्दे के पीछे कुछ होता है। केंद्रीय पार्लियामेंटरी बोर्ड बैठता है और तय करता है कि वेंकटरामा रेड्डी नए नेता होंगे।

लोकतांत्रिक प्रक्रिया का नाटक समाप्त होता है। वेंकट सुबैया स्टेज से गायब हैं। वेंकटरामा स्टेज पर हैं। कहते हैं—मैं अपने साथी विधायकों से सलाह करके मंत्रिमंडल के नाम तय करूँगा और दिल्ली में नेताओं से मशविरा करके मंत्रिमंडल बनाऊँगा।

* करंट, 27 मार्च, 1982

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाजारभाव पति का*

जब दो प्राचीन महान् सभ्यताओं का मिलन होता है, तब वे उज्ज्वल तत्त्व प्रकट होते हैं, जो दोनों सभ्यताओं में हैं। भारत की सभ्यता बहुत प्राचीन और गौरवमयी है। ग्रीक की सभ्यता भी बहुत प्राचीन और गौरवमयी है। दोनों सभ्यताओं में कौन-सी गौरवमयी और उज्ज्वल परंपरा है, यह तब मालूम हुआ जब ग्रीक विदेशमंत्री की धर्मपत्नी भारत के महिला संगठन के सदस्यों के बीच दिल्ली में गईं। उन्होंने क्या कहा?

ग्रीक विदुषी ने कहा—ग्रीस में भी दहेज-प्रथा है।

इसे जानकर मेरे विशुद्ध भारतीय हृदय में आनंद भर गया। महान् सभ्यताओं का यही होता है। महान् सभ्यता जब बीच में आकर सड़ती है तब उसमें अछूत-प्रथा, सती-प्रथा और दहेज-प्रथा की बीमारियाँ पैदा होती हैं। न हमारे प्राचीन ग्रंथों में दहेज-प्रथा का उल्लेख है न उधर सुकरात, प्लेटो, अरस्तू ने इसका जिक्र किया। हमारे देश में तो ऐसा था कि पचासों कृपाकांक्षी युवक एक कतार में बैठे रहते थे और युवती किसी एक पर कृपा करके उसके गले में जयमाला डाल देती थी। बाद में, मध्ययुग में, जब व्यवस्था सड़ी तो वर बिकने लगे।

ग्रीक महिला ने सुकरात और अरस्तू की तरह एक बार फिर ज्ञान-ज्योति बढ़ाई और भारत में शादी के बाजार में लड़के बेचनेवालों के मनोबल को उठाया है। कोई हम ही लड़के नहीं बेचते। ग्रीस में भी लड़के बिकते हैं। महान् सभ्यताओं में यह प्रथा होती ही है। दहेज न लाने या कम लानेवाली बहू को जलानेवालों का भी नैतिक बल बढ़ा है। ग्रीस में भी बहुएँ जलाई जाती होंगी। बहू को त्रास देनेवाली सासें भी खुश होंगी कि ग्रीस में भी सास बहू को सताती है। एक सभ्यता से दूसरी सभ्यता प्रेरणा पाती है।

ग्रीक महिला से यह और पूछना था कि ग्रीस में सौदा कैसे तय होता है। क्या कहा जाता है? इस जानकारी से हमें सौदाबाजी के नए तरीके सीखने को मिलते। एक सभ्यता दूसरी सभ्यता से इसी तरह सीखती है। भारत में जो तरीका है, वह ग्रीक विदुषी सीख लेती, तो वहाँ कुछ बाजारभाव बढ़ता।

हमारे यहाँ लड़के का बाप दाँत निपोरकर बेशर्मी का संकोच करते हुए लड़की के बाप से कहता है, "कौन हम माँगते हैं—आपसे। जो देंगे, अपनी लड़की को ही तो देंगे। हम भी आधुनिक विचारों के हैं। हम भी प्रगतिशील हैं। मगर धरम थोड़े ही छोड़ा जाता है। बाप-दादों की रीति है।"

ऋषि-मुनियों की परंपरा है। आखिर हमने भी तो लड़के पर कुछ खर्च किया है। हमने उसे इतना पढ़ाया है—गोया आपकी लड़की से शादी न करनी होती तो हम बेटे को गँवार रखते। इन लोगों को जचकी का खर्च भी ले लेना चाहिए। आखिर हमने आपकी लड़की का पिता होने के लिए ही तो बेटा पैदा किया था। माँ ने उसे 9 महीने पेट में रखा तो इसका किराया वसूल कर सकती है।

कुछ लोग तो सीधा टेंडर मँगाते हैं। लड़का इंजीनियर है इतना काफी है। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर टेंडर आने लगते हैं। लड़के का बाप टेंडर रखता है। नया टेंडर देनेवाले से कहता है—कानपुर के शुक्लजी की तरफ से 35 हजार, इलाहाबाद के अवस्थीजी की तरफ से 40 हजार, लखनऊ के तिवारीजी की तरफ से 45 हजार की बात आ चुकी है। अब आप अपनी बता दीजिए।

टेंडरवालों को कभी-कभी दुर्घटनाग्रस्त भी होना पड़ता है। मेरी जानकारी में एक घाघ पिता लड़के के लिए टेंडर मँगाकर रखते जाते थे। 50 हजार पर बोली आ गयी थी। लड़का दूर एक शहर में नौकरी करता था। एक दिन उसकी चिट्ठी आई कि प्रेम-विवाह कर लिया है, आशीर्वाद दीजिए।

पिता ने सिर ठोंक लिया और लिख दिया कि तू आज से हमारा लड़का नहीं रहा। ठीक भी है। जो मात्र शादी के एक्सीडेंट से 50 हजार न ला सके वह किस काम का लड़का।

टेंडरवाले कभी-कभी एक और चक्कर में पड़ जाते हैं। ऊँची बोली के इंतजार में लड़के की उम्र निकल जाती है। तब उसे किसी शादी के सीजन में 'क्लीअरेंस सेल' में सस्ते माल की तरह निकाल देते हैं। मेरे पड़ोस में एक पंडितजी ने अपने बेटे को कीमत के इंतजार में 38 साल का कर लिया। अब लड़का घबरा गया। पिता भी घबराए। घबराकर 'क्लीअरेंस सेल' की तख्ती लगा दी। सस्ता लगा दिया है माल! नाम मात्र के 5 हजार में माल उठा लेने दिया।

ग्रीस विदुषी से पूछना था कि क्या ग्रीस में भी ऐसा होता है? और ग्रीस में दहेज कम लाने पर स्त्री को जलाया जाता है? क्या ग्रीस में मिट्टी के तेल की सप्लाई अच्छी है?

क्या वधू जलाने के लिए अलग से अच्छी 'क्वालिटी' का तेल बाजार में मिलता है? और जब काफी संख्या में औरतें जला दी जाती हैं, तब क्या उच्च-मध्यवर्ग की ऊबी और अलसाई औरतें विरोध में संसद के सामने प्रदर्शन करती हैं और नारे लगाती हैं?—'वीमेन आर नाट फॉर बर्निंग', स्त्रियाँ जलाने के लिए नहीं हैं।

नई पीढ़ी से उम्मीदें बाँधी जाती हैं। मगर वह नई पीढ़ी ही है, जिसका सौदा बीच बाजार हो रहा है। आधुनिक और प्रगतिशील बननेवाले युवकों को भी मैंने देखा है। युवक कहता है, मैं तो दहेज के खिलाफ हूँ। लेकिन फादर नहीं माने। मैं फादर का बहुत आदर करता हूँ। कई तो वहीं मंडप में मचल जाते हैं बच्चे की तरह, जो टाफी के लिए मचलता है। हम तो स्कूटर लेंगे!

जैसे-जैसे काला धन बढ़ रहा है, विवाह के बाजार में वर की कीमत बढ़ रही है। पहले मामूली इंजीनियर की कीमत अगर वह लोक कर्म या सिंचाई विभाग में है, 30 हजार होती थी, तो अब 50 हजार है। इतने विकास कार्य चल रहे हैं कि बेहद काला पैसा मिलता है। आज एक सब-इंजीनियर की कीमत ज्यादा है, विश्वविद्यालय के आचार्य की अपेक्षा। और अब एक नई नस्ल पैदा हो गई है। लड़का क्या करता है? यही 20 सूत्री में लगा है। भविष्य उज्ज्वल है। 50 हजार से कम में नहीं पड़ेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीतिक कुत्ते*

कुत्ता पाल लेना आसान है। बड़ा स्वामिभक्त जानवर है, कुत्ता—मालिक उसे अपने दुश्मन बता देता है और वह उन पर झपट पड़ता है। कुत्ता अपने दुश्मन भी तय करता है और कभी-कभी चेन तुड़ाकर उन पर झपट पड़ता है। कभी यह पालतू कुत्ता पागल हो जाए, तो फिर वह मालिक का हुक्म भी नहीं मानता और चाहे जिसे काटता है। मालिक को उलाहने बरदाश्त करने पड़ते हैं। लोग मालिक को गाली देते हैं, जिसने पागल कुत्ता पाल रखा है। मालिक की हालत खस्ता हो जाती है।

अमरीका ने इजराइल नाम का कुत्ता पाल रखा है। इस कुत्ते को भड़काकर वह पश्चिम एशिया के देशों को आतंकित करता रहा है। पर इस कुत्ते ने अपने दुश्मन भी तय किए और चेन से छूटकर उन पर झपटने लगा। पिछले कुछ अरसे से यह कुत्ता पागल हो गया है। पिछले दिनों इस कुत्ते का पागलपन इस कदर बढ़ा कि इसने लेबनान में कहर ढा दिया। सबसे भयंकर कांड जो इजराइल ने किया वह था, हजारों फिलिस्तीनी नागरिकों की हत्या, जिसमें स्त्री और बच्चे भी शामिल थे। इस कांड से दुनिया के लोगों की आत्मा काँप उठी। सबने इसकी कठोरतम शब्दों में निंदा की और पागल कुत्ते के मालिक अमरीका की तरफ दोष का इशारा किया। मालिक को पागल कुत्ते को डाँटना पड़ा, मगर कुत्ता नियंत्रण से बाहर हो चुका है। पहले कुत्ता दुम हिलाता था, अब दुम में दाँत निकल आए हैं। दुम कुत्ते को हिलाती है और काटती भी है।

इजराइल के जंगखोर कारनामों का इजराइल में ही विरोध हो रहा है। हजारों इजराइली नागरिक अपनी सरकार की इस नीति के खिलाफ प्रदर्शन कर रहे हैं। इजराइली संसद में बेगिन सरकार की कड़ी आलोचना की गई। सेना भी विद्रोही हो गई है और रक्षामंत्री को लेने के देने पड़ गए हैं।

दुनिया के हर देश ने इजराइल की निंदा की है। मगर इस जंगखोरी और पागलपन का स्रोत कहीं और है। अमरीकी सरकार की विश्व-व्यापी व्यूह-रचना तनाव-निर्माण और डर दिखाने की नीति में है। इसके साथ जुड़ा है हथियार-निर्माण और दूसरे उत्पादनों की बहुराष्ट्रीय कंपनियों का मुनाफा। दुनिया के हर क्षेत्र में अमरीकी सैनिक अड्डे हैं। ऐसे देश हैं जो अमरीकी हथियार और डालर लेते हैं और उसके गुलाम हैं। दुनिया-भर में तनाव है। किसी भी दिन किसी पागलपन से विश्वयुद्ध हो सकता है और कुछ मिनिटों में मनुष्यजाति का सफाया हो सकता है। अमरीका के पैसेवालों ने जमीन के अंदर तलघर बना रखे हैं, जिनमें वे खाने-पीने का सामान लेकर पड़े रहेंगे। वे समझते हैं कि बच जाएँगे, मगर विशेषज्ञ कहते हैं कि वे वहाँ बीमार होंगे। बाहर निकलेंगे तो जहरीली वायु और रेडियो एक्टिविटी से मारे जाएँगे।

इस सारी लड़ाई की तैयारी के साथ ही दुनिया के लोगों का विवेक भी जाग्रत है

* करंट, 23 अक्तूबर, 1982

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और शांति की शक्तियाँ ताकतवर होती जा रही हैं। अमरीका में ही युद्ध के विरोध में और शांति के पक्ष में जन आंदोलन होते हैं। लाखों आदमियों की रैली निकलती है और वे व्हाइट हाउस को घेर लेते हैं। इधर यूरोप के देश जो कभी अमरीका का हुक्म बजाते थे, उससे छिटक गए हैं। ये रूस के पड़ोसी हैं और संभावित युद्ध में पहले शिकार यही होनेवाले हैं। इनके रूसी गुट से व्यापारिक संबंध भी हैं। सबसे पहले फ्रांस ने अमरीका का पिछलग्गू होने से इनकार किया। मार्गरेट थ्रैचर जो अमरीकी प्रशासन की पूर्ण वफादार मानी जाती थी, यह कहकर हट गई कि रूस हमारा पड़ोसी है और हम उससे अच्छे संबंध बनाना चाहते हैं। पश्चिमी जर्मनी का यह रहा है कि पिछले अमरीकी विदेशमंत्री एलेक्जेंडर हेग जब इस आशा से बान पहुँचे कि स्वागत होगा, तो उनके विरोध में लाखों लोगों का प्रदर्शन उनके सामने था। वे लोग अमरीका के खिलाफ और शांति के पक्ष में नारे लगा रहे थे। पश्चिमी जर्मनी और ब्रिटेन खास वफादारों में थे। रूस से गैस पाइप लाइन के मामले में लगभग पूरा यूरोप अमरीका के खिलाफ है। अमरीका कहता है कि रूसी गैस मत लो, मगर ये देश कहते हैं कि हम लेंगे, इससे हमारा फायदा है।

इधर अपने तरफ यह हाल है कि हिंद महासागर में सैनिक अड्डे बनाए जा रहे हैं, पाकिस्तान को हथियारों से लैस किया जा रहा है और भारत के लिए खतरा पैदा हो गया है। इस संदर्भ में पिछले दिनों दिल्ली में हुई शांति रैली को देखना चाहिए। शांति का आंदोलन जो कभी कुछ बुद्धिजीवियों, वैज्ञानिकों और मानवतावादियों का आंदोलन था, अब जन आंदोलन हो गया है।

दूसरे महायुद्ध के बाद के आरंभिक वर्षों में शांति को खतरा देखकर ब्रिटिश दार्शनिक बर्ट्रेंड रसेल ने शांति के पक्ष में कार्य करने के लिए वैज्ञानिकों और बुद्धिजीवियों की 'कमेटी ऑफ हंड्रेड' बनाई थी। ये लोग शांति के पक्ष में जनमत बनाने की कोशिश करते रहे। पर यह कोई सुनियोजित आंदोलन नहीं था। इसमें काफी संख्या में वामपंथी थे। बाद में विश्व शांति परिषद् गठित हुई। इसमें भी मुख्यतः दुनिया के वामपंथी थें। पर और लोग भी इसमें थे। भारत के गाँधीवादी विचारकों में जे.सी. कमारप्पा और महेशदत्त मिश्र आरंभ से ही इसमें शरीक थे और देश के शांतिवादी और मानवतावादी बुद्धिजीवी इस संगठन में शामिल थे। धीरे-धीरे इसका दायरा बढ़ गया और आज यह व्यापक जन आंदोलन हो गया है। इसे दुनिया-भर में और राष्ट्रसंघ में मान्यता प्राप्त है।

दिल्ली की इस रैली में शामिल पार्टियाँ थीं—दोनों कम्युनिस्ट पार्टियाँ, सोशलिस्ट पार्टी, डेमोक्रेटिक सोशलिस्ट पार्टी (बहुगुणा), जनवादी पार्टी (चंद्रजीत यादव), वर्कर्स एंड पीजंट्स पार्टी। इस रैली की विलक्षणता और शालीनता की तारीफ दक्षिणपंथी अखबारों ने भी की है।

मेरे मन में सवाल उठता है—क्या शांति की चिंता केवल वामपंथियों की चिंता है ? दूसरे किस दूसरी दुनिया में रहते हैं कि उन्हें इस दुनिया में शांति से मतलब नहीं है? हिंद महासागर में सैनिक अड्डे और पाकिस्तान की हथियारबंदी क्या वामपंथियों के लिए खतरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है? दक्षिणपंथी लोग किसी दूसरे भारत में रहते हैं? और समाजवादी जॉर्ज फर्नांडिस वगैरह ? ये तो वामपंथी हैं। ये क्यों नहीं शांति और भारत की सुरक्षा के लिए चिंतित हैं। चरणसिंह के 'के.जी.बी.' एजेंट बहुगुणा को तो शांति और भारत की सुरक्षा की चिंता है, मगर चरणसिंह को क्यों नहीं है? मोरारजी भाई क्या शांति नहीं युद्ध चाहते हैं? और भारतीय जनता पार्टी के लोग? अटलबिहारी वाजपेयी जब विदेशमंत्री थे, तब बड़े ललककर पाकिस्तान और चीन गए थे। चीन में जब वे थे, तभी उसने वियतनाम पर हमला कर दिया था। वाजपेयी को सुब्रह्मण्यम स्वामी ने फँसाया था। क्या अटलबिहारी को शांति की चिंता नहीं है? क्यों नहीं ये सब दल और नेता भी शांति के लिए कोई प्रदर्शन करते? माना कि वामपंथी दलों के साथ रैली करने में अपनी विशिष्ट 'आइडेंटिटी' गुम जाने का डर है, तो आइडेंटिटी समेत शांति के लिए प्रदर्शन कर सकते हैं। अगर यही तय कर लिया है कि अपना अस्तित्व अलग है, अपनी दुनिया अलग है, तो फिर प्रेतों से कोई अपील करना बेकार है।

डॉक्टर सुब्रह्मण्यम स्वामी इजराइल गए हैं। यात्रा शुभ हो। मगर किसलिए तीर्थयात्रा करने गए हैं? सफाई देते हैं कि मैंने इजराइली सरकार से कह दिया है कि मैं तुम्हारी लेबनान की कार्यवाही का समर्थन नहीं करता। मगर आपको उन्होंने इस मौके पर आमंत्रित क्यों किया? या आपने अपने को इस मौके पर आमंत्रित क्यों करवा लिया ? यह कोई सद्भावना और मित्रता की यात्रा का मौका है, क्या स्वामी उन्हें डाँटेंगे? किस हैसियत से डाँटेंगे? क्या डॉक्टर स्वामी उनका उत्साहवर्द्धन करने गए हैं?

R 082 166.2

122609

सबको सन्मति दे भगवान*

भ्रष्टाचार की बात अब करना वैसा ही है, जैसे सत्यवादी हरिश्चंद्र की कथा सुनाना। 'सत्यवादी' हरिश्चंद्र की कथा जितनी पुरानी है, उतनी ही पुरानी है इस देश के भ्रष्टाचार की कथा। प्राइमरी स्कूल में जब हरिश्चंद्र की कथा पढ़ाई जाती है, तब वह नई लगती है और चौंकाती है। वाह, कितना सत्यवादी राजा था! सपने में जिसे दान दे दिया, जागने पर उसकी खोज कराके उसे राज दे देता है। खुद चांडाल के यहाँ नौकरी करता है और अपने बेटे के कफन के टैक्स के रूप में अपनी पत्नी से उसकी आधी साड़ी माँगता है। पर यही कथा जब बी.ए. के कोर्स में पढ़ाई जाए, तो छात्र कहेगा—कितने पिछड़े हुए लोग हैं ये प्रोफेसर ! अरे यह कथा तो हम प्राइमरी में पढ़ चुके और साल-दर-साल दुहराते हैं। नई कथा पढ़ाएँ या इसी कथा को नया बनाएँ।

इस कथा को यों बनाएँ : हरिश्चंद्र ने सपने में एक ब्राह्मण को राज्य दान में दे दिया।

---

* करंट, 30 अक्तूबर, 1982

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुबह उन्होंने सपने को याद किया और सोचा, यह सपनेवाला ब्राह्मण है, जिसकी नजर मेरे राज पर लगी है। यह कभी भी आकर भीख में राज्य माँग सकता है। यह किसी राजा को उकसाकर मेरे राज्य पर हमला करवा सकता है। उन्होंने मंत्री को हुक्म दिया—पता लगाओ इस शक्ल-सूरत के ब्राह्मण का और उसे मेरे सामने हाजिर करो। वह ब्राह्मण राजा के सामने लाया जाता है। राजा उससे कहता है—क्यों रे अधम, स्वप्न में मुझे बेखबर जानकर मेरा राज्य दान में लेता है। राजा सिपाही को हुक्म देता है—इस बम्हन का सिर काट लो!

सत्यवादी की कथा इस तरह नवीन होती है। ऐसा नहीं कि वही प्राइमरी की कथा दुहराते चले जा रहे हैं। ईमानदारी इस देश में लुप्त चीज हो गई है। बेईमानी इतनी पुरानी बात हो गई है कि अब कोई बेईमानी की बात करे, तो लगता है, बड़ा पिछड़ा हुआ आदमी है। अब कौन-सी बात चौंकाती है? अखबार में कभी-कभी समाचार छपता है—'ईमानदारी अभी जिंदा है!' मजमून होता है—एक रिक्शावाला सवारी को छोड़कर लौटा, तो उसने देखा कि रिक्शे में नोटों से भरा एक बटुआ पड़ा है। वह तुरंत उन सज्जन के घर गया, जिन्हें उसने अभी छोड़ा था और उनका बटुआ वापस किया। इस जमाने में भी ईमानदारी जिंदा है।

यह समाचार कभी नहीं छपता कि एक सज्जन ने डेढ़ रुपए में रिक्शा ठहराया, मगर सिर्फ एक रुपया रिक्शेवाले को दिया। उसने 50 पैसे और माँगे, तो उसे पीटकर भगा दिया।

सन् 1947 के बाद 4-5 साल तक भ्रष्टाचार की बात पिछड़ी नहीं लगती थी। वह चौंकाती थी, उस पर क्रोध आता था। मगर आज मैं भ्रष्टाचार की बात करूँ तो लोग कहेंगे—यह परसाई समय से पिछड़ गया है। यह पुरानी बात करता है। इसे नई बात नहीं सूझती क्या? नई बात कभी-कभी पुरानी बात में से निकलती है। अर्थव्यवस्था की तरह हमारी मिश्रित नैतिकता है। औद्योगिक विकास की तरह नैतिकता का विकास हो रहा है और नए-नए गुल खिलते हैं।

यह जो मैं हादसा बयान कर रहा हूँ, भ्रष्टाचार की नैतिकता में एक नई बात है। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। व्यापारियों और सेल्सटैक्सवालों के मधुर संबंध वैदिक काल से चले आ रहे हैं। कभी इस मामले में विवाद की स्थिति नहीं आई।

पहली बार मध्यप्रदेश के रायपुर शहर में विवाद खड़ा हो गया। जो बताया जा रहा है, वह यों है—एक सेल्सटैक्स अफसर एक व्यापारी के पास पहुँचे और उससे काफी बड़ी रकम माँगी—कई हजार। उसने देने से इनकार किया और अफवाह है कि अफसर के मुँह पर कालिख भी पोत दी। अब तक चला। व्यापारियों के संगठन ने बयान छपाया और ऊपर रिपोर्ट की कि यह अफसर बहुत भ्रष्ट है। इसे निलंबित किया जाय और इसकी सम्पत्ति की जाँच की जाय।

याने व्यापारियों को सामान्य भ्रष्टाचारी अफसर प्रिय हैं, पर ज्यादा भ्रष्टाचारी उनमें नैतिकता जगा देता है। इधर अफसर मन अतिरिक्त अधिकारों से लैस था, जो उसे हाल ही में भ्रष्टाचार निवारण अध्यादेश (जो अब कानून बन गया है) के तहत प्राप्त हैं। व्यापारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगठन ने शहर बंद का नारा दिया और एक दिन सारी दूकानें बंद रहीं। अब छत्तीसगढ़ बंद का आह्वान किया है और पूरे छत्तीसगढ़ में बाजार एक दिन बंद रहेंगे। यह आंदोलन सरकारी अफसरों के भ्रष्टाचार के खिलाफ है। उधर अफसर भी संगठित संघर्ष कर रहे हैं, उन्होंने भी पूरे क्षेत्र में व्यापारियों से निपट लेने की तैयारी कर ली है।

यह इस देश में एक नई बात है। अफसर को भ्रष्टाचारी कौन बनाता है? व्यापारी। और व्यापारी को भ्रष्टाचार करने की छूट कौन देता है? अफसर! एक पवित्र कार्य में ये दोनों लगे हैं। इनमें लड़ाई होना वैसा ही है, जैसे प्रभु के दो भक्तों में लड़ाई। प्रभु के चरणामृत को लेकर झगड़ा है यह। तूने ज्यादा चरणामृत ले लिया, तूने भोग में से ज्यादा मिठाई ले ली। व्यापारी शिकायत करते हैं कि सब अफसर भ्रष्ट हैं, मगर उन्हें भ्रष्ट तो व्यापारियों ने ही बनाया है। अब यह शिकायत करना कहाँ तक जायज है कि ये लोग भ्रष्ट हैं? वे अगर भले बने हैं तो आपने ही उन्हें भला बनाया है। अफसर भी शिकायत नहीं कर सकते। भ्रष्टाचार के तरीके व्यापारियों को अफसर ही सिखाते हैं। सेल्सटैक्स की चोरी व्यापारी एक तो अपनी प्रतिभा से करता है, दूसरे उसे अफसर अतिरिक्त शिक्षण देते हैं।

रही अफसर की संपत्ति की जाँच। अगर अफसर के पास बहुत-सी सम्पत्ति है, तो वह दी हुई व्यापारियों की ही है। अपनी दी हुई सम्पत्ति की जाँच की माँग करना मुझे नैतिक नहीं लगता। यह तो अपनी ही सम्पत्ति की जाँच की माँग-जैसी हो गई।

फिर सवाल यह है कि जाँच कौन करे? अफसर अकेला तो खाता नहीं है। वह नीचे भी खिलाता है और ऊपर भी खिलाता है। ऊपर जो जाँच करनेवाला है, वह भी तो खाता होगा।

मैंने एक जानकार से पूछा कि यह मामला क्या है। उसने कहा—अगर यह सही है कि अफसर ने इस समय बड़ी रकम की माँग की, तो उसे सीजन की पहचान नहीं है। अच्छे गर्म सीजन में जब खूब धंधा चल रहा हो, तब अफसर जो माँगें, व्यापारी फौरन दे देता है, उसे बहस करने की फुरसत ही नहीं होती है। मगर इस वक्त सीजन ठंडा है। इस ठंडे सीजन में बड़ी रकम माँगना गलत है। अफसर ने मौसम का खयाल नहीं रखा। मौसम का खयाल नहीं रखने से नुकसान होता है। विकट ठंड के मौसम में कोई अगर सिर्फ बनियान पहने रहे, तो उसे निमोनिया हो जाएगा।

मेरी तो बहुत सद्भावना व्यापारियों और अफसरों के प्रति है, उनमें हमेशा से प्रेम संबंध रहे हैं। मैं इन दोनों के प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि दोनों पक्षों को ऐसी प्रेरणा दे कि उनमें पहले जैसे प्रेम-संबंध फिर स्थापित हो जाएँ—सबको सन्मति दे भगवान!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईसा और गांधी*

क्षमा, करुणा और प्रेम के मसीहा ईसा, अपनी सलीब खुद ढोकर उस पर चढ़नेवाले ईसा ने कहा–''व्हाट यू डू अनटू दिस लास्ट आव दीज़ माई ब्रदरन, यू डू अनटू मी।'' 'अनटू दिस लास्ट' पुस्तक रस्किन ने लिखी, जिससे गांधीजी प्रभावित हुए और उसका अनुवाद किया। 'अनटू दिस लास्ट' से 'अन्त्योदय' और 'सर्वोदय' का जन्म हुआ, जो आगे चलकर राष्ट्रीय पाखंड में उदात्त होकर 'स्वयमोदय' बन गए। गांधीजी परम वैष्णव थे। वैष्णव करुणा की बराबर सिर्फ ईसाई करुणा है। वैष्णव जन तो तेणे कहिए, जे पीर पराई जाणै रे–नरसी मेहता ने गाया। गांधीजी की मंडली भी गाती थी। ईसा का गरीबों से प्यार गांधीजी की तरह ही था–'ब्लेसेड आर दी पूअर फार दे विल इनहेरिट दी किंगडम ऑव गाड।' मगर गरीब अगर 'धन्य' होकर रह जाते तो कभी भी ईश्वरीय राज के अधिकारी नहीं होते। यह कार्ल मार्क्स ने बताया कि गरीब धन्य हो, मगर गरीबी धन्य नहीं है। गरीबों का ईश्वरीय राज पर अधिकार क्षमा से नहीं, संघर्ष से होगा और ईसा ने जिस ईश्वरीय राज्य की आशा गरीबों को दी थी, वह समाजवादी देशों में पूरी हो रही है। मगर ईसा के सत्य हुए वचन से पोप नफरत करते हैं, पादरी डरते हैं और मदर टेरेसा 'सफरिंग' न होने से अपनी निरर्थकता का बोध करती हैं।

ईसा का जन्म-दिन, ईसा के जन्म के इलाके में बम के धड़ाकों के साथ मनाया गया और ईसा की करुणा से प्रभावित परम वैष्णव गांधीजी के गुजरात, बड़ौदा में सांप्रदायिक आग, लूट और हत्या से।

जब यह कालम छपेगा, तब तक शायद बड़ौदा में शांति हो जाए या अगले दंगे की योजना बन रही हो। इस देश में सांप्रदायिक दंगे का उन्माद मिर्गी के फिट की तरह कुछ शहरों में आता रहता है। अलीगढ़, मुरादाबाद, मेरठ और अब त्रिवेंद्रम वगैरह में। मिर्गी के फिटग्रस्त को जूता सुँघाया जाता है, जिससे वह होश में आ जाता है। मगर इन शहरों में सांप्रदायिक दंगा करानेवाले नेताओं, रहनुमाओं को आज तक जूता नहीं सुँघाया गया। ये मिर्गी के स्थायी फिट के आनंद में रहते हैं।

बड़ौदा में इतिहास बना, इस इतिहास का जिक्र अभी क्या, सौ साल बाद भी किया जाएगा और सबक सीखे जाएँगे। बड़ौदा में दंगा 18 महीनों से हो रहा है। यह सामुदायिक विकास जैसा चला या क्रांति की निरंतरता जैसा अमल हुआ। इस बीच दो गाँधी जन्म-दिवस और एक निर्वाण-दिवस मन गए।

एटनबरो की 'गांधी' फिल्म बन गई और दिखा भी दी गई। 'रघुपति राघव राजाराम' और 'ईश्वर अल्ला तेरे नाम' गा लिया गया। 'सबको सन्मति दे भगवान' भी गाया गया, जिससे दुर्गति आई। भजन भी दो नंबरी हो गए। जहाँ नेता, व्यापारी, शासक, धर्मगुरु,

* करंट, 29 जनवरी, 1983

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाजसेवक सब दो नंबरी हो गए, वहाँ भगवान एक नंबरी रहकर क्या अपनी दुर्गति कराएँ ? क्या ईमानदार अफसर की तरह जंगली इलाके में तबादले का वनवास भोगें? भगवान भी दो नंबरी हो गया।

बड़ौदा हमारी राष्ट्रीय शर्म का स्मारक हो गया। बड़ौदा भारत का सबसे बड़ा आकर्षक पर्यटन केंद्र हो गया। ताजमहल पिट गया, अजंता-एलोरा को शर्म आने लगी, खजुराहो की नग्न मूर्तियों ने शर्म के मारे कपड़े पहन लिये। पर्यटकों के लिए ये कोई आकर्षण नहीं रहे, राष्ट्रीय उपलब्धियाँ भी भिलाई, दुर्गापुर, राँची की एच.एम.टी., भोपाल का हैवी इलेक्ट्रिकल्स, बंगलूर का अंतरिक्ष अनुसंधान केंद्र, भाखड़ा नंगल आदि नहीं रहे। राष्ट्रीय उपलब्धि बड़ौदा का 18 माही दंगा हुआ। विदेशी राष्ट्राध्यक्ष और नेता आते हैं, तो उन्हें दिल्ली से आगरा भेजते हैं, ताजमहल देखने के लिए और भेजते हैं भाखड़ा नंगल। उन्हें अब दिल्ली से सीधे बड़ौदा भेजना चाहिए। वे हमारे राष्ट्रीय गौरव को नहीं, राष्ट्रीय शर्म को देखें। भारत का पर्यटन विभाग विज्ञापन प्रसारित करे—'विजिट इंडिया, सी दी ग्रेटेस्ट वंडर आव वर्ल्ड बड़ौदा! ए सिटी इन रायट फार 20 मन्थ्स कंटीन्यूअसली, ए सिटी इन महात्मा गांधीज गुजरात, ए सिटी इन रायट्स फार 20 मन्थ्स विथ स्टेट एंड सेंट्रल गवर्नमेंट्स रूलिंग ब्लिसफुली। नेशनल इंटीग्रेशन कौंसिल रोस्टिंग⋯' ऐसा विज्ञापन करें। लाखों विदेशी पर्यटक आएँगे—'इंडिया ए लैंड ऑव वर्ल्ड' के विश्वासवाले। अरबों डालर और पाउंड मिलेंगे।

माधवसिंह सोलंकी जानते थे कि बड़ौदा में महान् पर्यटन आकर्षण की संभावनाएँ हैं। तभी उन्होंने पहले गृहमंत्री सेठी को यह कहकर आने से मना किया कि अभी हम आपके दौरे का इंतजाम नहीं कर सकते। आखिर सेठी एक महत्त्वपूर्ण पर्यटक थे, जो बड़ौदा का सौंदर्य देखने आ रहे थे।

पुलिस और सामान्य प्रशासन के अफसरों को तरक्की मिले और वे पद्मश्री से विभूषित किए जाएँ। माधवसिंह सोलंकी को 'भारत-रत्न' की उपाधि मिले। उन सब कांग्रेसियों को पद्मविभूषित किया जाय, तो शांति स्थापना करके एक-दूसरे की टाँग खींच रहे थे। भारतीय जनता पार्टी के गुजरात अध्यक्ष को गुजरात स्टेट का डिक्टेटर बना दिया जाय !

शायद हजारवीं बार जाँच होगी कि दंगा क्यों हुआ? फाइलें बढ़ाना है न सचिवालय में। जितनी जाँच कमेटियों, कमीशनों और शासकीय मशीनरी की जाँच-फाइलें बढ़ रही हैं, उतनी ही सांप्रदायिकता बढ़ रही है। अब सैयद शहाबुद्दीन 45 मुस्लिम संसद-सदस्यों को लेकर मुसलमानों की अलग से रक्षा करने पर उतारू हैं, तो उधर बालासाहब देवरस अलग से हिंदुओं की रक्षा करने को उतावले हैं।

बड़ौदा में दो गुट हैं—एक गुट हिंदुओं का, दूसरा मुसलमानों का। दोनों में झगड़ा हुआ, मार-पीट हुई। इससे इस्लाम खतरे में पड़ गया और हिंदू धर्म का नाश होने लगा। धार्मिक उन्माद फैल गया। खुदा गैरकानूनी शराब की बोतल में रहते हैं और भगवान विष्णु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थककर क्षीरसागर में नहीं अवैध मदिरा-सागर में विश्राम करते हैं।

कहाँ है भारत-भाग्यविधाता ?*

गणतंत्र दिवस, 26 जनवरी को शहर में स्वप्रेरणा से लोगों ने सजावट की थी। झंडे लगाए थे, लाउडस्पीकरों पर राष्ट्रीय गीत हो रहे थे, द्वार बनाए गए थे, लोग आपस में गले मिल रहे थे और मेरे पड़ोसी पिकनिक पर गए थे। रात को पटाखे छूटे। रोशनी हुई। गीत-संगीत हुआ। आर्केस्ट्रा बजा। कवि-सम्मेलन हुए। मुशायरे हुए।

महँगाई, गरीबी, अभाव और संकट के बावजूद आम लोगों ने आत्म-प्रेरणा से उत्फुल्ल होकर गणतंत्र में विश्वास प्रकट किया। इसमें राजनेताओं का कोई योग न था। चार साल पहले इसी दिन 'कस्तूरबा स्मारक' पर झंडा कौन चढ़ाए, इस विवाद में दो नेताओं ने एक-दूसरे की टेंटरी पकड़ ली थी, पिस्तौलें निकल आई थीं, और सैकड़ों लोग, जिन्हें प्रभावित करने की दोनों नेताओं में होड़ लगी थी, कह रहे थे—देखो, दोनों कितने चूतिये हैं! साले, आज के दिन भी झंडा चढ़ाने को झगड़ रहे हैं। कैसे नीच हैं!⋯दोनों ने कैसे ठोस मूर्खतापूर्ण टुच्चेपन से जनता का प्यार प्राप्त किया।

26 जनवरी को जब जनता उल्लास से लोकतंत्र और गणतंत्र में विश्वास व्यक्त करती है, तब लोंगोवाल अकालियों से विधानसभा और संसद से इस्तीफे दिलवा रहे हैं और भजनलाल हरियाणा के कांग्रेसियों से ऐसे ही इस्तीफे दिलवा रहे हैं। आसाम में दक्षिणपंथी नेता चुनाव का बहिष्कार करके उपद्रव, आगजनी एवं हत्या करवा रहे हैं।

हुआ यह कि लोकतंत्र के रास्ते पर आम आदमी तो आगे बढ़ गया क्योंकि उसका ध्यान चलने पर ही है, मगर नेता पीछे रह गए। वे एक-दूसरे को लत्ती मारकर गिराते हैं, फिर उठते हैं, हाथ-पाँव की चोट सहलाते हैं, एक-दूसरे पर थूकते हैं, फिर लात मार गिरते-गिराते हैं, धूल चाटते हैं—गोया वहीं लड़ते-झगड़ते भाड़ झोंक रहे हैं और जनता आगे निकल गई है। नेता जब मंच पर खड़ा होकर कहता है—भाइयो, तुम्हें देश का निर्माण करना है, तो लोग फुसफुसाते हैं—इसलिए कि तुमने देश का नाश कर दिया है। छात्रों की सभा में नेता कहते हैं—युवको, तुम्हें चरित्रवान होना है, तो लड़के कहते हैं—इसलिए कि तुम चरित्रहीन हो और सुधर नहीं सकते। आज नेता जब उपदेश देने लगता है तो लोग कहते हैं—यह उल्लू का पट्ठा 30 साल पहले भी यही बोलता था—आज हम आजाद हैं। लड़के कहते हैं—हमारे फादर ने भी यही बेवकूफी इसके मुँह से सुनी थी। जनता बहुत आगे निकल गई है। नेता बहुत पीछे पड़ा हुआ बेईमानी और अज्ञान के पत्थर पर सिर पटक रहा है।

इधर धर्म के क्षेत्र में काशी के भगवान विश्वनाथ त्रिशूल और तांडव नृत्य के बावजूद,

* करंट, 19 फरवरी, 1983

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संहार की शक्ति के बावजूद, अपने सोने की रक्षा चोरों से नहीं कर पाए। भभूत लपेटनेवाला जब सोना जोड़ने लगता है, तब यही होता है। उससे बड़े चोर हाथ साफ कर देते हैं। आखिर उत्तर प्रदेश सरकार ने कहा—प्रभु भोलानाथ, औढरदानी, आपसे माया सँभालते नहीं बनती। इसे हम सँभालेंगे। यह लो अध्यादेश अधिग्रहण का। अब तुम डमरू बजाओ। अब हमारा प्रशासक आपके सामने आपका पैसा खाएगा और आपको शिव ! शिव ! कहना पड़ेगा। भगवान के सोने की चोरी के शक में जो पकड़े गए हैं, उनमें मंदिर के प्रधान महंत भी शामिल हैं। भगवान भी नेता की तरह चमचे से हार जाते हैं।

गणतंत्र दिवस पर राष्ट्रीय 'जनगणमन अधिनायक जय हे भारत भाग्यविधाता' जगह-जगह गाया गया।

आगे इसमें रवींद्रनाथ ने गाया है—पंजाब, सिंध, गुजरात, मराठा, द्राविड़, उत्कल, बंग, विन्ध्य, हिमाचल, यमुना, गंगा, उच्छल जलधि तरंग··तव शुभ नामे जागे··

रवींद्रनाथ ने एक और गीत में कहा है—भारत महामानवसागर के तीर पर कितनी जातियाँ इकट्ठी हैं। ये आर्य हैं, वे द्रविड़ हैं, ये शक, हूण, ईसाई, मुसलमान सब भारत महामानव-सागर में एक होकर सुख से रहें। भाषा, धर्म, क्षेत्र, जाति, नस्ल के बावजूद भारत की एकता का सपना था यह मानव कवि का।

अगर रवींद्रनाथ ठाकुर आज होते और उनका स्वास्थ्य ठीक होता तो मैं उनसे कहता—गुरुदेव! आप संत भिंडरावाला और संत लोंगोवाल से मिल लीजिए। रवींद्रनाथ कहते—वे दोनों संत हैं, मैं मामूली कवि हूँ। उन्हें आदरपूर्वक लिवा लाओ। मैं कहता—गुरुदेव! मैंने उनसे यहाँ आने के लिए कहा था। पर वे कहते हैं कि यह रवींद्रनाथ कौन है? ज्ञानी जैलसिंह का आदमी तो नहीं है। उससे कह देना—राज करेगा खालसा ! गुरुदेव कहते—जब पंजाब की आधी आबादी ज्ञानियों की है और एक तिहाई संतों की तो मुझ अज्ञानी की बात कौन मानेगा?

मैं उन्हें बताता कि गुरुदेव, विन्ध्याचल ने हिमालय पर चढ़ाई की घोषणा कर दी है। सह्याद्रि जबरदस्ती नीलगिरी पर संघ की शाखा लगा रहा है, कावेरी के जल पर तमिलनाडु और कर्नाटक में युद्ध होनेवाला है। पवित्र नदियों का जल जहर हो गया। सतलुज के अमृत जल के कारण पंजाब, हरियाणा और राजस्थान के नेता जनता को जहर पिलाने को तैयार हैं। 'हे चिरसारथी, तव रथचक्रे मुखरित पथ दिन-राची'—वह चिरसारथी कहाँ गया? 'दारुण विप्लव' में उसकी 'शंखध्वनि' नहीं बज रही है। छोटे स्वार्थों की टुच्ची लड़ाई में बकरे की बोली बोल रहे हैं—नेता!

रवींद्रनाथ को कर्नाटक विधानसभा का हैरतअंगेज दृश्य जरूर दिखाता। शपथ-ग्रहण समारोह है। नए विधायक बैठे हैं। दर्शकों की गैलरी भी भरी है। पहली बार गैरकांग्रेसी सरकार बनी है। बड़ा उत्साह है। विधायक शपथ ले रहे हैं कन्नड़ भाषा में। महाराष्ट्र एकीकरण समिति के एक सदस्य ने मराठी में शपथ ली तो हुल्लड़ शुरू। कन्नड़ में शपथ लो। अजित सेठ ने उर्दू में शपथ ली तो हुल्लड़, गाली-गलौज। एकमात्र अन्ना डी.एम.के.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सदस्य भक्तवत्सलम् ने तमिल में शपथ ली तो कन्नड़ नेता नारायण कुमार ने उनका शाल खींच दिया। गैलरी में दर्शकों को आशा थी कि वे भक्तवत्सलम् की लुंगी खींचेंगे। वे चिल्लाए–भक्तवत्सलम् को बाहर निकालो! अब विधान सभा में कांग्रेसियों, जनता पार्टीवालों, भारतीय जनता पार्टीवालों और विभिन्न भाषावालों में गाली-गलौज, हाथापाई और नेताओं से प्रेरणा पाकर गैलरी की जनता ने लात, घूँसे, जूते चालू कर दिए हैं। हम नेता की बुरी हरकत का फौरन अनुकरण करते हैं। नेता अगर कोई औरत भगा ले जाए, तो उसके हजारों अनुयायी औरत भगाते हैं। पर कोई नेता ठीक कर चुकाए, तो इससे उल्टी प्रेरणा पाकर उसके अनुयायी कर-चोरी करते हैं।

रवींद्रनाथ घबराकर कहते हैं–खिसकने का रास्ता बताओ। मैं उन्हें बाहर निकालकर कहता हूँ–यह तो छोटी-सी वारदात है। पंजाब को खालिस्तान बनाना चाहते हैं। एम.जी. रामचंद्रन कहते हैं कि तेलगुदेशम की विजय द्रविड़ संस्कृति की आधी विजय हो गई। रामचंद्रन ने धमकी दी है कि अगर रेलवे ने हिंदी चलाई तो विप्लव हो जाएगा। उधर 'जय छत्तीसगढ़ पार्टी' और 'गोंडवाना पार्टी' और गुरुदेव, बड़ौदा में 18 माही दंगा, मुरादाबाद, मेरठ, अलीगढ़ में दंगा सफल हो गया है। हिंदू राष्ट्र की माँग देवरस तेज करते हैं। देश को छोटे-छोटे क्षेत्रों में, भाषाई इकाइयों में, सांप्रदायिक आधार पर, सांस्कृतिक समूहों में, जाति में, वर्ण में, बाँटने की तैयारी कर रहे हैं–हमारे बौने नेता। भारत की एकता नष्ट करने के आसार हैं। भारत भाग्यविधाता कहाँ है आपका?

अभी मेरे सामने जो अखबार है उसमें रीगन के आदेश पर सी.आई.ए. ने भारत को क्षेत्र, भाषा, संप्रदाय तथा अन्य आधारों पर बाँटकर देश की एकता नष्ट करके उसे कमजोर बनाकर अपने कब्जे में लाने की जो गुप्त योजना बनाई है, यह प्रगट होकर छपी है।

मैंने इस योजना को पढ़ा। हम ठीक वही कर रहे हैं जो सी.आई.ए. की योजना में है। मैं तमाम क्षेत्रीय, भाषाई, सांप्रदायिक नेताओं की तरफ से यह पत्र रोनाल्ड रीगन को लिख रहा हूँ–

'मोस्ट एक्जाल्टेड इंपीरियल मेजेस्टी', इतिहास में हम जब-जब आपस में लड़े हैं, हमने अपनी समस्या के हल के लिए बाहरी हमलावर बुलाया है। आपने कृपाकर इस बार सी.आई.ए. को भेज दिया। हम आपके कृतज्ञ हैं। हम सी.आई.ए. से पूरी तरह सहयोग करेंगे। बस, जरा पैसे की सप्लाई बढ़ा दीजिए। गैरों की हुकूमत में ही हम एक होते हैं। अंगरेजों को आइ रिमेन, योर मोस्ट ओबीडियेंट सर्वेंट लिखने की हमारी आदत थी। हम आपको और नम्रता से लिखते हैं–'परमिट अस टु रिमेन योर मोस्ट फालन एंड रेचेड स्लेब्ज।'

सारे भारत माता के भक्त नेता इस पर कृपाकर दस्तखत कर दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधायकों की महँगी गरीबी*

आदरणीय विधानसभा सदस्यो,

यह चिट्ठी आपको एक अदना भारतीय लिख रहा है, जिसके वोट से आप विधायक बनते हैं, विधानसभा विश्रामगृह में रहते हैं, सब्सिडाइज किया हुआ सस्ता भोजन मेस में करते हैं। विधानसभा कैंटीन में बारह-पंद्रह रुपयों में बिकनेवाला तला हुआ मुर्गा आप सिर्फ छः रुपए में खाते हैं। आप चमचों से सेवा लेते हैं, फ्री में कारों में घूमते हैं। यह सब मेरे भारतीय नागरिक के पैसे से करते हैं। बड़ा खर्च उठाता हूँ, मैं तुम्हारे लिए। एक बार सरोजिनी नायडू ने एक विदेशी पत्रकार से कहा था—"यू डू नाट नो हाऊ मच इट कास्ट्स अस टु कीप गांधीजी पूअर!" यानी तुम नहीं जानते कि गांधीजी को गरीब रखने के लिए हमें कितना खर्च करना पड़ता है। जनता की, जनता के द्वारा, जनता के लिए सरकार कैसे अपने ही लिए हो जाती है, यह अब्राहम लिंकन को नहीं मालूम था। हमें मालूम है।

आप विधायक हैं। हमारा भाग्य निर्णय करते हैं। हमारा जीवन आपके हाथों में है। हमारे चरित्र और आचरण के आप नियामक हैं। आप ही भ्रष्टाचार निवारण कानून बनाते हैं। आप ही हमारी आमदनी और खर्च अपने हाथ में रखते हैं। आप ही रोटी महँगी करते हैं। आप ही रोटी सस्ती करते हैं। आप हमारे वास्तविक भाग्यविधाता हैं। इसलिए हम चाहते हैं कि आप आराम से रहें, सुख से रहें, स्वस्थ रहें।

जब उमाशंकर दीक्षित दिल्ली में कांग्रेस के हेड टिकिट बाबू थे, तब कई साल विधायक रहे एक वयोवृद्ध (ज्ञान की उम्र नामालूम) नेता फिर विधानसभा का टिकिट लेने पहुँचे। दीक्षितजी ने कहा—क्या आप यह नहीं समझते कि आपकी अब आराम करने की उम्र है। नेता ने जवाब दिया—मुझे विधानसभा में ही आराम मिलता है।

मुझ-जैसा अदना करदाता भारतीय आश्वस्त हुआ कि विधानसभा सिर्फ आराम करने की उत्तम लोकतांत्रिक संस्था है। मुझे जब कभी ऐसा मालूम होता है कि आपको किसी कारण क्लेश है। मैं चिंतित हो जाता हूँ।

शायद किसी मुख्यमंत्री ने यह आदेश दे दिया था कि इस साल शिक्षा-विभाग में कोई तबादले नहीं होंगे। तब आपमें से बहुतेरे बहुत दुखी और परेशान थे। आप लोगों ने मुख्यमंत्री के इस आदेश का विरोध भी किया था। मुख्यमंत्री का आदेश सरासर अन्यायपूर्ण था। मास्टरों का घर एक जगह से हटकर दूसरी जगह जाय, इसे रोकने के लिए—इस क्षुद्र बात के लिए विधायक के कोमल दिल को ठेस पहुँचाना बिलकुल गलत है। मास्टर-वास्टर जानवर हैं--आज इस चरागाह में, कल उस चरागाह में। मगर तबादले का सीजन विधायक के लिए वसंत है। वासंती बयार बहती है। सुंदर फूल खिलते हैं। उद्दीपनकारी वातावरण होता है। विधायक स्वर्गसुख में होता है, शिक्षा-विभाग तो लीद करनेवाला मुहकमा है।

---

*करंट, 19 मार्च, 1983

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ ऐसे विभाग है, जो सोने और हीरे का दस्त करते हैं। इन विभागों में जब तबादले कराने या रुकवाने का काम विधायक करता है, तब उसे सोने से तौलने की इच्छा होती है। किसी मुख्यमंत्री ने तो हर विधायक को अधिकार दे दिया था, कि तुम पाँच तबादले करवा या रुकवा सकते हो। कितना भावात्मक कार्य था यह! इस देश का हर आदमी जानता है कि तबादले के जीवन को सफल, सार्थक और सुखी बनाने के लिए पैसे जरूरी हैं।

श्रद्धास्पदगण, आप लोग हमारे लिए आचरण-संहिता बनाते हैं। आप महान हैं। हम आपका मंगल चाहते हैं। आज जो मैं आप विधायकों को लिख रहा हूँ, यह इसीलिए कि मैंने एक समाचार पढ़ लिया है, जिससे मुझे आप लोगों के बारे में चिंता हो गई है। समाचार यह है—सरकार ने बताया है कि विधायकों की चिकित्सा में 32-35 लाख खर्च हुए। ऐसे आँकड़े हर साल दिए जाते हैं कि विधायकों के इलाज पर 25 लाख या 30 लाख या 35 लाख खर्च हुए। मैंने पहले भी चिंता तो की, पर आपको लिखा नहीं। इस बार मैं इतना घबरा गया कि आप लोगों को सार्वजनिक पत्र लिखकर छपवा रहा हूँ, ताकि आप सब पढ़ लें जनता भी पढ़े और चिंतित हो कि हमारे विधायकों को जिन्हें हमने चुनकर स्वस्थ भेजा था, कैसी बीमारियाँ हो गईं कि उनके इलाज पर हमारा 32 लाख रुपया खर्च हो गया। वैसे 32 लाख नहीं, 32 करोड़ रुपए हम आपके स्वास्थ्य के लिए खर्च करने को तैयार हैं। पर हम जानें तो कि आप लोगों को कौन-सी कठिन बीमारियाँ हो गई कि 32 लाख रुपए इलाज में लगे। विधायक बनने के पहले भी तो आप बीमार पड़ते रहे होंगे, तब क्या ओझा की झाड़-फूँक से आप अच्छे हो जाते थे ?

श्रद्धेय, आप लगभग सवा तीन सौ विधायक हैं। इनमें से औसतन सवा दो सौ विधान सभा-सदस्य अधिवेशन के समय राजधानी में विधायक विश्रामगृह में रहते हैं। वहाँ आप लोगों के चिकित्सा केंद्र हैं, जहाँ रात-दिन डॉक्टर बैठता है। जरूरी दवा फौरन मँगाकर देता है। फिर मेडिकल कॉलेज का अस्पताल है आपके लिए, यूनानी शफाखाना भी है। आपमें से आखिर कितनों को कौन-से कठिन रोग हो जाते हैं कि इलाज में 32 लाख रुपए लग जाते हैं। विधानसभा में जब अविश्वास का प्रस्ताव होता है, तब आप सब लोग वहाँ पहलवानों की तरह स्वस्थ दिखते हैं, फिर आप सख्त बीमार कब पड़ जाते हैं कि 32 लाख खर्च करना पड़ता है?

मैं बहुत चिंतित था, तो मैंने उन डॉक्टरों से पूछा जो वहाँ आपकी सेवा में तैनात रहते हैं। उन्होंने बताया। यह बताने के पहले मैं आपको एक बात बता दूँ। मैं रूस यात्रा करके लौटा तो एक जगह मेरा भाषण था। मैंने बताया कि रूस में 3-4 शहरों में डबलरोटी खरीदनी नहीं पड़ती। लोग स्टोर जाकर जरूरत की रोटी सुबह और शाम बिना दाम के ले आते हैं। मेरे भाषण के बाद दो विधायकों ने मुझसे पूछा—क्यों साहब, कोई कितनी भी रोटी मुफ्त ला सकता है! मैंने कहा—हाँ, ला सकता है। पर जरूरत की ही लाएगा। सुबह फिर ताजा रोटी मिल जाएगी। अगर टोकरी भरकर कोई ले आए तो रोटी खराब हो जाएगी। विधायकों का यह आशय था कि अगर कोई चीज मुफ्त मिल रही है, तो फिर टोकरी या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोरे में भरकर ले जाना चाहिए। यह घटना आपकी मानसिकता और मुख्य चेतना बताने के लिए मैंने बयान की।

अब सुनिए। डॉक्टरों ने बताया कि बीमार बहुत कम विधायक पड़ते हैं। मामूली-सा बुखार होता है, जिसकी मामूली दवा हम देते हैं। फिर ये 32 लाख किस तरह खर्च होते हैं?

डॉक्टरों ने कहा—हमारी नाक में दम है। काफी विधायक हैं जो हर 3-4 दिनों में आकर कहते हैं—कमजोरी लग रही है, ताकत की दवाई की शीशी, प्रोटीन का डिब्बा और थ्रेपटिन बिस्किट का डिब्बा दे दीजिए। 3-4 दिन बाद आकर फिर ताकत की दवा की शीशी, प्रोटीन का डिब्बा और थ्रेपटिन बिस्किट का डिब्बा ले जाते हैं। इतना सब 3-4 दिन में कोई खा ले, तो मर जाए। जिन्हें कोई बीमारी नहीं वे भी ये चीजें ले जाते हैं। उधर यूनानी दवाखाने का हकीम रोता है कि विधायकों के लिए याकूती (ताकत की) दवा बनाते-बनाते परेशान है। इतनी दवा से तो एक-चौथाई शहर की मर्दानगी लौट आए।

मैंने डॉक्टरों से पूछा—ये इन दवाओं का क्या करते हैं? डॉक्टरों ने कहा—घर भेज देते हैं। दोस्तों में बाँट देते हैं और क्या होता है। इस अखबार में पढ़ लीजिए। अखबार में समाचार था कि विधायकों के नाम निकाली गई दवाएँ शहर की कुछ खास दूकानों में बेची जाती हैं।

श्रद्धेय, आप हमारे लिए आचरण-संहिता बनाते हैं, मुझे आपसे कुछ नहीं कहना है। मुझे सिर्फ आपके स्वास्थ्य की चिंता है। चाहे 32 करोड़ खर्च हों, आप स्वस्थ, संपन्न, खुश रहें।

आपका एक श्रद्धालु
भारतीय करदाता
नागरिक

दस्यु सुंदरी और कोयला सुंदरी *

'दस्यु सुंदरी' विशेषण से अखबारों में प्रचारित फूलन से जो लोग ऊब गए हैं, उनके लिए मेरे पास एक नया आकर्षण है। 'दस्यु सुंदरी' जिसे कहा जाता है, वह फूलन कुरूप है। गँवार है। बदजबान है। भेड़ियों की मादा है। वह सुंदरी कतई नहीं है। मैंने उसके 100 फोटो तो देखे होंगे। वह कुरूप है, घृणास्पद है। एक पत्रकार ने लिखा है—जो उसके शरीर की बदबू बरदाश्त कर सके, वह उसके साथ सो सकता है, बशर्ते वह मर्द दूसरे इच्छुकों को गोली मारने की हिम्मत रखता हो। अगर वह आकर्षक है, तो पुलिस अफसर भी उसे

*करंट, 23 अप्रैल, 1983

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुगंधित साबुन से नहलाकर उसके साथ सो सकता है। गाँव की लड़की, गँवार बूढ़े से ब्याही, परिवार में चचेरे भाई की हत्या करने को तैयार। इलाके में हिंसा, कोई भी किसी को मार डाले। जिसमें लाठी और बंदूक का दम हो वही उस लड़की से बलात्कार कर ले, पुलिस शक में उसे बंद कर ले, छूटने पर डाकू उठा ले जाएँ। जिस डाकू में दम हो, वह उसी की रखैल हो जाय। औरत साथ होने से डाकू गिरोह रूमानी हो जाता है। जवान औरत बंदूक चलाती है, डाकू गिरोह के साथ है, तो वह पत्रकारों के लिए 'दस्यु सुंदरी' हो जाय। फिर वह समर्पण करे, तो खासा नाटक हो और वह मेनका, रंभा, उर्वशी हो जाय। पत्रकार ने पूछा—तुम 7-8 दिनों से कहाँ छिपी थीं। सुंदरी के मधुर मोहक स्वर निकले—तेरी माँ की—में!

गुटनिरपेक्ष सम्मेलन को अखबारों में कम जगह दी गई, फूलन को ज्यादा जगह मिली। पाठक इस देश का महामूर्ख मान लिया गया है। उसे विश्वशांति से बड़ी फूलन लगती है। फिदेल कास्त्रो जैसा क्रांतिकारी 'हीरो' फूलन से एक बटा दस प्रचार पा रहा था।

यह मूल्यगत चेतना है। अपराधप्रियता है। मादा के प्रति जंगली प्रवृत्ति है। हल्की मानसिकता है। श्लथ, कर्मशील, जीवन की उत्तेजना की माँग है। क्रांतिकर्म न कर पाने की कायरता के इलाज के लिए फूलन ताकत की गोली है। आदिम हिंसा के प्रति आकर्षण है। समाज को न बदल पाने की नपुंसकता को इस हत्यारी औरत के बहाने छिपाया जा रहा है। शर्म पूरी चली गई होती, तो फूलन को 'जान ऑव आर्क' बना देते। शोषित वर्ग में पैदा हुई एक अभागिन दयनीय लड़की बदमाशों के चक्कर में पड़ते-पड़ते डाकुओं द्वारा उड़ा दी गई। मजबूरी में उसने बंदूक ली, क्रूर हुई, अपराध करने लगी। आत्मरक्षा के लिए उसे जरूरी था कि वह इस या उस डाकू के साथ सोए, हत्या करे, आतंक फैलाए मगर वह 'दस्यु सुंदरी' हो गई। रूमानी हो गई। जिस जाति में बच्चे की बलि को धर्म-साधना माना जाय, विधवा को पति की चिता में डाल देना नैतिकता माना जाय, जिस धर्म में ऐसी कथा हो कि मोरध्वज और उसकी पत्नी भगवान को खुश करने के लिए बेटे को आरी से चीरते हैं, जिस देश में मनु महाराज विधान देते हैं कि यदि द्विज शूद्र को मार डाले तो वह उतना ही प्रायश्चित्त करे, जितना सुअर या कुत्ते को मारने पर—उस जाति की संवेदना, मूल्यचेतना, मानव-गरिमा की भावना, अध्यात्म चेतना को फूल चढ़ाए जाएँ या उस पर थूका जाय।

बहरहाल, जो फूलन से ऊब गए हैं, उनके लिए मेरे पास दूसरा मसाला है। यह दस्यु सुंदरी नहीं, 'कोयला सुंदरी' है। 'कोयला सुंदरी' का मतलब यह नहीं कि काली है। वह गोरी और वास्तविक सुंदरी भी हो सकती है। जो अखबार आज का मेरे सामने है, उसमें वह 'ठग सुंदरी' बताई गई है। वह रिपोर्ट के अनुसार मध्यवर्गीय है। इसलिए उसमें रूमानी और चमत्कार की ज्यादा संभावना है। उसका नाम नीतू है। याद करो—नीतूसिंह एक सुंदर अभिनेत्री है, जो फिलहाल पर्दे पर नहीं, पर्दे में है। वह नीतू देवी अपने तथाकथित पति के साथ मेरे पास के नगर कटनी में कोयले की ठगी कर रही थी। अपने को राजस्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बहुत बड़े कोयला व्यवसायी बताकर वे कटनी में कोयला व्यापारियों से पेशगी लेकर ऑर्डर बुक कर रहे थे। सुंदरी नीतू ने कुछ धंधे से और कुछ रूप से एक व्यापारी से 30 हजार का ड्राफ्ट ले लिया और उसे भुना भी लिया। वे लोग कटनी से लगभग 150 किलोमीटर दूर इमलई में पकड़ लिए गए। 'कोयला सुंदरी' इन लाइनों के लिखने तक जेल में है।

जमानतें होती होंगी। मगर इस ठगनी 'कोयला सुंदरी' को छोड़ना नहीं चाहिए। इसमें अनंत संभावनाएँ हैं। यह मध्यवर्गीय मालूम होती है। अपराधी जीवन में प्रवेश कर गई, तो यह बदबूवाली सुंदरी नहीं रहेगी, इसका स्टैंडर्ड रहेगा। हो सकता है, आगे यह हाथ में पिस्तौल ले ले। इसे छोड़ना नहीं चाहिए। पुलिस 'स्टोरी' बनाए, पत्रकार-लेखक उसे रूमानी करें, अतिशयोक्ति से ज्यादा उत्तेजक बनाएँ और छपने दें इसके वास्तविक और कल्पित किस्से। गलती इस 'कोयला सुंदरी' ने यह की कि गिरफ्तार हो गई। इसे 'सरेंडर' करना था मध्ययुगीन राजकीय शान से। मगर इसे 'सरेंडर'-प्रवीण पेशेवर एजेंट नहीं मिले, वरना वक्त लेकर गिरे हुए भारतीय मन को उछालती, अखबारों का सर्क्युलेशन बढ़ाती, कुछ को वीर और कुछ को कूटनीतिज्ञ बनाती। खैर, संभावना अभी भी है। जो व्यवस्था कुलवधू को त्रास दे-देकर रंडी के कोठे पर बिठा सकती है, वह मध्यवर्गीय ठगनी को दुर्दांत दस्युनेत्री भी बना सकती है।

हमारी महान् जाति दो स्थितियों में जी रही है—एक तो इसका स्नायु-तंत्र ढीला हो गया है, सो इसे दस्यु सुंदरी-कथाओं जैसा उत्तेजक रस चाहिए। या इसे कोई चिंता अपनी और अपने देश की नहीं है, घी से तर माल खाकर यह जाति लेटी है, पेट पर हाथ फेरती है। इसे मन-बहलाव के लिए—'टरम-पम-पम' जैसे संगीत-रिकार्ड चाहिए। सब चैन है। असम में चैन, पंजाब में चैन। बजट ने स्वर्गसुख ला दिया। कोई संघर्ष नहीं। व्यवस्था-परिवर्तन की कोई जरूरत नहीं। इस देश का कवि बेरुत-हत्याकांड पर कविता लिखता है, निकारागुआ पर कविता लिखता है। वह अंतर्राष्ट्रीय संवेदना रखता है। वह उस बच्चे की तरह है, जिसे माँ सूट-टाई पहना देती है और बाप सिखा देता है—'माई नेम इज रोनाल्ड रीगन आई लिव्ह इन व्हाइट हाउस!' तुतलाते हुए बोलता है, मगर है अंतर्राष्ट्रीय बोधवाला।

भारतीय कवि भारत के एक प्रदेश असम के नेल्ली में हुए हत्याकांड पर कविता नहीं लिखता। नेल्ली हत्याकांड बेरुत के हत्याकांड से अधिक जघन्य है। बेरुत में हत्याकांड युद्ध की स्थिति में हुआ था। असम में दो कौमों में युद्ध नहीं चल रहा है, मगर किसी भारतीय कवि को नेल्ली हत्याकांड ने उद्वेलित नहीं किया। भारतीय कवि अपने स्वार्थ और दूसरे के नुकसान को साधने में काइयाँ है मगर बाकी मामलों में निपट बोदा है, भौंदू है। वह सांप्रदायिक और संकीर्ण भी है। नेल्ली हत्याकांड इस सांप्रदायिक कवि-चेतना को सुख ही देता है। आखिर वह जाहिल है और राजनैतिक शक्तियों को भी नहीं समझता। जिन बड़े नेताओं और पार्टियों ने यह कराया, उन्हें वह नहीं जानता। जानता है तो उन्हें धिक्कारते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए डरता है। बेरुत हत्याकांड पर लिखेगा क्योंकि कोई यहूदी उसे इस्राइल से मारने नहीं आएगा। नेल्ली हत्याकांड पर लिखेगा तो आसपास के ही संगठित उन्मादी पीट देंगे। इसलिए पप्पू, भारतीय कवि बेटा, चुप ही रहो और टाफी चूसो। लिखना होगा तो ऐलेन ग्रिन्सबर्ग लिख देगा।

बात मैं कर रहा था दस्यु सुंदरी के प्रचार की और 'कोयला सुंदरी' की संभावनाओं का यह सब जो प्रचार हो रहा है, यह बलात्कार है। बलात्कार कई रूपों में होता है। हम सिर्फ उसे बलात्कार मानते हैं जिसे छुरा दिखाकर किया जाता है और बाद में हत्या कर दी जाती है या उसे बलात्कार मानते हैं, जिसकी रिपोर्ट पुलिस में होती है। मगर ऐसे बलात्कार असंख्य होते हैं, जिनमें न छुरा दिखाया जाता है, न गला घोंटा जाता, न पुलिस में रिपोर्ट होती है।

एक प्रोफेसर हैं, जो यह डर दिखाकर कि तूने मेरी बात नहीं मानी, तो तुझे क्लास वन नहीं लेने दूँगा या तुझे पी-एच.डी. नहीं मिलने दूँगा—इस धमकी से लड़कियों को संभोग के लिए मजबूर करते हैं। वे बलात्कार करते हैं। ऐसों को लोग जानते भी हैं। इस बलात्कार की सजा भी कठोर कारावास होना चाहिए। ऐसे प्रोफेसर हैं जो महत्वाकांक्षिणी छात्राओं से मालिश करवाते हैं—धमकी से। ऐसे अफसर हैं, जो प्रमोशन रोकने या सस्पैंड करने, या इंक्रीमेंट रोकने की धमकी देकर विभाग की छोटी नौकरीवाली स्त्रियों को हम-बिस्तर होने को मजबूर करते हैं। यह भी बलात्कार है। इसकी सजा भी 6 साल का कठोर कारावास है—या विश्वविद्यालय अथवा दफ्तरों के अहाते में इन बलात्कारियों को नंगा करके इनके कूल्हों की जूतों से मालिश होनी चाहिए। ये अधिक हिंसक बलात्कारी होते हैं।

पूछा जाएगा—ये स्त्रियाँ राजी क्यों होती हैं? मेरा जवाब है—राजी नहीं, मजबूर होती हैं घृणित वनमानुष के साथ सोने को। मगर मेरा प्रतिप्रश्न है—ऋषि विश्वामित्र ने कुत्ते को मारकर उसका मांस क्यों खाया था? जवाब मिलेगा—आपद्धर्म! जी हाँ, यही आपद्धर्म!

खैर छोड़िए, उस कोयला सुंदरी के पीछे पड़िए या कोई नई दस्यु सुंदरी खोजिए। देश में अमन-चैन है। मसालेदार पान चबा रहे हैं। पेट पर हाथ फेर रहे हैं। नींद आने में देर है, कोई उत्तेजक चीज चाहिए।

क्रांति और भ्रांति*

प्रिय चंद्रशेखरजी,

आपकी पदयात्रा समाप्त हो गई होगी। आपका स्वास्थ्य भी ठीक होगा। मधु दंडवते ने आपको लगभग दूसरा महात्मा गांधी ही कह दिया। पैदल चलने से इस देश में राजनेता

*करंट, 14 मई, 1983

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा गांधी या विनोबा भावे होता है। आपको इसी वक्त पदयात्रा करके महात्मा गांधी बन जाना जरूरी था, क्योंकि जल्दी ही फिर 'फ्रंट', 'एलायंस', 'मर्जर' जैसा कुछ बननेवाला है। उसका नेतृत्व जनता पार्टी करे या जनता पार्टी में बाकी दल विलीन हो जाएँ, ऐसा इंतजाम करना है। इसके लिए आपको, जनता पार्टी अध्यक्ष को महात्मा गांधी बन जाना बहुत जरूरी था। पदयात्रा न अटलबिहारी ने की, न चरणसिंह ने, न जगजीवनराम ने, तो ये कोई महात्मा गांधी नहीं हुए। आपकी ही पार्टी में एक बिना पैदल चले जूनियर महात्मा गांधी मोरारजी जरूर बैठे हैं। मगर अध्यक्ष आप हैं, तो भावी प्रधानमंत्री की लिस्ट में आपका नंबर पहला हो गया। अटलबिहारी भी आगामी प्रधानमंत्रियों की लिस्ट में हैं, पर उन्होंने पदयात्रा नहीं की, क्योंकि वे इस दुविधा में हैं कि गांधी बनें या गोलवलकर। वे गांधी बनने लगते हैं कि उनकी पार्टी के मालिक संघवाले कहते हैं—खबरदार, गांधी मत बनना। दूसरे, 'परमपूज्य' भी हमारे यहाँ होंगे नहीं, इसलिए दाढ़ी बढ़ाकर 'परमपूज्य' बनने की कोशिश भी मत करना। लगाम तेरे मुँह में है। आँखों के आसपास के पट्टे हमने निकाल लिए हैं और तू आसपास देख सकता है। मगर लगाम की रस्सी हमारे हाथ में है, तू इधर-उधर बहक नहीं सकता। हम तुझे अपने गिरोह की तरफ से आगामी प्रधानमंत्री घोषित करते हैं।

चंद्रशेखरजी, अटलबिहारी पिछड़ गए हैं। राजीव गांधी ने जरूर थोड़ी पदयात्रा की है, पर वे अभी कांग्रेस के स्वयंसेवक हैं। गांधी उपनाम जरूर है, पर वे महात्मा गांधी हो नहीं सकते। वे बेकारी की समस्या से पीड़ित एक्स-पाइलट हैं। अगर वे आगामी प्रधानमंत्री हैं भी, तो कांग्रेस (इ) के हैं। मगर उनके पीछे उनके छोटे भाई की विधवा पड़ी है। अभी वह अमेठी में राजीव का विकल्प है। जीत गई तो इंदिरा गांधी का विकल्प हो जाएगी। आप अगर अपनी लेनिन-दाढ़ी की क्रांतिकारिता से उस सुंदरी को अपनी पार्टी में ला सकें तो अच्छा रहेगा। एकाध सुंदरी युवती पतिव्रता पार्टी के लिए ताकत होती है। तारकेश्वरी बूढ़ी और तेजहीन हो चुकी हैं। वे काम की रही नहीं। बूढ़े रँडुए मोरारजी को संतुलित करने के लिए युवती सुंदरी पार्टी में चाहिए। मेनका कह देंगी—देखो विश्वामित्र, तुम अपने को आगामी प्रधानमंत्री के रूप में पेश नहीं करोगे, तो मोरारजी मान जाएँगे और आपका रास्ता साफ हो जाएगा।

चंद्रशेखरजी, आप समाजवादी हैं, आचार्य नरेंद्रदेव के चेले हैं। आप कांग्रेस में युवातुर्क रहे हैं, विपक्ष के दूसरे नेताओं से आपकी छवि अच्छी है। कोई खास कलंक-कथा आपके बारे में प्रचलित नहीं है। यों छोटी-मोटी बातें छोड़िए। ऐसी बातें तो लोग अटलबिहारी वाजपेयी के बारे में भी कहते हैं। 1975 से 1979 तक नानाजी देशमुख ने आपका जितना 'आत्मोत्थान' कर दिया था, उतना ही है। अच्छा होता कि पदयात्रा में नानाजी को भी साथ ले जाते। इस देश को दूसरे विनोबा की भी तो जरूरत है। पवनार आश्रम में बाबा का पद 'वेकेंट' पड़ा है और दान-अनुदान आते जा रहे हैं। पवनार आश्रम के व्यवस्थापक अखबारों में विज्ञापन तो छपा नहीं सकते—'वांटेड ए सर्वोदयी बाबा टू फिल दी वेकेंसी काज्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाई विनोबा भावे।' नानाजी पदयात्रा करके सीधे पवनार आश्रम में दाढ़ी बढ़ाकर 'पी कैप' लगाकर विनोबा की कुटी में स्थापित हो सकते थे। देर हुई तो इंदिरा गांधी कहीं वहाँ अपना बाबा या साध्वी न बिठा दें।

खैर छोड़िए नानाजी को। मैं आपको एक गंभीर, चिंतित आदमी मानता हूँ। पदयात्रा में आप जो-जो कहते रहे हैं, मैं उस पर ध्यान देता रहा हूँ। आपने कहा कि इस देश की जनता सोई है, उसे जगाना है। कौन जगाएगा? क्या नेता जागे हुए हैं? क्या चरणसिंह और मोरारजी भाई को आप जागे हुए नेता मानते हैं? ये तो अठारहवीं शताब्दी में सो गए थे और अभी तक जागे नहीं हैं। क्या आप अटलबिहारी और लालकृष्ण आडवाणी को जागा हुआ मानते हैं? ये तो और पहले, पंद्रहवीं शताब्दी में सो गए थे और तब से जागे नहीं। और उनके सिपहसालार बालासाहब देवरस तो पौराणिक काल से सोए हैं और अभी भी सो रहे हैं। ये कैसे जनता को जगाएँगे? इनका भला तो जनता के भी सोए रहने में है। जनता अगर जाग गई, तो वह इन्हें डंडे मारेगी कि तुमने हमें ठीक वक्त पर क्यों नहीं जगाया? जाग्रत नेता तो मुझे जगजीवनराम ही लगते हैं, जिन्होंने घोषणा की थी कि मेरा 'वैज्ञानिक समाजवाद' में विश्वास है और बाद में जनसंघ के भावी प्रधानमंत्री के रूप में चुनाव लड़ लिया था।

आप दुखी हैं—भ्रष्टाचार, बेईमानी से; आप दुखी हैं जनता के त्रास से, शोषण से; आप चिंतित हैं—गरीब और अमीर के बीच की खाई से। आप चाहते हैं कि परिवर्तन हो। आपकी चिंता है कि शांति व सहानुभूति से यदि परिवर्तन नहीं हुआ, तो हिंसक क्रांति होगी।

चंद्रशेखरजी, इस देश में यह रस्म पड़ गई है कि जो क्रांति की जितनी ज्यादा बात करता है, वह उतने ही जोर से वास्तविक क्रांति को रोकना चाहता है। विनोबा ने भूदान से 'क्रांति' की घोषणा की, पर उनका उद्देश्य वास्तविक 'भू-क्रांति' रोकना था। जयप्रकाश ने तो क्रांति ही नहीं, 'संपूर्ण क्रांति' की घोषणा की थी। यह क्रांति हुई और जनता पार्टी की क्रांतिकारी सरकार बनी। ढाई साल के जनता पार्टी शासन में जो हुआ, नेताओं ने जो किया, उसे जनता ने भोगा है। अगर 1977 वाली ही 'क्रांति' वास्तविक क्रांति थी, तो आपका पढ़ना-लिखना सब बेकार गया। अनुभव बेकार गए। राजनीति और इतिहास का बोध बेकार गया। यह 'भ्रांति' थी, 'क्रांति' नहीं थी। वह एक सर्कस था, जिसमें चीता, शेर, भालू, लकड़बग्घा पिंजड़े से निकाल दिए गए थे।

क्रांति की परिस्थितियाँ होती हैं, तो क्रांतिकारी संगठन बनता है। तब संगठित क्रांतिकारी संघर्ष होता है और वास्तविक क्रांति होती है। मगर क्रांतिकारी परिस्थितियाँ कौन नहीं बनने दे रहे हैं? वास्तविक क्रांतिकारी संगठन कौन नहीं बनने दे रहे हैं? जवाब है—आप लोग। आप लोग, यानी 'क्रांति' को स्कूली बच्चे के पहाड़े की तरह रटनेवाले लोग—आप, जार्ज फर्नांडिस, लिमये, राजनारायण, कर्पूरी ठाकुर, मधु दंडवते वगैरह। आप लोगों ने 'क्रांति-क्रांति' चिल्लाते हुए अनाथ बच्चे की तरह अपने को बुर्जुआ राजनीति की गोद में डाल दिया है। यह बुर्जुआ राजनीति पूतना है, जिसने दूध पिलाकर आप लोगों के भीतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की क्रांतिकारिता को मार डाला है। कोई क्रांतिकारी संगठित शक्ति इस देश में फिलहाल नहीं है। जिस 'क्रांति' की आशंका आप कर रहे हैं, वह उपद्रव, हिंसा, अराजकता होगी—बिखरी हुई। अगर आप सरकार का बदलना क्रांति समझते हैं, तो आपको मुबारक! फिर 1977 जैसे इकट्ठे हो जाइए और बदल दीजिए दिल्ली में सरकार। यह सरकार गरीब और अमीर के बीच की खाई पाट देगी, जैसी पहले पाट चुकी है। पाट देगी न?

आप समाजवादी हैं। आचार्य नरेंद्रदेव के चेले हैं। आचार्यजी का विश्वास मार्क्सवाद में था, यह आप जानते ही होंगे। तो मेरे प्यारे समाजवादी, तुमने और तुम्हारे समाजवादी साथियों ने क्यों नहीं एक संयुक्त वामपंथी मोर्चा बनाया? जो बदलाव तुम्हारी कल्पना में है, वह समाजवाद का बदलाव है—पूरा बदलाव। मगर इसके लिए साथ तुम किनका चाहते हो? उनका, जो बदलाव के विरुद्ध हैं। सामंती पूँजीवादी ताकतों की मदद से तुम समाजवाद लाना चाहते हो। अभी तुमने फिर पुकार लगाई है अटलबिहारी को—आकर मिल जाओ, मगर संघ को छोड़कर आना। भारतीय जनता पार्टी 'संघ' का राजनीतिक मोर्चा है, यह तुम जानते हो, तो अटलबिहारी वगैरह संघ को छोड़कर कैसे आएँगे। आप पत्तों से कहते हो कि पेड़ छोड़कर, सूखकर आ जाओ। अगर वे कहें भी कि हमने संघ छोड़ दिया, तो क्या तुम विश्वास कर लोगे? अगर विश्वास कर लोगे, तो तुम पार्टी अध्यक्ष के लायक नहीं, किंडरगार्टन के लायक हो। वे नहीं छोड़ेंगे और उनका धर्म तथा सांप्रदायिकता के मार्फत चुनाव-प्रचार भी चालू हो गया है।

चरणसिंह को भी तुम बुलाते हो। वे क्या समाजवाद आने देंगे। 1954 में नागपुर कांग्रेस में चरणसिंह ने सहकारी खेती का विरोध किया था, कहा था कि यह तो साम्यवाद है। वे तो जमींदारी और ताल्लुकेदारी लौटाना चाहते हैं और तुम गरीब तथा अमीर के बीच की खाई पाटना चाहते हो उन्हीं की मदद से?

बहरहाल, मेरे समाजवादी दोस्त, बना लो एक अति बुर्जुआ संयुक्त मोर्चा और उससे समाजवादी क्रांति करा दो। प्रधानमंत्री बन ही जाओ। मोरारजी आड़े नहीं आएँगे। उन्होंने एक पत्रकार-वार्ता में कहा था कि मेरी महत्वाकांक्षा सत्य और ईश्वर के पाने की है, सत्य वे पा चुके। असत्य के सफल प्रयोग को सत्य कहते हैं, यह उन्होंने जान लिया। रहा ईश्वर, तो ईश्वर के बाद मोरारजी अपने को मानते हैं। भक्तों के कर्मों से जिस दिन ईश्वर का हार्टफेल हुआ, उसी दिन मोरारजी 'प्रोमोट' होकर ईश्वर हो जाएँगे।

भूत के पाँव पीछे

पेंशन और पुरानी यादों पर गुजर करनेवाले एक वृद्ध रिटायर्ड सज्जन के पड़ोस में रहता था। पड़ोसी से नमस्कार और श्वेत केशों का सम्मान—शिष्टाचार के इन दो तत्त्वों के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे इनके पास घंटों बैठना पड़ता। मैं वहाँ से निकलता तो 'नमस्कार' करता, नमस्कार करते ही बुला लिया जाता; बुलाकर बिठा लिया जाता और बिठाकर उनके बीते समय की गाथाओं का श्रोता बनाया जाता। मैं उनकी आत्मकथा सुनता और फिर शहर में कहीं अन्यत्र मकान ढूँढ़ने निकलता। बड़ी दूर से वे शुरू करते—'परसाईजी, सन् 1922 की बात है। तब मैं लखनऊ में था⋯' मैं तीन वर्ष तक उनकी कथा का श्रोता रहा और तब तक वे 1921 से 1925 तक आ पाए थे।

अद्‌भुत स्मरण-शक्ति थी उनकी! किस सन् में कहाँ थे और उनका खर्च कितना था, सब उन्हें याद था। कुछ यों चलते थे—'मैं यहीं जबलपुर में रहता था, गुरु के तिकड्डे पर। मुझे तब पचहत्तर रुपए मिलते थे। मगर क्या सस्ता जमाना था! अब मेरे ही यहाँ चार आदमी थे। और खर्च! यही समझ लो दस रुपए का अनाज, पाँच रुपया मकान-किराया, डेढ़ रुपए का घी—घी उस वक्त आठ आने सेर मिलता था, डेढ़ रुपए का घी हुआ और एक रुपया नाई-धोबी का, एक रुपए में तेल-साबुन और डेढ़ रुपया फुटकर खर्च। जोड़ो कितने हुए?'

वे मेरी ओर 'टोटल' के लिए देखते। मैं क्या खाक टोटल करता? मैं तो मुश्किल से सुनता था। वे ही जोड़ करते—'दस और पाँच—पंद्रह, पंद्रह और डेढ़—साढ़े-सोलह, साढ़े-सोलह और एक—साढ़े-सत्रह और एक और ढाई—तो कुल बीस हुए। और तुम नहीं मानते तो पाँच और सही। बस पच्चीस से एक कौड़ी ज्यादा नहीं; तुम बुरा मानो चाहे भला! पूरे पचास रुपए हर महीने बचते थे।'

ऐसा उल्लास उनके मुख पर आता, मानो अनायास कहीं से पचास रुपए उनकी मुट्ठी में आ गए हों। फिर मेरे कान के पास मुँह लाकर बड़े विश्वास से कहते—'हर दो महीने में बच्चे की माँ के लिए एक जेवर बनवाता था।' ऐसे मुग्धनयन हो जाते मानो अपनी नवपरिणीता को प्रेम से अँगूठी पहना रह हों।

एक दूसरे रिटायर्ड सज्जन का अल्प साथ रहा। वे अंग्रेज अफसरों के किस्से सुनाया करते थे। ग्रीनफील्ड और बटलर साहब की मातहती में वे रहे थे और उनकी कृपा जीवन का आधार बन गई थी। अक्सर सुनता था—'ग्रीनफील्ड साहब मेरे ड्राफ्टिंग से बड़े खुश थे। मेरे ड्राफ्ट पर आँख मूँदकर दस्तखत कर देते थे।'

हम तरुण इस रस को नहीं समझ सकते। यह शौक नहीं है, मजबूरी है। जीवन बहुतों को इस अवस्था में मजबूरी हो जाता है। जीने का अर्थ करना होता है। पर वे करें क्या? हिंदुस्तान में इतनी मक्खियाँ भी नहीं हैं कि सब वृद्ध उन्हें मारते-मारते शेष जीवन गुजार दें। हाँ, कुछ को मैंने एक काम और करते देखा है—'बेटा-बहू' से आठों पहर लड़ने का। इससे बड़ी चहल-पहल में दिन कट जाते हैं। आखिर इन्हें जीना तो है। वे कहाँ जिएँ? वर्तमान—जिसमें आशा-उत्साह नहीं, महत्वाकांक्षा नहीं, बल नहीं, सामर्थ्य नहीं—उन्हें बड़ा भयावना लगता है। वे भूत में भाग जाते हैं। भूत का कंबल ओढ़कर ये वर्तमान की ठिठुरन से बचते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये सहानुभूति के अधिकारी हैं। पर एक और प्रकार के अधिकारी होते हैं जिनकी हर बात 'हमारे जमाने में' से शुरू होती है। ये वर्तमान के सब कुछ को बड़ी हिकारत से देखते हैं और विगत के सब कुछ को श्रेष्ठ समझते हैं। कुछ इस तरह बातें होती हैं इनकी—'आजकल की लड़कियाँ मुँह उघाड़े सड़कों पर घूमती-फिरती हैं, हमारे जमाने में घर से बाहर पैर रखने की मजाल नहीं थी।...आजकल के मास्टर तो बस! हमारे जमाने में मास्टर को देखता तो लड़का पेशाब कर देता था...आजकल का कपड़ा तो एकदम रद्दी होता है; हमारे जमाने में एक कपड़ा तीन पीढ़ियाँ पहनती थीं।'

ऐसे लोग 'भूत' होते हैं। भूत के पाँव पीछे होते हैं, ऐसा कहा जाता है। कुछ लोगों के दिमाग के पाँव पीछे होते हैं—ये मानसिक भूत हुए। इनके लिए जो बीत गया, वह परम श्रेष्ठ होता है, वर्तमान अत्यंत हेय और उनकी यह कृपा है कि वर्तमान में जीकर वे उसे गौरवान्वित कर रहे हैं। ऐसे एक 'भूत' एक दिन 'हमारे जमाने' के कपड़े, फर्नीचर, मास्टर, प्रोफेसर, बैल और कुत्ता आदि की तारीफ कर रहे थे। बातें भेड़ाघाट के जलप्रपात पर होने लगीं। मैंने कहा, ''लगभग पचास फीट ऊपर से पानी गिरता है।'' वे फौरन बोले, ''अरे, अब क्या रखा है भेड़ाघाट में। हमारे जमाने में सौ फीट ऊपर से गिरता था।'' उनका जमाना कोई प्रागैतिहासिक काल नहीं था, हमसे 20-25 साल बड़े होंगे।

कुछ लोगों के सिर पर जातीय 'भूत' सवार रहता है। वे इस बात को कहते हुए नहीं थकते कि हम प्राचीन ऋषियों के वंशज हैं। हम आर्यों की संतान हैं। इनके कुछ बने-बनाए फिकरे होते हैं—'प्राचीन काल में दूध-दही की नदियाँ बहती थीं (शायद क्षीर-सागर में गिरती होंगी!), यह आर्यों की भूमि है, तपोभूमि है...आठों पहर सामगान होता था—हरिश्चंद्र ने सत्य के लिए सब कुछ दे दिया...राम-से राजा, सीता-सी नारी, भरत-सा भाई, भीष्म-से वीर...।' यह सब गर्व का कारण हो सकता है, इसमें हमें कोई एतराज नहीं। पर यह भूत बनकर सिर पर सवार हो, तब तर्क का तंत्र-मंत्र फूँककर भूत उतारना पड़ेगा। इनसे अगर कहें कि उस युग में आदमी स्त्री तक को जुए के दाँव पर लगा देता था, एक धोबी के कहने से ही पत्नी को त्याग देता था तो वे कहनेवाले को पापी और जाति-द्रोही करार दे देंगे। एक 'भूत' से मैंने एक दिन कहा, ''राम ने तपस्या करनेवाले शूद्र का मस्तक काट लिया। बेचारे शूद्र उस युग में कितने पद-दलित हो गए थे! कैसा अन्याय था!'' तो मुझे जवाब मिला, ''अब तो यह खराब जमाना आ गया है, वरना ऐसा कहनेवाले का भी शिरच्छेद हो जाता।''

एक दिन चौराहे पर व्यावसायिक कथा-वाचक कथा के बीच में प्रसंग निकालकर प्राचीन काल की 'असूर्यम्पश्या' नारियों की प्रशंसा और वर्तमान शिक्षिता नारियों की निंदा कर रहे थे—'सूरज की किरण जीवन-भर नहीं मिलती थी उन्हें, पति के सिवा किसी अन्य पुरुष का जीवन में मुँह नहीं देखती थीं। घर से बाहर नहीं जाती थीं—इतनी लज्जाशील होती थीं। और अब मुँह खोले घूमती हैं, कालेज जाती हैं, सिनेमा जाती हैं। लाज-सरम सब गई।' इसी समय एक 17-18 साल की लड़की सड़क पर से साइकिल पर निकली। सड़क पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग जमा देखे, तो घंटी बजाती हुई चिल्लाई—'ऐ, ए हटो रास्ता दो। हटो, हटो।' भीड़ में हलचल हुई, रास्ता बना और लोगों के तितर-बितर होने से कथा थोड़ी देर रुक गई। मुझे लगा, जैसे हमारे रास्ते को रोके हुए भूत को वर्तमान ललकारकर कह रहा है—'ऐ हटो! रास्ता दो।'

हर युग के भूत से वर्तमान की कुश्ती हुई है। कालिदास की अवहेलना जब केवल उनकी नवीनता के कारण होने लगी, तो उन्हें ललकारना पड़ा कि जो पुराना है वही श्रेष्ठ नहीं है।

प्राचीन के गीत और प्राचीन की पूजा जाति को आवश्यक है, पर इससे शक्ति और प्रेरणा मिले तो ठीक है। पर कुछ लोग वर्तमान के सूर्य के प्रकाश में काम नहीं करना चाहते; भूत की चादर ओढ़ टाँगें फैलाकर सो जाते हैं। बौना आखिर अपने पूर्वज की छः फुटी तस्वीर कब तक दिखाता फिरेगा और इससे उसका कद कैसे बढ़ेगा?

एक दिन मैंने देखा कि एक तगड़ा लड़का सड़क पर से अपने बरामदे में खड़े दूसरे लड़के को ललकार रहा था—'हिम्मत हो तो बाहर आकर लड़ ले।' और वह दूसरा लड़का वहीं बरामदे में से उसे मुँह चिढ़ा रहा था। भूत के गीत गानेवाले और वर्तमान में अकर्मण्य रहनेवाले मुझे उस बरामदेवाले लड़के की तरह लगते हैं—बाहर मैदान में ताल ठोंकते हुए वर्तमान से भिड़ने की इनमें हिम्मत नहीं होती; ये भूत के बरामदे में से उसे मुँह चिढ़ाते हैं।

कबीर और श्रोता

कबीरदास के पदों में जब इस पंक्ति पर आता तो मेरे मन में बड़ी लुभावनी, बड़ी मधुर कल्पना उठती। 'कहत कबीर सुनो भाई साधु!' कबीरदास चबूतरे पर बैठे हैं, सामने साधु-मंडली है। कबीर अपना नया पद सुना रहे हैं और साधुगण भाव-विभोर, गद्‌गद, झूमते दाद दे रहे हैं—'वाह! वाह! क्या बात है कबीरजी! कमाल कर दिया!' एक अनुमान यह भी बैठता था कि बार-बार 'कमाल है!' सुनते-सुनते ही कबीर ने बेटे का नाम कमाल रख दिया होगा।

मुझे तब कविता लिखने का नया शौक था। लिखता कम, सुनाता ज्यादा। श्रोताओं की खोज में घूमा करता और जब कोई कविता सुनाने का आग्रह करता, तो ऊपर से उदासीनता या अनिच्छा का नाट्य करता, पर मन में कहता—'जो लिखेगा वह झख मारकर सुनाएगा! उसे चैन कहाँ पड़ती है?' कवि-सम्मेलनों में 'जीअर' को 'चीअर' समझता और एक कविता पढ़ने के बाद, यदि दूसरी की फरमाइश न होती, तो मुझे ऐसा लगता कि अन्य कवियों ने मेरे खिलाफ षड्यंत्र कर रखा है। यह मुझे पीछे मालूम हुआ कि अपने हाथ से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फरमाइशी चिटें लिखकर दोस्तों को पहले ही बाँट देना चाहिए, जिससे वे समय पर मेरी माँग कर लें। पर तब तक मैं कविता लिखना छोड़ चुका था। मुझे जल्दी ही समझ में आ गया कि कविता करना अपने से नहीं बनता। बहुत लोगों को यह बात जिंदगी-भर समझ में नहीं आती। ज्ञान बिरलों के ही हिस्से में आता है। बुद्ध को तो वृक्ष के नीचे ही सद्ज्ञान प्राप्त हो गया था और हम अट्टालिकाओं में बैठकर भी विश्व-नाश की योजनाएँ बनाते हैं।

एक दिन मैंने एक दोस्त को कबीरदास के काव्य-पाठ की यह कल्पना सुनाई। कहा, ''बड़े भाग्यवान थे, कबीर। साधु लोग उनकी कविता सुनते थे और दाद देते थे और हमें कहीं खटीक मुहल्ला, कहीं कंजड़ टोला में जाकर और वक्त-बेवक्त, मुंडन-कन्छेदन या विवाह-गौना में कविता सुनानी पड़ती है!'' दोस्त मेरा बड़ा दुष्ट है। बोला, ''तुम भ्रम में हो। क्या तुम समझते हो कि वे साधु काव्य-प्रेमी थे और समझकर दाद देते थे? भाई साहब, वे तो इसलिए दाद देते थे कि काव्य-पाठ के बाद कबीरदास उन्हें लँगोटी के लिए कपड़ा बाँटते थे। वे 'पेमेंट' वाले श्रोता थे, जैसे मुझे तुम चाय पिलाकर सुना लेते हो।''

हाँ, ठीक है। मैं चाय पिलाकर सुनाता था। अब यह बताने में कोई शर्म नहीं आती। अब तो सोचता हूँ कि हर रचनाकार यही चाहता है कि कोई उसकी कृति देखे, सुने, दाद दे, प्रशंसा करे। बाइबिल का प्रथम अध्याय पढ़ते समय मुझे ऐसा लगा कि इस विश्व-काव्य के रचयिता ईश्वर ने, जब अनेक छंदमय यह काव्य रचा, जो जरूर आसपास प्रशंसक को खोजा होगा और जब कोई न दिखा होगा, तो अपनी रचना की खुद ही दाद दे ली—'एंड गॉड सा दैट इट वाज़ गुड!' आदम का निर्माण करके उसके कंधे पर हाथ रखकर जरूर पूछा होगा—'क्यों मियाँ आदम कैसी सृष्टि की है मैंने? तुम्हें पसंद आई?' तब आदम ने कहा होगा—'वाह! वाह! क्या बात है। कमाल कर दिया है।' यह सुनकर तृप्त ईश्वर घर जाकर चादर ओढ़, पैर फैला सो गए होंगे—गॉड इज़ इन हैवन एंड आल इज़ वैल विद दी वर्ल्ड!

पर कोई हमसे इस सृष्टि-महाकाव्य की आलोचना कराए! अनातोले फ्रांस ने की थी। एक पात्र, एक विद्रोही हँसोड़ लड़का अपने बाप से कहता है—'पिताजी, या तो ईश्वर संसार में बुराई रोकना चाहता है, पर रोक नहीं सकता। या न रोकना चाहता है न रोक सकता है। अगर रोकना नहीं चाहता तो विकृत मति का है। अगर रोक नहीं सकता तो निर्बल है। अगर न रोकना चाहता है न रोक सकता है तो विकृत भी है और निर्बल भी। पर यदि रोकना चाहता है और रोक भी सकता है, तो आखिर रोकता क्यों नहीं?' पता नहीं ईश्वर पर इसका क्या प्रभाव पड़ा। बहुत संभव है कि कलाकार के स्वभाव के अनुसार इस आलोचना को द्वेष-प्रेरित मान लिया होगा।

आलोचना कलाकार की तासीर के अनुकूल नहीं बैठती। उसे प्रशंसा ही चाहिए। एक बार हम लोगों ने तय किया कि लेखक-कवि, पखवाड़े में एक बार अपनी रचनाएँ सुनाएँ और उनकी आलोचना हो। पहली गोष्ठी में 15 कवि आए। कविताएँ पढ़ी गईं, आलोचना भी हुई। दूसरी बैठक में सिर्फ सात आए, तीसरी में पाँच और चौथी में दो। सोचा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना बंद हो या गोष्ठी। आलोचना खेत रही, गोष्ठी चलती रही।

कवि को श्रोता चाहिए और उनसे केवल दाद। जब ऐसा रंग देखा तो हमने, कर्तव्यवश एक ही बुलंदी से दाद देना शुरू किया। थोड़े ही दिनों में खबर फैल गई कि मैं अच्छा श्रोता हूँ और खूब दाद देता हूँ। रचना किसी की भी हो, कैसी भी हो, मैं दाद एक-सी देता। मैं हर वर्ष 50-60 रचनाओं को 'मास्टरपीस' घोषित करता। इसके बाद मुझे जो मुसीबतें झेलनी पड़ीं, मैं ही जानता हूँ। अगर हनुमान-सरीखा सीना फाड़कर बताऊँ तो कलेजे में सैकड़ों घाव मिलेंगे—रहस्यवादी गीतों के गोल-गोल छेद, छायावादी कविता की हल्की खरोंचें, प्रगतिवादी काव्य के घन के निशान और प्रयोगवादी कविताओं के ऐंचक-बेंचक डिजाइनदार सूराख!

एक बार तो मुझे ऐसा भी लगा कि मेरी शक्ल में कोई ऐसी बात है कि मैं धैर्यवान श्रोता मालूम होता हूँ। एक साहित्यिक आयोजन में शामिल होने एक नगर गया था। सुबह उठकर दाढ़ी पर हाथ फेरा, तो एक कार्यकर्ता एक नाई को बुला लाया। नाई ने दाढ़ी बनाते-बनाते मेरे व्यक्तित्व की खूब जाँच की, बढ़े हुए बाल और बेतरतीब कपड़े। आजकल यही पहचान है कलाकार की। हममें से अनेक सप्रयास अपनी धज को बिगाड़ते हैं। मैंने एक कवि को कवि-सम्मेलन में जाने से पहले आईने के सामने खड़े होकर सावधानी से अपने बाल बिगाड़ते देखा था। नाई मुझे ताड़ गया। बोला, "आप शायद कवि हैं?" मैंने कहा, "नहीं।" उसने छोड़ा नहीं। देखते-देखते बोला, "कुछ हैं जरूर आप।" मैंने कहा, "मैं कुछ लिखता हूँ।" उसने हाथ में उठाया उस्तरा रख दिया। कहने लगा, "मैं भी कुछ-कुछ कविता लिखता हूँ। एक मैं आपको सुनाता हूँ। यह मैंने प्रेम के बारे में लिखी है।" उसने एकदम गाना शुरू कर दिया। प्रेम की कविता खत्म होते ही बोला, "और यह गरीब आदमियों के बारे में लिखी है।" मैं उसका कपड़ा ओढ़े, साबुन लिपटाए बैठा था। और वह सुना रहा था। चूँ-चपट कर नहीं सकता था, क्योंकि अभी वह उस्तरा चलानेवाला था और कविता के खून का बदला मेरे खून से ले लेता। चार कविताएँ सुनीं, तब मेरी दाढ़ी बनी। पर मेरी मति ही उस दिन भ्रष्ट हो गई थी। सबेरे-सबेरे कविता सुनना अपशकुन होता है, ऐसा मुझे उस दिन अनुभव हुआ! मैंने उससे मालिश करने को कहा। वह बोला, "यहाँ तो तेल लाया नहीं हूँ। नीचे सेलून में चलिए, वहीं अच्छी मालिश कर दूँगा।" मैं लोभ में चला गया। उसने मुझे कुर्सी पर बिठाया, पान खिलाया और तब दराज खोलने लगा। मैं समझा कि वह कोई बढ़िया तेल की शीशी निकालनेवाला है। पर उसने एक कापी निकाली और बोला, "मैंने कहानियाँ भी लिखी हैं। एक सुनाता हूँ।" भूमिका बाँधते हुए कहने लगा, "आजकल कालेज के लड़के-लड़कियाँ प्रेम बहुत करने लगे हैं। यह बड़ी खराब बात है। अपने देश में पहले प्रेम नहीं होता था। जब से अंग्रेज आए, देश में प्रेम फैल गया। मैंने इसी पर कहानी लिखी है।" उसने कहानी सुना दी। पूछा, कैसी है? मैंने कहा, "बहुत अच्छी।" तो वह बोला, "अच्छा एक गरीब आदमी पर भी लिखी है। सेठ गरीब आदमी की औरत की अस्मत लूट लेता है, उस कहानी में।" मैंने जान का खतरा उठाकर कहा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मुझे एक प्रोग्राम में जाना है, शाम को सुनेंगे।" उसने मन मारकर मालिश कर दी। जाते वक्त बोला, "मैं एक कविताओं की पुस्तक छपाना चाहता हूँ। आप उनमें कुछ सुधार कर दीजिए।" मैंने कहा, "ऊपर मेरे एक कवि मित्र भी ठहरे हैं, उन्हें दिखाओ, वे बढ़िया कर देंगे।" वह कापी लेकर जीना चढ़ गया। पता नहीं क्या हुआ, पर वह मित्र दिन-भर मुझसे नहीं बोला।

श्रोता फँसाने की एक खास 'स्ट्रेटजी' होती है। मैं अगर आपको सुनाना चाहता हूँ तो मैं आपके पास जाऊँगा, आपकी रचनाओं की प्रशंसा करूँगा, फिर कहूँगा—आपने इस बीच क्या नया लिखा? कुछ सुनाइए न! आप निश्चित ही एकाध चीज सुनाएँगे। आपकी एकाध चीज बरदाश्त करके मैं संकोचपूर्वक कहूँगा—मैंने भी थोड़ा लिखा है। वैसे तो कुछ लिखना नहीं आता। फिर भी जो कुछ बन सका⋯यह एक गीत है। मैं लगातार सुनाता जाऊँगा। कुछ लोग बड़े बहादुर होते हैं। वे यह संकोच भी नहीं पालते। बैठते ही शुरू कर देते हैं। एक तो मुझे ऐसे भी मिले जो कहते हैं—यह एक अंतर्राष्ट्रीय गीत सुना रहा हूँ। इसमें भारतीय शास्त्रीय संगीत की धुन है, कर्नाटक संगीत भी और पश्चिमी संगीत भी। वे एक ही गीत में सभी धुनें निकालते।

अब मैं कैसे फँसाता हूँ? पिछली गर्मी में 'सुनास' से पीड़ित आया कवि मेरे घर। प्रेमी और कवि मौसम नहीं देखते। दो घड़ी दम भी नहीं ली और बोला, "कहिए, इस बीच क्या नया लिखा?" अब मैं इतना भोला तो रहा नहीं कि यह समझूँ कि भर दोपहरी में कोई मेरे पास यह पूछने आएगा कि मैंने क्या लिखा? मेरी क्या प्रगति है ? मैं मकसद समझा। सुरक्षा-प्रबंध भी कर लिया है। एक हाइड्रोजन बम हमेशा पास रखता हूँ। मैंने कहा, "हाँ, एक लघु उपन्यास लिखा है। सुनाता हूँ। यही डेढ़ सौ पृष्ठों का होगा।" वह परेशान हुआ। बोला, "वाह, आजकल आप बड़ी स्पीड से लिख रहे हैं। अभी जरा जलाऊ लकड़ी की गाड़ी घर पहुँचा दूँ। बरसात का इंतजाम करना है। कल आऊँगा।" वह भागा सो आज तक नहीं आया। यह लघु उपन्यास फकीर की तावीज की तरह सब अलाय-बलाय से मेरी रक्षा करता है। मेरी बदनामी फैल गई—अरे भाई, उसके यहाँ मत जाओ। वह कम्बख्त उपन्यास सुना देता है आजकल। मेरे पास अब कम सुनानेवाले आते हैं। अब तो मैं कह देता हूँ कि ज्योतिषी ने गणना करके बताया है कि मेरी कुंडली में ऐसे ग्रह पड़े हैं कि मेरी मौत कविता सुनते-सुनते होगी।

अभी भोपाल गया तो एक दोस्त ने बड़े दर्द से बताया कि एक शायर ने बड़ा चकमा देकर पूरी गजल सुना दी। कहने लगे, "मैं होटल में चाय पीने घुसा ही था कि वे एक कुर्सी से उठे और तपाक से हाथ मिलाकर बोले—"आइए, आइए, वल्लाह, आप तो ईद के चाँद हो गए। चाय पीजिए।" चाय पीते-पीते मैंने कसम खाई कि हरगिज नहीं सुनूँगा। ज्यों ही ये कहेंगे कि एक नई ग़ज़ल कही है, त्यों ही उठ दूँगा। चाय खत्म की ही थी कि वे बोले—"जनाब, आपको देख लेता हूँ तो तबियत खुश हो जाती है। वरना इस शहर से अदब तो उठ ही गया है। कोई नहीं है जिसे दो घड़ी अदब पर बात करने की तमीज हो। पुराने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदीबों में सिर्फ आप बचे हैं। अब देखिए न, फलाँ साहब को कल मैंने ग़ज़ल सुनाई तो कहने लगे कि यह शैर कमजोर है।'' उन्होंने एक शैर सुनाया। बोले—''इसे मैं ग़ज़ल का सबसे ताकतवर शैर मानता हूँ। और वह शैर जो वाकई कमजोर है, इसकी बड़ी बुलंदी से दाद देने लगे।'' उन्होंने दूसरा शैर भी सुनाया। और तब बोले—''ये अशआर इस ग़ज़ल के हैं।'' और तब वे पूरी ग़ज़ल सुना गए। मैं सँभल भी न पाया था कि मेरा काम तमाम हो गया।

कवि-सम्मेलनों में भी श्रोताओं की बड़ी कमी पड़ने लगी है। एक मित्र ने मुझे बताया कि हमने श्रोता जुटाने का बड़ा अचूक नुस्खा तैयार किया है। समझाने लगे—''हमने नियम बना लिया है कि जो कवि अपने साथ दस श्रोता लाएगा, उसे एक कविता सुनाने का मौका मिलेगा। जो बीस लाएगा, वह दो सुना सकेगा।'' तभी किसी ने कहा—''नुस्खा तो अच्छा है। मगर, मान लीजिए कवि अपनी कविता सुनाकर अपने श्रोताओं को लेकर चलता बने, तो? आखिर वे श्रोता उसके अपने हैं।''

अप्रिय सत्य का श्रोता और वक्ता दुर्लभ है। नीति-वाणी है। पर अब अप्रिय काव्य के वक्ता बढ़ गए हैं और श्रोता दुर्लभ हो गए हैं। मैं भाग्य को सराहता हूँ कि जल्दी ही कविता करना बंद कर दिया। वरना इस गिरे जमाने में श्रोता ढूँढ़ता कहाँ फिरता ? पूरा 'सिनिक' हो गया हूँ। अब तो 'कहत कबीर सुनो भाई साधो' पढ़कर एक दूसरी ही कल्पना मन में आती है। कबीर के सामने बैठे ये साधु आपस में गुलगपाड़ा कर रहे हैं या हूटिंग, और कबीर बार-बार उन्हें मना रहे हैं—'सुनो भाई साधो, जरा सुन तो लो। बस, ये अंतिम पंक्तियाँ हैं। इसके बाद तो मैं तुम्हें लँगोटी का कपड़ा बाँटनेवाला हूँ।'

सूर और तुलसी का नए सिरे से अध्ययन*

[सागर विश्वविद्यालय की डी.लिट. की डिग्री के लिए प्रस्तुत किया गया।

लेखक—पं. लंबकर्णजी]

अबके माधव मोहि उधार।
मगन हौं भव-अम्बुनिधि में,
कृपासिंधु मुरार।।

महात्मा सूरदास के इस पद का अर्थ लोग अभी तक यही लगाते आए हैं कि सूरदास कृष्ण से कहते हैं कि हे भगवान, मेरा उद्धार कर लो।

बड़ी शोध के बाद यह जाना गया है कि इस पद का अर्थ यह कदापि नहीं। खोज

* प्रहरी, 4 मार्च, 1950

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनुसार उक्त पद का वास्तविक अर्थ यह है—

महात्मा सूरदास माधव नाम के एक महाजन से रुपए उधार लिया करते थे। परंतु सूरदासजी समय पर रुपया वापस नहीं करते थे। एक दिन जब सूरदास सेठ माधवदास के पास रुपया उधार माँगने गए, तब माधवदास ने साफ कह दिया, 'महाराज, बहुत हो गया। आप लेना-ही-लेना जानते हैं, देना नहीं सीखे। जब देखिए, हाथ पसारे चले आए। अब तो आपको एक कौड़ी भी नहीं मिलेगी।'

तब सूरदासजी ने उसी समय पद रचकर सुनाया—'अबके माधव मोहि उधार!' हे भाई माधवदास, अबकी बार तो तू मुझे उधार और दे दे। चाहे फिर कभी मत देना!'

सर समीप गिरजा गृह सोहा।
बरनि न जाइ देखि मनु मोहा।।

जनकपुर में सीताजी के स्वयंवर का अवसर था। सीताजी गिरिजा याने पार्वती की पूजा करने 'गिरिजा गृह' याने 'पार्वती मंदिर' को गईं जो तालाब के पास था।

यह अर्थ भी सर्वथा मिथ्या मालूम होता है। हमने खोज की है और वास्तविक अर्थ यह है—

सर समीप याने तालाब के पास एक ईसाइयों का गिरजाघर था, जिसमें एक पादरी रहता था, जिसका नाम रेवरेंड फादर वर्निंगजाय था। गोस्वामीजी ने इस शब्द का अवधी रूप 'बरनि न जाइ' लिखा है। और इस पादरी ने जब राम-लछमन की सुंदर जोड़ी देखी तो उसका मन मोहित हो गया।

टिप्पणी : त्रेता में आर्यावर्त में जगह-जगह ईसाई लोगों की मिशनें खुल गई थीं और लोगों को ईसाई बनाया जाता था। ऐसी ही एक मिशन जनकपुर में भी थी।

कबहुँक हौं यह, रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु-कृपा तें, संत सुभाव गहौंगो।

एक दिन तुलसीदासजी एक 'सेंट' (इत्र) बेचनेवाले की दूकान पर गए और उससे एक सेंट की शीशी की कीमत पूछी। तुलसीदासजी की 'रहनि' याने 'स्टैंडर्ड ऑफ लिविंग' बड़ा नीचा था। उस 'सेंट' वाले ने इनसे कह दिया—'महाराज, माँगो खाओ। सेंट-वेंट के चक्कर में न पड़ो। तन पर लँगोटी के सिवा कुछ है नहीं और कीमत पूछेंगे सेंट की! हैं पैसे? ले लो। बीस रुपए की शीशी है। असली रूह है।'

गोस्वामीजी के पास दो-चार आने कमंडल में पड़े होंगे। उन्हें 'सेंट' वाले का व्यवहार बड़ा बुरा लगा। उन्हों कहा—

'कबहुँक हौं यह, रहनि रहौंगो।

श्री रघुनाथ कृपालु-कृपा तें, संत सुभाव गहौंगो।'—अर्थात् अरे, हे सेंट विक्रेता! मैं कभी तो ऐसा रहूँगा याने मेरा स्टैंडर्ड ऑफ लिविंग कभी तो ऐसा अच्छा होगा। और यदि रघुनाथजी की कृपा हुई तो बहुत जल्दी मैं अच्छा पहनने-खाने लगूँगा और तब मैं तेरा यह 'सेंट' (संत) इसी भाव में (सुभाव-सोभाव) खरीदूँगा (गहौंगो)। तू समझता क्या है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना कहकर गोस्वामीजी क्रोध से वहाँ से चल दिए।

माधव मो समान जगमाही।

सब विधि हीन, मलीन, दीन, अतिलीन विषय कोउ नाहीं।

तुलसी के इस पद की प्रथम पंक्ति में मूल रामचरितमानस में 'माधव मोसलमान जगमाही' पाठ मिलता है—ऐसी खोज हमने की है। 'ल' अक्षर किसी प्रति में नहीं छप पाया होगा। इसलिए अशुद्ध पाठ अभी तक प्रचलित है, जिससे वास्तविक अर्थ में गड़बड़ी पड़ती है।

इस पद का ठीक अर्थ यह है—

गोसाईंजी के समय में हिंदू लोग मुसलमानों को बड़ी बुरी दृष्टि से देखते थे। उन्हें म्लेच्छ, विषयी, उपद्रवी आदि कहते थे। तुलसीदासजी तो सबको समान भाव से देखते थे। उन्हें भय हुआ कि कहीं इन हिंदुओं के कहने से भगवान मुसलमानों को कोई दंड वगैरह न दे दें। इसलिए उन्होंने कहा है—

माधव मोसलमान जग माहीं।

सब विधि हीन, मलीन, दीन, अतिलीन विषय कोउ नाहीं।।

अर्थात् हे माधव! जो ये हिंदू लोग द्वेष से मुसलमानों की बुराई आपसे करते हैं सो ये मुसलमान वैसे नहीं हैं। जग में सारे मुसलमान सब प्रकार से हीन, मलीन, विषयलीन नहीं हैं। इनमें अच्छे लोग भी हैं। और ऐसा कोई नहीं है जो सब प्रकार से हीन, मलीन, विषयहीन हो। सबमें 'दीन' याने धर्म है। इसलिए हे भगवान तू सबका भला करना।

आगे चले बहुरि रघुराई।

ऋष्यमूक परबत नियराई।।

रामचंद्रजी आगे बढ़े और ऋष्यमूक पर्वत के पास आए।

अनेक विद्वानों की निगाह से जो बात छूट गई वह यह है कि गोस्वामीजी अंग्रेजी के भी बड़े विद्वान थे और उन्होंने बड़े विशाल दृष्टिकोण से काम लेकर रामचरितमानस में यत्र-तत्र अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे इसी चौपाई में—

'नीअर' शब्द अंग्रेजी का है और उसका अर्थ है 'पास' या 'समीप'।

इसमें 'आई' की संधि से 'नियराई' शब्द बना, जिसका अर्थ है पास आए।

साहित्य में ईमानदारी*

प्राचीनकाल में राजदरबारों में भाटों का होना सुनते आए हैं। ये भाट राजा की अतिरंजित प्रशंसा करके पुरस्कार पाते थे। एक-एक छंद पर एक-एक सौ-सौ और हजार-हजार मुद्राएँ मिलने की बात भी सुनी जाती है। रीतिकाल में भाट तो रहे ही, राजकवि भी रखे जाने

* प्रहरी, 18 जनवरी, 1948

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगे जो राजा की प्रशंसा में छंद बनाकर सुनाते थे, क्योंकि 'जिसका खाना उसका गाना' के अनुसार दाता की प्रशंसा करना ही चाहिए। भूषण, बिहारी, मतिराम, केशव, देव आदि कवि किसी-न-किसी राजा की छत्रछाया में पलते थे। इन्हें सम्मान भी कभी-कभी प्राप्त हो जाता, जैसी कि भूषण की पालकी को छत्रसाल द्वारा उठाए जाने की कथा है। इनमें से अधिकांश कवियों ने शृंगार ही लिखा क्योंकि वही जरा श्रोता को सस्ता पड़ता है; और फिर साल में दो-चार बार स्वयंवरों में जानेवाले तथा महलों में स्त्रियों का 'पिंजरा पोल' खोल रखनेवाले विलासी नरेशों को 'पतली कमर' और 'तिरछी नजर' के सिवा भाता ही क्या? यदि इन योग्य कवियों की प्रतिभा को राजदरबार के अंतर्गत बंदी बनाकर न रखा गया होता, तो आज हिंदी का भंडार अधिक भरा-पूरा होता।

अंग्रेजी शासन के प्रारंभिक काल में भी यह परंपरा यदाकदा कवियों ने निभाई और 'अंग्रेजी राज्य महा सुखकारी' सरीखी और 'दिल्ली दरबार' सरीखी कविताएँ इस शताब्दी के प्रारंभिक काल में भी सुनाई पड़ती थीं। परंतु इसके बाद ही कविता का क्षेत्र महल से हटकर झोंपड़ी बन गया, उसका विषय व्यक्ति को छोड़कर समष्टि हो गया। प्रजातंत्र की भावना को लेकर जो जन-जागरण हुआ तो साहित्य कोटि-कोटि मूक भारतीयों की वाणी बन गया। सरकारी भृकुटि की अवहेलना कर हमारे अनेक साहित्यकारों ने ईमानदारी के साथ देशवासियों के दग्ध हृदयों का चित्र खींचा। अनेक कवि व लेखक जेल गए, यातनाएँ सहीं, बलिदान किए, परंतु सच्चे रहे। सरकार की मुँहदेखी कहनेवालों को काफी जिल्लत उठानी पड़ी। 'जीत गई सरकार हमारी, जीत गई सरकार' वाली कविता बनानेवाले एक मध्यप्रांत के ही कवि की दो साल पहले सड़कों पर जो आफत हुई उसकी याद करके अब भी हँसी नहीं रुकती।

परंतु इधर कुछ दिनों से दिख रहा है कि 'इतिहास पलटता है' के सिद्धांत पर रीतिकाल फिर आ रहा है। साहित्य-सेवी जनता-जनार्दन की सेवा छोड़कर देवी चंचला और सरकार की सेवा में पुनः रत दिखाई देते हैं। इस प्रकार का साहित्य, साहित्य नहीं रहता बल्कि बाजार का भटा-भाजी हो जाता है और वह साहित्यकार एक कुँजड़ा। उस तरह की कुँजड़ाई चल रही है। कैसे? यह आगे बतलाता हूँ।

आजकल देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में मंत्रियों को 'डॉक्टर ऑफ लिटरेचर' (साहित्य मर्मज्ञ) की उपाधियाँ देने में जो होड़ लगी हुई है, उसे देखकर अचंभा और दुख दोनों होते हैं। दही-बड़े की तरह यहाँ साहित्य की डॉक्टरेट पैसे की दो मिल रही हैं। अब जरा पानेवालों की लिस्ट देख लीजिए! अधिकांश मंत्री लोग हैं। राजनैतिक जीवन में हम उनकी कदर करते हैं, उनके त्याग, सेवा और बलिदान के हम कायल हैं, परंतु फिर भी साहित्य की उपाधि के योग्य तो साहित्यिक ही है, राजनीतिक नहीं। इन उत्साही विश्वविद्यालयों से कोई पूछे कि तुम साहित्यिकों को सम्मानित कर रहे हो या मंत्रियों को, शासकों को या दूसरे शब्दों में 'राजा' को? यदि इन्हें साहित्यिकों को सम्मानित करने की इतनी लगन और उतावली है तो आँख खोलकर साहित्य के पुजारियों को ढूँढ़ें, उन्हें मिलेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारा जीवन राजनैतिक दाँव-पेंच में बिताकर फुरसत के समय एकाध पुस्तक लिखकर यदि कोई मंत्री 'डॉक्टरेट' का अधिकारी हो सकता है, तो अपना सारा जीवन साहित्य को अर्पण करनेवाला तपस्वी माखनलाल और पदुमलाल मंत्री क्यों नहीं हो सकता? महादेवी वर्मा, निराला, रामनरेश त्रिपाठी साहित्य में किसी भी मंत्री से बित्ता-भर ऊँचे हैं। इन्हें क्यों नहीं पदवी देते? और हिंदी साहित्य सम्मेलन के इस वर्ष के सभापति कई भाषाओं के विद्वान, विद्वानों द्वारा सम्मानित महापंडित राहुलजी को क्यों नहीं 'डॉक्टरेट' मिलती? शर्म की बात है कि जयशंकर प्रसाद का अध्ययन करके लोग डॉक्टरेट पाने की तैयारी में है परंतु प्रसादजी को किसी ने नहीं पूछा। साहित्य-सेवा में अपने शरीर को तिल-तिल क्षय करनेवाले 'निराला' को तो पागलखाना भेजने की तैयारी हुई और कारों पर घूमनेवाले मिनिस्टरों और गवर्नरों को डॉक्टरेट मिलने की। मैं इन अंधे उपाधि देनेवालों से पूछता हूँ कि तुम लोग इस प्रकार साहित्य के नाम पर क्यों बेईमानी करने पर उतारू हो।

और पिछले महीने बड़े दिन को इसी जबलपुर महानगरी में 'कृष्णायन' के कवि के अभिनंदन में जो कुछ हो गया उसे देख-सुनकर भाई हमारी तो गर्दन नीची हो गई थी। और जब मैंने सिर उठाकर देखा तो प्रत्येक विचारशील व्यक्ति की गर्दन नीची पाई। ख्यातिप्राप्त साहित्यिक प्रोफेसरों ने मंत्री कवि की प्रशंसा में जिस विवेकहीनता, ज्ञानहीनता, आत्मसम्मानहीनता का परिचय दिया था, उसको देखकर तो स्वयं उस नाटक के नायक—मंत्रीजी भी दंग रह गए। तुलसी, वेदव्यास, वाल्मीकि तक को नहीं छोड़ा—मंत्री की तारीफ के लिए।

और सुनिए। ये जो कवि-सम्मेलन कभी-कभी हो जाते हैं, इनमें देखा जाता है कि कोई मंत्री, गवर्नर या सेठ बुलाकर सभापति बना दिया जाता है। कवि-सम्मेलन का सभापति बनने का अधिकार सर्वश्रेष्ठ कवि को है। महात्मा गांधी और नेहरूजी भी कवि-सम्मेलन के सभापतित्व के योग्य तो नहीं हैं। मैं तो उनका भी ऐसा करना ठीक नहीं मानता। कवि बेचारा खून को पानी करके कविता रचे और सम्मान मिलने का मौका आवे तो कोई 'सरकारी आदमी' 'दाल-भात में मूसरचंद' बन जावे। वाह, खूब न्याय है! उस दिन प्रांत के राजा के सभापतित्व में वह कवि-सम्मेलन भी मध्यकाल के किसी राजदरबार से कम थोड़े ही था। गवर्नर साहब को भागने की पड़ी थी और कविगण मानते ही नहीं थे। सुनाते ही जाते थे। मुझे संदेह है, गवर्नर साहब बेचारे हिंदी-कविता समझते भी हैं या नहीं। वे दक्षिण भारतीय हैं।

तो इसीलिए मैं कह रहा था कि रीतिकाल आ रहा है—आ चला है। तो मेरा यह कहना है कि प्रत्येक मंत्रिमंडल एक राजकवि नियुक्त कर ले जो विधानसभा के अधिवेशन के प्रारंभ में और अंत में प्रत्येक मंत्री की प्रशंसा के छंद सुनाकर इनाम पा जावे। जब वे लोग 'केशवदास के भाल लिख्यो विधि रंक को अंक बनाय सँवारयो' और 'कहाँ लों बखान करौं तेरी करबाल को' सुन लेंगे तो दूसरे साहित्यकारों को चैन तो पड़ेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋतुराज आया है !*

कुछ बेखबर किस्म का हूँ। इधर दुनिया में वसंत छा गया और मुझे ऋतुराज का आगमन तब मालूम हुआ जब अभी-अभी मेरी पड़ोसिन और पड़ोसी में झगड़ा हो गया। और झगड़े की तह में कारण-स्वरूप भी बैठे हैं महाराज ऋतुराज। छोटी-सी बात थी। पड़ोसिन ने पति से पीला रंग मँगाने के लिए चार पैसे माँगे, और पतिदेव झल्ला उठे—'नहीं हैं पैसे-वैसे। सबेरा हुआ, और पैसे की माँग। क्या मेरे पास पैसों का झाड़ लगा है?' बेचारी चार ही पैसे तो माँग रही थी—पुरानी सफेद धोती को बसंती करके तनिक देर बाहर की झलक में भीतर की अँधियारी डुबा देना चाहती थी। उसे भी गुस्सा आया और वाग्युद्ध शुरू हो गया पति-पत्नी में और उधर कवि लोग गला फाड़-फाड़कर चिल्लाए जा रहे हैं कि वसंत भी संयोग कराता है—

'आवतहीं बनिहैं कतहिं, वीर वसंतहिं आवन दै री!' उधर कवि किताबें छपवाकर घोषणा कर रहा है कि 'जब तरु से लतिका का अंतर, मधुऋतु में कम हो जाता हो…' और उधर मेरे पड़ोसी मुँह-फुलाए एक-दूसरे से दूर बैठे हैं।

सोचता हूँ जैसे जिंदगी में हर चीज की 'वेल्यूज' बदल गई है, हमारे समय तक आते-आते वसंत भी पैसों का मुहताज हो गया है।

एक समय था जब ''बीथिन में, ब्रज में, नवेलिन में, बेलिन में, वनन में, बागन में, बगरो बसंत है।'' यह काव्य नहीं, 'केटलाग' है। पर आज न वीथि, न ब्रज, न बेली है, वन है न बाग है। रही 'नवेली' की बात—सो यह कुछ बताने की बात तो है ही नहीं और अगर बताई भी जाए तो ऐसी ही बताई जाएगी कि यह कोई द्वापर नहीं है जो—

'विहरत हरिरिह सरस वसंते
नृत्यति जुवति जनेन समम सखि
विरह जनस्य दुरंते।'

आज तो अगर कोई इस युग का 'कन्हैया' किसी लावण्यमयी राधे से यही कह दे 'खेलन चलहु संग मिलि जोरी' तो यकीन मानिए, कन्हैयाजी का लंबे अरसे तक 'हेयर कटिंग' का खर्च बच जाए।

मेरा क्या कसूर अगर मुझे मधुमास का आगमन मालूम न हो? न बीथी, न नवेली, न बेली, न बाग और न वन। खिड़की में बैठा हूँ। खिड़की के आगे ही सड़क के उस पार सामनेवाले मकान की टट्टी का 'एक्जिट' (exit) है, और मेरी खिड़की के पास ही म्यूनिसिपल की गंदी नाली है जो साल में एक बार म्यूनिसिपल प्रेसीडेंट की वर्षगाँठ पर साफ होती है। मैं सोचता हूँ यह दिन म्युनिसिपल अध्यक्ष का जन्मदिन है या टट्टी का और नाली का? नाली और टट्टी के सहयोग से पवन की शह पाकर जो ये दुर्गंध उड़ रही है, उसे सबकी सब

---

* प्रहरी, 5 फरवरी, 1950

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मलयानिल भी परास्त नहीं कर सकती। सामने ऊँची दीवाल है। आधे दिन तक सूरज की किरणों से पहचान भी नहीं होने देती।

वैसे मैं ऐसा मूर्ख तो नहीं हूँ कि यह ज्ञात हो जाने पर भी कि वसंत आ पहुँचा है, कर्तव्य से विमुख हो जाऊँ। कागज-कलम लेकर बैठा हूँ—कवि हूँ न मैं। वह कवि ही क्या जो वसंत पर कविता न लिख सके और उस वसंत से जेठ अच्छा जिसमें भाव न आवें! जरा देखो उस 'सेनापति' को

सेनापति माधव
महीना में पल्लास तरु
देखि-देखि भाव
कविता के मन आए हैं।

क्या व्यर्थ की बात कर देते हैं कवि लोग भी। गोया हम अपना सजा-सजाया शहर का कमरा छोड़कर जंगल-जंगल पलाश की तलाश में घूमते फिरें, तब तो भाव आएँगे। पर, बेचारा सेनापति भी तो पुराना ही कवि ठहरा। आज होता तो शहर के तिमंजिले पर बैठकर, कैंची सिगरेट पीकर, बैसाख के महीने की दोपहरी में वन-प्रांतर कि किसी कोने की वसंत-श्री का वर्णन करके लिखकर रख लेता, जिसे वसंत आने पर छपवा लेता।

मैं इस समय कागज-पेंसिल लेकर बैठ तो गया हूँ, पर मन में न 'मंजरिन रसाल कुंज' आ रहा है, न 'पिककूजन' न 'भ्रमर गान'। मैं सोच रहा हूँ, मेरी चप्पल की जो पट्टी टूट गई है उसे जुड़वाने के लिए पैसे कहाँ से प्राप्त करूँ। मेरे जीवन की कविता है यह फटी चप्पल !

इस जमाने में मेरा ही यह हाल हो सो बात नहीं है। हमारा भाई ही है न पंत। हम सभी तो कहते हैं कैसा कोमल भावुक हृदय पाया है? ऋतुराज के अंक में ही मानो पला है। कंठ में कोकिल की कूक मानो समा गई है। पर बेचारे उसका भी मन बैठ गया है—मेरे जैसा। मैं नहीं जानता उसकी भी चप्पल फट गई है अथवा जूता? बेचारा बराबर मन को जगाता है—

खिलतीं मधु की नवकलियाँ
खिल रे, खिल रे मेरे मन!

उधर दुनिया-भर में घोषणा हो गई कि मधुमास पधार गया और इधर कवि बंद मन को डाँट रहा है—अबे खिल बे!

लेकिन एक बात और देखी है। आधुनिक कवियों का वसंत से कोई विशेष मतलब नहीं है, शायद वसंत को इनसे कोई मतलब नहीं। 'निराला' का कुकुरमुत्ता जब 'अबे सुन बे गुलाब!' कहकर सौंदर्य के पीछे लाठी लेकर दौड़ता है, तब बेचारा किस्मत का मारा सौंदर्य पंत को अगर कौए में छिपा दिख जाय तो आश्चर्य ही क्या? कहते हैं ये कौवे से—

'तरु की नग्न डाल पर बैठे, लगते तुम चिर सुंदर।' अब अगर कोयल में तनिक भी लाज होती तो कहीं जाकर जहर खा लेती या कम-सें-कम कुछ दिन वाणी अनशन करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही 'रिमार्क विथड्रा' करने की माँग कर लेती। पर इस कोयल का भी कोई ठिकाना है? मौके-बे-मौके, जहाँ देखो वहीं। अभी मेरे सामनेवाले मकान पर से बोल रही थी, और मैं देखने लगा कि इस मकान पर क्या आम फूला हुआ है। लेकिन पंत ने कोयल को अपमानित करने में जरा कोर-कसर नहीं रखी। इस काले, कुरूप, काने, विष्टासेवी, दुष्ट कौवे से कहते हैं—

शुभ्र ज्योति का तुम पर कभी, प्रभाव न पड़ता किंचित
रंग नहीं चढ़ता जिस पर वह
यती व्रती है निश्चित!

मैंने कहा न कि आज तो हर एक चीज का मापदंड बदल गया है। प्रकाश की अंधकार के द्वारा पराजय आज अभिनंदनीय हो गई है और सूरदास अगर आज होते तो 'सूरदास खल कारी कामरि चढ़ै न दूजो रंग' में संशोधन करके 'खल के स्थान पर 'संत' रखते, यद्यपि इससे मात्रा-दोष हो जाता। पर नवीन युग में जन्म होने के कारण यह दोष 'प्रयोग' में शामिल कर लिया जाता।

वसंत पंचमी का आधा दिन ढल गया है, पर मेरे पड़ोसी-पड़ोसिन में अभी समझौता नहीं हुआ। कैसे बेसमझ लोग हैं। अरे एक वह भी तो है जो साल-भर वसंत की आस लगाए रहता है—

यही आस अटक्यो रहो, अलि गुलाब के मूल
हुईहै फेरि वसंत ऋतु, इन डारन वे फूल।

और एक ये हैं जो जागते नहीं। उधर मधुमास आकर दरवाजा खटखटा रहा है।

पर पति के चार पैसे के बिना तो ऋतुराज भी विमुख होकर चला गया। एक अंग्रेजी कवि कहता है—

Love in a hut, with water and a crust.
Is Love forgive me, cinders, ashes dust.

गरीबी के प्रेम को राख-मिट्टी मानता है यह कवि। पर हमारे रहीम तो बड़े भयंकर आशावादी हैं—

टूटी खाट घर टपकत, टटिऔ टूट।
पियकै बाँह सिरहनवा सुख कै लूट।।

हम नहीं कह सकते, रहीमजी का उस समय क्या हाल था जब वे 'मधुकरी' माँगकर खा रहे थे, और यारों से यारी छुड़वाकर विपत्ति के मारे चित्रकूट में बस रहे थे।

फक्कड़ कबीर इस मामले में हमें सबसे मस्त लगा। वसंत आया करे चाहे जाया करे। हमें क्या परवाह?

'जौ बिछुड़े हैं पियारे से भटकते दर-बदर फिरते। हमारा यार है हम में हमन को इंतजारी क्या?' देखो कैसा अँगूठा बताकर बैठ गया वसंत को!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बाबूजी किराया मिल जाए। तीन महीने हो गए।" मकान का मालिक अपनी मनहूस सूरत लेकर सामने आ गया। मुझे बड़ा क्रोध आया। कैसा मनुष्य है? इसको तनिक़ खबर नहीं ऋतुराज के आगमन की? कैसा अरसिक है? मनुष्य ने मनुष्य को इस लायक ही नहीं रहने दिया कि वह प्रकृति के सहज वैभव में डूबकर आनंद ले सके। अगर वह क्षण-भर के लिए सागर में गोता लगाना चाहता है तो दूसरा मनुष्य आकर उसे पीछे खींचता है, "बाबूजी किराया मिल जाय।" मैं कुछ वर्ड्सवर्थ सरीखा खिन्न हो गया इस भर-वसंत में। प्रकृति की सौंदर्य-सुषमा देखकर कवि का हृदय रो उठता है, "हाय! इधर मनुष्य ने मनुष्य का क्या हाल कर डाला!"

And its my faith that every flower enjoy the air
it breathes
And much it grieved my heart to think what man
has made of man.

अब मेरा मूड ही बदल गया। कल्पना के आसमान में उड़ना नहीं बनता। जमीन पर पाँव रखूँगा। कठोर यथार्थवादी बन रहा हूँ। सोचता हूँ प्रकृति क्या किसी का बंधन मानती है। उसके भंडार में कमी ही क्या? महाराज अनंग एकमात्र अधिपति हैं इस वैभव के। न उनकी चप्पल फटी है, न उनसे मकान-मालिक किराया माँगता है, न रति से चार पैसे के लिए उनका झगड़ा ही हुआ है! पर यहाँ तो झंझटें हैं। अगर उत्तेजना में, भावुकता में बह गए और गुलाब का इत्र खरीद लिया तो 'राशन' काहे का आवेगा?

ऐसा ही बार-बार का धोखा खाया हुआ, पीड़ित कवि होगा बेचारा जो रो उठा—'अपने तो यौवन का हुआ अंत, अब आए या जाए वसंत!'

माँ और भाई*

चौराहे की पान की दूकान के सामने जो एक तख्त पड़ा है उस पर 4-6 आदमी रोज शाम को बैठते हैं! क्यों बैठते हैं? वे शायद इसीलिए बैठते हैं कि उन्हें कहीं बैठना होता है और जहाँ बैठने की सुविधा मिल गई वहीं बैठ गए। लेकिन और लोगों से पूछेंगे तो और भी अनेक कारण बतलाए जावेंगे—कारण—करनेवाले के काम में निवास नहीं करता, देखनेवाले के मन में निवास करता है।

खैर! बैठनेवाले बैठते हैं और सामने से निकलते रहते हैं—बच्चे, बूढ़े, युवा, नवोढ़ा, प्रौढ़ा, गौरांगिनी और श्याम! गर्वीले और दीन, दलित और आततायी, मनुष्य, मानव देव और मानव पशु!

* प्रहरी, 21 नवंबर, 1954

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस शाम को कुछ ऐसा सूझा कि मूँगफली और नमकीन सेव खाए जाएँ। हाजिर हो गए। और खा रहे थे कि इसी समय एक भिखारिणी एक बच्चे को छाती से चिपकाए आई। उसके पीछे दो लड़के और थे—छोटे-छोटे, निपट घिनौने, कृशकाय, काले और कुरूप ! ठंड थी और वे चिथड़ों में किसी तरह आधे लिपटे थे।

भिखारी को देखकर एक नफरत-सी पैदा होती है। सभ्य देश में भिखारी नहीं होते, ऐसा हम समझते हैं। भीख देना भीख को प्रोत्साहन देना है। भिखारी ढोंगी होते हैं और काम नहीं करके भीख माँगते हैं—ऐसे कुछ खयालात हमारे हैं! लेकिन मुझे दो-चार आदमी रोज ऐसे मिल जाते हैं कि जो काम माँगते हैं। और इस विशाल देश में काम नहीं है। मनुष्य ने अपनी स्वाभाविक स्वतंत्रता को त्यागकर राज्य के हाथ में जो अपने-आपको समर्पित कर दिया है, तो इसीलिए तो कि वह उसे खाना, कपड़ा, निवास और काम तो कम-से-कम देगा ही। पर वह उसे उपदेश ही देता है।

इस भिखारिणी को देखकर एक मित्र की दया उमड़ पड़ी और उन्होंने उसे एक आना दे दिया। वह चली ही थी कि वे दोनों लड़के भी सामने आ गए और हाथ खोलकर घिघियाने लगे। हमने कहा, ''जाओ। दे तो दिया तुम्हारी माँ को एक आना!''

और वे बोले, ''वह हमारी माँ नहीं है बाबूजी। हमारे माँ-बाप ही नहीं हैं।''

वह स्त्री भी निरपेक्ष रूप से आगे बढ़ गई। लड़के घिघिया रहे थे—''वह हमारी माँ नहीं है।''

एक मित्र जरा भावुक थे। बोले, ''देखो तो बेटा माँ को माँ नहीं कह पाता। शायद वह माँ भी यह कहे कि ये दोनों उसके बेटे नहीं हैं।''

दूसरे बोले, ''हमने इंसान को इस काबिल ही नहीं रखा कि वह माँ को माँ कह सके। एक पैसा पा जाने के लिए ये माँ को त्यागने के लिए मजबूर हैं। वह इनकी माँ नहीं है।''

लड़के घिघिया रहे थे—''हमारी माँ मर गई बाबूजी!''

हममें से एक ने एक पैसा एक के हाथ पर रख दिया और बोले, ''जाओ।''

दूसरे ने हाथ फैला दिए।

दस कदम भी न गए होंगे कि बड़ा लड़का झपटा और छोटे के हाथ से सेव छीनने लगा। छोटे ने मुट्ठी बाँध ली और बड़े ने दाँतों से काटकर मुट्ठी खोलवाने का प्रयत्न किया। दोनों गुँथ गए। घूँसे, तमाचे और दाँतों के आघात आदान-प्रदान करते हुए वे दोनों उभरी मिट्टी पर लोट-पोट हो गए।

केवल थोड़े सेव के लिए।

मित्र ने कहा, ''अब ये दोनों भाई भी नहीं हैं।''

छोटे ने चीत्कार की—माँ! माँ!

और वह माँ लौटी। आकर उसने दोनों के मर जाने की कामना की! जिन्हें प्राणों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का रस पिलाकर पाला था, उनके मर जाने की कामना उस माँ ने की। तब एक घूँसा बड़े को मारकर उन्हें छुड़ाया।

सेव धूल में बिखर गए थे। और वे दोनों सब बैर भुला बड़ी उतावली में धूल में से बीन-बीनकर खा रहे थे।

पुलिस जनता की सहायक है*

पिछले 8-10 दिन बड़ी निश्चिंतता से कटे। साल में 10-5 दिन के लिए पुलिस जनता की सहायक बन गई थी। लेकिन वर्ष में 365 दिन जो होते हैं। शेष दिन पुलिस जनता के लिए कुछ और होती है। तभी 10-5 दिन तक तख्ती लगाकर घूमना पड़ता है कि 'पुलिस जनता की सहायक है।'

यह सहायक होने की बात सरकारी बात है। इसे सरकारी उदाहरण देकर ही समझाना पड़ेगा। पहले राजस्व विभाग में पट्वारियों, रेविन्यू इंस्पेक्टरों को अच्छे आचरण का भत्ता मिलता था। यह कुछ लोगों को मिलता था, कुछ को नहीं मिलता था। जिन्हें मिलता था वे तो अच्छे आचरणवाले थे। पर जिन्हें नहीं मिलता था, वे? इससे एक बात और समझ में आई कि सरकार के इस मुहकमे में 'अच्छा आचरण' एक विशेष योग्यता मानी गई, जो यदि किसी में हो तो उसे उसका भत्ता मिलेगा। याने अच्छा आचरण न होना कोई बुरी बात नहीं, पर हो तो और अच्छा।

इसी तरह पुलिस का हाल है। पुलिस जब तख्ती लगाकर घोषणा करे कि हम जनता के सहायक हैं तो उसका अर्थ यह निकला कि हे जनता! हम जानते हैं कि तुम हमें अपना दुश्मन मानती हो। हमारे कार्यों से तुम्हें हम अभी तक विश्वास नहीं दिला पाए हैं कि हम तुम्हारे सहायक हैं। इसीलिए कहने की जरूरत पड़ गई कि हम तो तुम्हारे सहायक हैं। कम-से-कम अब तो हमें सहायक समझो।

पर गौर से देखा जाए तो पुलिस जनता की बड़ी सहायक दिखेगी।

जनता को जुआ खेलना पड़ता है। बड़े-बड़े खेलते हैं। एम.एल.ए. तक खेलते हैं। अब अगर पुलिस सहायता न करे तो क्या जनता का इतना जरूरी काम 'जुआ' हो सकता है? इसीलिए पुलिस जुआ खेलने में सहायता करती है। फड़ की रक्षा करती है। सिर्फ चाय-पान के लिए कुछ लेती है।

जनता को प्रदर्शनी में, टूर्नामेंट में बिना टिकिट घुसने का काम भी पड़ता है। तो पुलिस यहाँ भी उसकी सहायता करती है। वह जनता को बिना टिकिट भीतर घुस जाने देती है।

* प्रहरी, 24 अप्रैल, 1955

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनता गरीब है, इसलिए एक साइकिल पर दो आदमी बैठकर काम चलाते हैं। तब पुलिस ही सहायता करती है। वह पकड़ तो लेती है, पर दो-चार आने लेकर छोड़ देती है। अगर अदालत के सामने पेश कर दो तो 10-5 रुपए जुर्माना हो। जनता के इस पैसे को वह बचा देती है। याने जनता की सहायता करती है।

जनता का गुंडागिरी करना भी जरूरी है। तो पुलिस फिर यहाँ भी सहायक है। उसे कभी-कभी कुछ देते जाइए, फिर चाहे जिस चौराहे पर हुल्लड़ करिए।

इसी से मिलती-जुलती सहायता बड़े लोग ऊँचे स्तर पर करते हैं। बड़े मामले में अगर पकड़ लिए गए तो उसे बड़े अफसर सुलझा देंगे। जरा बड़ी रकम लगेगी।

इस तरह सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में पुलिस जनता की सहायक है। हर अच्छे काम में मदद करती है। फिर भी जब कुछ सिरफिरों को यह बात समझ में नहीं आती, तो पुलिस को तख्ती लगाकर और लाउडस्पीकर से घोषणा करके यह जाहिर करना ही पड़ता है कि मूर्खो ! अब तो समझो। हम तुम्हारे सहायक हैं।

डीनइंज नामक एक अंग्रेज विचारक ने अपने निबंध में लिखा है—राज्य टैक्स-दरोगा या ड्रिल-सार्जेंट के रूप में ही साकार होता है। पिछले मार्च में जब केंद्रीय बजट पेश किया गया तब हमारी जरूरत की चीजों पर लगाए टैक्स ने हमें याद दिलाई कि हम भारत गणतंत्र राज्य में रहते हैं जो समाजवादी ढाँचा स्वीकार चुका है। वरना हम राज्य को क्या जानते हैं? इसी तरह जब खदान में गोली बरसती है या दंगल में हुल्लड़ होता है या चौराहे पर गुंडागिरी होती है तब खाकी वर्दी के सिपाही को देखकर याद आता है कि हम किसी राज्य में रह रहे हैं।

लेकिन फिर भी अगर हम भूल जावें, तो सड़क पर नीली गाड़ी निकल जाती है जिस पर लिखा रहता है—'पुलिस जनता की सहायक है।' और हमें फौरन याद आता है कि हम मध्यप्रदेश राज्य के निवासी हैं जो 'पुलिस-राज्य' है और जिसमें पुलिस गुंडों की सगी माँ और भले नागरिकों की सौतेली माँ होती है।

नाममात्र का समाजवाद*

लो भाई समाजवाद आ चला! श्रीमन्नारायण अग्रवाल केवल श्रीमन्नारायण हो गए!

और अपने बाबू (सेठ) गोविंददास केवल गोविंददास रह गए!

याने भारत में जातिहीन समाज की स्थापना हो गई। समाजवाद की जय बोलनी पड़ेगी !

दुनिया में एक नई मिसाल रख दी कांग्रेस ने। बिलकुल नए तरीके से यह समाजवाद

* प्रहरी, 30 अप्रैल, 1955

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आया है, क्योंकि मार्क्सवाद तो बहुत पुराना पड़ चुका।

समाजवाद वर्गसंघर्ष से आता है? नहीं। समाजवाद वैधानिक प्रक्रिया से आता है? नहीं। समाजवाद केवल नाम बदलने से आता है। नाम बदलने से आदमी का रूप, रंग, गुण, धर्म, विचार सब बदल जाते हैं! उधर शेक्सपियर कह गया है तो कहने दो–

What is there in a name. Rose with any other name will smell as sweet.

(नाम में क्या रखा है? गुलाब को कोई भी नाम दो, वह उतना ही मीठा महकेगा।)

आज यदि शेक्सपियर होता तो कहता–

What is there in a name. A congressman with any other name will be as corrupt.

(नाम में क्या रखा है? कांग्रेसमैन को कोई भी नाम दो, वह उतना ही भ्रष्टाचारी होगा।)

पर न अब शेक्सपियर है, न उसकी बात लागू होती है। नाम बदलने से सब बदलने लगा।

तो अब समाजवाद आने में कोई देर नहीं है, और न कोई कठिनाई। राष्ट्रीयकरण और समाजीकरण की पुकार लगानेवाले चिल्लाते ही रहे और इधर एक छलाँग में कांग्रेसी समाजवाद ले आया और–

With one stride comes socialism.

अब सेठ करोड़ीमल का नाम गरीबदास रख दिया जाएगा।

सेठ घनश्यामदास बिड़ला का नाम हो जाएगा–सुदामाप्रसाद।

सेठ रामकृष्ण डालमिया हो जाएँगे–दरिद्रदास।

ठाकुर सरदारसिंह हो जावेंगे–भिखारीलाल।

सुल्तान अली हो जावेंगे–मुफलिसअली।

अपने बाबू सेठ गोविंददास नाम के अंत में 'दास' लगाए ही हैं। कोई कठिनाई नहीं। पहले कभी मारवाड़ी पगड़ी उतार दी थी। अब मारवाड़ा 'सेठ' सिर पर से उतर गया और समाजवाद आ धमका!

लेकिन यह बात मजाक की बात नहीं है। कांग्रेस अपने उद्देश्य के प्रति ईमानदार है। अवाड़ी अधिवेशन में समाजवाद की घोषणा करते समय कांग्रेस के मन में 'नाममात्र' का समाजवाद ही था। और अब नाम ही बदल रहे हैं। अपने निश्चयों पर कांग्रेस अब भी दृढ़ है। 'नाममात्र' का समाजवाद लाने का निर्णय था उसका और अब वह केवल नाम बदल रही है।

'नाममात्र' का समाजवाद आ गया।

ज़रा अपने-अपने नाम सँभालो। इस समाजवाद में अपने नाम ही पराए हो जानेवाले हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुड़िया सम्मेलन*

'पंडित नेहरू ने अंतर्राष्ट्रीय गुड़िया सम्मेलन का उद्घाटन किया।'

—एक समाचार

अंतर्राष्ट्रीय गुड़िया सम्मेलन दिल्ली में ही क्यों हुआ? लंदन या न्यूयार्क में क्यों नहीं हुआ? यहाँ तक कि टोकियो में भी नहीं हुआ।

और पंडित नेहरू ने ही इसका उद्घाटन क्यों किया? चर्चिल या बुल्गानिन ने क्यों नहीं किया? च्यांग काई शेक तक से उद्घाटन नहीं कराया गया।

यह कोई संयोग की बात नहीं है कि यह गुड़िया सम्मेलन भारत में ही हुआ और नेहरूजी ने ही इसका उद्घाटन किया। इसमें मतलब है कोई।

तो बड़ा मतलब है इस सम्मेलन में। विगत 7 वर्षों के स्वतंत्र भारत की महान् परंपराओं की महत्ता स्वीकार करके ही यह सम्मेलन यहाँ किया गया है। हमारे यहाँ हर दिन गुड़िया सम्मेलन होते रहते हैं। अभी अवाड़ी में अखिल भारतीय गुड़िया सम्मेलन हुआ था जिसका उद्घाटन, संचालन, निर्देशन सब पंडित नेहरू ने किया। (कांग्रेस अधिवेशन)

इतनी सारी गुड़ियाँ दुनिया में कहीं एकसाथ इकट्ठी न हुई होंगी—लाखों। सब एक रंग की—सफेद! सबके सिर पर एक ही सफेद मुकुट, लेकिन आकृति अलग-अलग। और इतनी सारी गुड़ियाँ तरह-तरह के रंगीन धागों से 'नट' से बँधी हुईं—कोई 'पद' के पीले धागे से, कोई 'इनकमटैक्स-चोरी' के हरे धागे से! सबके-सब धागे सूत्रधार के हाथ में।

और सूत्रधार ने धागा खींचकर कहा—''समाजवादी नाच दिखाओ, मेरी गुड़ियो !'' तो सब गुड़ियाँ हाथों को मटकाकर नाचने लगीं और गीत गाने लगीं—'समाजवादी ढंग! समाजवादी ढंग!!' सोशलिस्टिक पैटर्न !

और अभी हाल में ही नागपुर में भी एक अखिल भारतीय गुड़िया सम्मेलन हो गया, जिसका नाम था 'भारत सेवक समाज!' इसमें भी वैसी ही गुड़ियाँ थीं। वही सूत्रधार!

अब जरा राज्यों की विधानसभाओं में जाकर देखिए—कहीं तीन सौ गुड़ियाँ बैठी हैं, कहीं दो सौ। वे मन से कुछ नहीं करतीं, ये कुछ सोचती ही नहीं, क्योंकि गुड़ियों के पास कहीं दिगाम भी होता है? तो इनको नचाने के लिए भी बड़े सूत्रधार ने छोटे-छोटे बचकाने सूत्रधार नियुक्त कर दिए हैं, जो इनके सूत्र को खींचते हैं तो ये एकदम नाचने लगती हैं। इन गुड़ियों के हाथ से एक-एक धागा बँधा है, जिसे जरा खींचते ही इनके हाथ उठने लगते हैं।

भारत की परंपरा महान् है। ग्रीक नाटकों से पहले से यहाँ गुड़ियों का नाच होता रहा है। हमारा नाट्यशास्त्र सबसे पुराना है। कोई भी देख ले कि आज भी वह परंपरा कायम

* प्रहरी, 21 मार्च, 1955

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। जगह-जगह गुड़िया सम्मेलन होते हैं। गुड़ियों के देश में गुड़िया सम्मेलन न हो तो क्या जापान में होगा? और भारत के सबसे बड़े गुड़िया नचानेवाले व्यक्ति का नाम है—जवाहरलाल नेहरू !

इसीलिए ठीक ही छपा है—दिल्ली में पंडित नेहरू ने अंतर्राष्ट्रीय गुड़िया सम्मेलन का उद्‌घाटन किया।

समाचार-पत्रों में आगे यह नहीं कहा गया है कि किस देश से कौन-सी विशेष गुड़िया आई।

उत्सुकता रह गई कि इस गुड़िया सम्मेलन में भाग लेने के लिए अमेरिका ने अपनी गुड़िया च्यांग काई शेक, मोहम्मद अली आदि भेजीं कि नहीं।

समाजवादी ढाँचे में साहित्य*

चीजों के आकार बदल रहे हैं कि वे समाजवादी ढाँचे में फिट हो जावें। ढाँचा तो बदल नहीं सकता। हजारों सालों के जो ढाँचे बने हुए हैं उनमें अब एक नया ढाँचा, समाजवादी ढाँचा मिल गया है और अब दौड़ लगी है कि कौन इस ढाँचे में फिट होता है। जिनके सिर पर कल लाल टोपी थी उन्होंने उसे उतारकर आज सफेद लगा ली है—समाजवादी ढाँचे में फिट होने के लिए। जो कल जननेता थे वे आज सरकारी नौकर हो गए हैं—समाजवादी ढाँचे में फिट होने के लिए।

अब साहित्य की बारी है। इस क्षेत्र में भी बड़ी हलचल है—समाजवादी ढाँचे में ढलने की। मध्यप्रदेश इस मामले में अगुआ है। दो साल पहले साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में वित्तमंत्री को प्रतिष्ठित करके समाजवादी ढाँचे की व्यवस्था अवाड़ी अधिवेशन के लगभग डेढ़ साल पहले यहाँ शुरू हो गई थी। और जब 'मोर हिंदी भवन' की हर ईंट इसी ढाँचे को मजबूत कर रही है। (मोर एक बड़े सेठ हैं)।

तो जब सर्वत्र समाजवादी ढाँचे की व्यवस्था हो जाएगी तब शासन-विधान भी बदलेगा ही और हर क्षेत्र के नए कानून बनेंगे और साहित्य विभाग के लिए भी नए कानून बनेंगे। मध्यप्रदेश में इस नवीन समाजवादी ढाँचे का जो प्रयोग चला हुआ है, उसका अध्ययन करके और उसकी सफलता से अभिभूत होकर 'अघोर भैरव' भावी विधान-निर्माताओं के सामने समाजवादी ढाँचे के शासन-विधान के साहित्य विभाग के लिए नियमों का एक कच्चा मसौदा पेश करता है—

*प्रहरी, 22 मई, 1955

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य विभाग

परिभाषा—साहित्य के अंतर्गत निम्नलिखित वस्तुएँ मानी जावेंगी—

1. कागज पर छपा हुआ हर एक शब्द जिसमें 'रामचरितमानस' से लेकर साबुन के लेबिल तथा 'नई धारा' से लेकर प्रगति की पत्रिकाएँ आवेंगी।

2. वे सब कविताएँ, कहानियाँ, उपन्यास और निबंध जो मंत्रियों, उपमंत्रियों और अफसरों के दिमागों में हैं और जो लिखे नहीं जा सके! यह साहित्य भी लिखित साहित्य की तरह ही पारितोषिक के योग्य माना जावेगा।

3. वे पांडुलिपियाँ जो अफसर लेखकों ने दफ्तरों में ही टाइपिस्टों से सरकारी कागज पर टाइप कराई हैं।

4. मंत्रियों के भाषण मौलिक रूप में अर्थात् अखबारनवीसों द्वारा सुधारकर छापे हुए रूप नहीं।

5. अन्य चीजें, जो सरकार समय-समय पर इसके अंतर्गत लाना चाहे।

विधान

1. जैसे जल, थल और वायुसेना का प्रधान राष्ट्रपति होता है, वैसे ही राज्य के साहित्य सम्मेलन का सभापति मुख्यमंत्री या वित्तमंत्री होगा।

2. उक्त मंत्रियों की असमर्थता हो तो उनके द्वारा नामजद कोई सरकारी साहित्यकार होगा।

3. सभापति जब तक चाहे तब तक पद पर रह सकेगा। उसे नवीन चुनाव कराने को बाध्य नहीं किया जा सकेगा। एक सभापति चाहे तो जीवन-भर भी सभापति रह सकता है और वह यदि वसीयतनामे में लिख जावे तो उसके बाद उसका पुत्र होगा। इस मामले में साहित्य सम्मेलन व्यक्तिगत सम्पत्ति ही माना जावेगा।

4. हर सभापति कम-से-कम एक इमारत बनवाएगा। चूँकि मंत्री ही सभापति होगा, इसलिए इसमें आर्थिक कष्ट नहीं होगा। बड़े व्यापारियों से दान लेना चाहिए और बदले में उनको काली सुविधाएँ देना चाहिए।

5. इमारत का निर्माण होते ही नया निर्वाचन होगा। अतएव इमारत का निर्माण-काल ही तत्कालीन सभापति का कार्य-काल होगा।

6. सम्मेलन की ओर से अभिनंदन-ग्रंथ केवल मंत्रियों को भेंट किए जा सकेंगे। सबके पहले इसे पाने का अधिकार मुख्यमंत्री को होगा। तत्पश्चात् एक के बाद एक सब मंत्रियों को अभिनंदन-ग्रंथ भेंट किए जाएँगे।

7. देश का जनसमाज जिनके ग्रंथ पढ़ता और पसंद करता है, उन्हें अभिनंदन-ग्रंथ कभी नहीं दिया जा सकेगा (जन-सुरक्षा के खयाल से यह निषेधात्मक आदेश लागू किया जाता है)।

8. अभिनंदन-ग्रंथ के लिए काम करनेवाले लोग विशुद्ध रूप से असाहित्यिक होना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए—इनमें असफल कवि, असफल लेखक, असफल संपादक, सरकारी नौकर, सेठ-साहूकार आदि शामिल होंगे।

9. इन काम करनेवालों को साहित्य सम्मेलन भरपूर खर्चे और भत्ता देगा। याने वर्धा से आने पर भी बंबई से आने का किराया माँगा जाय तो देना होगा। और मित्र के यहाँ भोजन करके भी 5 रुपए भोजन खर्च माँगा जाय तो भी बिना आनाकानी देना होगा।

10. अभिनंदन-ग्रंथ में मंत्री, नेता, सेठ, साहूकार, व्यापारी आदि का प्रचार होगा, इन्हीं की तस्वीरें होंगी। राज्य की वास्तविक साहित्यिक गतिविधियों का इस ग्रंथ से लेशमात्र भी संबंध नहीं होना चाहिए।

11. सरकार हर वर्ष लोक सेवा आयोग के जरिए राज्य के साहित्यकारों से 'लाइसेंस' के लिए प्रार्थनापत्र मँगवाएगी। इनमें जिन साहित्यकारों को योग्य समझा जावे उन्हें एक-एक बिल्ला दिया जाएगा। इस बिल्ले को प्राप्त किए बिना कोई कवि या लेखक एक लाइन भी लिखेगा तो उस पर कानूनी कार्यवाही की जाएगी। (इस बिल्ले का आकार-प्रकार रेलवे कुली के बिल्ले के समान होगा)।

12. इसका बिल्ला लगानेवाला साहित्यकार 'सरकारी साहित्यकार' कहलाएगा और उसे ही रेडियो पर भाषण देने को बुलाया जाएगा, उसे ही सरकार इनाम देगी, उसी की चीजें छापेगी।

13. इन सरकारी साहित्यकारों के अतिरिक्त जो लोग बिना बिल्ला लगाए साहित्य-सृजन करेंगे, वे कानून की निगाह में वही अपराध करेंगे जो चोरी से शराब उतारनेवाले करते हैं।

उपवास से वर्षा*

यह प्रेस ट्रस्ट का समाचार है। प्रेस ट्रस्ट बड़ी विश्वस्त समाचार एजेंसी है। उसका नाम ही 'ट्रस्ट' से बना है, फिर विश्वास कौन नहीं करेगा? तो समाचार यह है कि बड़ौदा के पास किसी गाँव में संन्यासियों ने 7 दिन तक उपवास किया। परिणाम हुआ कि आठवें दिन झमाझम पानी बरसने लगा।

प्रेस ट्रस्ट संवाददाता ने देखा कि 7 दिन तक साधुओं ने तपस्या की और आठवें दिन उसने देखा कि पानी बरसा। अब तपस्या और पानी का संबंध भला क्यों नहीं जुड़ेगा ? इस ऋतु में मानसून आता है; एक मेघपुंज सहज ही उस ओर आया और बरस गया। यह बात प्रेस ट्रस्ट के जानने लायक नहीं है। प्रेस ट्रस्ट को तर्क और विज्ञान से क्या मतलब ?

तो विश्वस्त एजेंसी का समाचार है, इसलिए जरूर मानना पड़ेगा कि साधुओं की

* प्रहरी, 31 जुलाई, 1955

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तपस्या सफल हुई। वे भूखे रहे कि उनके खाली पेटों से एक खास तरह की वायु निकलकर पश्चिमी सागर तक गई और एक मेघ-समूह को लपेटकर ले आई और बड़ौदा में बरसा दिया।

अब मान लीजिए बड़ौदा के इस गाँव में 20 साधु तपस्या कर रहे थे और जयपुर के पास 40 साधु तपस्या कर रहे थे, तो वह बादल का टुकड़ा बड़ौदा न जाकर जयपुर जाएगा क्योंकि एक जगह 20 हार्स पावर है तो दूसरी जगह 40 हार्स पावर! हिसाब के सुभीते के लिए 'हार्स पावर' मान लिया गया है। है असल में 'पाखंड पावर'।

इस प्रकार यह बात सिद्ध हुई कि साधु लोग अगर चाहें तो मेघ कहीं भी बरसवा सकते हैं। इसलिए भारत सरकार को कुछ लाख साधु मासिक वेतन पर रखने चाहिए। इसे आगामी पंचवर्षीय योजना में शामिल करना चाहिए। सिंचाई योजनाओं पर जितना खर्च हो रहा है उसे बंद करके साधुओं की एक जमात फौज की तरह रखनी चाहिए। जैसा सेना के चार कमांड हैं, वैसे ही इस 'मेहसेना' के चार कमांड स्थापित करने चाहिए। फिर जहाँ वर्षा की जरूरत हो वहाँ इस सेना का एक दस्ता रवाना कर देना चाहिए। बस साधु तपस्या करेंगे, उसी समय अरब सागर में भाप बनेगी और बादल एकदम उस स्थान को दौड़ आवेंगे। हमारी खाद्य समस्या हल हो जाएगी।

लेकिन जैसे सरकार सैनिकों की खुराक वगैरह का अच्छा प्रबंध करती है वैसे ही इनको भी रबड़ी-मलाई आदि का इंतजाम करना चाहिए। याने जैसे नागरिकों को भूखे रखकर भी सेना को माल खिलाया जाता है, वैसे ही इन साधुओं को भी। अगर साधु हट्टे-कट्टे होंगे तो अधिक तपस्या कर सकेंगे।

अपने देश में यह बात जमेगी भी, क्योंकि हमारे यहाँ अभी भी बुखार की दवाई ओझा का मंत्र है; हैजे की दवा झाड़-फूँक है, टाइफाइड में पंडित द्वारा शनि की पूजा होती है। जब वर्षा के लिए साधुओं की फौज रखी जाएगी, तब इस देश की जनता बहुत खुश होगी। फिर तो सिनेमा के आरती के रिकॉर्ड बजेंगे।

लेकिन वैज्ञानिक युग है, इसलिए डर लगता है। फिर इस देश के प्रधानमंत्री बहुत वैज्ञानिक दृष्टिवाले हैं। एक बार बिहार में भूकंप हुआ था। गांधीजी ने कहा कि हरिजनों पर जो हम अत्याचार करते हैं, उसके परिणामस्वरूप परमात्मा ने यह दंड हमें दिया है। तब पंडित नेहरू ने कहा कि यह क्या व्यर्थ की अंधविश्वासपूर्ण और अवैज्ञानिक बात कह दी। हरिजनों पर सबसे अधिक अत्याचार तो दक्षिण में होता है और भूकंप हुआ है बिहार में। अब यह कैसी बात है कि दक्षिण के लोगों के पाप का परिणाम बिहार के लोगों को भुगतना पड़े।

वैसे संत विनोबा ने पिछले साल जरूर आशाप्रद बात कही थी। जब वे बीमार पड़े तो उन्होंने दवा लेना नामंजूर कर दिया। कहने लगे कि भगवान का भरोसा है। अगर मेरी मौत नहीं आई है तो मैं बच जाऊँगा। अब अगर संत की बात सारा देश मान ले, तो क्या हो। जरा इसका अंदाज लगाइए।

पंडित नेहरू के कारण शायद साधुओं का सदुपयोग न हो सके। इसलिए मेरी सलाह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि हिंदू महासभा, जनसंघ वगैरह को मिलाकर करपात्री महाराज को सब शासन सौंप देना चाहिए। तब बस सब ठीक हो जाएगा। वर्षा वगैरह भी ठीक समय पर होगी, फसल होगी—बल्कि तपस्या से कारखाने चलेंगे, मंत्र से बिजली बनेगी।

साधुओं के लिए काम !*

योजनामंत्री नंदा साहब पूर्ण रूप से योजनामय हैं।

अभी एक वेदांत सम्मेलन में योजनामंत्री ने भाषण दिया तो साधुओं के लिए एक योजना रच डाली। कहा कि आगामी पंचवर्षीय योजना में साधुओं को समाज के नैतिक तथा आध्यात्मिक स्तर को उठाने का काम देना चाहिए। भारत में इस समय लगभग 10 लाख साधु हैं।

10 लाख सरकारी आँकड़ा है। वास्तव में इससे दुगने होंगे। सरकारी आँकड़े कभी कम और कभी ज्यादा होते हैं। सरकार की गोली या सरकार की रेलगाड़ी से मरे आदमियों के आँकड़े कम दिए जाते हैं और सरकार के द्वारा किए गए जनहित के काम के आँकड़े अधिक!

तो अब इन लाखों साधुओं को काम दे दिया गया।

हमारे राज्य में यह काम पहले ही शुरू कर दिया गया। दूधाधारीमठ, रायपुर के महंत विश्वविद्यालय कोर्ट के मेम्बर बना दिए गए, जिससे विश्वविद्यालय का नैतिक और आध्यात्मिक स्तर बढ़ेगा। नंदा पीछे पड़ गए और सुकुलजी आगे बढ़ गए।

योजना बहुत अच्छी है। सरकार 2-4 करोड़ रुपए बजट में अलग से साधुओं के लिए रख दे, जिससे उनका भोजन वगैरह का प्रबंध हो और कुछ करोड़ के जौ, तिल, शक्कर, घी आदि उन्हें दे दें और कहें—लो महात्माओ, यज्ञ में इन्हें झोंको और नैतिक स्तर बढ़ाओ।

नेताओं और मंत्रियों को नैतिक स्तर की बड़ी चिंता है। याने जीवन-स्तर चाहे रसातल को चला जाय, नैतिक स्तर हिमालय के शिखर पर चढ़ा रहना चाहिए। यह स्थिति ही अयथार्थ और असंभव है।

हमारा खयाल है इन लाखों साधुओं से दूसरा काम लेना चाहिए, लेकिन वह काम नंदा तो नहीं ले पावेंगे। काम यह है कि इन हट्टे-कट्टे नरों से देश की परती जमीन फुड़वाना चाहिए, खेती का काम कराना चाहिए। इनमें अधिकांश तो निरक्षर भट्ट हैं। नैतिक स्तर के बारे में तो वे ही जानते हैं, उनके भगवान भी जानते होंगे; कुछ हम भी अनुमान लगा सकते हैं। इसलिए कुछ और काम तो इनसे होगा नहीं। इन्हें खेतों पर जुटा देना चाहिए।

---

* प्रहरी, 12 फरवरी, 1956

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमि उर्वरा हो जाएगी साधुओं की तपस्या के प्रभाव से। पुराने जमाने में यही होता था। जब कहीं अकाल पड़ता था तब साधु हल चलाते और फसल लहलहा उठती थी।

साधुओं और मठाधीशों को वर्षों से पसीना नहीं आया होगा। जब खेत में पसीने की बूँदें गिरेंगी तो संतों के पसीने के प्रताप से भूमि सोना उगलेगी। बड़ा मजा आ जाएगा मठाधीशों को हल चलाते देखकर।

लेकिन नंदाजी और उनकी सरकार तो यह कर नहीं पावेगी। इसलिए साधुओं की यह पीढ़ी तो बिना श्रम के गुलछर्रे उड़ा सकती है। लेकिन नई भरती न करें क्योंकि इन बेचारे निठल्लों को आगे कोई नहीं बरदाश्त करनेवाला है। आगे समाजवाद है, जिसमें काम के बिना कोई अपाहिज और रोगी ही खा सकेगा—तगड़े 'साधु' कहलानेवाले नहीं।

कांग्रेसी मिनिस्टर और कम्युनिस्ट कुआँ !*

खबर सनसनीखेज है। मध्यप्रदेश के एक भोपाल निवासी मिनिस्टर के लिए कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर के कुएँ का पानी रोज जाता है।

रोज सबेरे एक ठेले में इतवारी स्थित कम्युनिस्ट कुएँ में से पानी ले जाया जाता है।

तरह-तरह के सवाल उठते हैं।

शहर में बहुत कुएँ हैं, फिर भी इसी कुएँ का पानी क्यों चुना गया?

यह पानी अच्छा है, इसका क्या सबूत?

कांग्रेस अनुशासन के मुताबिक यह बात कहाँ तक ठीक बैठती है कि कांग्रेसी मिनिस्टर कम्युनिस्टों का पिलाया पानी पिएँ?

कम्युनिस्ट अपने कुएँ का पानी कांग्रेसी मिनिस्टर को क्यों पीने देते हैं?

इस संबंध में कम्युनिस्टों का कहना है कि हम तो आजकल बड़े-बड़े कांग्रेसियों को 'पानी पिला' रहे हैं। उनका खयाल है कि इस पानी में साम्यवाद के कीटाणु हैं जो सीधे दिल और दिमाग पर असर करते हैं।

हमारा खयाल है कि मंत्री की तासीर को यह पानी नुकसान पहुँचाएगा, इससे उनकी 'सियासी सेहत' खराब होगी। काटजू साहब को अपने सहयोगियों की सेहत ठीक रखनी चाहिए और एक नया कुआँ मंत्री के बंगले के अहाते में खुदवा देना चाहिए। मंत्री इस तरह दूसरों के कुओं पर भटकें, यह ठीक नहीं।

सुना है रूस से कोई नया चूर्ण आया है, जो भारत की तमाम कम्युनिस्ट पार्टियों को बाँटा गया है। इसे पानी में मिला देने से पीनेवाले के विचार एकदम बदल जाते हैं।

---

*प्रहरी, 5 मई, 1957

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमन्नारायणजी को इस रहस्य का तुरंत पता लगाना चाहिए और अवैध रूप से आनेवाले इस चूर्ण पर रोक लगानी चाहिए।

बच्चों पर अलाउंस !*

बजट में एक बात बिलकुल भारतीय संस्कृति के अनुकूल अनायास हो गई—हर बच्चे पर 300 रुपए से 600 रुपए तक अलाउंस!

ऋषियों का आदेश है—प्रजा का तंतु कहीं टूटने न पाए!

हमारे अर्थमंत्री भारतीय संस्कृति के रक्षक के रूप में युगों तक याद किए जावेंगे।

प्राचीन आर्य धर्मपत्नी से कहता था—आर्ये! मुझे 11 पुत्र दे!

'उग्र' की वह कहानी पढ़ी होगी जिसमें ब्राह्मण गंगदत्त—104 पुत्रों का पिता—हर पुत्र के लिए माला का एक मनका जोड़कर बोला, प्रिये! एक पुत्र और दे! 'सुमेर' लगाकर माला पूरी कर लूँ।

अब एक बालक पर 300 रुपए से 600 रुपए इनाम!

याने 'ग्रो मोर फुड' के साथ 'ग्रो मोर चिलरन' का नारा लगेगा। ठीक भी है—अन्न बढ़ेगा, तो खानेवाले भी बढ़ाना चाहिए।

इसलिए अब बच्चों की फसल बढ़ेगी।

मध्यवर्ग के आदमी के 5-6 बच्चे—जिन्हें भर-पेट भोजन नहीं दे पाता, ठीक से तन नहीं ढाँक पाता, ठीक से शिक्षा नहीं दे पाता, बड़े होने पर या तो आवारा हो जावें या कहीं बाबू-चपरासी। एक दो लड़कियाँ हुईं, तब तो जिंदगी ही नष्ट हो गई। माँ-बाप की भी और उनकी भी।

एटम युग का आदमी आदिम युग के आदमी-सा असहाय है—बिलकुल प्रकृति का गुलाम ! विज्ञान की आश्चर्यजनक देन से बिलकुल बेखबर !

नए बजट में बच्चों पर टैक्स लगाना था, या एक सीमा से अधिक सन्तति पर जुर्माना। इस कदर संतानोत्पत्ति को एक राष्ट्रीय अपराध घोषित करना चाहिए।

जमीन उतनी ही, उत्पादन कम, गरीबी बढ़ती हुई। अगर इस 'रेट' से जनसंख्या बढ़ती गई, तो भुखमरों और नंगों की एक पूरी जाति हो जाएगी विश्व के इस भाग में।

प्रधानमंत्री जो बार-बार परिवार-नियोजन पर जोर देते हैं, उसमें बड़ा अर्थ है। मगर भारतवासी हजार साल पहले के जमाने में रहना बड़ा पसंद करता है।

योजना-आयोग के सदस्य पाटिल ने विनोबा से एक बार परिवार-नियोजन के बारे में कहा, तो विनोबा ने उत्तर दिया—'सरकार हमारी नौकर है, हमने उसे हमारे बच्चों की

*प्रहरी, 9 जून, 1957

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवा का काम दिया है। नौकर को क्या हक है कि वह मालिक से कहे कि मालिक, संतान कम पैदा करो। अगर उससे काम नहीं सँभलता है, तो वह जाय। हम दूसरा नौकर रख लेंगे।'

बात थोड़ी हद तक तो ठीक है। पर यदि मालिक के घर में खाने को न हो, कपड़े न हों और बच्चे बढ़ते ही जावें, तो नौकर कहाँ से उनका पालन करें?

बम-विस्फोट बंद*

आजकल अखबार खोलने पर दो समाचार मुख्य रूप से पढ़ने को मिलते हैं। पहला, रूस द्वारा अणुअस्त्र-परीक्षण पर एकतरफा रोक और दूसरा, परीक्षा में बैठनेवाले विद्यार्थियों द्वारा लड़ाई-झगड़ा, मारपीट, हो-हुल्लड़…!

जहाँ तक अणुबम-परीक्षण बंद करने का सवाल है, अमेरीका को यह अच्छा नहीं लगा कि विश्वशांति और मानवता के हित में अणु-परीक्षण बंद हो। अमेरिका का कहना है कि यह तो प्रोपोगेंडा के लिए किया गया है।

अमेरीका की बात यों है—जब रूस अणुबमों का परीक्षण करता था तब अमेरिका कहता था कि देखो वह रूस परीक्षण कर रहा है। दुनिया को खतरे में डाल रहा है। अब जब उसने परीक्षण बंद कर दिया तो अमेरिका कहता है कि प्रोपोगेंडा कर रहा है।

अब विद्यार्थियों की बात लें। विद्यार्थियों का विरोध परीक्षा से है। कठिन प्रश्न यदि परीक्षा में आ गए तो विद्यार्थी परीक्षा भवन से हट जाएँगे, क्योंकि उनका हक है कि आसान प्रश्न आवें जिन्हें वे साल-भर बिना पढ़े भी कर सकें। वैसे उनकी वास्तविक माँग यह है कि प्रश्नपत्र एक महीने पहले अखबार में छप जाएँ। न छपने से उन्हें असुविधा होती है। ठीक पढ़ने के वक्त पर उन्हें यह पता लगाना पड़ता है कि किसने पेपर निकाला है, उसमें क्या आया है। उनकी माँग न्यायोचित है।

उनकी दूसरी माँग यह है कि परीक्षा-भवन में उन्हें नकल करने दी जाय। इस संबंध में हमारा सुझाव है कि उन्हें परचा दे दिया जाय और कह दिया जाय कि वे घर से करके ले आएँ। इससे परीक्षा का बहुत-सा खर्च बच जाएगा। ये दोनों माँगें पूरी नहीं होने से 'सत्याग्रह' होगा। उनकी बात क्यों नहीं मानी जाएगी, जबकि हमारे यहाँ प्रजातंत्र है। जनता चाहेगी जैसा शासन होगा, तो विद्यार्थी चाहेंगे वैसी परीक्षा क्यों न होगी। यदि वे लिख देंगे कि मध्यप्रदेश की राजधानी काठमांडू है, तो इसे सही मानना पड़ेगा, क्योंकि यह उनका जनतांत्रिक निर्णय है।

---

*प्रहरी, 6 अप्रैल, 1958

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ तक परीक्षकों का सवाल है, उनमें कुछ यह समझते हैं कि जितना कठिन परचा निकालता है वह उतना ही महान विद्वान माना जाता है, इसलिए परचा ऐसा निकालना चाहिए जो खुद अपने से न बने।

निरीक्षक लोग नकल कराना अपने कर्तव्य में शामिल समझते हैं लेकिन वे उन्हीं को कराते हैं जो अपने हों या जिनकी ट्यूशन के हों। इसलिए इस समाजवादी व्यवस्था में हर निरीक्षक को बीस रुपया अलग से नकल कराने के देना चाहिए, जिसमें सबको यह सुविधा मिल जाय।

कालेजों की पढ़ाई का यह हाल कि 'अघोर भैरवी' के पास इम्तहान के मौके पर कुछ विद्यार्थी किताबें लिये आते हैं। कभी तो ऐसा हुआ है कि मुझे ही किताबों के पन्ने फाड़ने के लिए चाकू देना पड़ा है। जब किताब खुलती है तो ताजे छपे कवर की महक उठती है। पूछता हूँ कि अभी तक किताब खुली क्यों नहीं, तो जवाब मिलता है कि प्रोफेसर ने खुलवाई ही नहीं। और फिर यह कि अमुक प्रोफेसर तो पढ़ाते ही नहीं हैं, अमुक घर की बात किया करते हैं और अमुक तो कोरे आ जाते हैं। इस तरह जो पढ़ाए जाते हैं, वे हुल्लड़ और नकल न करें तो क्या करें!

जब तक कालेज का प्रोफेसर तहसीलदारी के लिए लालायित रहेगा और रीडर आई.ए.एस. की परीक्षाओं में बैठेगा, तब तक कालेजों में अच्छे पढ़ानेवाले आ ही नहीं सकते।

लेकिन विश्वविद्यालय और शिक्षा मंत्रालय कोई कमजोर नहीं हैं कि परीक्षा-पद्धति को बदल दें। वे बराबर दो साल की पढ़ाई का इम्तहान तीन घंटे में लेते रहेंगे।

हारा कांग्रेसी कहाँ जाय ?*

हारा कांग्रेसी कहाँ जाय?

केवल कांग्रेसी ही नहीं, बल्कि मंत्री भी रहा हो, 5 सालों तक खूब तपा हो और फिर आम चुनाव में हार गया हो, तो उसका क्या हो? उसे कहाँ जगह है?

ऐसे लोगों के संबंध में कांग्रेस और कांग्रेस सरकार की नीति साफ हो गई है—ऐसे आदमी को किसी विश्वविद्यालय का उपकुलपति बना दिया जाय।

हमारे मंत्री चंद्रभानु गुप्त को लखनऊ विश्वविद्यालय का उपकुलपति बनाने की कोशिशें चल रही हैं।

अपने राज्य में एक, कई बार हमारे भूतपूर्व मंत्री उपकुलपति हैं ही।

जो जनता का विश्वास खो दे उसे शिक्षा-विभाग में भेज देना चाहिए। शिक्षा-विभाग कचरे की टोकरी है। जो सामान बेकार होता जाय उसे इसमें फेंकते जाना चाहिए।

---

* प्रहरी, 28 अप्रैल, 1958

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनका कक्षा में मुँह न खुले, जो विद्यार्थियों को देखकर काँप जावे, उन्हें प्रोफेसर बना देना चाहिए। जो अफसर सब जगह नालायक सिद्ध हो गए उन्हें तरक्की देकर शिक्षा-विभाग का अफसर बनाना चाहिए।

बात चल रही है कि जबलपुर विश्वविद्यालय का उपकुलपति किसे बनाया जाय ? हमारे राज्य में इस बार किसी मंत्री को हारने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। इसलिए हमारा खयाल है, महंतजी को बना देना चाहिए। जब वे एक फुट लंबा तिलक लगाकर गद्दी पर बैठेंगे तो मालूम होगा, त्रेतायुग के कोई ऋषि तपोवन के विश्वविद्यालय में बैठे हैं।

जब दूधाधारीमठ के महंत सागर विश्वविद्यालय के कोर्ट के सदस्य हो सकते हैं, तो महंत लक्ष्मीनारायण दास उपकुलपति क्यों नहीं?

शर्मनाक

'भारतीय बनिया संस्कृति' एक अलग ही संस्कृति है। इस संस्कृति का लक्षण है कि किसी भी मामले में आदमी के मन में पहले यह विचार आता है कि मैं इसमें कहाँ बेईमानी कर सकता हूँ।

लोगों को याद होगा कि एक बार भारतीय बनियों ने मलाया को अच्छी अलसी का नमूना दिखाकर फिर रद्दी अलसी भेज दी थी। बड़ी बदनामी हुई थी। एक बार ईजिप्त से भी अच्छे माल का भाव करके, बोरों में ऊपर-ऊपर अच्छा माल और फिर नीचे कचरा भरकर भेज दिया था।

अभी एक और घटना हो गई।

एक बड़े प्रसिद्ध और नामधारी होटल में रूसी दूतावास के सांस्कृतिक सचिव को ठहराया गया—15 रु. रोज पर। दो दिन ठहरकर जाते वक्त उन्होंने बिल माँगा तो उन्हें 45 रु. का बिल दिया गया। उन्होंने पूछा कि 45 रु. किस हिसाब से हुआ, तो जवाब मिला कि आपने तीन दिन ठहरने की बात की थी, इसलिए तीन दिन का लगा दिया है। दो दिन ठहरने पर तीन दिन का किराया लगाया जाना जब उन्होंने गलत बताया, तो झट 30 रु. का दूसरा बिल बना दिया गया।

पहलेवाले बिल के दो टुकड़े करके होटल के अधिकारी ने फेंक दिए जिन्हें रूसी भाई ने उठा लिया।

और उसमें देखा कि 2 दिन के ही 45 लगाए गए हैं। तब वह बहुत बिगड़ा और बोला कि रुपया चाहे जितना ले लो, पर ऐसी बेईमानी मत करो। हम विदेशी लोग आपके चरित्र और आपकी संस्कृति के बारे में क्या धारणा लेकर जावेंगे?

खैर, उस भाई को समझाया गया कि यह 'बनिया संस्कृति' है। भारत की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन-संस्कृति नहीं है। भारत की जन-संस्कृति उसने तब देखी थी, जब नौका-विहार करने के बाद उसने 5 रु. मल्लाहों को दिए, तो वे यह कहते हुए लौटाने लगे कि आप तो हमारे मेहमान हैं, आप से पैसा नहीं लेंगे।

देशवासियों के नाम संदेश

[भूतपूर्व प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई के 1977 में भाषणों और संदेशों से प्रेरित]

ऐसा भी हो सकता है कि परिस्थितियाँ मुझे ऐसी उछाल दें कि मैं शासक पार्टी और सरकार का बड़ा नेता बन जाऊँ। प्रधानमंत्री भी बन सकता हूँ। तब मुझे देशवासियों के नाम संदेश प्रसारित करना पड़ेगा। मैं आशाओं और आश्वासनों से भरा यह संदेश प्रसारित करूँगा :

मेरे देशवासियो,

मैंने आप लोगों को 'देवियो' और 'सज्जनो' नहीं कहा। जब से उस स्त्री (इंदिरा गांधी) ने आपात्काल लगाकर हम लोगों को तंग किया है, मैं किसी स्त्री को 'देवी' नहीं कहता। पहले मैं प्रार्थना में 'सीताराम' और 'राधाकृष्ण' कहता था, पर अब केवल 'रामकृष्ण' कहता हूँ। मेरी सलाह है कि आपमें जिनका नाम सीताराम है, वे उसे रामचरन कर लें; और राधाकृष्ण अब कृष्णदास हो जाएँ। अगर आप जल्दी ऐसा नहीं करेंगे तो मैं गृहमंत्री से कह दूँगा और वे आपको 'दुरुस्त' कर देंगे।

आप लोगों ने हम पर विश्वास करके हमें सत्ता सौंपी। ऐसा आपने पहली बार नहीं किया है। पहले भी आप विश्वास करके ही सत्ता सौंपते रहे हैं। तो, जैसे पिछली सरकार ने आपके विश्वास को फलीभूत किया, वैसे ही हम भी करेंगे। हम उनसे किसी कदर हेठे नहीं पड़ेंगे।

देश के सामने बहुत समस्याएँ हैं। पिछली सरकार ने समस्याएँ-ही-समस्याएँ छोड़ी हैं। आखिर हम क्या हैं? हम भी तो पिछली सरकार की छोड़ी हुई समस्या हैं। तो देश की सबसे बड़ी समस्या गरीबी और बेकारी है। हम दस वर्षों में गरीबी और बेकारी खत्म कर देना चाहते हैं। मगर आप कहेंगे कि यह बहुत जल्दी है। बीस साल में खत्म होना चाहिए। खैर, हम समझौता कर लेते हैं—पंद्रह सालों में गरीबी और बेकारी मिटाएँगे। आप भी खुश, हम भी खुश। पर मैं आपसे साफ कहे देता हूँ कि आप कितना भी जोर डालें, पंद्रह साल से एक दिन भी ऊपर हम गरीबी और बेकारी नहीं चलने देंगे। आपको भला लगे, चाहे बुरा।

दूसरी समस्या महँगाई की है। सरकार जानती है कि मुनाफाखोरी हो रही है। पर मुनाफाखोरी मिट सकती है यदि लोग महँगी चीजें खरीदने से इनकार कर दें। गेहूँ महँगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है तो मत खरीदिए। दाल महँगी है तो मत खरीदिए। जब लोग खरीदेंगे ही नहीं तो मुनाफाखोर किसे बेचेगा? मुनाफाखोरी अपने आप खत्म हो जाएगी। अब आप कहेंगे कि नहीं खरीदेंगे तो खाएँगे क्या? मैं पूछता हूँ, क्या दाल-रोटी से ही पेट भरता है? आप फल और दूध का सेवन कीजिए। फिर भी इस मामले में सरकार अपना कर्तव्य करेगी। हम महँगाई पाँच साल, तीन महीने और बारह दिन में खत्म कर देंगे।

हरिजनों की समस्याएँ भी हैं। ये समस्याएँ इसलिए पैदा हुईं कि इन लोगों को 'हरिजन' कहा जाता है। हमारे विशेषज्ञ विचार कर रहे हैं कि इन्हें कौन-सा दूसरा नाम दिया जाय। जब हरिजन ही नहीं होंगे तो हरिजन समस्या भी नहीं रहेगी। न रहेगा झाड़, न बजेगी बाँसुरी—झाड़ से मेरा मतलब बाँस से है। अब नया नाम खोजने और उसे बदलने में समय लगेगा। हम इस समस्या को सात साल, चार महीने और तेरह दिनों में खत्म कर देंगे।

लोग कहते हैं कि तस्करी बढ़ी है। पर तस्कर तो रोटरी क्लबों में नैतिकता पर भाषण दे रहे हैं। वे अपने ही लोगों के बीच हैं। मैंने तस्करों से बात की है। उनका स्तर उठ गया है। वे अब अंतर्राष्ट्रीय नहीं, अंतरग्रही तस्करी करना चाहते हैं। इसके लिए उन्हें कुछ अंतरिक्षयान चाहिए। हम इस बारे में अमेरिका से बात कर रहे हैं। हम खुद भी अंतरिक्षयान बना रहे हैं। जब तस्करों को अंतरिक्षयान की सुविधा मिल जाएगी, तब वे चाँद से यूरेनियम लाकर अमेरिका में बेचा करेंगे। पर तब तक उन्हें अभ्यास बनाए रखने के लिए यहीं तस्करी करने दी जाएगी। मेरा विश्वास है, हम आठ साल, तीन महीने और सात दिनों में तस्करी खत्म कर देंगे।

भ्रष्टाचार की समस्या पर भी हमारा ध्यान है। इसे खत्म करने के लिए हम नए और सदाचारी मनुष्य पैदा करेंगे। हमारे वैज्ञानिकों ने ऐसी दवाएँ और इंजेक्शन खोज लिए हैं, जो गर्भवती को दिए जाएँगे तो सदाचारी बच्चा पैदा होगा। हम भ्रष्टाचार को गर्भ में ही खत्म कर देंगे। यह उपाय हम तत्काल चालू कर रहे हैं। यदि दवा और इंजेक्शन नकली नहीं हुए तो परिणाम शुभ होगा। अब नौ महीने तो गर्भ के हो गए। इसके बाद लगभग बीस-इक्कीस साल में आदमी कार्यक्षेत्र में आएगा तो भ्रष्टाचार बीस साल, नौ महीनों में खत्म हो जाएगा।

मैं तो शराबबंदी भी तुरंत लागू करना चाहता हूँ। पर मंत्रिमंडल में इस बारे में मतभेद है। आप जानते हैं, सरकार का संयुक्त उत्तरदायित्व होता है। हमें एक-दूसरे को समझाने में पाँच साल लगेंगे। यदि इस अवधि में सारा मंत्रिमंडल विरोधी हो गया तो तत्काल शराबबंदी लागू हो जाएगी। पर यदि पीनेवालों ने मुझ-जैसों को भी मदिराप्रेमी बना दिया तो मैं आपसे कहूँगा कि नशाबंदी देश के हित में नहीं है।

शिक्षा की समस्या भी है। असल में यह शिक्षा की समस्या अंकों की समस्या है। प्रश्न है : 10 + 2 + 3 हो या 10 + 3 + 2 हो। 10 के बाद 2 हो या 3, यह समस्या है। हम लोग इस समस्या को चार साल, दस महीने और बीस दिनों में सुलझा लेंगे।

और भी कई समस्याएँ हैं। लोग पान का पीक सड़क पर थूक देते हैं। ढोर कहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी गोबर कर देते हैं। कुत्ते भौंकते हैं। साँप काटते हैं। गधे रेंकते हैं। भैंस दूध में पानी की मिलावट करती है। जानवर खुलेआम प्रेम-व्यापार करते हैं। सूअर मैला खाता है। शेर बिना पकाए गोश्त खा जाता है।

हम इन सबको ठीक करेंगे, पर कोई काम बदले की भावना से नहीं करेंगे। यदि हम कुत्ते के लघुशंका के तरीके पर पाबंदी लगाते हैं तो हम यह सब इस बदले की भावना से नहीं कर रहे हैं कि वह हम पर भौंकता था। हम उसका नैतिक उत्थान करना चाहते हैं। इन सब सुधारों में भी पंद्रह साल, सात महीने और तीन दिन लग जाएँगे।

हम नागरिकों के स्वास्थ्य की समस्या भी सुलझाएँगे। मलेरिया और कैंसर ये दो रोग हमें दूर करने हैं। हमारे स्वास्थ्य मंत्री ने खोज कर ली है कि ये दोनों रोग एक ही तरह के मच्छर से होते हैं। इन मच्छरों को नष्ट करने की दवा भी उन्होंने खोज ली है। यह दवा बाहर मलेरिया के मच्छरों को मारने के लिए छिड़की जाएगी और यही दवा कैंसर के मच्छरों को मारने के लिए आदमी के पेट में भी छिड़की जाएगी। इस तरह हम नौ साल, एक महीना और दस दिनों में मलेरिया तथा कैंसर को खत्म कर देंगे।

हम जनता का नैतिक उत्थान भी करेंगे। हमें ज्ञात हुआ है कि पिछले शासन के काल में पातिव्रत धर्म में काफी गिरावट आई है। सरकार इससे चिंतित है। मैं जब नजरबंदी में था, तब समय काटने के लिए मैंने 'रामचरितमानस' का पाठ कई बार किया। उसमें उत्तम नारी का यह लक्षण बताया गया है :

उत्तम कर अस बस मन माहीं।
सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं।।

कुछ दुष्ट इसका उलटा अर्थ निकालते हैं कि उत्तम नारी वह है जिसके लिए सपने में भी कोई परपुरुष नहीं होता—अर्थात् सब अपने ही होते हैं। ऐसे दुष्टों के खिलाफ सरकार कानूनी कार्यवाही करेगी। हम दस साल, आठ महीने और दस दिनों में इस देश में पातिव्रत धर्म की पुनःप्रतिष्ठा कर देंगे।

अब जोड़िए कि ये सारी समस्याएँ कितने सालों में सुलझ जाएँगी। गरीबी और बेकारी खत्म करने के लिए 15 साल, महँगाई 5 साल 3 महीने 12 दिन—इस तरह जोड़कर देखें तो सारी समस्याएँ सिर्फ 101 साल, 1 महीना और 15 दिनों में हल हो जाएँगी।

जयहिंद।

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे

चुनाव हो गए। नतीजे आ रहे हैं। 'कार्यकर्ता' अब कहीं नहीं दिखता। चुनाव के दिनों में यह एक नई नस्ल पैदा होती है—कार्यकर्ता। सच्चा कार्यकर्ता वह है जो पार्टी को 'पालटी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोलता है, विरोधी को 'चुनैटी' देता है और जिसकी सारी कोशिश यह होती है कि उम्मीदवार से ज्यादा-से-ज्यादा पैसे चाय-नाश्ते के लिए झटक ले। वर्षा और शीत की संधि वेला में पतंगे बल्ब के आसपास मँडराते हैं। वे मुझे कार्यकर्ता लगते हैं और बल्ब उम्मीदवार। फिर पतंगे लोप हो जाते हैं, बल्ब बराबर जलता रहता है। कार्यकर्ता अब सिर्फ तब दिखेगा, जब किसी की जमानत दिलानी होगी, पुलिस केस दबाना होगा या तबादला कराना होगा।

बड़ा शोर था इस चुनाव का।

घोषणाएँ की जाती थीं कि यह चुनाव धर्मयुद्ध है; कौरव-पांडव-संग्राम है। धृतराष्ट्र चौंककर संजय से कहते हैं—ये लोग अभी भी हमारी लड़ाई लड़ रहे हैं। ये अपनी लड़ाई कब लड़ेंगे? संजय कहते हैं—इन्हें दूसरों की लड़ाई में उलझे रहना ही सिखाया गया है। ये दूसरे की लड़ाई लड़ते-लड़ते ही मर जाते हैं।

धर्मयुद्ध है, तो बड़े भाई युधिष्ठिर को जरूर जुआ खेलने की लत पड़ गई होगी। कौन कौरव और कौन पांडव—यह मेरी समझ में नहीं आ रहा था। देख रहा था कि जो अपने को पांडव कहते हैं, वही द्रौपदी को चौराहे पर नंगा कर रहे थे। और अब देख रहा हूँ कि कुछ पांडव कौरवों से भीतर-ही-भीतर मिले हैं और कुछ कौरव पांडवों से।

किस हेतु है यह धर्मयुद्ध? सुई की नोक के बराबर जमीन के लिए? या इसलिए कि द्रौपदी बाल बिखराकर बिफरती हुई पतियों को धिक्कार रही थी?

राजनीति का ज्ञानी कहता है—इस चुनाव के 'इश्यूज' समझो। यह चुनाव संविधान और न्यायपालिका का भाग्य-निर्णय करेगा। संविधान पवित्र है। वह बदला नहीं जा सकता। न्यायपालिका सर्वोच्च है। यह संविधान की रक्षा करती है।

वह संविधान की पोथी पर हल्दी-अक्षत चढ़ाकर उसकी पूजा करता है। मैंने पूछा—इसकी पूजा क्यों करते हो? वह जवाब देता है—क्योंकि यह 20-22 साल पहले लिखा गया था।

मैं पूछता हूँ—इसे किसने लिखा? क्यों लिखा? किन परिस्थितियों में लिखा? लिखनेवालों के विचार-मान्यताएँ क्या थे? उनकी क्या कल्पना थी? किन जरूरतों से वे प्रेरित थे? देशवासियों के भविष्य के बारे में उनकी क्या योजना थी?—क्या वे सवाल इस पोथी के बारे में पूछना जायज नहीं हैं?

वह कहता है—कतई नहीं। जो पहले लिखा गया है, उसके बारे में कोई सवाल नहीं उठाना चाहिए। वह तर्क से परे है। पहले लिखे की पूजा और रक्षा होनी चाहिए। वह पवित्र है। भोजपत्र पर जो लिखा है वह आर्ट पेपर पर छपे से ज्यादा पवित्र होता है।

दूसरा ज्ञानी कहता है—देखो जी, संविधान एक औजार है, जिससे कुछ बनाना है। संविधान को आदमी बनाता है, आदमी को संविधान नहीं बनाता है। इस औजार से मनुष्य का भाग्य बनाना है।

मैं पूछता हूँ—पर बनाने में औजार घिस जाए या टूट जाए तो?

जवाब देता है—तो मरम्मत कर लेंगे या दूसरा औजार ले आएँगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं देखता हूँ–एक ज्ञानी इस औजार को रोज निकालता है, उसे साफ करता है, उस पर पालिश करता है और डब्बे में रखकर उसे ताले में बंद कर देता है।

वह औजार से बनाता कुछ नहीं।

पूछता हूँ–इस औजार से कुछ बनोओगे नहीं?

वह कहता है–नहीं, बनाने से औजार बिगड़ जाएगा। हमारा कर्तव्य है, औजार की रक्षा करना। यह जो मजबूत तिजोरी है, वह न्यायपालिका है। इसमें हमने पालिश करके संविधान को रख दिया है। अब वह सुरक्षित है।

मैं पूछता हूँ–और तुम या हम-जैसे लोगों का क्या होगा? हमारा कहीं अस्तित्व है? हम क्या सिर्फ पहरेदार हैं?

उसी ज्ञानी के जवाब से ऐसा लगता है, जैसे न्यायपालिका को संविधान का गर्भ रह गया था, जिससे हम करोड़ों आदमी पैदा हो गए। हम संविधान और न्यायपालिका के व्यभिचार की अवैध संतान हैं। तभी तो हमें कोई नहीं पूछता।

न्याय देवता का मैं आदर करता हूँ। पर एक न्याय देवता सेशन कोर्ट में बैठता है, दूसरा हाईकोर्ट में और तीसरा सुप्रीम कोर्ट में। सेशनवाला न्याय देवता मुझे मौत की सजा दे देता है। मैं जानता हूँ, मैं बेकसूर हूँ। उधर हाईकोर्ट में बैठा न्याय देवता बड़ी बेताबी से मेरा इंतजार कर रहा है कि यह मेरे सामने आए तो मैं इस निर्दोष को बरी कर दूँ। पर मैं उसके सामने जा नहीं सकता क्योंकि मेरे पास 5-6 हजार रुपए नहीं हैं। न्याय देवता मेरी तरफ करुणा से देखता है और मैं उसकी तरफ याचना से–पर हम आमने-सामने नहीं हो सकते। अगर मैं 5-6 हजार खर्च कर सकूँ तो फाँसी से बच सकता हूँ।

कौन-सा न्याय देवता सच्चा है–सेशनवाला जो फाँसी देता है या हाईकोर्टवाला जो बरी करता है? छोटे आदमी के लिए छोटे देवता और बड़े आदमी की बड़े देवता तक पहुँच ! छोटे आदमी का भाग्य-निर्माता गाँव के बाहर के बेर-वृक्ष के नीचे रखा लाल पत्थर और बड़े आदमी के लिए रामेश्वर का देवता।

दिन-भर इन चीजों में दिमाग उलझा रहा। संविधान, न्यायपालिका, संसद, मूलभूत अधिकार! शब्द! संविधान का शब्द! उस शब्द का अर्थ, अर्थ-भेद! लिखा शब्द--ब्रह्म।

शाम को रिक्शे में बैठा लौट रहा था। रिक्शावाला बात करने लगा। मैं रिक्शे में अक्सर बैठता हूँ और जल्दी न हो तो रिक्शावाले से बात करता चलता हूँ।

मैं उससे पूछता हूँ--तुमने वोट दिया था?

उसने कहा–नहीं साहब, फालतू हाथ पर काला धब्बा लगवाने से क्या फायदा अपना ?

मतदान का 'पवित्र' अधिकार जिसे कहते हैं, उसे यह रिक्शावाला हाथ पर काला धब्बा लगाना कहता है।

वह कहता है–2-3 घंटे लगते हैं, वोट डालने में। इतने में 2-3 रुपए कमा लेते हैं, जिससे बच्चों का पेट रात को भरता है। वोट दे दें, तो बच्चे भूखे रहें। बाप के वोट देने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के शौक के लिए बच्चे भूखे क्यों रहें? बताइए साहब!

मैंने कहा—तुम क्या वोट की कीमत नहीं जानते?

उसने कहा—जानता हूँ। एक वोट से हार या जीत हो सकती है। मेरे एक वोट से कोई जीत सकता है। पर उससे मेरा क्या फायदा? हम लोगों का कोई भी तो भला नहीं करता। सब मजा-मौज करने लगते हैं। जब-जब हमने वोट दिया है, उसके बाद हमारी मुसीबत और बढ़ गई है। यह वोट ही पाप की जड़ है। तो हमने वोट देना ही बंद कर दिया।

संसदीय लोकतंत्र पर आस्था रखनेवाले को परेशानी होगी कि बहुत लोग वोट को पाप की जड़ मानने लगे हैं।

ज्ञानियों की बहुत बातें मैं सुन चुका था। अब इस अज्ञानी की बातें सुन रहा हूँ।

वह कहता है—साहब, इन सबमें होड़ लगी है कि कौन हमें भूखा मार ले। हमारा क्या है? किस्मत में जितना है, उतना मिल जाता है।

वह क्रोध से किस्मत पर आ जाता है। इस देश के ज्ञानी या अज्ञानी सबकी यह विडंबना है कि वह क्रोध से फौरन किस्मत पर आ जाता है।

रात को बहुत देर तक नींद नहीं आती। ज्ञानियों की और अज्ञानी रिक्शेवाले की बातें मन में गूँजती हैं।

नींद आती है, तो मैं एक सपना देखता हूँ—

मैं ऊबकर एक अजनबी प्रदेश में पहुँच गया हूँ।

वहाँ लोग जुलूस निकाल रहे हैं, प्रदर्शन कर रहे हैं। वे माँग कर रहे हैं—सरकार हमें भूखा रहने दे। हमें भूखा मरने का अधिकार है। यह सरकार हमारे इस अधिकार को छीन रही है। हमें ऐसी सरकार नहीं चाहिए।

सरकार की तरफ से जवाब दिया जाता है—सरकार अपनी तरफ से पूरी कोशिश करती है कि जनता भूखी रहे। पर कुछ पैदावार हो जाती है, तो हम क्या करें? उसे किसी को तो खाना ही पड़ेगा। आप लोगों को थोड़ा-थोड़ा अन्न देना सरकार की मजबूरी है।

जनता कहती है—नहीं, हमें यह सरकार नहीं चाहिए। हम सरकार बदलेंगे। हमें वह सरकार चाहिए, जो हमें भूखा रखे। सरकार की बहानेबाजी नहीं चलेगी। फिर से चुनाव हो।

मैं सपना देख रहा हूँ। निर्वाचन का निश्चय हो जाता है।

जिस मुद्दे पर चुनाव हो रहा है, वह है—'जनता को कैसे भूखा मारना है।'

राजनैतिक पार्टियाँ प्रचार-कार्य में लगी हैं।

पार्टी नंबर 1 कहती है—हम जनता को वचन देते हैं कि हम सत्ता में आते ही खेती बंद करा देंगे। अन्न ही पैदा नहीं होगा तो जनता भूखी रहेगी ही।

जनता कहती है—नहीं, अन्न तो खूब पैदा होना ही चाहिए। फिर भी हमें भूखा रहने देना चाहिए। अन्न पैदा नहीं होगा, तो हमारा राष्ट्रीय गौरव नष्ट हो जाएगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार्टी नं. 2 वादा करती है—हम अन्न तो पैदा होने देंगे। पर उसे महँगा इतना कर देंगे कि लोग खा नहीं सकेंगे।

जनता कहती है—यह खेल हम बहुत देख चुके। इससे हमें संतोष नहीं। हम नए ढंग से भूखा मरना चाहते हैं।

तब पार्टी नं. 3 मंच पर आती है। वह कहती है—हम अन्न की पैदावार खूब बढ़ाएँगे, पर साथ ही चूहों का भी सघन उत्पादन होगा। जनता को अन्न-उत्पादन का गौरव भी मिलेगा, और चूहों के अन्न खा जाने के कारण भूखा मरने का सुख भी।

जनता कहती है—यह पार्टी हमें पसंद है। इसी की सरकार बनेगी। हम बाहुल्य में भूखा मरना चाहते हैं।

सरकार बन जाती है। सघन खेती का कार्यक्रम लागू होता है। साथ ही चूहों का सघन उत्पादन भी चलता है। अच्छी-अच्छी नस्ल के चूहे—आदमी से बड़े कदवाले, आदमी से दुगुने पेटवाले।

अन्न पैदा होता है और चूहे उसे खा जाते हैं।

जनता खुश होती है और सरकार की जय बोलती है।

साल-पर-साल निकल जाते हैं। फसल चूहे खा जाते हैं। आदमी की पीढ़ियाँ खुशी-खुशी भूखी मर रही हैं।

एक साल अकाल पड़ जाता है।

चूहों के खाने के लिए अन्न नहीं है।

चूहे सरकार को घेरते हैं—हमने अपने को आदमी से बड़ा बनाने के लिए लगातार 'ओवरईटिंग' किया है। हमारी खाने की आदत पड़ गई है। हमें खाने को दो।

सरकार कहती है—जरा धीरज रखो। अगली फसल तक रुक जाओ।

चूहे कहते हैं—धीरज हमें नहीं है। हम भूखे हैं। तुम्हीं ने हमें खाने की लत लगाई है। अब हमारा पेट भरो।

सरकार कहती है—पर हम तुम्हारा पेट किस चीज से भरें?

चूहे बेताब हैं। वे भूख से तिलमिला रहे हैं। वे कहते हैं—तुम नहीं जानते पर हम जानते हैं कि हमें अब क्या खाना चाहिए।

और मैं देखता हूँ चूहे दाँत किटकिटाकर भिड़ जाते हैं।

पहले चूहे संविधान को कुतरकर खा जाते हैं।

फिर चूहे सरकार को खा जाते हैं, संसद को खा जाते हैं, न्यायपालिका को खा जाते हैं।

मेरी नींद खुल जाती है।

संवैधानिक बहस करनेवाले ज्ञानी मुझे याद आते हैं। फिर याद आता है, वह रिक्शावाला।

क्या अर्थ है, इस सपने का? पता नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर त्रिजटा सीता से कहती है—

यह सपना मैं कहौं विचारी
हुइ है सत्य गए दिन चारी।

प्रेम पुजारी : अगर मैं फिल्म बनाता

मेरे मकान के पास सड़क है। सड़क है तो लाजिमी है कि फिल्मों के विज्ञापन प्रसारित करते लाउडस्पीकर घूमेंगे ही। एक दिन मैंने सुना—''आइए और सारदा थियेटर के सुनहले पर्दे पर देखिए इस वर्ष की सर्वश्रेष्ठ फिल्म प्रेम पुजारी! प्रेम पुजारी!

मुझे अपने कस्बे के मंदिर के पुजारी की याद आ गई। वे सच्चे प्रेम पुजारी थे और एक भक्तिन को लेकर भाग गए थे। धर्म पूजा से निभ जाता था। अर्थ चढ़ोत्तरी से। तीसरा नंबर काम का है। भक्तिन भगवान के प्रेम में विभोर मंदिर में आती थी कि पुजारीजी बीच में आ गए। जब भगवान का भोग खाते हैं तो भगवान की भक्तिन को लेकर क्यों नहीं भाग सकते? वे भाग गए और अमर प्रेम-पुजारी हो गए, क्योंकि भक्तिन के परिवारवालों ने उनकी अच्छी पिटाई की।

मैं इसी आशा से फिल्म देखने गया कि हमारे पुजारी-जैसी ही कोई स्टोरी होगी। पर वहाँ दूसरी ही स्टोरी थी। देवानंद प्रेम-पुजारी है और उसकी वहीदा रहमान से शादी होती है। कहानी कुल इतनी ही है। सुना है पहले यह फिल्म पाँच मिनट की थी। यह जब बंबई में दिखाई गई तो देवानंद स्टेज पर आकर बोला—प्यारे दर्शको! यह फिल्म मेरी वहीदा से शादी के लिए बनाई गई है। आप देखिए, पाँच मिनट में हुई जाती है। तभी दर्शक चिल्ला पड़े—नहीं, ढाई घंटे बाद होगी। जरा धीरज रखो। हमने ढाई घंटे के पैसे दिए हैं। हम ढाई घंटे कुछ-न-कुछ देखेंगे, तब शादी होने देंगे। गड़बड़ की तो आग लगा देंगे।

बेचारा डाइरेक्टर-लेखक-नायक देवानंद मजबूर हो गया। उसने किसी तरह ढाई घंटे की कहानी बनाई।

देवानंद सिपाही है। वहीदा नर्तकी है। चीनी हमला होता है। यहाँ नायक में आदर्श डालना जरूरी है। वह अहिंसक और युद्ध का विरोधी है। वह चीनियों से दया के कारण नहीं लड़ता। लड़ता तो सबको अकेला ही मार डालता क्योंकि वह मामूली सिपाही नहीं, हिंदी फिल्म का नायक है। कोर्ट मार्शल होकर उसे सजा होती है। वह जेल से निकल भागता है, क्योंकि हिंदी फिल्म का नायक है। तभी संयोग देखिए कि उसे एक हवाई जहाज उतरता हुआ मिल जाता है, जिसे चला रही है जहीदा। दूसरी औरत मिल जाएगी तो नायक उसके साथ हो जाएगा, लेकिन इससे वहीदा के साथ उसकी शादी में कोई विघ्न नहीं आएगा। इतनी शिक्षा फिल्म दर्शक की हो चुकी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हवाई जहाज मिल गया है, और चलानेवाली सुंदर औरत है तो नायक क्या बेवकूफ है कि देश में ही वक्त खराब करेगा। वह जाता है लंदन, पेरिस, मेड्रिड और जाता है नाइट क्लबों में। वह करता है जासूसी। तभी पाकिस्तानी हमला होता है। वह अहिंसा भूल जाता है क्योंकि उसे देश वापस लौटना है, क्योंकि वहीदा उसका इंतजार कर रही है। पर शादी से पहले उसे कोई पराक्रम तो बताना ही है। वह अकेले ही अपने गाँव की रक्षा पाकिस्तानी हमलावरों से कर लेता है। देश पर हमला हुआ था, तब वह अहिंसक था। गाँव पर हमला हुआ तो लड़ने लगा। चीनियों से लड़ने के वक्त अहिंसावादी हो गया, मगर पाकिस्तान के वक्त हिंसावादी हो गया। कहाँ हैं स्वतंत्र पार्टी और जनसंघ के लोग? वे आवाज क्यों नहीं उठाते कि यह नायक चीनियों से मिला हुआ है।

जिसने अकेले पाकिस्तानियों को हरा दिया, उसके सामने खलनायक की क्या बिसात? नायक की वहीदा से शादी हो जाती है।

फिल्म देखकर मुझे लगा कि कसर रह गई। इस कहानी में बहुत संभावनाएँ थीं। इतना लंबा-चौड़ा केनवस। इतने विचित्र संयोग। नायक जेल से भाग जाता है। उसे जमीन पर खड़ा चीनी जासूस का हवाई जहाज मिल जाता है। वह लंदन, पेरिस, मेड्रिड जा सकता है। लौटकर अकेला ही पाकिस्तानी हमलावरों को खदेड़ देता है। देवानंद को सब संयोग मिल सकते हैं और वह सब कुछ कर सकता है, तो फिल्म में और भी चमत्कार भर सकता है। वह सिर्फ शादी में दिलचस्पी रखनेवाला हीरो तो है नहीं। वह डाइरेक्टर भी है। शादी तो पक्की है। पर दर्शकों के लिए कुछ और चमत्कार तथा संयोग तो डाल ही सकता था।

मुझ-जैसे मामूली कथा-लेखक से पूछ लेता तो मैं ही बता देता।

मसलन चीनी हमला। माना कि नायक अहिंसावादी है। मगर अहिंसा के भी तरीके हैं, हमलावर से निपटने के। देवानंद वहीदा को लेकर गौरीशंकर की चोटी पर चढ़ जाता और वहाँ दोनों गाना गाते–'आज हिमालय की चोटी से फिर हमने ललकारा है। दूर हटो, ए चीनी लोगो हिंदुस्तान हमारा है।' इस गाने को सुनकर संभव है कि चीनी फौज भाग जाती। लौटते वक्त उन्हें हिममानव मिल जाता। वह उन्हें खाने को दौड़ता। पास आने पर चौंक जाता। कहता–आप क्या वहीदा रहमान हैं? वहीदा कहती–हाँ, तुमने कैसे पहचाना ? हिममानव कहता–मैंने आपको फिल्म 'प्यासा' में देखा था। वह गाते हुए नाचने लगता–'जाने क्या तूने कही, जाने क्या मैंने सुनी।' वहीदा यह बताए बिना कि यह गाना 'बैकग्राउंड' का है, वहाँ से देवानंद का हाथ पकड़कर भाग जाती। क्या बढ़िया प्रसंग छोड़ दिया।

जब देवानंद दुश्मन के जासूसी विमान में उड़ता है, तब भी बड़ी संभावनाएँ थीं। जहाज 'टेक ऑफ' कर रहा था, तभी वहीदा बाल बिखराए गाना गाते दौड़ती जाती और देवानंद एक रस्सी डाल देता जिसे पकड़कर वहीदा विमान में चढ़ जाती। तब दोनों अफ्रीका के जंगलों में भी जा सकते थे। लंदन, पेरिस में ही सब कुछ थोड़े रखा है। अफ्रीका के जंगलों में कोई वनमानुष वहीदा पर दीवाना हो जाता। वह उसका पीछा करता और देवानंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनमानुषों के नस्ल को ही खत्म कर देता। हिंदी फिल्म के हीरो-हीरोइन के लिए क्या मुश्किल है !

माना कि देवानंद वहीदा को रस्सी डालकर विमान में नहीं खींच सकता था क्योंकि उधर जहीदा बैठी थी। मगर क्या वहीदा दूसरे विमान से प्रेमी की खोज में यूरोप के शहरों में नहीं जा सकती थी? वह गाती हुई लंदन की सड़कों पर घूमती कि देवानंद उसे मिल ही जाता। मैंने देखा है कि फिल्मों में बंबई और कलकत्ता में नायिका नायक को इस तरह खोज लेती है जैसे वे चार-पाँच गलियोंवाले गाँव हों। लंदन क्या कोई बड़ा शहर है? कुल छह-सात गलियों का गाँव है। हिंदी फिल्म की नायिका वहाँ अगर पैदल ही घूमे तो उसे बेवफा नायक किसी गली में मिल ही जाएगा। जब नायक खुद ही डाइरेक्टर हो, तब तो और आसान है।

एक बात और पैदा हो सकती थी। देवानंद अगर भाग गया था, तो वहीदा तो रह गई थी। वह फौज में भरती हो जाती और पुरुष केप्टिन के रूप में मोर्चे पर जाती। वहाँ चीनी जनरल उस पर मुग्ध हो जाता। वहीदा उसे अपने रूप से बहकाकर उसका सिर काटकर ले आती और जवाहरलाल नेहरू के सामने रख देती। हिंदी फिल्म की नायिकाओं ने क्या ऐसा नहीं किया है। इस स्थिति में तो नेहरूजी खुद तीन मूर्ति में दोनों की शादी करवाते। फिल्म 'हिट' होती।

मैं पूछता हूँ—अगर देवानंद यूरोप गया था तो क्या अमेरिका नहीं जा सकता था ? वहाँ जाकर क्या केप केनेडी से अपोलो 12 चंद्रयान नहीं चुरा सकता था? उसे लेकर अपने गाँव जाता और वहीदा से कहता—चल, बैठ। जरा चाँद की यात्रा कर आएँ। दोनों चाँद पर उतरते और देखते कि चाँद काली मिट्टी का है। वहीदा गाती—चाँद का मुखड़ा क्यों शरमाया ? देवानंद जवाबी गाना गाता—बुद्धू, तुम्हें देखकर मुरझाया।

मुझे अफसोस है कि थोड़ी और कल्पना में कंजूसी करके कथा क़ो बरबाद कर दिया। मैं डाइरेक्टरों की मदद के लिए हमेशा तैयार रहता हूँ, पर मुझसे कोई पूछता ही नहीं।

फिल्मी रोमांच

प्रिय जोशीजी महाराज,

इतने विशेषांक लगातार निकाल रहे हो कि पाठक को याद नहीं आता कि कोई लेख शिकार विशेषांक में पढ़ा था कि सिंगारदान विशेषांक में। हर बार विशेषांक में लिखते-लिखते लेखक को अविशेष होने का एहसास ही नहीं हो पाता। रहस्य-रोमांच विशेषांक का वक्त तो गुजर गया। मगर आगे फिल्म विशेषांक है। रहस्य-रोमांच की अनुभूति जगा ही रहा था कि फ्लू हो गया। बीमारी से भी रोमांच होता है। एक आदमी से मैंने पूछा था—तुम्हें रोमांच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है? उसने कहा—हाँ, खूब जाड़ा देकर जब मलेरिया चढ़ता है तब रोमांच होता है। देख रहा हूँ बीमारियों से अनुभूतियाँ पैदा हो रही हैं। बहुत लोगों को हिस्टीरिया से राष्ट्रवाद की अनुभूति पैदा होती है और जुकाम से मानवतावाद की। सोचा था, मेरा प्यारा फ्लू रोमांच का कम-से-कम एक लेख दे ही जाएगा। मगर वह धोखा देकर निकल गया। बीमारी से फायदा उठाना भी तो हर एक को नहीं आता; वरना ऐसे लोग भी हैं जो बीमारी के जरिए इनाम लेते हैं, किताबें बेचते हैं और पाठ्यपुस्तक में ले जाते हैं।

बहरहाल, सोचा कि एक चिट्ठी से दो विशेषांक मार दूँ—रहस्य-रोमांच भी और फिल्म भी।

जिंदगी सपाट है, उत्तेजनाहीन है। इसलिए लोग रोमांचित होने के लिए फिल्म देखते हैं। मगर मुझे फिल्में भी काम नहीं दे रही हैं। फिल्मवाले पूरी कोशिश करते हैं कि रहस्य बना रहे, दर्शक को रोमांच होता रहे, मगर मैं सब पहले से जान लेता हूँ। 'महबूब' फिल्म बड़ी उम्मीद से देखने गया। मगर 'कास्ट' देखते ही लगा, पूरी फिल्म देख ली। राजेंद्रकुमार की शादी साधना से होकर रहेगी। फिल्म निर्माता ने दोनों को लाखों रुपए क्या इसलिए दिए होंगे कि वे किसी और से शादी कर लें। जरा सोचने की बात है। प्राण अगर है तो कहीं किसी स्टेज पर बाधक बनेगा या हीरो-हीरोइन को तंग करेगा या उनके घरवालों को तंग करेगा। अगर वह दुष्टता नहीं करेगा तो कल से कौन निर्माता उसे काम देगा। मेरे सामने पर्दे पर तरह-तरह के झाँसे देकर मुझे रोमांचित करने की कोशिश की जा रही है और मैं डाइरेक्टर से कहता हूँ कि यार, क्यों झाँसा देता है। राजेंद्रकुमार और साधना की शादी तो होगी। झटपट करा दे तो घर जाएँ। हमारा और हीरो-हीरोइन का समय व्यर्थ क्यों नष्ट करता है? निम्मी? गानेवाली? मैं जानता हूँ, अंत में वह पवित्र निकलेगी क्योंकि हीरो की बहन है। गँवार भी कह देगा कि हीरो की बहन पवित्र ही होती है। शम्मीकपूर और शर्मिला टैगोर अगर फिल्म में हैं तो कितने भी झटके दे, शम्मीकपूर को शादी शर्मिला से ही करनी पड़ेगी। कैसे नहीं करेगा? उसके बाप को करनी पड़ेगी।

प्यारे भाई, शेख मुखतार ने किसी भी फिल्म में किसी का नुकसान नहीं किया। हमेशा दुष्टों से लड़ा और अच्छों की मदद की। जिसका ऐसा क्लीन रिकार्ड हो, उसके बारे में मैं कैसे मान लूँ कि यह इस बार कुछ और कर बैठेगा। आखिर शराफत भी तो कोई चीज है। और मित्र 'साधु और शैतान' में बड़ी कोशिश की गई कि मैं पहचान न पाऊँ कि शैतान ओमप्रकाश है या प्राण। मगर मैंने बैठते ही कह दिया—इस प्राण का कैरेक्टर मैं सौ फिल्मों में देख चुका हूँ। इस बार भी वह शैतानपन से बाज नहीं आएगा। किसी ने देखा है कभी कि बेचारे ओमप्रकाश ने किसी का नुकसान किया हो। हमेशा भला और दुखी इंसान रहा है वह। मैं कैसे मान लूँ कि इस फिल्म में वह एकाएक शैतान हो जाएगा।

एक फिल्म में बलराज साहनी, राजकपूर और वहीदा रहमान थे। मेरा दोस्त कह रहा था—यह लड़की बलराज से शादी करेगी। वह रहस्य का अनुभव करने लगा था। मैंने कहा—चाहे जो बीच में हो जाए शादी राजकपूर से ही होगी। तुम्हें कभी याद है बलराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने शादी की? वह शरीफ आदमी है। अगर वहीदा पीछे ही पड़ जाए तो भी वह कह देगा—नहीं, वह मेरा भाई! अशोककुमार को तब से जानता हूँ, जब उसने शादी शुरू की थी। 'अछूत कन्या' में 'मैं वन का पंछी बन के वन-वन में डोलूँगा' गाता था। तब से जब तक शादी की उम्र रही, उसी ने हीरोइन से शादी की। मुझे कभी उसने रोमांच नहीं होने दिया।

बंधु, फिल्मवाले पूरी कोशिश करते हैं कि मुझे रोमांचित कर दें। वे दूसरे लड़कों से शादी तय करा देते हैं। उसे वेदी पर बिठा देते हैं। हवन होने लगता है। पंडित विवाह का मंत्र पढ़नेवाले ही हैं। हॉल में बाकी दर्शक हाय-हाय कर रहे हैं। कोई-कोई कहते हैं—देखें अब क्या होता है। मगर मैं चैन से बैठा हूँ। मुझे मालूम है, शादी तो हीरो से ही होगी। वह पुरोहित बायीं आँख के कोने से डाइरेक्टर की तरफ देख रहा है कि जल्दी हीरो को भेजो। हीरो नोटों का बंडल लेकर प्रकट होता है और हॉल के लोग चकित रह जाते हैं। मैं नहीं। मैं इस हीरो को पचास फिल्मों से जानता हूँ। हर बार तिकड़म करके पट्ठा शादी जमा लेता है। इस बार कैसे चूक सकता है?

मुझे रोमांचित करने के लिए डाइरेक्टर कभी-कभी अतिरिक्त प्रयत्न भी करता है, बेचारा। लड़के का दुष्ट मगर रईस बाप किसी तरह राजी नहीं हो रहा है गरीब हीरोइन से लड़के की शादी करने के लिए। मैं कथा-लेखक की कठिनाई समझता हूँ। दृश्य पर्दे पर आता है कि बाप पहाड़ी रास्ते से कार चला रहा है। नीचे हजार फुट गहरी खाई है। कैमरा तरह-तरह के कोण दिखाकर मुझे रोमांचित करने की कोशिश कर रहा है। मगर मैं जानता हूँ कि पिताश्री का अंतिम समय आ गया। कहानी में यह साला बाप किसी तरह नहीं पट रहा है। यह कहानी को आगे बढ़ाने के लिए मारा जाएगा—डूबकर या कार-दुर्घटना में या साँप काटने से। मैं उसका गिरना और मरना शांति से ग्रहण कर लेता हूँ। क्या किया जाए ? देह क्षणभंगुर है। सब डाइरेक्टर की इच्छा पर निर्भर है। फिल्म को आगे बढ़ाना है। तुम अगर रास्ते में खड़े हो तो तुम्हें मरना ही पड़ेगा।

गरीब-अमीर की फिल्में मुझे दिखाकर भी बड़ी कोशिश की गई कि मैं रहस्य-रोमांच-पीड़ित हो जाऊँ। देखें अब क्या होता है? गरीब लड़की की शादी रईस प्रेमी से होती है या नहीं। ये सवाल ही मेरे मन में नहीं उठते। मैं जानता हूँ 'पैसा या प्यार' में प्यार जीतेगा। पिछले पचीस सालों से फिल्में देख रहा हूँ। पचीस सालों से रईस का बेटा गरीब की लड़की से शादी कर रहा है। फिर भी लोग पूँजीवाद के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं। अजीब बदतमीजी है।

नहीं होता, कोई रोमांच नहीं होता। डाइरेक्टरो, तुम कितनी भी कोशिश करो। तुम हीरोइन को पहाड़ी की कगार पर खड़ी करते हो। नीचे नदी बह रही है। वह कूदनेवाली है। मुझे पाँच-सात मिनट, यह दृश्य दिखाते हो कि मैं हाय-हाय करने लगूँ। रोमांचित हो जाऊँ। पर मैं जानता हूँ कि आत्महत्या की जगह 'भारत साधु समाज' की तरफ से एक साधु तैनात है जो आत्महत्या करनेवाली सुंदरियों को बचाता है। वह आएगा और कूदती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई प्रेमिका को पीछे से पकड़कर कहेगा—"बेटी! निराश मत हो।" अगर वह कूद भी जाए तो भी मैं निश्चिंत रहता हूँ। वहाँ नदी के किनारे या तो डाइरेक्टर ने तब तक हीरो को भेज दिया होगा, जो नदी में कूदकर उसे बचा लेगा, या कोई मल्लाह नाव लेकर तैयार होगा। ऐसी धाँधली हो नहीं सकती कि हीरोइन डूबकर मर जाए। अगर आधी फिल्म में वह मर गई तो बाकी फिल्म में हीरो क्या करेगा? कौन निर्माता इतना बेवकूफ है कि पैसे भी दे और डेढ़ घंटा हीरो को बेकार रखे।

कोशिश जारी है। स्मगलरों की कार आगे है और पुलिस की पीछे। टेढ़े-मेढ़े रास्ते, घाटियाँ। स्मगलरों की कार बढ़िया है और ड्राइवर उस्ताद। दौड़ रही हैं मोटरें। डाइरेक्टर यह भुलावा देना चाहता है कि स्मगलर बच निकलेंगे। पर मैं जानता हूँ, पुलिस उनको पकड़ लेगी। अगर पुलिस ने स्मगलर नहीं पकड़े तो सेंसर बोर्ड फिल्म को पास नहीं करेगा। सेंसर बोर्ड के दो ही काम तो हैं—देशवासियों को चूमा-चाटी से बचाना और पुलिस का रिकार्ड उज्ज्वल रखना।

रेलगाड़ी आ रही है। लाइन पर लड़का खड़ा है। रेल सीटी दे रही है। लड़का हट नहीं रहा है। हाय, अब क्या होगा? कुछ नहीं होगा। लड़का मर नहीं सकता। कोई अपना लड़का क्या फिल्म में रेल से कट मरने के लिए भेजेगा? गाड़ी रुकेगी नहीं तो वह ख़ुद उलट जाएगी और लड़का बच जाएगा। हो सकता है आसपास डाइरेक्टरों ने किसी एक्सट्रा को छिपा रखा हो, जो लड़के को खींच लेगा।

जोशीजी, पूरी कोशिश करके भी ये लोग रहस्य-रोमांच पैदा नहीं कर सकते। मैं एक्टर-एक्ट्रेसों की नस-नस जानता हूँ। मैं कास्ट देखकर ही सारे रहस्य खोल देता हूँ। हीरो का चमचा है, तो उसकी शादी हीरोइन की चमची से पक्की है। यह विधाता का अमिट लेख है। दिलीपकुमार पर्दे पर दिखता है तो यह तय है कि उसकी शादी प्रेमिका से नहीं होगी। कितना भी प्रेम पक जाए, शादी दूसरे से होगी और यह शरीफ प्रेमी होने के कारण बदला भी नहीं लेगा—सिर्फ रोएगा। जब उसकी प्रेमिका को कोई पटा लेता है तब मुझे कोई दुख नहीं होता। मैं जानता हूँ, पर्दे पर उसकी शादी हो ही नहीं सकती। वह विवाह-मंडप में बैठ जाता है। विवाह का मंत्र भी शुरू हो जाता है। मगर मैं जानता हूँ, एक-दो क्षणों में कुछ होगा, जिससे इसकी पत्नी कट जाएगी। उसे लाखों रुपए निराश होने और रोने के मिलते हैं। वह शादी करके क्या पेट पर लात मारेगा? तीसरे दर्जे का एक्टर भी उसकी प्रेमिका को पटा सकता है। मैंने दस साल पहले कह दिया था कि इसकी शादी होगी, तो वास्तविक जीवन में ही होगी। दूसरी तरफ कपूर ब्रदर्स शादी के लिए ही बने हैं। शम्मी, पम्मी, लम्मी, कोई भी कपूर हो, कितनी भी बंदर-एक्टिंग करे, मैं जानता हूँ यह गंभीर प्रेमी बनेगा और हीरोइन शादी करके सारी उछल-कूद भुला देगी।

तुम्हीं बताओ, ऐसे में कोई रहस्य कहाँ से लाए? कैसे रोमांच का अनुभव हो ? मुझे सिर्फ तब रोमांच होता है जब सिनेमा हॉल में बिजली फेल हो जाती है या फिल्म बीच में कट जाती है या औरत को छेड़ने से हंगामा हो जाता है। इन स्थितियों के सिवा स्टंट-से-स्टंट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिल्म में भी कोई रहस्य-रोमांच नहीं।

अगर इस चिट्ठी को लेख का दर्जा हासिल हो, यानी यह थर्ड क्लास का टिकट लेकर गेटकीपर से दोस्ती के कारण फर्स्ट क्लास में घुस सके—तो इसे छाप देना।

तुम्हारा
हरिशंकर परसाई

मुक्तिबोध : एक संस्मरण

भोपाल के हमीदिया अस्पताल में मुक्तिबोध जब मौत से जूझ रहे थे, तब उस छटपटाहट को देखकर मोहम्मद अली 'ताज' ने कहा था :

उम्र-भर जी के भी जीने का न अंदाज आया।
ज़िंदगी छोड़ दे पीछा मेरा मैं बाज आया।।

जो मुक्तिबोध को निकट से देखते रहे हैं, जानते हैं कि दुनियावी अर्थों में उन्हें 'जीने का अंदाज' कभी नहीं आया। वरना यहाँ ऐसे उनके समकालीन खड़े हैं, जो प्रगतिवादी आंदोलन के कंधे पर चढ़कर 'नया पथ' में 'फ्रंट पेजित' भी होते थे, फिर पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र की 'कृष्णायन' का धूप-दीप के साथ पाठ करके फूलने लगे और अब जनसंघ-राजमाता की जय बोलकर फल रहे हैं। इसे मानना चाहिए कि पुराने प्रगतिवादी आंदोलन ने भी मुक्तिबोध को प्राप्य नहीं दिया। (बहुतों को दिया) कारण, जैसी स्थूल रचना की अपेक्षा उस समय की जाती थी, वैसी मुक्तिबोध करते नहीं थे। न उनकी रचना में कहीं 'सुर्ख परचम' था, न प्रेमिका को प्रेमी लाल रूमाल देता था, न वे उसे 'लाल चूनर' पहनाते थे। वे गहरे अंतर्द्वंद्व और तीव्र सामाजिक अनुभूति के कवि थे। मजे की बात यह है कि जो 'निराला' की सूक्ष्मता को पकड़ लेते थे, वे भी मुक्तिबोध की सूक्ष्मता को नहीं पकड़ते थे।

दूसरी तरफ के लोग उनके पीछे 'विह हंट' लगाए थे। उनके ऊबड़-खाबड़पन से आभिजात्य को मतली आती थी। वे उनके दूसरे खेमे में होने की बात को इस तरस के साथ कहते थे, जैसे—'ए गुड मैन फॉलन एमंग फेबियंस'।

ऐसा भी नहीं है कि मुक्तिबोध को समझनेवाले लोग नहीं थे। पर निष्क्रिय ईमानदार और सक्रिय बेईमान मिलकर एक षड्यंत्र-सा बना लेते हैं। मजे की बात यह है कि प्रगतिवादी सत्ता प्रतिष्ठान के नेता भी, जिन्हें 'प्रतिक्रियावादी' कहते थे, उन्हीं की चिरौरी करके उन्हें अपने बीच सम्मान से बिठाकर 'रिस्पैक्टेबिलिटी' प्राप्त करते थे, मगर जो अपना था उसे अवहेलित करते थे। वह तो अपना है ही, उसकी नियति तय है—वह कमबख्त कहाँ जाएगा ? पूर्वी यूरोप से साहित्य के आयात-निर्यात की जो फर्म है, उसके माल की लिस्ट में भी मुक्तिबोध की एक लाइन नहीं थी। हाँ, उन्हें बराबर भेजा जाता था, जिन्हें घर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'फासिस्ट' कहा जाता रहा है।

मुझे याद है, जब हम उन्हें भोपाल के अस्पताल में ले गए और मुख्यमंत्री की दिलचस्पी के कारण थोड़ा हल्ला हो गया, पत्रकार मित्रों ने प्रचार किया, तब कुछ लोग जो साहित्य की राजधानियों के थे या वहाँ से बढ़कर आए थे, यह कहते थे कि हम प्रांतीयता से ग्रस्त लोग उसे 'हीरा' बना रहे हैं। हम लोग 'प्रॉविंशियल' संस्कार के लोग कहलाते थे। प्रोफेसरान और ऊँचे लेखक उन्हें देखने शुरू-शुरू में इसलिए नहीं आते थे कि कहीं प्रयाग, दिल्ली और कलकत्ता में बदनामी न फैल जाए कि हम 'प्रॉविंशियल' में दिलचस्पी ले रहे हैं। प्रयाग और दिल्लीवालों ने जब 'गेटपास' दे दिया और 'अदीब' ने 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में अंग्रेजी में तारीफ कर दी, तब इनका दिलचस्पी लेने का साहस बढ़ा। बाद में तो लेख के शुरू में मुक्तिबोध की पंक्तियाँ मंगलाचरण के रूप में लिखने लगे—'वंदे वाणी विनायकौ' होने लगा। उनकी मृत्यु के बाद फूल बाँटने की झपटा-झपटी में कबीर की चादर की बड़ी फजीहत हुई।

यह सब—बाई दी वे। मुझसे तो नामवरजी ने कुछ संस्मरणात्मक लिखने को कहा है। संस्मरणात्मक कुछ भी लिखने में अपने को बीच में डालना पड़ता है। संस्मरण की यह मजबूरी है। यह सावधानी बरतते हुए कि उनके बहाने अपने को 'प्रोजेक्ट' न कर दूँ, कुछ चीजें लिखता हूँ गो सफल संस्मरण का वही गुण है, जिससे मैं बचना चाहता हूँ।

जबलपुर में जिस स्कूल में मुक्तिबोध ने नौकरी की थी, उसी में बाद में मैंने की। अपनी मुदर्रिसी का वह आखिरी दौर था, उनकी मास्टरी भी उसी अहाते में खत्म हुई थी। पुराने अध्यापक उनकी बात करते थे। साहित्य में (बल्कि पत्रकारिता में) मेरा प्रवेश तब हो चुका था। सुनता था, यहाँ 'तारसप्तक' वाले मुक्तिबोध रहते थे। उन्होंने 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना की। फिर वे नागपुर प्रकाशन विभाग में चले गए। तब मुक्तिबोध की नई जवानी थी। छरहरे खूबसूरत आदमी थे। तब का उनका एक चित्र है जो 'राष्ट्रवाणी' के मुक्तिबोध अंक में छपा है। बड़ी-बड़ी गहरी भावुक आँखें हैं। नाक वहुत 'सेंसुअस' है। शरीर सूख जाने पर भी मुक्तिबोध की आँखें धुँधली नहीं हुईं, सूखा चेहरा भी खूबसूरत रहा।

मैं कुछ लिखने लगा था। वे देखते रहते थे। मित्रों ने भी बताया होगा। मैं नागपुर शिक्षक-सम्मेलन के सिलसिले में गया था। मित्र मुझे उनसे मिलाने शुक्रवारा स्थित (शायद) उनके मकान पर ले गए। सच कहूँ, मुझे मुक्तिबोध से डर लगता था। मित्रों, प्रशंसकों में वे 'महागुरु' कहलाते थे। एक आतंक मेरे ऊपर था। मैं अपने अज्ञान में सिकुड़ा-सिकुड़ा पहुँचा। वे दरी पर पालथी मारे बैठे थे। पास पानी का लोटा और उस पर प्याला। हम लोग दरी पर बैठ गए। मुझसे बोले—आइए साहब! निहायत औपचारिक दो-चार मामूली बातें हुईं। यह जानकर कि मैं शिक्षकों के श्रम-संगठन के काम से आया हूँ। उन्होंने आँखें फाड़कर गौर से देखा। मुझसे न लिखने की बात की, न कोई तारीफ। चाय जरूर पिलाई। आगंतुक के बहाने खुद चाय पीने का मौका वे चूकते नहीं थे। यह मुलाकात बहुत सूखी रही। मुक्तिबोध मुझे शंका से देख रहे थे। जाँच रहे थे। वे एकदम गले किसी से नहीं मिलते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। प्रकृति से वे शंकालु थे। किसी को जैसा-का-तैसा स्वीकार नहीं करते थे। बाद के कटु अनुभव और अकेलेपन ने यह शंका की प्रवृत्ति और बढ़ा दी थी। राजनाँदगाँव में तो वे कई लोगों की कल्पना में न जाने कैसे, कैसी तस्वीरें बनाकर परेशान हुआ करते थे। दिल्ली, कलकत्ता, प्रयाग के बहुत-से लोगों की इतनी अतिरंजित तस्वीर वे बनाते थे कि लगता ये सब विकट शैतान हैं, जबकि वे अपने काम में लगे तटस्थ लोग थे। शंका और असुरक्षा की भावना इतनी तीव्र हो उठी थी, बाद में, कि वह भयावह कल्पना करते रहते थे कि अमुक-अमुक लोग मेरे खिलाफ षड्यंत्र कर रहे हैं—जबकि उन्हें अपना भला करने से ही इतनी फुरसत नहीं मिलती थी कि उनका बुरा करें। उनके मित्रों को शायद यह नहीं मालूम की मुक्तिबोध कभी-न-कभी भयंकर शैतान के रूप में उनकी कल्पना कर चुके हैं। सामान्य आदमी का वे एकदम भरोसा करते थे, लेकिन राजनीति और साहित्य के क्षेत्र के आदमी के प्रति शंकालु रहते थे। कोई सहज ही उनके समीप होना चाहता या उनकी मदद करना चाहता, तो वे सशंकित हो जाते। कहते—पार्टनर, इसका इरादा क्या है? ज्यों-ज्यों उनकी मुसीबतें बढ़ती गई, ज्यादा कड़ुए अनुभव होते गए, उनके कई विश्वसनीयों का चारित्रिक पतन होता गया, उनकी शंका बढ़ती गई। वे अपने को असुरक्षित अनुभव करते गए। अंत के एक-दो साल तो वे अपने चारों तरफ डर के काँटे लगाकर जीते थे। उन्हें लगता, कोई भयंकर षड्यंत्र चारों तरफ से उन्हें घेर रहा है। यह स्थिति तब बहुत तीव्र हो गई, जब सरकार ने उनकी पुस्तक पर प्रतिबंध लगाया। इस बात को आगे लिखूँगा।

नागपुर में चार-पाँच दिन रहकर भी मैं उनसे दोबारा नहीं मिला। उन्होंने भी ऐसी कोई इच्छा नहीं की। यह सीधा कहलानेवाला आदमी, कुछ मामलों में बड़ा काँइयाँ था। वह चुपचाप बैठा जाँच रहा था। आगे साल-भर तक कोई संबंध नहीं रहा। एक दिन 'नया खून' का ताजा अंक खोला तो तीन कॉलम की एक टिप्पणी का शीर्षक था—'थॉट और परसाई की स्पिरिट में अंतर है।' टिप्पणीकार—गजानन माधव मुक्तिबोध। मेरी एक कहानी का अनुवाद 'थॉट' ने छापा था। मुक्तिबोध ने 'थॉट' की राजनीति बतलाई थी और मेरी कहानी को जैसे 'मिसफिट' कहा था। चेतावनी थी कि ये पत्र प्रचार और पैसे का लोभ देकर कैसे किसी बनते लेखक को फँसाते हैं। मेरी उस कहानी का अर्थ 'थॉट' ने साम्यवादी व्यवस्था में 'रेजिमेंटेशन' के संदर्भ में लगाकर छापा था। यों मेरी एक 'फैंटेसी' को 'पाञ्चजन्य' ने पौराणिक कथा समझकर धर्मार्थ उद्धृत कर लिया था। अपनी समझ का उपयोग करने का हर एक को हक है।

मैंने उन्हें नहीं लिखा। वे भी चुप रहे। सालेक बाद जब 'वसुधा' निकालने की योजना बनी, तो मैंने उन्हें पत्र लिखा। वे भरे बैठे थे। बड़ा लंबा पत्र आया। लिखा था कि 'नया खून' की उस टिप्पणी के बाद यहाँ लोगों ने मुझसे बार-बार कहा कि आपको बहुत बुरा लगा है। मैं दूर हूँ। लोगों से संपर्क होता नहीं है। सुनता रहता हूँ। सोचा, सीधे आपसे बात कर लूँ। मैं साफ बात करना पसंद करता हूँ। आप मुझे साफ बताइए कि क्या उस टिप्पणी से आपको बुरा लगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं समझ गया, मेरी-उनकी निकटता को घटित न होने देने में किन्हीं लोगों ने अपना फायदा देखा होगा। अपना फायदा देखने का भी हर एक को हक है। बाद में पता चला कि इन लोगों ने अपने समकालीनों के लिए खुफिया विभाग भी खोल रखा था और जगह-जगह एलची नियुक्त कर रखे थे। हमारे मित्र, प्रमोद वर्मा जब तबादले पर जबलपुर आए, तब उन्हें हेड ऑफिस से चिट्ठी मिली थी कि यहाँ किससे संबंध रखना और किससे नहीं, इस बारे में अमुक से हिदायत ले लो। प्रमोद ने लिख दिया था कि शत्रु और मित्र मैं खुद बनाता हूँ। उस चिट्ठी को मुक्तिबोध के सामने हम लोगों ने पढ़ा और खूब हँसते रहे। खैर, ये स्थानीय मधुर पॉलिटिक्स की बातें हैं। मगर परिवेश से कटकर आदमी रह नहीं सकता। मुक्तिबोध-जैसे पारदर्शी सचाई के सरल आदमी को अपने आसपास की यह अविश्वसनीयता और अकेलापन दे देती थी।

'कामायनी : एक पुनर्विचार' को छापने के लिए एक पुस्तक-विक्रेता मित्र शेषनारायण राय राजी हो गए थे। वे पेशे से प्रकाशक नहीं हैं। पैसा लगा देने को तैयार थे। मुक्तिबोधजी पर उनकी श्रद्धा थी। तब मुक्तिबोध को कोई प्रकाशक नहीं मिलता था। पुस्तक का कम्पोजिंग चल रहा था, तब वे जबलपुर आए। तीन दिन हो गए, पर उन्होंने न किताब की बात की, न राय से मिलने की इच्छा। पहले तो रात-दिन पुस्तक छपने की लौ लगी रहती थी और अब यह विराग। मैंने कहा—आप प्रकाशक से तो मिल लीजिए। वे यहीं पास में रहते हैं। मुक्तिबोध खिन्न भाव से बोले—मिल लेंगे, पार्टनर। कोई उससे मिलने थोड़े ही आए हैं। मैंने कहा—सच बताइए मामला क्या है? वे बोले—अब तो पांडुलिपि दे ही चुके। अमुक साहब कह रहे थे कि आप बुरे फँस गए। वह राय तो बहुत खराब आदमी है। खैर! मैंने राय से कहा, राय हँसा। कहने लगा—वही साहब मुझसे कह गए कि तुम पैसा पानी में डाल रहे हो। उस किताब को कौन खरीदेगा ? मुक्तिबोध उनका विश्वास करते थे। वे बड़े हैरान हुए। कहने लगे—आखिर उसने ऐसा किया क्यों ? बाद में राय ने उन्हें रुपए पेशगी दिए। दूकान से वे कुछ किताबें भी ले गए। बहुत गद्गद थे। ऐसे मौके पर वे बच्चे की तरह हो जाते थे—वाह पार्टनर, आपका यह राय भी मजे का आदमी है। उसने इतने रुपए दे दिए। अगर उन्हें किसी से मुश्किल से सौ रुपए मिलने की उम्मीद है और वह दो सौ रुपए दे दे, तो वे चकित हो जाते। कहते—पार्टनर, यह भी बड़ी मजे की बात है। उसने तो दो सौ रुपए दे दिए। इतने रुपए कोई कैसे दे देता है। इस पुस्तक का प्रकाशन वे अपने ऊपर एहसान मानते थे। राजनाँदगाँव से उन्होंने राय को अंग्रेजी में ऐसी चिट्ठी लिखी जो कोई लेखक प्रकाशक को नहीं लिखेगा। लिखा था—पुस्तक अच्छी छपनी चाहिए। मैं आपको लिखकर देता हूँ कि मुझे आपसे एक भी पैसा नहीं चाहिए, बल्कि आपका कुछ ज्यादा खर्च हो जाए, तो हरजाना देने को तैयार हूँ।

राजनाँदगाँव में वे अपेक्षाकृत आराम में रहे। शरद कोठारी तथा अन्य मित्रों ने उनके लिए सब कुछ किया। पर वे बाहर निकलने को छटपटाते थे। वे साल में एक-दो बार किसी सिलसिले में जबलपुर आते और खूब खुश रहते, रंगीन सपने में डूबते हुए कहते—पार्टनर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा हो कि एक बड़ा-सा मकान हो। सब सुभीते हों। कोई चिन्ता न हो। वहाँ हम कुछ मित्र रहें। खूब बातें करें, खूब लिखें-पढ़ें और जंगल में खूब घूमें। फिर कहते—आप राजनाँदगाँव आइए। वहीं कुछ दिन रहिए। बहुत बड़ा मकान है। कोई तकलीफ नहीं होगी। नो, नो आई इनवाइट यू।

मुक्तिबोध की आर्थिक दुर्दशा किसी से छिपी नहीं थी। उन्हें और तरह के क्लेश भी थे। भयंकर तनाव में वे जीते थे। पर फिर भी बेहद उदार, बेहद भावुक आदमी थे। उनके स्वभाव के कुछ विचित्र विरोधाभास थे। पैसे-पैसे की तंगी में जीनेवाला यह आदमी पैसे को लात भी मारता था। वे पैसा देनेवाली पत्रिकाओं में लिखकर आमदनी बढ़ा सकते थे, पर लिखते नहीं थे। कहते—अपनी पत्रिका में लिखेंगे। बस मुझे तो कागज आप दे दीजिए। यों वे बहुत मधुर स्वभाव के थे। खूब मजे में आत्मीयता से बात करते थे। मगर कोई वैचारिक चालबाजी करे या ढोंग करे, तो मुक्तिबोध चुप बैठे तेज नजर से उसे चीरते रहते। उस वक्त उनके ओठ किसी बदमाश स्कूली लड़के की तरह मुड़ जाते। आपस में मित्रों में एकरस हो जाते, मगर तभी वर्ग-चेतना जाग उठती, तो अजनबी होने लगते। जबलपुर आए, तो मेरे घर पर एक मित्र हनुमान वर्मा से मुलाकात हुई। हनुमान कालेज में पढ़ाते हैं। खूब यारबाश आदमी हैं। दो-तीन दिन खूब मजे में उनसे मुक्तिबोध की जमती रही। फिर हनुमान अपने घर ले गया। वहाँ अच्छा-सा सोफा था। डाइनिंग-टेबिल भी थी। मुक्तिबोध को खटका लग गया। वे शिष्ट व्यवहार करने लगे। लौटते वक्त रास्ते में मुझसे बोले—पार्टनर, इस आदमी से अपनी कैसे पट सकती है! उसका सोफा देखो, डाइनिंग टेबल देखो। यह अपनी दुनिया का आदमी नहीं है। ही बिलांग्ज टू ए डिफरेंट वर्ल्ड। मैंने कहा—कुल छः-सात सौ ही पाता है वह। अपनी ही दुनिया का आदमी है। पर यह बात गले उतरने में देर लगी।

वर्ग-चेतना के तीव्र बोध की दो-एक घटनाएँ दिलचस्प हैं। मुझ पर एक प्रकाशक ने कापीराइट का मुकदमा चला दिया था। मुक्तिबोध आए हुए थे। दिसम्बर का महीना था। भोजन करके वे सामने के मैदान में बैठे थे। मैं कचहरी जाने लगा, तो पूछा—पार्टनर, मैजिस्ट्रेट कौन है? मैंने नाम बताया। वे बोले—नाम से मालूम होता है कि वह नीची जाति का है। विदर्भ में होते हैं ये लोग। आप छूट जाएँगे। मैंने पूछा—यह अन्दाजा आपको कैसे लगा? उन्होंने कहा—वह नीची जाति का है न! उसकी वर्ग-सहानुभूति लेखक के प्रति होगी, प्रकाशक के साथ नहीं। संयोग से मुकदमा खारिज भी हो गया।

एक साहित्य-समारोह में एक वयोवृद्ध ब्राह्मण आचार्य थे। विवाद की स्थिति थी ही। आचार्य के मातहत एक अध्यापक ने भी भाषण में आचार्यजी का समर्थन किया। बाद में मुक्तिबोध अकेले में हम लोगों से बड़ी गंभीरता से बोले—वह जो अध्यापक है, उसकी सहानुभूति हमारी तरफ है। नौकरी के लिए आचार्य की बात बोल रहा था। वह जाति का अहीर है न! वह हमारा ही साथ देगा, ब्राह्मण आचार्य का नहीं।

पर एक दूसरे मौके पर दूसरी ही तरह की बात कहकर उन्होंने हमें चौंकाया। एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमी बड़ा ओछा व्यवहार कर रहा था। हम सब लोगों की पीठ-पीछे निन्दा करता था। मुक्तिबोध सुनते-सुनते बोले—पार्टनर, वह जात का लोधी है न! इसीलिए।

मुक्तिबोध विचारों से आधुनिक लेकिन इसके साथ ही वैज्ञानिक व्यवहार में कई बातों में बिलकुल सामंती। किसी को अपने घर में साग्रह खाना खिलाना, अपनी हैसियत से बाहर खातिर करना उनकी खास प्रवृत्ति थी। लगता था, कोई पुराने ठाकुर साहब हैं, जिन्हें मूँछें मुडाना पड़ेगा, अगर मेहमाननवाजी में कमी आई। एक बार नागपुर में जब वे तीव्र ज्वर में 'नया खून' के टीन के नीचे काम कर रहे थे, मैं पहुँच गया। भर-दोपहर में पास की दूकान पर मुझे मिठाई खिला लाए, तब चैन पड़ी। मैंने बहुत मना किया, पर वे कहते—नहीं साहब, आप आए हैं, तो कुछ खाना तो पड़ेगा। पक्षाघात से जब वे पीड़ित थे, तब हम उन्हें भोपाल के लिए लेने पहुँचे। उस हालत में भी वे हड़बड़ा रहे थे कि इनके लिए क्या कर दिया जाए। कहने लगे—आप मेरे मेहमान हैं। आप मेरे यहाँ क्यों नहीं ठहरेंगे, कोठारी के यहाँ क्यों? कोठारी से भी शिकायत की—क्यों साहब, यह क्या हरकत है? इन्हें आपने रास्ते में क्यों रोक लिया? इसमें बनावट नहीं थी। उनकी सच्ची ममता थी, उनके आंतरिक संस्कार थे। वे नई-से-नई वैज्ञानिक उपलब्धि से मुग्ध होते थे, पर परिवार-नियोजन के खिलाफ थे। परिवार-नियोजन को पूँजीवादी सभ्यता की प्रवृत्ति मानते थे। विचारों के मामले में जितने सधे हुए, जिन्दगी की व्यवस्था में उतने ही लापरवाह। स्वास्थ्य के प्रति अत्यंत असावधान थे। संबंधों में लचीले, मगर विचारों में इस्पात की तरह। कहीं कोई समझौता नहीं। पैसे-पैसे के लिए तंग रहते थे, पर पैसे को लात भी मारते थे। कभी बिलकुल निस्संग हो जाते, कभी मोहग्रस्त।

मुक्तिबोध विद्रोही थे। किसी भी चीज से समझौता नहीं करते थे। स्वास्थ्य के नियमों और अर्थशास्त्र के सिद्धांतों से भी नहीं। उनकी राजनीति है, यह बात सर्वविदित थी। नागपुर में सरकारी नौकरियों में थे, तब उनके पीछे साम्यवाद-विरोधी भूत लगे रहते थे। उनके विचारों ने कभी उन्हें नौकरी में ऊपर नहीं उठने दिया। राजनाँदगाँव के प्राइवेट कालेज की नौकरी उन्हें अनुकूल पड़ी। वहाँ उन्हें लोगों ने बड़े श्रद्धा-प्रेम से रखा।

मुक्तिबोध भयंकर तनाव में जीते थे। आर्थिक कष्ट उन्हें असीम थे। उन जैसे रचनाकार का तनाव साधारण से बहुत अधिक होगा भी। वे संत्रास में जीते थे। आजकल संत्रास का दावा बहुत किया जा रहा है। मगर मुक्तिबोध का एक-चौथाई तनाव भी कोई झेलता, तो उनसे आधी उम्र में मर जाता। मृत्यु से दो साल पहले वे जबलपुर आए थे। रात-भर वे बड़बड़ाते थे। एक रात चीखकर खाट से फर्श पर गिर पड़े। सँभले, तब बताया कि एक बहुत बड़ी छिपकली सपने में सिर पर गिर रही थी।

उन दिनों उनकी पुस्तक 'भारत : इतिहास और संस्कृति' पर प्रतिबंध लग चुका था। वह पुस्तक कोर्स में लग चुकी थी। उसके खिलाफ आंदोलन करानेवाले मुख्यतः दूसरे प्रकाशक थे। आंदोलन में जनसंघ प्रमुख था। इसके साथ ही गैर-सांप्रदायिक पत्रों के भी बिके हुए संपादक थे। जनसंघ उनके पीछे पड़ गया था। राजनाँदगाँव में उसके स्वयंसेवक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें परेशान करते थे। उस वक्त विद्वान् लेकिन अधिकारहीन राज्यपाल था और भ्रष्ट तथा मूर्ख मुख्यमंत्री। राज्यपाल ने डेढ़ घंटे बात की, बात मानी भी, पर कहा—मैं क्या कर सकता हूँ! मुख्यमंत्री के पोर्टिको के पास मुक्तिबोध घंटे-भर खड़े रहे। वह बंगले से निकला तो ये बात करने बढ़े। बात शुरू ही की थी कि बोला—उसमें अब कुछ नहीं हो सकता। इन्होंने कहा—पर आप मेरी बात तो सुन लीजिए। वह बोला—मेरे पास इतना वक्त नहीं है। मुझे जरूरी काम है।

जबलपुर लौटे तो बहुत टूटे हुए और बहुत क्रोधित। वह आदमी चट्टान-जैसा था। लेकिन इस घटना ने उनके भतीर भय और असुरक्षा की भावना पैदा कर दी थी। वे बेहद उत्तेजित थे। इस प्रतिबंध से उनकी अपार क्षति हुई। यदि पुस्तक चलती, तो उन्हें इतनी रायल्टी मिलती कि सारा संकट खत्म हो जाता। व्यक्तिगत क्षति का आघात तो था ही। पर इस पूरे कांड को व्यापक राजनीतिक संदर्भ में देखकर वे बहुत त्रस्त थे। कहते थे—यह नंगा फासिज़्म है। लेखक को लोग घेरें, शारीरिक क्षति की धमकी दें। इधर सरकार सुनने तक को तैयार नहीं। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जा रही है। गला दबाकर आवाज घोंटी जा रही है।

'अँधेरे में' कविता का यही रचनाकाल है। उन दिनों मुक्तिबोध बहुत आशंकाग्रस्त थे। छोटी-से-छोटी बात उन्हें विचलित कर देती थी। चाबी जिस जेब में रखी होने की उन्हें याद थी, अगर वह उस जेब में नहीं है तो वे ऐसे सशंकित हो उठते थे, जैसे कोई बड़ा षड्यंत्र उन्हें घेर रहा है। उन दिनों वे बहुत उत्तेजित होकर घंटों बहुत जोर से बोलते रहते थे। गले की नसें तनी हुई साफ दिखती थीं। कनपटी लौकती थी, दम भर आता था और वे 'डबल स्ट्रांग' चाय की माँग करते थे।

अन्तिम बीमारी के महीने-भर पहले वे जबलपुर आए थे। हाथ और पाँव में एक्ज़िमा था। पाँव सूजे थे। वे नीम की बहुत-सी पत्ती पीसकर साथ ले आए थे। सुबह पाँवों को धोकर नीम की पट्टी करते। बहुत दुर्बल हो गए थे। बहुत परेशान थे। पर शारीरिक और आर्थिक कष्ट की बात लगभग नहीं करते थे। रात को उन्होंने हम लोगों को 'अँधेरे में' कविता सुनाई थी। डेढ़ घंटे के पाठ के बाद वे शिथिल होकर बिस्तर पर लुढ़क गए थे। हम लोगों ने उन्हें थोड़ी ब्रांडी देकर सुला दिया था। सुबह बोले—पार्टनर, दवा बहुत अच्छी थी।

महीने-भर बाद ही उन्हें पक्षाघात हो गया। आदमी यह सोचने को मजबूर है कि अगर ऐसा हो गया होता, तो वैसा नहीं होता। बहुत-से मित्र यहाँ सोचते हैं, अगर वे तभी जबलपुर रुक गए होते तो बीमारी न बढ़ती। यहाँ मेडिकल कालेज में उन्हें कुछ दिनों के लिए भरती करा देने का हम लोगों ने तय किया था। पर उन्हें बीमार पिताजी से मिलने नागपुर जाना था। वे कह गए थे कि महीने-भर में मैं लौटकर आता हूँ और कुछ दिन रहकर यहीं आराम करूँगा और इलाज करूँगा। पर महीने-भर बाद उन्हें पक्षाघात हो गया। दिल्ली से जब मैं चल ही रहा था कि श्रीकान्त के नाम उनके पत्र से यह खबर मिली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्तिबोध अपनी बीमारी की भयंकरता जानते थे। वे जानते थे कि यह बीमारी प्राणांत भी कर सकती है। शारीरिक कष्ट उन्हें बहुत था। छोटे-छोटे बच्चों के भविष्य की चिन्ता भी थी। रात कराहते बीतती थी। भोपाल के मित्र रात-भर कमरे के बाहर बरामदे में बैठे 'आई ग' (ओ माँ) और 'अग' (पत्नी को बुलाने के लिए) सुना करते थे। पर मुक्तिबोध का उत्साह कम नहीं हुआ था। वे टूटे नहीं थे। संज्ञाहीन होने के पहले तक वे बीमारी की शिकायत लगभग नहीं करते थे। वे साहित्य और राजनीति की बातें करते थे। खूब उत्साह से बोलते थे। कभी हम उन्हें स्वास्थ्य के बारे में झूठा भरोसा दिलाते तो वे पलकें नीची करके कहते—हाँ, पार्टनर। ठीक तो हो ही जाएँगे। उनके भाव से हम समझने लगे थे कि यह आदमी जानता है कि ये लोग मुझे दिलासा दे रहे हैं। वे संकेत से बता देते थे कि मैं सब जानता हूँ। मुझे क्यों बहलाते हो!

अपनी तरफ बढ़ती हुई मृत्यु को जो साफ देख रहा था, उसकी जिन्दगी की जकड़ कम नहीं हुई थी। यह किसी भी तरह जीवन से अटके रहने का घटिया मोह नहीं था। ऐसा नहीं था कि जीवन के सारे संदर्भ कटकर सिर्फ आत्म-मोह बचा हो। आत्म-मोह अन्तिम क्षण तक उस आदमी में नहीं आया। वह सिर्फ जीवन-संदर्भों में उलझा हुआ था। सिगरेट और चाय के लिए अलबत्ता वे बाल-हठ जैसा करते थे। बाकी अपने बारे में कुछ नहीं। नेहरूजी की तबीयत कैसी है? देश की राजनीति किस ओर से गुजर रही है? साहित्य में इन दिनों क्या चला हुआ है? यही सब बातें वे करते थे। पीड़ा होती तो कराह देकर वे फिर वैसे ही नॉर्मल हो जाते थे।

बीमारी से लड़कर मुक्तिबोध निश्चित जीत गए थे। बीमारी ने उन्हें मार दिया, पर तोड़ नहीं सकी। मुक्तिबोध का फौलादी व्यक्तित्व अंत तक वैसा ही रहा। जैसे जिंदगी में किसी से लाभ के लिए समझौता नहीं किया, वैसे मृत्यु से भी कोई समझौता करने को वे तैयार नहीं थे।

वे मरे। हारे नहीं। मरना कोई हार नहीं होती।

जीते हुए उम्मीदवार के नाम

भैयाजी,

चाहता तो यह था कि ये सब बातें आपसे प्रत्यक्ष कहता, पर इस वक्त आप उन लोगों से घिरे होंगे, जिन्होंने आपको मत नहीं दिया। जो मत नहीं देते, वे बधाई देने पहले पहुँचते हैं। जो सबसे पहले आपके गले में माला डाले, उसे अपना सबसे बड़ा शत्रु समझिए। माला डालनेवालों को अगर आप अपना मानेंगे, तो अगली बार हार जाएँगे। जिससे ज्यादा लोग सड़क पर नमस्ते करते हैं, वह अक्सर हार जाता है। मैंने तो आपको मत दिया था,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए मैं आपको बधाई देने नहीं आया। मैं यह चिट्ठी लिखकर डाक में छोड़ रहा हूँ।

भैयाजी, मैंने आपको मत तो दिया, पर आपके जीतने का मुझे बेहद दुख है। आप पूछेंगे—ऐसा क्यों है? फिर मत ही क्यों दिया? बात यह है कि मत मैंने दयावश दे दिया। उन दिनों आप जनता के दुखों पर रोते हुए घूम रहे थे। मैं तब आपके दुख पर रो रहा था। मेरी देखादेखी जनता भी रोने लगी थी। उम्मीदवार और जनता दोनों की आँखों में आँसू थे। जनता समझती थी कि आप उसकी हालत पर रो रहे हैं, पर वास्तव में आप अपनी पतली हालत पर रो रहे थे। इधर आप समझते थे कि जनता अपने कष्टों पर रो रही है, पर वास्तव में वह इसलिए रो रही थी कि हाय, अगर आप न जीते, तो आपका क्या होगा ? दोनों तरफ के आँसुओं ने ऐसी गलतफहमी पैदा की कि मत आपको मिल गए। आपको यह खुशफहमी बनी रहेगी कि जनता आपको चाहती है, जबकि वह आपसे नफरत करती है, मगर दयालु है। इधर जनता इस खुशफहमी में रहेगी कि आप उसके शुभचिन्तक हैं, जबकि आप सिर्फ अपने शुभचिन्तक हैं। खुशफहमी से नेता पनपता है, मगर जनता नष्ट होती है। यही इस देश में हो रहा है।

भैयाजी, अब आप कुछ दिन तो लाउडस्पीकर और चाय के बिलवालों के डर से बाहर नहीं निकलेंगे। बड़े-बड़े हार जो लोग लाए थे, वे आपके पैसे से लाए होंगे। छोटे हार अपने पैसे से लाए होंगे। बड़े हारों की कीमत आपने पेशगी दे दी होगी। ऐसी गलती मत किया करिए। अगर आप हार जाते तो वे कमबख्त पैसे वापस नहीं करते। या उन हारों को जीते हुए के गले में डाल देते। मैं कह रहा था कि शामियानावाला, लाउडस्पीकरवाला, चाय-पानवाला और पेट्रोलवाला—ये सब दो दिन तो भीड़भाड़ के कारण चुप रहते हैं, पर तीसरे दिन तगादा कर देते हैं। इन्हीं के डर के कारण सदस्य को घर में घुसे रहने की जरूरत पड़ती है जो आदत बन जाती है। वह फिर पाँच साल बाहर नहीं आता। पानी की तरह जीत की गर्मी से भाप बनकर उड़ जाता है। पाँचवें साल जब चुनाव के बादल उमड़ते हैं, तब वह भी जमीन पर आ जाता है और दिखाई देने लगता है। मेंढक भी पानी गिरते ही प्रकट हो जाते हैं। मैं नेता की मेंढक से तुलना नहीं कर रहा हूँ—जब आपका भाषण सुनता हूँ, तो मेंढक की याद बरबस आ जाती है।

पिछले चुनाव में भी आप जीते थे। उसके बाद पाँच सालों तक आपके दर्शन क्षेत्र में किसी को नहीं हुए। इस बीच अपने क्षेत्र के तीन भक्तों को भगवान के दर्शन हो चुके हैं, मगर आपके नहीं हुए। आप भगवान की तरह फालतू थोड़े ही हैं कि चाहे जिसे दर्शन दे दें। मगर लोग नासमझ हैं। कहते हैं—पाँच सालों तक कहाँ रहे? मैंने आपकी तरफ से उन्हें समझाया—भैयाजी उन बेशर्मों की तरह नहीं हैं जो कुछ काम नहीं करते, मगर शान से जनता में घूमते हैं। भैयाजी लज्जावान आदमी हैं। उनसे जनता का भला नहीं हुआ तो वे हयादार आदमी की तरह मुँह छिपाकर बैठे रहे। निर्लज्ज तो हैं नहीं कि बाहर निकल पड़ें। वे बैठे-बैठे जनता के कष्टों के लिए रोते रहते थे। पाँच साल जनता के लिए वे छिपकर रोये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भैयाजी, मेरे समझाने का असर पड़ा। जब आप चुनाव के समय प्रकट हुए तब लोगों को 'भये प्रगट कृपाला दीनदयाला' जैसा लगा। लोगों ने कहा—देखो, दीनों का सच्चा हितकारी आ रहा है। पाँच साल दीनों के दुख से रोता रहा, इसलिए आँखें कमजोर हो गई हैं। हमें पहचान नहीं रहा है। आपने भी कमाल कर दिया। जिसका बाप दस साल पहले मर चुका है, उससे आप पूछते हैं—पिताजी तो अच्छी तरह हैं न ? उसने जवाब दिया—स्वर्ग से इधर खबर नहीं आती। आप जाएँ तो पिताजी के हालचाल भेजिए ! आप हँसकर टाल गए। चुनाव के वक्त हँसकर ही टालना चाहिए। जो हँसकर नहीं टाल सकता वह हार जाता है। आप हँसकर टालने की विद्या में निपुण हैं।

जब 'दीनदयाला' प्रकट हो गए, तब दीनों ने कष्ट-कथा कहनी शुरू कर दी। एक गाँव के लोगों ने कहा—यहाँ रेलवे स्टेशन बन जाए, तो बड़ा सुभीता होगा। आपने कहा—रेलवे स्टेशन तो छोटी चीज है। मैं यहाँ हवाई-अड्डा बनवाऊँगा। आमतौर पर लोगों ने कहा कि महँगाई बहुत है। आपने जवाब दिया—मुझे पहले बताया क्यों नहीं? खैर, चुनाव के बाद तो किसी चीज की कीमत ही नहीं देनी पड़ेगी। एक जगह लोगों ने कहा—पानी की बड़ी तकलीफ है। आपने कहा—वह अब नहीं रहेगी। चुनाव के बाद मैं गंगा से पाइप-लाइन डलवा दूँगा। गंगाजल पियोगे तुम लोग। एक जगह आपने पूछा—मौसम तो यहाँ का ठीक रहता है न? लोगों ने कहा—मौसम तो ठीक ही रहता है। आपने कहा—नहीं-नहीं, मौसम खराब रहता है तो बताओ। मैं ठीक करवा दूँगा। अपने यहाँ मौसम का महकमा भी है। भैयाजी, हम सब लोगों को तब विश्वास हो गया कि आप स्वर्ग लाने ही वाले हैं। कुछ लोगों ने अशुभ कहावत जरूर कही कि 'बिना मरे' स्वर्ग नहीं मिलता। पर हमें विश्वास हो गया था कि आप हमें जीवित अवस्था में ही स्वर्ग का सुख दे देंगे। हमें सिर्फ इतना पुण्य करना है कि आपको वोट दे दें। जो आदमी महँगाई से लेकर मौसम तक ठीक कर सकता है, वह सर्वशक्तिमान से एकाध इंच ही छोटा पड़ेगा।

भैयाजी, अब तो यहाँ यह सवाल खड़ा हो गया है—हू आफ्टर भैयाजी ? भैयाजी के बाद कौन? जवाहरलाल नेहरू के संदर्भ में यह सवाल उठता था—हू आफ्टर नेहरू? यही सवाल आपके बारे में उठने लगा। बात यह है कि आपके बाद की दो पीढ़ियाँ इंतजार करते-करते बूढ़ी हो गईं कि आप सीट कब छोड़ेंगे। जवानों को आपने बूढ़ा कर दिया। सीट नहीं छोड़ी। जवानों ने राजनीति छोड़ दी आपके कारण, अब आपकी जगह लेनेवाला कोई नहीं है। अब परेशान करनेवाला सवाल उठता है—हू आफ्टर भैयाजी? मैं कहता हूँ—'हू' तो छोड़ो। इसकी कल्पना करो कि ह्वाट आफ्टर भैयाजी ? भैयाजी के बाद हमारा क्या होगा ? भैयाजी, हम बहुत घबराए हुए हैं। आप जल्दी कुछ ऐसा प्रबंध करें कि अनंतकाल तक हमारे प्रतिनिधि बने रहें। अगर आप हमें अनाथ छोड़कर स्वर्ग सिधार गए, तो भी हम आपको ही अपना प्रतिनिधि चुनेंगे। किसी जिंदा आदमी को हम वोट नहीं देंगे। अभी भी कहाँ देते हैं! हम सरकार से कह देंगे कि भैयाजी स्वर्ग से ही हमारा प्रतिनिधित्व करेंगे। अभी भी वे यही करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस क्षेत्र की जनता आपसे बहुत-कुछ कराना चाहती है, पर आप सिर्फ महत्त्वपूर्ण काम ही किया करें। महँगाई, पानी की कमी, सड़कों की खराबी, शिक्षा आदि ऐसी बातें हैं जो साधारण हैं। आपको बड़े काम करने चाहिए। उदाहरण के लिए यहाँ जुए के काफी अड्डे हैं। जुआ एक महत्त्वपूर्ण गृह-उद्योग है। मगर इन लोगों को पुलिस कभी-कभी तंग करती है। इनकी रक्षा करना पहला कर्तव्य है। आप इनके और पुलिस के बीच एक समझौता करवा दीजिए। फिर बहुत लोगों की जमानत होने में कठिनाई आती है। यह काम भी आपके सुपुर्द है। इस क्षेत्र में ठाकुरों में काफी एकता है। यह अच्छी बात नहीं। आप कृपा करके ठाकुरों के दो दल करवा दीजिए। कभी-कभी लाठी चल जाए, तो सीट सुरक्षित रहेगी। इधर गाँजा-अफीम 'स्मगल' करनेवालों को भी तकलीफ होने लगी है। आप इनकी रक्षा कीजिए, जिससे आपके क्षेत्र के निवासी नशा करके दुख भूल सकें।

इस बार मंत्रिमंडल में घुसने के आपके कैसे चांस हैं? कोशिश पूरी कीजिए। आपको केबिनेट में देखकर हमें बड़ी खुशी होगी। अकर्मण्यता में आप किसी से कम नहीं हैं। फिर आपको मंत्रिमंडल में क्यों नहीं लिया गया? इस बार अपने लिए नहीं तो कम-से-कम हमारे लिए मंत्री हो ही जाइए।

मेरे योग्य सेवा बताइए।

आपका हितैषी
एक मतदाता

एक दीक्षांत भाषण

[विश्वविद्यालयों के दीक्षांत समारोहों का मौसम चल रहा है। एक विश्वविद्यालय में एक मंत्री का दीक्षांत भाषण मैंने भी सुना। भाषण ज्यों-का-त्यों यहाँ दे रहा हूँ।—ले.]

प्यारे विद्यार्थियो!

इस समारोह में छात्रों से ज्यादा पुलिस के सिपाही देखकर मेरा मन आनन्दित हो उठा है। देखिए, सिर्फ बीस वर्षों में हमने कितनी प्रगति कर ली। दुनिया में बहुत पुराने विश्वविद्यालय होंगे, पर वहाँ भी एक छात्र के पीछे एक पुलिसमैन अभी तक नहीं हो पाया। शासन को तो इस प्रगति का श्रेय है ही, आप लोगों को भी कुछ श्रेय है। मैं तो उस दिन की कल्पना कर रहा हूँ, जब आपमें से हर एक के बाथरूम में एक सिपाही होगा। अगर शासन और छात्रगण परस्पर सहयोग करते रहे और दोनों ने प्रयत्न किए, तो वह दिन दूर नहीं है जब उपकुलपति के आसन पर पुलिस थानेदार विराजमान होगा। आप इस दिशा में जो प्रगति कर रहे हैं, उसकी मैं प्रशंसा करता हूँ। शासन इस दिशा में जो करता है वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप जानते ही हैं। विश्वविद्यालय और पुलिस को निकट लाने के लिए शासन पूर्ण प्रयत्न करेगा—यह आश्वासन मैं इस पवित्र अवसर पर आपको देता हूँ।

प्यारे छात्रो, आप तो अभी से हल्ला-गुल्ला और हूटिंग करने लगे। इतने उतावले मत होइए। मैंने अपनी सुविधा के लिए भाषण में हूटिंग के उपयुक्त कई स्थल रखे हैं। उन्हें आने दीजिए और तब मुक्त मुख से हूट कीजिए।

मैं आपको बतला दूँ कि मैं कोई विद्वान् या महापुरुष नहीं हूँ। प्रश्न उठता है कि फिर मैं दीक्षांत भाषण के लिए क्यों बुलाया गया । जवाब साफ है। मैं अगर इस बार भी नहीं बुलाया जाता तो ग्रांट रुकवा देता। तब आप लोगों का पढ़ना बंद हो जाता। आपका भविष्य अन्धकारमय न हो, यही सोचकर मैं दीक्षांत भाषण देने आ गया हूँ।

आप लोग फिर शोरगुल करने लगे। आप शायद हूटिंग के मूड में आ गए हैं। मैं इसका बुरा नहीं मानता। इससे तो अभ्यास ही बढ़ता है। हमें आजकल हर जगह हूटिंग का सामना करना पड़ता है। अपढ़ जनता की हूटिंग से मैं ऊब उठा हूँ। आप जैसे शिक्षित नवयुवक मुझे हूट कर रहे हैं, यह काफी रिफ्रेशिंग लग रहा है। फिर यह मेरे लिए गौरव की बात है कि इस वक्त जब मेरे साथी, दूसरे मंत्री गवर्नर लोगों के द्वारा हूट हो रहे होंगे, मैं एक विश्वविद्यालय में हूट हो रहा हूँ। इससे मेरा स्तर बढ़ता है।

शोरगुल, आवाजकशी और हूटिंग के मामले में मैं आप लोगों की क्षमता जानता हूँ। मैंने कोयल से पूछा था—बहनजी, आप पेड़ों पर बैठी क्या गाती हैं? उसने कहा—पहले मैं शहर में गाती थी, पर विश्वविद्यालय के लड़कों ने हूट करके भगा दिया। इसीलिए पेड़ पर बैठकर गाना पड़ता है।

मैं यह भी जानता हूँ कि मोर पहले शहर के स्टेज पर नृत्य करता था। पर आप लोगों ने कंकड़ मारकर उसे भी जंगल में भगा दिया। मैं जानता हूँ कि मेरी जगह अगर बृहस्पति भी भाषण देते होते, तो वे भी हूट कर दिए जाते। आपके उपकुलपति उन्हें आमंत्रित करके देखें। मैं दावे से कहता हूँ कि वे यहाँ आने से इनकार कर देंगे। यह तो मेरा ही कलेजा है जो बोले जा रहा हूँ। मेरे साहस का कारण यह है कि मैं बृहस्पति की तरह ज्ञानी नहीं हूँ। ज्ञानी कायर होता है। अविद्या साहस की जननी है। आत्मविश्वास कई तरह का होता है—धन का, बल का, ज्ञान का। मगर मूर्खता का आत्मविश्वास सर्वोपरि होता है।

अब आप मंच पर कंकड़ फेंकने लगे हैं। मैं इस कार्यक्रम की तुलना जब पश्चिम के ऐसे ही कार्यक्रम से करता हूँ, तो मेरा मन भर उठता है। पश्चिम में ऐसे मौके पर अंडे फेंके जाते हैं, पर हाय! भारत माता के इन लोगों को कंकड़ फेंकना पड़ता है। वे अंडे नहीं खरीद सकते। देश की आर्थिक दुर्दशा का इससे बड़ा सबूत और क्या होगा कि हमारे होनहार नौजवान वक्त पर फेंकने के लिए अंडे नहीं खरीद सकते। पर मैं आपसे कहता हूँ कि निराश मत होइए। हम पर भरोसा रखिए। हम देश का विकास कर रहे हैं। आप जल्दी ही अंडे फेंक सकेंगे। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अपने जीवनकाल में आपसे नहीं, तो आपके लड़कों से अपने ऊपर अंडे जरूर फिंकवाऊँगा। इसके लिए चाहे मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौ साल भी मंत्री क्यों न रहना पड़े।

युवा मित्रो, आपने ताली बजाने का एक स्थल खो दिया। खैर, आगे ध्यान रखिए। मैं देख रहा हूँ कि आपमें से कुछ लड़कियों के पीछे खड़े होकर बकरे की बोली बोल रहे हैं। मैं जानता हूँ, अच्छी लड़कियाँ जानवर की बोली बोलनेवाले युवक से ही प्रेम करती हैं। मेरा लड़का एक लड़की के पीछे कुत्ते की बोली बोलता था। वह इतनी मुग्ध हुई कि उससे प्रेम करने लगी। अब दोनों की शादी भी हो गई है। घर में मेरा लड़का 'भौं-भौं' करता है, तो बहू 'म्याऊँ' करती है। इससे परिवार का वातावरण सुखद रहता है।

युवको, देश को आपसे बड़ी आशाएँ हैं। देश का भविष्य आपको ही बनाना है। आप पूछेंगे—वर्तमान का क्या होगा? वर्तमान की चिन्ता आप न करें। वर्तमान को तो हम बिगाड़ रहे हैं। यदि हम वर्तमान को नहीं बिगाड़ेंगे तो आप भविष्य को कैसे बनाएँगे? आपको भविष्य बनाने का मौका देने के लिए ही हम वर्तमान को बिगाड़ रहे हैं। यह आपके प्रति हमारा दायित्व है। यदि हम आज न बिगाड़ेंगे, तो कल आपके लिए कुछ काम नहीं रह जाएगा। तब आप निठल्ले हो जाएँगे और यह देश पतन के गर्त में गिर जाएगा।

आप युवक हैं, क्रांतिकारी हैं। मैं आपके क्रांतिकारी आंदोलनों को बड़े ध्यान से देख रहा हूँ। जब आप बस-कडंक्टर और सिनेमा-गेटकीपर के विरुद्ध क्रांतिकारी आंदोलन करते हैं, तब मुझे बड़ी खुशी होती है। जब तक आप बस-कंडक्टर और सिनेमा-गेटकीपर के विरुद्ध क्रांतिकारी आंदोलन करते रहेंगे, हम सुरक्षित रहेंगे। मैं आपसे अपील करता हूँ कि आप इन्हीं के खिलाफ आंदोलन करते रहें। जिस दिन आप बुनियादी परिवर्तन के लिए आन्दोलन करने लगेंगे, उस दिन हम उखड़ जाएँगे। इसलिए आप सच्चे क्रांतिकारी बनें। सच्चा क्रांतिकारी कंडक्टर, गेट कीपर, चपरासी वगैरह से ही संघर्ष करता है।

अब मैं आपको कुछ संदेश देता हूँ। हर आदमी को जीवन के सत्य को पकड़ लेना चाहिए और उसके लिए हर कर्तव्य करना चाहिए। मैंने समझ लिया कि मेरे जीवन का सत्य मंत्री बनना है, इस सत्य को मैंने कभी नहीं छोड़ा। इस सत्य के लिए मैंने ईमान, धर्म सबका परित्याग किया, सत्य के लिए बड़े से बड़ा त्याग करना पड़ता है। मैंने किया और आप जानते हैं कि सत्य मुझसे कभी नहीं छूटा। किसी भी पार्टी का मंत्रिमंडल हो, मैं जरूर मंत्री रहा। जिसका मंत्रिमंडल बना, मैं उसी का हो गया। सत्य को इसी तरह दाँतों से पकड़ा जाता है। आप मेरे आदर्श पर चलें। विश्वविद्यालय के जीवन में आप यदि तय कर लें कि आपका सत्य डिग्री लेना है तो इसके लिए पेपर आउट व नकल से लेकर अध्यापक से मारपीट तक करें। सत्य से बड़ा कुछ नहीं है।

मेरा दूसरा संदेश यह है कि आप लोग राजनीति में भाग न लें। अगर आप राजनीति में भाग लेंगे, तो हमें राजनीति छोड़नी पड़ेगी। आप लोग चरित्रवान बनें। अगर आप चरित्रवान न बनेंगे, तो हमें बनना पड़ेगा—और हमारी अब चरित्रवान बनने की उम्र नहीं है। आप त्यागी बनें—आप त्यागी न बनेंगे, तो मजबूर होकर हमें त्यागी बनना पड़ेगा। आप ईमानदार बनें, आपके ईमानदार बन जाने पर हम ईमानदार बनने से बच जाएँगे वरना हमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस ढलती उम्र में ईमानदार बनना पड़ेगा। इसमें कितना क्लेश होता है, इसे आप कच्ची उम्र के लड़के नहीं समझ सकते। मेरी इच्छा है कि आप देश के सच्चे संपूत बनें। अगर आप नहीं बनेंगे, तो हमें बनना पड़ेगा—और हमारी सच्चे सपूत बनने की उम्र नहीं रही। तरुण मित्रो, देश को आपका ही भरोसा है। आप पर देश भरोसा नहीं करेगा, तो उसे फिर हम पर ही भरोसा करना होगा और यह उसके लिए अच्छा नहीं होगा।

तरुण मित्रो, आपको यह विदित ही है कि आज इस समारोह में मुझे भी आपके साथ कानून की डाक्टरेट बिना किसी इम्तहान के पास किए, ससम्मान मिल रही है। यह बड़ी स्वस्थ परम्परा है कि जो परीक्षा पास न करे, उसे सम्मानपूर्वक डिग्री मिल जाए। आज मैं भी आपकी तरह छात्र हो गया हूँ। मेरे मन में छात्र-जीवन की सुखद स्मृतियाँ जाग उठी हैं। किसी कवि ने कहा—'अहा, छात्र जीवन भी क्या है, क्यों न इसे सबका मन चाहे।'

डॉक्टर बनने की इच्छा मेरी बचपन से ही थी, पर अक्ल ने साथ नहीं दिया। यह इच्छा आज पूरी हो रही है। मैं जानता हूँ कि यदि मैं मंत्री न होता, तो कानूनी डॉक्टर क्या कंपाउंडर भी मुझे कोई नहीं बनाता।

ओम् शांति शांति शांति!

लेखक : संरक्षण, समर्थन और असहमति

प्रदीप पंत का एक पत्र मैंने 'मुक्तधारा' 23 दिसम्बर, 1973 के अंक में पढ़ा। इसके पहले भी सत्ता और लेखक के संबंधों को लेकर ढेरों लेख लिखे गए हैं। हर चार-छह महीने में हम लेखक लोग कहीं गोष्ठी करते हैं और लगभग उन्हीं शब्दों में उन्हीं बातों को दुहराते हैं। जब लगता है कि गोष्ठी हुए काफी महीने हो गए, तो फिर एक गोष्ठी करते हैं—विषय अमूमन वही होते हैं, नई भाषा की तलाश, लेखक और उसका परिवेश, सत्ता और साहित्यकार। फिर लगभग उन्हीं शब्दों में उन्हीं बातों को दुहराकर संतुष्ट होते हैं कि जलसा कामयाब रहा।

जलसे बराबर कामयाब हो रहे हैं, पर सवाल जहाँ-का-तहाँ खड़ा है—राजनीतिक सत्ता और साहित्यकार का संबंध?

इधर मध्यप्रदेश में भी राज्यपाल ने एक दिन लेखकों से मिलने के लिए उन्हें चाय पर बुला लिया था। मैं तो भोपाल निवासी हूँ नहीं, पर प्रतिक्रियाएँ मैंने पढ़ीं और सुनीं—जो गए, वे कहलाए पतित और बिके हुए और जो नहीं गए, वे क्रांतिकारी! और झगड़ा शुरू हो गया।

मैं जानता हूँ, सरकार 'शब्द' से अब डरने लगी है। वह साहित्यकार से संबंध स्थापित भी करना चाहती है। वह 'पेट्रोनाइज' भी करना चाहती है। वह अपनी एक सांस्कृतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'इमेज' भी बनाना चाहती है। मोरारजी भाई ने भी तो लेखकों को बुलाया था।

सवाल यह है कि क्या कोई साहित्यकार बिलकुल स्वतंत्र रह सकता है? लेखन से जीविका कमा सकता है? सरकारी नौकरी में जाकर आर्थिक विकास-संबंधी मंत्री का भाषण लिखने से अपने को बचा सकता है? क्या रेडियो, प्रकाशन विभाग और अकादमियों में जाने के लोभ को नकार सकता है?

साथ ही दूसरी बातें भी उठती हैं—क्या रेडियो पर कलाकार की जगह भाँड की नियुक्ति लेखकीय अहंकार को तुष्ट करेगी? अकादमियों में क्या गँवारों को बिठा दिया जाए ? प्रकाशन विभाग क्या अपढ़ों के हाथ में सौंप दिया जाए?

विकास-संबंधी मंत्री का झूठा भाषण लिखने के लिए लेखक मजबूर है (उसे बीवी-बच्चे पालने हैं)। पर इसके बाद भी रचना में वह सही बात कहने के लिए कम-से-कम भीतरी ईमान से स्वतंत्र है।

मजा यह है कि भारतीय लेखक एक साथ दो युगों में जीता है—मध्य युग में और आधुनिक युग में। वह कुंभनदास की तरह घड़े बनाकर नहीं जीता, पर कहता है—'सन्तन कहा सीकरी सों काम।' वह रैदास की तरह जूते नहीं सींता, न कबीर की तरह कपड़े बुनता है—मगर बात उन्हीं के आदर्शों की करता है।

यह एक छद्म क्रांतिकारिता है। इनाम लेने की कोशिश में पीछे नहीं, अकादमियों के लाभ के लिए बराबर प्रयत्नशील, अच्छी सरकारी नौकरी की बराबर तलाश में—मगर साथ ही यह नारा भी कि सरकार लेखक को खरीद रही है। आप तो बाजार में खुद माल की तरह बैठे हैं और खरीदार को दोष देते हैं कि कमबख्त हम लोगों को खरीद रहा है। फिर खरीदार क्या सिर्फ सरकार ही है? क्या इससे बड़े खरीदार नहीं हैं और क्या 'माल' बिक नहीं रहा?

सरकार का विरोध करना भी सरकार से लाभ लेने और उससे संरक्षण प्राप्त करने की एक तरकीब है। लेखक न अब 'बेचारा' रह गया है, न भोला। वह जानता है कि सरकार का विरोध करने से कभी-कभी समर्थन से अधिक फायदे मिलते हैं। सरकारें खुद चाहती हैं कि कुछ लेखक उनका विरोध करें। वे उन्हें पहचान लें और जो चाहिए दे-दिवा दें।

अति सरलीकरण के खतरे होते हैं। बदलते समाज में सरल फार्मूले भ्रम पैदा करते हैं। यशपालजी का यह कहना ठीक है कि सरकार अगर लेखक को संरक्षण देगी तो आपसे समर्थन की भी माँग करेगी। मगर फिर भी मुझे यह बात अति सरल लगती है।

सवाल है—कौन-सी सरकार? कैसी सरकार? उसका प्रोग्राम क्या है? वह किन मुद्दों पर समर्थन चाहती है? क्या हम अंधे की तरह यह मान लें कि लेखक और सरकार का शाश्वत शत्रु-संबंध है या मित्र-संबंध? संसदीय लोकतंत्र में क्या लेखक और सरकार के परस्पर संबंधों पर फिर से विचार करने की जरूरत नहीं है? क्या यह सही नहीं है कि सरकार के टोटल विरोध की बात वही लेखक करते हैं, जिनके मजे में जिंदगी गुजारने के लिए दूसरे जरिए हैं? क्या यह सही नहीं है कि कल जो मंत्रियों के झूठे भाषण प्रेमपूर्वक लिखकर देते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे, आज सरकारी नौकरी छोड़कर दूसरे दरबार में चोबदार की हैसियत से 'क्रांति-शूर' की मुद्रा धारण करते हैं और सरकार की बुराई करते नहीं अघाते; क्योंकि 'प्रमोशन' कोई दूसरा फटकार ले गया—और सरकार-विरोध फायदे देता है।

मैं सरकारों का कटु आलोचक हूँ। मैं जानता हूँ केंद्र और प्रदेशों की सरकारें कोई क्रांतिकारी सरकारें नहीं हैं। इनकी आलोचना होनी ही चाहिए। पर सवाल है—'आलोचना टोटल होनी चाहिए या मुद्दों पर?' दूसरा सवाल है, क्या हम लेखक ऐसे किसी 'आंदोलन में शरीक हैं जो इनकी जगह सच्ची क्रांतिकारी, जनवादी सरकारों की स्थापना करे?' फिर यह 'संरक्षण' क्या चीज है? यह कोई अच्छा शब्द नहीं है। यह अक्सर पिछड़ी जातियों, आदिवासियों आदि के लिए काम में आता है। लेखक भी क्या इसी तरह के 'संरक्षण' का आकांक्षी है? और इसके साथ ही सरकार का समर्थन न करने की छूट भी चाहता है। आदिवासी छात्र जो सरकार से स्कॉलरशिप पाकर मजे में होस्टल में रहकर पढ़ता है, रोज सवेरे प्रार्थना के बाद प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री और आदिवासी मंत्री की जय बोलता है। पर जब ये लड़के अलग बैठते हैं, तब कहते हैं कि—साले घटिया खाना खिला रहे हैं।

मैंने कहा है, अति सरलीकरण के खतरे हैं। क्या लेखकों की अलग दुनिया है ? होगी। पर सहकारी दूकान उस दुनिया में नहीं है। वह इसी सब लोगों की दुनिया में है, जहाँ लेखक, हो सके तो, झूठे कार्ड पर भी शक्कर ले लेता है।

लेखक क्या सरकार की टोटल आलोचना करे? यानी अगर सरकार कोई ठीक योजना, योजना आयोग से बनवा रही है, तो भी क्या उसका विरोध ही करे—क्योंकि वह लेखक है और उसकी अलग दुनिया है? लूकाच ने कहा है कि कुछ भी प्रगतिशील कदम उठानेवाली सरकार की टोटल आलोचना करनेवाला बुद्धिजीवी अक्सर 'हीरो' बनने की कोशिश करता है, पर वह मूलतः क्रांति-विरोधी शक्तियों का एजेंट होता है। वह जनता का आक्रोश सरकार की तरफ करके उन ताकतों को बचा ले जाता है, जो यथास्थितिवादी और क्रांति-विरोधी होती हैं। गो वर्ग-संबंध दोनों के एक हैं। लेनिन ने कहा है—अतिक्रांतिकारिता की बात करनेवाले बुद्धिजीवी अक्सर—बुर्जुआ के एजेंट होते हैं। वे सामाजिक क्रांति की तर्कपूर्ण, योजनाबद्ध और यथाविधि प्रक्रिया में अड़ंगा डालते हैं।

सवाल बुनियादी है। हमें उन्हें भारतीय परिस्थितियों में और नए परिप्रेक्ष्य में देखना है। इसमें न इंदिरा गांधी से मतलब है, न केदार पांडे से।

कोई लेखक समाजवाद-विरोधी नहीं है। इन लेखकों को यह भी मालूम होना चाहिए कि कालेजों और विश्वविद्यालयों की नई पीढ़ी तुरंत क्रांतिकारी सामाजिक परिवर्तन चाहती है। वह इस 'डेमोक्रेसी' या 'संसदीय लोकतंत्र' के धीमे और झूठे कार्यक्रम से संतुष्ट नहीं है। मुझे इस पीढ़ी के संपर्क के बहुत अनुभव हैं। ये तुरंत परिवर्तन चाहते हैं—और बहुत परेशान हैं। ये आपकी 'एकेडेमिक' बहस पर लानत देते हैं।

यथार्थ यह है कि लेखक एक विशिष्ट प्रकार का व्यक्ति इस अर्थ में होता है कि वह मानव-जीवन के भविष्य के बारे में सोचता है, उसका एक स्वप्न होता है, कल्पना होती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। वह सामान्य लोगों से अधिक प्रबुद्ध भी होता है। उसका विशेष दायित्व है।

क्या हम सिर्फ इस प्रश्न में उलझे रहें कि सरकार लेखक को संरक्षण दे या न दे ? लेखक सरकार का समर्थन करे कि न करे? संरक्षण और लाभ लेकर भी वह क्या सरकार को समर्थन देने के लिए प्रतिबद्ध है?

ये सवाल बुनियादी नहीं, सुविधा और असुविधा के सवाल हैं। मैं बहुत लेखकों को जानता हूँ, जो केवल सरकार-विरोध को 'आइडियालॉजी' मानते हैं। पर मैं पूछता हूँ कि अगर सरकार योजना बनाती है तो लेखक का रुख क्या होगा? अगर सरकार अन्न का राष्ट्रीयकरण कर रही है तो लेखकों का रुख क्या होगा? अगर कोई मुख्यमंत्री (अपनी इमेज बनाने के लिए ही सही) जनता के जुलूस में शामिल होकर मुनाफाखोरी के विरुद्ध वातावरण तैयार करने में सहायक होता है—तो मैं उस जुलूस में जाऊँगा और उस मुख्यमंत्री को मजबूर करूँगा कि वह जनता को बताए कि वह क्या करना चाहता है। इसके बाद वह कुछ नहीं करता है, तो मेरा यह लेखकीय अधिकार और धर्म है कि मैं कहूँ कि तुम झूठे हो और 'स्टंट' कर रहे थे।

सवाल यह है कि लेखक अपने को आम जनता से जोड़ता है या नहीं। जोड़ता है तो वह हर सही जन-आंदोलन में साथ देगा—वरना कमरे में बैठकर कविता लिखेगा—कि हम तो मर गए हैं, हम सूअर हैं, हमारी मरणतिथि यह है (हालाँकि ठाठ से जी रहे हैं)।

योजना को यदि विकास का मार्ग स्वीकृत कर लिया गया है—और है भी—तो मैं योजना का समर्थन करूँगा। मगर योजना के कार्यान्वयन की खामियों की मैं कड़ी आलोचना करूँगा।

जहाँ तक सरकार के हाथ बिकनेवाले मामले का सवाल है, लेखक सोचें कि पैब्लो नेरूदा अगर फ्रांस में चिली का राजदूत हो गया तो क्या वह राष्ट्रपति एलेंडे के हाथों बिक गया ? (दोनों दुनिया छोड़ गए)।

मेरी प्रार्थना है कि लेखक कुछ बातों को न भूलें—भारत में संसदीय लोकतंत्र है। संसदीय लोकतंत्र में लेखक सत्ता से अपना तालमेल कैसे बिठाए? क्या वह इस व्यवस्था का अंग हो गया है और 'संरक्षण' चाहता है? क्या वह 'समर्थन' देने को मजबूर हो गया है? या वह केवल 'स्टंट' करके लोगों को बेवकूफ बनाना चाह रहा है? या वह छद्म क्रांतिकारिता ओढ़े हुए है।

भारतीय बुद्धिजीवी और लेखक को रचनात्मक ईमान तथा जन-आंदोलन में सहभागिता के साथ इन प्रश्नों पर गंभीरता से विचार करना चाहिए। उसे अपनी स्थिति को तय करना चाहिए। कभी-कभी 'एकेडेमिक' अंदाज में (जो वास्तव में एकेडेमिक भी नहीं है) कुछ कह देने से कुछ नहीं होगा।

मैं चाहता हूँ, इस विषय पर विस्तृत चर्चा हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीर समारोह क्यों नहीं

मानस चतुश्शती समारोह होने में मुझे कोई एतराज नहीं है। कर लेने दिया जाए। कम-से-कम इतने बड़े और पूज्य कवि पर खुली बहस तो हो जाए। हिंदू कवि और मुसलमान कवि, हिंदू काव्य और मुस्लिम काव्य—ये 'संकीर्ण मूर्खताएँ' हैं। तुलसी के पहले उसी भाषा और उसी छंद में मुसलमान कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' महाकाव्य लिखा था, जिसमें नायक हिंदू और खलनायक मुसलमान था—इस तथ्य को लोग सामने नहीं आने देना चाहते। यह काव्य तब लिखा गया जब उत्तर भारत में सुल्तानों का राज हो गया था।

मैं उन आचार्यों की यह स्थापना नहीं मानता कि तुलसीदास ने हिंदू जाति और धर्म को बचा लिया। वह अकबर था, जो इस देश के हिंदू-मुसलमान दोनों को बचाना चाहता था। उसी ने सबसे पहले यह कल्पना की थी कि इस देश की राजनीतिक संरचना अंततः 'संघ राज्य' होगा—और वह हुई। इसीलिए वह आपस में लड़ते तीन-चार जिलों के मालिक क्षत्रिय राजाओं से कहता था—मैं कंठीमाला पहन लेता हूँ। चंदन लगा लेता हूँ। आओ, एक संघ बना लें। पर ये राजा, जो हिंदू थे, आपस में ही लड़ते थे। सांप्रदायिक दृष्टि से इतिहास की व्याख्या करनेवाले राजा मानसिंह को बहुत कलंकित करते हैं और राणा प्रताप को 'हीरो' बनाते हैं—जबकि मानसिंह में राजनीतिक समझ थी और प्रताप शूरवीर होते हुए भी राजनीतिक समझ से हीन थे। जो लोग अकबर को रावण का प्रतीक मानकर 'जब-जब होइ धरम की हानी' राम के अवतार की प्रतीक्षा कर रहे थे, वे यदि अवतार लेते, तो पहले इन छोटे-छोटे हिंदू राजाओं का नाश करते कि बेवकूफो, अपनी जाति को क्यों तोड़ रहे हो !

यों मध्ययुग के कवियों में कबीर के सिवा किसी में युगीन सामाजिक चेतना नहीं थी। सूरदास अति अंतर्मुखी कवि थे, पर इसमें शक नहीं कि बाल-जीवन, संयोग और वियोग का इतना ऊँचा कवि कम ही मिलता है। यह सही है कि ब्राह्मण और दूसरे ऊँचे वर्णों ने कबीर को कवि नहीं माना, अवहेलना की। उसे गाली देनेवाला माना। अब भी होली पर जब गालियाँ गाई जाती हैं, तब गालियाँ शुरू होती हैं—'अरेरे सुनो कबीर'—याने आज भी कबीर गाली का पर्यायवाची है। जब कबीर की सौ कविताओं का रवींद्रनाथ ने अंग्रेजी में अनुवाद किया और खुलेआम स्वीकार किया कि मैंने कबीर से बहुत-कुछ लिया है तब कबीर को 'रिस्पेक्टेबिलिटी' मिली—क्योंकि रवीन्द्र आभिजात्य थे। दूसरा कोई ऐसा करता तब भी कबीर को प्रतिष्ठा न मिलती।

कबीर ने जीवन को आर-पार देखा था। समाज-व्यवस्था के पाखंड और अंतर्विरोधों को समझा था। पाखंड को समझा था और तिलमिला देनेवाली चोट की थी। वह हिंदू-मुस्लिम, ब्राह्मण-शूद्र के भेद का शत्रु था। मुझे आश्चर्य है कि कबीर को जिंदा कैसे रहने दिया गया। चार-पाँच सौ साल पहले किसी की गर्दन उतार लेना आसान काम था। मुझे लगता है, कबीर अपने ज़माने का बड़ा गुंडा भी रहा होगा और उसके हजारों लड़ाकू चेले उसकी रक्षा करते होंगे। वह केवल कबीर था, जो आज भी 'माडर्न' है और भारतीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज का सच्चा प्रतिनिधि कवि है।

वह कहता है—

तू बाम्हन बम्हनी का जाया
आन द्वार ते होके आया?
तू है तुरक तुरकनी जाया
भीतर खत्तन क्यों न कराया?

तुलसीदास का मूल्यांकन हम आज चार सौ साल बाद कर रहे हैं। हमें तुलसी के युग और उसके पहले के संदर्भ देखने होंगे। सही है कि तुलसीदास ब्राह्मणवादी थे। मध्ययुग में ब्राह्मणों का पतन हुआ। इसके पहले ब्राह्मणों ने ज्ञान-विज्ञान का शोध किया, विधान दिए। बहुत पहले के ब्राह्मण के चिंतन को नकारा नहीं जाता। तब भी वह जातिवादी था। उसने क्षत्रिय विश्वामित्र को 'ऋषि' नहीं होने दिया। तब भी ब्राह्मण भूखा मरता था, पर वह बिना शिकायत के स्थिति से समझौता करके धर्म और समाज-चिंतन में लगा रहता था।

यह भारतीय समाज की विचित्र स्थिति है कि ब्राह्मण, जो सबसे उच्च वर्ण का है, पुजता है, वही सबसे गरीब है। वह स्टेशन पर पानी पाँडे है, बड़े घरों में रसोइया है। सवा रुपए में 'सत्यनारायण' कर देता है। भीख माँगता है। विवाह में तरकीब से कुछ रुपए जरूर धरवा लेता है। 'ओम् शनि ग्रह—एक रुपया रखो। ओम् शुक्र ग्रह—सवा रुपया रखो।' सोचता हूँ इस ब्राह्मण में अक्ल होती तो यह नवग्रह के सिवा 'स्पुतनिक' पर भी रुपया रखवा लेता—'ओम् रूसी ग्रह—सवा रुपया रखो। ओम् अमेरीकी ग्रह—एक रुपया रखो।'

बड़ी हद तक ज्ञान-विज्ञान की उपलब्धि के बाद इस ब्राह्मण का पतन शुरू हुआ। उसने राजसत्ता और अर्थसत्ता से समझौता किया। सामंत की प्रशंसा के छंद लिखकर स्वर्ण-मुद्रा पाने लगा और वणिक का शनि उतारने के लिए अनुष्ठान करके द्रव्य लेने लगा। पर साधारण विप्र फिर भी पूज्य, परन्तु गरीब और भिखमंगा रहा।

शोषक वर्ग के लिए जरूरी हो गया कि बहुसंख्यक शोषितों को ज्ञान-विज्ञान, संस्कृति आदि से वंचित किया जाए। उसे 'अछूत' करार दिया जाए और हीन सेवाएँ कराई जाएँ—क्योंकि सेठानी और राजकुमारी मैला साफ नहीं कर सकती थीं। फिर यदि यह शोषित वर्ग ज्ञान-विज्ञान पा गया, तो बराबरी का हो जाएगा, अधिकारों की माँग करेगा। तब ब्राह्मण ने ज्ञान की पोथी को लपेटकर रख दिया। दूसरों को नहीं पढ़ने दिया, न खुद पढ़ा। इस तरह विप्र खुद तो गँवार होता ही गया, निम्न वर्ण और हीन होता गया। यदि शंबूक का प्रकरण सही है जिसकी गर्दन विप्र के आदेश से राम ने काटी थी, तो उसका अर्थ है कि वह शूद्र 'तपस्या' यानी ज्ञान-विज्ञान का अध्ययन कर रहा था। इससे अकाल पड़ा?

तुलसी में सामाजिक-धार्मिक चेतना थोड़ी थी—धार्मिक ज्यादा थी :

हरित भूमि तृण संकुल,
सूझ परहिं नहिं पन्थ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिमि पाखंड विवाद तें,
लुप्त होंहि सद्ग्रन्थ।।

पाखंड-विवाद से सद्ग्रंथ के लुप्त होने की बात वे जानते थे। कई पंथ, कई साधना-पद्धतियाँ थीं। इनमें आपस में झगड़े थे। 'रामचरितमानस' से ही मालूम होता है कि शैवों और वैष्णवों में संघर्ष थे। शैव पिटाई कर देनेवाले लोग थे। वैष्णव 'भूल-चूक लेना-देना' होता है। तुलसी ने समन्वय की कोशिश की। राम से कहलवाया—'शिव का बैरी मेरा भी शत्रु है।' फिर लंका पर हमले के पहले राम ने शिवलिंग की स्थापना की, जिसमें पौरोहित्य के लिए रावण को बुलवाया। लंका की सभ्यता बहुत विकसित थी। विन्ध्य के दक्षिण के लोग असभ्य थे। बालि और सुग्रीव कुश्ती लड़े थे। हथियारों से नहीं लड़े थे। वे सभ्यता की उस स्टेज पर थे जहाँ सिर्फ मल्लयुद्ध हो सकता था। इन्हें धनुष-बाणवाले राम-लक्ष्मण के लिए अपने अनुयायी बनाना आसान था। फिर भी बालि ने राम को मरते-मरते धिक्कारा—"मारेहु मोहि व्याध की नाईं!"

हथियारों के निर्माण का विकास सभ्यता के विकास का एक दिलचस्प अंग है। ब्राह्मण भी हथियार उठाने लगे थे क्षत्रियों के खिलाफ। परशुराम लक्ष्मण से कहते हैं—

भुजबल भूमि भूप बिन कीन्ही
सहस बार महिदेवन दीन्हीं
सहस बाहु भुज छेदनहारा
परसु निहार नरेश कुमारा।

परशुराम ने सात-आठ फीट के डंडे में एक धारदार फलक लगा लिया था—फरसा। यह शस्त्र के क्षेत्र में आविष्कार था। यह शस्त्र अपनी ब्राह्मण उपजाति 'नंबूदरी' को दे दिया। फरसे से सात-आठ फीट की दूरी से प्रहार किया जा सकता है। शत्रु पास आ ही नहीं सकता। पर इधर भी ब्राह्मण ही ऐसे शस्त्रों के निर्माण में लगे थे, जिनसे और दूर से प्रहार किया जा सके। विप्र वशिष्ठ दशरथ के चारों पुत्रों को (जो सिर्फ यज्ञ करने से पैदा हो गए थे !) शस्त्र और शास्त्र दोनों की शिक्षा दे रहे थे और राम-लक्ष्मण धनुष-वाण से लैस थे। जनक के यहाँ रखा वह धनुष 'सेम्पल' का धनुष होगा। जब परशुराम ने राम-लक्ष्मण को इस शस्त्र-विद्या में निपुण पाया तो चकराए। कहा—

राम रमापति कर धनु लेहू,
खैचहू चाप मिटे सन्देहू।

परशुराम 'फासिस्ट' थे। अपनी उपजाति को लेकर केरल चले गए। मजे की बात यह है कि उनकी जाति के नंबूदरी ब्राह्मण आगे चलकर 'कम्युनिस्ट' हो गए।

मैं तुलसी के काव्य-वैभव की चर्चा इस लेख में नहीं कर रहा हूँ। उनके सोचने और मानने की बात कर रहा हूँ।

कितना ही बड़ा कवि हो, अपने युग की जमीन पर उसके पाँव होंगे ही। जैसी राजनीतिक परिस्थिति थी, उसके हिसाब से वे सामंतवाद के समर्थक थे। उनकी कल्पना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक 'बेनीवोलेंट मॉनर्क' की कल्पना थी और राम को उन्होंने ऐसा ही बनाया है। पर इस तरह की सत्ता के खतरे भी जानते थे—

को न राज-पद पाय नसाईं

× × ×

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी,
सो नृप अवस नरक अधिकारी।

अंग्रेजी में कहें तो—'सेंड हिम टु हैल!'

अपने युग की सड़ी मान्यता और दीमक खाई खोखली मर्यादा से विद्रोह करना विरले महाप्राण कवि के वश की बात है। यह सही है कि तुलसीदास ने लोकभाषा में साहित्य लिखकर कुछ लीक तो तोड़ी, पर मान-मूल्य उनके सामंती थे। फिर वे समर्पित भक्त थे। अपने आराध्य के दोष नहीं देखते थे। एक तुलसी के विद्वान ने मुझसे कहा कि लोकापवाद के भय से राम ने सीता का जो परित्याग किया, इसके लिए तुलसी ने उन्हें क्षमा नहीं किया। उत्तरकांड में यह तो उन्होंने कहा है कि लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के दो-दो गुणवान पुत्र हुए। पर लव-कुश के बारे में कहा है—सीता के दो वीर गुणवान पुत्र हुए। राम का नाम ही नहीं लिया। मैंने कहा—यह भी तो हो सकता है कि तुलसी को धोबी की बात पर भरोसा हो गया हो। वे हँसने लगे।

तुलसी के अनुभवों का क्षेत्र विशाल था। जीवन-चिंतन गहन था। जीवन की हर स्थिति के विषय में सोचा और निष्कर्ष में नीति-वाक्य बोले—

पर हित सरिस धरम नहीं भाई,
पर पीड़ा सम नहि अधमाई।

तमाम रामचरितमानस नीति-वाक्यों से भरा पड़ा है। ये काव्य नहीं 'स्टेटमेंट्स' (वक्तव्य) हैं। इनमें शाश्वत जीवन-मूल्यों की अभिव्यक्ति की भी कोशिश है—

सुर नर मुनि सबकी यह रीती,
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती।

इस बात से कोई इनकार नहीं करेगा। हर स्थिति पर जड़े गए नीति-वाक्य लोगों की जुबान पर हैं और वे लोकप्रिय हैं। कविता रामचरितमानस में नहीं, गीतावली और कवितावली में है। मानस में कथा और नीति-वाक्य हैं।

यह सही है कि सामंती समाज की सड़ी-गली मान्यताओं को तुलसी ने बल दिया। छोटे, कमजोर दलित वर्ग को और कुचलने के लिए एक धार्मिक पृष्ठभूमि और मर्यादा का बल दे दिया। ये दलित लोग थे—स्त्री और नीची जाति के लोग। पुनरावृत्ति होगी, पर—

ढोल गँवार शूद्र पशु नारी,
ये सब ताड़न के अधिकारी।
पूजिय विप्र सील गुण हीना,
शूद्र न पूजिय जदपि प्रवीना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सीधी ब्राह्मण की घृणा है। शबरी के बेर राम को खिलाने और गुह-निषाद को चरण धुलवाकर राम के गले लगाने का कोई अर्थ नहीं।

नारी के प्रति तुलसी की शंका और दुराग्रह भी बहुत है। पतिव्रत धर्म अच्छी चीज है, क्योंकि इससे पारिवारिक जीवन सुखी रहता है—हालाँकि चालीस फीसदी परिवारों में रोते, पिटते और घुटते पतिव्रत धर्म निभा लिया जाता है।

स्त्री के वर्गीकरण में तुलसी कहते हैं—

उत्तम कर अस बस मन माहीं
सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं।

पर दूसरी जगह कहते हैं—

भ्राता, पिता, पुत्र, भरतारी
पुरुष मनोहर निरखत नारी।

इसमें वह 'उत्तम' वाली भी आती होगी। यह क्या विरोधाभास है!

जीवन के अनुभवों के कारण ही हो, तुलसी स्त्री के मामले में 'सेडिज्म' (परपीड़न प्रमोद) के शिकार थे। यह उर्मिला पर सबसे अधिक लागू होता है। कल ब्याही हुई युवती को चौदह सालों में कवि ने बूढ़ी कर दिया। क्या लक्ष्मण और उर्मिला दोनों को राम की सेवा के लिए नहीं भेज सकते थे?

आज भी हरिजन जलाए जाते हैं, इसका सारा दोष तुलसी पर नहीं मढ़ा जा सकता—गो वे इसके प्रोत्साहक हैं। बात यह है कि मैंने रामकथा और रामलीला में स्वयं शूद्रों को अपने ही पीड़न के प्रसंग पर 'हरेनमः' करके गद्गद होते देखा है।

जिम्मेदारी हमारी है। हम भी शोषक हैं। हमने भी शूद्र को दवाया है। उसे शिक्षा और संस्कृति से वंचित करके आज भी उसे मध्ययुग की हालत में रखा है।

मध्ययुग में इस वर्ण ने विद्रोह भी किया। अपने कवि, अपने चिंतक पैदा कर लिए—कबीर जुलाहा, रैदास चमार, कुंभनदास कुम्हार। यह सही है कि ब्राह्मणों ने कबीर की शक्ति और प्रभाव देखकर उसे विधवा ब्राह्मणी का पुत्र मान लिया। बड़ी कृपा की। मौका आता तो ये मुहम्मद को ईश्वर का अवतार मान लेते।

तो मानस चतुश्शती हो। धूम-धाम से हो। मगर सिर्फ जय-जयकार न हो।

फिर 'कबीर समारोह' हो। कबीर, जिसने अपनी जमीन तोड़ी, भाषा तोड़ी और नई ताकतवर भाषा गढ़ी, सड़ी-गली मान्यता को आग लगाई, जाति और धर्म के भेद को लात मारी, सारे पाखंड का पर्दाफाश किया, जो पलीता लेकर कुसंस्कारों को जलाने के लिए घूमा करता था।

वह योद्धा कवि था। महाप्राण था। सरकार को 'कबीर समारोह' अवश्य करना चाहिए मगर याद रहे, जगजीवनराम को उमाशंकर दीक्षित के साथ एक 'डिनर' खिलाने से कोई सामाजिक परिवर्तन नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरी आजादी का जाँच कमीशन-1

इन दिनों मैं ईमानदारी से बहुत पीड़ित हूँ। नहीं, पेचिश की तरह मुझे ईमानदारी की बीमारी नहीं हुई है। पेचिश तो उन्हें हो रही है जिन्होंने वादे किए। मैंने कोई वादा नहीं किया। अभी मैंने अखबार में पढ़ा कि एक मंत्री रेस्ट हाउस पहुँचते ही बाथरूम में चले गए। बाहर माँग पेश करनेवाले लोग थे। वे गए तो मंत्री बाहर निकले। तभी दूसरा जत्था माँग करनेवालों का आया तो वे फिर बाथरूम में घुस गए। 5-6 बार देखकर रेस्ट हाउस का खानसामा उनके लिए डिनर में दही और खिचड़ी ले आया। मंत्री बहुत नाराज हुए और मुर्गा लाने को कहा। रेल में चढ़े तो हर स्टेशन पर पाखाने में घुस जाते—माँग करनेवालों से रक्षार्थ।

तो पेचिश तो वादे करनेवालों को हो रही है और बाथरूम के किले में बंद होकर वे बचाव कर रहे हैं। बाथरूम पर हमला नहीं होता। इतनी लड़ाइयाँ हुई हैं, किले तोड़े गए हैं, पर इतिहास में कहीं उल्लेख नहीं है कि बाथरूम पर गोला दागा गया। हिटलर तो बेवकूफ था। आत्महत्या क्यों की? बाथरूम में घुस जाता।

मुझे यह शिकायत नहीं है। मैं परेशान हूँ अपने आसपास की ईमानदारी से, ईमानदारी के देशव्यापी वातावरण से। यह मौसम मेरे स्वास्थ्य को रास नहीं आता। आखिर 'दूसरी आजादी' के हमारे भाग्य-विधाता इतने ईमानदार होकर हमें क्यों तंग कर रहे हैं। हमने क्या बिगाड़ा है। इन्होंने हमें समझा दिया है और हम मान गए हैं कि तीस साल तक हमारे रहनुमा बेईमान और स्वार्थी थे। अब ये नए भाग्य-विधाता बिलकुल ईमानदार हैं। अखबार पढ़ता हूँ तो इनकी ईमानदारी के बयान और काम पढ़ता हूँ। वही रेडियो पर। कहाँ भाग जाऊँ मैं इस जालिम ईमानदारी से बचकर। कोई सूरत नजर नहीं आती। मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ, हे भाग्य-विधाता, हमसे बरदाश्त नहीं होता। हमारी क्षमता भी तो देखो। हम इतनी ईमानदारी पचा भी पाएँगे? रोगी को देखकर पथ्य दिया जाता है। हम तीस सालों से उपवास कर रहे थे और तुम हमारा उपवास तुड़वा रहे हो पकौड़ों से। लंघन तुड़वाते हैं तो पहले मूँग की दाल का पानी देते हैं। तुम भी हमें धीरे-धीरे ईमानदारी दो। लो, यह ईमानदारी का पानी पियो। अच्छा, अब यह ईमानदारी की पतली खिचड़ी खाओ। पच गई? ठीक। अच्छा, अब यह ईमानदारी छोंकी हुई खाओ। थोड़ा चूरन भी ले लो। अच्छा, अब यह ईमानदारी का भरवाँ बैंगन खाओ। ऐसा धीरे-धीरे करना था। तुम तो मोतियाबिंद के आपरेशन के बाद एकदम तेज रोशनी आँखों पर डालते हो। हमें बरदाश्त हो सके, इतनी ईमानदारी चाहिए। तुम बाद में जी भरकर ईमानदार हो लेना। जो ईमानदार होने पर आमादा हो, उसे कौन रोक सकता है।

मुझे स्वीकार है कि तीस सालों तक बेईमानों का शासन था। पर इन नए ईमानदारों में से लगभग आधे उन बेईमानों के साथ सत्ता में थे, बीस साल। इन्हें 1969 में बोध हुआ—अरे, हम तो बेईमानों के साथ हैं। ये अलग हो गए। तो दो-तिहाई बेईमान हुए और सिर्फ एक-तिहाई ईमानदार। कुछ को मार्च 1977 में बोध हुआ कि हम तो बेईमानों के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी तक रहे। इनमें एकाध ग्राम ही ईमान होगा। कुछ वे हैं जो 1967 में संविद शासन में सत्ता में शोभित हुए। ये बेईमानी के कारण सत्ता से हटे। ये बहादुर भी हैं। भैया, तब तुम बहादुर क्यों नहीं हुए ? तब डर था। अब बहादुर क्यों हो गए? क्योंकि अब हम खुद डरावने हो गए हैं। तो भैया, बहादुरी की परिभाषा क्या है? डर हो तब दबे रहना और जब डर न हो, तब लट्ठ घुमाना।

फर्क क्या है? ये उसी पुराने कारखाने के ईमानदार हैं, जिसके भागीदारों में झगड़ा हो गया। कारखाना एक ही और माल भी एक ही। 'सूरज छाप' माल बाजार में बदनाम हो गया था तो लेबिल बदलकर उसे 'चाँद छाप' कर लिया। कुछ वे हैं जो उस बड़े कारखाने के आसपास अपनी छोटी 'एंसिलरी इंडस्ट्री' खोले थे और नट-बोल्ट सप्लाई करते थे। अब ये बड़े सत्ता कारखाने में भागीदार हो गए हैं। हम तो विज्ञापन के चलाए चलते हैं। इस नए विज्ञापन में सजा हुआ नया छबीला शासन सिगरेट लिए है और सुंदरी जनता उसे सुलगा रही है—मेड फार ईच अदर।

बेईमानी की जगह ईमानदारी फिट करने की प्रक्रिया चालू है। दूसरी आजादी आई है। एक क्रांति हुई है। एक प्रदेश की सरकार ने सारी सहकारी समितियाँ भंग कर दीं। कहा—इनमें कई सालों से बेईमान जमे हुए हैं। बिलकुल ठीक। अब इनमें सरकार ने अपनी पार्टी के पदाधिकारी नामजद कर दिए। तब लोगों ने शोर मचाया कि हम इन्हें जानते हैं। ये ख्याति-प्राप्त बेईमान हैं। मुझ-जैसा मूढ़ आदमी भी सोचता है—क्या एक बेईमान की जगह दूसरा बेईमान फिट करना ही दूसरी आजादी है, क्रांति है? हम क्या जुते हुए घोड़े हैं? पहले कोचवान को दूसरे ने ढकेल दिया और खुद बैठकर हाँकने लगा। चाबुक मारकर कहता है—दौड़ रे घोड़े क्रांति हो गई। हमारी शायद यही नियति है कि एक बेईमान के हाथ से दूसरे बेईमान के हाथ में ट्रांसफर होते रहें। यह बेईमानी का 'रोलिंग प्लान'—अनवरत योजना है।

तब एक युवक के फोटो सहित दीवार पर पोस्टर चिपकता था—युवकों का नेता। अब एक बूढ़े की फोटो सहित पोस्टर चिपकता है—किसानों का नेता। पहले ट्रक भर-भरकर लोग उसकी जय बोलने लाए जाते थे, अब इनकी जय बोलने लाए जाते हैं। लड़का बाप का वारिस होता आया है, मगर देख रहा हूँ बाप बेटे का वारिस होने लगा। तब पोस्टरों पर एक बेवकूफ जवानी थी, अब कठोर झुर्रियाँ हैं। बेवकूफ जवानी से छूटकर कठोर झुर्रियों की हुकूमत में आना ही क्रांति है। अतिशासन से शासनहीनता के दौर में आ जाना भी क्रांति है। भूतपूर्व की जगह अपूर्व ने ले ली।

सब तोते हैं। रटा-रटाया बोलते हैं। वे भी बोलते थे। ये भी बोलते हैं। ये तोते पिंजड़े में बंद थे। हमने याने जनता ने पिंजड़ा खोलकर इन्हें मुक्त कर दिया। ये उड़कर पेड़ की डाल पर बैठ गए और चिल्लाने लगे—सीताराम। सीताराम। सब भयहीन हो जाओ। डरो मत। हमने तुम्हें आजाद किया है। सीताराम। सीताराम। हम तुम्हारी रक्षा करेंगे। तुम जरा उस 'औरत' को देखते रहना। वह यहीं कहीं आसपास होगी। कहीं फिर जाल न फैला देना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीताराम। सीताराम। तुम निर्भय हो जाओ। हम तो अभी थोड़ा डरेंगे।

इन्हीं महीनों में जापान में जिस पार्टी की सरकार 28 साल से थी, वह हार गई। दूसरी पार्टी की सरकार आ गई। इस्राइल में 29 सालों से एक पार्टी की सरकार थी, वह पार्टी भी हार गई। दूसरी पार्टी की सरकार आ गई। इन देशों में सरकार बदली है। पर भारत में दूसरी आजादी आई है। क्रांति हुई है। यहाँ सफाई-दरोगा अगर नौकरी से निकाल दिया जाए, तो उसे कारपोरेशन में क्रांति कहेंगे।

दूसरी आजादी लानेवाले सब दावेदार प्रणम्य हैं। जिंदाबाद कुल नौ महीने में मुर्दाबाद हो गया। जनता की भावनाओं के गर्भ में बीज तो जिंदाबाद का डाला गया था, पर पैदा मुर्दाबाद हो गया। मगर दावेदार जहाँ-के-तहाँ। अंडरग्राउंड थे? जी हाँ। कौन-सा पराक्रम किया? किसी से पाँच पत्थर भी फिंकवाए? नहीं, हम सिर्फ अपने को छिपाए रखे। जनता बहुत डरी हुई थी। नेताविहीन हो गई थी। मई सन् 1942 में भी तो सारे नेता जेल में थे। पर तब जनता ने थानों को जला दिया था, जिलों पर अपना शासन स्थापित कर लिया था। लाखों आदमी बिना नेता के जेल चले गए थे। जनता क्या कायर होती है, वीरवर? और पाकिस्तान में टैंकों से जनता लड़ी। बुरका छोड़कर औरतें लड़ीं। यह क्या कायर जनता है ?

मगर दावेदार नहीं मानेंगे। सबसे कॉमिक रोल क्रांतिकारी बुद्धिजीवी का है। वह यह है कि जो अपने को ईमानदार और वीर कह ले, वह हुआ। जो नहीं कहे, वह बेईमान, दब्बू, पिछलग्गू, स्वार्थी वगैरह सब हुआ। परमवीर चक्र अपने सीने पर अपने ही हाथों से खोंसना पड़ता है। कोई दस को बेईमान कहे तो कहनेवाला खुद ईमानदार सिद्ध हो जाता है। नए मंत्रियों की पत्नियों के पास जाते हैं पेंसिल-कापी लेकर बुद्धिजीवी। मंत्री जी को खाने में क्या पसंद है? हमारे उनको तो चटपटी सब्जी भाती है। रबड़ी भी बहुत पसंद है। मंत्रीजी का घर में कैसा व्यवहार है? कभी-कभी गुस्सा करते हैं। राम-राम कहो भैया। इत्ता अच्छा स्वभाव है कि कुछ पूछोई मत। चालीस साल हो गए, कभी हमसे कड़ी बात नहीं कही। गुलाब की छड़ी से भी नहीं मारा हमें। बच्चों को तो भौतई चाहते हैं। ऐसे हैं हमारे वो। यह छपा दिया बुद्धिजीवी ने।

क्रांति करने के दावेदार ऐसे हैं। तब मंत्री के चरण छूते हुए फोटो खिंच गई थी। उसे उन्होंने उलटा टाँग लिया है। कहते हैं—मैं इस तानाशाह के पाँवों पर चोट कर रहा था। पाँव तोड़ रहा था। और क्या करते रहे? बाथरूम में रोज सौ गालियाँ उस तानाशाह को देता था (नल गवाह है)। और चुपचाप मारणमंत्र का जप करता था। और 'दुर्गाजी' कहता रहा हूँ। तब उस प्रधानमंत्री के लिए और अब दुर्गा भागवत के लिए। मैं अटल हूँ। स्वर नहीं बदलता। चाहे कोई सरकार हो, मैं 'हें-हें' ही करता हूँ।

शायद बर्नार्ड शॉ ने कहा है—जो कर सकता है, वह करता है। जो नहीं कर सकता, वह सिखाता है। इसी तरह जो शासन समस्याएँ हल कर सकता है, करता है। जो नहीं कर सकता, वह जाँच कमीशन बिठाता है। कमीशन यों उचित चीज है। वह गंभीर बात भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। पर उसे 'झुनझुना' जाँच भी बना सकते हैं। बच्चा भूखा है। रोता है। बाप कहता है—पता नहीं तेरी माँ फीडिंग बाटल कहाँ रख गई। ले, अभी तो झुनझुना सुन और चुप रह। शासन एक रेलगाड़ी है। वह चलती है। शासक रेलगाड़ी में बैठे हैं। न वे चलते हैं, न गाड़ी को चलाते हैं। वे समय काटते हैं। मुसाफिर समय काटने के लिए मूँगफली खाता है—टाइम पास। नए शासकों के लिए जाँच कमीशन मूँगफली है—टाइम पास।

दूसरी आई है तो तीसरी आजादी भी आएगी। सब रहेंगे। मारुति कांड था तो सुग्रीव कांड हो जाएगा। किष्किंधा में कमी थोड़े ही है। तीसरी आजादी में भी सब रहेंगे। कायर रहेंगे। टायर भी रहेंगे। तब कायर टायर हो जाएँगे। और जमूरे भी रहेंगे। जमूरे ! हाँ उस्ताद। सब बताएगा? बताऊँगा उस्ताद! साहब लोगों का दिल खुश करेगा? करूँगा उस्ताद !

दूसरी आजादी के जाँच कमीशनों के माध्यम से बहुत-सी बातें सामने आ जाएँगी। आपातकाल लागू करना, बंदिशें, सेंसर, अत्याचार आदि। एक दौर की जाँच-पड़ताल पूरी हो रही है।

तीसरी आजादी में इस दूसरी आजादी के दौर पर जाँच-कमीशन बैठेगा। इसकी एक कल्पना आगे होगी।

तीसरी आजादी का जाँच कमीशन-2

जाँच कमीशन की सुनवाई शुरू थी। कमीशन को सुझाव दिया गया था कि सबसे पहले 'लोकनायक' जयप्रकाश नारायण की बात सुनी जाए। अगर पहली आजादी का जाँच कमीशन बैठता, तो वह सबसे पहले गांधीजी को बुलाता। राम जेठमलानी ने कमीशन को लिखा था कि दूसरी आजादी के शासकों से मैंने बार-बार कानूनी ऊटपटांग करा उनके पतन में योग दिया था। जयप्रकाश की राजनीतिक दुस्साहसिकता के बाद मेरी कानूनी दुस्साहसिकता शुरू हुई थी, इसलिए अगर जयप्रकाश को सबसे पहले नहीं बुलाया गया, तो मैं हेग के अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय में चला जाऊँगा।

कमीशन ने जयप्रकाश को ही सबसे पहले बुलाया। पटौदी हाउस के अहाते में भारी भीड़ थी। 'जिंदाबाद' और 'मुर्दाबाद' के नारे लग रहे थे। पुलिस थी, आँसू गैस थी, बंदूकें थीं। जयप्रकाश कार से उतरे। वह पूर्ण स्वस्थ थे। उनके दाहिने तरफ नानाजी देशमुख थे, जो रूमाल से अपना मुँह ढके थे, जैसे कोई-कोई बलात्कारी कचहरी में अपना चेहरा छिपा लेते हैं। दूसरी तरफ चन्द्रशेखर दाढ़ी मुडाए थे, जैसे कोई-कोई मुँहबोली नानी की मौत पर मुंडन करा लेते हैं।

कमीशन के सचिव : लोकनायक जयप्रकाश नारायण गवाह की जगह पर आएँ।

जयप्रकाश : यहाँ जयप्रकाश नारायण हैं, पर वह लोकनायक नहीं हैं। लोकनायक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का खिताब मैंने तभी घबराकर छोड़ दिया था।

सचिव : अच्छा, केवल़ जयप्रकाश नारायण।

जयप्रकाश : यह 'केवल' क्या है? क्या इसका मतलब 'ओनली' है? मैं 'ओनली' जयप्रकाश नारायण नहीं हूँ। 'लोनली' जरूर हो गया हूँ। आप मुझे जयप्रकाश कहिए। मैंने 'नारायणत्व' भी त्याग दिया है। मैंने सब त्याग दिया है। अब मैं विनोबा की तरह सिर्फ स्वास्थ्य और अध्यात्म पर बात करता हूँ।

कमीशन : अच्छा, जयप्रकाशजी, आप यह बताइए कि क्या आप दूसरी आजादी लाए ? यानी, क्या आपके नेतृत्व में आंदोलन के फलस्वरूप दूसरी आजादी आई?

जयप्रकाश : आई प्लीड नॉट गिल्टी। मैं बेकसूर हूँ। दूसरी आजादी मेरे बावजूद आ गई। मुझे कतई उम्मीद नहीं थी कि ऐसी दुर्घटना हो जाएगी। लोगों ने व्यर्थ मेरे ऊपर तोहमत लगा दी और मैं बदनाम हो गया।

कमीशन : पर संपूर्ण क्रांति का नारा तो आपने ही दिया था?

जयप्रकाश : सही है, पर रिकार्ड है कि पूरी जिंदगी मैंने वही नारा दिया, जो हो नहीं सकता। यह मेरी आदत है और नियति भी। 1952 के पहले आम चुनाव में मैंने नारा दिया था कि प्रजा समाजवादी दल़ सरकार बनाएगा। मेरे साथी अशोक मेहता ने ऐलान किया था—वी विल स्वीप दि पोल्स। इस मुहावरे ने ही हमारे साथ मजाक किया। चुनाव के बाद एक कार्टून छपा था, जिसमें अशोक को मतदान-केंद्र पर झाड़ू लगाते दिखाया गया था। हमारी पार्टी की खटिया खड़ी हो गई। पार्टी का टूटना शुरू हुआ। मैं छिटककर विनोबा के पास चला गया। मैंने भूदान का नारा विनोबा के साथ दिया, पर भूमि नहीं मिली। ग्रामदान का नारा दिया, ग्राम नहीं मिले। मैं देशदान का नारा भी दे रहा था, पर जवाहरलाल ने नहीं देने दिया। मैंने जीवनदान का नारा दिया, पर मेरे सिवा किसी ने जीवन नहीं दिया। आखिर मैंने ही अपना जीवन वापस ले लिया। मैंने पार्टीहीन लोकतंत्र का नारा दिया, वह नहीं हुआ। मैंने बुनियादी लोकतंत्र का नारा दिया वह नहीं हुआ। मैंने जनेऊ तोड़ने का नारा दिया, पर लोगों ने दो-दो जनेऊ पहन ली। मैंने नारा दिया—जाति तोड़ो, तो ऊँची और नीची जातिवालों में आपस में सिर-फुटौवल होने लगी। जो मैंने कहा, वह कभी नहीं हुआ। मेरे चाल-चलन का ऐसा बढ़िया रिकार्ड है। जीवन में पहली बार न जाने क्या उलटा-सुलटा हुआ कि सरकार बदली और इसका कलंक मेरे माथे मढ़ दिया गया। मैं बेकसूर हूँ।

कमीशन : आपने संपूर्ण क्रांति का नारा दिया था?

जयप्रकाश : हाँ। मैंने नारा दिया था कि 'संपूर्ण क्रांति अब नारा है, भावी इतिहास हमारा है।' मैंने विगत और वर्तमान इतिहास को एकदम काट दिया था।

कमीशन : संपूर्ण क्रांति क्या है? इसकी व्याख्या कीजिए।

जयप्रकाश : मैं नहीं जानता। जिंदगी में जो भी मैंने किया, उसकी व्याख्या कभी नहीं कर सका। मेरे साथ यही दिक्कत है। मैं एक व्याख्याहीन जिंदगी जीता रहा हूँ।

सरकारी वकील : क्या संपूर्ण क्रांति की कोई आइडियालॉजी थी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयप्रकाश : नहीं, आइडियालॉजी मेरी ही कभी नहीं रही। लोग कहते हैं, मेरी आइडियालॉजी 'कनफ्यूनिज़्म' रही है।

कमीशन : यानी 'कनफ्यूशियस' से इसका संबंध है?

जयप्रकाश : नहीं 'कनफ्यूजन' से।

कमीशन : क्या संपूर्ण क्रांति के लिए आपका कोई संगठन था?

जयप्रकाश : नहीं, संगठन मैं क्यों बनाने लगा। मैं तो संगठन तोड़ने का काम करता हूँ। समाजवादियों का संगठन तोड़ने का क्रम मैंने ही शुरू किया था। फिर मैंने सर्वोदय को भी तोड़ा।

सरकारी वकील : तो फिर आपके साथ संपूर्ण क्रांति करने को कौन था? क्या समाजवादियों का संगठन था?

जयप्रकाश : वकील साहब, आप तो जेठमलानी की तरह ही अनजान हैं। अरे साहब, समाजवाद में संगठन नहीं बनता, नेता बनता है। सब नेता होते हैं। सब लड़ाकू होते हैं, पर यह नहीं जानते कि किससे लड़ रहे हैं। समाजवादी के साथ संगठन नहीं होता, भीड़ होती है, जो बदलती जाती है। उसके पास कार्यक्रम नहीं, मुहावरे होते हैं। समाजवादी मेरे साथ नहीं थे, कांग्रेस के खिलाफ थे, वे जयप्रकाश समर्थक नहीं, इंदिरा-विरोधी थे। वे इसी एक्सीडेंट से मेरे साथ हो गए।

कमीशन : तो फिर कौन संगठन था आपके साथ?

जयप्रकाश : बताता हूँ। एक दिन मेरे पास जनसंघ के नेता नानाजी देशमुख आए। बोले, "इंदिरा गांधी संघ को फासिस्ट कहती हैं। क्या आप भी उसे फासिस्ट मानते हैं ?" मैंने कहा, "मैं उस हर चीज को नहीं मानता जो इंदिरा या कम्युनिस्ट कहते हैं। फिर नानाजी, तुम मुझे इतने प्यारे लगते हो कि तुम फासिस्ट हो, तो मैं भी फासिस्ट होना पसंद करूँगा। कम्युनिस्ट और फासिस्ट में चुनाव करना पड़े तो हम फासिस्ट को चुनेंगे। हमारा समाजवाद यही है।" तब नानाजी ने कहा, "देखिए, आपके पास संगठन नहीं है और हमारे पास लोकनायक नहीं है। तो हम मिल जाएँ।" मैंने उनकी बात मान ली।

कमीशन : तो क्या संघ ने संपूर्ण क्रांति के लिए संघर्ष किया?

जयप्रकाश : नहीं, संघर्ष नहीं किया। 'डूब पड़े तो हर गंगा' बोलने लगे। संघ के लोगों को संघर्ष की ट्रेनिंग नहीं है। वे कष्ट नहीं उठा सकते। वे लड़ाकू भी नहीं हैं। वे केवल संगठित षड्यंत्रकारी हैं। वे जानते हैं कि सोलह महीने जेल में रहना पड़ेगा, तो वे पहले ही युवक कांग्रेस में भरती हो जाते। जेल में बेचारे बड़े दुखी रहे। बहुतों ने माफी माँग ली।

कमीशन : अच्छा, आपको आंदोलन चलाने के लिए पैसा कहाँ से मिला?

जयप्रकाश : यह नहीं बताऊँगा। शपथ ली थी। आई एम अंडर ओथ।

सरकारी वकील : क्या विदेशी पैसा भी मिला था?

जयप्रकाश : नहीं बताऊँगा। आई एम अंडर ओथ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमीशन : आपने आंदोलन क्यों चलाया? कारण क्या था?

जयप्रकाश : कारण कई थे। पहला तो यह कि मैं बेकार था। नक्सलवाद को रोकने की असफल कोशिश मैं कर चुका था। बेकार बैठा था। जमुहाई आती थी। दूसरा कारण यह कि महँगाई, भ्रष्टाचार आदि के नारे लगाकर कोई पागल भी भीड़ इकट्ठी कर सकता था और उससे पत्थर फिंकवा सकता था। मैंने सोचा कि मैं तो आल इंडिया हैसियत का···

कमीशन : क्या?

जयप्रकाश : पागल नहीं, नेता। मैं आल इंडिया हैसियत का नेता हूँ, लोगों के इस 'मूड' का फायदा क्यों न उठाऊँ। तीसरा कारण यह है कि मैं इंदिरा गांधी से नाराज था। मैं उनका चाचा जैसा हूँ, पर वे मेरी अवहेलना करती थीं। उनकी बुआ विजयलक्ष्मी भी इसी कारण उनसे नाराज थीं।

सरकारी वकील : कोई राजनीतिक कारण भी था?

जयप्रकाश : हाँ, मैं इंदिरा सरकार को उखाड़ना चाहता था।

सरकारी वकील : यह तो अमेरिका और पश्चिमी यूरोप के देश भी चाहते थे। क्या आप उन्हीं का काम कर रहे थे?

जयप्रकाश : मैं अपना काम कर रहा था और वे अपना। दोनों काम एक हो गए, तो यह प्रभु की इच्छा थी।

कमीशन : आप इंदिरा सरकार से क्यों नाराज थे?

जयप्रकाश : एक तो उनकी सरकार मजबूत थी। मजबूत सरकार हो, तो कुछ खास करने की गुंजाइश नहीं रहती। दूसरे, इंदिरा गांधी की सरकार 'बोल्शेविक' हो गई थी। इससे मेरी आत्मा को क्लेश होता था।

सरकारी वकील : आपकी आत्मा ऐसी कैसी है?

जयप्रकाश : मेरी लोकतांत्रिक समाजवादी आत्मा में सर्वोदय और हताशा शामिल है।

कमीशन : तो क्या इंदिरा गांधी 'बोल्शेविक' है?

जयप्रकाश : वह क्या है, यह तो बोल्शेविक भी नहीं जानते। मैंने तो देखा कि शासन में सब जगह बोल्शेविक घुसे हैं। नीतियाँ बोल्शेविक बनाते थे। फिर इंदिरा गांधी ने रूस से बीस-साला संधि कर ली थी। मुझे डर था कि देश कहीं वारसा गुट का सदस्य न हो जाए।

कमीशन : तो इसीलिए आपने इमरजेंसी खत्म होने पर पाँच दलों की जनता पार्टी बनवा दी?

जयप्रकाश : मैं इस जिम्मेदारी से भी इनकार करता हूँ। मुझे व्यर्थ बदनाम किया गया। ये राजनीति के घुटे हुए नेता व्यावहारिक रूप में मेरे चाचा होते हैं। वे 1967 में मिलकर संविद सरकारें बना चुके थे। वे घबराए हुए थे। या तो मिलकर सरकार बनाएँ, या अलग-अलग जेल में जाएँ, यही तो विकल्प उनके सामने थे। वे एक हो गए। पर उन्हें एक होने का बहाना चाहिए था। तो वे कहने लगे कि जयप्रकाश के आग्रह से हम मिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गए। बदनामी मेरी हुई।

सरकारी वकील : मगर कहा तो यह जाता है कि आपने जनता सरकार बनवाई है।

जयप्रकाश : नहीं, नसबंदी और जगजीवनराम ने जनता सरकार बनवाई। मैंने और कृपलानी ने मिलकर तो धाँधली से मोरारजी को प्रधानमंत्री बनाया।

कमीशन : आप क्या जनता पार्टी के काम से खुश रहे?

जयप्रकाश : क्या खुश रहा? मुझे 'भारतरत्न' मिलने का वक्त आया, तो उन्होंने यह खिताब ही खत्म कर दिया।

सरकारी वकील : क्या आप जनता पार्टी के सदस्य थे?

जयप्रकाश : नहीं, महात्मा गांधी भी कांग्रेस पार्टी के सदस्य नहीं थे।

कमीशन : तो आप महात्मा गांधी की तरह पार्टी को गाइड करते थे?

जयप्रकाश : हाँ, मगर 'मिसगाइड' करता था।

कमीशन : क्या जनता सरकार ने जनता का कुछ भला किया?

जयप्रकाश : जनता का भला करने को वह सरकार बनी ही नहीं थी। अगर भला करती, तो अपने उद्देश्य से गिर जाती।

कमीशन : तो सरकार क्या करती थी?

जयप्रकाश : सरकार जनता को समझा रही थी कि बिना सरकार के कोई देश कैसे चलता है।

कमीशन : क्या आप जनता सरकार के गिरने से दुखी होंगे?

जयप्रकाश : नहीं, सुखी होऊँगा। कहीं भी सरकार गिरे, मैं खुश होता हूँ।

तीसरी आजादी का जाँच कमीशन-3

दूसरी आजादी के पहले प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई तीसरी आजादी की सरकार के प्रधानमंत्री बनने की कोशिश में भी थे, पर हो नहीं सके। वे इससे दुखी नहीं थे। उन्होंने समझ लिया कि ईश्वर की इच्छा है कि वे दस साल बाद, विश्व सरकार के पहले प्रधानमंत्री बनें। इस आशा में स्वास्थ्य अच्छा बनाने में लगे थे। वे लहसुन की पाँच की जगह दस फलियाँ खाने लगे थे।

उन्हें जाँच कमीशन के सामने बुलाया गया। उन्हें वकीलों और साथियों ने सलाह दी थी कि वे यह कहकर बयान देने से इनकार कर दें कि इससे गोपनीयता की शपथ भंग होगी, पर उन्होंने कहा—मैं दूसरे किस्म का आदमी हूँ। मैं वह कुछ नहीं करूँगा जो उस 'लेडी' ने किया। फिर जिंदगी-भर मैं 'आ बैल मुझे मार' करता रहा हूँ। आखिरी वक्त क्या भागूँ ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोरारजी भाई प्रसन्न थे, जैसे आरोपों के जवाब देने नहीं, जाँच कमीशन का उद्घाटन करने आए हों। उन्होंने शपथ ली और झट न्यायाधीश की तरफ पंजा बढ़ाकर कहा—आपकी उम्र मुझसे बहुत कम है। ज़रा पंजा लड़ाकर देखिए।

कमीशन : आपको यहाँ पंजा लड़ाने नहीं बुलाया गया।

मोरारजी : पर मुझे तो कमीशन के सामने यह सिद्ध करना ही है कि नियमित जीवन, सात्विक जीवन और संयम से स्वास्थ्य कैसा अच्छा रहता है। मैंने 30 वर्ष की उम्र में ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया था। मैं सुबह चार बजे उठता हूँ और रात नौ बजे सो जाता हूँ। मैं फल और दूध का सेवन करता हूँ। मैं रोज जीवन-जल पीता हूँ। मैंने मदिरापान कभी नहीं किया। मैंने मूत्र-पान का प्रचार किया और मदिरा का निषेध।

सरकारी वकील : इसका नतीजा यह हुआ कि लोग मूत्र में शराब मिलाकर पीने लगे।

कमीशन का वकील : वैसे तो मूत्र में भी 'अलकोहल' होता है। तभी आपको आदत लग गई थी।

कमीशन : देखिए मोरारजी भाई, आप फालतू बातें मत कीजिए। जो पूछा जाए, उसी का जवाब दीजिए। बताइए, दूसरी आजादी कैसे आई?

मोरारजी : सब ईश्वर की लीला है। सबहिं नचावत राम गुसाईं।

कमीशन : वे कारण और परिस्थितियाँ बताइए, जिनसे दूसरी आजादी आई?

मोरारजी : हम लोग जेल में बन्द थे। मैं जेल में नहीं, रेस्ट हाउस में था। अच्छा खाता था, आराम करता था, गीता पढ़ता था और 'बोर' होता था। जब हम सब लोग बाहर आए तो सलाह की। हमारे सामने दो रास्ते थे—या तो इकट्ठा होकर राज करें या अलग-अलग जेल में रहें। जेल से हम ऊब चुके थे। इसीलिए हमने पहला रास्ता चुना और जनता पार्टी बना ली। फिर हमने जनता को बतलाया कि इमरजेंसी में उस पर कितने अत्याचार हुए।

सरकारी वकील : क्या जनता को पता नहीं था कि उस पर क्या अत्याचार हुए?

मोरारजी : नहीं, इस देश के लोग ऐसे ही हैं कि उन्हें बताना पड़ता है कि तुम पर क्या अत्याचार हुए। जब जनता मान गई कि उस पर अत्याचार हुए तो उसने हमें वोट दे दिए और हमारी सरकार बन गई।

कमीशन : क्या जयप्रकाश नारायण ने जनता पार्टी बनवाई? दूसरी आजादी क्या वे लाए ?

मोरारजी : कतई नहीं। जयप्रकाश को तो राजनीति ही नहीं आती। वे तो लोकनायक इसलिए बन गए और श्रेय इसलिए मिल गया कि उन्हें प्रधानमंत्री नहीं बनना था। इसके लिए उन्हें कुछ मुआवजा, हरजाना देना ही था। तो उन्हें 'लोकनायक' बना दिया। लो भाई, तुम्हें भी कुछ मिल गया। अगर मैं कह देता कि मुझे प्रधानमंत्री नहीं बनना, तो ये बदमाश मुझे 'लोकनायक' ही नहीं, ईश्वर बनाने को तैयार हो जाते। पर ईश्वर बनने में क्या रखा है? न चूड़ीदार पाजामा-शेरवानी पहन सकते, न सलामी ले सकते।

सरकारी वकील : तो आप जयप्रकाश को लोकनायक नहीं मानते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोरारजी : हुश्ट।

सरकारी वकील : वे दूसरी आजादी लाए, यह भी नहीं मानते।

मोरारजी : हुश्ट।

कमीशन : आप हुश्ट-हुश्ट क्या करते हैं। ठीक से जवाब दीजिए।

मोरारजी : मैं उन्हें कुछ नहीं मानता। मैंने उन्हें गैरसंवैधानिक सत्ता भी नहीं बनने दिया। वरना वे बूढ़े संजय गांधी हो जाते।

कमीशन : तो आपने देश की क्या सेवा की?

मोरारजी : देश की कोई क्या सेवा कर सकता है? मैं क्या हिमालय को ऊँचा कर सकता हूँ। समुद्र को ढकेलकर आगे कर सकता हूँ? गंगा को अमरकंटक से निकाल सकता हूँ? देश-सेवा क्या होती है? देश जैसा और जहाँ था, वैसा और वहाँ है।

सरकारी वकील : पूछने का मतलब यह है कि आपने देशवासियों की क्या सेवा की ?

मोरारजी : देशवासियों की मैंने यह सेवा की कि मैं प्रधानमंत्री रहा।

कमीशन : यदि प्रधानमंत्री रहना ही देशवासियों की 'सेवा' है तो यह 'सेवा' दूसरे लोग भी कर सकते थे।

मोरारजी : नहीं, समस्या यह थी कि देश को बहुत ज्यादा प्रधानमंत्री मिल रहे थे। जरूरत सिर्फ एक की थी। मैं प्रधानमंत्री न बनता तो कई प्रधानमंत्री बन जाते। वे एक-दूसरे पर हमला करते।

कमीशन : आप अपने प्रधानमंत्री बनने का श्रेय किसे देते हैं? जयप्रकाश को?

मोरारजी : नहीं, जगजीवनराम और चरणसिंह को। इनकी लड़ाई के कारण ही मैं प्रधानमंत्री बना।

कमीशन : आप पर यह आरोप है कि आपका अपने मंत्रिमंडल पर कोई नियंत्रण नहीं था। कोई दबाव नहीं था। आप जिंदगी-भर कड़े आदमी माने जाते थे। पर प्रधानमंत्री बनने पर आप ढीले हो गए।

मोरारजी : मैं क्या कड़ाई करता। क्या नियंत्रण रखता। क्या दबाव डालता। मैं तो खैराती प्रधानमंत्री था। बैगर्स आर नाट चूजर्स। न मेरा गुट, न मेरे पास कोई संगठन, न मेरे कोई अनुयायी। मैं किस दम पर अकड़ता। मैं इशारा करता कि मंत्री बदलूँगा, तो वे कहते, प्रधानमंत्री बदलेंगे। मैं कहता कि उस मंत्री को ड्राप करूँगा तो वह कहता कि हम प्रधानमंत्री को ड्राप करेंगे।

कमीशन : तो आपने ऐसी हालत में काम कैसे चलाया?

मोरारजी : सब ईश्वर ने चलाया। मैंने कह दिया—राम की चिड़ियाँ राम के खेत, खाओ री चिड़ियाँ भर-भर पेट। मेरे मंत्रिमंडल में मेरे सिवा बाकी सब प्रधानमंत्री थे। सबको छूट। चरणसिंह कारखानों में खेती करवा सकते थे, और जॉर्ज फर्नांडीज खेत में कारखाना खोल सकते थे। बहुगुणा समाजवाद ला सकते थे, और पटेल पूँजीवाद को मजबूत कर सकते थे। मैं सबको आशीर्वाद देता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमीशन : इसका अर्थ हुआ कि आपकी पार्टी की कोई निश्चित नीति नहीं थी।

मोरारजी : थी। एक ही नीति थी—सत्ता में बने रहना। सत्ता में नहीं रहते तो जेल में रहते। सब आत्मरक्षा कर रहे थे। फिर पार्टी हो तो नीति हो। हमारी पार्टी थोड़े ही थी। शंकरजी की बारात थी। सब भूत-प्रेत—राजनारायण-जैसे। कोऊ मुखहीन विपुल मुख काहू—नाना वाहन नाना वेशा। मैं था शंकर, बारात तो मेरी ही थी। इसलिए मैं चुपचाप जहर पीता जाता था। मैं नशाबंदी सम्मेलन का उद्‌घाटन करता और मेरा ही मंत्री अध्यक्ष की कुर्सी पर नशे में धुत बैठा रहता।

कमीशन : मगर आप नशाबंदी के पीछे इतने क्यों पड़े थे? आप सफल हुए?

मोरारजी : पीछे पड़ा था अपनी इमेज बनाने के लिए। नशाबंदी और जीवन-जल, ये दो चीजें थीं ही मेरे पास इमेज के लिए। जवाहरलाल नेहरू के पास तो बहुत चीजें थीं। मगर मैं नशाबंदी में सफल नहीं हुआ। जो शराब की दूकान पहले एक लाख में नीलाम होती थी, वह मेरे प्रचार से डेढ़ लाख में होने लगी। जीवन-जल के प्रचार का नतीजा यह हुआ कि पार्टियों में मेरे पास विदेशी महिलाएँ इस डर से नहीं बैठती थीं कि कहीं मैं जीवन-जल से 'टोस्ट' न खाने लगूँ।

कमीशन : आपके शासन में कानून और व्यवस्था की हालत बहुत खराब थी। इस बारे में आपको क्या कहना है?

मोरारजी : मैं दोमुँही बात नहीं करता। मैं बार-बार लोगों से भयहीन होने की अपील करता था। मेरी अपील से कोई भला आदमी तो नहीं, पर अपराधी भयहीन हो गए। तो इससे मैं क्या करता। आदमी भयहीन होगा तो वह बैठकर जमुहाई तो लेगा नहीं। वह कुछ करेगा। तो अपराधी अपराध करते थे। यह उनका नागरिक अधिकार है। मैं नागरिक अधिकारों के हनन का विरोधी हूँ।

कमीशन : पर हरिजनों पर भी बहुत अत्याचार हुए थे।

मोरारजी : इसका हल्ला हुआ। बात यह है कि जगजीवनराम हरिजन हैं। वे प्रधानमंत्री नहीं बने तो हल्ला मच गया कि हरिजन पर अत्याचार हो गया। आम हरिजनों पर अत्याचार रोकना, गृहमंत्री चरणसिंह का काम था। पर चरणसिंह अपने को खुद हरिजन समझने लगे, और इंदिरा गांधी के अत्याचारों से अपनी रक्षा करते रहे। वह पट्ठा सिर्फ इंदिरा गांधी से लड़ता रहा।

कमीशन : महँगाई के बारे में क्या कहना है? सरकार ने कीमतें घटाने के लिए कोई कदम क्यों नहीं उठाए?

मोरारजी : सरकार का काम शासन करना है, दूकान करना नहीं। फिर कीमत खरीदार और बेचनेवालों के बीच का मामला है। सरकार इसमें क्या करे? मैंने अपनी तरफ से व्यापारियों से अपीलें बराबर कीं। उनका हृदय-परिवर्तन करना चाहा। उनका हृदय नहीं बदला। इसका मतलब है कि उनका हृदय पहले ही शुद्ध था।

सरकारी वकील : पर लोगों को तकलीफ तो बहुत हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोरारजी : सब ईश्वर की इच्छा है। देह धारण की है तो कष्ट तो होंगे ही—देह धरे को दंड है सब काहू को होय, ज्ञानी भोगे ज्ञान सों मूरख भुगतै रोय।

कमीशन : आप कहते थे कि आपके दिमाग में न कोई चिंता होती है, न तनाव। ऐसा कैसे हो सकता है कि इतने बड़े देश का प्रधानमंत्री चिंता और तनाव से मुक्त हो।

मोरारजी : चिंता और तनाव उसे हो, जिसने देश की जिम्मेदारी ली हो। मैंने तो कोई जिम्मेदारी ली नहीं। सब ईश्वर पर छोड़ दी। हानि-लाभ जीवन-मरण जस-अपजस विधि हाथ। आदमी के किए कुछ नहीं होता। लोग भूखे हैं, गरीब हैं, पीड़ित हैं, तो यह ईश्वर की इच्छा है। मैं बीच में पड़नेवाला कौन होता हूँ। मुझे कभी-कभी थोड़ी-सी चिंता उस चरणसिंह के कारण होती थी। बस बाकी मेरा स्वास्थ्य अच्छा रहा।

मोरारजी भाई ने इस वक्त कहा—मेरा खजूर खाने का समय हो गया है। मुझे खजूर खाने के लिए बीस मिनट का समय दिया जाए।

कमीशन ने कहा—आप जाइए और खूब खजूर खाते रहिए। कमीशन के सामने आने की जरूरत अब नहीं है।

आत्मकथ्य

गर्दिश के दिन

लिखने बैठ गया हूँ पर नहीं जानता संपादक की मंशा क्या है और पाठक क्या चाहते हैं, क्यों आखिर वे उन दिनों में झाँकना चाहते हैं, जो लेखक के अपने हैं और जिन पर शायद वह परदा डाल चुका है। अपने गर्दिश के दिनों को, जो मेरे नामधारी एक आदमी के थे, मैं किस हैसियत से फिर जीऊँ?—उस आदमी की हैसियत से या लेखक की हैसियत से? लेखक की हैसियत से गर्दिश को फिर जी लेने और अभिव्यक्त कर देने में मनुष्य और लेखक, दोनों की मुक्ति है। इसमें मैं कोई 'भोक्ता' और 'सर्जक' की निःसंगता की बात नहीं दुहरा रहा हूँ। पर गर्दिश को फिर याद करने, उसे जीने में दारुण कष्ट है। समय के सींगों को मैंने मोड़ दिया था। अब फिर उन सींगों को सीधा करके कहूँ—आ बैल, मुझे मार !

गर्दिश कभी थी, अब नहीं है। आगे नहीं होगी—यह गलत है। गर्दिश का सिलसिला बदस्तूर है, मैं निहायत बेचैन मन का संवेदनशील आदमी हूँ। मुझे चैन कभी मिल ही नहीं सकता। इसलिए गर्दिश नियति है।

हाँ, यादें बहुत हैं। पाठक को शायद इसमें दिलचस्पी हो कि यह जो हरिशंकर परसाई नाम का आदमी है, जो हँसता है, जिसमें मस्ती है, जो ऐसा तीखा है, कटु है—इसकी अपनी जिंदगी कैसी रही है? यह कब गिरा, फिर कब उठा? कैसे टूटा? कैसे फिर से जुड़ा ? यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक निहायत कटु, निर्मम और धोबीपछाड़ आदमी है।

संयोग कि बचपन की सबसे तीखी याद 'प्लेग' की है। 1936 या '37 होगा। मैं शायद आठवीं का छात्र था। कस्बे में प्लेग पड़ी थी। आबादी घर छोड़कर जंगल में टपरे बनाकर रहने चली गई थी। हम नहीं गए थे। माँ सख्त बीमार थी। उन्हें लेकर जंगल नहीं जाया जा सकता था। भाँय-भाँय करते पूरे आसपास में हमारे घर ही चहल-पहल थी। काली रातें। इनमें हमारे घर जलनेवाले कंदील। मुझे इन कंदीलों से डर लगता था। कुत्ते तक बस्ती छोड़ गए थे, रात के सन्नाटे में हमारी आवाजें हमें ही डरावनी लगती थीं। रात को मरणासन्न माँ के सामने हम लोग आरती गाते—जय जगदीश हरे, भक्त जनों के संकट पल में दूर करे। गाते-गाते पिताजी सिसकने लगते, माँ बिलखकर हम बच्चों को हृदय से चिपटा लेती और हम भी रोने लगते। रोज का यह नियम था। फिर रात को पिताजी, चाचा और दो-एक रिश्तेदार, लाठी-बल्लम लेकर घर के चारों तरफ घूम-घूमकर पहरा देते। ऐसे भयकारी, त्रासदायक वातावरण में एक रात तीसरे पहर माँ की मृत्यु हो गई। कोलाहल और विलाप शुरू हो गया। कुछ कुत्ते भी सिमटकर आ गए और योग देने लगे।

पाँच भाई-बहनों में माँ की मृत्यु का अर्थ मैं ही समझता था—सबसे बड़ा था।

प्लेग की वे रातें मेरे मन में गहरे उतरी हैं। जिस आतंक, अनिश्चय, निराशा और भय के बीच हम जी रहे थे, उसके सही अंकन के लिए बहुत पन्ने चाहिए। यह भी कि पिता के सिवा हम कोई टूटे नहीं थे। वह टूट गए थे। वह इसके बाद भी 5-6 साल जिये, लेकिन लगातार बीमार, हताश, निष्क्रिय और अपने से ही डरते हुए। धंधा ठप्प। जमा-पूँजी खाने लगे। मेरे मैट्रिक पास होने की राह देखी जाने लगी। समझने लगा था कि पिताजी भी अब जाते ही हैं। बीमारी की हालत में उन्होंने एक बहन की शादी कर ही दी थी—बहुत मनहूस उत्सव था वह। मैं बराबर समझ रहा था कि मेरा बोझ कम किया जा रहा है। पर अभी दो छोटी बहनें और एक भाई थे।

मैं तैयार होने लगा। खूब पढ़नेवाला, खूब खेलनेवाला और खूब खानेवाला मैं शुरू से था। पढ़ने और खेलने में मैं सब भूल जाता। मैट्रिक हुआ, जंगल विभाग में नौकरी मिली। जंगल में सरकारी टपरे में रहता। ईंटें रखकर, उन पर पटिये जमाकर बिस्तर लगाता, नीचे जमीन चूहों ने पोली कर दी थी। रात-भर नीचे चूहे धमा-चौकड़ी करते रहते और मैं सोता रहता। कभी चूहे ऊपर आ जाते तो नींद टूट जाती पर मैं फिर सो जाता। छह महीने धमाचौकड़ी करते चूहों पर मैं सोया।

बेचारा परसाई?

नहीं, नहीं, मैं खूब मस्त था। दिन-भर काम। शाम को जंगल में घुमाई। फिर हाथ से बनाकर खाया गया भरपेट भोजन—शुद्ध घी और दूध!

और चूहों ने बड़ा उपकार किया। ऐसी आदत डाली कि आगे की जिंदगी में भी तरह-तरह के चूहे मेरे नीचे ऊधम करते रहे हैं, साँप तक सर्राते रहे हैं, मगर मैं पटिये बिछाकर पटिये पर सोता रहा हूँ। चूहों ने ही नहीं, मनुष्यनुमा बिच्छुओं और साँपों ने भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे बहुत काटा है—पर 'जहर मोहरा' मुझे शुरू में ही मिल गया। इसलिए 'बेचारा परसाई' का मौका ही नहीं आने दिया। उसी उम्र के दिखाऊ सहानुभूति से मुझे बेहद नफरत है। अभी भी दिखाऊ सहानुभूतिवाले को चाँटा मार देने की इच्छा होती है, जब्त कर जाता हूँ, वरना कई शुभचिंतक पिट जाते।

फिर स्कूल मास्टरी। फिर टीचर्स ट्रेनिंग और नौकरी की तलाश—उधर पिताजी मृत्यु के नजदीक। भाई पढ़ाई रोककर उनकी सेवा में, बहनें बड़ी बहन के साथ। हम शिक्षण की शिक्षा ले रहे हैं।

फिर नौकरी की तलाश। एक विद्या मुझे और आ गई थी—बिना टिकट सफर करना। जबलपुर से इटारसी, टिमरनी, खंडवा, इंदौर, देवास बार-बार चक्कर लगाने पड़ते। पैसे थे नहीं। मैं बिना टिकट बेखटके गाड़ी में बैठ जाता। तरकीबें बचने की बहुत आ गई थीं। पकड़ा जाता तो अच्छी अंग्रेजी में अपनी मुसीबत का बखान करता। अंग्रेजी के माध्यम से मुसीबत बाबुओं को प्रभावित कर देती और वे कहते—लेट्स हेल्प दि पुअर बॉय।

दूसरी विद्या सीखी—उधार माँगने की। मैं बिलकुल निःसंकोच भाव से किसी से भी उधार माँग लेता। अभी भी इस विद्या में सिद्ध हूँ।

तीसरी चीज सीखी—बेफिक्री! जो होना होगा, होगा, क्या होगा? ठीक ही होगा। मेरी एक बुआ थी। गरीब, जिंदगी गर्दिश-भरी, मगर अपार जीवन-शक्ति थी उसमें। खाना बनने लगता तो उनकी बहू कहती—बाई, न दाल ही है न तरकारी। बुआ कहती—चल, चिंता नहीं। राह-मोहल्ले में निकलती और जहाँ उसे छप्पर पर सब्जी दिख जाती, वहीं अपनी हमउम्र मालकिन से कहती—ए कौशल्या, तेरी तोरई अच्छी आ गई है। जरा दो मुझे तोड़ के दे। और खुद तोड़ लेती। बहू से कहती—ले बना डाल, ज़रा पानी जादा डाल देना। मैं यहाँ-वहाँ से मारा हुआ उसके पास जाता तो वह कहती—चल, कोई चिंता नहीं, कुछ खा ले।

उसका यह वाक्य मेरे लिए ताकत बना—कोई चिंता नहीं।

गर्दिश, फिर गर्दिश !

होशंगाबाद शिक्षा अधिकारी से नौकरी माँगने गए। निराश हुए। स्टेशन पर इटारसी के लिए गाड़ी पकड़ने के लिए बैठा था। पास में एक रुपया था, जो कहीं गिर गया था। इटारसी तो बिना टिकट चला जाता। पर खाऊँ क्या? दूसरे महायुद्ध का जमाना। गाड़ियाँ बहुत लेट होती थीं। पेट खाली। पानी से बार-बार भरता। आखिर बेंच पर लेट गया। 14 घंटे हो गए। एक किसान परिवार पास आकर बैठ गया। टोकरे में अपने खेत के खरबूजे थे, मैं उस वक्त चोरी भी कर सकता था। किसान खरबूजा काटने लगा। मैंने कहा—तुम्हारे ही खेत के होंगे। बड़े अच्छे हैं। किसान ने कहा—सब नर्मदा मैया की किरपा है भैया ! शक्कर की तरह हैं। लो खाके देखो। उसने दो बड़ी फाँकें दीं। मैंने कम-से-कम छिलका छोड़कर खा लिया। पानी पिया। तभी गाड़ी आई और हम खिड़की से घुस गए।

नौकरी मिली जबलपुर के सरकारी स्कूल में। किराए तक के पैसे नहीं। अध्यापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महोदय ने दरी में कपड़े बाँधे और बिना टिकट चढ़ गए गाड़ी में। सामान के कारण इस बार थोड़ा खटका था। पास में कलेक्टर का खानसामा बैठा था। बातचीत चलने लगी। आदमी मुझे अच्छा लगा। जबलपुर आने लगा तो मैंने उसे अपनी समस्या बताई। उसने कहा—चिंता मत करो। सामान मुझे दो। मैं बाहर राह देखूँगा। तुम कहीं पानी पीने के बहाने सींखचों के पास पहुँच जाना। नल सींखचों के पास ही है। वहाँ सींखचों को उखाड़कर निकलने की जगह बनी हुई है। खिसक लेना। मैंने वैसा ही किया। बाहर खानसामा मेरा सामान लिये खड़ा था। मैंने सामान लिया और चल दिया शहर की तरफ। कोई मिल ही जाएगा, जो कुछ दिन पनाह दे देगा, अनिश्चय में जी लेना मुझे तभी आ गया था।

पहले दिन जब बाकायदा 'मास्साब' बने तो बहुत अच्छा लगा। पहली तनख्वाह मिली ही थी कि पिताजी की मृत्यु की खबर आ गई। माँ के बचे जेवर बेचकर पिता का श्राद्ध किया और अध्यापकी के भरोसे बड़ी जिम्मेदारियाँ लेकर जिंदगी के सफर पर निकल पड़े।

उस अवस्था की इन गर्दिशों का जिक्र मैं आखिर क्यों इस विस्तार से कर गया ? गर्दिशें बाद में भी आईं, अब भी आती हैं, आगे भी आएँगी पर उस उम्र की गर्दिशों की अपनी अहमियत है। लेखक की मानसिकता और व्यक्तित्व-निर्माण से इनका गहरा संबंध है।

मैंने कहा है—मैं बहुत भावुक, संवेदनशील और बेचैन तबीयत का आदमी हूँ। सामान्य स्वभाव का आदमी ठंडे-ठंडे जिम्मेदारियाँ भी निभा लेता, रोते-गाते दुनिया से तालमेल भी बिठा लेता और एक व्यक्तित्वहीन नौकरीपेशा आदमी की तरह जिंदगी साधारण संतोष से भी गुजार लेता।

मेरे साथ ऐसा नहीं हुआ। जिम्मेदारियाँ, दुखों की वैसी पृष्ठभूमि और अब चारों तरफ से दुनिया के हमले—इस सबके बीच सबसे बड़ा सवाल था अपने व्यक्तित्व और चेतना की रक्षा। तब सोचा भी नहीं था कि लेखक बनूँगा। पर मैं अपने विशिष्ट व्यक्तित्व की रक्षा तब भी करना चाहता था।

जिम्मेदारी को गैर-जिम्मेदारी की तरह निभाओ!

मैंने तय किया—परसाई, डरो किसी से मत। डरे कि मरे। सीने को ऊपर-ऊपर कड़ा कर लो। भीतर तुम जो भी हो, जिम्मेदारी को गैर-जिम्मेदारी के साथ निभाओ। जिम्मेदारी को अगर जिम्मेदारी के साथ निभाओगे तो नष्ट हो जाओगे। और अपने से बाहर निकलकर सबमें मिल जाने से व्यक्तित्व और विशिष्टता की हानि नहीं होती, लाभ ही होता है। अपने से बाहर निकलो। देखो, समझो और हँसो!

मैं डरा नहीं। बेईमानी करने में भी नहीं डरा। लोगों से नहीं डरा, तो नौकरियाँ गईं। लाभ गए, पद गए, इनाम गए। गैर-जिम्मेदार इतना कि बहन की शादी करने जा रहा हूँ। रेल में जेब कट गई, मगर अगले स्टेशन पर पूड़ी-साग खाकर मजे में बैठा हूँ कि चिंता नहीं, कुछ हो ही जाएगा। और हो गया। मेहनत और परेशानी जरूर पड़ी। यों कि बेहद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिजली-पानी के बीच एक पुजारी के साथ बिजली की चमक से रास्ता खोजते हुए रात-भर में अपनी बड़ी बहन के गाँव पहुँचना और कुछ घंटे रहकर फिर वही वापसी यात्रा। फिर दौड़-धूप! मगर मदद आ गई और शादी भी हो गई।

इन्हीं सब परिस्थितियों के बीच मेरे भीतर लेखक कैसे जन्मा, यह सोचता हूँ। पहले अपने दुखों के प्रति सम्मोहन था। अपने को दुखी मानकर और मनवाकर आदमी राहत भी पा लेता है। बहुत लोग अपने लिए बेचारा सुनकर संतोष का अनुभव करते हैं। मुझे भी पहले ऐसा लगा। पर मैंने देखा, इतने ज्यादा बेचारों में मैं क्या बेचारा! इतने विकट संघर्षों में मेरा क्या संघर्ष!

मेरा अनुमान है मैंने लेखन को दुनिया से लड़ने के लिए एक हथियार के रूप में अपनाया होगा। दूसरे, इसी में मैंने अपने व्यक्तित्व की रक्षा का रास्ता देखा। तीसरे, अपने को अविशिष्ट होने से बचाने के लिए मैंने लिखना शुरू कर दिया। यह तब की बात है, मेरा खयाल है, तब ऐसी ही बात होगी।

पर जल्दी ही मैं व्यक्तिगत दुख के इस सम्मोहन-जाल से निकल गया। मैंने अपने को विस्तार दे दिया। दुखी और भी हैं। अन्याय-पीड़ित और भी हैं। अनगिनत शोषित हैं। मैं उनमें से एक हूँ। पर मेरे हाथ में कलम है और मैं चेतना-संपन्न हूँ।

यहीं कहीं व्यंग्य-लेखक का जन्म हुआ। मैंने सोचा होगा—रोना नहीं है, लड़ना है। जो हथियार हाथ में है, उसी से लड़ना है। मैंने तब ढंग से इतिहास, समाज, राजनीति और संस्कृति का अध्ययन शुरू किया। साथ ही एक औघड़ व्यक्तित्व बनाया। और बहुत गंभीरता से व्यंग्य लिखना शुरू कर दिया।

मुक्ति अकेले की नहीं होती। अलग से अपना भला नहीं हो सकता। मनुष्य की छटपटाहट है मुक्ति के लिए, सुख के लिए, न्याय के लिए। पर यह बड़ी लड़ाई अकेले नहीं लड़ी जा सकती है। अकेले वही सुखी हैं, जिन्हें कोई लड़ाई नहीं लड़नी। उनकी बात अलग है। अनगिनत लोगों को सुखी देखता हूँ और अचरज करता हूँ कि ये सुखी कैसे हैं! न उनके मन में सवाल उठते, न शंका उठती है। ये जब-तब सिर्फ शिकायत कर लेते हैं। शिकायत भी सुख देती है। और वे ज्यादा सुखी हो जाते हैं। कबीर ने कहा है—

सुखिया सब संसार है, खावै और सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै और रोवै।

जागनेवाले का रोना कभी खत्म नहीं होता। व्यंग्य-लेखक की गर्दिश भी खत्म नहीं होगी।

ताजा गर्दिश यह है कि पिछले दिनों राजनीतिक पद के लिए पापड़ बेलते रहे। कहीं से उम्मीद दिला दी गई कि राज्यसभा में हो जाएगा। एक महीना बड़ी गर्दिश में बीता। घुसपैठ की आदत नहीं है, चिट भीतर भेजकर बाहर बैठे रहने में हर क्षण मृत्यु-पीड़ा होती है। बहादुर लोग तो महीनों चिट भेजकर बाहर बैठे रहते हैं, मगर मरते नहीं। अपने से नहीं बनता। पिछले कुछ महीने ऐसी गर्दिश के थे। कोई लाभ खुद चलकर दरवाजे पर नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आता। उसे मनाना पड़ता है, चिरौरी करनी पड़ती है। लाभ थूकता है तो उसे हथेली पर लेना पड़ता है। इस कोशिश में बड़ी तकलीफ हुई। बड़ी गर्दिश भोगी।

मेरे-जैसे लेखक की एक और गर्दिश है। भीतर जितना बवंडर महसूस कर रहे हैं, उतना शब्दों में नहीं आ रहा है, तो रात-दिन बेचैन हैं। यह बड़ी गर्दिश का वक्त होता है, जिसे सर्जक ही समझ सकता है।

यों गर्दिशों की एक याद है। पर सही बात यह है कि कोई दिन गर्दिश से खाली नहीं है। और न कभी गर्दिश का अंत होना है। यह और बात है कि शोभा के लिए कुछ अच्छे किस्म की गर्दिशें चुन ली जाएँ। उनका मेकअप कर दिया जाए, उन्हें अदाएँ सिखा दी जाएँ—थोड़ी चुलबुली गर्दिश हो तो और अच्छा—और पाठक से कहा जाए—ले भाई, देख मेरी गर्दिश!

नया खून—पुराना खून*

साधो, फिर चुनाव आ रहे हैं और फिर नए खून की पुकार उठ रही है। यह तीसरा चुनाव है और हर बार शोर मचता है कि इस बार नए खून को चांस देना चाहिए। हर बार यह मजाक अच्छा नहीं लगता। राजनीति की यह बीमारी तुम्हें भी लग गई है और तुम भी कभी-कभी मेरा चमीटा उखाड़ने की बात करते हो।

साधो, नए खून की यह 'पद लोलुपता' हम सयानों को बिलकुल अच्छी नहीं लगती। क्या हो गया है इस पीढ़ी को! दूध के दाँत भी नहीं टूटे और पद ग्रहण करने को लालायित हो गए। देखते नहीं हैं कि जो पदों पर हैं उनके 'दूध के दाँत' टूट गए और 'मलाई' के दाँत भी टूट गए और अब नकली दाँत लगाए हैं।

साधो, नए खून को सोचना चाहिए कि उसके सामने तो पूरी जिंदगी पड़ी है, कभी भी पद पर बैठ सकेंगे। पर पुराने खून के दिन गिने-गिनाए हैं, उन्हें कुछ दिन और रह लेने दो। साधो, अगर केवल मानवतावादी दृष्टि से ही देखा जाय तो भी पुराने खून का जमे रहना उचित मालूम पड़ता है। जब विधानसभाओं और संसद के आधे से अधिक सदस्य एम्बुलेंस में सभा-भवन जाया करेंगे और हर सदस्य के बगल में एक डॉक्टर बैठा करेगा, तब समझेंगे कि हमारा जनतंत्र सयाना (मेच्योर्ड) हो गया।

साधो, तुम हँसते हो। सयानेपन के गुण नहीं जानते। सयानेपन में जो काम होते हैं उनसे मंगल होता है। दशरथ अगर कैकेयी से विवाह न करते तो राम को वन कौन

* सन् 1962 के आम चुनावों के लिए पार्टी टिकटों की कोशिशें चल रही थीं। कांग्रेस में माँग उठ रही थी कि संसद, विधानसभाओं और मंत्रिमंडलों में 'नए खून' को, याने नए उत्साही युवक कांग्रेसजनों को लिया जाना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेजता ? और राम वन न जाते तो रावण का नाश कैसे होता? साधो, समाज के मंगल के लिए दशरथ से सयानेपन में वैसी बात होना आवश्यक था। ऐसी ही बातें हमारे आज के ये राजा अगर करें; तो तुम उन्हें 'भूल' कहते हो। यह नहीं सोचते कि सयानेपन की 'भूल' से समाज का मंगल होता है। अधर्मी हो, साधो !

साधो, इस बात को दूसरी दृष्टियों से भी देखो! अंग्रेजी में मुहावरा है—'डाई इन हारनेस', यानी घोड़ा हो तो उसे कसे-कसाए और आदमी हो तो पद पर काम करते-करते मरना चाहिए। यह बड़े गौरव की बात है। राज-पद पर जो व्यक्ति कसा-कसाया मृत्यु को प्राप्त होता है उसकी अंत्येष्टि राजकीय सम्मान के साथ होती है। जिन्हें राजकीय सम्मान से अंत्येष्टि कराना है, वे पद क्यों छोड़ें? उनके इस समारोह की तस्वीरें खिंचेगी, लड़का उन्हें बैठक में टाँगेगा और बताया करेगा—ये हमारे पिताजी·····राजकीय सम्मान के साथ·····इससे आगामी पीढ़ियाँ प्रेरणा प्राप्त करेंगी।

साधो, अगर पुराने खून के स्थान पर नया खून आ गया, तो बड़े पैमाने पर 'अनएम्प्लायमेंट' (बेकारी) बढ़ेगी। सयानों की बेकारी बड़ी खराब होती है। बेकार आदमी 'फ्रस्ट्रेशन' (हताशा) से पीड़ित रहता है और उपद्रव करता है। राजाजी बेकारी की समस्या से पीड़ित हैं, तो तुम देख ही रहे हो कि किस प्रकार उपद्रव कर रहे हैं। अभी उन्होंने सांप्रदायिकता का जोरदार समर्थन किया था। और तुम्हें याद होगा कि एक बार वे बी.सी. जी. को लेकर राजकुमारी अमृत कौर से उलझ पड़े थे। इसलिए राष्ट्र का हित इसी में है कि पुराने नेता बेकारी की समस्या से पीड़ित न हों। उन्हें संस्मरण तक लिखने की फुरसत नहीं मिलनी चाहिए, वरना संस्मरण में ही ऐसा कुछ लिख देंगे कि गड़बड़ पैदा हो जाएगी।

साधो, पुराना आदमी अनुभवी होता है, वह मामूली गड़बड़ियों से घबराता नहीं है। महाराष्ट्र में कहीं जरा-सी गड़बड़ होती है तो नया खून चव्हाण एकदम दौड़-धूप, डाँट-डपट करने लगता है। इधर अपने पुराने खून काटजू साहब हैं कि दंगे होते हैं, गोलियाँ चलती हैं, अर्थ-आयोग आलोचना करता है मगर वे धीर-गंभीर बने बैठे रहते हैं। पुराने खून की यही विशेषता है। वह धीर-गंभीर होता है। शास्त्र में ऐसे ही नायक को 'धीरोदात्त' कहा गया है, जिस पर नाटक और महाकाव्य लिखे जाते हैं।

साधो, पार्टी की दृष्टि से भी देखो। पुराने आदमी को चुनाव जीतने की सब तरकीबें मालूम हैं। वह जानता है कि किससे कैसे वोट लिया जा सकता है। उसका जीतना निश्चित है। नया आदमी एक चुनाव तो सीखने में ही हार जाएगा। पार्टी नए खूनों को टिकटें देकर क्या चुनाव हारेगी?

साधो, ये सब बातें तुम्हारी समझ में शायद न आई हों। मैं तुम्हें व्यावहारिक लाभ बताता हूँ। देखो, पुराना आदमी किसी पद पर नहीं रहेगा तो जनता को बड़ी तकलीफ होगी। तुम अपने पर से ही देखो—मान लो तुम्हारे पास गैर-कानूनी गाँजा पकड़ा गया और तुम गिरफ्तार कर लिए गए। अगर कोई पुराना नेता राजकीय पद पर है, तो मैं उसे लेकर अफसरों के पास जाऊँगा और तुम्हें छुड़ा लूँगा। पुराने नेता के अफसरों से घनिष्ठ संबंध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहते हैं। नए नेता को कौन अफसर पूछता है! और नए आदमी से यह कहने में भी मुझे संकोच होगा कि अखाड़े के कुछ साधु गाँजा रखने के लिए पकड़े गए हैं, उन्हें छुड़वा दो। साधो, सयाना आदमी अभ्यास से चतुर हो जाता है। नया आदमी पाँच साल तो जनता की इस रीति से भलाई करना सीखने में ही गुजार देगा।

साधो, मैंने तुम्हें पुराने खून के लाभ समझाए। मैं उस दिन की कल्पना करके प्रसन्न हो उठता हूँ जब सचिवालय और विधान परिषदों के सामने एम्बुलेंस गाड़ियाँ खड़ी रहेंगी और राजकीय नेता स्ट्रेचर पर भीतर ले जाए जाएँगे, जनता के प्रति अपने कर्तव्य पूरे करने।

12.6.1961

सांस्कृतिक हुल्लड़

साधो, हाल में एक सांस्कृतिक समारोह में गया। सोचा, हमारी संस्कृति सबसे प्राचीन और सबसे महान है। देखें, यह जीवन में किस तरह उतरी है।

साधो, वहाँ नृत्य, संगीत, नाट्य आदि हुए और कार्यक्रम देखकर मेरा मन खुश हुआ। देखो, गलत मत समझना—नृत्य, संगीत, नाट्य देखकर खुश नहीं हुआ। वहाँ एक और कार्यक्रम हुआ, जिसका उल्लेख निमंत्रण-पत्र पर नहीं था। साधो, वहाँ आवाजें कसी गईं, गालियाँ बकी गईं। कार्यकर्ता ने माइक पर कहा कि सभी माताएँ-बहनें रुक जाएँ। यह सुनकर पुरुषों को याद आया कि उनका क्या कर्तव्य है। उन्होंने महिलाओं पर कागज वगैरह फेंके। साधो, कुछ लोग इसे हुल्लड़ कहते हैं। वे गलत हैं। साधो, वास्तविक सांस्कृतिक कार्यक्रम यही है। संयोजक समझते हैं कि नृत्य, संगीत, नाट्य हमारी सांस्कृतिक उपलब्धि के चिन्ह हैं। यह सरासर झूठ है। इनके सिवा जो अन्य कार्यक्रम वहाँ होते हैं वही हमारी संस्कृति के चिन्ह हैं। मगर इनका कोई उल्लेख निमंत्रण-पत्र पर नहीं होता ! यह धोखा है। सच्ची संस्कृति को छिपाकर झूठी संस्कृति को सामने लाना; सरासर धोखा है। साधो, हम लोग जब ऐसा कार्यक्रम करेंगे, तब निमंत्रण-पत्र में छापेंगे कि इस समारोह में आवाजकशी, गाली-गलौज, हल्ला, स्त्रियों पर कंकड़ फेंकना, कुर्सियाँ तोड़ना आदि सांस्कृतिक कार्यक्रम होंगे। इसके साथ ही कुछ नृत्य-संगीत वगैरह भी हो जाएगा, जिसके लिए दर्शक हमें क्षमा करेंगे। साधो, जिसे लोग 'हुल्लड़' कहते हैं, वही वास्तविक सांस्कृतिक कार्यक्रम हैं और नृत्य-संगीत वगैरह तो इसकी 'संगत' के लिए हैं, जैसे गाने में तबले की संगत होती है।

साधो, मन प्रसन्न हो गया। तुम्हें बताता हूँ कि जिसे लोग 'हुल्लड़' कहते हैं, वह सांस्कृतिक विकास किस तरह बताती है। साधो, हमारी संस्कृति में सत्य का बड़ा महत्त्व है। अगर संगीत हो रहा है, जो ऊँचे दर्जे का है, फिल्मी नहीं है और वह हमारी समझ में नहीं आ रहा है तो हमें क्या करना चाहिए ? चुप बैठे रहना चाहिए? नहीं साधो, वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिथ्याचार है। हमें हल्ला करके यह प्रगट कर देना चाहिए कि हमारे पल्ले नहीं पड़ रहा है। अपनी नासमझी को छिपाये रहना, पाखंड है। जो लोग आवाजें कसते हैं या बकरे की बोली बोलते हैं या बेमौके ताली पीटते हैं, वे इस बात की स्पष्ट घोषणा करते हैं कि हमारी समझ में नहीं आ रहा है। साधो, इस सत्य आचरण की प्रशंसा होनी चाहिए कि निंदा? आखिर हम सत्यवादी हरिश्चंद्र के देश के हैं!

साधो, हुल्लड़ में बहुत गहरे संकेत होते हैं। डार्विन नाम का एक वैज्ञानिक हो गया है। उसने सिद्ध किया था कि आदमी पहले बंदर था, फिर विकास करते-करते आदमी हुआ। बंदर से आदमी तक के विकास की कड़ियों में से एक कड़ी नहीं मिलती। उसे 'मिसिंग लिंक' कहते हैं—याने गायब कड़ी। आधा बंदर और आधा आदमी—ऐसा एक जीवधारी कभी पृथ्वी पर था, पर इसके चिन्ह मिलते नहीं हैं। साधो, जब समारोह में कोई चिल्लाता है, हुल्लड़ करता है, तब वह विश्व के वैज्ञानिकों से कहता है, कि 'मिसिंग लिंक' तो मैं यहाँ बैठा हूँ, तुम कहाँ खोज रहे हो? साधो, भारत में ज्ञान की साधना निरंतर होती रही है। इसीलिए इस देश के कुछ युवक जिनके पास विकासवाद का एक रहस्य है, उसकी घोषणा करते हैं। वैज्ञानिक ध्यान नहीं देते, यह उनकी गलती है। अपनी ओर से हम ज्ञान की साधना में पूरा योगदान करते हैं।

साधो, लोग शिकायत करते हैं कि स्त्रियों से दुर्व्यवहार होता है। उन्हें छेड़ा जाता है, आवाजें कसी जाती हैं। एक तो मैं इसे कोई बुराई नहीं मानता। दूसरी बात यह है कि यह भी हमारे सांस्कृतिक विकास की निशानी है। साधो, तुम जानते हो, हमारे यहाँ आदमी को अच्छा बनाने के लिए शुरू से ही बड़ी कोशिश होती रही है। सोचा कि आदमी को स्त्री बुरा बनाती है—विश्वामित्र जैसे तपस्वी को बिगाड़ दिया तो बंटूराम और टुटपुँजियाप्रसाद और बुद्धूलाल की क्या बिसात! साधो, इसीलिए नीतिवालों ने नियम बनाए कि स्त्री और पुरुष दूर-दूर रहें, परस्पर शत्रु समझें; कभी संपर्क में न आएँ। कहा कि एकांत में माता और बहन से भी बात न करो। इस तरह सैकड़ों सालों से आदमी को अच्छा बनाने की साधना अपने समाज में चल रही है। और परिणाम तुम देख रहे हो—आशा से अधिक है। समारोहों में जब स्त्री-पुरुष इकट्ठे होते हैं, तब सैकड़ों सालों की यह साधना जोर करती है—स्त्री डरती-सहमती है और पुरुष यह देखकर आपे से बाहर हो जाता है कि उसका शत्रु सामने है। साधो, उसे अजीब लगता है। उसे लगता है कि स्त्री तो एक भिन्न किस्म का प्राणी है। यह प्राणी विचित्र है और वह वैसा ही भड़कता है जैसे अजनबी को देखकर कुत्ता भौंकता है।

साधो, अपने समाज में जो 'पिछले दरवाजे की नैतिकता' की साधना कई शताब्दियों से हो रही है, उसके सुपरिणाम हैं ये। आखिर बुरे और भले में खुले और ढँके का भेद तो है ही! साधो, इसी नैतिकता ने यह सिखाया कि स्त्री डब्बे में बंद करके रखने की चीज है। हमारा समाज मुरब्बे का बड़ा शौकीन है। वह बगीचे से फल तोड़ लाता है, उसका मुरब्बा बनाकर रख लेता है और खाता रहता है। अब इस आधुनिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा ने सब गड़बड़ कर दिया। स्त्रियाँ मुरब्बे के डब्बे में रहती नहीं हैं। वे जब बाहर दिख जाती हैं, तब इस देश के पुरुष की आत्मा को बड़ी चोट पहुँचती है। शताब्दियों के उसके करे-धरे पर पानी फिर रहा है। नैतिकता का नाश हो रहा है। संस्कृति का पतन हो रहा है। साधो, उसका कर्तव्य है कि वह इसका विरोध करे। वह विद्रोह में आवाजें कसता है, छेड़छाड़ करता है, गाली बकता है। अब बताओ, उसका यह सात्विक पवित्र विद्रोह क्या निंदा का पात्र है?

साधो, लोग ऊलजलूल बातें करते हैं। वे कुछ नहीं समझते। अगर दो-चार हिंदी फिल्में देख आएँ, तो सब समझ में आ जाय। साधो, हर युवक स्त्री का प्रेम चाहता है। प्रश्न है—स्त्री प्रेम कैसे आदमी को करती है? इसका उत्तर शास्त्रों में नहीं लिखा। इसका उत्तर हमारे आज के नीति-शास्त्र याने फिल्में देती हैं। साधो, फिल्मों में देखो, अच्छी स्त्री हमेशा उचक्के से प्यार करती है। आजकल फिल्मों में किशोरकुमार बड़ा लोकप्रिय है। फिल्म में अच्छी स्त्री उसी से प्यार करती है। क्यों? इसलिए कि वह उचक्कापन करता है। साधो, जिस युवक को अच्छी स्त्री का प्यार चाहिए, वह उचक्कापन अवश्य करेगा। शरीफों को कोई स्त्री नहीं चाहती। यह अटल फिल्मी सत्य है।

साधो, तुम सब भोंदू हो। लोग जैसा कहते हैं, वैसा मान लेते हो। तुम जिसे हुल्लड़ कहते हो वह सांस्कृतिक आचरण है। तुम उसे हुल्लड़ कहना ही चाहते हो, तो सांस्कृतिक हुल्लड़ कहो। और यह मत भूलो कि सैकड़ों सालों की नैतिक साधना से हमें यह उपलब्धि हुई है। साधो, अगर तुम्हारे दिमाग साफ हो गए हैं, तो अगले समारोह में तुम भी लँगोटी लगाकर हुल्लड़ करना। तुम जिस दिन पिटकर आओगे, उस दिन मुझे बेहद खुशी होगी।

10.9.1961

पुलिस-शताब्दी समारोह

साधो, अगले महीने भारतीय पुलिस अपनी शतवार्षिकी मना रही है। इस वर्ष हम दो शतवार्षिकियाँ मना रहे हैं—कवि रवींद्रनाथ की और पुलिस की।[1] साधो, जिस साल रवींद्रनाथ का जन्म हुआ उसी साल 'पुलिस एक्ट' बना। तुम्हें यह संयोग विचित्र लगेगा, पर इसमें एक स्वाभाविक संगति है। काव्य और डंडे का सहअस्तित्व हमारे यहाँ नया नहीं है। तुम जानते हो, अर्जुन ने पहले कृष्ण से गीता सुनी और बाद में लड़ा। ज्ञान का डंडे से हमेशा सहयोग रहा। काव्य और डंडा भी साथ-साथ चला है।

साधो, कवि और पुलिस दोनों का उद्देश्य एक है—दोनों आदमी को अच्छा बनाना चाहते हैं। पर अच्छा बनाने के तरीके अलग-अलग हैं, क्योंकि आदमी के बारे में दोनों

1. रवींद्र-शताब्दी समारोह और पुलिस-शताब्दी समारोह दोनों 1961 में हुए थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की मूल धारणा भिन्न है। कवि मनुष्य मात्र को अच्छा मानकर चलता है, पुलिस मनुष्य को बदमाश मानती है। कवि आदमी को बिना प्रमाण के बेईमान नहीं समझता, पुलिस किसी को बिना प्रमाण के ईमानदार नहीं समझती। कवि आदमी के मस्तिष्क और हृदय पर प्रभाव डालकर उसे ऊँचा उठाता है, पुलिस उसके शरीर पर चोट करके उसे ऊँचा उठाती है।

साधो, कवि और पुलिस में उद्देश्य की एकता है। मुझे तो हर पुलिसमैन कवि लगता है और पुलिस अफसर तो महाकवि लगता है। जैसे हर नगर में उदीयमान, उदित और अस्तमान अनेक कवि होते हैं, वैसे ही कांस्टेबिल और हवलदार कई होते हैं। जैसे 4-6 प्रतिष्ठित कवि होते हैं, वैसे ही 4-6 बड़े पुलिस अफसर होते हैं और जब पुलिस के मुख से काव्य झरता है तब मजा आ जाता है। इंस्पेक्टर जनरल किसी महाकवि से कम नहीं होता।

साधो, यह सुखद संयोग है कि रवींद्र-समारोह और पुलिस-समारोह एक साथ ही पड़े। हम जैसे रवींद्र-समारोह मना रहे हैं वैसे ही उत्साह से पुलिस-समारोह मनाएँ। मैं नहीं जानता कि सरकार का क्या कार्यक्रम है। अपनी मति के अनुसार कुछ कार्यक्रम सुझाता हूँ।

साधो, इस अवसर पर चोर, उचक्कों, लुटेरों और जुआड़ियों को एक अभिनंदन-ग्रंथ पुलिस को भेंट करना चाहिए। इस ग्रंथ में ये लोग पुलिस के संसर्ग में अपने सुखद संस्मरण लिखें। इसमें यह भी लिखा जाय कि उनके कार्यों में पुलिस ने किस प्रकार सहयोग दिया। साधो, अखिल भारतीय चोर-संघ, उचक्का-संघ आदि के अध्यक्ष पुलिस अफसरों को पुष्प-हार पहनाएँ और अपनी कठिनाइयाँ बताकर उनसे सहायता की अपील करें।

साधो, इस अवसर पर पुलिस को पिछले 100 वर्षों की प्रगति का लेखा-जोखा प्रस्तुत करना चाहिए। जनता को यह बताना चाहिए कि किस प्रकार पिछले 100 वर्षों में पुलिस ने प्रगति की है। जिन मुद्दों पर विचार होना चाहिए उनमें से कुछ ये हैं—1. पिछले 100 वर्षों में अपराधी को छोड़ देने के तरीकों में क्या विकास हुआ है? 2. डायरी और रोजनामचा बदलने की कला ने क्या विकास किया है? 3. जिसने अपराध किया ही नहीं है उससे अपराध कबूल करवाने के तरीके, इस एक शताब्दी में कितने आगे बढ़ गए हैं? 4. जिसे पकड़ना है, उसके घर में गाँजा या अफीम किस तरह फेंका जाता है? 5. जिसे छुड़वाना है, उसका केस किस तरह कमजोर बनाया जाता है? 6. पुलिस के बदला लेने के तरीकों में क्या विकास हुआ है? 7. 1861 में कौन-सी गालियाँ दी जाती थीं और 1961 तक कौन नई गालियों का निर्माण पुलिस विभाग ने किया है? 8. घूस लेने के तरीके किस तरह उन्नति करते गए हैं? 9. पिछले 100 वर्षों में हुए गोली-कांडों का इतिहास!

साधो, ऐसा एक बड़ा ग्रंथ अवश्य बनाना चाहिए। इसके साथ ही कुछ छोटी पुस्तिकाएँ भी निकलनी चाहिए। कुछ विषय मैं बताता हूँ—1. घूस देने के तरीके। 2. जुआ कैसे खिलाना। 3. गोली-कांडों की सुखद स्मृतियाँ। 4. डाकुओं से मेरे प्रेम-संबंध। 5. चोरों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को उपयोगी हिदायतें। 6. सेंध लगाने की कला। 7. गाँजे की खेती। 8. औरत भगाने की विद्या। 9. अफसर वशीकरण मंत्र। 10. सजा पाए अपराधियों से पुलिस के मधुर संबंध। 11. पुलिस शिष्टाचार-संहिता। 12. घूस का न्यायोचित बँटवारा। साधो, ऐसी पुस्तिकाएँ निकल जाएँ तो जनता को बड़ा सुभीता हो और पुलिस को भी। चोरी करने की कला यदि पुलिस बता दे तो न चोर को झंझट हो न उसे, जिसकी चोरी हुई है। यदि माल का मालिक यह जान ले कि यह चोरी सही विधि से हुई है तो वह रिपोर्ट करने की परेशानी क्यों उठाए? इधर पुलिस जब देख ले कि उसके द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार ही चोरी हुई है, तो वह भी मामला खारिज करके आराम करे।

साधो, इस वर्ष हमें यह भी तय करना है कि जो दो ज्वलंत समस्याएँ हैं, उनमें पुलिस क्या करे। ये समस्याएँ हैं—डाकू और दंगे। साधो, यह तय हो जाना चाहिए कि डाकू कौन और पुलिस कौन? जिन्हें पुलिस डाकू कहती है, वे कहते हैं कि हम पुलिस हैं और जो खादी वर्दीधारी हैं, वे डाकू हैं। इसी तरह यह भी तय हो जाना चाहिए कि पुलिस का प्रथम कर्तव्य डाकुओं का दमन करना है या शरीफों का। साधो, दंगों के संबंध में भी पुलिस की नीति स्पष्ट हो जाना चाहिए। यदि दंगे के लिए पुलिस का सहयोग चाहिए, तो वह किन शर्तों पर मिलेगा। इससे दंगाइयों को भी सुभीता होगा।

साधो, तुम भी कभी-कभी चोरी से गाँजा रखते हो और पुलिस की कृपा से तुम्हारा कुछ बिगड़ता भी नहीं है। तुम भी 'साधु-मंडल' की ओर से पुलिस का अभिनंदन करो, जिसमें अपने पवित्र हाथों से चिलम भरकर पुलिस अफसरों को दो।

17.9.1961

गणेशजी और गधाजी*

साधो, आजकल गणेशजी और गधाजी में चली हुई है। अभी तक 'ग' अक्षर पर गणेश कब्जा किए थे और बच्चे पढ़ते थे—ग गणेश का। बेचारा गधा युगों से गणेशजी की यह धाँधली देख रहा था कि कभी ऐसे लोग भी सत्ता प्राप्त करेंगे, जो मेरी कद्र करेंगे। साधो, बीसवीं शताब्दी आधी बीत जाने पर ऐसा समय आया और गधे ने हमला कर दिया। उसने गणेश को पाठ्य-पुस्तकों से निकाल बाहर किया और खुद जम गया। अब बच्चे पढ़ते हैं—ग गधे का।

साधो, बेचारे गणेश से किसे सहानुभूति न होगी। महाराज, तुम्हारी झाँकी बनती है, पूजा होती है, आरती होती है। शादी-विवाह के कार्डों पर तुम छपते हो—श्री गणेशाय

* मध्यप्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा प्रकाशित अक्षरबोध की पाठ्य पुस्तक में 'ग—गधे का' हो गया। इसके पहले 'ग—गणेश का' होता रहा है। इस परिवर्तन की अखबारों में आलोचना हुई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमः। मगर तुम पाठ्य-पुस्तक से निकाल दिए गए। तुम विघ्नों को हरनेवाले माने जाते हो, मगर अपनी प्रतिष्ठा में जरा-सा विघ्न नहीं हर सके! गधे ने तुम्हें परास्त कर दिया! हे विघ्नहर, अब तुम्हारा आवाहन कौन करेगा! आदमी बचपन से ही जब यह वर्णमाला सीखेगा तो तुम्हारी जगह गधे को स्मरण करेगा, क्योंकि सरकारी पाठ्य-पुस्तक में ग गधे का हो गया।

साधो, विधानसभा में बड़ा हो-हल्ला मचा। सदस्यों ने कहा कि युगों से ग गणेश का रहा है। उस पर गधे का अधिकार होना अशोभन है। साधो, ये सदस्य क्या कर सकते हैं? अगर इस बात पर मतदान हो जाए कि ग गणेश का है कि गधे का, तो गधा भारी बहुमत से जीत जाएगा क्योंकि जिन्होंने उसे पाठ्य-पुस्तक में बिठाया है, उनका बहुमत है। यानी आज गणेश की अपेक्षा गधे को अधिक समर्थन प्राप्त है।

साधो, तुम नहीं जानते कि जिसे तुम मूर्खता का देवता मानते हो, वह किस तरह चतुराई से पिछले दरवाजे से पाठ्य-पुस्तक में घुस गया। बात पुरानी है। सन् 1954 में जब पुरानी मध्यप्रदेश सरकार ने 'बाल-भारती' खुद प्रकाशित करने का निश्चय किया, तब पुस्तकें तैयार करने के लिए एक कमेटी बिठाई। जिसमें लेखक, प्रोफेसर और शिक्षा-शास्त्री थे। इन लोगों ने पुस्तकें तैयार करके दीं। प्रवेशिका में ग गणेश का ही था। जब ये लोग लौट आए, तब न जाने गधे को कैसे पता चल गया कि ग गणेश का है। बस, इधर विद्वानों की पीठ फिरी, उधर गधे ने शिक्षा-विभाग पर अपना प्रभाव डाला। उसने सीधे गणेश पर हमला किया। जब पुस्तकें छपकर प्रगट हुईं तो लिखनेवालों ने आश्चर्य से देखा कि गणेशजी निकाल दिए गए और ग पर गधे का कब्जा हो गया। साधो, गधा यहीं नहीं रुका। उसने उन लोगों से भी बदला लिया, जिन्होंने गणेशजी का समर्थन किया था। पुस्तकों में उनके नाम नहीं छपे, जिन्होंने उन्हें तैयार किया, बल्कि अफसरों के नाम छपे जिन्होंने गधे का समर्थन किया था। साधो, ग गधे का न होता, तो क्या ऐसा हो सकता था ?

साधो, यह सिर धुनने की बात नहीं है। जो वस्तुस्थिति है, उसे स्वीकार करना चाहिए। तुम आज जागे हो, जब गधे ने गणेश को पाठ्य-पुस्तक में से निकाल दिया। मगर यह शीत-युद्ध कब से चल रहा है। जगह-जगह गणेश परास्त होता रहा है और गधा जीतता रहा है। शासन में, शिक्षा में, विश्वविद्यालय में, सार्वजनिक जीवन में सब जगह गणेश हार रहे हैं। पहले दर्जेवाला सड़क नापता है और तीसरे दर्जेवाला अच्छी नौकरी पाता है। ऐसा क्यों ? योग्य जन-सेवक नगरपालिका का चुनाव हार जाता है और निरक्षर लोकसभा पहुँच जाता है। ऐसा क्यों? सर्वथा मंदमति मुहकमे का अफसर होता है और बुद्धिमान उसी के मातहत मामूली बाबू बना रहता है। साधो, आखिर ऐसा क्यों होता है? इसीलिए तो कि गणेश हार रहे हैं, गधे से।

साधो, शिक्षामंत्री ने बड़े साहस से स्थिति को स्वीकारा। उन्होंने जवाब दिया कि बच्चे गधे को गणेश की अपेक्षा अधिक जानते हैं और गधा गणेश की अपेक्षा जीवन के अधिक समीप है। यह सही है। इसीलिए बच्चों को शुरू से ही समझाना चाहिए कि बेटो, गणेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को भूल जाओ। उसका जमाना गया। आज गधे का जमाना आया है। इस जमाने में सफलता के लिए गधे का स्मरण करो। पढ़ो—ग गधे का।

साधो, मुझे डर है, तुम सोचते होगे कि मैं गणेश का भक्त हूँ। नहीं, ऐसा नहीं। मैं न गणेश का, न गधे का। विधानसभा में इस पर जो विवाद खड़ा करते हैं और जो गधे की हठ पर हैं, वे दोनों एक ही प्रभाव में है—गधे के प्रभाव में। यानी गधे का उपयोग दलबंदी के लिए कर रहे हैं। साधो, मामला सुलझाना बहुत आसान है; ग गमले का कर दो। मगर मामला सुलझेगा नहीं, क्योंकि गणेश भाग गए हैं और ग गधे का हो गया है।

24.9.1961

बकरी पौधा चर गई

साधो, तुम सुनते आ रहे हो कि बागुड़ खेत को खा गई और नाव नदी को लील गई और यह भेद किसी ने नहीं जाना। तुम इन उलटवासियों का दार्शनिक अर्थ निकाल लेते हो और रूपकों को समझ लेते हो! आज मैं तुम्हें एक समाचार सुनाता हूँ और तुम इस रूपक का अर्थ बतलाओ। समाचार भोपाल का है—सचिवालय के अहाते में जो वटवृक्ष पं. जवाहरलाल ने रोपा था उसे बकरी चर गई। कहते हैं, पौधे के आसपास जो चबूतरा था उस पर बकरी चढ़कर पत्ते खा गई। वहाँ जो चौकीदार था, वह भी पौधे को बचा नहीं पाया। इस समाचार को पढ़कर कुछ लोग आश्चर्य करते हैं, कुछ सरकार की गफलत को धिक्कारते हैं और कुछ क्रोध करते हैं। मगर साधुओं को किसी पर गुस्सा नहीं करना है। हमें ठंडे दिमाग से इस रूपक का अर्थ निकालना है।

122609

साधो, इस घटना में 4 बातें हैं—

(1) पौधा जवाहरलाल ने लगाया था।

(2) उसकी रक्षा के लिए आसपास चबूतरा बनाया, मगर बकरी उसी चबूतरे पर चढ़कर उसे खा गई।

(3) बकरी, जो पौधा खा गई,

(4) चौकीदार ने उसे खा जाने दिया।

साधो, रूपक के इन चारों अंगों पर ध्यान रखो। इसके साथ ही यह भी ध्यान रखो कि रक्षक चौकीदार में और भक्षक बकरी में कोई गुप्त समझौता है। हो सकता है, बकरी ने पौधे को खाकर जो भीतर-भीतर दूध बनाया, उसे चौकीदार को दुह लेने दिया हो। यानी पौधा दूध के रूप में थोड़ा चौकीदार को भी मिल गया हो।

साधो, अब अर्थ सुनो। पौधा जवाहरलाल ने लगाया, यह सही है। यह पौधा 10-12 साल पहले ही लगाया गया था। प्रथम पंचवर्षीय योजना के समय यह पौधा लगाया गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। यह है राष्ट्रीय विकास का पौधा। इसके आसपास तमाम योजनाओं के चबूतरे बनाए गए। जैसे—ब्लाक डेवलपमेंट, सहकारी आंदोलन, विभिन्न प्रोजेक्ट। इसकी रक्षा के लिए चौकीदार खड़े हो गए—यानी बड़े अफसर, मंत्री और नेता। साधो, मगर ज्यों ही पौधा बढ़ा, भ्रष्टाचार की बकरी आई। उसने चौकीदार से कहा—तू मुझे पौधा चर लेने दे। आखिर इसका दूध ही तो बनेगा। तू मुझे दुह लेना। चौकीदार ने बकरी को योजना के चबूतरे पर चढ़ जाने दिया और बकरी पौधा चर गई।

साधो, विकास के पौधे को इस तरह चरा जा रहा है। तुम देखते हो कि ब्लाक डेवलपमेंट अफसर की जीप 10 मील दूर पान खाने आती है। आधे मील सड़क बनवाने का खर्च दो लाख रुपया है। योजना का सामान उठकर बाजार में बिकता है। नया पुल पहली बरसात में ही बैठ जाता है, इमारत बनते ही तिड़क जाती है। बाँध की दीवार टूट जाती है और करोड़ों पानी में बह जाते हैं। सैकड़ों टन गल्ला सरकारी गोदाम में सड़ जाता है। लाख रुपए की संस्था के उद्‌घाटन में दो लाख लग जाते हैं। साधो, लोग इन चीजों का बड़े रोष से उल्लेख करते हैं। मैं कहता हूँ क्रोध मत करो। जवाहरलाल के लगाए पौधे को बकरी चर रही है।

साधो, जवाहरलाल जगह-जगह तरह-तरह के पौधे लगा रहे हैं और उन्हें तरह-तरह की बकरी चर रही हैं। इधर जवाहरलाल पौधा लगाकर पीठ फेरते हैं उधर बकरी चर जाती है। हाल ही में राष्ट्रीय एकता का पौधा लगा था। कितने ही नेताओं ने उसे भाषण से सींचा था। जवाहरलाल ने खाद दिया था। पौधा लगाकर जवाहरलाल मदुराई गए। उधर उत्तरप्रदेश की सांप्रदायवाद की बकरी उसे चर गई। जवाहरलाल ने 1950 में प्रजातंत्र का पौधा लगाया था, उसे फासिज्म की बकरी चरने के लिए लपक रही है और चौकीदार उसे बढ़ने दे रहा है। जवाहरलाल कांग्रेस के भीतर एकता का पौधा मदुराई में लगाकर हाथ धो ही रहे थे कि मध्यप्रदेश कांग्रेस के दलों ने कहा कि टिकिट के मसले पर हम एकमत हो ही नहीं सकते। इसलिए यह काम लालबहादुर शास्त्री को सौंपा जाए। पद-लोलुपता की बकरी कांग्रेस की एकता के पौधे को चर गई।

साधो, किस-किस पौधे को रोइए। तमाम चौकीदार बकरियों से मिले हैं और वे चरे जा रही हैं।

साधो, भोपाल सचिवालय के अहाते के पौधे को बकरी चर गई, यह आज लोगों को दिखा। चर तो कब से रही है। पिछली फरवरी में इसी मध्यप्रदेश में राष्ट्रीय एकता के पौधे को बकरी चर गई थी। साधो, अब तो एक बड़ा मजबूत भयानक बकरा छुट्टा घूम रहा है। यह धर्म और संस्कृति की कंठी पहने फ़ासिज्म का बकरा है। यह जनतंत्र के पौधे को तो क्या, झाड़ तक चर जाएगा। इसके सींगों से चौकीदार भी डरने लगे हैं। साधो, इसने बकरियों को मात कर दिया है। यह वट-वृक्ष को चर जाने का हौसला रखता है।

साधो, जवाहरलाल से कहो कि पौधे लगाते हो तो उनके आसपास काँटों के तार लगवाएँ जिनसे बकरे-बकरियों के थूथड़े फूट जाएँ और चौकीदारों को या तो बदलें या उनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गला दबाकर दूध उगलवाएँ। और अगर पौधे लगाने का शौक है तो उजाड़ू बकरे-बकरियों को काँजीहाउस में डालो। वरना तुम पौधे रोपोगे और ये चरते जाएँगे। और अखबार छापेंगे कि आज यहाँ का पौधा चर लिया और कल वहाँ का।

22.10.1961

एक अच्छी घोषणा*

साधो, जिन्हें खड़े होना था खड़े हो गए। अब सिर्फ बैठने का मौका अपने हाथ में है।

मेरे सामने हर पार्टी के चुनाव घोषणापत्र पड़े हैं और इन्हें देखकर ऐसा मन होता है कि हर पार्टी को वोट दे दिया जाय। मगर वोट एक ही है। एक पार्टी को देने से बाकी पार्टियों के प्रति अन्याय हो जाएगा। ये सभी अच्छे-अच्छे काम करना चाहती हैं।

साधो, इनमें सबसे ऊपर भारतीय जनसंघ का घोषणापत्र है। इसका आरंभिक अंश बहुत अच्छा है। इसमें कहा गया है कि भारत एक प्राचीन राष्ट्र है, हिमालय से समुद्र तक एक संस्कृति है। भारत की माता के रूप में उपासना करते हैं। साधो, इससे मुझे बड़ा फायदा हुआ। मैंने तीसरी कक्षा में भूगोल और इतिहास में ये बातें पढ़ी थीं। इतने साल हो जाने से भूलने लगा था, तो इस घोषणापत्र ने तीसरी कक्षा के पाठ दुहरा दिए। अब मैं ये बातें पाँच साल तक नहीं भूल सकता।

साधो, इसमें और अच्छी बातें हैं। लिखा है कि जनसंघ धर्म-राज्य की अनिवार्यता को स्वीकार करता है। साधो, धर्म की प्रतिष्ठा की बात स्वतंत्र पार्टी भी करती है। दोनों पार्टियों के धर्म के लक्षण मिला देने से बड़ा अच्छा नक्शा बनता है। ऐसे राज्य में भौतिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष ही आदर्श रहेगा। यानी पूँजीवालों का भौतिक उत्कर्ष होगा और गरीबों का आध्यात्मिक उत्कर्ष। साधो, मैं तो कहता हूँ कि धर्म-राज्य ही नहीं, जाति-राज्य और उपजाति-राज्य बनने चाहिए। तब देश का क्या होगा?

आगे कहा है कि जनसंघ लोकतंत्र का अवलंबन करेगा और अधिनायकवाद (डिक्टेटरी) का विरोधी है। यह भी बिलकुल सत्य है। हाल ही में दिल्ली-पंजाब और उत्तरप्रदेश के जनसंघ के कुछ नेता यह कहकर पार्टी से अलग हो गए हैं कि जनसंघ में डिक्टेटरी चलती है, जनतांत्रिक संगठन इनका नहीं है। राष्ट्रीय सुरक्षा के अंतर्गत कहा गया है कि सेना को आधुनिकतम शस्त्रों से सज्जित किया जाएगा। साधो, मेनन ने सेना को आधुनिक नहीं बनाया, वह तो लाठी, बल्लम और तलवार से सेना को सजाता है। बम-वर्षक विमान, तोपें और राकेट जनसंघ उसे देगा।

---

* सन् '62 में जनसंघ का चुनाव-घोषणापत्र निकला। इसमें कुछ बड़ी दिलचस्प बातें थीं। धर्म, गो-रक्षा और हिंदू-राष्ट्र का बड़ा जोर था। आर्थिक कार्यक्रम कुछ नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधो, आगे मजेदार बातें हैं। भारत एकात्मक राज्य होगा, लेकिन सत्ता का विकेंद्रीकरण होगा। भ्रष्टाचार बिलकुल बंद हो जाएगा। मंत्रियों का वेतन 500 रु. होगा। साधो, 500 रुपए किस हिसाब से होगा ? महँगे जमाने के 500 रुपए कि सस्ते जमाने के ? जब घी आठ आने सेर हो जाएगा, तब 500 रुपए देकर क्या करेंगे? और जब व्यक्तिगत उद्योग को जनसंघ छूट देगा, तो मंत्री भी तो व्यक्तिगत उद्योग से अधिक पैसा कमा लेंगे। इस मामले में नीति स्पष्ट नहीं है।

साधो, सबसे बड़ी आशा जनसंघ ने तुम-जैसे निठल्लों को दी है। घोषणा की है कि जिन्हें काम नहीं मिलेगा; उनका पेट भरने का दायित्व शासन लेगा। साधो, बड़े मजे रहेंगे। जब राज्य ही पालन-पोषण करेगा, तब काम करनेवाला तो बेवकूफ कहलाएगा। अधिक-से-अधिक आदमी निठल्ले हो जाएँगे। दिन-भर मक्खियाँ मारेंगे और शाम को जाकर सरकारी सदावर्त से रोटी ले आएँगे। साधो, सरकार हमें काम करने पर मजबूर भी नहीं करेगी, क्योंकि इसी घोषणापत्र में कहा है कि व्यक्तिगत उद्योग को स्वतंत्रता रहेगी और राज्य की शक्ति अमर्यादित नहीं रहेगी। व्यक्ति चाहे जो उद्योग कर सकेगा और चाहे तो कुछ भी न करेगा, पर सरकार को उसका पालन करना पड़ेगा। साधो, यही तो स्वर्ग कहलाता है। सब निठल्ले देवता हो जाएँगे।

साधो, आगे कहा है कि विदेशी पूँजी भारत में नहीं आ सकेगी। स्वदेशी मंत्र का पुनर्जागरण होगा। अर्थात् भारत में विदेशी पूँजीवाद के स्थान पर देशी पूँजीवाद का विकास होगा। होना भी चाहिए। टाटा, बिड़ला, डालमिया ने क्या स्वदेशी आंदोलन में इसीलिए चंदा दिया था कि स्वतंत्रता के बाद समाजवाद शुरू हो जाय?

साधो, इसमें कई क्रांतिकारी घोषणाएँ हैं। जैसे यह कि आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति बनाया जाएगा। साधो, अगर तुम्हारी हड्डी टूट जाएगी तो एक्स-रे नहीं करा पाओगे, क्योंकि एक्स-रे आयुर्वेद में नहीं है। कुत्ते के काटने पर इंजेक्शन नहीं लगवा सकते। दुनिया-भर के वैज्ञानिकों ने जो दवाएँ खोजी हैं, वे अपने किसी काम नहीं आवेंगी। वे अराष्ट्रीय हैं। अपने धर्म में मरना श्रेयस्कर है। अपनी राष्ट्रीय चिकित्सा से मरना अच्छा, दूसरे की दवा से जान बचाना अधर्म है।

साधो, आगे कहा गया है कि बिजली को गाँव-गाँव पहुँचाएँगे, पर टेक्ट्रर नहीं चलने देंगे। बिजली तक हम अगर आधुनिक होते हैं, तो हल तक पुरातन होना भी जरूरी है। और फिर ट्रेक्टर से जमीन अधिक गहरी खुद जाती है, जिससे धरती माता को कष्ट होता है। आगे कहा गया है कि सिर्फ गोबर का खाद दिया जाएगा; रासायनिक खाद नहीं। साधो, इसका उद्देश्य भी पवित्र है। खाद के गोबर के लिए गोवंश की वृद्धि होगी, तो गौशालाएँ खुलेंगी और गौशालाएँ खुलेंगी तो उनके मंत्री और मैनेजर होने का बहुत लोगों को मौका मिलेगा और उनका जीवन सुधरेगा।

साधो, एक बात समझ में नहीं आई। जनसंघ शासन सँभालने के बाद गौशालाएँ खोलेगा। अभी क्यों नहीं खोलता? गौ की रक्षा शासन सँभालने के बाद ही क्यों जरूरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगी ? क्या कांग्रेसराज की गायें बेचारी जनसंघ के रक्षण की अधिकारिणी नहीं हैं? गौ के संबंध में जनसंघ की नीति अपूर्ण है। उसने गोबर, दूध आदि उपयोग तो गाय के लिखे हैं मगर गौमाता के और भी उपयोग हैं। जैसे दंगा कराने के लिए भी होता रहा है। इसका भी उल्लेख होना था। लिखना था–'जब तक जनसंघ शासन पर अधिकार नहीं कर लेता, तब तक गाय के रक्षण की आवश्यकता नहीं है। शासन हथियाने के बाद गौशालाएँ, डेरियाँ आदि खोलेगा। अभी गाय का उपयोग केवल दंगे के सिलसिले में हो सकता है।'

साधो, ये सब तो अच्छी बातें हैं। लेकिन इस सबसे अच्छी बात अंत में लिखी है। यह घोषणा ऐसी है कि जिसे पढ़कर तुम्हारे हृदय खिल उठेंगे और तुम जनसंघ की पेटी वोटों से भर दोगे। इसी एक वायदे पर जनसंघ सारे भारत में जीत सकता है। किसी पार्टी के पास ऐसी जोरदार घोषणा नहीं है। साधो, वह घोषणा यह है कि जनसंघ महुआ कानून समाप्त कर देगा। महुआ में वह तत्त्व है, जिसे ग्रहण कर सारा राष्ट्र कलोल करने लगेगा। साधो, तुम उम्मीद करो कि तुम्हें गाँजा मुफ्त मिलने लगेगा। अब सोचो किस पार्टी को वोट दोगे ?

22.1.1962

'सरकार चिंतित है'

साधो, स्वतंत्रता-दिवस तुमने मना लिया। मगर पानी गिरने के कारण बाहर उत्सव नहीं हो सके। साधो, अंग्रेज कौम भी बड़ी चालाक है। इसने भारत छोड़ा तो दो चीजें ऐसी करती गई कि तुम हमेशा इन्हें भुगतोगे। एक तो पाकिस्तान बनाया जो हमारे कुरते में सोते समय चींटी की तरह घुस गया और जब-तब काटता है। फिर वे लोग स्वतंत्रता ऐसे मौसम में दे गए, जब खूब पानी बरसता है। कहते गए–लो हिंदुस्तानियो, ऐसे मौसम में आजादी दे जा रहे हैं कि तुम ठीक से मना नहीं पाओ।

साधो, स्वतंत्रता-दिवस के बाद मैंने अखबार उठाकर देखना चाहा कि कहाँ क्या हुआ? एक समाचार पर मेरी नजर पड़ी–खाने की चीजों में मिलावट से सरकार चिंतित ! साधो, खाद्यउपमंत्री श्री थामस साहब का वक्तव्य है यह। मैं सोचता रह गया। साधो, मैं देख रहा हूँ कि बेचारी सरकार हर मामले पर चिंतित रहती जाती है। भाव बढ़ते हैं तो सरकार चिंतित हो जाती है। इधर चोरी-हत्या आदि होते हैं, तो लोग मंत्रीजी से शिकायत करते हैं। मंत्रीजी कहते हैं कि सरकार बहुत चिंतित है। उधर सरकार चिंतित हो जाती है, इधर अपराध और बढ़ जाते हैं। रेल-दुर्घटनाएँ होती हैं, तो सरकार फिर वक्तव्य देती है कि बढ़ती हुई रेल-दुर्घटनाओं से सरकार चिंतित है। सरकार चिंता में दुबली हो जाती है, पर दुर्घटनाएँ कम नहीं होतीं। साधो, बढ़ती हुई कीमतों से सरकार चिंतित है, बेकारी से सरकार चिंतित है, शिक्षा के गिरते स्तर से सरकार चिंतित है। साधो, मुझे सरकार पर बड़ी दया आती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये बेचारी चिंता के मारे सो कैसे पाती होगी? सरकार अगर इस तरह चिंतित रही, तो इस देश का क्या होगा!

साधो, सरकार तो चिंतित होती है, मगर अपराधी चिंतित नहीं होता। बढ़ती कीमतों से सरकार को चिंता है, मगर मुनाफाखोर व्यापारी को जरा भी चिंता नहीं है। गुंडागिरी से सरकार चिंतित होती है, मगर गुंडे चिंतित नहीं होते। अब मिलावट से सरकार तो चिंतित हो गई है, मगर मिलावट करनेवाले बिलकुल चिंतित नहीं हैं। वे बेखटके मिलावट करते हैं।

साधो, मुझे यह स्थिति बड़ी विचित्र लगती है। इसमें चोर चिंतित नहीं हैं, पुलिस चिंतित है। जो अपराध करता है उसे कोई चिंता नहीं। मगर जो अपराध पकड़ते हैं, वे चिंता में दुबले हो गए हैं। साधो, ऐसा भी कभी समय आएगा, जब सरकार तो बिलकुल चिंतित नहीं होगी, मगर चोर, मुनाफाखोर और मिलावट करनेवाला चिंतित रहेगा?

साधो, सारी समस्या इस बात पर निर्भर है कि चिंतित कौन रहता है। जहाँ गलत काम करनेवाला चिंतित न हो, वहाँ सही काम कैसे हो पाएँगे? हम बाजार से आटा लाते हैं तो तुम्हें चिंता रहती है कि कहीं मिलावट तो नहीं है। कहीं हम बीमार तो नहीं पड़ जाएँगे? मगर आटे में मिट्टी मिलानेवाला चिंतित नहीं है। वह जानता है कि हमारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ेगा।

साधो, तुम पूछोगे कि अपराधी चिंतित कैसे होगा? तुमने सुना होगा कि हाल ही में सोवियत रूस में मिलावट के अपराध में दो आदमियों को फाँसी हो गई। तुम कहोगे, अरे बाप रे! मिलावट पर फाँसी! पर मिलावट से एक आदमी की नहीं, समाज की हत्या होती है। एक हत्या से बड़ा अपराध है यह! ऐसी सज़ा तब हो सकती है जब कानून चले, पुलिस रिपोर्ट न बदले, साहब घूस न ले और वकील साहब अपराधी को बचाने न पहुँचें। साधो, मिलावट, मुनाफाखोरी आदि पर फाँसी हो जाय, तो फिर अपराधी चिंतित होंगे, सरकार चिंतित नहीं होगी।

पर साधो, इस दयावान देश में इतनी कठोरता नहीं हो सकती। यह धर्मप्राण देश है। यहाँ साँप को दूध पिलाया जाता है। यहाँ अपराधी को दंड कैसे मिल सकता है?

साधो, अभी हमें कुछ समय तक छूट देनी है, क्योंकि अभी तो अपने समाजवाद में ही मिलावट है। मिलावटी समाजवाद के जमाने में सबको चांस मिल रहा है। इसे 'सर्वोदय' भी कह सकते हैं। सर्वोदय, याने सबका उदय, सबका विकास। चोर का भी विकास! जब हम तय कर लेंगे कि विकास ईमानदार का होना चाहिए, बेईमान का नहीं, तब सरकार चिंतित नहीं होगी, गलत काम करनेवाले चिंतित होंगे।

साधो, बेचारी सरकारों से कहो कि मेरे सरकार, बहुत दुबले हो गए। अब चिंता बंद करो। थोड़ी चिंता उनमें भी तो पैदा करो, जो आपको चिंतित किए हुए हैं। इकतरफा चिंता आखिर कब तक चलती रहेगी?

30.8.1962

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाएँ क्यों चलें?

साधो, इधर कुछ दिनों से मुझे पुलिस ही पुलिस नजर आ रही है। सड़क पर, चौराहों पर, कालेजों के आसपास पुलिस ही पुलिस होती है। सड़कों पर चलना मुश्किल हो गया है। पुलिस-गाड़ी से लाउडस्पीकर पर आवाज आती है—बाएँ चलिए। साधो, मैं बड़ी मुश्किल में पड़ जाता हूँ। एक तरफ तो यह हाल है कि जरा भी बाएँ चले, याने 'वामपंथी' हो जाएँ, उसका पीछा चोर-सरीखा होता है, उसकी आत्मकथा सी.आई.डी. लिखती जाती है और उसे कोई सरकारी या गैर-सरकारी नौकरी कभी नहीं मिलती। दूसरी तरफ पुलिस खुद कहती है कि बाएँ चलो। बताओ मैं क्या करूँ? दाहिने बाजू चलने में बड़ा फायदा होता है। इसीलिए बेचारी पी.एस.पी. बाएँ किनारे से धीरे-धीरे सड़क पार करके दाहिने किनारे पर आ गई है। साधो, कांग्रेस का यह हाल है कि आधी कांग्रेस बाएँ किनारे चल रही है और आधी दाहिने किनारे। सड़क के बीचोंबीच अवसरवादी चल रहे हैं। बाएँ बाजूवाले दाहिने बाजूवालों को आवाज लगाते हैं कि इधर आ जाओ, एक साथ मिलकर इस देश का निर्माण कर लें। मगर दाहिने बाजूवाले उनसे कहते हैं कि इस तरफ आने से देश का लाभ होगा। साधो, बीचवालों का यह हाल है कि कभी इस बाजू की जय बोलते हैं और कभी उस बाजू की। इस तरह पूरी सड़क पर यह मेला चल रहा है, और मुझसे यह पुलिसमैन कहता है कि बांएँ चलो !

साधो, मैं ही क्यों बाएँ तरफ चलूँ? मैं आसपास देखता हूँ कि मेरे-जैसे कई विद्रोही हैं। पुलिस लाख कहे, वे सड़क के बाएँ बाजू नहीं चलेंगे। ये सच्चे गांधीवादी हैं। गांधीजी 50 सालों तक पुलिस से लड़ना सिखाते रहे। भला यह कैसे हो सकता है कि उनकी मृत्यु के 15 साल बाद ही भारत से गांधीवाद समाप्त हो जाए! जो सच्चे गांधीवादी हैं, वे अभी भी पुलिस को कुछ नहीं समझते। जो पुलिस कहती है, उसका ठीक उलटा करते हैं। वे ठीक बीच चौराहे पर खड़े होकर दोस्तों से सिनेमा का कार्यक्रम तय करते हैं। वे बिना बत्ती साइकिल चलाते हैं। वे बीच शहर में तेज रफ्तार से ट्रक चलाते हैं। वे जुआ खेलते हैं, चोरी करते हैं, झगड़ा करते हैं, दंगा करते हैं। ये सब विद्रोही आत्माएँ हैं। इस शताब्दी के आरंभ से इस देश में सत्याग्रह, असहयोग और अवज्ञा आंदोलन चल रहे हैं। गांधीजी के नेतृत्व में हमने ये आंदोलन किए। उन्होंने हमें शिक्षा दी। हमने 50 वर्षों तक उन सबकी अवज्ञा करने का अभ्यास किया जो शासन चलाते हैं। इनमें पुलिस के प्रति हमारा विरोध विशेष रहा है। अब हम पक्के गांधीवादी हो गए हैं। पुलिस कितनी भी कोशिश करे, हम उसकी बात नहीं मानेंगे। हम बाएँ नहीं चलेंगे।

साधो, मैं बड़ा खुश हूँ। अभी लोग काफी विद्रोही हैं। बहुत लोग बाएँ चलना अपमान का काम समझते हैं। उनसे यह ओछापन नहीं हो सकता कि पुलिस कहे और वे बाएँ चलने लगें। साधो, कल मैंने 5-6 तरुणों को बीच सड़क पर खड़े खिलखिलाते देखा। आसपास से मोटरें निकल रही हैं, पर वे सब राजा विदेह की तरह बेखबर खड़े हैं। पुलिस की गाड़ी आई, उनसे बाजू होने के लिए कहा, पर वे बहस करने लगे। मैंने सोचा, ये सच्चे गांधीवादी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीर हैं। जान हथेली पर रखकर पुलिस का विरोध कर रहे हैं। अंग्रेज पहले ही चले गए, वरना उनकी गोलियाँ ये वीर ही सीने पर झेलते। ये सच्चे गांधीवादी हैं। मेरा मन हुआ कि इनके चरण छू लूँ। पर जरा आगे बढ़ा तो देखा कि बीच सड़क पर 4-5 भैंसें पड़ी हैं। ठेले निकल रहे हैं, मोटरें निकल रही हैं। मगर वे बैठी ही हैं। मेरे मन में दुविधा पैदा हुई कि कौन श्रेष्ठ है? मैं किसके चरण छू लूँ—बीच सड़क पर चलनेवालों या खड़े होनेवालों के या इन भैंसों के? इनमें कौन बड़ा सत्याग्रही है?

साधो, मुझे यह बाएँ चलाना बहुत गलत लगता है। संविधान में जो मौलिक अधिकार लिखे हैं उनमें एक यह भी है कि भारतीय नागरिक भारत में कहीं भी जा सकता है। जब वह कहीं भी जा सकता है, तो बीच सड़क से या दाहिने बाजू से क्यों नहीं चल सकता ? आखिर यह प्रजातंत्र है, कोई तानाशाही तो है नहीं। हमें आजादी मिली है तो क्या इसलिए कि मनचाहा चल-फिर न सकें!

साधो, हमारे देश का आदमी नियम मान ही नहीं सकता। वह मुक्त आत्मा है। वह सड़क के बीच चलकर प्राण दे देगा, पर बाएँ नहीं चलेगा। मरकर स्वर्ग पहुँचेगा, तो वहाँ भी सड़क के नियम नहीं मानेगा। फरिश्ते कहेंगे कि बाएँ चलो, तो वह दाहिने चलेगा। साधो, आत्मा अमर है। सड़क पर की दुर्घटना से सिर्फ देह मरती है, आत्मा थोड़े ही मरती है। इस तुच्छ देह के लिए ज्ञानी इतना अनुशासन क्यों सीखें कि सड़क के बाएँ बाजू चलें। साधो, मैं तो पुलिस का भक्त हूँ सो फौरन बाएँ बाजू हो जाता हूँ। मैं कायर हूँ। मगर उन्हें नमन करता हूँ, जो सड़क के कोई नियम नहीं मानते।

2.9.1962

किस्सा मुहकमा तालीमात

साधो, रिजल्ट खुल गए और आधे स्कूल भी खुल गए। हाईस्कूल इस साल 15 दिन पहले खुल गए। लोग पूछते हैं कि साहब 15 दिन पहले स्कूल खुलने से क्या फायदा? साधो, लोग नहीं जानते कि चीन का हमारी सीमा पर हमला हुआ है और संकटकालीन स्थिति चल रही है। 15 दिन पहले स्कूल खुल जाने से चीन हट जाएगा। हमारे शिक्षा विभाग ने सोचा होगा कि संकटकालीन स्थिति में सुरक्षा के लिए तरह-तरह की तैयारियाँ हो रही हैं। हमें भी कुछ करना चाहिए। इन बेचारों के हाथ में स्कूल खोलना और बंद करना है। सो उन्होंने 15 दिन पहले स्कूल खोलकर बता दिया कि हम भी देश की सुरक्षा में पूरी तरह जुटे हैं।

साधो, प्रतापसिंह कैरो बड़ी अकड़ से कहता है कि मैं 20 लाख सिपाही तैयार कर रहा हूँ। उसकी अकड़ अब नहीं चलेगी। अब अपने मुख्यमंत्री भी गर्व से कह सकेंगे कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमने भी 15 दिन पहले स्कूल खोल दिए। यों स्कूल पहले खोलना और छुट्टियाँ कम करना, इन पर पहले ही विचार करना था। अपने स्कूलों की हर दूसरे दिन तो छुट्टी रहती है। पर छुट्टी पहले कम करते, तो शायद विद्रोह हो जाता। इसलिए समझदार सरकार ने संकटकालीन स्थिति में यह क्रांतिकारी कदम उठाया है।

साधो, सुरक्षा के बारे में हम कितने सचेत हैं, यह बताने के लिए भर-बरसात में शिक्षकों और प्रोफेसरों का तबादला भी करना चाहिए। अभी तक तो तबादले के आदेश जारी नहीं हुए हैं। बरसात की राह देखी जा रही है। जब खूब घटा छा जाए और 8-10 दिन की झड़ी लगी हो, तब एकदम उज्जैन के मास्टर को हुक्म होना चाहिए कि तुम जगदलपुर जाओ। यों तो हर वर्ष शिक्षा विभाग तबादला करने के लिए बारिश की राह देखता रहता है और जब पढ़ानेवाला इधर घर में बरसात के लिए गल्ले, लकड़ी, कोयले का प्रबंध कर लेता है, तब हुक्म आता है कि तुम्हारा तबादला कर दिया गया। इस साल सब शिक्षकों और प्रोफेसरों के तबादले करने चाहिए और बरसात के बीच में करने चाहिए। तब वे समझेंगे कि देश पर हमला हुआ है और संकटकालीन स्थिति चल रही है। बरसात में बीवी-बच्चों और सामान समेत तबादले पर जाने से बड़ी वीरता नहीं है। बँगलों में आराम से बैठे अफसरों के हुक्म से ये लोग जब बरसते पानी में बीवी-बच्चों और सामान को लादकर तीन सौ मील दूर जाएँगे, तब भारत माता के वीर सपूत बनेंगे और अपने विद्यार्थियों को भी वीर बनाएँगे। इन तबादलों को देखकर चीन भी घबरा जाएगा, क्योंकि वह इसे फौजी हलचल समझेगा।

साधो, इस साल के रिजल्ट भी संकटकालीन स्थिति के अनुकूल ही हैं। कल एक साधु कहने लगा—बड़ा गजब हो गया। मेरा लड़का मैट्रिक में पहले दर्जे में पास हुआ था। पर कालेजवालों ने पहले इम्तहान में ही उसे फेल कर दिया। एक दूसरा साधु परीक्षा के दिनों में मेरे पीछे पड़ा रहा कि मैं किसी तरह लड़के को पास करा दूँ। वह कहता था—बस, किसी तरह निकल जाए। मगर अभी कल-परसों वह लड़के के पहले दर्जे में पास होने की मिठाई बाँट रहा था। वह खुश था, मगर मुझे उस पहले दर्जे के लड़के पर दया आ रही थी। सोचता था, इस बेचारे को यह फर्स्ट क्लास ले डूबेगा। अब यह इसकी दम पर कालेज जाएगा, साइंस कोर्स लेगा और पहली परीक्षा में फेल होगा। फिर निराश होगा, विफलता की भावना से पीड़ित होगा। या तो टूटे मन से लुढ़कते-लुढ़कते बी.ए. करेगा या नौकरी कर लेगा या आवारा हो जाएगा।

साधो, इस साल मैट्रिक में 7 हजार पहले दर्जे में पास हुए हैं। इधर कालेज में साइंस के पहले इम्तहान में किसी विश्वविद्यालय में 8 फीसदी पास हुए हैं तो किसी में 13 फीसदी। याने पिछले वर्ष के 70-80 फीसदी फर्स्ट क्लास इस परीक्षा में फेल हो गए। साधो, मैट्रिक में सौ में से अस्सी पास होते हैं और आगेवाले डिग्री कोर्स के पहले इम्तहान में सौ में से सिर्फ 8-10। लोग पता लगा रहे हैं कि गड़बड़ कहाँ है—यहाँ या वहाँ? याने स्कूल में या कालेज में। कुछ लोग कहते हैं कि कालेज में प्रोफेसर लोग पढ़ाते नहीं हैं। मैं कहता हूँ कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतंत्रता के बाद से हमारे देश की यही तो एक उज्ज्वल परंपरा पड़ी है कि जो जितने ऊँचे पद पर है वह उतना ही कम काम करेगा। बाबू से कम बड़े बाबू और बड़े बाबू से कम साहब और बड़े साहब तो बिलकुल नहीं। इसी तरह प्राइमरी स्कूल के शिक्षक से कम मिडिल स्कूल का शिक्षक पढ़ाएगा, उससे भी कम हाईस्कूल का और उससे भी कम कालेज का। और विश्वविद्यालय का बड़ा आचार्य तो पढ़ाएगा बिलकुल नहीं, आशीर्वाद देने की तनख्वाह पाएगा। इसलिए अगर कालेजों में पढ़ाई नहीं होती तो किसी को बुरा नहीं मानना चाहिए। वे राष्ट्र की एक परंपरा का विकास कर रहे हैं। और चीन से लड़ने के लिए हमें एक गैरजिम्मेदारी और बेईमानी की राष्ट्रीय परंपरा की सख्त जरूरत है। चीन अपने पड़ोसी देशों से बेईमानी करता है, तो हमें देश के भीतर ही बेईमानी करने का अभ्यास करना पड़ेगा। तब हम उसका मुकाबला कर सकेंगे। इसी तरह चीन की गैरजिम्मेदार हरकतों की बराबरी करने के लिए हमें भी गैरजिम्मेदार होना पड़ेगा। इसलिए पढ़ानेवालों की शिकायत व्यर्थ है।

अब साधो, जहाँ तक अच्छे नंबर मिलने और पहला दर्जा पाने का सवाल है, प्राइमरी से लेकर विश्वविद्यालय तक सब गुरु-कृपा से होता है। अपना युगों से विश्वास रहा है कि विद्या पढ़ने से नहीं आती, गुरु की कृपा से आती है। गुरु अगर प्रसन्न हो जाए, तो अपने प्रिय विद्यार्थी को एकलव्य का अँगूठा काटकर दे सकता है। साधो, ज्यादा पहले दर्जे गुरु-कृपा से ही प्राप्त होते हैं। परीक्षा के पहले लड़के का बाप मास्टर साहब को पान खिलाकर कहता है—मुन्ना की परीक्षा आ रही है। जरा देख लेना। और मास्टर साहब देख लेते हैं। इस तरह देखते-देखते ही मुन्ना पास हो जाते हैं और फिर पहला दर्जा भी प्राप्त कर लेते हैं। इस साल जो 7 हजार फर्स्ट क्लास आए, उसका कारण यह बताते हैं कि काफी नंबर गुरु लोगों के हाथ में ही थे।

साधो, हल्ला करना व्यर्थ है। जो हो रहा है ठीक ही हो रहा है। इधर सरकारी प्रकाशन 'बाल भारती' ऐसी दुर्लभ हो गई है कि किताब बेचनेवाला कहता है, 'बाल भारती' तब मिलेगी, जब पहाड़े की पुस्तक भी खरीदोगे । कल वह कहेगा 'बाल भारती' तब मिलेगी, जब उसी कीमत का कचरा खरीदोगे। 'बाल भारती' चाहिए, तो चाहे जिस शर्त पर लेना होगा। यह भी शिक्षा के क्षेत्र में एक क्रांति ही हुई।

23.6.'63

बलिहारी गुरु आपकी

साधो, तुम्हें सद्‌गुरु की बड़ी तलाश है, मगर सद्‌गुरु तुम्हें मिला नहीं। तुम मुझे ही गुरु समझकर मेरे आसपास गुच्छा बनाए हो, मगर मैं भी सद्‌गुरु नहीं। सच्चा सद्‌गुरु प्रचार नहीं करता। वह छिपा रहता है और कभी-कभी उसकी झलक दिखाई पड़ती है। ऐसा एक सद्‌गुरु नागपुर में प्रगट हुआ है। तुम जाओ और उससे सच्चा ज्ञान प्राप्त करो।

साधो, नागपुर के इस सद्‌गुरु के बारे में मुझे भी अखबार के जरिये अभी मालूम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ। खबर छपी है कि एक स्कूल के हेडमास्टर सत्याग्रह कर रहे हैं। वे 11 से लेकर 5 बजे तक स्कूल में खड़े रहते हैं। एक क्षण भी नहीं बैठते। वे रोज यह खड़े रहने का सत्याग्रह करते हैं। कारण क्या है? यह कि उन्होंने देखा कि विद्यार्थियों में अनुशासन और नैतिकता कम हो गई है। हेडमास्टर साहब का कथन है कि पहले लड़के जो पैसा स्कूल में देते थे, उसकी रसीद नहीं माँगते थे, पर अब वे रसीद माँगने लगे हैं। इसका अर्थ है कि लड़कों में अनुशासन और नैतिकता की कमी हो गई है। इससे हेडमास्टर साहब क्षुब्ध हैं और वे लड़कों को सुधारने के लिए सत्याग्रह कर रहे हैं।

साधो, वे लड़के इससे भी ज्यादा बुरे हैं। उन्होंने शिकायत की है कि स्कूल का मैनेजमेंट हमसे पैसा लेकर रसीद नहीं देता और उस पैसे का खुद दुरुपयोग करता है। साफ शब्दों में कहा जाय तो यह कि स्कूल के प्रबंधक लड़कों से पैसा लेकर खा जाते हैं। मगर साधो, विद्यार्थी यह बात अपने मुँह से कहें, यह उनके पतन की सीमा बताता है। उनके पतन से सद्‌गुरु बहुत दुखी हुए और उन्होंने सत्याग्रह शुरू कर दिया।

साधो, अब जरा सद्‌गुरु की महिमा देखो। वे दान के उस सिद्धांत को पुनः जीवित कर रहे हैं, जो हमारी प्राचीन संस्कृति का अंग है—यह कि बायाँ हाथ न जाने कि दाहिने ने क्या दिया है। साधो, सबसे उत्तम दान हमारे यहाँ गुप्त दान माना गया। तुम कहोगे कि यह इसलिए श्रेष्ठ माना गया है कि खानेवाले को सुभीता होता है। मगर तुम दुष्ट हो। तुम न धर्म समझते हो, न संस्कृति। साधो, उत्तम दान का यही लक्षण है कि कोई न जाने कि कितना दिया और कहाँ गया। अगर उसकी रसीद मिलेगी तो दान मिट्टी हो जाएगा। और यदि देनेवाला यह जान गया कि उस पैसे से क्या हुआ, तो उसका अहंकार बढ़ेगा। और अहंकार पाप का मूल है, यह तुम जानते ही हो।

साधो, उस सद्‌गुरु ने सही रास्ता बता दिया है। जितनी सार्वजनिक संस्थाएँ हैं, उन्हें इस बात की सीख लेनी चाहिए। जहाँ-तहाँ चंदा आता है, वहाँ बस रसीद का कोई काम नहीं। और चंदा देनेवाले को यह पूछने का कोई हक नहीं कि हमारे चंदे का क्या हुआ। इससे दान की महिमा घटती है। उसे देकर भूल जाना चाहिए। साधो, मैंने देखा है कि कई संस्थाएँ चंदा इकट्ठा करनेवालों से हिसाब माँगती हैं। ऐसी संस्थाओं में सज्जन का निर्वाह नहीं हो सकता। जो सज्जन है, वह ऐसी संस्थाओं में कैसे रहेगा, जहाँ आदमी का विश्वास नहीं किया जाता?

साधो, आज मूल्यों का पतन हो गया है। कोई जमाना था कि सपने में भी किसी को कुछ दे देते थे, तो उसे दिन में खोजकर उसका दान सौंप देते थे और भूल जाते थे। और आज यह जमाना आ गया है कि आदमी एक रुपया भी देता है तो रसीद माँगता है। साधो, स्कूली बच्चा जिसके दूध के दाँत नहीं टूटे, अपने गुरु से रसीद माँगता है। देखो, नई पीढ़ी में कुसंस्कार किस तरह आ रहे हैं। यही देखकर उस हेडमास्टर का हृदय दुखी हुआ और उसने अपने प्यारे विद्यार्थियों में अच्छे संस्कार पैदा करने के लिए सत्याग्रह कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधो, लड़कों में अनुशासन नहीं रहा। प्राचीन काल में शिष्य गुरु को अँगूठा काटकर दे देता था और रसीद नहीं माँगता था। और आज रुपया-दो रुपया देता है, तो भी रसीद माँगता है। एक वह विद्यार्थी था जो अँगूठा दे देता था और एक यह है, जो गुरुजी को अँगूठा दिखाता है। आज अनुशासन कहाँ रह गया? आज विद्यार्थी इतना उद्दंड हो गया है कि वह गुरु से रसीद की माँग करता है।

साधो, उस सद्गुरु की चरण-रज जाकर लो। उसने तमाम सार्वजनिक संस्थाओं को गुरुमंत्र दिया है। आज संस्थाओं की हालत इसीलिए खराब है कि वहाँ रसीदें चलती हैं और हिसाब माँगा जाता है। ऐसा अविश्वास जहाँ हो वहाँ कोई काम कैसे करेगा ? कार्यकर्ताओं का मन फिर जाता है। ईमानदार आदमी के लिए ऐसी जगह काम करना संभव नहीं है। साधो, रसीद और हिसाब संस्थाओं को मार रहे हैं। तुम सद्गुरु के पास जाओ और उसका मंत्र सर्वत्र फैलाओ। संस्थाओं को बचाओ।

20.10.1963

रेलवे में सुधार

साधो, रेलवे मंत्री दासप्पा साहब ने पिछले दिनों कहा है कि रेल मुहकमा जनता को अधिक-से-अधिक सुभीते और आराम देने की कोशिश करे। मुझे रेलमंत्री की यह बात अच्छी लगी। अब सिर्फ यह तय होना बाकी है कि वे कौन-से सुभीते हैं, जो जनता चाहती है और रेलवे दे सकती है।

साधो, सबसे पहले तो यह तय हो जाना चाहिए कि साल में कितनी दुर्घटनाएँ होंगी और वे किन-किन गाड़ियों की होंगी। बजट में ही इस बात का प्रावधान होना चाहिए, जिससे जनता यह जान ले कि किन गाड़ियों में दुर्घटना होंगी। इससे दो लाभ होंगे—एक तो वे लोग जिन्हें दुनिया से ऊब नहीं आई है, उन गाड़ियों में नहीं बैठेंगे। दूसरे हर दुर्घटना के बाद जाँच कमीशन बिठाने की झंझट से बचाव हो जाएगा। साधो, अभी तो हमें पता ही नहीं रहता कि इस गाड़ी का आगे क्या होगा? इस सफर में कौन-से मील तक हम जिंदा रहेंगे। साधो, मुझे एक पुराना कार्टून याद आता है। मुसाफिर टिकिटघर की खिड़की पर खड़ा हुआ है। टिकिट बाबू पूछता है—कहाँ का टिकिट चाहिए? मुसाफिर कहता है—बस, पहले पुल तक का। साधो, समझदार मुसाफिर जानता है कि पहले पुल तक जिंदा रहे, तो आगे का टिकिट ले लेंगे। दूसरा टिकिट लेने से क्या फायदा, जब पहले पुल के ही टूटने की संभावना है। साधो, जनता की राहत के लिए यह भी जरूरी है कि दुनिया के सब देशों की दुर्घटनाओं के आँकड़े तैयार रखे जाएँ। ज्यों ही दुर्घटना हो और लोग आवाज उठाएँ, उन्हें आँकड़े बता दिए जाएँ कि कई देशों की अपेक्षा हमारे देश में दुर्घटनाएँ कम होती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे जनता का भय और दुख कम होता है।

साधो, सबसे बड़ी समस्या चौथे दर्जे में सफर करनेवालों की है। तुम पूछोगे, चौथा दर्जा तो होता नहीं है। होता है। चौथा दर्जा स्टेशन पर गाड़ी खड़ी होने पर संडास में होता है और गाड़ी चलने पर डब्बे में। चौथे दर्जे का मुसाफिर बैठता सबके साथ ही है पर गाड़ी खड़ी होने पर संडास में घुस जाता है। इनके भी कुछ हक हैं। जब ये पकड़ लिए जाते हैं तब इन्हें घंटों चेकिंग स्टाफ से बहस और अनुनय-विनय करना पड़ता है। इस मामले में सीधे नियम बन जाना चाहिए कि चौथे दर्जे का मुसाफिर पकड़े जाने पर पूरे किराए का कौन-सा अंश चेकिंग बाबू को दे दे और रसीद न ले। अभी तो रकम तय करने में बड़ी देर लग जाती है जिससे मुसाफिर को परेशानी होती है और रेल बाबू को भी पकड़े जाने का डर रहता है। अगर यह तय हो जाय कि पूरे किराए का पच्चीस प्रतिशत देना होगा, तो एक तो चौथे दर्जे के बहुत से मुसाफिर संडास में नहीं घुसेंगे और स्टेशन पर उतरकर एक चौथाई किराया बाबू की जेब में डालकर बाहर निकल जाएँगे।

साधो, तुमने कभी चौथे दर्जे में सफर किया हो, तो तुम उसकी मुसीबत जानो। मेरा तो यह हाल है कि जेब में टिकिट हो, तब भी टिकिट इंस्पेक्टर को देखकर मुझे डर लगता है। इस डर को मैं यह सोचकर भगाता हूँ कि अपने पास तो टिकिट है, यह अपना क्या कर लेगा। साधो, मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है, बिना टिकिट सफर करना। यह टिकिट भी ले लेना उसकी कायरता है।

साधो, एक और मामला तय होना चाहिए। रेलवे के माल-विभाग के कर्मचारियों की क्या जरूरतें हैं और उन्हें जनता किस तरह पूरा करे, इस संबंध में स्पष्ट प्रबंध होना चाहिए। नियम बन जाना चाहिए कि अगर कोई चार टोकने फलों के किसी दोस्त को भेज रहा है, तो एक पाँचवाँ टोकना अवश्य भेजे, जिस पर पते की जगह लिखा हो—रेलवे स्टाफ के लिए। इससे सबको सुभीता होगा और फलों का पहुँचना भी पक्का हो जाएगा। साधो, तरह-तरह की चीजें रेलवे स्टाफ के हाथों से गुजरती है—फल, मेवे, मिठाई, शक्कर, बादाम, किशमिश आदि। आखिर वे भी आदमी हैं और उनके भी बच्चे हैं। वे क्या इन चीजों को बाजार से खरीदें? यह तो बड़ा अन्याय है। वे अपना अधिकार जानते हैं। इसीलिए हम जो होजरी दोस्त को भेजते हैं, उन्हें कभी रेल बाबू के बच्चे पहनते हैं। हमारे किसी को भेजे फल रेलवे स्टाफ खाता है। साधो, अगर उनके लिए अलग से सामान बुक करा दिया जाय तो उन्हें बोरे में से शक्कर निकालने में इतनी दिक्कत न उठानी पड़ेगी।

साधो, रेलवे में अभी बहुत सुधार की गुंजाइश है। अगर जनता और रेलवे स्टाफ में सहयोग हो तो बहुत आराम से काम चल सकता है। फिर तो न बुकिंग क्लर्क की जरूरत पड़ेगी, न इंस्पेक्टर की और न चेकिंग स्टाफ की। लोग मनचाहा सफर करेंगे और जो बनेगा, बाबू के हाथ में देकर चले जाएँगे।

11.5.1964

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिल्म डिवीजन के अंग्रेज

साधो, हमने तारीख 27 को नेहरूजी से वायदा किया था कि हम आपके आदर्शों पर चलेंगे और हमने चलना शुरू कर दिया। नेहरू के पथ पर सबसे पहले कौन चल दिए, यह तुम नहीं जानते। मैं बताता हूँ। सबसे पहले याने नेहरूजी की मृत्यु के 24 घंटे बाद ही भारत सरकार के फिल्म डिवीजन के लोग चल पड़े।

साधो, हम तो यह बात जानते ही नहीं, अगर कुछ अफ्रीकी देशों के राजदूत और रूसी राजदूत नम्रतापूर्वक सूचनामंत्री को यह संकेत न करते कि साहब, फिल्म डिवीजन ने पं. नेहरू की शव-यात्रा की जो फिल्म तैयार की है, उसमें सारी रोशनी ब्रिटिश और अमेरीकी नेताओं पर फेंक दी। वही-वही दिखाए गए हैं। शव-यात्रा में शामिल हम भी थे, मगर इधर बहुत कम ध्यान दिया गया है। साधो, पं. नेहरू के बाद जो सरकार बनी उसके नेताओं ने उस फ़िल्म को देखा और कहा कि इस फिल्म से करोड़ों देशवासियों को गलतफहमी होगी। इसमें सुधार किया जाय।

साधो, अब फिल्म डिवीजनवाले उसमें काट-छाँट करके नए हिस्से जोड़ रहे हैं। मगर मुझे इसमें एतराज है। फिल्म डिवीजनवालों ने ठीक ही किया था। वे लोग जानते हैं कि दुनिया में कोई आदमी है तो अंग्रेज और दूसरे नंबर पर अमेरिकी! ये दोनों अंग्रेजी बोलते हैं, जिसे फिल्म डिवीजनवाले भी बोल लेते हैं। फिर अंग्रेज लोग अभी-अभी तक हमारे माई-बाप रहे हैं और पुराने सरकारी नौकर उनकी जी-हुजूरी करते रहे हैं। स्वतंत्र होने के बाद भी हमारे कितने अफसरों और सेक्रेटरियों को पछतावा होता रहता था कि हाय रे, हम भारतीय क्यों हुए। अंग्रेज क्यों नहीं हो गए! साधो, ये सब तबियत से, वेशभूषा से, विचारों से और आस्थाओं से अंग्रेज हैं। इन बेचारों ने देखा कि आजकल भारतीय होने का फैशन चल पड़ा है। तो वे फैशन के बतौर भारतीय भी हो जाते थे, याने खुले कालर का कोट न पहनकर जोधपुरी बंद गले का कोट पहन लेते हैं—लीजिए साहब, भारतीय हो गए।

साधो, ये साहब को देखते ही पीढ़ियों से विह्वल होते रहे हैं। साहब याने अंग्रेज ! बाद में जवाहरलाल इन्हें सिखाते रहे कि भारतीय, एशियाई और अफ्रीकी भी आदमी होते हैं और कोई घटिया आदमी नहीं होते। और रूस में भी आदमी हैं, वहाँ भेड़ियों की आबादी नहीं है। हमें भारतीय और एशियाई होने में शर्म करने की बात नहीं है।

साधो, जवाहरलाल ने जो कहा वो सुन तो लिया, मगर आत्मा कहती थी कि अंग्रेज की क्या बात है! जब भी अंग्रेज दिख जाता, दिल होता कि इसके पाँव की धूल लेकर कपाल पर लगा लें। मगर जवाहरलाल कहीं देख न लें, इस डर से मन-की-मन में ही रह जाती।

साधो, जब जवाहरलाल की आँखें मुँद गईं, तो कोई डर नहीं रहा। वह गया, जो कहता था कि अरे, भारतीय बनो, एशियाई बनो, अफ्रीकियों को बंधु मानो, रूस को मित्र मानो। साधो, उसके जाने से खटका गया। पहला ही मौका नौकरशाहों को जो मिला तो अपने मौलिक रूप में आ गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधो, फिल्म डिवीजन के लोग अंग्रेजों और अमेरिकियों को देख रहे थे और बलि-बलि जा रहे थे। अहा, ये डगलस होम साहब हैं। वाह, क्या छवि है! वाह, इधर डीन रस्क साहब जा रहे हैं। अहा, कैसे पुण्य दर्शन हैं। साधो, कैमरेवाले माउंटबेटन और रस्क की जय बोलते हुए उनके पीछे लग गए। फिल्म डिवीजनवाले उनके पीछे-पीछे हो लिए जैसे कनाट प्लेस में भिखमंगे लड़के अंग्रेज प्रवासी के पीछे साँप और नेवला लेकर पड़ जाते हैं और पैसा माँगते हैं—सर, स्नेक सर! सर, मान्गूज सर!

साधो, इन बेचारों ने भारतवासियों को यह दिखाना चाहा था कि पंडितजी का सम्मान करने तो बस अंग्रेज और अमेरिकी नेता ही आए थे। सबसे भारी दुख उन्हीं को था। सब जगह वही थे। हमारे सबसे बड़े हितचिंतक वही हैं।

साधो, वह फिल्म तो अब सुधर रही है। मगर इन अफसरों का क्या होगा? ये तो टेम्स नदी को गंगा मानते हैं, कैलिफोर्निया को बद्रीनाथ मानते हैं। वे दुनिया में सबसे ऊँची चोटी गौरीशंकर को नहीं मानते, न्यूयार्क की एंपायर स्टेट बिल्डिंग को मानते हैं। जवाहरलाल इन्हें बरबस भारतीय बनाकर रखते थे। शास्त्रीजी को सबसे पहला और बड़ा काम यही करना है कि सचिवालय के इन तीन-हजारी और चार-हजारी अंग्रेजों को अपने सरीखी धोती पहनाएँ। वरना ये शास्त्रीजी का दफ्तर टेक्सास में खोलने की कोशिश करेंगे।

15.6.1964

भूख मारने की जड़ी

साधो, आखिर हमारी खाद्य-समस्या का हल निकल ही आया। तुम कहोगे कि अनाज की कीमतें बढ़ती ही जा रही हैं; अनाज की कई भागों में कमी है फिर कैसे समस्या हल हो गई? बात यह है साधो, कि हम समस्या को गलत समझ रहे थे। हम समझते थे कि हमारी समस्या यह है कि हमारे यहाँ अन्न की कमी है, पर वास्तव में हमारी समस्या यह है कि इस देश के लोगों को भूख लगती है। इसलिए अन्न ज्यादा पैदा करने या कीमतें घटाने की अपेक्षा हमें भूख को मारने या दबाने की कोशिश करनी चाहिए।

साधो, अब इस समस्या का हल निकल आया है। गुजरात में एक जड़ी खोजी गई है, जिसे खाने से हफ्तों भूख नहीं लगती। पता लगाया है कि हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि इसी को खाकर भूख को तुष्ट करते थे और तपस्या करते थे।

साधो, हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने सारी भूखों के दमन की शिक्षा दी थी। भूख का दमन करते थे, तो खाद्य-समस्या पैदा नहीं होती थी। बल्कल पहनते थे तो कपड़े की समस्या नहीं उठती थी। यौन-भूख का दमन करते थे, तो शादी की समस्या पैदा नहीं होती थी। अब हम खाना भी खाना चाहते हैं, कपड़े भी पहनना चाहते हैं। इसलिए अनाज की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्या भी पैदा होती है और कपड़े की भी।

साधो, अब सारी केंद्र और राज्य सरकारें कीमतों पर नियंत्रण करने की जिम्मेदारी से मुक्त हो सकती हैं। कोई जरूरत नहीं है कि सरकार अनाज का व्यापार अपने हाथ में ले। आगामी मुख्यमंत्री-सम्मेलन में यह तय करना चाहिए कि हर राज्य की जमीन में इस भूख-हरण बूटी को खोजा जाय। तमाम जंगलों में साधु, फकीर और गुनिया को भेजकर इस बूटी का पता लगाना चाहिए। इसके लिए हर राज्य में एक अलग 'भूख-हरण बूटी विभाग' खोल लिया जाय और एक अलग 'भूख-हरण मंत्री' हो। यह विभाग अपने राज्य की सारी जड़ी-बूटी इकट्ठी कर ले। इस जड़ी का एक टुकड़ा एक मन गेहूँ के बराबर होगा।

साधो, इस जड़ी को खोजकर व्यापारियों को बता दिया जाय। मेरा सुझाव है कि अपने राज्य के व्यापारियों को इस जड़ी का ठेका दे दिया जाय। वे इसे खुदवाएँगे और जिस दाम पर चाहेंगे, बेचेंगे। साधो, गल्ले की दूकानों की जगह इस जड़ी की दूकानें खोली जाएँगी। तुम दूकान पर जाओगे और जड़ी माँगोगे। कहोगे, मैं पिछले चार दिनों से भूखा हूँ। मुझे जड़ी चाहिए। दूकानदार पूछेगा—कितने दिन के लिए चाहिए, याने कितने दिन भूख मारना चाहते हो? तुम कहोगे—पंद्रह दिन। वह तुम्हें एक माशा जड़ी दे देगा। साधो, तुम उसे खाकर पंद्रह दिनों के लिए अन्न की समस्या से मुक्त हो जाओगे। तुम्हारी बला से कि गेहूँ कितने रुपए मन बिक रहा है।

साधो, गुजरात के गुणियों ने हर बार हमारी समस्या हल की है। गुजरात के गांधीजी ने हमें आजादी दिलाई। गुजरात के मोरारजी भाई ने देश की आर्थिक समस्या हल कर दी। गुजरात के मनुभाई शाह समाजवाद की समस्या हल कर रहे हैं। उनके विचार से भारतीय समाजवाद वह है, जिसमें मजदूरों के संघर्ष से मुक्त होकर पूँजीवाद विकास करे। साधो, इस समाजवाद की व्याख्या से कार्ल मार्क्स भी कब्र में कराहने लगा होगा। ऐसे गुजरात ने हमारी भूख की समस्या भी निपटा दी।

साधो, केंद्रीय सरकार का एक बड़ा सरदर्द दूर हो गया। सरकार व्यापारियों के डर के मारे कीमतों को धटाने के लिए कोई बड़ा कदम नहीं उठा पा रही है। राजस्थान सरकार ने तो घुटने ही टेक दिए। ऐसे वातावरण में धन्य है, उस गुजरात के गुणी को जिसने भूख को मारने की जड़ी खोज निकाली। साधो, अब पाटिल साहब को, भूख-मारण मंत्री बना दिया जाय। वे इस जड़ी के द्वारा सारे देश की भूख मार देंगे।

साधो, तुम लोग भी अगर चाहो तो तुम्हारी जिंदगी इस काम से बन सकती है। इसके पहले कि असली जड़ी फैलें, तुम नकली जड़ी का व्यापार शुरू कर दो। कोई भी जड़ी खोद लाओ और उसे असली जड़ी सरीखा रंग-रूप देकर बेचना शुरू कर दो। इसके पहले कि सरकार जड़ी पर नियंत्रण लगाने की बात सोचे, तुम करोड़पति बन जाओ।

5.7.1964

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलावट का हक

साधो, मैं तुमसे पूछता हूँ कि पिछले दिनों सबसे बड़ी घटना कौन-सी हुई? क्या कहते हो ? कामनवेल्थ सम्मेलन? अमेरिका में नागरिक अधिकार नियम का बनना? नहीं साधो, तुम घटनाओं के मूल्य नहीं समझते। हमारे देश में एक छोटे-से शहर में ऐसी घटना घटी है, जैसी किसी भी देश में और किसी भी काल में नहीं घटी।

साधो, उस शहर का नाम है होशंगाबाद। पुण्य-सलिला नर्मदा नदी के घाट पर बसे पवित्र शहर में हलवाइयों का सम्मेलन हुआ जिसमें प्रस्ताव करके सरकार से माँग की गई है कि मिलावट के संबंध में जो कानून है, उसे थोड़ा नरम किया जाय। साधो, इसका सीधा अर्थ यह है कि हमें मिलावट का कुछ अधिक सुभीता दिया जाय। ऊपर से प्रस्ताव सीधा मालूम होता है, पर भीतर से इसमें क्रांतिकारी अर्थ है। हम जानते हैं कि देश में और कई दूसरे देशों में भी मिलावट होती है, मगर सब व्यापारी इस बात को छिपाते हैं। ऐसा साहस संसार के इतिहास में किसी व्यापारी वर्ग ने नहीं बताया कि खुल्लम-खुल्ला प्रस्ताव पास करके सरकार से माँग करे कि हमें मिलावट करने दो।

साधो, हमारे ही देश में और खासकर इस समय, ऐसा साहस व्यापारी वर्ग में क्यों प्रकट हुआ? इसका कारण है कि विकास करते-करते हमारा देश उस स्थिति तक पहुँच चुका है, जहाँ मिलावट, मुनाफाखोरी, चोरी और घूस को अपना कानूनी हक माना जाने लगा है। साधो, रूस में मिलावट पर प्राणदंड होता है, मगर हमारे देश में मिलावट के सुभीते खुली सभा में माँगे जाते हैं।

साधो, नागरिक अधिकारों का एक नया युग इस देश में आया है। गृहमंत्री नंदा ने व्यापारी-मंडल के प्रधान से भ्रष्टाचार समाप्त करने के लिए सहयोग माँगा, मगर उन्होंने चिट्ठी का जवाब भी नहीं दिया। इसका अर्थ है—हम सहयोग नहीं देंगे। किस बात में ? भ्रष्टाचार खत्म करने में। तो क्या आप भ्रष्टाचार को चलने देना चाहते हैं? यही तो अब तक हुआ।

साधो, इस नए युग में बहुत-सी चीजें जिनसे लोग शरमाते थे, खुलेआम होने लगी हैं। मिलावट के सुभीते माँगे जाते हैं। अब जरा आगे कल्पना करो कि हलवाइयों ने उदाहरण पेश किया है, तो और लोग क्या करेंगे। मैंने सुना है कि मुरैना के डाकू एक सभा करके सरकार से माँग करनेवाले हैं कि हमें डाका डालने के अधिक सुभीते दिए जाएँ। सरकार यदि जनता की सरकार है, तो कुछ दिनों के लिए पुलिस उस क्षेत्र से हटा लेगी। इसी तरह अखिल भारतीय चोर-सम्मेलन होगा और उसमें प्रस्ताव पास होगा कि पुलिस की गश्त से चोरी के मौके कम हाथ लगते हैं। सरकार से हमारी माँग है कि पुलिस की सख्ती कम करे। फिर एक दिन देशभर के जेबकटों का सम्मेलन होगा, जिसमें व्यवसाय की कठिनाइयों पर विचार होगा। प्रस्ताव पास होगा कि क्योंकि पैसा भीतर की जेब में रखने से हमें काटने में अड़चन होती है, इसलिए सरकार कानून बनाए कि हर नागरिक को अपना पैसा बाहर की जेब में रखना होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधो, अगर इसी गति से हम आगे बढ़े, तो तुम सुनोगे कि किसी सरकारी अफसर ने अदालत में मुकदमा दायर किया है कि अमुक आदमी ने मुझे 'घूस' देने का वादा करके काम करा लिया। काम होने पर उसने मुझे घूस की रकम नहीं दी। लिहाजा उसे धोखाधड़ी के जुर्म में सजा दी जाय और मुझे मेरी रकम दिलाई जाय।

साधो, तुम अचरज मत करो। यह सब होगा। अभी तो सरकारी कर्मचारियों की नई आचरण-संहिता बनेगी, जिसमें लिखा रहेगा कि किस काम के लिए कितनी घूस देनी होगी। तुम दफ्तर में दरखास्त लेकर जाओगे कि साहब, सौ साधुओं को भोजन कराना है। इसके लिए एक बोरा शक्कर का परमिट दिया जाय। साहब झट एक किताब निकालकर देखेगा कि एक बोरे शक्कर पर घूस की कौन रकम सरकार ने तय की है। साधो, वह कहेगा 10 रुपए घूस लगेगी और तुम चुपचाप 10 रुपए देकर घूस की रसीद ले लोगे। तब कोई हल्ला भी नहीं होगा कि देश में भ्रष्टाचार है और दुनिया समझेगी कि यह देश बिलकुल स्वच्छ हो गया।

साधो, हर काम जो डरते-डरते छिपाकर किया जाता है, उसे खुले रूप में कानूनन करने के दिन आ गए। तुम भी प्रस्ताव पास करके सरकार को भेजो कि हमें अपने आँगन में गाँजे की खेती करने का सुभीता दिया जाय।

12.7.1964

भूलें, शताब्दी-समारोह की

साधो, जबलपुर में म्युनिसिपल कमेटी का शताब्दी-समारोह हो गया। 1864 में इस शहर में म्युनिसिपल बनी, फिर 1952 में म्युनिसिपल कारपोरेशन बनी। साधो, इन 100 वर्षों में नगर की जो सेवा की गई उसे याद करने का यह महापर्व था।

साधो, मैंने पूरा समारोह देखा। यों कार्यक्रम अच्छे हुए। खूब रोशनी हुई, सजावट हुई; चौराहे सुंदर बन गए। भाषण हुए, कवि-सम्मेलन और मुशायरे हुए। सब बहुत अच्छा हुआ। मगर फिर भी बहुत कमी रह गई। मुझसे संयोजक लोग पूछते तो मैं उन्हें सुझाता कि नगरपालिका की प्रगति में जिन लोगों ने विशेष योगदान किया है, उनका सम्मान इस समारोह में होना जरूरी है। साधो, उस कर्मचारी का सम्मान करना चाहिए था जिसने सबसे अधिक घूस ली। उसे समारोह के मंच पर बिठाकर मेयर खुद उसे माला पहनाते और उसके हाथ में नारियल देते। इससे कर्मचारियों को प्रोत्साहन मिलता और उन्हें यह भरोसा होता कि हमारी सेवाओं की कद्र की जाती है।

साधो, इसी तरह उस व्यापारी का सम्मान होना भी जरूरी था, जिसने सबसे अधिक चुंगी-चोरी की। उसे तो एक खुली कार में बिठाना था। कार के सामने एक कर्मचारी पोस्टर लेकर चलता जिस पर लिखा होता—अमुक ने पिछले दो वर्षों में सबसे अधिक चुंगी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चोरी की। इसके बाद उन्हें मंच पर बिठाकर मेयर मान-पत्र अर्पित करते जिसमें लिखा होता कि आपकी नगर-सेवा के उपलक्ष में जीवन-भर आपको हम चुंगी से छूट देते हैं।

साधो, इसी तरह नगर निगम के उन सदस्यों का सम्मान होना था, जिन्होंने सबसे ज्यादा पार्टियाँ बदलीं। ये भी सम्मान के अधिकारी थे, जो दिन-भर निगम कार्यालय के आसपास रहते हैं, और लोगों का काम कराया करते हैं।

साधो, इस कारपोरेशन ने एक मामले में इतिहास बनाया है। यहाँ 7-8 महीने तक एक ऐसे मेयर रहे हैं, जिनके बारे में हाईकोर्ट ने निर्णय दिया था कि वे वोटों की गड़बड़ी से मेयर चुने गए, इसलिए वे मेयर हुए ही नहीं। ऐसा कहीं नहीं हुआ होगा कि जो मेयर नहीं था वही 7-8 महीने मेयर रहा। साधो, उन्होंने इतिहास बनाया है। उनका इस मौके पर सम्मान होना था। उनके साथ ही उस सदस्य का भी अभिनंदन होना था, जिसने उस चुनाव में उनके पक्ष में वोटों की गड़बड़ी की थी। उन्होंने प्रजातांत्रिक मूल्यों में हमारी आस्था बढ़ाई है।

साधो, इसी तरह उस नागरिक का सम्मान होना था जिसका सबसे अधिक बिना बत्ती की साइकिल चलाने में चालान हुआ। उस नागरिक का भी सम्मान होना था जो सबसे ज्यादा बार बिना बिल्ले की साइकिल चलाते पकड़ा गया। साधो, उस नागरिक की तलाश करनी थी, जिसने कभी बिल्ला नहीं लिया। उसकी तो मूर्ति स्थापित होनी थी।

साधो, कितनी चीजें छूट गईं। कई स्मृतियों को हमें स्थापित करना था। उस मुहल्ले का पता लगाना था जहाँ पिछले वर्षों में कभी पानी नहीं पहुँचा। वहाँ के निवासियों को मिठाई बाँटनी थी कि तुमने सहनशीलता में पहला स्थान प्राप्त किया है। उस स्थान पर बंदनवार लगाना था जिसकी कभी मरम्मत नहीं हुई। शहर का सबसे गंदा मुहल्ला होने का जिसे गौरव है, उसकी विशेष सजावट करनी थी। साधो, उस रोगी की खोज करनी थी जिसे सबसे लंबे समय तक पेचिस की बीमारी रही। वह हमारी जल-व्यवस्था का गौरव है। उसका सम्मान होना था और उसे दवाइयों का एक पैकेट इनाम देना था। साधो, उस आदमी का भी सम्मान करना जरूरी था जिसने सबसे लंबे अर्से तक नगर निगम की जमीन पर कब्जा कर रखा। उस अधिकारी को भी इनाम देना था जिसकी मेहरबानी से वह ऐसा कर सका। इसी तरह उस नागरिक का सम्मान होना था जिस पर सबसे ज्यादा टेक्स बकाया हो।

साधो, शहर की उस नाली की खोज करनी थी जो सबसे गंदी हो। उसके आसपास फूल बिछाना चाहिए था। उस मुहल्ले के नागरिकों को अलग से सम्मानित करना था जो सार्वजनिक शौचालय को जल्दी-से-जल्दी नष्ट कर देते हैं। जिस सड़क पर सबसे बड़े गढ़े हों उसके दोनों तरफ बंदनवार लगाना था। उन ढोरों को अन्न खिलाना था जो हमेशा सड़क के बीच में बैठते हैं। उनके मालिकों को कुछ इनाम भी देना था।

साधो, शताब्दी समारोह में ये कुछ जरूरी और बुनियादी बातें भुला दी गईं। मगर कबीर से पूछ लेते तो ऐसी गलतियाँ न होतीं।

7.9.1964

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आखिर एकता क्यों हो ?

साधो, तुमने उस दिन सुचेता कृपलानी* का भाषण सुना था, जो अपने प्रदेश के कांग्रेसियों को दे गईं। उन्होंने बड़ी भावुकता से कहा था कि कांग्रेस संगठन में आपसी फूट समाप्त करके एकता स्थापित करनी चाहिए। यह कोई नई बात नहीं है। सुबह जब अखबार खोलता हूँ तो नजर लगभग रोज ही बड़े टाइप में ऐसे शीर्षकों पर पड़ती है—'कांग्रेस में एकता स्थापित करो!' कामराज से लेकर हर मंडलेश्वर यही कहता है। लेकिन साधो, इसमें एक बड़ी विचित्र बात है। सुचेताजी लखनऊ से जबलपुर या भोपाल आकर एकता की सलाह दे सकती हैं और बंगाल में भी। मगर यही सलाह लखनऊ में नहीं दे सकतीं। क्यों?

साधो, इसका भी बड़ा रहस्य है कि हर नेता अपने क्षेत्र के बाहर जाकर एकता की सलाह देता है। केरल के शंकर और जॉर्ज* दोनों जब उत्तर प्रदेश जाएँगे, तब कहेंगे—हाय, आज कांग्रेस की हालत कितनी गिर गई है। जगह-जगह दलबंदी है। हमें दलबंदी समाप्त करके कांग्रेस में एकता स्थापित करनी चाहिए। साधो, उनसे कोई पूछे कि भाइयो, तुम तो खुद केरल में लड़कर और अपनी सरकार गिराकर चले आ रहे हो! वहीं एकता क्यों नहीं की? तो वे जवाब देते हैं—केरल की बात दूसरी है। मैं तो उत्तर प्रदेश के कांग्रेसियों को सलाह दे रहा हूँ। साधो, उस दिन सुचेताजी से अगर पूछते कि देवीजी, आप तो खुद उत्तर प्रदेश में दलबंदी में शामिल हैं। वहीं क्यों नहीं एकता स्थापित करतीं? तो वे शायद कह देतीं—भई, उत्तर प्रदेश की बात अलग है। वहाँ तो कमलापति त्रिपाठी का गुट एकता भंग करता है। हम पूछते—तो देवीजी, एकता कैसे हो सकती है? एकता का क्या स्वरूप है ? वे जवाब देतीं—एकता का अर्थ हर कांग्रेसी के लिए यह है कि सब मिलकर उसे मंत्री बना दें। अगर त्रिपाठी गुट मुझे मुख्यमंत्री बने रहने देने को तैयार हो जाय, तो एकता स्थापित हो जाएगी।

साधो, इस एकता की जरा परीक्षा कर लेनी चाहिए। एकता किसलिए ? एकता का उद्देश्य क्या ? मगर इसके पहले सवाल उठता है—कांग्रेसमैन होने का उद्देश्य क्या ? साधो, कांग्रेसमैन बनने का उद्देश्य है शासन में किसी पद पर हो जाना। मंत्री से लेकर ग्राम पंचायत के सरपंच तक जो पद हैं, उन पर होना कांग्रेसमैन का लक्ष्य है। तब सवाल उठता है—एकता क्यों चाहिए ? एकता इसलिए चाहिए कि इससे दल बहुमत में होगा और तभी हम पद पर हो सकेंगे।

साधो, कुल मिलाकर यह निष्कर्ष निकला कि अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, जिसे ए.ओ. ह्यूम ने शुरू किया था और जिसका नेतृत्व दादा भाई नौरोजी, तिलक, गांधीजी आदि ने किया, जो गांधीजी के नेतृत्व में देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ी, उस कांग्रेस का अब एकमात्र लक्ष्य यह है कि वह मुझे मंत्री बना दे। अगर वह यह नहीं कर सकती, तो मुझे

*सुचेता कृपलानी—उत्तर प्रदेश की तत्कालीन मुख्यमंत्री।

*शंकर और जॉर्ज—केरल के परस्पर विरोधी कांग्रेसी नेता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी परंपरा से, उसकी राष्ट्रीय जिम्मेदारी से कोई मतलब नहीं है। इसीलिए जब-जब मैं मंत्री नहीं बन पाता, तब-तब मुझे याद आती है कि हाय, इस महान संस्था में एकता नहीं है। एकता होती तो मैं मंत्री बन गया होता।

साधो, शंकर एकता को रोते हैं क्योंकि वे मंत्री नहीं रहे। देशलहरा एकता का विलाप करते हैं, क्योंकि उनका मंत्रिमंडल नहीं है। मेहताब एकता को रोते हैं, क्योंकि उड़ीसा में वे मुख्यमंत्री नहीं हैं। चंद्रभान एकता के लिए परेशान हैं, क्योंकि वे मुख्यमंत्री नहीं रहे। साधो, इस एकता का एक ही अर्थ है कि भाइयो, अपनी महान परंपरा को मत भूलो, अपने राष्ट्रीय दायित्व को समझो, फूट खत्म करो। यह फूट कांग्रेसजनों और देश को डुबा देगी। भाइयो, जागो, उठो और सब एक होकर मुझे मंत्री बना दो। आप देखते नहीं हैं कि राष्ट्र पर इस समय घोर संकट आया है, क्योंकि मैं मंत्री नहीं हूँ। यह संगठन के लिए बड़ी शर्म की बात है। हम स्वार्थी हो गए हैं। भाइयो, तुम लोग अपने स्वार्थ त्यागो, मंत्री बनने की इच्छा का त्याग करो और सब मिलकर मुझे मंत्री बना दो। भाइयो, आपने एक होकर अंग्रेज सरकार को भगा दिया, तो क्या इस छोटी-सी राज्य सरकार को नहीं गिरा सकते। आपने एक होकर स्वतंत्रता प्राप्त की थी, तो क्या मुझे मंत्री नहीं बना सकते?

साधो, और जो मंत्री बन गया है, वह एकता के बारे में तब चिंतित होता है, जब उसका मंत्रिपद खिसकने लगता है। वह कहता है कि—भाइयो, हमारे हाथ में देश की बागडोर है। हमें महान उत्तरदायित्व निभाना है। यह उत्तरदायित्व क्या है? यही कि मैं मंत्री बना रहूँ। मगर मैं देख रहा हूँ कि कुछ कांग्रेसी मुझे हटाना चाहते हैं। इस देश पर संकट आ जावेगा। भाइयो, फूट ने देश का बड़ा नुकसान किया है। मैं कहता हूँ—दलबंदी खत्म करो और सब एक होकर मुझे मंत्री बना रहने दो।

साधो, एकता के नारे का यही रहस्य है। इसलिए जब सुचेता तुमसे एकता की अपील करें, तब उस पर ध्यान मत दो। उन्हें यहाँ की नहीं, लखनऊ की चिंता है। तुम्हें लखनऊ से क्या लेना-देना? तुम तो यहीं जोड़-तोड़ बिठाओ।

4.10.1964

कमेटियों पर कयामत*

साधो, कमेटियों पर कयामत आई हुई है। पुराने मंत्री तो कुछ नहीं करते पर नए मंत्री अपनी ताकत पहले कमेटियों पर ही आजमाते हैं। छागला साहब ने शिक्षा-मंत्री होते ही पचीसों कमेटियाँ खत्म कर दीं। इंदिराजी जब सूचना और प्रसारण मंत्राणी हुईं, तो उन्होंने भी 40

* श्री छागला ने शिक्षामंत्री और श्रीमती इंदिरा गांधी ने सूचना और प्रसारण मंत्री होते ही अपने-अपने विभाग की कई कमेटियाँ भंग कर दी थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमेटियाँ एक दिन में भंग कर दीं।

साधो, यह क्या गजब है। नए मंत्री को कमेटियों का उपयोग नहीं मालूम होगा। धीरे-धीरे ही वह जानता है कि कमेटी कितनी काम की चीज है। वह एक ढाल है जो मंत्री को बचाती है। साधो, जिस चीज के बारे में मंत्री निश्चित नहीं है और उसे करना नहीं चाहता उसे कमेटी को सौंप देता है। लोग माँग करें कि अमुक काम होना चाहिए। मंत्री कहेगा—जरूर होना चाहिए, मगर जाँच-पड़ताल करके ठीक ढंग से होना चाहिए। हम इसके लिए एक कमेटी बनाते हैं। कमेटी इस पर विचार करके सरकार को रिपोर्ट देगी। साधो, ऐसा करके मंत्री उस मामले से बरी हो जाता है। 2-3 महीने में जब कोई पूछेगा कि साहब, उस मामले का क्या हुआ, तो मंत्री जवाब देगा—वह कमेटी के विचाराधीन है। 6 महीने बाद भी वह विचाराधीन होगा और तीन साल बाद भी। मंत्री की पोजीशन बिलकुल साफ रहती है! वह कहता है—हम यह नहीं कहते कि हमें अमुक काम करना नहीं है। करना तो है पर अभी मामला कमेटी के विचाराधीन है। रिपोर्ट आने पर ही कुछ हो सकता है।

साधो, ये कमेटियाँ भी ऐसी अद्‌भुत होती हैं कि कमेटी के सदस्य एक के बाद एक स्वर्गवासी हो जाते हैं, मगर रिपोर्ट नहीं बनती। तब ये स्वर्ग में बैठक करके वहाँ रिपोर्ट तैयार करते हैं। स्वर्ग के रात और दिन तो पृथ्वी के रात-दिन से बहुत बड़े होते हैं। यहाँ हमारे साल बीत जाते हैं, मगर स्वर्ग में एक दिन होता है। कमेटी सोचती है कि अभी तो एक दिन ही हुआ है, पर इधर हमारे कई साल गुजर जाते हैं। हम उकताते हैं, और खोजते हैं कि अभी तक रिपोर्ट नहीं आई। हम नहीं जानते कि रिपोर्ट पृथ्वी पर नहीं बन रही है, स्वर्ग में बन रही है।

साधो, जो होशियार मंत्री होते हैं वे इस कमेटी से निकालकर मामले को उस कमेटी में भेज देते हैं। उससे निकलेगा तो तीसरी में भेज देंगे। जब भी ऐसा मौका आएगा कि काम करना ही पड़ेगा, तब उसे एक नई कमेटी को सौंप देंगे। अगर कमेटियाँ न हों तो सरकार के लेने के देने पड़ जाएँ। कमेटी वह दीवार है, जिसके पीछे सरकार छिप जाती है। इधर से पत्थर फेंके जा रहे हैं, मगर कमेटी की दीवार से टकराकर वे गिर रहे हैं।

साधो, एक बात और है। ये कमेटियाँ और भी सुभीते देती हैं। तुमने देखा होगा कि कमेटियों की बैठकें गर्मियों में अक्सर काश्मीर में होती हैं। कमेटियाँ अप्रैल तक दुबकी बैठी रहती हैं और ज्यों ही मई आया कि कूदकर श्रीनगर पहुँच जाती हैं। सारा साल इंतजार करती हैं कि कब गर्मी आए और काश्मीर में कमेटी की बैठक करें। साधो, इससे काश्मीर की सैर सरकारी खर्च से हो जाती है। कमेटी अपने साथ बीवी-बच्चे भी ले जा सकती है और ठंडाई में काम भी अच्छा हो जाता है। अब कमेटियाँ भंग हो गई हैं, तो हजारों आदमियों की काश्मीर-यात्रा भी बंद हो गई। इससे काश्मीर सरकार की आमदनी कम हो जाएगी। काश्मीर सरकार को केंद्र से अपील करनी चाहिए कि कमेटियाँ भंग होने से काश्मीर की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थव्यवस्था पर बुरा असर पड़ेगा।

साधो, और भी सुभीते थे। कमेटियों के कारण रिश्तेदारों में आना-जाना हो जाता था, शादी-विवाह निपट जाते थे। मान लो कमेटी के अध्यक्ष की ससुराल पटना में है, तो बैठक पटना में बुलाई जा सकती है। प्रयाग में साली की शादी है, तो एक बैठक प्रयाग में हो सकती है।

साधो, कमेटियों से मंत्री की रक्षा होती थी और सदस्यों के भी कई काम होते थे। नए मंत्री इन बातों को नहीं समझते। जब समझेंगे तब पछताएँगे और फिर कमेटियाँ बनाएँगे।

11.10.1964

सदाचार और जुआ*

साधो, तुम लोग बात का बतंगड़ बनाते हो। अखबार में जो छप गया है कि किसी थानेदार ने जिला सदाचार-मंडल के दफ्तर पर छापा मारा और मंडल के सदस्यों को जुआ खेलते पकड़ा—सो मैंने भी पढ़ा है। मगर तुम उस खबर को लेकर इतना हल्ला क्यों मचा रहे हो? सदाचारियों ने अगर जुआ खेला, तो इसमें गलत क्या हो गया? तुम इस तरह आँखें फाड़े हो, गोया कोई बड़ी आश्चर्य की बात हो गई हो। मैं पूछता हूँ, इसमें अनहोनी क्या हो गई?

साधो, मैं दूसरी बात सोच रहा हूँ। मैं जानना चाहता हूँ कि उस पुलिस थानेदार का क्या हुआ? वह अभी तक सस्पेंड हुआ या नहीं? वश चलता तो मैं उसे बरखास्त कर देता। सदाचार-मंडल भ्रष्टाचारियों को पकड़ने के लिए खुले हैं, सदाचार-मंडल के सदस्यों को नहीं। अगर पुलिस इस तरह बर्ताव करेगी तो सदाचार-मंडल काम कैसे करेगा? जो पुलिस उन्हें जुआ खेलते पकड़ सकती है, वह उनके आदेश कैसे मानेगी ? आगे अगर सदाचार-मंडल को किसी भ्रष्टाचारी को पकड़वाना होगा तो वह पुलिस से कहने की हिम्मत कैसे करेगा? वह झेंपेगा कि अभी तो मैं जुए में पकड़ा गया हूँ। अब मैं उसी पुलिस से कैसे कहूँ कि मुनाफाखोर को पकड़ लो। साधो, इससे गतिरोध पैदा होगा और सदाचार-समिति अपना काम नहीं कर पाएगी। सरकार को फौरन सारे प्रदेश में पुलिस को सख्त हिदायत देनी चाहिए कि सदाचार-समितियों के लोगों को कानून की छूट दी गई है। उन्हें छेड़कर उनका नैतिक बल कम न किया जाय। इससे वे भ्रष्टाचार समाप्त करने में हिचकेंगे।

साधो, भ्रष्टाचारियों पर भी इस घटना का बुरा असर होगा। उनके सामने प्रश्न उठेगा कि क्या सदाचार है और क्या दुराचार। वे सोचेंगे कि जब सदाचार-समिति वाले जुआ खेलते

* बाद में राज्य सदाचार-समिति के अध्यक्ष का वक्तव्य निकला कि जिस सदाचार-समिति में जुआ पकड़ा गया, वह झूठी थी। वह अधिकृत सदाचार-समिति नहीं थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं तब जुआ खेलना तो सदाचार में शामिल होगा। इसी तरह प्रश्न उठेंगे कि घूस लेना और कालाबाजारी करना और टैक्स-चोरी करना भी सदाचार है या भ्रष्टाचार? कौन निश्चित कह सकेगा कि ये सदाचार में शामिल नहीं है?

साधो, तुम लोग परंपरा को भी भूल रहे हो। जो बाहर भ्रष्टाचार है, वही पवित्र स्थान में सदाचार है। बाहर सोना चुराकर गलाना दुराचार है, मगर साधु की अँगीठी में गलाना सदाचार है। बाहर स्त्री-संसर्ग व्यभिचार है मगर मंदिर में सदाचार है। बाहर जिसे ग्रहण करना अनैतिक माना जाता है, उसे मंदिर में देवदासी बनाकर रख लेना, पूरी तरह नैतिक है। बाहर नशा करना बुराई, पर मंदिर में जब साधु चरस पीते हैं, तब वह पवित्र कर्म होता है। दुनिया के हर धर्म के धर्मस्थल में बुरा काम अच्छा बनाकर किया जाता है। जीव-हत्या तो वैसे पाप माना जाता है, मगर देवता के लिए मंदिर में बकरे का बलिदान पवित्र अनुष्ठान होता है। तो साधो, सदाचार-समिति का दफ्तर भी एक तरह का मंदिर है। जो काम बाहर बुरा है वह वहाँ शुभ हो जाता है। बाहर जुआ खेलना जुर्म है, पर सदाचार-समिति के दफ्तर में उसमें दोष नहीं है। वह कानून की पकड़ से बाहर है।

साधो, इसमें मुझे एक रहस्य और दिखता है, जो पुलिस की मोटी समझ में नहीं आया। शायद वे सदाचार-समितिवाले जुआ सिर्फ इसलिए खेल रहे हों कि देखें, इसमें ऐसी क्या बात है जो लोग इसे खेलते हैं। वे अनुभव लेकर, जुए को अच्छी तरह समझकर फिर जुआड़ियों को सुधारने के लिए निकलनेवाले होंगे। जब तक खुद न खेलें, तब तक वे कैसे जानें कि आखिर जुआ किस तरह की आकर्षक बुराई है। अगर यह सही है, तब तो वे सदाचार-आंदोलन का काम ही कर रहे थे और पुलिस ने उनके काम में बाधा दी। साधो, हम तो पुरानी धार्मिक परंपरा वाले आदमी हैं। हम जानते हैं कि जब विष से सारी सृष्टि व्याकुल होने लगी, तब शंकर ने उसे अपने कंठ में रख लिया। इसी तरह जब भ्रष्टाचार विष की तरह सर्वत्र फैल गया है और देश उससे त्रस्त है तब उसे किसी शंकर के कंठ में ही रखा जा सकता है। सारे भ्रष्टाचार को अगर सदाचार-समिति के अंदर ही रख दें तो समाज उस विष से बच जाएगा। मुझे लगता है, सदाचार-समिति के लोग यही कर रहे थे। वे जुआ खेलने के विष को सब जगह से समेटकर अपने कंठ में रख ही रहे थे कि इतने में पुलिस ने वह बदतमीजी की।

साधो, अगर पुलिस इस तरह सदाचार-समिति के काम में बाधक बनेगी तो इस समाज से भ्रष्टाचार कभी नहीं मिटेगा।

6.12.1964

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंत्रियों का फोटो-खर्च

साधो, अभी मुख्यमंत्री ने बताया कि मंत्रियों की फोटो पर और उनके ब्लाक पर लगभग डेढ़ लाख रुपए खर्च हुए। यह कोई ज्यादा खर्च नहीं है। नए-नए मंत्रियों पर इससे कहीं ज्यादा खर्च होना था, क्योंकि इनकी छवि बनाना एक बड़ा काम है। हर सरकार यह काम करती है। सूचना और प्रकाशन विभाग दो ही काम करता है—मंत्रियों की फोटो लेना और छपवाना तथा जो नहीं हुई उस प्रगति की रिपोर्टें प्रचारित करना। साधो, मेरी शिकायत खर्च पर नहीं है। फोटो पर इससे दुगुना खर्च भी होता तो वह जायज ही होता। मेरी शिकायत यह है कि इतना खर्च करके भी नतीजा उतना अच्छा नहीं निकल रहा है। मंत्रियों की फोटुओं में वह बात, वह अदा नहीं है जो इतने अभ्यास से आ जानी चाहिए थी। अधिकांश मंत्री फोटो में घबराए मालूम होते हैं। ऐसा लगता है, जैसे पानी माँग रहे हों। वह लुनाई इनके चेहरे पर नहीं है जो मंत्री के चेहरे पर होनी चाहिए। वह लुभावनी मुस्कान नहीं है। जगजीवन बाबू की फोटो देखो—हमेशा वही मुस्कान, जैसे चेहरे पर मुस्कान पेंच से कस दी गई हो। माना कि उनका तीस साल का अभ्यास है। पर अटलबिहारी वाजपेयी तो पहली बार मंत्री हुए हैं, मगर कोई भी फोटो देख लो तो वही चौड़ी मुस्कान जिसमें दाँत ही नहीं, जीभ तक दिखती है। अभी 'इलस्ट्रेटेड वीकली' के ताजा अंक के कवर पर उनकी फोटो देखी तो मैंने उनके मुख पर हथेली रख दी कि कहीं उनके मुख में मक्खी न घुस जाय।

तो साधो, हमारे प्रदेश के मंत्रियों को अदाएँ साधना चाहिए। कब कितना मुस्कुराना, कैसे भाव लाना, कैसे देखना। अब यह क्या है कि मुख्यमंत्री सकलेचा पुलिस परेड और कला-प्रदर्शनी में एक-जैसा चेहरा बनाए रहते हैं। ऐसा लगता है जैसे चित्रों से सलामी ले रहे हों। माना कि औसत मंत्री को कला से कुछ लेना-देना नहीं होता, पर कला के सामने थोड़ा कोमल भाव लाने में क्या बिगड़ता है। अब यह भी क्या है कि संगीत-सभा में बैठे हैं, सितार बज रहा है और मुख्यमंत्री के चेहरे पर क्रोध है कि रघु ठाकुर और विद्याभूषण ठाकुर को कैसे ठीक किया जाय।

एक चिनपुरिया हैं जो सहज मुस्काते और हँसते हैं। इन्हें मैं तीस सालों से हँसते-मुस्काते देख रहा हूँ। पवन दीवान अच्छा हँसते हैं, पर दाढ़ी-मूँछ के कारण हँसी उतनी खिल नहीं पाती। जो जनसंघ के मंत्री हैं उनकी संस्कार की कठिनाई है। उन्हें कई सालों की ट्रेनिंग है। इस ट्रेनिंग के स्थायी भाव हैं—घृणा, क्रोध और आक्रामकता। ये भाव जम गए हैं। इसीलिए इन मंत्रियों को छोटे-छोटे फूल-जैसे बच्चों के बीच भी देखो तो लगता है कि बच्चे को चाँटा मारनेवाले हैं। पर अभ्यास से क्या नहीं होता। 'करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।' हमारे इन मंत्रियों को जीवन में पहली बार मुस्कुराने, हँसने, भावुक होने का मौका आया है, इसलिए नहीं बनता, पर अभ्यास करें। धीरे-धीरे बन जाएगा और इनकी फोटो अच्छी आने लगेंगी। जब हुकुमचंद कछवाय तक ने मुस्कुराने का अभ्यास कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया है तो सकलेचा को क्या संकोच है। वे सोचते होंगे कि मुस्कुराएँगे तो फायरिंग कैसे कराएँगे। पर राजनीति में तो गले लगाकर गला काट लिया जाता है। अटलबिहारी वाजपेयी ने कैसे हँसते-हँसते बलराज मधोक को चीर दिया था। चरणसिंह ने अपनी कठोरता के बावजूद भाँगड़ा नाचकर फोटो खिंचा ली थी। मैं तो उस फोटो को देखकर दंग रह गया। बिलकुल तांडव नृत्य है।

साधो, फोटो में हमारा पैसा ये मंत्री बर्बाद न कराएँ। ये अदाएँ देने का अभ्यास कर लें। घर में बीवी, बच्चों के साथ ही अभ्यास कर लें। स्कूल में जाएँ तो छोटे-छोटे बच्चों को गोद में लेकर हँसने लगें और फोटो खिंचा लें। कभी झाबुआ चले जाएँ और आदिवासियों का लिबास पहनकर फोटो खिंचा लें। महिला मंडल के उत्सव में जाएँ तो नारी मात्र को माता मानकर बौड़म चेहरा बना लें। थोड़े रूमानी होकर फोटो खिंचाएँ। उन औरतों में आपकी सालियाँ भी तो हो सकती हैं। किसी के गले मिलें तो ऐसा चेहरा न बनाएँ कि उनकी जेब काटी जा रही है। साधो, मैं जानता हूँ, काफी दोष इन समाजवादियों का है। ये अपने करतबों से जनसंघी मंत्रियों के चेहरों पर तनाव बनाए रखते हैं। मगर खुद समाजवादी मंत्री तो मुस्कुराते-हँसते रहे। लोहिया तो अट्टहास करके हमला करते थे। ये लोग भी नाटक का मजा लें। साधो, मुझे प्रदेश के भविष्य के बारे में तब तक आशा नहीं बँधेगी, जब तक इन मंत्रियों के खिले चेहरों की फोटो न देख लूँ। इन्हें हमारी खातिर थोड़ा खिल जाना चाहिए।

अकाली-निरंकारी सत्संग

साधो, कानपुर में 14 अकाली और निरंकारी आपस में कट मरे। इसके पहले अमृतसर में 17 मरे थे। धर्म की जय हुई। पंथ की लाज रह गई—भाई रे, ऐसा पंथ हमारा। गुरुओं की वाणी का सही पालन हुआ। निरंकारी लोग अपने भवन में सत्संग के लिए एकत्र हुए थे। उनके प्रधान बाबा गुरुबचनसिंह भी दिल्ली से प्रवचन के लिए आए थे। कानपुर के अकालियों ने सोचा कि हमारे बिना इनका सत्संग अधूरा रहेगा तो वे बंदूक और तलवार लेकर सत्संग करने पहुँच गए। दोनों तरफ से जमकर सत्संग हुआ। पुलिस आई तो उसने भी गोली चलाकर सत्संग किया। इस तीन तरफ के सत्संग में 17 आदमी गुरु के प्यारे हो गए। 55 घायल अस्पताल में हैं। वाह! गुरु की फतह हो गई। भाई रे, राम कहो चित लाए !

साधो, तुम पूछोगे कि गुरु यह किस बात का झगड़ा है? अकाली और निरंकारी दोनों सिख हैं, फिर यह खूनी-सत्संग क्यों होता है? साधो, शिया और सुन्नी भी तो दोनों मुसलमान हैं। फिर ये एक-दूसरे को छुरा क्यों घुसेड़ते हैं? धर्म का रहस्य है कि पैगम्बरों और धर्मगुरुओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की बड़ी फजीहत उनके अनुयायी करते हैं। दोनों तरफ से जो बताया जाता है वही हम जानते हैं। पर शायद दोनों झूठ बोलते हैं। धर्म पालन में झूठ का बहुत महत्त्व है। खैर, मामला यह है। बहुत साल पहले सिख धर्म में से एक निरंकारी पंथ बना था। कहा गया था कि यह पंथ मानवतावाद और शांति के प्रचार के लिए है। इसके दो बाबा पहले हो चुके हैं। पंथ के वर्तमान प्रधान बाबा गुरुबचनसिंह हैं। ये लोग पीली पगड़ी पहनते हैं। ये हथियार भी रखते हैं। इनका एक सशस्त्र अर्द्ध-फौजी संगठन भी है। अकालियों की तरह निरंकारी भी दुनिया-भर में फैले हैं। शादी-ब्याह आपस में होते हैं।

अब साधो, अकाली पक्ष सुनो। अकालियों में तो 'ज्ञानी' और 'संत' ही संत हैं। तो अकाली संत कहते हैं कि निरंकारी लोग ग्रंथ साहब का अनादर करते हैं। बाबा गुरुबचनसिंह अपने को सच्चा 'गुरु' मानता है और अपनी ही वाणी चलाता है। वे यह भी कहते हैं कि निरंकारी भ्रष्ट हैं और ये स्त्री तथा मदिरा से कोई परहेज नहीं करते। अब साधो, स्त्री और मदिरा का तो ऐसा है कि वेदांती, पादरी, मुल्ला ज्ञानी—कोई नहीं बचता। अकाली भी सशस्त्र रहते हैं। अब तो उनकी सरकार भी है।

साधो, निरंकारी कहते हैं कि हम न गुरु का अपमान करते हैं न ग्रंथ साहब का। हम तो हैं मानवतावादी। अकाल तख्त के हुक्म से हम लोगों का बायकाट कर दिया गया है। याने हुक्का-पानी और रोटी-बेटी बंद। साधो, निरंकारी बाबा गुरुबचनसिंह का आरोप है कि अकाली लोग अलग से सिक्खिस्तान चाहते हैं।

साधो, यह सिक्खिस्तान अगर बन गया तो क्या होगा? पंजाब और शेरे-पंजाब होटलें सारे भारत में हैं। ये उठ जाएँगी। शेरे-पंजाब होटलों के बंद होने से जिंदगी कितनी नीरस हो जाएगी, इस चिंता में लोग हैं। भारत-भर में सिख ट्रांसपोर्ट कंपनियाँ चलाते हैं, ठेके लेते हैं, दूसरी नौकरियाँ और धंधे करते हैं। सिक्खिस्तान बनने पर इन बेचारों का क्या होगा? लोग इनसे कहेंगे—सरदारजी! अब अपने देश जाइए न?

साधो, मामला न धर्म का है, न पंथ का। मामला न ईश्वर का है, न गुरुओं का, न गुरुवाणी का। मामला महंती, मठाधीशी, तखत और गुरुद्वारे का है। मामला प्रापर्टी का भी है। दूसरी बात, झगड़ा राजनीति का भी है। पंजाब में अकाली दल की जनता पार्टी से खटक गई और इधर जनता पार्टी निरंकारियों को पुचकार रही है।

साधो, हम तो दोनों से कहते हैं कि एक-दूसरे के सिर खूब प्रेम से काटो। गुरुओं के नाम पर मत काटो! बिना गुरुओं को उलझाए भी तो परस्पर गला काट सकते हो। साधो, उत्तर प्रदेश के पुलिस और खुफिया विभाग को भी हमें बधाई देनी चाहिए। यह तो हम साधुओं को भी समझ में आता है कि जहाँ निरंकारी इकट्ठे हों और बाबा गुरुबचनसिंह आएँ, वहाँ कुछ होगा ही। मगर रामनरेश यादव की पुलिस और खुफिया तो किंडरगार्टन में पढ़ती है और टाफी खाती है। तभी तो पुलिस सिर कटने के बाद पहुँची।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब और लोकतंत्र नहीं

साधो, हम साधुओं की बात कोई नहीं मानता। हमने सकलेचाजी, ठाकरेजी, रामानंदसिंहजी से कहा था कि स्थानीय संस्थाओं के चुनाव मत कराओ। साधु-संत भविष्य देखते हैं। पर ये कहने लगे–हम तो लोकतंत्र की स्थापना करनेवाले हैं। इतने सालों से इन संस्थाओं के चुनाव नहीं हुए। अब लोकतंत्र के लिए चुनाव होना चाहिए। साधो, हमने सकलेचाजी और ठाकरेजी से कहा–अपनी हिंदू संस्कृति में तो लोकतंत्र होता ही नहीं है। राजशाही होती है या तानाशाही। लोकतंत्र तो विदेशी पद्धति है, परकीय है। पर रामानंदसिंह ने कहा कि हमारे समाजवाद में लोकतंत्र होता है।

साधो, ऐसे लोकतंत्र से क्या फायदा जिसमें अपनी पार्टी न जीते। सच्चा लोकतंत्र वह है जिसमें अपनी पार्टी जीते। जिसमें विरोधी जीत जाएँ, वह भी कोई लोकतंत्र है ? अब देखो, जनपदों के चुनाव-नतीजे आ गए। कई जिलों में अपनी जनता पार्टी के आगे शून्य लिखा है। कई जिलों में खटिया पूरी तरह खड़ी हो गई है। मुझे तो रोना आता है। लोकतंत्र की यह दुर्गति हो गई। शासन अपना। अफसर अपने। बनिये अपने। मालगुजार अपने। बड़े किसान अपने। चोर अपने। जुआड़ी अपने। गुंडे अपने। सब अपने। मगर जनता अपनी नहीं। आखिर यह भी कोई लोकतंत्र है ! राजधानी भोपाल में ही अपनी पार्टी की दुर्गति हो गई। हमने तो समझा था कि शिशु मंदिर बढ़े हैं। संघ की शाखाएँ बढ़ी हैं। अलीगढ़ में हमने अभी राष्ट्रप्रेम और वीरता का परिचय दिया है। अब तो पूरी जनता अपनी हो गई होगी।

मगर साधो, सब उलटा हो गया। जनता ने वोट नहीं दिए। अब लोग कहते हैं कि जनता पार्टी किस जनता की पार्टी है? क्या यह इसी देश की जनता पार्टी है या किसी दूसरे देश की जनता की पार्टी? अगर इसी देश की जनता पार्टी है तो क्या उस जनता की पार्टी है जो वोट नहीं देती। वोट नहीं देनेवाली जनता के नाम से जनता पार्टी कैसे चल सकती है? साधो, एक साल में ही जनता ने धोखा दे दिया। 1977 में क्या थे लोग और अब क्या हो गए हैं? हमने इनके लिए कितना किया। दूसरी आजादी दिलाई कि अब खुशी से लूटपाट करो, चेन उतारो, जेब काटो, औरतें भगाओ। हमने नसबंदी खत्म की कि जितने चाहो उतने भारत माता के सपूत पैदा करो। दूकानदारों से कहा कि कमाओ। कारखानेदारों से कहा कि मजदूर वेतन माँगेंगे तो हम गोली चलवा देंगे। फिर भी इस जनता ने वोट नहीं दिए। इसी जनता को डेढ़ साल पहले हमने महान कहा था, बुद्धिमान कहा था, विवेकशील कहा था। अब इसे क्या कहें? जनता को गाली देते भी नहीं बनता। ऐसी जनता को तो देश-निकाला दे देना चाहिए।

साधो, कुछ लोग कहते हैं कि जनता को नंगापन पसंद नहीं है। आदमी कुछ न करे, किसी का भला न करे, चाहे तो अत्याचार कर ले; पर कपड़े न उतारे। नंगेपन से जनता को चिढ़ है। मगर साधो, इन्हें कौन समझावे कि कपड़े तो हमने कुछ महीने ही पहने थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपड़े पहनने की हमें आदत नहीं है। कपड़े पहनने में हमें अड़चन होती है। जब लोग हमें इतने सालों से नंगा ही देख रहे हैं तो अब नंगेपन से क्यों चिढ़ते हैं? चिकमगलूर में हमारे वीर जॉर्ज फर्नांडिस ने नंगापन दिखाया तो राजनारायण मन मसोसते रहे कि हाय, मैं नंगापन नहीं दिखा पाया। बच्चों के नंगेपन से माता जनता को नाराज नहीं होना चाहिए।

साधो, मेरी सलाह है कि आगे चुनाव न कराएँ। जबलपुर नगर निगम के चुनावों की घोषणा हो चुकी है। यहाँ तो और झंझट है। यहाँ दुविधा यह है कि जनता पार्टी को जिताएँ या अपने उन बंधुओं को, जो टिकिट न मिलने के कारण 'जनाधिकार परिषद' बनाए बैठे हैं। उनमें कई अपने ज्यादा प्यारे हैं। वे बचपन से शाखा में जा रहे हैं। साधो, कोई बहाना बनाकर निगम के चुनाव टाल दे। उस वक्त मकर संक्रांति पड़ती है। साल में एक बार यह पर्व पड़ता है। लोग नर्मदा में स्नान करेंगे कि अंगुली पर धब्बा लगवाएँगे। जहाँ धब्बा लगता है वहाँ कोढ़ हो जाती है। मकर संक्रांति तक चुनाव टाल दें। मौसम बहुत खराब है।

कैसे बुरे दिन आ गए

साधो, तुमने पुरानी धार्मिक कथाएँ सुनी होंगी, जैसे सत्यनारायण की कथा। सत्यनारायण की कथा के पाँच अध्याय हैं और हर एक में यह कथा है कि संकट में पड़े गृहस्थ ने सत्यनारायण की कथा कराई तो उसके संकट दूर हो गए और वह परम सुखी हो गया। जैसे एक अध्याय में एक व्यापारी, उसकी पत्नी लीलावती और पुत्री कलावती की कथा है। तुम कथावाचक, ब्राह्मण देवता से पूछो—पंडितजी, वह कैसी कथा है जिसे सुनने से व्यापारी को सुख हुआ? वह यह कथा नहीं, कोई दूसरी होगी। साधो, पंडितजी को नहीं मालूम कि वह कौन-सी कथा थी, क्योंकि वह है ही नहीं। वह तो यही कथा कहता है, जिसमें यह है कि कथा कराने से कितना फायदा होता है। यह है धंधा ब्राह्मण देवता का। विद्वान और मूर्ख दोनों इस कथा को सुनते हैं और दान देते हैं। कोई नहीं कहता कि वह कथा तो सुनाओ।

मगर साधो, मैं तुम्हें कथा नहीं सुनानेवाला हूँ। मैं तो कह रहा था कि इन कथाओं के अंत में श्रद्धालु हाथ जोड़कर कहता है—भगवान जैसे उनके दिन फिरे, वैसे सबके फिरें। अब अगर तुम जनसंघ की कथा सुनाओ तो श्रद्धालुओं की आँखों में आँसू आ जाएँगे और वे हाथ जोड़कर कहेंगे—भगवान, जैसे बुरे दिन इनके आए, वैसे दुश्मन के भी न आएँ।

साधो, तुम कथा सुन ही लो। 1977 के आरंभ में 'संपूर्ण क्रांति' नाम से जो राजनैतिक ठगी देश में हुई थी, उसमें 4-5 गिरोह शामिल थे। इन्होंने ठगी की, माल पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथ साफ किया और नकली दाढ़ी, जटा लगाकर सबने साधुओं का रूप धारण कर लिया। वे सब जनता-मंदिर में रहने लगे। दिन में लोगों को धार्मिक उपदेश देते। भजन करते। रात को दाढ़ी-जटा उतारकर चोरी करने निकल जाते। यहाँ तक तो ठीक था। पर ये बनावटी साधु एक-दूसरे की चोरी भी करने लगे। सवेरे उठकर कोई कहता—रात को किसी ने मेरे सौ रुपए निकाल लिये। कोई कहता—मेरी मिठाई किसी ने चुरा ली। ये वारदातें बढ़ीं तो एक-दूसरे पर जासूसी होने लगी। बाकी 4 गिरोहों को पता चला कि जनसंघ नाम के बनावटी साधु बाकी सबकी चोरी करते हैं। अब आपस में झगड़ा होने लगा। बाकी गिरोहों ने कहा—देखो जनसंघी ठगो, भाइयो, जनता को सब मिलकर ठगो, यह तो ठीक है। पर तुम तो आपस में ही चोरी करते हो। अपने को सुधारो, वरना यह जनता-मंदिर छोड़ दो। जनसंघी साधुओं ने कहा—मंदिर हमारा है। हम इसमें अंत तक रहेंगे। जिन्हें छोड़ना हो, छोड़ दें। साधो, दूसरे गिरोहों ने मंदिर को छोड़ना शुरू कर दिया। चरणसिंह का गिरोह निकला, समाजवादी गिरोह निकला, बाकी जो बचे उन्होंने कहा—देखो, जनसंघी ठग साधुओ, तुम अब तो यह चोरी छोड़ो या दाढ़ी-जटा त्यागकर अपने सच्चे रूप में आ जाओ। चोरी और ढोंग करके तुम मंदिर में नहीं रह सकते।

साधो, यह हालत जनसंघी की है। उसने अपना वास्तविक रूप छिपाकर जनता-मंदिर में रहकर, साधु वेश धारण करके यह योजना बनाई थी कि बाकी गिरोहों पर हम कब्जा कर लेंगे। मंदिर पर हमारा हक होगा। तब हम एकछत्र सत्ता लेकर मनमानी ठगी करेंगे। मगर साधो, बाकी गिरोहवाले भी चालाक निकले। आज उन्होंने यह हालत कर दी है कि लालकृष्ण आडवाणी कहते हैं—हम दूसरे दर्जे के नागरिक की तरह जनता पार्टी में नहीं रहेंगे। पर स्थिति यह है कि या तो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की गतिविधियों में भाग लेना छोड़ो या पार्टी छोड़ो।

साधो, जनसंघ न जनता पार्टी छोड़ना चाहता है, न आर.एस.एस.। जनसंघ अपने विगत रिकार्ड को समाप्त करके, जनता पार्टी नाम से व्यापक पैमाने पर काम करना चाहता था। जैसा बालासाहब देवरस ने 1979 में कहा था, संघ 10 सालों में देश की सरकार पर पूरा कब्जा करना चाहता था। बाकी घटक चूहे हैं। इन्हें हम एक-एक झपटे में साफ कर देंगे। ऐसा संघ का सोचना था। पर जब-जब झपटा मारना शुरू किया तो देखा कि जिन्हें चूहा समझे थे वे तो बिल्ली और बिलाव बनकर खड़े हो गए। यही एक दुर्घटना हो गई। यों नानाजी देशमुख की कूटनीति जबरदस्त थी। उन्होंने पहले दौर में तो सदस्यता-बही अपने स्वयंसेवकों के सिवा किसी को दी ही नहीं। अपने ही लोग सदस्य हो जाएँ, तो चुनाव कराके पार्टी पर कब्जा कर लो। पर दूसरे घटक जाग उठे। यह हो नहीं सका। नानाजी 5 नेताओं में से हर एक को प्रधानमंत्री बनाने का वादा करते रहे। फिर आपस में लड़वाते रहे। फिर 1979 में तो सरकार पर कब्जा करने की योजना थी, पर जनता सरकार ही गिर गई। हर कूटनीति फेल हो गई। जनसंघी अछूत हो गए। कोई उनको छूना नहीं चाहता। साथ खाना नहीं चाहता। पल्ला बचाना है। छू गया तो नहाना पड़ेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधो, एक गाँव के अछूतों ने ब्राह्मणों के पास झोंपड़ियाँ बना लीं। उन्होंने सोचा—अब तो हम ब्राह्मण माने जाएँगे। कोई पूछता तो अछूत कहता—हम तो ब्राह्मणपुरा में रहते हैं। अछूतों ने अपनी गंदी हरकतें नहीं छोड़ीं। ब्राह्मण परेशान होकर वह जगह छोड़कर यहाँ-वहाँ बस गए। अछूतों ने कहा—जाने दो। हम अब बेखटके रहेंगे। यह मुहल्ला तो ब्राह्मणपुरा ही कहलाएगा। हम ब्राह्मण माने जाएँगे। मगर लोगों ने उसे भंगी बस्ती कहना शुरू कर दिया। साधो, यही वह करुण कथा है। हो सकता है, ये दुखी लोग जनता पार्टी छोड़कर फिर जनसंघी हो जाएँ या कोई दूसरा नाम रखें।

महात्मा गांधी भी निपट गए

साधो, चरणसिंह ने महात्मा गांधी को भी ढेर कर दिया। उनकी भी दो गलतियाँ बता दीं। एक तो यह कि महात्मा गांधी ने खिलाफत आंदोलन का समर्थन किया जिसके कारण देश का विभाजन हुआ। दूसरी गलती यह कि उन्होंने सरदार पटेल पर पंडित नेहरू को तरजीह दी। लो, महात्मा गांधी भी निपट गए। अब कौन बचा ? अब बचे भगवान। चरणसिंह भगवान की भी खबर लेनेवाले हैं। वे बताएँगे कि भगवान ने यह गलती की कि इंदिरा गांधी, मोरारजी और जगजीवनराम का पैदा होना नहीं रोका।

साधो, जनता पार्टी के उम्मीदवारों में से एक राजमोहन गांधी जबलपुर से ना-उम्मीदवार हैं। ना-उम्मीदवार को जैसा करना चाहिए वैसा ही वे कर रहे हैं। एक तो वे उन लोगों के साथ घूम रहे हैं और उन्हीं को चुनाव-प्रचार सौंप दिया है, जिन्होंने उनके महान पितामह महात्मा गांधी की हत्या की खुशी में मिठाई बाँटी थी। गांधीजी की आत्मा प्रसन्न होगी कि उनका पोता उन्हीं के हाथों में खेल रहा है। इतना ही नहीं। पोता आगे भी योग्य है। वह जनता पार्टी को ही गांधीवादी मानता है। कटनी में राजमोहन गांधी ने कहा कि पूर्व जनसंघ के लोगों में गांधीवाद है। उनमें त्याग और संयम है। अब साधो, त्याग और संयम के सबसे ऊँचे नमूने तो वीरेंद्रकुमार सकलेचा ही हैं। वे जहाँ जाते हैं, लोग नारे लगाते हैं—भ्रष्टाचारी वापस जाओ। तस्कर वापस जाओ। अभी मोरारजी भाई ने दो दिन सकलेचा के साथ मध्यप्रदेश का दौरा किया। दौरे की समाप्ति पर मोरारजी ने कहा—मैं देश में जहाँ भी गया, मुझे प्यार और सम्मान मिला। पर मध्यप्रदेश में मुझे अपमान मिला और मेरी सभाओं में उपद्रव हुए। पता नहीं इसका क्या कारण है। कारण मोरारजी को चाहे पता न हो, हमें पता है। कारण तो उनके साथ ही चल रहा था।

साधो, जनता पार्टी के ना-उम्मीदवार राजमोहन गांधी लोगों से कहते हैं कि मैं तो जबलपुर का हो गया। मैं बीवी-बच्चों को लेकर आ गया हूँ। लोग इस बात पर हँसते हैं। 1971 के चुनाव में इसी तरह उस समय राष्ट्रपति वी.वी. गिरि ने अपने बेटे शंकर गिरि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को दमोह से टिकिट दिलवा दिया था। शंकर गिरि सभाओं में कुल इतना बोलते थे—हमको हिंदी आता नई। हम तो आपका हो गया। हम आगे इधर कूँई रहेगा। तुम लोक हमकू वोट देगा। नमस्कार। जीतने के बाद शंकर गिरि के दर्शन दमोह में किसी ने नहीं किए। साधो, बेचारे राजमोहन से किसी को यह आशा नहीं करनी चाहिए कि वे जबलपुर में रहेंगे। पंचगनी में उनका एम.आर.ए. का केंद्र है। बंबई से पत्र निकालते हैं। वे बंबई में कई तरह के काम करते हैं, जिनमें कुछ खुले हैं, कुछ गुप्त। बीवी को वे ले आए हैं, यह तो ठीक ही है। इस ठंड के मौसम में समझदार आदमी रजाई और बीवी साथ रखता है।

साधो, मुझसे कई लोग वही-वही सवाल पूछते हैं कि क्या एम.आर.ए. का संबंध सी.आई.ए. से है। मैं पिछले हफ्ते बता चुका हूँ कि एम.आर.ए. नाम का संगठन अंतर्राष्ट्रीय है। यह पूँजीवाद समर्थक है। समाजवाद विरोधी है। यह शोषण की व्यवस्था का समर्थक है। यह साम्राज्यवाद समर्थक है। अफ्रीकी देशों की आजादी का यह संगठन विरोधी रहा है। राजमोहन का यह कहना गलत है कि दूसरे महायुद्ध में एम. ने हिटलर के नाजीवाद का विरोध किया था। वास्तविकता दूसरी है। जर्मन पूँजीवाद फासिस्ट हो गया था और साम्राज्यवाद यूरोप के दूसरे पूँजीवादी देश इंगलैंड, फ्रांस आदि लोकतांत्रिक थे। पर ये भी साम्राज्यवादी थे। हिटलर ने पहले इन पूँजीवादी, साम्राज्यवादी, लोकतांत्रिक देशों पर हमला किया। लाजिमी था कि एम.आर.ए. जिसका प्रधान केंद्र लंदन में था, लपेट में आता। पर एम.आर.ए. ने तब क्या किया था जब हिटलर ने रूस पर हमला किया था? तब क्या एम.आर.ए. ने रूस का समर्थन किया था? यह बात राजमोहन से पूछो। अगर वे हाँ कहें तो इसे झूठ मानो। अपने साम्यवाद और रूस विरोध के कारण तब एम.आर.ए. ने हिटलर का समर्थन किया था। यह इतिहास का तथ्य है। इसे अगर राजमोहन नकारते हैं तो वे झूठी पार्टी के हिसाब से ठीक ही कर रहे हैं।

साधो, राजमोहन ने और मोरारजी ने यह भी नहीं कहा है कि वे एम.आर.ए. में नहीं हैं। यानी वे हैं। वे यह कहते हैं कि एम.आर.ए. तो नैतिक उत्थान की संस्था है। ठीक है। यह किस तरह का नैतिक उत्थान करती है। तुम्हारा गुरु भी साहित्य और पत्रकारिता में 30 सालों से है। हम लेखकों में भी एम.आर.ए. के लोग हैं। वे सबके सब अमेरिका समर्थक हैं और हम इनसे लड़ते हैं। हम एम.आर.ए. के बारे में काफी कुछ जानते हैं। इसका सम्बन्ध सी.आई.ए. से है, बल्कि सी.आई.ए. ही इसे चलाती है। और पक्का प्रमाण चाहिए तो देता हूँ। 17 अप्रैल, 1974 को लोकसभा में भारत के तत्कालीन गृहमंत्री उमाशंकर दीक्षित ने इंद्रजीत गुप्त के प्रश्न के उत्तर में कहा था, कि एम.आर.ए. का संबंध सी.आई.ए. से है। यह बयान किसी और का नहीं, भारत के गृहमंत्री का है।

तो साधो, अगर राजमोहन एम.आर.ए. के हैं—जो कि वे नकारते नहीं हैं—तो वे सी.आई.ए. से भी संबद्ध हैं और हर देशवासी जानता है कि सी.आई.ए. कितना खतरनाक संगठन है। दुनिया भर में यह षड्यंत्र करता है। सरकारें गिराता है। देशों को तोड़ता है। हत्या वगैरह करवाता है। दंगे कराता है। सारी खुराफात करता है। यह संगठन देश के भीतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और बाहर भारत-विरोधी षड्यंत्र करता है। सी.आई.ए. खुद स्वीकार करता है कि उसने ही शेख मुजीब की हत्या कराई थी। भारत-विरोधी सी.आई.ए. से संबद्ध होना कौन-सी देशभक्ति है, इसकी व्याख्या महात्मा गांधी के पोते से ही कराओ।

भाजपा भ्रष्टाचार का विरोध कैसे करेगी ?

साधो, भारतीय जनता पार्टी भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन करनेवाली है। सबसे निरर्थक आंदोलन भ्रष्टाचार के विरोध का आंदोलन होता है। भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन से कोई नहीं डरता। एक प्रकार का यह मनोरंजन है जो राजनैतिक पार्टी कभी-कभी खेल लेती है, जैसे कबड्डी का मैच। इससे न सरकार घबड़ाती, न भ्रष्टाचारी घबड़ाते, न मुनाफाखोर, न कालाबाजारी। सब इसे शंकर की बारात समझकर मजा लेते हैं।

मगर साधो, कठिनाई यह है कि कोई पार्टी करे तो क्या करे? जैसे चंद्रजीत यादव करें तो क्या करें? इस प्रश्न से घबराकर चंद्रजीत यादव ने बेकारी दूर करने के लिए 2 दिन का उपवास कर डाला। चंद्रजीत यादव के दो दिन रोटी नहीं खाने से बेकारी कैसे मिटेगी, यह साधुओं की समझ में नहीं आता। बेकारी व्यवस्था, शिक्षा और अर्थनीति के कारण है। लोग इसलिए बेकार थोड़े ही हैं कि चंद्रजीत यादव दाल-रोटी खा रहे हैं।

साधो, भारतीय जनता पार्टी के सामने भी यही भयंकर सवाल है—करें तो करें क्या ? पहले यह पार्टी जनसंघ थी और गोरक्षा-जैसे उत्तेजक आंदोलन करती थी। मगर वह गाय अब दूध नहीं देती, सिर्फ गोबर देती है। इसलिए वह विनोबा के आश्रम में पड़ी-पड़ी जुगाली करती है। भारतीय जनता पार्टी आंदोलन न करे तो पार्टी की इमेज कैसे रहे? विदेशनीति पर आंदोलन कर नहीं सकती। धर्मपरिवर्तन पर आंदोलन के लिए जोरदार वातावरण ही नहीं बना। मजदूर आंदोलन कर नहीं सकती, क्योंकि यह कम्युनिस्टों की हरकत है। मजबूर होकर उसे भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन करना पड़ रहा है।

साधो, वैसे भ्रष्टाचार का विरोध करने के लिए सबसे काबिल पार्टी भारतीय जनता पार्टी ही है। इसमें कोई भ्रष्टाचारी नहीं है। इस पार्टी में व्यापारी बहुत हैं, मगर वे सब भ्रष्टाचारहीन लोग हैं। ठेकेदार हैं, वे भी भ्रष्टाचारी नहीं हैं। सरकारी नौकर हैं, वे भी भ्रष्टाचार नहीं करते। जब भारतीय जनता पार्टी का जुलूस निकलता है या सभा होती है, तो उसमें छँटे हुए सदाचारी और ईमानदार लोग होते हैं। तुम साधु कभी-कभी दुष्टों की तरह बात करते हो। कहते हो कि एक कालाबाजारी भी क्या भारतीय जनता पार्टी का सदस्य होने से ईमानदार हो जाता है? मैं कहता हूँ कि हो जाता है। यह एक आध्यात्मिक चमत्कार है। अब तुम कहोगे कि गुरु, जब यह पार्टी जनसंघ नाम से जनता सरकार में थी, तब क्या ये लोग भ्रष्टाचार नहीं करते थे। कितने कांडों की चर्चा तब चलती थी। साधो, वह सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रष्टाचार नहीं था। एक नाटक था, लोक-शिक्षा के लिए। जनता को शिक्षित किया जा रहा था कि राजनैतिक पद पर रहकर भ्रष्टाचार कैसे होता है।

साधो, भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन कैसे होगा? वैसे ही होगा जैसे आंदोलन होते हैं। जुलूस निकालेंगे, जो नारा लगाएँगे—भ्रष्टाचार कौन बंद करे। जो हमारे जुलूस में है या बाहर ? जो हमारे लोग हैं, वे भ्रष्टाचार बंद नहीं करें। दूसरे लोग भ्रष्टाचार बंद कर दें। बाजार से जुलूस निकलेगा। नारे लगेंगे—कालाबाजारी बंद करो। याने जो हमारे जुलूस में हैं, वे तो कालाबाजारी करेंगे। जो हमारे लोग दूकानों पर बैठे हैं, वे भी करेंगे। बाकी सब कालाबाजारी बंद करो। सरकारी दफ्तरों के सामने नारा लगाते हुए धरना देंगे कि भ्रष्टाचार बंद करो और भीतर मजे में लेन-देन चल रहा होगा।

साधो, इस देश में हर आदमी दूसरे को सदाचारी बनाना चाहता है कि मैं तो भ्रष्टाचार करूँ पर दूसरा न करे, इसलिए नारे लगाऊँ। कांग्रेस की सरकार है तो भारतीय जनता पार्टी भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन करती है। जब जनता पार्टी सरकार थी तब कांग्रेस भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन करती थी। सदाचार, ईमानदारी, सद्‌गुण बड़े मूल्यवान हैं। पार्टियाँ इतनी स्वार्थी नहीं हैं कि ऐसे सद्‌गुण अपने पास रखें। वे दूसरों को बाँट देती हैं। खुद दुर्गुणों से काम चला लेती हैं। तुम साधुओं में जो तस्करी करते हो, बच्चे चुराते हो, चोरी से अफीम बेचते हो, औरतें भगाते हो वे सब भारतीय जनता पार्टी के भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन में शरीक हो जाओ।

तूफान के बाद

साधो, चुनाव के बाद हमारे महान नेताओं की जो प्रतिक्रियाएँ हो रही हैं, वे हँसाती भी हैं और रुलाती भी हैं। अपने राजनारायण की अखिल भारतीय पार्टी को 9 राज्यों में 4 सीटें मिली हैं। कुल 4 सीटें अखिल भारतीय पार्टी को! राजनारायण अद्‌भुत प्रतिभावान व्यक्ति हैं। उनके अंदर कवि, जादूगर, जोकर, जासूस और वैज्ञानिक एक साथ हैं। वे जब स्वास्थ्यमंत्री थे तब उन्होंने कहा था कि ऑपरेशन के लिए बेहोशी की दवा देने की जरूरत नहीं है। मरीज के सामने डॉक्टर हनुमान चालीसा का पाठ करके ऑपरेशन कर सकते हैं। इस बयान पर दुनिया-भर के वैज्ञानिक चौकन्ने हो गए थे और भारत से हनुमान चालीसा की हजारों प्रतियाँ बुलाकर शोध कर रहे थे। अभी तक कोई ऑपरेशन हनुमान चालीसा से नहीं हुआ। राजनारायण की खोज सिद्ध करने के लिए उनका ही 'हनुमान चालीसा ऑपरेशन' करना चाहिए।

साधो, इस राजनारायण ने 1972 में चुनाव के बाद कहा था कि इंदिरा गांधी ने रूस से खास स्याही बुलाई थी। यह स्याही उड़ जाती है। इसके बाद मतपत्रों पर अपने उम्मीदवार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आगे निशान लगवाकर चुनाव जीत लिया। इस बार राजनारायण ने दूसरी बात कही। रूस से दोहरे मतपत्र छपकर आए थे। पेटियों में मतपत्र बदल गए और चुनाव जीत लिया। साधो, अगला चुनाव 1985 में जब ये लोग फिर हारेंगे, तब राजनारायण कहेंगे कि इस बार रूस से खास तौर से शिक्षित बंदर वोट डालने के लिए बुलाए गए थे। मतदान केंद्रों पर जो मतदाता दिख रहे थे वे भारतीय नागरिक नहीं, सिखाए हुए रूसी बंदर थे।

साधो, तुम कहोगे–गुरु, राजनारायण की बात और कुत्ते की लात एक-जैसी होती है। तो चरणसिंह की बातों पर गौर करो। चौधरी चरणसिंह मामूली आदमी नहीं हैं। गम्भीर आदमी हैं। वैसे इन गम्भीर आदमियों में भी आपस में होड़ चलती रहती है कि कौन सबसे बड़ा जोकर हो जाय। चौधरी चरणसिंह इस महान देश के महान प्रधानमंत्री रहे हैं। जैसे राहतकार्य के मस्टर रोलवाले रोजाना मजदूरी के मजदूर होते हैं वैसे ही चरणसिंह प्रधानमंत्री रहे हैं। वे एक दिन भी संसद नहीं गए। जब उनसे कहा गया कि लोकसभा में जाकर बहुमत सिद्ध करो, तो वे वहाँ न जाकर राष्ट्रपति के पास चले गए और इस्तीफा दे दिया। ये चरणसिंह, भूतपूर्व प्रधानमंत्री विधानसभाओं के चुनाव में अपनी पार्टी की बुरी हार के बाद कहते हैं--आज भारतीय लोकतंत्र के इतिहास का सबसे काला दिन है! साधो, भारतीय इतिहास यानी चरणसिंह का इतिहास। जाट नेता को जाटों ने भी वोट नहीं दिए। उनके मेरठ जिले में ही उनके उम्मीदवार हार गए। 15वीं शताब्दी के जड़ सामंतवादी, जातिवादी नेता हार गए तो वह लोकतंत्र का सबसे काला दिन हो गया! चौधरी को यह ध्यान भी नहीं रहा कि मैं ऐसा कहकर भारतीय जनता का अपमान कर रहा हूँ जिसने वोट देकर अपनी मर्जी के उम्मीदवार चुने हैं। चौधरी ने यह भी कहा है कि अब संसदीय लोकतंत्र अर्थहीन हो गया है। चौधरी साहब की जीत से लोकतंत्र अर्थपूर्ण हो जाता है और हार से अर्थहीन।

साधो, भारतीय जनता पार्टी ने अपनी शाखा टाइप प्रतिक्रिया प्रकट की है। लालकृष्ण आडवाणी ने कहा है कि इंदिरा कांग्रेस का विकल्प हमारी भारतीय जनता पार्टी है। विधानसभाओं के चुनाव में कांग्रेस (इ) के बाद सबसे अधिक सीटें हम जीते हैं। आडवाणी गणित में कमजोर हैं। बंगाल, केरल और त्रिपुरा के वामपंथी भी जोड़े जाएँ तो दूसरा नम्बर वामपंथी मोर्चा का आता है, भारतीय जनता पार्टी का नहीं। यह कलेजा फाड़ देनेवाली बात आडवाणी मानना नहीं चाहते।

साधो, सबसे अच्छी मुझे कांग्रेस (अर्स) लगती है। उनकी पार्टी हारी। पार्टी के महामंत्री बंकाबिहारीदास हारे तो उन्होंने पद से इस्तीफा दे दिया। मध्यप्रदेश कांग्रेस (अर्स) के अध्यक्ष ने भी इस्तीफा दे दिया। इस पार्टी की नन्दिनी सतपथी जीतीं और इस्तीफा दे दिया। इस पार्टी में जो हारा वह भी इस्तीफा दे रहा है और जो जीता वह भी इस्तीफा दे रहा है। मुझे ऐसी पार्टी बड़ी प्यारी लगती है। चरणसिंह को यह समझ में नहीं आया कि संसदीय लोकतंत्र अर्थहीन नहीं हुआ, सूबेदारी अर्थहीन हो गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यशोदा मैया का माखन

साधो, मैं एक दिलचस्प खेल देख रहा हूँ। तुम भी देख रहे हो। जो पूतना थी, वह एकाएक माता यशोदा हो गई और हर ग्वाल-बाल उससे कहता है—मैया, माखन दे दे। मैं इंदिरा गांधी की बात कर रहा हूँ। वे अभी तक पूतना मानी जा रही थीं। अब वे दयालु माता यशोदा हो गईं। चरणसिंह कहते हैं—मैया, समर्थन का माखन दे दे। तो जगजीवनराम कहते हैं—हट, तुझे नहीं मुझे देंगी। दे दे मैया माखन! तेरे पाँव पड़ें! मोरारजी कहते हैं—इंदिरा कांग्रेस के समर्थन से जनता सरकार बनाने में कोई हर्ज नहीं। याने माई से माखन ले लो! बाला साहब देवरस कहते हैं—मैंने तो 1977 के चुनाव जीतने के बाद ही जनता पार्टी के नेताओं से कहा था कि इंदिराजी के खिलाफ कोई कार्यवाही मत करो, पर उन्होंने मेरी बात नहीं मानी। इसी का नतीजा है कि आज यह संकट जनता पार्टी पर आया। यानी बाला साहब भी यशोदा मैया के माखन के आकांक्षी हैं। प्रियरंजनदास मुंशी भी अब तैयार हैं कि माता एक तरफ संजय गांधी को बिठा ले और दूसरी तरफ उन्हें।

साधो, 1977 के शुरू से अब तक इंदिरा गांधी 'तानाशाह' कहलाती थीं। चरणसिंह कहते थे कि उन पर 'न्यूरेमबर्ग ट्रायल' जैसा मुकदमा चलाना चाहिए। चरणसिंह को इतिहास की जानकारी तो है नहीं। वे नहीं जानते कि न्यूरेमबर्ग के मुकदमे किसने किन-किन पर क्यों चलाए थे। चरणसिंह कहते थे कि यह सरकार 'नपुंसक' है जो इंदिरा गांधी को सजा नहीं दे रही है। वही चरणसिंह अब इंदिरा गांधी को लिखते हैं—मैं बहुत 'आभारी' हूँ कि आप मेरा समर्थन कर रही हैं। मोरारजी अनाप-शनाप नहीं बोलते थे, क्योंकि उन्हें नैतिकता के उपदेश देने से फुरसत नहीं मिलती थी। पर विशेष अदालतों वगैरह के मामले उन्हीं के हाथों से हुए। घाघ राजनीतिज्ञ जगजीवनराम ने 1977 में कांग्रेस यह कहकर छोड़ दी कि वे इंदिरा की तानाशाही के विरोधी हैं, जबकि इमरजेंसी का बिल संसद में उन्होंने पेश किया था। बाबूजी को यह मालूम हो गया था कि इंदिराजी उन्हें टिकिट नहीं देंगी और वे मंत्री तो क्या, ग्राम-पंचायत के सरपंच भी नहीं बन सकेंगे। वे 'लोकतंत्र के देवता' बनकर जनता पार्टी में आ गए। जॉर्ज फर्नांडिज साँस-साँस में इंदिरा गांधी को गाली देते थे। जनसंघ के नेता चतुराई से ऊपर ज्यादा नहीं बोलते थे पर भीतर सख्त-से-सख्त कदम उठाने के लिए वही दबाव डालते थे।

साधो, मगर यह क्या हो गया? अब यह नहीं कहा जाता कि इंदिरा गांधी को जेल भेजेंगे। यह भी नहीं कहा जाता कि ललितनारायण मिश्र की हत्या के षड्यंत्र में शामिल होने के लिए इंदिरा को फँसाया जाएगा। यह भी नहीं कहा जाता कि इंदिरा-तानाशाह का नाश करेंगे। अब भीतर से डरकर ऊपर से जोर से कुल इतना कहा जाता है कि विशेष अदालतें खत्म नहीं की जाएँगी। नेताजी, ये विशेष अदालतें किसलिए हैं ? क्या लड़की छेड़ने के लिए हैं? क्या सरोंता चुराने के लिए हैं? कहते हैं—हम नहीं जानते। वे विशेष अदालतें हैं। तो क्या ये इंदिरा गांधी को सजा दिलाने के लिए हैं? हम नहीं जानते। बस, विशेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदालतें हैं।

साधो, कुल मामला यह है कि लोकसभा में किसी के भी इंदिरा कांग्रेस के बिना 270 नहीं होते और मध्यावधि चुनाव कोई चाहता नहीं, क्योंकि सब इतना नाम कमा चुके हैं कि चुनकर आने की दुबारा आशा नहीं है। 270 चाहिए। ये 270 इंदिरा के बिना नहीं हो सकते। और कोई बेवकूफ ही ऐसा सोचेगा कि इंदिरा गांधी किसी सरकार को इसलिए सत्ता में रखेंगी कि वह उन्हें मुकदमे चलाकर जेल भेजे और कोई सरकार ऐसा कैसे करेगी कि कहे—बहनजी, बाहर तो कोर्ट से हम आपको सजा दिलाने की कोशिश कर रहे हैं, पर संसद में हमारी सरकार आप रहने देना।

साधो, इंदिरा ने अभी जनसंघ के 'जमादार' और जगजीवनराम के 'हवलदार' रामसुंदर दास की सरकार बचा दी। हरियाणा में भी भजनलाल संघ के जमादार हैं। उन्हें भी इंदिरा गांधी बचा रही हैं। इसलिए संघ के नेता भी उन्हें यशोदा मैया मानते हैं। संघ इस समय संकट में है। उसकी हालत उस अपंग-जैसी है जो गाँव के चबूतरे पर बैठा है और कोई भी उसे चपत मारकर निकल जाता है। वह चिल्लाता है—तेरे हाथ में कीड़े पड़ जाएँ। तेरा सत्यानाश हो जाय।

साधो, इंदिरा गांधी यह बता रही हैं कि केंद्र में और राज्यों में वही सरकार रहेगी जिसका हम समर्थन करेंगे। वरना हम मध्यावधि चुनाव करा देंगे। इसीलिए सारे ग्वाल-बाल यशोदा मैया को घेरे हैं—मैया, हमें माखन दे। मैया कहती है—दूँगी प्यारे-प्यारे बच्चो, माखन दूँगी पर तुम ठीक नीतियों और सिद्धांतों पर चलो।

दूसरी आजादी का अंत

साधो, आओ बैठो। तुमने ढाई साल में दूसरी बार मिठाई बाँट दी, बाजे बजा दिए, रोशनी कर ली। राजनीति अगर सिद्धांतों पर नहीं चली, बेईमानी और जोड़-तोड़ पर चली, तो तुम और हर महीने मिठाई बाँटो, हर महीने जिंदाबाद औद मुर्दाबाद करोगे। हर महीने सरकार बनेगी और गिरेगी।

साधो, मधुलिमये ने डेढ़ साल पहले कहा था कि अगर इंदिरा गांधी चार महीने बाद चुनाव करातीं तो जनता पार्टी बनती ही नहीं, क्योंकि हमें आपस में लड़ने का वक्त मिल जाता। हमें लड़ने का वक्त मिला नहीं और हमने एक पार्टी बना ली। यानी साधो, जो लड़ाई आपस में लड़ने का सुभीता इंदिरा गांधी ने नहीं दिया वह लड़ाई बाद में लड़ी गई और जनता की क्रांतिकारी सरकार गिर गई। दूसरी आजादी का दौर खत्म हो गया। यह भी सिद्ध हुआ कि जिस आर.एस.एस. के कारण इंदिरा गांधी ने इमर्जेंसी लगाई थी, उसी के कारण जनता सरकार गिरी। 'संपूर्ण क्रांति' का आंदोलन उसी दिन फासिस्ट आंदोलन हो गया था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस दिन जयप्रकाश बाबू ने नानाजी देशमुख को लोकसंघर्ष समिति का संयोजक बनाया था। तुम नानाजी को नहीं जानते!

अद्‌भुत व्यक्ति हैं। राजनारायण कहते हैं कि नानाजी के एक मुँह में कई जीभें हैं। वे हर जीभ से अलग-अलग बात एक-सी कुशलता से बोलते हैं। वे एक साँस में दस परस्पर विरोधी बातें बोल जाएँगे। यह उन्हीं का कमाल है कि वे जनता पार्टी के 5 नेताओं में से हर एक को विश्वास दिलाते रहे कि हम आपको ही प्रधानमंत्री बनाएँगे। कहते हैं जितनी निष्ठा महात्मा गांधी की सत्य के प्रति थी, उससे ज्यादा निष्ठा नानाजी की असत्य के प्रति है। वे गांधीजी से सवाये पड़ते हैं।

साधो, जब जनता सरकार की अर्थी सज गई थी तब भी बड़ा कमाल हो रहा था। संघ के 2-3 नेता मोरारजी से कह रहे थे कि आप संसद में पार्टी के नेता बने रहिए। 2-3 कह रहे थे कि छोड़ दीजिए। 2-3 संघी नेता चंद्रशेखर से कह रहे थे कि आप नेता हो जाइए और बाद में प्रधानमंत्री। 2-3 अपने सदाबहार बाबूजी से कह रहे थे कि मोरारजी को हटाकर आपको नेता बना देते हैं। सब संघी भाई थे। वे यह बतला रहे थे कि संघ में भी बड़ा मतभेद है। आखिर लोकतांत्रिक दल हैं। यह बात कम लोगों को समझ में आ रही थी कि संघ के हाईकमान के फैसले के अनुसार ये सधे-बधे लोग तीन नेताओं को साधे हुए थे। अपने बाबूजी काँइयाँ आदमी हैं। उन्होंने यशवंतराव चव्हाण से फोन पर कहा कि मैं भी बाहर निकलकर तुमसे मिल जाता हूँ। अपने साथ बचे हुए सी.एफ.डी. के तथा हरिजन संसद-सदस्य ले आता हूँ। शर्त एक ही है—मुझे प्रधानमंत्री बनाओ। चव्हाण ने जवाब दिया कि ऐसा वादा कोई नहीं कर सकता। बाबूजी ने फोन रख दिया और बाला साहब देवरस की स्तुति करने लगे। साधो, बड़ी कुशलता से संघ काम कर रहा था। सबको 'जी' लगाकर बोलते हैं ये लोग, और कुहनी तक हाथ मिलाकर जोड़ते हैं। चंद्रशेखरजी, बाबूजी, चरणजी, बहुगुणाजी, ड्राइवरजी, कारजी, पेट्रोलजी, एंजिनजी, पहियाजी, सब जी! मगर यह 'जी' खुल गया। उधरे अंत न होहि निबाहू।

साधो, जब देखा कि आर.एस.एस. के कारण जनता सरकार गिर रही है, तब कई छल किए गए। सर कार्यवाह, राजेंद्रसिंह ने कहा कि हम संघ के संविधान में परिवर्तन करके संसद-सदस्यों और विधायकों को संघ की दैनिक गतिविधियों में भाग लेने से छूट दे देंगे। समझे कि लो दुहरी सदस्यता का मामला निपट गया। चंद्रशेखर और बाबूजी नाचने लगे, एक पतली कमर से और दूसरे मोटी कमरिया से—भाई, राजेंद्रसिंहजी धन्य हैं ! राष्ट्र का आपने कितना उपकार किया है। राजनैतिक संकट को हल कर दिया। अब जनता पार्टी छोड़नेवालो, लौट आओ यहाँ हलाल होने के लिए। कम्युनिस्ट साथियो, तुम भी बेवकूफ बनो। हमारा समर्थन करो। चाहे राक्षसों की हो, पर सरकार स्थायी होनी चाहिए।

पर साधो, कोई बेवकूफ नहीं बना। सब जानते हैं कि यह सब झूठ है। हिटलर का मशहूर कथन है—जनता बड़े झूठ के जाल में छोटे झूठ की अपेक्षा आसानी से फँसती है, इसलिए बड़ा झूठ बोलें। यूरोप में फासिस्टों के बारे में कहा जाता था—अगर फासिस्ट कहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि मैं खाना खाने जा रहा हूँ तो समझो कि वह पाखाना जा रहा है। यह असम्भव है कि संघ उग्र हिंदू राष्ट्रवाद छोड़ दे, मुसलमानों, ईसाइयों से नफरत छोड़ दे, साम्प्रदायिकता छोड़ दे, लोकतंत्र अपना ले। अगर वह ऐसा करेगा तो संगठन खत्म हो जाएगा।

साधो, कोई क्रांति नहीं हुई है। चरणसिंह न कोई देवता हैं न क्रांतिकारी। एक निकम्मी और देश घातक सरकार गिरी-भर है। एक ही बात हुई है और वही सबसे महत्त्वपूर्ण है। राजनैतिक शक्तियों का बँटवारा पहली बार सिद्धांतों के आधार पर हुआ है। यह पहले होना था। राजनीति सीधी दो खेमों में बँट गई है—एक खेमा है, लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता का और दूसरा है, सम्प्रदायवाद और फासिस्टवाद का। बिलकुल साफ बँटवारा है। हर सोचने-समझनेवाले आदमी को अब पक्ष ले लेना होगा। तटस्थ कोई हो नहीं सकता। उन दयनीयों की बात छोड़ो जो ढाई सालों से चड्डी और काली टोपी धारण करने लगे थे और कल उन्हें फिर पेटी में रख दिया है।

बँधुआ मुख्यमंत्री

साधो, बँधुआ मजदूरों की दर्दनाक हालत तुम्हें मालूम है। ये जीवन-भर गुलाम की तरह काम करते हैं। मालिक की गाली और मार खाते हैं। इनका कोई अधिकार नहीं होता। ये मालिक को इसी कारण नहीं छोड़ सकते कि इनका कम-से-कम आधा पेट भर जाता है। फिर मालिक इतना जबर होता है कि इन्हें छोड़ने नहीं देता। साधो, इंदिरा सरकार ने बँधुवा मजदूरों की मुक्ति के लिए कोशिश की थी इमर्जेंसी में, काफी बँधुआ मजूदर छूटे भी। मगर अब हालत और खराब है। अब बँधुआ राजनैतिक होने लगे। बिहार विधानसभा में चतुरानन मिश्र ने अभी कहा कि रामसुंदरदास बँधुआ मुख्यमंत्री हैं, इसीलिए हरियाणा के भजनलाल भी अभी बँधुआ मुख्यमंत्री हुए हैं।

अब साधो, तुम पूछोगे कि बँधुआ मुख्यमंत्री कैसा होता है? यह ठीक बँधुआ मजदूर सरीखा होता है। बँधुआ मजदूर वह होता है जिसकी अपनी जमीन नहीं होती। रामसुंदरदास और भजनलाल की अपनी पार्टी में कोई जमीन नहीं है। ये दोनों बाबू जगजीवनराम की कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी के हैं। और कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी की ऐसी हैसियत नहीं है कि कोई उसका मुख्यमंत्री कहीं हो। भूमिहीन किसान बँधुआ मजदूर बनने को तैयार होता है। भूमिहीन राजनेता बँधुआ मुख्यमंत्री या मंत्री बनने को तैयार होता है। साधो, बँधुआ मजदूर दूसरे के खेत पर काम करता है। पर जब वह खेत के मचान पर होता है तब खेत को अपना ही समझता है, चिड़िया उड़ाता है, जंगली सूअर भगाता है। कोई मवेशी खेत में घुस आए तो चरवाहे को डाँटता है—तेरे बाप का खेत है। हालाँकि खेत उसके बाप का भी नहीं है। साधो, इसी तरह का मजदूर बँधुआ मुख्यमंत्री होता है। वह मालिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के खेत की राजनीतिक चिड़ियों को भगाता है, सूअरों को भगाता है, उजाड़ ढोरों को हँकारता है। वह मालिक के भले के लिए खेत की रखवाली करता है। बँधुआ मजदूर को इस सबके बदले में कुछ खाने को दिया जाता है। बँधुआ मुख्यमंत्री को पद, बँगला, कार और कुछ सुभीते मिल जाते हैं। बँधुआ मजदूर आत्मसम्मान नहीं रखता। आत्मसम्मान रखे तो भूखा मरे। बँधुआ मुख्यमंत्री भी आत्मसम्मान नहीं रखता। आत्मसम्मान रखे तो निकाल दिया जाएगा।

साधो, रामसुंदरदास और भजनलाल बँधुआ मजदूर कैसे हुए? तुम जानते हो कि जनता पार्टी में ब्राह्मण-क्षत्रिय-संघर्ष चल रहा है। जनसंघ की हैसियत ब्राह्मण की है और भारतीय लोकदल की क्षत्रिय की। परशुराम हाथ में फरसा लेकर ललकार रहे हैं—मैं सहस्रबाहु की भुजाएँ काट दूँगा। वे काट भी रहे हैं। यह दूसरी बात है कि परशुराम को दूसरे क्षत्रिय रामचंद्र के सामने समर्पण करना पड़ा। तो पहले, बिहार में, जनसंघ ने कहा कि चरणसिंह की भुजा कर्पूरी ठाकुर को काटेंगे। वैसे कर्पूरी काफी हद तक़ खुद बँधुआ बनने को तैयार था। उसने जमशेदपुर में दंगा कर लेने दिया। दंगा करनेवालों पर कार्यवाही नहीं की। पर जनसंघ को पक्का बँधुआ चाहिए था।

अब साधो, अपने 'बाबूजी'—बाबू जगजीवनराम ने संघ के नेताओं से कहा—मालिक, हम तो पुश्तों से आपके बँधुआ मजदूर हैं। अभी आप एक आदमी को बँधुआ प्रधानमंत्री बनाए हैं, आपकी कृपा हो तो मैं उनसे अच्छा बँधुआ प्रधानमंत्री बन सकता हूँ। बिहार के लिए अपने पास से एक बँधुआ दूँ? बाबूजी ने बटुआ खोला और उसमें से रामसुंदरदास को निकालकर कहा—यह कैसा रहेगा? संघ को पसंद आ गया और रामसुंदरदास मुख्यमंत्री हो गए।

साधो, अपने बाबूजी दुनिया के सदाबहार—एवरग्रीन—राजनेता हैं। हरियाणा में जब देवीलाल को खदेड़ने का वक्त आया तो बाबूजी ने फिर बटुआ खोला और भजनलाल को निकालकर दे दिया। इस तरह रामसुंदरदास और भजनलाल जनसंघ के खेत पर चिड़िया उड़ानेवाले बँधुआ मुख्यमंत्री हैं। इनका सिर्फ इतना उपयोग होता है कि नाती-पोते घर में इनकी फोटो लगाएँगे और दोस्तों से कहेंगे—ये हमारे ग्रैण्ड फादर थे। ये मुख्यमंत्री थे।

अपनी कब्र खोदने का अधिकार

साधो, मैं जानता हूँ कि इन दिनों तुम्हारा दिमाग किन बातों से परेशान है। तुम परेशान हो कि इंदिरा गांधी को 4 दिन की जेल हो गई। उनकी लोकसभा सदस्यता खत्म कर दी गई। तुम इसे जनता पार्टी का अत्याचार कहते हो। पर तुम नहीं जानते कि जनता पार्टी नए लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना कर रही है। इंदिरा गांधी जनता पार्टी को कत्तई पसंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। ये लोग 'लेडी' से डरते भी बहुत हैं। मगर दो साल होने आए, किसी अदालत से उन्हें सजा दिला नहीं सके। जेल उन्हें हुई नहीं। जनता ने उन्हें वोट देकर लोकसभा में भेज दिया। भगवान ने भी जनता पार्टी की तरफ से उनके खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की। उनका स्वास्थ्य अच्छा रखा। ऐसी हालत में जनता पार्टी के पवित्र लोग लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा कैसे करते? उन्होंने महसूस किया कि हमारा तो बहुमत है। बाहर देश में चाहे लोग हमें मुर्दाबाद करते हों, लोकसभा में तो हमारा बहुमत है। हम इंदिरा गांधी की सदस्यता खत्म कर सकते हैं। लाखों नहीं, करोड़ों लोग उन्हें चुनकर भेजें, पर हम यहाँ बैठे 279 लोग सारे देश की जनता को अँगूठा बताकर उन्हें बाहर निकाल देंगे। हमारा बहुमत है। इंदिरा फिर चुनकर आए, हम फिर निकाल देंगे। कोई भी आदमी जो हमें पसंद नहीं, सदन में बैठ नहीं पाएगा। यह लोकतंत्र की सच्ची भावना है।

साधो, यह लोकतंत्र चलेगा। जनता अपना प्रतिनिधि चुनकर भेजेगी और सरकार सिर्फ लोकसभा में बहुमत की दम से उसे निकाल बाहर करेगी। याने एक बार एक्सीडेंट से बहुमत पा लेनेवाली पार्टी 65 करोड़ भारतीयों के प्रतिनिधियों को संसद में नहीं घुसने देगी। इसे लोकतंत्र कहते हैं, जिसमें लोक को लात मार दी जाती है। साधो, जिस दिन सकलेचा चाहेंगे अर्जुनसिंह को विधानसभा से निकाल देंगे। सकलेचा कहेंगे कि अर्जुनसिंह ने विधानसभा में एक पाँव कुर्सी पर रख लिया था। इससे सदन की मर्यादा भंग हुई। हम बहुमत में हैं, इसलिए हम अर्जुनसिंह को सदन की सदस्यता से निकालते हैं। निकलो अर्जुनसिंह! तुम्हें चुननेवाली जनता भाड़ में जाय।

साधो, लोग कहते हैं कि इसका भी खयाल नहीं किया गया कि बाकी सब पार्टियाँ इंदिराजी को यह दंड देने के खिलाफ हैं। मार्क्सवादी पार्टी तक इस सजा के विरोध में थी। मोरारजी भाई को अपनी पार्टी के सदस्यों को नरम करना था। मगर मोरारजी भाई की हालत उस बूढ़े की-सी है, जिसके सब लड़के आवारा हैं और पत्थर फेंकते हैं। बूढ़ा समझाना चाहे तो आवारा लड़के कहते हैं—बाबा! घर में रहना है तो चुप बैठो, नहीं तो निकल जाओ। साधो, अगर जनसंघ गुट चाहता हो कि इंदिराजी को यह कड़ी सजा हो तो मोरारजी क्या विरोध कर सकते हैं? जनसंघ कहेगा—तो भाईजी! आप प्रधानमंत्री नहीं रहेंगे। हम जाते हैं चरणसिंह के पास। और जॉर्ज फर्नांडिस-जैसे को भारत में तो कोई नहीं समझा सकता। जर्मनी के विली ब्रांट ही उन्हें समझा सकते हैं।

साधो, हिंसा, तोड़-फोड़ बुरी चीज है। जिन कांग्रेसियों ने तोड़फोड़ या पत्थरबाजी की, बुरा किया। मगर जनसंघ के पत्थर पवित्र होते हैं। उन्होंने कांग्रेसियों पर पत्थर फेंके तो यह शुद्ध अहिंसा हुई। साधो, हँसी तब आती है जब जॉर्ज फर्नांडिस कहते हैं—जीसस! जीसस! ये कांग्रेसी हिंसा कर रहे हैं। कितनी बुरी बात है। हे पिता, इन्हें माफ मत करना। ये वही फर्नांडिस हैं जो बड़ौदा डाइनामाइट कांड में फँसे थे और जिन्हें मंत्रिमंडल में नहीं, जेल में होना था। उन्होंने डाइनामाइट अहिंसा धर्म के पालन के लिए इकट्ठे किए थे। ये वही फर्नांडिस हैं जिन्होंने कहा था कि मैंने 52 रेलगाड़ियाँ पटरी से उतारीं और यह कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंसा, तोड़-फोड़ आदि हमारा अधिकार है।

साधो, विमान अपहरण भी विचित्र है। ऐसा लगता है जैसे डाका डालनेवाले बाँह पर पट्टा लगाए हों कि हम मोहरसिंह के गिरोह के हैं। हमें फलाँ-फलाँ ने डाका डालने भेजा। वे दो पांडे लखनऊ से विमान पर चढ़े। वाराणसी में विमान उतार दिया। अब वे डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट से कहते हैं–'हम कांग्रेस इंदिरा के हैं। आप संजय गांधी और मोहसिना किदवई को फोन कर दें कि उनका बताया काम कर दिया।' वाह रे, अद्‌भुत अपहरणकर्ता! डाकू कलेक्टर से कहते हैं कि सरदार को फोन कर देना कि डाका डाल दिया। फिर साधो, अपहरणकर्ता अपना विमान कभी नहीं छोड़ते। पर ये पांडे तो पर्यटकों की तरह दूसरे विमान में बैठकर लखनऊ चले गए। और फिर यह भी बता दिया कि सारी योजना कमलापति त्रिपाठी के बेटे ने बनाई थी। सब अद्‌भुत है। मगर लोग कहते हैं कि अपहरण का यह षड्‌यंत्र जनता पार्टी ने किया है। इस बहाने वे और दमन करना चाहते हैं।

साधो, तुम पूछोगे कि गुरु, जनता पार्टी क्या पागल हो गई? देखो साधु, हर राजनैतिक दल को अपनी कब्र खोदने का हक है। जनता पार्टी से उसका यह मूल अधिकार कोई नहीं छीन सकता। वह पार्टी सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर कर देगी कि हमें अपनी कब्र खोदने का अधिकार दिलाया जाय।

किस विधि नारि रचेऊ जग माहीं

साधो, जिस बात के लिए देश को चिंता होनी जरूरी है, उस बात को दिल्ली में होना चाहिए। बहुएँ सारे देश में दहेज कम लाने के कारण जलाई जाती हैं और यह घरु धंधे का मामला मान लिया जाता है। मगर बहुएँ दिल्ली में जलाई जाएँ, और गरीब नहीं, मध्य या उच्चवर्ग की जलाई जाएँ, तो शोर होता है कि महिलाओं पर अत्याचार हो रहे हैं। बलात्कार निम्न वर्ग, विशेषकर हरिजन स्त्रियों के साथ देश-भर में होते हैं। यह शर्म की बात है कि निम्नतम वर्ग में इसका विरोध तक नहीं होता। वे इसे अपना भाग्य मानकर बैठे हैं। यदि कोई स्त्री पुलिस थाने में रिपोर्ट करने जाय कि उस पर बलात्कार हुआ, तो भारतीय पुलिस बड़ी मुस्तैदी से अपना कार्य करती है। पुलिसवाले खुद उस स्त्री पर प्रयोग करके पक्का कर लेते हैं कि जो हुआ वह ऐसा ही हुआ, जैसा हमने किया। किसी एकाध मामले का हल्ला होता है, सामाजिक और राजनैतिक कार्यकर्ता दिलचस्पी लेते हैं, तब कार्यवाही होती है। मगर दिल्ली में जब बलात्कार होते हैं, तब वह राष्ट्रीय समस्या होती है। जुलूस निकलते हैं, संसद पर प्रदर्शन होते हैं, संसद के भीतर सदस्य मामले को उठाते हैं।

साधो, पिछले दिनों स्त्रियों पर अत्याचार के विरोध में महिलाओं ने प्रदर्शन किए, विशेषकर बलात्कार के विरोध में। सचमुच बलात्कार से जघन्य अपराध कोई और नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें दूसरे पक्ष को प्रतिरोध करने के लिए प्रकृति ने कुछ नहीं दिया। वह न केवल शरीर पर आघात है, बल्कि मानस और भावना पर भी। यह स्त्री के पूरे व्यक्तित्व को तोड़ता है। बलात्कार को 'पाशविक' कहा जाता है, पर यह पशु की तौहीन है। पशु बलात्कार नहीं करते। सुअर तक नहीं करता, मगर आदमी करता है। और साधो, इस अपराध को स्त्री-परिवारजन खुद छिपा लेते हैं, क्योंकि बदनामी का डर है। बलात्कारी इससे बेखटके हो जाते हैं। कोई मुकदमा चलता भी है, तो अपराध सिद्ध करना कठिन होता है। स्त्री को सिद्ध करना होता है कि उसने विरोध किया। विरोध के प्रमाण देने होते हैं, यानी बलात्कारी को नोचा हो, काटा हो तो उसके निशान। मगर बलात्कारी पिस्तौल या छुरा अड़ा दे, तो स्त्री समर्पण कर देती है। कानून 'समर्पण' को रजामंदी मान लेता है और बलात्कारी निर्दोष छूट जाता है। साधो, बलात्कारी एक मनोवैज्ञानिक रूप से बीमार आदमी होता है। या ऐसा होता है कि जिसने संस्कारों से अपने यौन आवेग को नियन्त्रित करना नहीं सीखा। बलात्कार तब ज्यादा होते हैं, जब सजा का भय नहीं होता।

साधो, तुम कहोगे--गुरु, आज तो तुम अपराध-शास्त्र बघार रहे हो। देखो, हम बहुत पाखंडी लोग हैं। हम अपने को प्राचीनतम और महान् संस्कृतिवाले कहते हैं, आदर्शवादी समझते हैं, नैतिक मानते हैं, मगर हमसे ज्यादा क्रूर और नीच जाति दुनिया में कोई नहीं। अफ्रीका के जंगली कबीलों में भी नारी पर उतने अत्याचार नहीं होते, जितने हम करते हैं और कहते हैं कि नारी पवित्र है, पूज्या है, माता है, जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता रमते हैं।

साधो, इसी महीने राजस्थान में कोटा के पास एक 65 साल की वृद्धा पति की चिता पर सती हो गई, या करा दी गई। सतीप्रथा के मूल में क्या विश्वास है? यह कि पुरुष के मरने पर स्त्री का जीवन खत्म हो गया। उसे मर जाना चाहिए। यानी स्त्री का अलग से कोई शरीर या मन नहीं है। आदमी के मरने पर उसके कुरते को या जूते को उसके साथ नहीं जलाते, पर स्त्री को जला देते हैं। धन्य है यह महान् संस्कृति। दुनिया में सतीप्रथा कहीं नहीं रही। ईजिप्त में अलबत्ता राजा के मरने पर उसके साथ रानी और नौकर भी गाड़ दिए जाते थे। पर यह सिर्फ राजा के लिए होता था।

साधो, हमारे यहाँ विधवा को धतूरा या भाँग पिलाकर नशे में करके जबरदस्ती चिता पर डाल देते रहे हैं। हजारों स्त्री, पुरुष, बच्चे इस दृश्य को मजे में देखते हैं। सती मैया की जय बोली जाती है। स्त्रियाँ, खासकर बदचलन औरतें चिता में नारियल चढ़ाती हैं, राख कपाल पर लगाती हैं, क्योंकि--चली कुलबोरन गंगा नहाय के! फिर प्रचार होता है--सती के बालों से ज्वाला निकली, सती के बैठते ही चिता में अपने-आप आग लग गई। हम जनरल जिया को थूकते हैं, जो इस्लामी कानून के नाम से लोगों को खुले आम कोड़े लगवाता है और लोग देखते हैं। मगर हम हिंदू धर्म के नाम पर अपनी बहन, बेटी और बहू को शताब्दियों से जिंदा जलाकर उत्सव मनाते रहे हैं।

साधो, पिछले साल बाँदा जिले में 16 साल की लड़की को, जिसकी हाल ही में माँग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरी थी, ऐसे ही जला डाला था। अखबारों ने, सामाजिक कार्यकर्ताओं ने बहुत पुकार की कि यह हत्या है, परिवारवालों पर मुकदमा चलाया जाय। पर कुछ नहीं हुआ। धर्म की जय का मामला है। और अभी 65 साल की बुढ़िया को, ऐसा कहा जाता है कि बेटे-बहुओं ने पीछे पड़कर उसके पति के साथ जला दिया।

साधो, कानून है। जबरदस्ती या उकसाकर या प्रोत्साहित करके स्त्री को सती कराना जुर्म है। इसके लिए सजा का प्रावधान है। पर सजा दिलाए कौन? पुलिस जाँच करे और जुर्म कायम करे तभी तो सजा होगी। अब पुलिस का हाल देखो। पुलिसवाले इस कोटा के पासवाले गाँव तहकीकात करने पहुँचे, तो पहले सती की चिता के पास जाकर माथा टेका और राख कपाल पर लगाई। उन्होंने सिपाहन, हवलदारन, थानेदारन और एस.पी. साहबन को भी चिता में नारियल डालने भेजा होगा, जिससे ये पुलिस-पत्नियाँ पतिव्रता रहें! पराये मर्द की तरफ आँख न उठाएँ। ये हमारे पुलिसवाले क्या रोकेंगे अपराध! इंडियन पेनल कोड तो सती मैया के साथ ख़ाक हो गया।

बदलाहट कहाँ है ?

साधो, इस समय देश-भर में यह लेखा-जोखा चल रहा है कि पिछले एक साल में किस क्षेत्र में कितनी प्रगति हुई। कहा जा रहा है—इतने भूमिहीनों को जमीन मिली, इतने लोग कर्ज से बरी हुए, कीमतें इतनी घटीं, उत्पादन इतना बढ़ा। यह सब ठीक है। पर मैं इस सबको सच्ची प्रगति नहीं मानता। सच्ची प्रगति का एक समाचार मुझे आज पढ़ने को मिला। अजमेर में संत ख्वाजा मोहिनुद्दीन चिश्ती की स्मृति में हर साल उर्स होता है। इस साल भी हुआ। लाखों भक्त आए। पुलिस की रिपोर्ट है कि इस साल सिर्फ बीस जेबकटी की वारदातें हुईं, जबकि पहले सैकड़ों होती थीं। वैसे तुम इसे प्रगति नहीं, अवनति भी कह सकते हो। धार्मिक समारोह जूते चुराने और जेब काटने के लिए होते हैं। यही सच्ची भक्ति है। अगर केवल बीस जेब कटें तो भक्तों की भक्ति में कमी हो गई। देश की नैतिकता पीछे चली गई। खैर, तुम यह कहो, मैं नहीं कहता। मैं खुश हूँ कि मुरीदों की जेबें नहीं कटीं। संत चिश्ती की दरगाह में एक दरवाजा है जो साल में एक बार खुलता है। इसी उर्स के समय। विश्वास फैला दिया गया है—जो इस दरवाजे में से निकल जाता है उसके लिए मरने के बाद स्वर्ग का दरवाजा भी खुल जाता है। बड़ा आसान नुस्खा है। जिंदगी में कितने भी गुनाह करो पर दरवाजे में से निकल जाओ, स्वर्ग मिल जाएगा। मगर मैं सोचता हूँ उन मुरीदों के बारे में जिनका घर का दरवाजा टूटा है, पर जो पैसे उधार लेकर अजमेर शरीफ स्वर्ग का दरवाजा खुलवाने जाते हैं। जरूर स्वर्ग में कोई रजिस्ट्रार होगा। इस साल स्वर्ग का दरवाजा खुलवाने कम लोग गए। साधो, तुम लोग कहोगे कि यह तो बुरा हुआ। स्वयं की परवाह कम लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को रह गई। पर मैं कहता हूँ, लोगों को इस जिंदगी की परवाह अधिक हो गई। कुछ तो समझे कि सजदे से या दरवाजा पार करने से जन्नत नहीं मिलती। अभी तो इसका भी सबूत नहीं है कि जन्नत और दोजख है भी। इकबाल ने सजदे पर शक जाहिर किया है–

मेरा सर बसजदा हुआ कभी तो हरम से आने लगी सदा
तेरा दिल तो है सनम आशना तुझे क्या मिलेगा नमाज में।

बहरहाल साधो, मैं बदली हवाली की बात कर रहा हूँ। दक्षिण भारत में एक मंदिर है जहाँ नियम है कि भक्त जूते उतारकर मंदिर में जाएँ। यदि गरीब लोग नंगे पाँव मंदिर आते, तो पुजारी कहता–जूते उतारकर आओ। वे कहते–जूते कैसे उतारें ? हम तो नंगे पाँव आए हैं। पुजारी कहते–तो जाओ, जूते पहनकर आओ। फिर उतारो। तब भगवान के दर्शन कर सकते हो। साधो, पता नहीं जूता-चोर भगवान खुद है या पुजारी लोग। पर इस साल यह नियम टूट गया। भगवान के आदेश से नहीं, आपातकाल के डर से। साधो, अब तो शंकराचार्य भी बीस सूत्रीय कार्यक्रम प्रवचनों में बोलने लगे। पहले वे बोलते थे–ब्रह्म सत्य है जगत् मिथ्या है। पर बीस सूत्रीय कार्यक्रम तो जगत् है, माया है। शंकराचार्य ब्रह्म को छोड़कर माया में लिपट गए। यह नए ज्ञान के कारण नहीं हुआ, नए डर के कारण हुआ है। कहीं मठ की जायदाद न चली जाय, कहीं मीसा में बंद न हो जायँ।

साधो, एक स्वामीजी हैं। उनके प्रवचन मैंने पहले भी सुने हैं। वे लोगों को भगवान का स्वरूप समझाते थे और भगवान से मिलने का रास्ता बताते थे और खूब पैसे बटोर लेते थे। पता नहीं कितने भक्तों को उन्होंने भगवान से मिलवाया। प्रवचन रामायण पर भी–

माँगी नाव न केवट आना,
कहेहु तुम्हार मरम मैं जाना।

इस चौपाई को लेकर उन्होंने घिस डाला।

साधो, इस बार मैंने उन्हें फिर सुना। वे आत्मा को परमात्मा से नहीं मिलवा रहे थे। बीस सूत्रीय कार्यक्रम पर बोल रहे थे और समाजवाद समझा रहे थे।

तो साधो, आपातकाल के डर से इन सबका ब्रह्म छूट गया। कुछ हुआ तो है। कुछ बदला तो है।

नैतिक लोगों के इस्तीफे

साधो, राजनेता की नैतिकता और ईमान ऐसी चीजें हैं जो मेंढक की तरह मौसम आने पर जाग उठती हैं। मेंढक कहीं दिखाई नहीं देता दूसरे मौसम में, मगर वर्षा होते ही वह प्रकट हो जाता है और टर्र-टर्र करने लगता है। हमारे देश में अभी बरसात आई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनता पार्टी का चुनाव में सफाया हो गया। कांग्रेस (आई) को विकट बहुमत मिल गया। लोकसभा में 1977 से जनसंघ के 90 सदस्य थे। अब 11 रह गए हैं। जनता पार्टी की राज्य सरकारों को भंग करने की माँग उठ रही है। घबराहट वातावरण में है। डर की हवा सनसना रही है। ऐसे सोहावने मौसम में सकलेचा जी की नैतिकता की मेंढकी एकदम जी उठी और टर्राने लगी। सकलेचा जी ने पार्टी के नेतापद से, यानी मुख्यमंत्री के पद से इस्तीफा दे दिया।

साधो, सकलेचा कहते हैं कि मध्यप्रदेश में जनता पार्टी की हार का नैतिक दायित्व मेरा है, इसलिए मैं इस्तीफा दे रहा हूँ। मगर लोग दुष्ट हैं। वे कहते हैं सकलेचा भ्रष्टाचार की जाँच से बचने के लिए इस्तीफा दे रहे हैं। मोरारजी ने इसलिए जाँच नहीं कराई कि वे जनसंघ गुट के सहारे प्रधानमंत्री थे। चरणसिंह ने इसलिए जाँच नहीं कराई कि वे रोजाना मजदूरी पर प्रधानमंत्री थे। मगर अब इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री हो गई। बेचारे सकलेचा सफाई देते फिर रहे हैं कि मैंने जाँच से बचने के लिए नहीं, नैतिक कारणों से इस्तीफा दिया है।

साधो, हम लोग खुश हैं इस बात से कि न शेखावत की नैतिकता जागी न शांताकुमार की, मगर हमारे सकलेचा जी की नैतिकता जाग गई। जो दुष्ट कहते थे कि सकलेचा जी बहुत निर्लज्ज मुख्यमंत्री हैं उनका मुँह भी काला हो गया। हारे शेखावत भी हैं, शांताकुमार भी। इन दोनों राज्यों से भी जनता पार्टी का सफाया हुआ है। मगर न शेखावत को लज्जा आई न शांता कुमार को। लज्जा आई तो हमारे सकलेचा जी को। वे लज्जा में पार्टी को नेतृत्व प्रदान कर रहे हैं। सच्चा राजनेता ऐसा ही होता है। वह जीत के बाद अनैतिक और निर्लज्ज हो जाता है। हार के बाद नैतिक और लज्जाशील हो जाता है।

साधो, अभी चार दिन पहले ही सकलेचा ने कहा था कि नेतृत्व का कोई संकट नहीं है। हमारी सरकार मजबूत और स्थिर है। मगर चार दिन बाद ही ऐसा कौन-सा संकट पैदा हो गया कि सकलेचा जी को नैतिकता सताने लगी। हुआ यह है कि यह संकट जनसंघ के भीतर जोर से खड़ा हुआ है। खुद जनसंघी यह खुलेआम कह रहे हैं कि सकलेचा के कारण इतनी बुरी हार हुई है, वे जहाँ चुनाव-प्रचार के लिए गए वहीं वोट कम हुए। उनकी मेहनत के कारण ही पार्टी ऐसी बुरी हारी। साधो, जब नाव डूबने लगती है तो उसमें रखी भारी और बेकार चीजें नदी में फेंक देते हैं, जिससे वजन कम हो जाय। कचड़े का टोकना, मिट्टी, लकड़ी वगैरह नदी में फेंक देते हैं। सकलेचा जनता पार्टी की नाव पर बोझ हो गए थे और वह डूब रही थी। उनके विरोधी जनसंघी ज्यादा प्रबल हो गए थे और वे कहने लगे कि इस बोझ को नदी में फेंको और सरकार की नाव बचाओ। केन्द्र सरकार कहे कि बड़ा भ्रष्टाचार है, बड़ा कुशासन है, बड़ी धाँधली है तो जनता पार्टीवाले कह सकें—उसे तो हमने निकाल दिया। अब उजले चेहरे के मुख्यमंत्री और मंत्री लोग हैं। अब सरकार भंग मत कीजिए।

साधो, हम तो दयालु लोग हैं। सबका भला चाहते हैं। हमारा आशीर्वाद है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकलेचा जी खूब फलें-फूलें। काठमांडू के भगवान पशुपतिनाथ उन्हें अलाय-बलाय से बचाएँ। चिरंजीव ओमप्रकाश और जितने भी उनके चिरंजीव हों, खूब सुखी और सम्पन्न हों। कोई जाँच न हो। हम साधु हैं। हमें तो कुछ नहीं चाहिए। बस थोड़ा-सा गाँजा और अफीम मिल जाय तो ठीक से अध्यात्म-साधना हो। ये चीजें हमें सकलेचा जी दे ही सकते हैं।

साधो, तुम कहोगे कि गुरु, जब वे पद छोड़ रहे हैं, तब उन पर छींटाकशी क्यों करते हो। अब तो ओम् शांतिः, शांतिः, शांतिः करो। साधो, यह छींटाकशी नहीं है, अभिनंदन है। जितना गौरव मध्यप्रदेश को सकलेचा जी ने दिया उतना न किसी मुख्यमंत्री ने दिया, न कोई देगा। वे अमर हो गए इतिहास में और हमें कर दिया। फिर वे इस तरह छोड़ थोड़े ही देंगे। अभी शनिवार को मैं यह कह रहा हूँ। आज जनता पार्टी विधायक दल की मीटिंग है। हो सकता है कि अभी तक पार्टी में सकलेचा गुट प्रबल हो गया हो और उन पर जोर दे रहा हो कि प्रदेश के हित में आप ही बने रहिए। कोई दूसरा जो मुख्यमंत्री हो गया तो उसे अपने सकलेचा जी तीन महीने में पागल सिद्ध कर देंगे और निकलवा देंगे। वे शाश्वत हैं, अमर हैं।

आरोप ही आरोप

साधो, राजनीतिवालों के ईमान का हक साधुओं से ऊँचा होता है। अलग भी होता है। राजनारायण को ही देखो। आजकल वे जनसंघ और आर.एस.एस. की बड़ी आलोचना कर रहे हैं। पहले भी संघ था। राजनारायण भी थे। अक्ल भी उनके पास अभी से कम नहीं होगी। वैसे कम चीज हो तो थोड़ा हेर-फेर भी ज्यादा होता है। मगर पहले राजनारायण संघ की आलोचना नहीं करते थे। वह उनके लिए परम पवित्र संगठन था। क्यों था? इसलिए कि तब जनसंघ चरणसिंह का साथ देता रहा। जब तक साथ देता रहा, अच्छा था। अब मोरारजी भाई का साथ दे रहा है, तो एकदम बुरा हो गया। यह राजनैतिक ईमानदारी कहलाती है।

साधो, मुझे तो बुरा यह लग रहा है कि राजनारायण ने अपने मुख्यमंत्री पर फिर आक्षेप लगा दिया कि उन्होंने 50 करोड़ रुपए काठमांडू के बैंक में जमा किए थे। बुरा मुझे इस बात का लगता है कि कैसा भद्दा पैसे का आरोप हमारे मुख्यमंत्री पर लगता है। उधर कर्पूरी ठाकुर को देखो। उन पर कैसा हसीन आरोप लगा है कि किसी नेपाली स्त्री से उनका प्रेम है। हम अभागे मध्यप्रदेश निवासियों के भाग्य में यह लिखा है कि हमारे मुख्यमंत्री पर पैसों का आरोप लगे और उन बिहारियों का भाग्य देखो कि उनके मुख्यमंत्री प्रेमकांड में लिप्त हैं। कैसा रूमानी आरोप है। सकलेचा जी पर भी यह आरोप लगता कि वे प्रेमिका से मिलने सरकारी जहाज से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागे थे, क्योंकि वहाँ 'निसि दिन बरसत नैन हमारे' हो रहा था, तो हमारा सीना खुशी से फूल उठता। पर यह क्या सूखा-सा पैसों का आरोप। हमारे प्रदेश के मंत्री ऐसा कुछ नहीं कर रहे हैं कि जिसमें हमें गर्व हो। उधर बिहार के मंत्रियों को देखो। हर हफ्ते गौरव का काम होता है—फलाँ मंत्री फलाँ जगह रासलीला करता पकड़ा गया, अमुक मंत्री ने नर्स को बुलाया। मजा है। हमारे मंत्री इतने रूमानविहीन क्यों हैं? कुछ तो करें।

साधो, सकलेचा जी को व्यर्थ ही परेशान किया जा रहा है। कहते हैं उनकी नेपाल-यात्रा रहस्यमय थी। क्या रहस्यमय थी। वे इसके पहले कलकत्ता गए थे, उद्योगपतियों को हमारे प्रदेश में कारखाने डालने के लिए समझाने! खबर है कि उद्योगपतियों ने मुख्यमंत्री से कहा—साहब, आपके बजाय कुशाभाऊ ठाकरे बात करते तो ठीक रहता। देखिए, आपके यहाँ सरकार होती है डाँवाडोल। 6 महीने में ही सरकार बदल गई। आपका भी कुछ ठीक नहीं है। ऐसी हालत में हम ज्यादा-से-ज्यादा लैया करारी, झुनझुना, फुग्गा के कारखाने डाल सकते हैं।

साधो, सकलेचा जी कहते हैं कि मैं पहले सिक्किम जा रहा था पर मौसम खराब होने के कारण नहीं गया और नेपाल चला गया। अब यह भी कोई सवाल है कि सिक्किम क्यों जा रहे थे। अरे, सिक्किम पश्चिमी जर्मनी और जापान से कम नहीं है उद्योगों में। तो सिक्किम के उद्योग लेने गए होंगे। या वहाँ कोई सोने के भंडार का पता उन्हें लगा होगा, उसे लेने गए होंगे, जिससे हम योजनाएँ चला सकें। साधो, जहाँ तक सरकारी विमान में जाने का सवाल है, तो शौक किसे नहीं होता। जब लड़के को पहली नई साइकिल मिलती है तब वह उसमें दो-दो घंटी लगाता है, फुग्गे लगाता है और टन्-टन्-टन्-टन्-टन् फुर-फुर-फुर-फुर करता हुआ अपने दोस्तों को दिखाता फिरता है—देख मेरी साइकिल। कैसी बढ़िया है। साधो, इसी तरह मुख्यमंत्री बताते हैं—देख मेरा हवाई जहाज। अब तो अपने हवाई जहाज में ही चलता हूँ।

साधो, फिर सकलेचा जी ने विमान का किराया दे दिया है। वे मुफ्त में तो गए नहीं। जब किराया देकर गए तो फिर अफीम बेची हो या पैसे जमा किए हों, कोई दोष नहीं बनता। कोई जेबकतरा रेल में जेब काटते पकड़ लिया तो वह जेब से टिकिट निकालकर दिखा सकता है—यह देखो टिकिट। टिकिट लेकर सफर कर रहा हूँ। बिना टिकिट चलकर मैं जेब नहीं काटता। मेरे ऊपर कोई केस नहीं बनता।

साधो, राजनारायण वगैरह यह हमला बंद करें। अफीम बेचने की बात बार-बार फालतू न उछालें। माना कि मंदसौर और आसपास अफीम का रिकार्ड उत्पादन हुआ है, पर उसे बेचने के लिए तस्करों की सेवाएँ तो हाजिर हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असुरक्षा की राजनीति

साधो, सदाबहार राजनीतिज्ञ बाबू जगजीवनराम, जो दिन को सूरजमुखी हैं और रात को रातरानी, असली जनता (जे) बनकर 10 दिन बाद उस असली को डुबाकर आखिर भूकम्प करने की घोषणा करके कांग्रेस (अर्स) वासी हो गए। उनकी आत्मा को कम-से-कम अब शान्ति मिले। कांग्रेस (इ) में अगर उन्हें कुछ आशा के साथ भरती होने को मिलता तो वे वहीं जाते। उन्हें अनाथालय की तलाश थी और सरकारी अनाथालय प्राइवेट अनाथालय से अच्छा होता है। पर उधर से कुछ इशारा नहीं मिला।

साधो, तुम सोचते हो कि यह क्या हो रहा है? जनता, जनता (एस), भारतीय जनता और जनता (जे) पर जनता पार्टियाँ हो गईं। चरणसिंह का लोकदल हो गया और राजनारायण की जनता (एस)। एक-दूसरे से लड़ाई। एक-दूसरे की पोल उछालना। काट-छाँट। टाँग खींचना। इधर-से-उधर भागना। हाय मैया! पार्टी तोड़ना और बनाना। सुबह कुछ बोलना शाम को उससे उलटा। हड़कम्प। यह सब क्या है? आपस में इनका व्यवहार ऐसा है, जैसा इस चुटकुले में कहा गया है—एक आदमी के घर मेहमान आ गए। दो थालियाँ कम पड़ गईं। वह पड़ोसी के घर से थालियाँ माँग लाया। जब वे लोग खाना खा रहे थे तब वह पड़ोसी अचानक वहाँ पहुँच गया। उसने देखा कि उसकी थाली में गोश्त खाया जा रहा है। उसे गुस्सा आया। उसने कहा, तुम मेरी थाली में गोश्त खा रहे हो, मैं तुम्हारी थाली में मैला खाऊँगा। इसी तरह का आचरण इनका रहा है। एक थाली में गोश्त खा रहा है तो दूसरा मैला खाने को तैयार है।

साधो, यह असुरक्षा की राजनीति है, एकमात्र असुरक्षा की! सुरक्षा या असुरक्षा का सम्बन्ध सत्ता से होने या नहीं होने से नहीं है। कम्युनिस्ट बहुत कम सत्ता में रहे। सीटें घटती-बढ़ती रहीं। मगर कम्युनिस्ट असुरक्षा महसूस नहीं करता, न असुरक्षा की राजनीति करता है। उसे न निराशा होती है, न घबराहट। किसी कम्युनिस्ट ने दल-बदल नहीं किया। उसे अपनी विचारधारा में विश्वास है। उसकी आस्था अडिग है कि समाजवाद तो आएगा ही। यह इतिहास की गति है। मगर साधो, ये लोग जो जनता पार्टी के नाम से सत्ता में रहे, तब भी असुरक्षा की राजनीति करते रहे। सत्ता के लिए हैं—मजबूत दीवारें हैं, फाटक बंद हैं। पहरेदार लगे हैं मगर राजा साहब किले में बैठे-बैठे डर से काँप रहे हैं! समझदार समझाता है—राजा साहब, आप मजबूत किले में हैं। हथियारबंद सैनिक आपकी रक्षा कर रहे हैं। आप क्यों डरते हैं? राजा जवाब देता है—सुनो, उधर दूर से शेर के दहाड़ने की आवाज आ रही है। सलाहकार कहता है—मगर हुजूर, आप मजबूत किले में हैं। राजा कहते हैं—किले में तो हूँ, मगर उधर जंगल में शेर है ना; डरना तो है। इन नेताओं का हाल सत्ता के किले में बैठकर भी इन राजा साहब सरीखा था। याद करो तो जानोगे कि तीन साल सत्ता में रहकर ये हमेशा असुरक्षित महसूस करते रहे और जो भी उन्होंने किया वह असुरक्षा की भावना से।

साधो, अब ये सत्ता से बाहर हो गए हैं। तब तो और अधिक असुरक्षा से ग्रस्त हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका हाल ऐसा है कि कुछ आदमी रास्ता भूल गए। जो रास्ता भूल गए वे बियावान जंगल में भटक गए। घना जंगल है। जंगली जानवर हैं। शाम हो गई है, बादर घिर आए हैं। बिजली चमक रही है। वे कोई सुरक्षित स्थान खोजें, कोई टूटा-फूटा पुराना मंदिर दिखता है! वे सब उसमें घुस जाते हैं, मूसलाधार वर्षा हो रही है। जंगल में शेर दहाड़ रहा है। मंदिर में बौछार मार कर रही है। साँप-बिच्छू का डर है! छत से मिट्टी और पत्थर गिर रहे हैं। ऐसे में कोई उनसे कहे कि आओ नीति और सिद्धांत की बातें करें। आदर्शों की बातें करें, देशसेवा की बातें करें, तो वे खीझकर कहेंगे—क्या फालतू बातें करते हो जी—मेरे ऊपर तो छत की मिट्टी गिर रही है। अरे मुझे न जाने किस कीड़े ने काट लिया। मैं तो बिलकुल भीग गया। साधो, वे सुरक्षित कोने में बैठने के लिए आपस में लड़ेंगे भी। यह जगह तेरी है क्या? तो क्या तेरे बाप की है। अरे क्या तेरे परदादा ने बनवाया था इसे? साधो, वे भटकने के लिए एक-दूसरे को दोष देंगे। तूने रास्ता चुना था। तूने भटकाया, अगर मेरी बात मानते तो यह मुसीबत नहीं आती।

साधो, ऐसी असुरक्षा की राजनीति चल रही है। मगर बाबूजी ने वादा किया है कि वे देश की राजनीति में सुधार लाएँगे।

टिकिट की खिड़की बंद

साधो, चुनाव के टिकिट बंद हो गए। टिकिट माँगनेवालों में सभी कांग्रेस (इ) यानी इंदिराजी के सच्चे सिपाही थे। कोई पद नहीं चाहता। इंदिराजी के नेतृत्व में जनता की सेवा मात्र करना चाहते थे। इन सच्चे सिपाहियों में वे भी हैं जो ढाई साल तक विरोध में रहकर इंदिराजी की तानाशाही से देश की रक्षा करने में लगे थे। जब इनसे देश की रक्षा नहीं हो सकी और वह 'तानाशाह' फिर सत्ता में आ गई तो इन वीर सिपाहियों ने फौरन तानाशाह के दरबार में आकर कहा कि हम तो आपके ईमानदार सिपाही हैं। इन ईमानदार सिपाहियों ने भी टिकिट के लिए अर्जी दी थी और उनमें से अधिकतर को टिकिट नहीं मिला। अब इन ईमानदार सिपाहियों का पार्टी के प्रति क्या कर्तव्य है? यही कर्तव्य है कि अपनी पार्टी के उस सिपाही को हराने की कोशिश करें जिसे टिकिट दे दिया गया है। आखिर वे निःस्वार्थ सेवक हैं, पदलोलुप नहीं हैं, सच्चे सिपाही हैं। सच्चा सिपाही वह होता है जो उसी खजाने को लुटवा देता है, जिसकी रक्षा के लिए वह तैनात है।

साधो, विरोध पक्ष का यह हाल है कि उसकी टिकिट पर दहेज लगने लगा है। लड़की की शादी में जैसे लड़कावाला दहेज लेता है, वैसे ही दक्षिणपंथी इन पार्टियों का टिकिट जब किसी को पेश किया जाता है, तो वह पूछता है—साथ में रुपए कितने दोगे ? गोया इन पार्टियों का टिकिट कानी लड़की है, जिस पर खासा दहेज लगता है। साधो, जनता पार्टी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का यह हाल है; हर बार टूटती है और हर बार पुकारती है–इंदिरा की तानाशाही से लड़ने को एक हो जाओ। फिर टूटते नेता नारा लगाते हैं–एक हो जाओ अधिनायकवाद से लड़ने के लिए। उस आदमी की तरह जो उफनती नदी में जान-बूझकर कूदता है और चिल्लाता है–बाढ़ से अपने को बचाना हमारा कर्तव्य है। बाढ़ से जमकर लड़ो, बाढ़ से लड़ना है, तो आप बाढ़ में कूद क्यों गए हैं। इंदिरा के अधिनायकवाद से एक होकर लड़ना है तो आप लोग टूट क्यों रहे हो! टूट-टूटकर पाँच टुकड़े जो हो गए, तब अभी बम्बई में नेता लोग इकट्ठे हुए और विचार किया कि हम एक हो जाएँ। एक होकर इंदिरा गांधी से लड़ें। सवाल है कि एक होकर ही लड़ना था तो आपस में क्यों लड़े? अलग-अलग क्यों हुए ? हमें क्या पता था कि एक जनता पार्टी में इतनी 'असली' पार्टियाँ छिपी हैं।

साधो, ये 1977 में एक हो गए थे। जनता ने इन्हें राजसत्ता भी सौंप दी थी। केंद्र और राज्य का शासन इन एक हुओं को सौंप दिया था, मगर इन्होंने इसके बाद क्या किया? इनसे शासन करते नहीं बना। यूँ आपस में लड़-झगड़कर अलग होने लगे, जिससे आगे चलकर फिर एकता का अभियान चला सकें। मगर जनता कहती है कि अब तुम्हारी एकता से हमें डर लगने लगा है। तुम अलग-अलग रहते हो तो बुद्धिमान, कर्मशील और भले होते हो, मगर एक होने पर जड़, झूठे, नीच, निकम्मे हो जाते हो।

साधो, इन दक्षिणपंथी विपक्षी दलों में जो भूतपूर्व कांग्रेसमैन हैं वे तो इसलिए इंदिरा गांधी से लोकतंत्र की रक्षा कर रहे हैं, क्योंकि उन्हें इंदिरा कांग्रेस में प्रवेश नहीं मिला। जगजीवनराम अगर स्वर्णसिंह की तरह मेंढक की पलटन में भरती हो सकते तो क्या वे आज इधर लोकतंत्र की रक्षा करते होते? जब तक इंदिरा गांधी बुला न लें तब तक वे लोग इंदिरा गांधी से लोकतंत्र को बचाते जाएँगे।

साधो, असली जनता पार्टी तो भारतीय जनता पार्टी है, जिसके अध्यक्ष अबकी वही प्यारे अटलबिहारी वाजपेयी हैं, जिनका लच्छेदार भाषण तुम दो-तीन पुड़ा मूँगफली खाकर सुनते हो। आर.एस.एस. का हर काम असली होता है। जनता पार्टी 1977 में बनाना भी संघ का असली काम था। गलती यह हो गई कि शाखा में जैसे चड्डीवाले छोकरों को कवायद कराते हैं वैसे ही जनता पार्टी में बचकानी राजनीति करने लगे। मगर दूसरे नेता थे बूढ़े घाघ। कई घाट का पानी पिए हुए। कई अखाड़ों की धूल लगाए हुए। इन घाघों ने संघ की शिशु मंदिरी राजनीति को ऐसे चित कर दिया, जैसे कोई उस्ताद नए लड़के को कुश्ती लड़ना सिखाता है।

साधो, सिकंदर बख्त, जेठमलानी, चनपुरिया वगैरह को छोड़ो। ये बाहरी लोग हैं। जनसंघ ही असली पार्टी है। इसलिए भारतीय जनता पार्टी नाम नकली है। यह पार्टी भी इंदिरा के अधिनायकवाद से लड़ने का दावा कर रही है। वाजपेयी कहते हैं–सब एक होकर इंदिरा की तानाशाही से लड़ो, मगर कोई पार्टी वाजपेयी की पार्टी को साथ देने के लिए तैयार नहीं है। वाजपेयी, चंद्रशेखर, अर्स, चरणसिंह, जगजीवनराम से कहते हैं कि हमें भी साथ ले लो और ये जवाब देते हैं–वाजपेयीजी, हें-हें! वैसे आप अच्छे आदमी हैं मगर बात यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि जरा बदनामी होती है जात-बिरादरी में। बुरा मत मानिए। जरा दूर ही रहिए। तो साधो, भारतीय जनता पार्टी ने तय कर लिया कि हम अकेले ही लड़ेंगे। अछूतों को जब ब्राह्मणों, ठाकुरों ने पास नहीं आने दिया तो अछूतों ने घोषणा कर दी कि हम असली ब्राह्मण हैं। ये जो ब्राह्मण ठाकुर कहलाते हैं, नीच जाति के हैं। हम इनका छुआ पानी भी नहीं पीते। यह मजबूरी का ब्राह्मणवाद है साधो!

महात्मा गांधी के खून का

साधो, चुनाव के नामांकन पत्र दाखिल हो गए। अब प्रचार का कार्य शुरू हो रहा है। महात्मा गांधी का पुण्य संपूर्ण भारत पर मँडरा रहा था, और लोग आशा लगाए थे कि यह पुण्य हमारी भूमि पर गिरेगा। आखिर यह जबलपुर में गिर गया। यह पुण्य है–महात्मा गांधी के पोते राजमोहन गांधी, जो जनता पार्टी के टिकिट पर चुनाव लड़ रहे हैं। बहुत बड़ी बात है। उनका स्वागत है। उनके चरणों की रज भूमि पर पड़ी। हम धन्य हो गए। महात्मा गांधी के हम भक्त हैं। उनका आभार हम उतार नहीं सकते। उनके बेटे, पोते आदि की सहायता के लिए हम कुछ भी कर सकते हैं। अगर राजमोहन गांधी बेकार होते, गरीब होते, भूखे होते तो हम चंदा करके उन्हें पाल देते। हम इतने अहसान फरामोश नहीं हैं कि महात्मा गांधी के पोते को भूखा देखते।

मगर साधो, राजमोहन गांधी को इस तरह का कोई कष्ट नहीं है। सम्पन्न हैं। वे मजे के खाते-पीते आदमी हैं। पूँजीपति घरानों से उनके सम्बन्ध हैं। वे एक पत्र निकालते हैं अंग्रेजी में, जिसका नाम 'हिम्मत' है। इस पत्र को वे एशिया की आवाज कहते हैं। ये एशिया की आवाजवाले हम अधमों के बीच एक तुच्छ काम के लिए आ गए–चुनाव लड़ने! इन्हें रोटी नहीं चाहिए। इन्हें वोट चाहिए। और वोट है राजनीति का मामला। हमें सोचना पड़ेगा।

साधो, कठिनाई यह है कि उनका परिचय इसके सिवा कुछ है ही नहीं कि वे गांधीजी के पोते हैं। ये राजमोहन गांधी कौन हैं? गांधीजी के पोते हैं। ये क्या करते हैं? गांधीजी के पोते हैं। इनकी तारीफ? गांधीजी के पोते हैं। इन्होंने कौन-सा राजनैतिक काम किया है? इनकी कोई देश-सेवा है? गांधीजी के पोते हैं! यानी राजनीतिज्ञ नहीं हुए, गांधीजी की बकरी हो गए। यही सब परिचय तो गांधीजी की बकरी का है।

साधो, तुम पूछोगे कि गुरु, इन राजमोहन गांधी को क्या सूझी? वे आखिर चुनाव क्यों लड़ रहे हैं। सुनो, उनके हौसले ऊँचे हैं। उन्होंने अपने पत्र 'हिम्मत' में लेख लिखा है–मैं क्यों खड़ा हूँ। इसमें उन्होंने लिखा है कि राजनीति बहुत गंदी हो गई है और चुनावों में बड़ा भ्रष्टाचार होता है। मैं इनके शुद्धिकरण के लिए चुनाव-मैदान में उतरा हूँ। बहुत अच्छी बात है। मगर सवाल उठते हैं। एक सवाल तो यह है कि एक आदमी राजमोहन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी के चुनाव जीत जाने से सारे देश का राजनैतिक जीवन कैसे शुद्ध हो जाएगा। एक पिद्दी के शोरबे से सारी बारात कैसे भोजन कर लेगी? दूसरा सवाल यह है कि देश की राजनीति को सबसे गंदा करनेवाली जनता पार्टी के माध्यम से शुद्धिकरण आप कैसे कर लेंगे। आप, आपका यह हाल है कि सफाई दरोगा खुद गटर में नहाने लगा। फिर सवाल यह है कि आपके चुनाव में क्या भ्रष्ट तरीके नहीं अपनाए जाएँगे ? अगर अपनाए जाएँगे तो भ्रष्ट तरीके से जीतकर आप देश की राजनीति को शुद्ध कैसे करेंगे। डाका डालकर आप डाकू-उन्मूलन करने कैसे चल पड़े। आपके चुनाव का खर्च किन साधनों से आएगा।

साधो, गांधीजी भी लोकजीवन को शुद्ध करते थे। वे कैसे करते थे। वे उपवास करते थे। पर वे यह नहीं कहते थे कि मैं दूसरों को सुधारने के लिए उपवास कर रहा हूँ। उनके इस तरह के उपवास से तमाम लोग शुद्ध होते थे। अगर राजमोहन गांधी सचमुच राजनैतिक जीवन को शुद्ध करना चाहते हैं, तो हम उनके लिए शामियाना लगा देते हैं। रामधुन गाने का इंतजाम कर देते हैं। वे उपवास करें। यही गांधीवादी मार्ग है, जो पोता होने के कारण उन्हें अपनाना चाहिए। उनके 10-12 दिन के उपवास का काफी असर पड़ेगा।

साधो, राजमोहन को क्या यह बताना पड़ेगा कि जनता पार्टी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की पार्टी है। संघ हिंदू सांप्रदायिक संगठन है। इसी हिंदू सांप्रदायिकता के उन्माद ने गांधीजी की हत्या गोडसे से कराई थी। संघवाले कहते हैं कि गोडसे ने बहुत पहले संघ छोड़ दिया। पर उसके भाई गोपाल गोडसे ने लिखा है कि नाथूराम गोडसे ने फाँसी पर जाते समय वही मातृभूमि की वंदना की थी, जो संघ की शाखाओं में की जाती है—नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमि। तो नाथूराम गोडसे ने इस प्रार्थना को सीखा कहाँ। राजमोहन आखिर आप महान् पितामह की हत्या करानेवालों के उम्मीदवार कैसे हो गए !

साधो, राजमोहन गांधी ने यह भी नहीं सोचा कि उनके पितामह ने जिस देश को आजाद किया, उसे ढाई साल में ही काफी नुकसान पहुँचानेवाली जनता पार्टी में शामिल नहीं होना चाहिए और जनता पार्टी है कौन-सी? जगजीवनराम का बिस्तर बँधता और खुलता है। वे चुनाव के बाद सौदा करके पार्टी छोड़ देंगे। बचे चंद्रशेखर वगैरह, जनसंघी और प्रजा समाजवादी। इनमें संघी ही अंत तक रहेंगे। वे अब लौटकर जनसंघी नहीं हो सकते, क्योंकि बलराज मधोक ने शुद्ध जनसंघ बना लिया है। बहुत करके राजमोहन गांधी खुद जनता पार्टी छोड़ देंगे।

साधो, तुम पूछोगे कि गुरु, अब कर्तव्य क्या है? जबलपुर के साधु का कर्तव्य नहीं जानते? अरे एक आदमी पैसा लेकर चुनाव लड़ने आया है तो शहर की आर्थिक स्थिति सुधारो। उसके आसपास हो जाओ और पैसा खाओ।

साधो, राजमोहन गांधी के एम.आर.ए. के आदमी होने की बात कही जा रही है। एम.आर.ए. यानी मॉरल रिआर्मामेंट, याने नैतिक पुनःशस्त्रीकरण। नैतिकता का हथियार। नैतिकता का हथियार किसके खिलाफ? मुख्यतः साम्यवाद के खिलाफ और साधारणतः सब पूँजीवाद विरोधियों और मानवतावादियों के खिलाफ! यह सी.आई.ए. द्वारा चलाया जानेवाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगठन है। यह अमेरिकी साम्राज्यवाद का समर्थक है। दूसरा एक संगठन और है—कांग्रेस फार फ्रीडम ऑफ कल्चर। इनका कहना है कि सांस्कृतिक स्वतंत्रता केवल पूँजीवादी व्यवस्था में होती है। ये संस्थाएँ सबसे ज्यादा सक्रिय सन् '50 से '60 तक थीं। अब ठंडी हैं, क्योंकि पोल खुल गई है। इन संस्थाओं के सदस्य अपने देश के भले की अपेक्षा अमेरिका के हितों की ज्यादा रक्षा करते हैं। राजमोहन गांधी की राजनीति, विदेशी सम्बन्ध और देशभक्ति इसी से समझी जा सकती है। मगर महात्मा गांधी के खून हैं।

दो के बाद कभी-कभी

साधो, हरियाणा विधानसभा में नारों की लड़ाई हो गई। कांग्रेस मंत्री ने कहा—हमारा नारा है, पहला बच्चा अभी नहीं, दो के बाद कभी नहीं। मगर जनसंघ का नारा है—पहला बच्चा अभी-अभी, दो के बाद कभी-कभी। हालाँकि एक जनसंघ सदस्य ने कहा कि यह हमारा नारा नहीं है। बात यह है कि परिवार नियोजन राष्ट्रीय कार्यक्रम हो गया है और इसमें बाधा डालनेवालों को सजा भी मिलती है। पर साधो, जनसंघ कहे कुछ, नीति उसकी यही है और मुझे पसन्द है। पहला बच्चा अभी पैदा कर लो। देरी मत करो। फिर दो के बाद कभी-कभी पैदा करो। इस तरह 7-8 तो कर ही लो। माँ और बेटी एक साथ बच्चा दें, यह आदर्श स्थिति है।

साधो, ज्यादा बच्चे पैदा करने के पीछे एक ठोस तर्क है। हमें हिंदुओं की संख्या बढ़ानी है। तभी मैं पहले भी जनसंघ के साथ माँग करता था कि नसबंदी ईसाइयों और मुसलमानों की कराओ। हिंदुओं की नहीं। वरना मुसलमानों और ईसाइयों की संख्या बढ़ जाएगी। उधर मैं उन मुल्ला-मौलवियों से भी सहमत हूँ कि इस्लाम में परिवार नियोजन कुफ्र है—खूब मुसलमान पैदा करो।

साधो, इस तरह अपनी-अपनी जाति की संख्या बढ़ाने की होड़ लगी थी। हिंदू नेता और मुसलमान नेता दोनों समझते थे कि गृहयुद्ध होगा और तब जो जाति संख्या में बड़ी होगी, वह जीतेगी। जनसंघी समझते हैं कि सारे हिंदू चुनाव में उन्हीं को वोट देंगे। और जमाते-इस्लामी के नेता समझते हैं कि सारे मुसलमान, मुसलमान को ही वोट देंगे। इतने चुनाव हुए। देखा गया कि हिंदू, मुसलमान को वोट दे देते हैं। ये सब गद्दार ही हुए और इन्हें सजा मिलनी चाहिए। कितने ही हिंदू और मुसलमान कम्युनिस्ट हैं। याने नस्लवाद चल नहीं रहा। फिर भी कोशिश जारी रखनी चाहिए। भारत दुनिया-भर में नस्लवाद का विरोध करता है, भारत में तो वह होना ही चाहिए। कोई आगे चलकर पूछे कि नस्लवाद क्या है, तो हम बता सकें कि भारत में सब कुछ है। यह देखो, नस्लवाद—सेम्पल हीअर विथ।

साधो, ये 7-8 बच्चे जो होंगे वे क्या होंगे? भूखे मरेंगे, पूरे कपड़े नहीं होंगे? शिक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं होगी। ये हिंदू नहीं, नाली के बिलबिलाते कीड़े होंगे। ऐसे मनुष्यनुमा कीड़ों से ही कोई जाति ताकतवर और श्रेष्ठ होती है। इसलिए ऐसे आदर्श जाति भाई पैदा करते जाओ।

साधो, तुम पूछोगे कि जब जनसंघ परिवार नियोजन के विरोध में है, तो अब सम्मेलन क्यों करने लगा। एक कारण तो साधो, आपातकाल का डर है। दूसरा कारण उसका चरित्र है। मैं नहीं कहता, पर इंदिरा गांधी ने जो कहा वह बताता हूँ। एक विदेशी पत्रकार से इंदिराजी ने कहा—हमारे देश में फासिस्ट संगठन हैं। प्रजातंत्र-पद्धति के विरोधी हैं। पर ये प्रजातंत्र की कसम खाते हैं और अब कह रहे हैं कि देश में प्रजातंत्र का नाश हो रहा है। यह ऐसा ही हुआ कि एक लड़के ने अपने माँ-बाप को मार डाला। जब अदालत में पेश किया गया तो न्यायाधीश से कहता है—हुजूर, मुझे माफ किया जाय, मैं अनाथ हूँ।

सिद्धान्तों का छुरा

साधो, उत्तरप्रदेश में रामनरेश यादव हार गए। भगवान यह शुभ दिन सब मुख्यमंत्रियों को दिखाए। 27 को कर्पूरी ठाकुर का ऐसा ही मंगल हो। यह शुभ दिन अपने सकलेचा जी की किस्मत में तब आ सकता है, जब जनता पार्टी का विश्वास चाहे प्राप्त हो, पर नागपुर का विश्वास उठ जाय। जनसंघ का यहाँ इतना बहुमत है कि मुख्यमंत्री तो उन्हीं का होगा। साधो, लखनऊ में संघ ने तो यह कोशिश की थी कि मतदान की झंझट ही न हो। संघ में न सरसंघ चालक चुने जाते, न कार्यवाह, न प्रांत प्रचारक, न नगर कार्यवाह। संघ ने यही भारतीय संस्कृति का तरीका अपनाया था कि न रामनरेश इस असार संसार में रहेंगे न मतदान का मौका आएगा। पर रामनरेश के ग्रह अच्छे नहीं थे। उन्हें तो हारना था। इसलिए सिर्फ पेट में मामूली घाव हुआ।

साधो, उत्तरप्रदेश की जनता पार्टी का यह झगड़ा क्या है? तुम समझते होगे कि यह लड़ाई धर्मनिरपेक्ष और सांप्रदायिक लोगों के बीच है। नहीं, ऐसा नहीं है। जनता पार्टीवालों पर उनका दुश्मन भी यह आरोप नहीं लगा सकता कि वे कोई सिद्धांत का पालन करते हैं। वे इतने घटिया नहीं हैं कि सिद्धांत से अपने को बाँध लें। यह सही है कि राजनारायण लगातार संघ पर हमले कर रहे हैं। यह भी सही है कि बीजू पटनायक ने कहा है कि दिल्ली और नागपुर, ये दो राजधानियाँ नहीं चल सकतीं। यह भी सही है कि एक मीटिंग में मोरारजी ने डॉक्टर स्वामी से कहा कि तुम कहते हो कि संघ एक सांस्कृतिक संगठन है तो क्या वह भरत नाट्यम और कुचिपुड़ी नृत्य करता है। यह सब सही है। मगर लड़ाई सिद्धांत की है, यह कहकर जनता पार्टी के ऊँचे स्टैंडर्ड को गिराओ मत।

साधो, अगर यह लड़ाई सांप्रदायिक ताकतों के खिलाफ थी तो सी.एफ.डी. और संगठन कांग्रेस ने जनसंघ का साथ क्यों दिया? ये दोनों गैर-सांप्रदायिक गुट हैं। चरणसिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने दिल्ली में दो दिन पहले अपने घर पर बाबू जगजीवनराम और बहुगुणा को भोजन भी कराया था कि ये मेरे रामनरेश को बचा लेंगे। पर बाबूजी और बहुगुणा ने घर लौटकर मुँह में अँगुली डालकर उल्टी करके वह भोजन निकाल दिया और जनसंघ का साथ देकर रामनरेश को गिरा दिया।

साधो, बात तो सीधी है। 1977 मार्च में जनसंघ और लोकदल ने उत्तर भारत को बाँट लिया था। लूट का माल था। चरणसिंह को उम्मीद हो गई थी कि जनसंघ मुझे अब प्रधानमंत्री बना देगा। पर इस बीच जनसंघ ने सोचा कि अपना काम मोरारजी से ज्यादा अच्छा निकलेगा। सो उसने मोरारजी का समर्थन करना तय कर लिया। यहीं से चौधरीजी की खटक गई। चौधरी ने कहा कि हम जनसंघ को पानी पिलाएँगे और संघ ने कहा कि हम चौधरी साहब को तेली बना देंगे।

साधो, बाबू जगजीवनराम के लोकतंत्री कांग्रेस गुट का मामला भी साफ है। चौधरी ने बाबूजी को मार्च 1977 में प्रधानमंत्री नहीं बनने दिया था। फिर सुरेश-सुषमा-कांड को उठाकर उन्होंने बाबूजी की राजनैतिक हत्या की भी कोशिश की। बाबूजी चौधरी को माफ नहीं कर सकते। मोरारजी और बाबूजी चौधरी के खिलाफ एक हो गए। मोरारजी से बाला साहब देवरस ने कहा कि प्रधानमंत्री तो वही रहेगा जिसे हम चाहेंगे। अभी हम तुम्हें चाहते हैं। बोलो, आदेश मानोगे? करो ध्वज-प्रणाम। मोरारजी ने कर लिया और जमकर कुर्सी पर बैठ गए।

साधो, बेचारे संगठन कांग्रेसी अगर गैर-सांप्रदायिक रामनरेश को वोट दे देते तो उनके प्रधानमंत्री को 'डिसमिस' कर दिया जाता। इसलिए उन्होंने महात्मा गांधी की जय बोलकर संघ का साथ दे दिया और बाबूजी ने चौधरी से एक बदला ले लिया। अब अगर तुम इस लड़ाई में सिद्धांत खोजते हो तो देखो कितने ऊँचे-ऊँचे सिद्धांत हैं।

मंडन करें—खंडन नहीं

साधो, हम साधु हैं। कष्ट में पड़े आदमी के प्रति हमारे मन में दया उत्पन्न होती है। हमें उसकी सहायता करनी चाहिए। सब विधि के बनाए जीव हैं—चाहे इंदिरा गांधी हों, या चरणसिंह, या जगजीवनराम या बाला साहब देवरस। सबको विधाता ने बनाया है। ऐसा तो है नहीं कि किसी को ईश्वर ने बनाया हो और किसी को शैतान ने। हमें सबकी मदद करनी चाहिए।

साधो, इस समय बाला साहब देवरस संकट में हैं। वे कैफियत दे रहे हैं। प्रतिवाद कर रहे हैं। पत्रकारों से माफी भी माँग रहे हैं। बात क्या है? कुछ इतनी कि यू.एन.आई. ने समाचार दे दिया कि देवरस जी ने भोपाल में एक गुप्त मीटिंग में कहा कि संघ 10 साल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भारत में शासन पर कब्जा कर लेगा। 'हितवाद' ने इसकी पुष्टि कर दी। अब इसके खिलाफ प्रतिक्रियाएँ हो गईं। डटकर विरोध हुआ। चंद्रशेखर तक ने कहा कि ऐसा है तो हमें संघ से लड़ना पड़ेगा। परेशान होकर बाला साहब ने उज्जैन में खंडन कर दिया कि मैंने ऐसा नहीं कहा।

साधो, फिर वे भोपाल आए। अब मुसीबत देखो। एक तो सकलेचा के ईमानदार आचरण से परेशानी। सकलेचा ने नाबालिग बेटे के नाम से जो जमीन खरीदी, उसकी डुगडुगी आयकर विभाग ने पिटवा दी। यों तो नाबालिग लड़के के नाम से ही नहीं, पेट के बच्चे के नाम से भी प्रापर्टी खरीद सकते हैं। पर सुना है कि सकलेचा जी ने वल्दियत नहीं लिखाई, माँ का नाम लिखाया है। ऐसा होता नहीं है। अमुक वल्द अमुक ही लिखा जाता है। पर, बाप की जगह माँ का नाम लिखाना संघ की नैतिकता हो सकती है। तो एक तो बाला साहब को यह सिरदर्द! फिर पत्रकारों ने कहा कि आप हमें झूठे, शरारती कहते हैं, तो भोपालवाले उस भाषण का 'टेप' सुना दीजिए। पहले तो कहा कि सुना देंगे, पर फिर नहीं सुनाया। तो पत्रकारों ने फिर हल्ला किया।

साधो, हम तो छोटे आदमी हैं। बाला साहब बड़े हैं। पर छोटे भी काम आते हैं। शेर जब जाल में फँस गया था तब जाल को चूहे ने ही काटा था। हम चूहे हैं। पर देवरस साहब के जाल को काटने की कोशिश हमें करनी चाहिए। साधो, मैं बाला साहब को सलाह देना चाहता हूँ कि वे खंडन न किया करें। खंडन उस आदमी का कारगर होता है जिसके बारे में लोग यह विश्वास करते हों कि यह सच भी बोलता है। जब लोग यह माने बैठे हों कि ये तो हमेशा झूठ ही बोलते हैं, तब खंडन को एक और झूठ मान लिया जाता है। मेरी सलाह है कि देवरसजी खंडन किया ही न करें।

साधो, दूसरी सलाह यह है कि वे एक टेप फौरन तैयार करा लें, जिसमें यह न हो कि संघ 10 साल में शासन पर कब्जा कर लेगा। ऐसा टेप उन्हें उज्जैन में ही करा लेना था। असल में उन्हें हमेशा दो टेप रखने चाहिए—एक सच्चा और दूसरा झूठा। आजकल तो फोटोग्राफी यह कमाल कर देती है कि स्त्री और पुरुष के अलग-अलग फोटो मिलाकर उन्हें सम्भोग की स्थिति में बता देती है। बाला साहेब दूसरा टेप दिल्ली में पत्रकारों को सुना दें।

साधो, कुछ बातें लोग मान चुके हैं। कितना भी खंडन करो, वे नहीं विश्वास करेंगे। लोगों को विश्वास है कि संघ का राजनैतिक उद्देश्य है। वह एक राजनैतिक संगठन है। वह पहले जनसंघ के नाम से और अब जनता पार्टी के नाम से जनता व सत्ता पर कब्जा करना चाहता है। पर इसमें गलत क्या है? इसमें शरमाने की क्या बात है। हिंदू राष्ट्र की जो कल्पना है, वह तभी तो साकार की जा सकती है, जब राजसत्ता हाथ में हो। सत्ता न होगी तो कार्यक्रम कैसे लागू किए जा सकेंगे? इसलिए सत्ता पर कब्जा करना उत्तम उद्देश्य हैं। यह भी मान लेना चाहिए कि वह सत्ता तानाशाही होगी। इसमें क्या शर्म की बात है ? फिर उद्देश्य हिंदू राष्ट्र ही होगा, चाहे अभी छल के लिए उसे भारतीय, ईरानी या अफ्रीकी कह लें। यह सब लोग जानते हैं। इनका खंडन करने से कोई फायदा नहीं। यह भी लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानते हैं कि आर.एस.एस. आगामी चुनाव में डटकर भाग लेगा। वह जनता पार्टी का काम करेगा। स्वयंसेवक अभी से पत्थर फेंककर विरोधियों की सभाएँ भंग करने लगे हैं। अब यह भी नहीं कहना चाहिए कि संघ एक सांस्कृतिक संगठन है। लोग इस बात पर विश्वास नहीं करते, तो कहने से क्या फायदा?

साधो, देवरस जी को मेरी सलाह है कि जो फार्मूले बेकार हो गए उन्हें छोड़ दें। साधो, बाला साहब को बार-बार कहना चाहिए कि संघ 10 साल में सत्ता पर कब्जा कर लेगा। इससे स्वयंसेवकों का उत्साह बढ़ेगा। वे इस समय थोड़े हताश हैं, क्योंकि राजनीति में मार खा गए हैं। मार इसलिए खा गए कि वही राजनैतिक तरकीब अपनाई जो स्कूल-कालेज के लड़कों के साथ करते हैं। संघ के नेताओं का सरोकार इसी उम्रवालों से होता है। वह ऐसी तरकीब है—प्रोफेसर शर्मा ने सुरेश, रमेश, दिनेश में से हर लड़के से अलग-अलग कह दिया कि तुझे फर्स्ट लाऊँगा। तीनों से काम कराते रहे। रमेश से सब्जी बुलवाते रहे, दिनेश से किराना बुलवाते रहे और सुरेश से कपड़े सिलवाते रहे। और अब रमेश के मुँह से निकल गया कि 'टॉप' मैं करूँगा, शर्मा सर ने वादा किया है। तो दिनेश ने कहा—अरे यार, यही तो शर्मा सर ने मुझसे कहा है। बड़ा बदमाश है ये शर्मा। हम तीनों को बेवकूफ बनाकर अपना काम करवा रहा है। साधो, यही कालेजी पॉलिटिक्स में गड़बड़ हो गई। मोरारजी, जगजीवनराम, चरणसिंह, जार्ज, चंद्रशेखर—हर एक से संघ कहता रहा कि तुम ही प्रधानमंत्री बनोगे। दूसरा कोई नहीं। मगर यह कपट खुल गया। कोई बात नहीं। अभी 10 साल का समय है। बस, देवरस जी खंडन न किया करें।

नेहरू का फोटो और नीतियाँ

साधो, छोटे लोग जब किसी दुर्घटनावश या भाग्यवश सत्ता के पदों पर पहुँच जाते हैं तब वे ऊपर मुँह करके देखते हैं कि हमारे ऊपर कौन है। उन्हें ऊपर कोई दिख जाता है तो कुछ उस पर थूकने की कोशिश में अपने ऊपर ही थूक गिरा लेते हैं। कुछ अनमने हो जाते हैं।

साधो, एक ऐतिहासिक एक्सिडेंट से जब जनता पार्टी सत्ता में आई तो इस कुनबे ने देखा कि ऊपर वह जवाहरलाल नेहरू है। इसी की बेटी ने इमर्जेंसी लगाई थी। तो जार्ज फर्नांडिस जैसे लोगों ने ऊपर नेहरू पर थूका जो उन्हीं पर गिरा। और मोरारजी भाई जैसे लोग जो पहले नेहरूजी की नीतियों को कुनमुनाकर मानते थे, क्योंकि विरोध करने का न साहस था न हैसियत, वे केवल अनमने होकर रह जाते हैं। जार्ज फर्नांडिस की वीरता का यह हाल है कि वे खुद कहते हैं कि मेरे मंत्रालय की गुप्त फाइलें भी टाटा-बिड़ला को मालूम हैं। मोरारजी भाई जब तक इंदिरा गांधी के डिप्टी थे, तब तक नेहरू जयंती में शामिल होते थे। अब अनमने होकर घर में रहते हैं। चरणसिंह आधुनिकता के विरोधी हैं। वे समाजवाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरोधी रहे हैं। जब नागपुर कांग्रेस में नेहरू ने सहकारी खेती की बात की थी तो चरणसिंह ने विरोध किया था। चरणसिंह ने अभी कहा है कि वे साबुन का उपयोग नहीं करते। मोरारजी भाई के बराबर होने के लिए वे आगे यह भी कहने लगेंगे कि मैं स्वमूत्र पान करता हूँ। अब मुझमें कौन-सा गुण कम है जो प्रधानमंत्री नहीं बनाया जाता। साधो, कांग्रेस के बहुत-से नेता जो 1977 तक नेहरू की जय बोलते थे, नेहरू के जन्म और मृत्यु दिवस के समारोहों में शामिल होते थे, अब शामिल नहीं होते। अनमने हो जाते हैं। ये क्या पहले इंदिरा गांधी के डर के मारे नेहरू को मानते थे? अगर इंदिरा गांधी फिर सत्ता में आ जाएँ और इन्हें तहसीलदार या थानेदार बना दें तो ये फिर नेहरू की जय बोलने लगेंगे।

साधो, तीसरी तरह के नेहरू को उखाड़ने की कोशिश में, हाथ तोड़ने की कोशिश में हाथ तोड़नेवाले जनसंघी हैं। जनसंघी बारीक राजनीति करते हैं। राजनैतिक ईमान से कोई सरोकार न होने के कारण ये पुनः इंदिरा गांधी का नेतृत्व स्वीकार कर सकते हैं। अटलबिहारी नेहरू की मौत पर रोए थे और बांगलादेश की मुक्ति के लिए इंदिरा गांधी को 'दुर्गा' कहा था। मगर साधो, सत्ता में आने के बाद वाजपेयी ने असली गुटनिरपेक्षता की नीति की घोषणा की और अमल करना शुरू किया। नेहरू की गुटनिरपेक्षता की नीति अमेरिका ने कभी पसंद नहीं की।

अमेरिका को लाइन पर लाने के लिए अटलबिहारी ने 'असली' गुटनिरपेक्षता पर चलना शुरू किया। इसी के तहत साम्राज्यवाद विरोध, उपनिवेशवाद विरोध ढीला कर दिया। नतीजा यह हुआ कि गुटनिरपेक्ष आंदोलन में जिसका नेता, अभी-अभी तक भारत था, अब अपनी कोई इज्जत नहीं है। अब वहाँ क्यूबा, लंका और वियतनाम की चलती है। साधो, इस्राइल और अमेरिका को खुश करने के लिए अटलबिहारी ने अरबों के समर्थन में ढील दिखाई। नतीजा यह हुआ कि बेचारा बहुगुणा तेल की खोज में दुनिया के चक्कर लगाता है और इधर अटलबिहारी तेल की पाइप लाइन चटकाने में लगे हैं। पर अभी अटलबिहारी अरब देशों की यात्रा से लौटे तो उनकी समझ की मरम्मत हो गई है। अब वे 'असली' का नारा नहीं लगाते।

साधो, संपूर्ण क्रांति से पैदा हुए ये दूसरी आजादी के छोटे-छोटे मालिक अब देख रहे हैं कि नेहरू की चलाई नीतियाँ ही सही हैं। मगर उस बात को खुलकर स्वीकार भी नहीं कर पाते, क्योंकि छोटापन इसमें बाधा डालता है। तो नेहरू जयंती में शामिल नहीं होंगे। नेहरू के चित्र की तरफ से मुँह फेर लेंगे। इस पर हँसी आती है। मोतीलाल नेहरू के बेटे और इंदिरा गांधी के पिता, जो जवाहरलाल थे उनका अब न कोई बुरा हो सकता न भला। वे इससे परे हो चुके हैं। इतिहास को इससे कोई मतलब नहीं है कि नेहरू खूबसूरत थे, लाल गुलाब खोंसते थे, स्त्रियों को प्रिय थे। इतिहास को मतलब नेहरू की नीतियों से है। ये जनता पार्टीवाले उन नीतियों पर चलते हुए भी नेहरू का चित्र देखकर अनमने हो जाते हैं, तब उनके पिद्दीपन पर हँसी भी आती है और दया भी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वसंत की शीतलहर

साधो, आओ। अब बैठकर सोचें कि आखिर जबलपुर नगर निगम के चुनाव-नतीजे ऐसे कैसे हो गए। आखिर क्यों जनता पार्टी की दुर्गति हुई और जनाधिकार परिषद की मिट्टी पलीद हो गई। हमें अपने मन को समझाना है और जनता को भी समझाना है। क्या कारण बताएँ? क्या रात को मत-पत्रों में गड़बड़ कर दी गई? यह कहें तो लोग उलटे कहेंगे कि सरकार तो जनता पार्टी की है, अफसर इंदिरा गांधी कांग्रेस के पक्ष में गड़बड़ क्यों करेंगे ? मतगणना में गड़बड़ी की बात भी कोई नहीं मानेगा। हाँ, यह कह सकते हैं कि जबलपुर के लोगों ने वोट नहीं दिए। वोट देने के लिए आंध्र और कर्नाटक के लोग बुलाए गए थे। पर इस पर भी लोग विश्वास नहीं करेंगे। तब क्या कारण बताएँ ? देखो, वोट के दिन तो मौसम अच्छा था। तो वोट जनता पार्टी और जनाधिकार परिषद को मिले थे। पूरी उम्मीद थी कि जनता पार्टी और जनाधिकार परिषद के जीते हुए जनसंघी मिलकर नगर निगम पर कब्जा कर लेंगे। पर रात को ही शीतलहर चालू हो गई। वसंत पंचमी को जब वोट गिने जा रहे थे, बेहद ठंड और शीतलहर थी। इसी ने वोट इंदिरा कांग्रेस के कर दिए। यह मौसम का छल है। जनता ने तो वोट दिए थे। जनता तो वोट दे देती है मगर इंदिरा गांधी मौसम को पैसा खिलाकर शीतलहर चला दे तो इसमें कोई क्या करे ?

साधो, यह नतीजा कोई आकस्मिक नहीं है। जनपदों और ग्राम पंचायतों में जनता पार्टी हार चुकी है। रायपुर नगर निगम तथा अधिकांश नगरपालिकाओं में इंदिरा कांग्रेस का ही बहुमत आया है। याने जनता जिस पार्टी को अब वोट नहीं दे रही है, वही जनता की पार्टी है। जनाधिकार परिषद भी अच्छी है और सबसे ज्यादा दुख मुझे उसी के लिए है। उसके सबसे बड़े नेता जेब में पिस्तौल लिये और कारतूसों की माला पहने घूमते थे। पर्चों पर उनका फोटो इंदिरा गांधी की तरह छपता था। मेयर उन्हें ही होना था। मगर 'जन' ने, जिसके अधिकार के लिए यह संगठन है, वोट ही नहीं दिया। 'जन-आधार' के बिना यह जनाधिकार परिषद रह गई। पांसे उलटे पड़ गए। 1977 में जिन संघियों को टिकिट नहीं मिले थे, उन्होंने यह जनाधिकार परिषद बनाई थी। यह संघ के हाईकमान का फैसला था। योजना यह थी कि जनता पार्टी के बाकी घटक तो टूट-फूट, मिट-मिटा जाएँगे। बचेगा जनसंघ। तब सब चोर एक होकर राज करेंगे। मगर इस गणित में 'जनता' को भुला दिया गया था। उसी जनता ने हराकर यह बता दिया कि हमें भूलने का यह नतीजा होता है।

साधो, समाजवादी मंत्री जबरसिंह कहते हैं कि जनाधिकार परिषद के कारण जनता पार्टी हारी। यह कुछ हद तक ठीक है। बाबूराव परांजपे गुट के स्वयंसेवक जनता पार्टी के खिलाफ काम कर रहे थे और सब मिलकर यह भी मना रहे थे कि खंडवा में कुशाभाऊ ठाकरे हार जाएँ, क्योंकि ठाकरे और बाबूराव परस्पर विरोधी हैं। आर.एस.एस. की यह तथाकथित एकता और अनुशासन भी साफ सामने आ गए। जनाधिकारवाले कहते हैं कि वे जनता पार्टी के कारण हारे हैं। तो इंदिरा कांग्रेस किसके कारण जीती ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधो, इंदिरा कांग्रेस जनता पार्टी और जनाधिकार परिषद के संयुक्त प्रयास से जीती। श्रेय इन दोनों को जाता है। जनता पार्टी सत्ता में है। यह राज ही नहीं कर रही है। इसका काम कुछ यह रहा है—मोरारजी और चरणसिंह के झगड़े तथा नानाजी देशमुख के लटके। शासन यह सरकार करती ही नहीं है। कोई आदमी शाम के बाद सड़क पर निकल नहीं सकता। औरत तो दिन में भी बाहर नहीं निकल सकती। लोग कहने लगे हैं कि इससे तो इमर्जेंसी अच्छी थी। फिर कांति और सुरेश की बदनामी संजय से आगे बढ़ गई है। अभी भी खबर है कि जार्ज फर्नांडिस के चचेरे भाई दुबई में तस्करी करते हैं। जनता पार्टी और सरकार एक मजाकिया नाटक कर रही है, और लोग जोकरों को वोट देना नहीं चाहते। वे खलनायकों को भी वोट नहीं देना चाहते। जनाधिकार परिषदवाले कोई भी तो स्वर्ग से उतरे नहीं हैं। इन्हें लोग जानते हैं। इनकी राजनैतिक ईमानदारी से भी वाकिफ हैं।

साधो, अब क्या करें? कोई उपाय करके नगर निगम को भंग करवाएँ। मगर खतरा यह है कि तब तो इतने वोट भी नहीं मिलेंगे। बड़ी मुश्किल है। समझ में नहीं आता। अब तो—

रहिमन चुप ह्वै बैठिए, देख दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहै बेर।

संसद में चुंबन-विवाद

साधो, चुंबन का विवाद एक बार फिर उठा। यों हम साधु-संन्यासियों को इस झमेले में नहीं पड़ना चाहिए। साधुओं को तो ऐसा है कि कभी चोरी-छिपे भक्ति से भगवान के नाम पर कुछ हो गया तो हो गया, वरना साधु तो पतित पावन है। चुंबन का मामला संसारी जीवों के लिए है। कुछ कहते हैं कि फिल्मों में चुंबन के दृश्य दिखाना चाहिए। कुछ इसका विरोध करते हैं। विरोध करनेवालों का यह तर्क है कि चुंबन अश्लील है और उसके फिल्मी प्रदर्शन से लोगों की रुचि और नैतिकता पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

साधो, वैसे हम जानते हैं कि हमारे बंबइया फिल्मवालों की कलादृष्टि और रुचि इतनी अच्छी है कि अगर उन्हें फिल्मों में चुंबन दिखाने की छूट मिल गई तो हम देखेंगे कि फिल्मों में नाक और कान चबाने के दृश्य आने लगेंगे। अभी शरीर-सौन्दर्य के प्रदर्शन की छूट है तो कपड़े खिसकाना और उतारना होता रहता है। फिल्म-व्यवसाय ऐसे ऊँची किस्म के भौंड़ों के हाथों में है कि प्रेम के दृश्य में वे यह दिखाने की इच्छा रखते हैं कि प्रेमी-प्रेमिका एक-दूसरे को सलाद के साथ खा रहे हैं।

साधो, मगर फिल्मों में चुंबन से बढ़कर विवाद इसी बात पर अटक गया कि चुंबन अच्छा है या बुरा। जनसंघ के कँवरलाल गुप्त ने कहा—चुंबन मात्र गंदी चीज है। मंत्री लालकृष्ण आडवाणी ने कहा—नहीं-नहीं, ऐसी बात नहीं है। वे लालकृष्ण हैं। यदि चुंबन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को गंदा कह देते तो कृष्ण-लीला का क्या होता। आडवाणी भी जनसंघ के ही हैं। दोनों शाखा से आए हैं। दोनों की नैतिकता और चरित्र की शिक्षा भी एक ही हुई है। वैसे कुछ लोग कहते हैं कि जो कुछ भी सुंदर और मानवीय है वह सब संघ में अनैतिक माना जाता है। हमें इससे मतलब नहीं। हमारी चिंता तो यह है कि अगर चुंबन अनैतिक है और संस्कृति के प्रतिकूल है तो कँवरलाल गुप्त चुंबन की जगह कौन-से सांस्कृतिक-नैतिक तरीके से पत्नी से प्रेम प्रगट करते होंगे। प्रेम में कहीं लाठी तो नहीं मारते ? खैर, इस पर निर्णय तो अटलबिहारी ही देंगे। हम छोटे लोग कुछ नहीं कह सकते।

साधो, एक संसद-सदस्य लाकप्पा ने पूछा कि भारतीय चुंबन में ही क्या बुराई है। यह बात सोचने की है। भारत में विदेशी फिल्में भी दिखाई जाती हैं, जिनमें चुंबन के दृश्य खूब दिखाए जाते हैं। टाँगें भी दिखाई जाती हैं। बहुत लोग अंग्रेजी का अक्षर नहीं समझते, पर इन फिल्मों को जरूर देखते हैं। काये भैया कितै चले? अरे जरा अंगरेजी फिल्म देखबे जा रये हैं। कौन-सी फिलम है भैया? का पता कछू अंगरेजी नाम है। भैया, फिलम कछू नई समझें। चूमाचाटी देखबे जाते हैं। साधो, यदि चुंबन दिखाने से चरित्र गिरता है तो इन विदेशी फिल्मों को भी रोक लगाना चाहिए। या शायद ऐसा हो कि अंगरेज अंगरेज का चुंबन बुरा नहीं होता। उससे देखनेवाले पर बुरा असर नहीं पड़ता। वह गोरे साहब और मेम साहब का चुंबन है। पर भारतीय भारतीय का चुंबन अगर फिल्म में दिख गया तो जरूर बुरा असर पड़ेगा। विदेशियों का चुंबन पवित्र होता है, भारतीयों का ही अपवित्र होता है। पता नहीं दुनिया में अपने को सबसे पवित्र जाति माननेवालों का प्रेम-प्रदर्शन कैसे अपवित्र हो गया ? शायद स्त्री की दहेज के लिए हत्या पवित्र कर्म मान लिया गया है।

साधो, दुहरी नैतिकता में जीनेवाले हम लोग कमाल करते हैं। कृष्ण की चीर-हरण-लीला को भक्तिभाव से सुनते हैं, क्योंकि वह भगवान कृष्ण का मामला है। पवित्र है। कालिदास और जयदेव के घने वासना-प्रसंगों को पढ़ने-पढ़ाने देते हैं, क्योंकि वे संस्कृत में, देववाणी में हैं और देवता या सामंत के विलास के बारे में हैं। कालिदास या जयदेव ने यह कहीं नहीं लिखा है कि कोई नौकर नौकरानी का चुंबन ले रहा था। छोटे, टुच्चे लोगों का प्रेम ही अनैतिक और अपवित्र होता है। सूरदास और विद्यापति ने भी बहुत गहरे विलास-प्रसंग लिखे हैं। पर वे राधाकृष्ण के हैं। भगवान कृष्ण की जय! मगर साधारण आदमी के साधारण प्रेम-प्रदर्शन का चित्रण अगर हो जाय, तो वह अनैतिक हो जाता है।

साधो, जिन्हें चिंता है कि फिल्मों में चुंबन देखकर लड़के-लड़की भ्रष्ट होंगे, उन्हें मैं बता दूँ कि कामुक चित्र, कामुक किताब आदि अधेड़ और बूढ़े ज्यादा रुचि से देखते-पढ़ते हैं। और जो फुटपाथों पर बिकती हैं, उनके अधिक पाठक युवा वर्ग के नहीं, काकाजी, मामाजी और फूफाजी होते हैं। वे इन्हें रामायण में छिपाकर पढ़ते हैं। इनके ऊपर 'भजनावली' का कवर लगा लेते हैं। युवक-युवती बिना फिल्मों के भी बिगड़ना चाहेंगे तो बिगड़ेंगे। उनकी चिंता छोड़ो। पश्चिम के माँ-बाप ने उनकी चिंता छोड़ दी है। यहाँ भी, अगर यही समाज-व्यवस्था रही तो छोड़ना पड़ेगा। व्यवस्था बदलना इस देश में पाप माना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। इसी पाप का यह पुण्य फल है कि हम दोरंगी जिंदगी जीते हैं। चुंबन को गंदा मानते हैं और खजुराहो की काम-लीला की मूर्तियों को ज्यादा से ज्यादा लोगों को दिखाने के लिए पर्यटन विभाग विज्ञापन करता है।

जात-बदल शादी

साधो, तुम ये खबरें तो पढ़ते ही रहते हो कि हरिजनों पर सवर्णों के अत्याचार होते हैं। हम इन घटनाओं के इतने अभ्यस्त हो गए हैं कि हमें अब बुरा भी नहीं लगता। मगर एक हरिजन युवक ने कुछ ऐसा कर दिया कि सनसनी फैल गई और अखबारों में खबर छप गई। वह हरिजन युवक किसी दूसरे शहर में गया। वहाँ उसने अपने को ऊँची जाति का बताया और उस ऊँची जाति की एक लड़की से शादी कर ली। अपनी वधू को बाकायदा बिदा कराके वह अपने कस्बे ले आया। कुछ समय बाद उस कस्बे में लड़की-जातिवालों को यह पता चला तो उन्होंने लड़की के बाप को खबर दी। बाप आया, लड़की को साथ लिया और हरिजन युवक को पुलिस के सुपुर्द कर दिया।

साधो, कुल घटना इतनी ही है। मगर इसमें बड़े मजे हैं। पहली बात तो यह है कि लड़की के परिवार ने कैसे मान लिया कि यह अपरिचित युवक उनकी ही जाति का है। क्या वह जाति का सर्टिफिकेट ले गया था? फिर लड़की के पिता को ऐसी क्या हड़बड़ी थी कि उसके परिवार को जाने बिना उस युवक से लड़की ब्याह दी? याने क्या लड़की-लड़के का कुछ पहले से चल रहा था और लड़की ने ही लड़के से कहा होगा, कि तू मेरी जाति का बन जा। पता नहीं क्या मामला है?

पर साधो, बाद में जो हुआ वह दिलचस्प है। वह लड़की उस हरिजन की पत्नी हो चुकी थी। साथ रहे तो शरीर-संबंध भी हो गया होगा। पर ऊँची जातिवालों ने लड़की को 'शुद्ध' करके फिर उसे अपनी जाति का बना लिया। उसकी जाति के कई घरों में उसे भोजन कराया गया और उसका जातिमिलौना हो गया। अब साधो, उस लड़की में क्या अशुद्ध हो गया था, जो अब शुद्ध हो गया। उसने हरिजन के साथ रोटी भी खाई और उसके साथ सोई भी। शायद पेट में हरिजन का बच्चा भी रखे हो; फिर वह शुद्ध कैसे हो गई। साथ ही सवाल यह है कि हरिजन के साथ से उसका क्या अशुद्ध हो गया? हरिजन युवक भी और युवकों की तरह ही है। उससे संबंध होने पर लड़की को वैसा ही अनुभव हुआ होगा जैसा अपनी जाति के युवक के साथ होता। जाति तो दो ही हैं—नर और नारी। फिर अगर लड़की का उस हरिजन युवक से प्रेम रहा होगा तो वह अपनी 'शुद्धता' पर रो रही होगी। अपनी जातिवालों को गाली दे रही होगी—इस कमीनी जाति का ही नाश हो जाय!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधो, जाति के बड़े मजे हैं। मैं हैरत में हूँ कि अगर जाति इतनी बुनियादी चीज है तो अलग-अलग जाति की अलग-अलग गंध होती। ब्राह्मण की गुलाब की गंध, वैश्य की चंपा की गंध। तब वह हरिजन युवक धोखा नहीं दे सकता था। उसे सूँघकर लड़की का बाप कहता—तेरे शरीर से गेंदा के फूल की गंध आ रही है। तू हरिजन है। मैं अपनी लड़की तुझे नहीं ब्याहूँगा या लड़के के सिर पर एक सींग होता तो लड़की का बाप पहचान लेता कि यह हरिजन है। अगर लड़की का उससे प्रेम था तो प्रेम के पहले उससे पूछ लेती—तेरी जाति क्या है? हमारी ही जाति का है न ? दूसरी जाति का हो तो मेरा तुझसे प्रेम नहीं हो सकता। प्रेम स्त्री-पुरुष में नहीं होता, जाति-जाति में होता है।

मगर साधो, मुसलमान को भी शुद्ध करके हिन्दू बना लेते हैं। लेकिन मुसलमान हिंदू को बिना शुद्ध किए ही मुसलमान बना लेते हैं। फिर इस देश का मजा यह है कि हिंदू मुसलमान तो हो सकता है, पर ब्राह्मण कायस्थ नहीं हो सकता। कोई ब्राह्मण कहे कि मैं जाति बदलकर कायस्थ होना चाहता हूँ तो उसे नहीं होने देंगे। पर वह मुसलमान होना चाहे तो हो जाने देंगे।

साधो, अपनी इच्छा पूरी करने के लिए जाति-रक्षा के भी बड़े सुभीते के नियम हैं। प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' में एक पंडित मातादीन हैं। उनके चमारिन से संबंध हैं। पर उनकी जाति नहीं गई। वे श्रेष्ठ ब्राह्मण ही बने हैं। उनका तर्क है—मैं उस चमारिन के हाथ की रोटी तो नहीं खाता। कुछ लोग कहते हैं—पर उस चमारिन का थूक तो चाटता है। पर थूक चाटने से जात नहीं जाती, रोटी खाने से जाती है। और पंडित मातादीन चमारिन के हाथ की रोटी नहीं खाते। इसलिए शुद्ध हैं।

साधो, अपने कहने से कुछ नहीं होता। क्योंकि साधो, देखो जग बौराना। मैंने तो यहाँ तक कह दिया तू ब्राह्मण है तो क्या दूसरे द्वार से पैदा हुआ था? और तू मुसलमान है तो क्या माँ के पेट से खतना कराके आया था? पर कोई नहीं सुनता। लोग इसी बात से खुश हैं कि हरिजन के साथ रहकर, सारे संबंध करके भी लड़की फिर शुद्ध कर ली गई।

भारतीय राजनीति का बुलडोजर

साधो, बहुगुणा को हम लोग चतुर राजनीतिज्ञ मानते हैं। यह अलग बात है कि इंदिराजी संकट में बहुगुणा के घर गईं और संजय से 'मामाजी' के चरण छुवाए और बहुगुणा पिघल गए कि मेरी 'बहना' संकट में है और राखी की लाज रखने के लिए इसकी रक्षा करनी ही पड़ेगी। 31 सूत्रों के बहाने बहुगुणा कांग्रेस (इ) में चले भी गए और महामंत्री बनाए गए। बहुगुणा समझे कि मैं मैडम के बाद नंबर दो हो गया, पार्टी और देश में, मगर वास्तव में इंदिराजी उनसे 'दो नंबरी' कूटनीति कर रही थीं। जब बहुगुणा आल इंडिया कांग्रेस कमेटी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के दफ्तर में निष्काम महामंत्री के रूप में बैठे-बैठे 'बोर' हो गए और फुरसत में उन्हें बोध हुआ कि मैडम उन पर भरोसा नहीं करतीं और उन्हें रस्से में बाँधकर कुएँ में डाल चुकी हैं, डूबने-भर की देर है तो वे सँभले, कांग्रेस के अंधकूप से बाहर आए और लोकतांत्रिक समाजवादी दल बनाया।

साधो, बहुगुणा ने यह अच्छा किया। चरणसिंह ने जिन्हें क़े.जी.बी. का एजेंट कहा था, वे बहुगुणा प्रगतिशील विचारों के हैं। उनकी छवि भी है। वे लोकप्रिय भी हैं। मगर नया दल बनाना, नया घर बनाने की तरह है। बहुगुणा छोटा ही घर बना रहे थे, आधा कच्चा, आधा पक्का। दीवारें उठ गई थीं दल की। ऊपर खपरैल और एसबेस्टस की चादरें डाल ली थीं। मगर साधो, घर बनानेवाला साथ में बुलडोजर क्यों रखे? बुलडोजर मकान बनाने का सामान नहीं है, मकान गिराने की मशीन है। बहुगुणा-जैसे चतुर आदमी ने मकान बनाया तो साथ में बुलडोजर भी रखा। तुम पूछोगे—यह बुलडोजर कौन?

साधो, भारतीय राजनीति में बुलडोजर राजनारायण हैं। बहुगुणा के दल का मकान आधा-सा बना था कि राजनारायण नाम का बुलडोजर चला और आधा-सा मकान गिराकर चला गया। राजनारायण ने लोकतांत्रिक समाजवादी दल तोड़ दिया—यानी अपने साथियों को लेकर, बहुगुणा पर आरोप लगाकर पार्टी से बाहर हो गए।

साधो, राजनारायण नाम का बुलडोजर डॉक्टर लोहिया के जीवन-काल में भी अपनी ही समाजवादी पार्टी के झोंपड़े पर चलता था। लोहिया पेट्रोल चुपचाप निकलवा लेते थे इसलिए उनके जमाने में वह घर जमींदोज नहीं हुआ। मगर लोहिया की मृत्यु के बाद बुलडोजर में चौधरी चरणसिंह ने बैल जोतकर समाजवादी झोंपड़ी को तोड़ दिया।

साधो, राजनारायण का कहना है कि उनके बहुगुणा से दो मतभेद हैं—पहला यह कि बहुगुणा अफगानिस्तान में रूसी फौज की उपस्थिति का विरोध नहीं करते। दूसरे वे असम में चुनाव का विरोध नहीं करते। मगर वास्तविक कारण यह है कि सत्ता तक पहुँचने का रास्ता बहुगुणा की पार्टी में से नहीं है, जो कम्युनिस्ट पार्टियों के साथ वाम लोकतांत्रिक मोर्चे में शामिल है। सत्ता का रास्ता दक्षिणपंथी दलों के गठबंधन से निकलता है, जैसा 1977 में हुआ था। यानी राजनारायण 1977 वाली जनता पार्टी फिर बनाकर, 1985 में चुनाव जीतकर, दिल्ली में सरकार बनाकर, हनुमान चालीसा से आपरेशन करानेवाले स्वास्थ्यमंत्री फिर बनना चाहते हैं।

साधो, बुलडोजर का क़हना है कि मैं चरणसिंह से मिलूँगा, यानी अगर चरणसिंह चाहेंगे तो वे फिर उनका कुत्ता बनने को तैयार हैं। फिर तरक्की करके कुत्ते से हनुमान बनेंगे और फिर लक्ष्मण। वे चंद्रशेखर से बात करेंगे। कर्पूरी ठाकुर से बात करेंगे। अटलबिहारी से बात करेंगे कि आर.एस.एस. को छोड़कर बाकी भारतीय जनता पार्टी को लेकर इस महागठबंधन में शामिल हो जाओ और 1977 जैसी जनता पार्टी बन जाय।

साधो, बुलडोजर की योजना अच्छी है। मगर अटलबिहारी संघ को छोड़ नहीं सकते। संघ के बिना भारतीय जनता पार्टी कुछ है ही नहीं। अब तो शाखा के बाहर से आए तत्त्वों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को पदों से निकालकर वहाँ 'तपे हुए' (जड़ता की अग्नि में) स्वयंसेवक स्थापित किए जाएँगे। याने भारतीय जनता पार्टी गठबंधन में आएगी, तो नेतृत्व बाला साहब देवरस के हाथों में होगा।

साधो, 1977 में जनता पार्टी नाम का यह मकान बना था। यह विचित्र था। इसके ड्राइंगरूम का फर्श मिट्टी का था और पाखाने का फर्श मोजेक का। इसमें एक दरवाजा 16वीं सदी का था और दूसरा 20वीं सदी का। इसकी छत ऐसी थी कि पड़ोस के मकानों का पानी भी इसी घर में आता था। इस मकान के बगीचे में बबूल और भटकटैया के सुंदर काँटे खिले थे। इस मकान के हर कमरे में दूसरे कमरे में चोरी करने के लिए सेंध बनी थी। हर कमरे का रखवाला दूसरे कमरे के रखवाले पर बंदूक ताने था। इस मकान पर रोज बदल-बदलकर रंग पोता जाता था। आज काला पुता है, तो कल पीला हो जाएगा।

साधो, राजनारायण अगर बुलडोजर हैं तो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ डाइनामाइट-फैक्टरी है। उस जमाने में बुलडोजर राजनारायण बाहर से इस मकान को गिरा रहे थे और नानाजी देशमुख चुपचाप, रात के अँधेरे में, मकान के नीचे संघ के डाइनामाइट रख रहे थे।

साधो, आखिर एक दिन होनी हो गई। बाहर से बुलडोजर ने जनता भवन तोड़ना शुरू किया और साथ ही संघ के डाइनामाइट फूटकर मकान को उड़ाने लगे। जनता पार्टी भवन टूटकर उड़ गया—कोई यहाँ गिरा कोई वहाँ गिरा। साधो, बुलडोजरजी अब फिर मलबे को एकत्र करके जनता-मकान बनाना चाहते हैं। मकान शायद बन जाय, क्योंकि यह दक्षिणपंथियों की भाग्यरेखा है। भाग्य में यह भी लिखा है कि डाइनामाइट और बुलडोजर फिर वही करेंगे। हम बुलडोजर की सफलता की कामना करते हैं—बुलडोजर की सफलता गिराने में है।

महान दर्शन भजनलालवाद

साधो, भारत महान देश है। यह दार्शनिकों का देश है। नए-नए दर्शन यहाँ जन्म लेते और पनपते हैं। द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्ट द्वैतवाद, वैशेषिक, न्याय, स्यादवाद, शून्यवाद, पूर्णवाद आदि प्राचीन काल के दर्शन हो गए। राजनैतिक दर्शन में भी हमारे चाणक्य पश्चिम के मेकियावेली के बाप होते हैं। शासकों को जितनी लुच्चई, बदमाशी, झूठ, पाखंड, छल, कपट, अत्याचार—चाणक्य ने सिखाए उतने दुनिया के किसी राजनैतिक गुरु ने नहीं सिखाए। हमारे शासक जो जनता में अज्ञान, भाग्यवाद, अंधविश्वास फैलाते हैं, यह चाणक्य की ही शिक्षा है। चाणक्य ने लिखा है कि जनता को मूढ़ और अंधविश्वासी कर देने से राजा निष्कंटक राज करता है। यज्ञों की भरमार, कथा-प्रवचन, चमत्कार, तंत्र-मंत्र, योगी, स्वामी और भगवान—ये सब शासक और शोषक वर्ग के द्वारा प्रोत्साहित किए जा रहे हैं। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाणक्य-नीति है।

साधो, पिछले कुछ सालों से एक नए राजनैतिक दर्शन ने इस देश में जन्म लिया है और वह खूब बढ़ रहा है। वह दर्शन है—भजनलालवाद! तुम्हें मालूम ही है कि भजनलाल अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के राजनैतिक, दार्शनिक और साधक हो गए हैं। उन्हें कब से रोनाल्ड रीगन बुला रहे हैं, 2-4 लाख डालर देने को तैयार हैं, कि वे वाशिंगटन पहुँचकर कुछ डेमोक्रेट सदस्य खरीद दें। पर भजनलाल को राष्ट्र की सेवा से फुरसत नहीं है। इंदिराजी उन्हें कैजुअल लीव नहीं दे सकतीं।

साधो, तुम पूछोगे कि यह भजनलालवाद दर्शन है क्या? गुरु, इसके सिद्धांत तो बताओ। रुको, गुरु बताता है। इस दर्शन का गहन चिंतन 1977 से 1980 के बीच हुआ। इसके दार्शनिक पिता तो भजनलाल हैं, मगर देवी की प्रेरणा और आशीष के बिना दर्शन सुफल नहीं देता। दार्शनिक, प्रातःस्मरणीय, निगम-आगम-पारंगत भजनलाल को देवी इंदिराजी का आशीर्वाद था। लोग इसे 'दलबदल' कहकर हल्का करते हैं, बदनाम करते हैं। इसे अवसरवाद कहते हैं, पद-लोलुपता कहते हैं, मगर यह नई राजनैतिक नैतिकता का संपूर्ण दर्शन है। इसके फल आंध्र, महाराष्ट्र, गुजरात में दिख रहे हैं और यह फैल रहा है।

साधो, दर्शन जो आज की स्थिति में लागू हो रहा है वह ऐसा है—सत्ताधारी पार्टी कांग्रेस (इ) में अगर हम और हमारा गुट राज्य में सत्ता में नहीं है तो जनकल्याण और विश्व-कल्याण की कोई संभावना नहीं है। विश्व विनाश की ओर जा रहा है। देश का भविष्य अंधकारमय है। देश और विश्व के कल्याण के लिए हमें और हमारे गुट को सत्ता में आना चाहिए। कांग्रेस (इ) के निःस्वार्थ 'सेवक' रहकर, इंदिरा के सिपाही बनकर उनके हाथ मजबूत करने की तपस्या बहुत हो चुकी। अब तप का फल मिलना चाहिए। पार्टी के प्रति निष्ठा और ईमानदारी पाप की ओर प्रेरित करते हैं। अब कांग्रेस (इ) में रहने से कल्याण नहीं। चुनाव-टिकिट मिलना निश्चित नहीं। टिकिट मिल भी गया और विधायक बन भी गए तो मंत्री बनना निश्चित नहीं। भजनलालवाद निश्चितता का दर्शन है। इसमें पद ब्रह्म सत्य है, और सत्य मिथ्या हैं। इस दर्शन के अनुसार जनता के कल्याण के नाम पर विद्रोही कांग्रेसी हो जाओ। पार्टी से बाहर गुट ले आओ। फिर चुनाव लड़ो। कोशिश यह करो कि खुद और गुट के लोग जीतें और कांग्रेस के बहुमत में कमी रह जाय। अब आप तथाकथित निष्ठावान कांग्रेसी से ज्यादा बड़े हो गए। कांग्रेस को सरकार बनाने के लिए 8-10 विधायक चाहिए। अब आप सौदा कीजिए। 3-4 लाख रुपए लीजिए और मंत्री पद पक्का कीजिए। और कांग्रेस में लौट जाइए यह घोषणा करके कि 'देश का भविष्य इंदिराजी के हाथों में ही सुरक्षित है। देश का वही कल्याण कर सकती हैं। हमें देश-हित में इंदिराजी के हाथ मजबूत करना है, हालाँकि हम खुद लूले हैं।'

साधो, कांग्रेस के अपने निष्ठावान, ईमानदार विधायक टापते रह जाएँगे और हम ठाठ से मंत्री बन जाएँगे—हालाँकि यह वैसा ही हुआ जैसे मैले की तलाश में सूअर मंदिर में घुस जाता है और वहाँ उसे भगवान का पवित्र मैला खाने को मिल जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधो, यह नया राजनैतिक दर्शन है। यही भजनलालवाद है। यह दर्शन फैल रहा है और इसकी प्रेरणादायिनी देवी परेशान हो रही है। साधो, इस देश के लोग अब जन-कल्याण करनेवालों, निःस्वार्थ देशसेवकों, गरीबों पर बलि चढ़नेवालों से बहुत तंग हो चुके हैं। वे हाथ जोड़कर कहते हैं—हमें बख़्शो! हमें छोड़ो। हमें चैन लेने दो। मेहरबानी करके हमारा कल्याण करना छोड़ो। और उन्हें जवाब मिलता है—तुम्हारा कल्याण कौन बेवकूफ कर रहा है ? हम तो हमारा कल्याण कर रहे हैं। तुम अपने कल्याण के भ्रम से परेशान क्यों होते हो ?

अभी दिल्ली दूर है

साधो, दिल्ली नगर निगम और महानगर परिषद के चुनाव के नतीजे तुमने देख लिये। कर्नाटक और आंध्रप्रदेश की हवा दिल्ली की तरफ बढ़ रही है—ऐसा कुछ लोगों का खयाल था, मगर उत्तर भारत से शीतलहर दक्षिण की तरफ चल पड़ी और बीच में ही मध्यप्रदेश पार करते-करते इस शीतलहर ने इस हवा को जमाकर बर्फ बना दिया। अटलबिहारी वाजपेयी तथा कुछ दूसरे नेता यह कहते थे कि दक्षिण की हार के बाद अपनी 'इमेज' बनाने के लिए इंदिरा गांधी कुछ करतब करेंगी। कुछ सोचते थे कि पोखरन-जैसा कोई विस्फोट करेंगी। कोई विस्फोट तो इंदिरा गांधी ने नहीं किया, मगर यह हरकत तो की ही कि उत्तर भारत के पहाड़ी इलाके में बर्फ गिरा दी और भर-वसंत में शीतलहर चला दी, जिससे भारतीय जनता पार्टी का वसंत भादों की रात-जैसा अँधेरे में रोने लगा। अटलबिहारी अब वकीलों से सलाह लें कि क्या इस हथकंडे पर चुनाव-याचिका हो सकती है? हो सके तो पूरे चुनाव ही कैंसिल हो सकते हैं। राम जेठमलानी से पूछना चाहिए।

साधो, डॉक्टर सुब्रह्मण्यम् स्वामी ने, जो पहले अटलबिहारी के साथ ही जनसंघ के नेता थे, सांप्रदायिकता को भारतीय जनता पार्टी की हार का कारण बताया है। डॉक्टर स्वामी आधुनिक प्रतिक्रियावादी हैं और अटलबिहारी मध्ययुगीन प्रतिक्रियावादी हैं। दोनों में फर्क है। डॉक्टर स्वामी अमेरिका-जैसा आधुनिक विज्ञान और तकनीकवाला पूँजीवाद चाहते हैं। अटलबिहारी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के हैं, इसलिए अगर हवाई जहाज बन भी जाय तो उसमें नागपुर के आदेश से बैल जोते जाएँगे। अपने सब बढ़िया पाइलट हरवाहे हो जाएँगे। खैर साधो, स्वामी का यह आरोप गलत है कि भारतीय जनता पार्टी ने सांप्रदायिकता उभारी। भारतीय जनता पार्टी तो 'ईश्वर अल्ला तेरे नाम' हो गई है, क्योंकि उसने गांधीवादी समाजवाद की उपासना आरम्भ कर दी है।

साधो, लोगों ने इंदिराजी को जीत के लिए बधाई दी ही है। जवाब में मेरा अंदाज है, उन्होंने कहा होगा कि यह सफलता राजीव के कारण मिली। एशियाड की सफलता के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए जब इंदिराजी को बधाई दी जाती थी, तो वे कहती थीं—'इसका श्रेय तो राजीव को है।'

इंदिराजी ने दक्षिण के चुनावों के पहले दो शंकराचार्यों का आशीर्वाद लिया था—दक्षिण के शृंगेरीमठ के शंकराचार्य का और नए, मध्यप्रदेश के पाँचवें शंकराचार्य, स्वरूपानंद का। पर वे दक्षिण में चुनाव हार गईं यानी दक्षिण के शंकराचार्य क्षेत्रीय भावनावाले निकले। पर उत्तर के पाँचवें शंकराचार्य के आशीष से वे दिल्ली में जीत गईं। ये पाँचवें शंकराचार्य हैं, पाँचवें सवार हैं और लोककथा के अनुसार सिर्फ पाँचवाँ सवार ही घोड़े पर सवार होता है। बाकी किस पर सवार होते हैं, तुम जानते ही हो।

साधो, भारतीय जनता पार्टी की हार पर मुझे दुख है। यह दुख और गहरा होता है, जब यह समझ में आता है कि हार की सबसे बड़ी जिम्मेदारी अटलबिहारी पर है। उन्होंने यह वक्तव्य न दिया होता और पार्टी के पेपरों ने उसका इतना प्रचार न किया होता तो पार्टी न हारती। उस वक्तव्य में अटलबिहारी ने कहा था कि दिल्ली की जनता बदल-बदलकर शासन सौंपती है। एक बार कांग्रेस को शासन देती है और दूसरी बार जनसंघ (अब भाजपा) को। यानी अब हमारी बारी है। गोया शासन-सत्ता न हुई, गेंद हुई। पापा एक बार गेंद पप्पू को देते हैं, और फिर मुन्नू को। बारी-बारी से दोनों बेटे खेलो। यों फायदा होता है। वैसे पंजाब में अकाली और भारतीय जनता पार्टी साथ हैं पर सिख जानते हैं कि उनकी असली लड़ाई संघ की हिंदू सांप्रदायिकता से है। सिख भूले नहीं हैं कि कुछ साल पहले संघ ने 'हिंदी रिक्छा' आंदोलन चलाया था और सिर फूटे थे। 'रक्षा' का उच्चारण 'रिक्छा' करते थे—हिंदी रिक्छा आंदोलन!

साधो, हमें तो दुख यही है कि भारतीय जनता पार्टी के दिल्ली में सत्ता में नहीं आने से गांधीजी का बहुत नुकसान हो गया। पिछली बार जब जनसंघ का शासन था तो वाजिब दाम पर जो मोमबत्तियाँ दीवाली पर बिकवाई थीं, उनके पैकेट पर एक चित्र था, जिसमें गांधीजी संघ के ध्वज को प्रणाम करते दिखाए गए थे। इस बार अगर भारतीय जनता पार्टी को शासन मिल जाता तो गांधीजी का पूरा उद्धार हो जाता। इस बार मोमबत्ती के पैकेट पर गांधीजी चड्डी और काली टोपी पहने हुए ध्वज को प्रणाम कर रहे होते। यह चित्र दफ्तरों, संस्थाओं, स्कूलों में भी लग जाता। रिचर्ड एटनबरो की फिल्म 'गांधी' से जो काम नहीं हुआ, वह इस चित्र से हो जाता। मगर गांधीजी की किस्मत ही खराब है कि अपनी ही पार्टी को हरवाते हैं।

साधो, दिल्ली का सुलतान सूफी संत निजामुद्दीन औलिया से नाराज था। सुलतान दक्षिण की तरफ से लौट रहा था कि आगरा के पास उसने कहा—मेरे दिल्ली पहुँचने पर निजामुद्दीन मार डाला जाएगा। जब यह खबर संत निजामुद्दीन को दी गई तो उन्होंने कहा—हनोज़ दिल्ली दूरस्त! यानी अभी दिल्ली दूर है। और हुआ यह कि दिल्ली पहुँचने के पहले ही सुलतान खुद मर गया। अभी दिल्ली दूर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिजनों का ब्राह्मण भोजन

साधो, अखबारों के समाचार और उनके शीर्षक कभी-कभी अनर्थ निकालते हैं, तो कभी गंभीर अर्थ, जिन पर विचार करना चाहिए। एक दिन मैंने एक संपादक मित्र को उनके अखबार में छपे समाचार का एक शीर्षक बताया। वह शीर्षक था—

विवाहित युवती से बलात्कार
(हमारे संवाददाता द्वारा)

साधो, हम दोनों खूब हँसे। पत्र के संवाददाता ने यह समाचार भेजा है, यह मतलब था प्रेस का। पर मतलब दूसरा निकल गया कि हमारे संवाददाता द्वारा विवाहित युवती से बलात्कार किया गया!

साधो, कभी-कभी इस तरह के शीर्षक के समाचार पढ़ता हूँ—'रिक्शावाले की ईमानदारी' या 'ईमानदारी अभी जिंदा है।' समाचार यह होता है कि रिक्शा में बैठकर आया आदमी अपना बटुआ भूल से छोड़ गया। रिक्शावाले ने देखा और उनके घर जाकर बटुआ वापस कर आया। ऐसे शीर्षक और समाचार पर ध्यान से सोचो। यह वैसा ही समाचार है जैसा यह कि आदमी ने कुत्ते को काटा। कुत्ते का आदमी को काटना आम, स्वाभाविक और मानी हुई बात है। मगर चमत्कारिक बात यह हुई कि आदमी ने कुत्ते को काटा। ऐसे ही पूरे समाज में बेईमानी है, यह आम, स्वाभाविक और मानी हुई बात है। मगर कभी-कभी इससे उलटी अस्वाभाविक बात भी हो जाती है कि रिक्शावाला सवारी का बटुआ हड़पता नहीं है, लौटा देता है। ईमानदारी कितनी दुर्लभ है कि कभी-कभी अखबार का शीर्षक बनती है। साधो, ऐसी खबर और शीर्षक का दूसरा गहरा अर्थ भी है। वह यह कि गरीब लोग बेईमान होते हैं। जो गरीब नहीं होते, वे ईमानदार होते हैं। इन बेईमान गरीबों में कोई रिक्शावाला या मजदूर ईमानदारी का काम कर बैठता है। यह चमत्कार है, जैसे दो सिरवाले बच्चे का पैदा होना। इसलिए यह समाचार विशेष रूप से छपना चाहिए।

साधो, ऐसा ही समाचार मैंने अभी पढ़ा। समाचार सभी पत्रों में छपा है। समाचार यह है कि केरल में एक मंदिर में ब्राह्मण भोजन में हरिजनों को शामिल किया गया। यह बहुत बड़ा समाचार बना है। मगर यह शर्मनाक समाचार है। किसी भी हिंदू को इस समाचार को पढ़कर अपने सिर पर पाँच जूते मारना चाहिए कि मैं कितना पतित हूँ कि स्वामी दयानंद के जाति-भेद विरोधी आंदोलन, गांधीजी के हरिजन-उद्धार आंदोलन, अछूतप्रथा-विरोधी कानून आदि के बावजूद आजादी के 36 साल बाद भी कहीं हरिजन ब्राह्मणों के साथ बैठकर खा ले, तो वह चमत्कारी समाचार बनता है। यह साधारण, आम बात नहीं हुई।

साधो, ब्राह्मण भोजन की परंपरा बहुत पुरानी है। वर्ण-व्यवस्था में ब्राह्मण विधायकों ने क्षत्रिय को लड़ने का काम दिया, वैश्य को व्यापार का और शूद्र को शारीरिक श्रम और सबकी सेवा का। खुद अपने लिए ब्राह्मण ने कौन-सा काम रखा? कोई काम नहीं। सिर्फ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरण छुआना, आशीर्वाद देना और दक्षिणा, भेंट और भोजन लेना। फिर ब्राह्मण ने पौरोहित्य की तकनीक पर एकाधिकार कर लिया। आदेश दिया कि कोई शूद्र अगर वेद-पाठ सुन रहा हो, तो उसके कानों में पिघला हुआ शीशा डाल दो। साधो, कर्महीन ब्राह्मण ने इतना जरूर किया कि फुरसत में चिंतन किया और ज्ञान-विज्ञान समाज को दिया।

साधो, इस पुरोहित, ज्ञान-विज्ञान के अन्वेषी ब्राह्मण वर्ग का पेट पालने की जिम्मेदारी समाज ने अपने ऊपर ले ली और 'ब्राह्मण भोजन' नाम की प्रथा चल पड़ी। शादी-विवाह में, मृतक-श्राद्ध में, पर्वों पर सामूहिक ब्राह्मण भोजन अभी भी होते हैं। डाकू भी डाका डालने के बाद अक्सर पाप-मुक्त होने के लिए ब्राह्मण भोजन कराते हैं। इतना व्यवस्थित धंधा मारवाड़ियों और गुजराती सेठों का भी नहीं है, जितना ब्राह्मण का। बच्चा पैदा होने से पहले यह धंधा चालू हो जाता है। लड़का होगा या लड़की और कब होगा, यह ब्राह्मण बताता है। फिर उसके जन्म पर ब्राह्मण हाजिर है। छठी पर। हर माह आशीर्वाद देता है। अन्नप्राशन पर। मुंडन पर। जनेऊ पर। विवाह पर। फिर उसके बच्चों का सिलसिला। जब आदमी मरता है तो ब्राह्मण अंतिम संस्कार कराता है। फिर श्राद्ध पर भोजन करता और दक्षिणा लेता है। फिर प्रयाग, गया, वाराणसी में पिंडदान के लिए बैठा है। इतना ही नहीं, जब तक मरनेवाले के खानदान में कोई भी है, तब तक पितृपक्ष में उसकी मरण-तिथि पर ब्राह्मण भोजन करता है और दान लेता है।

साधो, इस ब्राह्मण ने समाज के एक बड़े हिस्से को शूद्र बनाकर, अछूत बनाकर, शिक्षा-संस्कृति से वंचित करके जो पाप किया, उसका फल वह अभी भी भोग रहा है। शारीरिक श्रम नहीं करने से और कोई उत्पादन नहीं करने से ब्राह्मण पूज्य से घटकर दीन, भिखमंगा हो गया। भिक्षा को अपना धंधा मानने लगा। सुदामा पत्नी से कहते हैं—औरन को धन चाहिए बावरी, ब्राह्मन को धन केवल भिच्छा।

साधो, ब्राह्मण दरिद्र, दीन और निकम्मा हो गया। यह मनु महाराज की कृपा है! इस देश की दुर्गति करनेवाले दो महामनीषी हैं—वर्ण-व्यवस्था स्थापित करनेवाले मनु और जगत् को मिथ्या बतानेवाले शंकराचार्य !

साधो, अब हाल यह है कि हरिजन अफसर बनकर बैठा है और ब्राह्मण देवता उसके चपरासी हैं। अछूत की छाया अपने ऊपर नहीं पड़ने देनेवाले ब्राह्मण का अब क्या हाल है ? ब्राह्मण ने जूते की दूकान में सेल्समैन की नौकरी कर ली है और चमार डिप्टी कलेक्टर हो गया है। चमार साहब जूते खरीदने दूकान पर आता है तो ब्राह्मण देवता सेल्समैन अपने हाथ से उसे जूता पहनाकर कहते हैं—सर, यह जूता आपको फिट बैठता है।

साधो, जब यह हाल हो गया है, तब यह समाचार चमत्कारिक नहीं होना चाहिए कि ब्राह्मण भोजन में हरिजन भी शामिल हुए। यह आम बात हो जाना था। मगर यह विरली और खास बात अभी भी बनी हुई है, यह हमारे लिए शर्म की बात है। मगर हरिजनों की कृपा है कि उन्होंने ब्राह्मणों को अपने साथ भोजन कर लेने दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निगम भंग की मिठाई

साधो, एक दिन अखबार में खबर छपी कि कोई नगर निगम 'भंग' हो गई। लोग मिलते वही बात कहते–नगर निगम भंग हो गई। अखबार का शब्द जबान पर चढ़ जाता है। मगर यह शब्द बहुत खराब है–भंग हो गई। यानी मेयर और पार्षद 'भंग' कर दिए गए। बड़ा कड़वा शब्द है यह। अपमानजनक भी है। भंग होना क्या होता है? पुराने जमाने में लुटेरे फौजी नेता मूर्तियाँ भंग करते थे और उनके भीतर के सोना, हीरा, जवाहर लूट ले जाते थे। ये जो नगर निगम के 40-50 आदरणीय सदस्य हैं, कोई मूर्तियाँ हैं जो लुटेरी सरकार ने भंग कर दीं? साधुओं में तो ऐसी भाषा है कि वे अपने को 'मूर्ति' कहते हैं। किसी गृहस्थ के द्वार पर साधु जाएँगे और गृहस्वामी से कहेंगे–भोजन करेंगे भगत! तीन मूर्तियाँ हैं–यानी तीन साधुओं का पेट तुम्हें भरना है। अपने को मूर्ति कहने की जरूरत साधु को क्यों पड़ी? इसलिए कि लोग मूर्तिपूजक हो गए हैं। मूर्ति को भगवान मानते हैं। भूखे आदमी को रोटी नहीं देंगे, उसे भूखा मर जाने देंगे। पर मंदिर की मूर्ति को हजारों रुपयों के आभूषण चढ़ा देंगे। साधु जानता है कि आदमी के नाम से या साधु के नाम से कोई कुछ नहीं देता। इसलिए अपने को मूर्ति कहो–हम तीन मूर्तियाँ हैं भगत!

साधो, अंग्रेजी में जिस शब्द का उपयोग किया जाता है, वह है 'डिजाल्व्ड'–दी कार्पोरेशन इज़ डिज़ाल्व्ड। यह भंग से कम कठोर है। भंग से तो ऐसा लगता है, जैसे नगर निगम कोई कद्दू है, जिस पर सरकार ने जोर से हथौड़ा मारा तो वह टुकड़े-टुकड़े हो गया और जैसे निगम के निर्वाचित माननीय सदस्य को बदचलनी के कारण कान पकड़कर अहाते से निकाल दिया।

साधो, लोकतंत्र के हिसाब से भाषा और मुहावरे शालीन होने चाहिए। अंग्रेज तो साम्राज्यवादी थे, मगर राजभक्ति उनमें थी। इसलिए कठोर-से-कठोर काम के लिए भी महिमामयें सम्राट के गौरव के अनुकूल भाषा का इस्तेमाल करते थे। उनके आर्डर ऐसे होते थे–दी वाइसराय इज़ प्लीज़्ड टु टर्मिनेट दी सर्विसेज ऑफ कमिश्नर मिस्टर डेनियल वैली एस्क्वायर ! नौकरी से निकालने की कितनी मीठी भाषा है। डेनियल साहब के नाम के आगे 'मिस्टर' है और पीछे है, 'एस्क्वायर'। और नौकरी से निकालते वक्त वाइसराय 'प्लीज़्ड' हैं, खुश हैं। साधो, शासकों की भाषा ऐसी होनी चाहिए और अखबारनवीसों को भी दुर्घटना में शालीन भाषा का प्रयोग करना चाहिए। यह संस्कृति की माँग है। तहजीब की बात है। लखनऊ की पुरानी नवाबी की तहजीब जिनमें बाकी है, उनकी भाषा और मुहावरा देखिए। खबर मिले कि कोई साहब बीमार हैं तो उनकी मिजाजपुर्सी करने जाएँगे तब कहेंगे–सुना है, आपके दुश्मनों की तबीयत नासाज़ है। देखिए, यह नहीं कहा कि आप बीमार हैं। आप बीमार क्यों हों? आपके दुश्मन बीमार हों। अब अगर बीमार कह दे कि अब तबीयत अच्छी है, तो पूछनेवाला क्या कहे? क्या वह कहे–बड़ी खुशी की बात है। या कहे–बड़े अफसोस की बात है। वह पहले कह चुका है कि आपकी नहीं, आपके दुश्मनों की तबीयत खराब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। दुश्मन की तबीयत अच्छी है, तो अफसोस की बात तो होगी ही। तो झंझट से बचने के लिए पूछनेवाला कह देता है—'इंशा अल्ला!' याने अल्ला चाहे तो तबीयत ठीक कर दे, या चाहे तो मार डाले। उसी की जिम्मेदारी है। हम इस झंझट में नहीं पड़ते।

साधो, शासन को भी कुछ मलहमनुमा भाषा का प्रयोग करना चाहिए या जिस रूमाल से गला घोंटे उस पर खूब इत्र छिड़क ले। मेम्बरी खुशबू के साथ खत्म होनी चाहिए। नगर निगम को भंग करने का हुक्म ऐसा हो—नगर निगम के निर्वाचित सदस्यों और पदाधिकारियों ने अब तक जनता की सेवा करने का जो भार अपने कोमल कंधों पर वहन किया, उसके लिए सरकार आभारी है। उन्हें कष्ट देने के लिए सरकार लज्जित है। सरकार प्रसन्नतापूर्वक तारीख 6 मार्च 1983 से जनसेवा का यह भार उनके कुसुम-स्कंधों से उतार रही है। आशा है, वे आनंद का अनुभव करेंगे।

साधो, मगर यह कैसी फूहड़ भाषा अखबारों में छपती है—नगर निगम भंग! इसके बाद के दिन के अखबारों में तो हद हो गई। ऐसे समाचार छपे—

निगम भंग होने से जनता में हर्ष!

जगह-जगह मिठाई बाँटी गई!

साधो, यह क्या बदतमीजी है। संस्कृति हम भुला बैठे। अत्याचारी, भ्रष्टाचारी, हत्यारा और बलात्कारी भी जब मरता है, तब भी यह नहीं कहा जाता या लिखा जाता कि सर्वत्र हर्ष व्याप्त है। कहा और लिखा जाता है—वे एक लगनशील जनसेवक थे। सद्गुणों की खान थे। उन्हें लोग बहुत प्यार करते थे। उनके निधन से सर्वत्र शोक व्याप्त है। उनके रिक्त स्थान की पूर्ति निकट भविष्य में संभव नहीं है।

साधो, अखबारवाले क्या बड़े सत्यवादी होते हैं। बहुत-सी झूठ खबरें वे छापते रहते हैं। क्या हर्ष और मिठाई बाँटनेवाली बात को अखबार दबा नहीं सकते थे? या ऐसी खबर क्यों नहीं छाप सकते थे—

निगम भंग होने से जनता में हाहाकार!

पार्षदों के द्वारों पर बिलखती जनता की भीड़!

साधो, सवाल है, मिठाई कौन ने बाँटी। लोग कहते हैं—बी.जे.पी. वालों ने। मैं नहीं मानता। बी.जे.पी. वाले अपने खर्च से मिठाई नहीं बाँटते, दूसरों से वे बँटवाते हैं। अपने पैसे से उन्होंने मिठाई एक ही बार बाँटी थी—30 जनवरी, 1948 को। मिठाई बाँटी आम नागरिकों ने। उन नागरिकों ने अपने प्यारे पार्षद के बरखास्त होने पर मिठाई बाँटी, जिसकी जीत पर उन्होंने उसे मालाओं से लाद दिया था, उसकी जय बोली थी और मिठाई बाँटी थी। साधो, पार्षदों से पूछो कि भाई साहब, आपने कौन-सा लोकमंगल कर दिया कि यह गति हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन बूढ़े और आठ जवान

साधो, जनता पार्टी सरकार में एकाएक तीन बूढ़े हो गए और आठ जवान हो गए। मोरारजी भाई, जिनके सिरदर्द की खबर भी नहीं आती, एकाएक बूढ़े करार दिए गए और अटलबिहारी, जो एक साल में तीन बार अस्पताल में भरती हो चुके, जवान हो गए। पता नहीं एच.एम. पटेल कब जवान हो गए और कैसे हो गए। पंद्रह साल तो उन्हें रिटायर हुए हो गए। वे तब वित्त सचिव थे और इतिहासप्रसिद्ध मूँदड़ा कांड में फँसे थे। वे अपने अर्थमंत्री टी.टी. कृष्णमाचारी को निगल गए थे। आई.सी.एस. होने के कारण वे जेल नहीं गए, उन्हें रिटायर हो जाने दिया गया। वे फिर स्वतंत्र पार्टी में चले गए। इन जवानों में समाजवादी जॉर्ज फर्नांडिस भी हैं और उड़ीसा के भूतपूर्व मुख्यमंत्री बीजू पटनायक भी।

साधो, ये आठ हैं जिन्हें बोध हुआ कि हम जवान हैं। बाकी तीन बूढ़े हैं। ये हैं मोरारजी भाई, चरणसिंह और जगजीवनराम। साधो, जवानों में राजनारायण को नहीं लिया, क्योंकि वे चरणसिंह के चमचे हैं और अभी किंडरगार्टन में पढ़ते हैं। पेड़ा खाने की उम्र है। इन जवानों को अहसास किसने कराया कि तुम जवान हो।

साधो, हर हनुमान को एक जामवंत चाहिए। हनुमान समुद्रतट पर बैठे सोच-विचार में फँसे थे। समुद्र लाँघकर लंका पहुँच सकता हूँ या नहीं। तभी जामवंत ने कहा—

तुम अतुलित बल-बुद्धि निधाना
का चुप साध रहा हनुमाना।

साधो, यह सुनकर हनुमान को अपने बल का बोध हो गया और वे उड़ गए। जवान मंत्रियों के जामवंत हैं, नानाजी देशमुख। उन्होंने ही कहा—साठ साल से ऊपर के नेताओं को रिटायर होकर युवा लोगों को सत्ता सौंप देना चाहिए। नानाजी ने इन जवानों से कहा—धिक्कार है तुम्हारी जवानी को! अरे उठो! निकालो तीनों बूढ़ों को और सत्ता हथिया लो। साधो, जामवंतजी ऐसे ही बोल पड़े। इसके पहले किष्किंधा के हाईकमान की मीटिंग दिल्ली में हुई थी, जिसमें प्रमुख संघी नेताओं ने यह तय किया था कि नानाजी यह नारा देंगे मगर बाला साहब देवरस कहते रहेंगे—राम! राम! वे तीनों नेता तो संत हैं। मैं नानाजी से सहमत नहीं हूँ। यहीं यह भी तय हुआ था कि बकने का काम बीजू पटनायक और जॉर्ज से करवाया जाएगा। संघ का मंत्री चुपचाप घोड़े के ढाई घर की चाल चलेगा।

साधो, इसके बाद नानाजी जयप्रकाश के पास गए और कहा—एक भरोसौ एक बल, एक आस बिस्वास। लोकनायकजी, मेरी बात ठीक है न? आप समर्थन करते हैं ? लोकनायक ने कहा—नानाजी, मैं तुम्हारी हर बात का समर्थन करता हूँ क्योंकि पुलिस की जो लाठी मेरे ऊपर चल रही थी, उसे तुमने अपने हाथ पर झेल लिया था। तुम चिरंतन क्रांतिकारी हो। मेरे लिए तुम वही हो, जो माओत्से तुंग के लिए लिन पियाओ थे। मैं बयान देता हूँ कि युवकों को काम करने का मौका दिया जाय। साधो, अपने लोकनायक का यह हाल है कि वे हर तरह के जवान को क्रांति के लिए प्रेरित करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। कोई जवान जेबकतरा उनके पास जाय तो उससे भी वे कहेंगे–तुम्हें मेरा आशीर्वाद है। तुम जेब काटकर क्रांति करो। तुम इंदिरा गांधी का बटुआ चुरा लाओ तो मैं तुम्हें 'क्रांतिवीर' की उपाधि दूँगा।

साधो, अब आठ युवा क्रांति में लगे हैं। ये लोग मानते हैं कि जवानी शरीर की होती है, बुद्धि की नहीं। इनमें अति आधुनिक समाजवादी जॉर्ज भी हैं और वैदिक युग के दिमागवाले जनसंघी अटलबिहारी भी। मगर ये शरीर देख रहे हैं, मानसिकता नहीं। साधो, ये कहते हैं कि तीनों सयाने नेता एकमत हो जाएँ या कुर्सी छोड़ दें। ये तीनों सयानों के पास आते हैं और कहते हैं–दादाजी, काकाजी, बाबूजी आप एक हो जाइए न। देखिए, आपकी फूट से कितना नुकसान हो रहा है। हम आजमगढ़ का चुनाव हार गए। सुना है इनसे मोरारजी भाई ने कहा–ए लौंडो, मुझे मत सिखाओ राजनीति। तुम्हारे तो अपने-अपने दल बने हुए हैं। तुम आपस में लड़ते हो। तुम्हारे चेले राज्यों में एक-दूसरे का मुर्दाबाद कर रहे हैं। ईमान से बोलो, क्या जनसंघ सचमुच विलीन हो गया है? मुझे एकता सिखाने आए हो। देखो, ज्यादा गड़बड़ करोगे तो मैं राष्ट्रपति को सलाह देकर लोकसभा भंग करवा दूँगा। फिर गली-गली वोट माँगना और वोट तुम्हें मिलेंगे नहीं। चौधरी साहब कैकेयी की तरह अस्पताल के कोपभवन में हैं। उनकी उत्तरप्रदेश, हरियाणा और बिहार की जागीर में दुश्मन घुस रहे हैं। बाबू जगजीवनराम तो ठीक वक्त पर ठीक बात बोलते हैं।

साधो, सब जानते हैं कि तीन सयानों में एकता असंभव है। आठ जवान भी आपस में दुश्मन हैं। इधर चंद्रशेखर और मधुलिमये भी जयप्रकाशजी से पूछने के लिए गए थे कि आप कहें तो हम दोनों भी जवान हो जाएँ। साधो, यह हाल है। तुम तो ईश्वर में विश्वास करते हो। पर अब तो नास्तिक भी ईश्वर को मानने लगा है। आखिर वह कौन है जो जनता सरकार को चला रहा है? वह ईश्वर ही है। ईश्वर के सिवा किसी में यह शक्ति नहीं है कि जनता सरकार को चलाए।

वैष्णवजन और चौधरी की पीर

साधो, इन दिनों 'टिन पुरुष' चरणसिंह एक काम बड़ी मुस्तैदी से कर रहे हैं। सवेरे पत्रकारों से कहते हैं–मेरी मंत्रिमंडल में लौटने में कोई दिलचस्पी नहीं है। शाम को उन्हें लगता है, कहीं मोरारजी भाई उन्हें भूल न गए हों, तो रात गए फिर पत्रकारों से कह देते हैं–मेरी मंत्रिमंडल में लौटने में कोई रुचि नहीं है। रात को सोते हैं। मोरारजी भी सोते हैं। सुबह चरणसिंह को फिर आशंका होती है कि कहीं रात-भर में मोरारजी भाई उन्हें भूल न गए हों, तो पत्रकारों से फिर कह देते हैं–मेरी मंत्रिमंडल में लौटने में कोई रुचि नहीं है। साधो, ये वक्तव्य रोज अखबारों में छपते हैं। मुझे समझ में नहीं आता कि चरणसिंह रोज क्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहते हैं कि मेरी मंत्रिमंडल में लौटने में कोई रुचि नहीं है। एक बार कह दें—मैं किसी भी हालत में मंत्रिमंडल में नहीं लौटूँगा। ऐसा बयान नहीं दे रहे हैं। उनकी हालत उस चटोरे आदमी की तरह है जिसके सामने मिठाई की प्लेट रखी है और लार गटक-गटककर कहता है—वैसे तो मेरी मिठाई में कोई रुचि नहीं है, पर मिठाई की तरफ देखता जाता है। फिर सोचता है, मेजबान कहीं यह न कह दे कि रुचि नहीं है तो रहने दीजिए। चार-पाँच बार ऐसा करके वह अंत में कहता है—वैसे तो मेरी मिठाई में कोई रुचि नहीं है, पर आप नहीं मानते हैं, तो खा लेता हूँ।

साधो, ये बड़े-बड़े बूढ़े नेता इतने बेवकूफ क्यों रह जाते हैं कि हम लोगों को बच्चे समझते हैं। वह नेता कितना मूर्ख होगा जो यह समझे कि लोग यह मान रहे हैं कि मुझे पद से मोह नहीं है। पद से मोह नहीं है तो इतनी झख क्यों मारते हैं ये? मगर साधो, एक नेता यही काम खूबसूरती से करता है और दूसरा भौंड़ेपन से। एक औरत लिपिस्टक ऐसे लगाती है कि लगे, ओठों पर कुछ लगा नहीं है, ओठ ही गुलाबी हैं। दूसरी औरत लिपिस्टिक इस तरह चुपड़ती है कि नाक तक ललाई पहुँचती है और इधर गाल तक। बड़ी भदेस लगती है। चरणसिंह राजनीति में दूसरे तरह की औरत हैं। उनका सब काम भदेस और भौंड़ा होता है। उनकी हालत गाँव के उस गँवार लड़के की है जो शहर में थानेदार हो गया हो। वह छुट्टी में गाँव आता है, तो बड़ी भद्दी अकड़, भौंड़ी दिखावट, हल्का बर्ताव करता है।

साधो, दुर्घटना परिस्थितियों की है। परिस्थितियाँ आदमी को उछालकर वहाँ बिठा देती हैं, जहाँ उसे नहीं होना चाहिए, तो ऐसा ही होता है। जिला स्तर के नेता को उछालकर राष्ट्रीय नेता बना दिया जाय, तो क्या होगा? निक्सन एक छोटे शहर के ऐसे वकील थे जिन्हें केस नहीं मिलते थे। वे राजनीति में घुस आए तो एक बार ऐसा उछाल मिला कि वे राष्ट्रपति हो गए। पर संस्कार, बुद्धि और स्वभाव से रहे तो वे वही छोटे-से फौजदारी वकील जो पुलिस को घूस खिलाता है, कागज गायब करवाता है, गवाह तोड़ता है। तो निक्सन ने राष्ट्रपति रहते हुए विरोधी पार्टी के दफ्तर से गुप्त रिकार्ड चोरी करवा लिये। यह मामला 'वाटरगेट कांड' के नाम से मशहूर हुआ। निक्सन जेल जाते, पर पद ही गया और बदनाम हुए। चरणसिंह भी हद-से-हद किसी नगरपालिका की सफाई कमेटी के अध्यक्ष होने लायक थे। वे भी बिना केसवाले वकील थे। पर परिस्थितियों ने जोर मारा। वे कांग्रेस छोड़ संविद बना बैठे। फिर संविद छोड़ कांग्रेस से मिलकर मुख्यमंत्री बन गए। भारतीय लोकदल बनाया। जिसे कहीं जगह नहीं, वह इस दल में आ गया। दल के आपसी झगड़े में टूटे समाजवादी आ गए, राजगोपालाचारी की मृत्यु के बाद अनाथ स्वतंत्र भी आ गए और चरणसिंह राष्ट्रीय नेता बन गए। मार्च, 1977 के चुनाव में नकारात्मक वोटों से जनता पार्टी जीत गई, तो चरणसिंह की हालत गाँव के उस गँवार लड़के जैसी हो गई जो शहर में थानेदार हो जाता है। वह अपने को इंस्पेक्टर जनरल समझने लगता है।

साधो, चरणसिंह गृहमंत्री के रूप में उसी थानेदार की तरह धमकी देते रहे—सब बदमाशों को ठीक कर दूँगा। बड़ा ऊधम मचा रखा है। एक-एक को हवालात में बंद कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूँगा। सब चोर हैं। सब भ्रष्टाचारी हैं। मैं ईमानदार हूँ। साधो, वे मंत्रियों के प्राइवेट जीवन की बातें जानने और कहने लगे। घरों में झाँकने लगे। उसी छोटे-से कस्बाई की तरह—अरे, उसके घर में तो आलू के सिवा कुछ बनता ही नहीं। फलाँ की औरत दूधवाले से चुहल करती है। अमुक का लड़का छिपकर सिगरेट पीता है। अरे, उसकी बीवी तो ऊँची एड़ी के जूते पहनती है। साधो, चरणसिंह तो यहाँ तक बताते हैं कि पाँच मंत्री अपनी औरत के साथ नहीं, दूसरी औरत के साथ सोते हैं।

साधो, लेकिन मुझे पिटे हुए चौधरी पर बड़ी दया आ रही है। मोरारजी भाई पर मुझे गुस्सा है जो कहते हैं कि मैं एक महीना मंत्रिमंडल में फेरबदल नहीं करूँगा। चौधरी पर दया करें, जो रोज कह रहे हैं कि फिर मंत्री बनने में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है। वे मंत्री बनने के लिए एक महीना कैसे रुकेंगे? उनके त्रास को, पीर पराई को, वैष्णव जन मोरारजी भाई जानें।

नारी का राजनैतिक शिकार

साधो, नारी के कारण एक मंत्री और गए, और सरकार संकट में पड़ गई। यह माया है, महा ठगिनी। तिरगुन फाँस लिये डोलती है। इस बार कनाडा का नंबर है। कनाडा के प्रधानमंत्री एक रंगीले आदमी पियरे त्रूदो हैं। इनके नक्षत्र साल-भर से खराब हैं। इनके एक कानूनमंत्री थे मिस्टर फाक्स। फाक्स लोमड़ी को कहते हैं। मगर ये फाक्स साहब खरगोश सिद्ध हुए। उनकी यह पोल खुल गई कि उनके एक विवाहित स्त्री से संबंध थे। संबंध गहरे हो गए और गर्भपात कराना पड़ा। अस्पताल में फाक्स साहब ने उस देवी के पति के दस्तखत कर दिए। याने वकील होते हुए जालसाजी कर डाली। अभी उन्होंने संसद में रोते हुए सब स्वीकार कर लिया, इस्तीफा दे दिया और भरे गले से कहा कि मुझे और त्रास मत दीजिए।

अब साधो, प्रधानमंत्री त्रूदो साहब संकट में आ गए। त्रूदो साहब अपनी बीवी से परेशान हैं। साल-भर पहले उनकी बीवी मार्गरेट उन्हें छोड़ गई। जब वह 19 साल की थी तब त्रूदो 45 साल के थे। शादी हो गई। मार्गरेट समझी, मैं प्रधानमंत्री की पत्नी हो गई और त्रूदो समझे कि मैंने एक लड़की और पटा ली। अब मार्गरेट की बढ़ती जवानी, और त्रूदो साहब पर आने लगा बुढ़ापा। जवान मार्गरेट नाचना, गाना, मौज करना चाहती थी, पर प्रधानमंत्री की पत्नी पर कई बंधन होते हैं। मार्गरेट गानेवालों की टोली में घूमने लगी और उसने अंतर्राष्ट्रीय प्रचार के साथ त्रूदो से कहा—मियाँ, अब हम अलविदा! बेचारे इसी त्रूदो पर एक और गजब ढा दिया इस मंत्री मिस्टर फाक्स ने। राजनैतिक विरोधियों ने मामला पकड़ लिया। जैसे पहले कांग्रेसी मंत्रियों के औरत और दारू के मामले विरोधी खोजते थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब जनता मंत्रियों के औरत और दारू के मामले कांग्रेसी खोजते हैं।

साधो, बड़ा झंझट का मामला है यह नेता, मंत्री और औरत का। मंत्री भी होता तो आदमी है। आदमी सरीखा सब करना भी चाहता है। पर विरोधी पोल खोलकर सब नाश कर देते हैं। बहुत साल पहले क्रिस्तीन कीलर नाम की एक लड़की ने ब्रिटिश मंत्रिमंडल को हिला दिया था। इस लड़की के कई बड़ों से संबंध थे। उनमें एक थे ब्रिटेन के रक्षामंत्री प्रोफ्यूमो। रक्षामंत्री दारू पीकर औरत का साथ करने लगे तो देश-रक्षा की सद्गति हो गई। इसी क्रिस्तीन कीलर से कई बड़े संबंध रखे हुए थे। पाकिस्तान के फौजी तानाशाह अयूब खाँ की मूँछें पकड़कर कीलर ने कहा था—मुझे बहुत अच्छी लगती हैं! अयूब खाँ पाकिस्तान की मूँछों पर गर्व से चकनाचूर हो गए। साधो, ब्रिटेन में सोवियत राजदूतावास के मिलिटरी सचिव ने भी इस लड़की कीलर से जमा लिया था, जो मामला खुलने के पहले ही भेद लेकर मास्को उड़ गए। इधर प्रोफ्यूमो साहब की पोल खुली कि वे देश की रक्षा का इंतजाम आवारा लड़की के साथ मिलकर कैसा अच्छा कर रहे थे। ब्रिटिश मंत्रिमंडल संकट में पड़ गया। प्रोफ्यूमो साहब ने रोककर इस्तीफा दे दिया।

साधो, यह बड़ा विकट मामला है नेता और औरत का। अमेरिका के मृत राष्ट्रपति केनेडी के मामले अब खुल रहे हैं। अखबारों में छप रहा है, किताबें छप रही हैं कि केनेडी के संबंध अभिनेत्रियों से थे। यही नहीं, राष्ट्रपति के संबंध अमेरिका के बदनाम अपराधी संगठन माफिया के प्रधान की रखैल से भी थे। इन्हीं केनेडी के सबसे छोटे भाई एडवर्ड केनेडी भी, जो एक प्रमुख सीनेटर हैं, झमेले में पड़ गए। वे अपने से बड़े भाई राबर्ट केनेडी की सुंदरी सेक्रेटरी के साथ एक रात एक दावत में गए थे। देर रात लौटे। सुबह उनकी कार और मरी हुई सुंदरी एक नाले में पाई गई। पर इससे एडवर्ड केनेडी उबर गए। वे राजनैतिक जीवन में हैं।

साधो, तुम पूछोगे—गुरु, क्या अपने देश के राजनीतिवाले यह सब नहीं करते। देखो, अपने यहाँ यह सब होता आया है। कृष्ण की तो गोपियों की फौज ही थी। पर वे खुले में नृत्य-गान करते थे। वे तो भगवान के अवतार हो गए। अपने राजनेता भी आदमी हैं, वे भी यह सब करते हैं। पर अपने यहाँ बात तूल नहीं पकड़ती। इसका कारण एक तो यह है कि अपने देश की स्त्रियाँ आगे बढ़कर स्वीकार नहीं करतीं। फिर हमारा नेता कह देता है—वह स्त्री तो मेरी धर्म की बहन है। मैं उससे राखी बँधाता हूँ। आप लोग कैसी पाप की बात करते हो। बस, धर्मबहन और धर्मपुत्री पर मामला खत्म हो जाता है। हाँ, एक मंत्री का अलबत्ता बिगड़ा था। वे केरल सरकार में विकास मंत्री थे। उनका नाम था चाको। एक दिन वे एक डाक बंगले में अपनी एक महिला सहयोगिनी के साथ पकड़े गए। उन्हें इस्तीफा देना पड़ा। बाकी सब चल रहा है मजे में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी सुंदरियों की दुख-कथा

साधो, कृष्ण जन्माष्टमी का मौसम है तो कुछ विरहणियों की चर्चा हो जाय। गोपियों का विरह बड़ा मार्मिक है। 'निसिदिन बरसत नैन हमारे' गोपियाँ कहती हैं और कृष्ण कहते हैं–'ऊधो मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।' अब साधो, मजा यह है कि कृष्ण कुल नौ मील दूर गए थे। कुल नौ मील। इतनी दूर तो गोपियाँ दही बेचने जाती होंगी। फिर कभी-कभी जाकर कृष्ण को देख क्यों नहीं आईं? निसि दिन रोने की जरूरत ही नहीं थी। कुल नौ मील दूर रहती हैं, जैसे पनागर से जबलपुर–और जा भी नहीं रही हैं और रो रही हैं। यह कवियों का कमाल है।

मगर साधो, मैं तुम्हें बता रहा हूँ दुनिया की इस समय की बड़ी-बड़ी नारियों के हाल। एक बेचारी बेगम सुरैया है, ईरान के शाह की तलाक-शुदा सुंदरी बेगम। शाह ने सुरैया को इसलिए त्यागा कि वह बाँझ थी और ईरान के सिंहासन पर बैठने के लिए राजकुमार नहीं दे सकती थी। शाह को दूसरी बेगम से कुमार तो मिला पर तख्त अभी खिसक रहा है। कुमार को टाटपट्टी पर बैठना पड़ेगा। बेचारी सुरैया लाखों डालर हर साल लेकर रोम में गम गलत करती है। उसका शक है कि किसी ग्रह के कोप से उसके चार प्रेमी तड़ातड़ मर गए। उसने ग्रह-शांति के लिए एक भारतीय स्वामीजी से अनुष्ठान करवाया था।

साधो, एक बेचारी इंगलैंड की रानी की बहन मागरिट है जो 47 साल की उम्र में 30 साल के गायक प्रेमी के साथ इस विलास केंद्र से उस विलास केंद्र घूमती फिरती है। मागरिट को हर साल खजाने से कई हजार पौंड मिलते हैं। ब्रिटिश संसद में सदस्य हल्ला करते हैं कि जनता राजकुमारी के दूसरे हनीमून के लिए पैसा क्यों दे। साधो, एक और मागरिट है कनाडा के प्रधानमंत्री त्रूदो की पत्नी। त्रूदो साहब खुद बड़े रंगीन खिलाड़ी रहे हैं। उन्होंने 45 साल की उम्र में 19 साल की मागरिट से शादी कर ली थी। अब मागरिट जवान होती गई और त्रूदो बूढ़े होते गए। अभी पिछले साल 28 साल की मागरिट ने सोचा होगा–मेरी तो पूरी जवानी बरबाद हो रही है। वह अलग हो गई। अब वह गायकों की मंडली के साथ घूमती है और न्यूयार्क के नाइट क्लबों में नाचती है।

साधो, एक जेकलिन कनेडी हैं। वे अमेरिका के राष्ट्रपति केनेडी की पत्नी थीं। फिर उन्होंने ग्रीस के दुनिया के सबसे धनवान आदमी ओनासिस से शादी कर ली। ओनासिस साहब 'जवान' थे–कुल 62 वर्ष की उम्र थी। पर संपत्ति अपार। पश्चिम में धनवान बूढ़ा जब जवान औरत से शादी करता है तब उसे झिलमिलाते हीरों के हारों से संतुष्ट रखता है, जैसे अपने यहाँ रिटायर होते-होते कोई शादी करता है तो जवान पत्नी को संतुष्ट और पतिव्रता रखने के लिए उससे रामायणपाठ और पूजावाठ करवाता है। तो हीरे जड़ी जेकलिन केनेडी दुबारा विधवा हुई और ओनासिस की संपत्ति में से कई लाख डालर लेकर अमेरिका में अपने दो रँडापे काट रही है।

साधो, मैं तुम्हें इन्हीं खरबपति ओनासिस की लड़की क्रिस्तीना की मजेदार कथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनाता हूँ। क्रिस्तीना को इतना बड़ा कारोबार पिता से वसीयत में मिला था कि उसे सही पता नहीं कि उसकी आमदनी कितनी है। अरबों-खरबों में होगी। बेबी क्रिस्तीना 27 साल की है। दो बार शादी और तलाक हो चुके हैं। इसी उम्र में। अब साधो, मजा देखो। क्रिस्तीना की एक बड़ी जहाज कंपनी है। रूस के जहाज विभाग का एक मामूली कर्मचारी काजोब उससे काम से मिला करता था। काम से काम पैदा हो गया। कामरेड काजोब ने कुछ ऐसा जादू कर दिया इस ऐश्वर्य-सुंदरी पर कि दोनों की मास्को में शादी हुई। शादी रूस के विवाह-कानून के अंतर्गत हुई।

अब साधो, पश्चिम में हल्ला मच गया। दुनिया की सबसे धनवान स्त्री को एक रूसी कम्युनिस्ट पटा ले गया। पूँजीवादी दुनिया के बड़े-बड़े लोग टापते रह गए। रूस के लोग भी भौंचक्के रह गए कि हमारा यह कामरेड काजोब दुनिया की सबसे कीमती चिड़िया उड़ा ले गया। साधो, विवाह तो प्रेम के कारण हुआ है। पर पश्चिम में यह हल्ला मचा है कि यह रूस की बदमाशी है। काजोब के.जी.बी. याने रूसी गुप्तचर संगठन का आदमी है। उससे प्रेम का जाल रचवाया गया है। पश्चिमी प्रेस याद दिला रहा है कि कभी ब्रिटेन का रक्षामंत्री प्रोफूमो क्रिस्तीन कीलर नाम की एक विष-कन्या से फँसा था। इस कांड से ब्रिटिश सरकार हिल गई थी। इस देवी कीलर को रूसी दूतावास के एक सैन्य अधिकारी ने भी पटा रखा था। अरे, ये रूसी बड़े बदमाश होते हैं।

साधो, बड़ा मजेदार दृश्य है। पूँजीवादी दुनिया में बेचैनी फैली है। क्या किया इस क्रिस्तीना ने? इधर कामरेड काजोब बंशी बजा रहे हैं और किसी नौकरी की तलाश में हैं। रूसी विवाह-कानून के अनुसार पति-पत्नी दोनों की आमदनी बराबर-बराबर बँटती है।

याने बेबी क्रिस्तीना की आधी आमदनी काजोब को मिलेगी। क्रिस्तीना इस समय एथेन्स में है और उसकी सखियाँ उससे कह रही हैं—हाय री निगोड़ी, तू कहाँ फँस गई! साधो, यह शादी भी टूटेगी पर अभी तो कहो—कुर्यात् सदा मंगलम्।

मेघ भटक गए

साधो, सावन इस बार सूखा है। राखी आ रही है पर इस पूरे क्षेत्र में पानी ऐसे बरसता है जैसे इंद्र मनुष्यों को 'शावर-बाथ' दे रहा हो। ये झमाझम पानी बरसने के दिन हुआ करते थे। मेघ मँडराते थे, बिजली चमकती थी। माना कि हम जैसों की छत टपकती थी, मगर यह भी मजा ही था। छत टपक रही है और इस कोने से उस कोने में दुबक रहे हैं—यह भी एक मजा है। कालिदास के यक्ष को तो आषाढ़ के पहले दिन ही मेघ दिख गया था और उसने यक्षिणी के लिए प्रेम-संदेश कहकर उसे रवाना कर दिया था। मेघ जहाँ जाता खूब बरसता था, मगर इस बार ये छूँछे मेघ आसमान में दिखते हैं पर बरसते नहीं। मेघ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनता सरकार के वादे हो गए, खोखले। मेघ जगजीवनराम की सिद्धांतप्रियता हो गए। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का गांधीवाद हो गए। नसबंदी के आँकड़े हो गए। सकलेचा जी का लोक-कल्याण हो गए।

साधो, मेघ आते थे तो विरहिणी उनसे कहती थी कि उस निष्ठुर के आँगन में मेरे आँसुओं को लेकर बरस जाओ—'कबहूँ वा विसासी सुजान के आँगन, मो अँसुआन को लै बरसो।' मगर साधो, सब काम धोखा दे गया। संगीत गया। कौन अब गाता है—अमुआ के नीचे डोला धर दे मुसाफिर, सावन की आई बहार रे! सकलेचा जी ने न जाने भैरोंसिंह शेखावत से गुपचुप क्या किया कि मालवा तक आए मानसून को राजस्थान की तरफ भेज दिया। अपने इधर नहीं भेजा। सकलेचा जी भी मूल रूप से राजस्थानी हैं। हो सकता है, यहाँ से पत्ती कटने पर उन्होंने राजस्थान का मुख्यमंत्री बनने का तय किया हो। वहाँ नाथद्वारा है। भगवान पशुपतिनाथ से लाभ उठाकर अब भगवान विष्णु को उल्लू बनाकर फायदा उठाना चाह रहे हैं।

साधो, फसल एक तो गई। अब भी नहीं बरसता तो दूसरी फसल भी सूखे खेत में थोड़े ही बोई जाएगी। पानी के लिए लोग भजन, कीर्तन कर रहे हैं। यज्ञ हो रहे हैं। चंदे हो रहे हैं, खाए जा रहे हैं। यही यज्ञ है। वरना यज्ञ के धुएँ से बादल कैसे आ जाएँगे और कैसे बरस जाएँगे। हाईस्कूल का लड़का भी ऋषि को बता देगा कि भगवन, पदार्थ जब जलता है तब कार्बन डाइऑक्साइड ही बनती है, जो प्राणघातक वायु है। यज्ञ में शक्कर, जौ, घी जलाकर आप वृक्षहीन शहर के वातावरण में यह प्राणघातक वायु क्यों बढ़ा रहे हैं?

साधो, अन्न तो देश के दूसरे हिस्सों से बुलाकर खा लेंगे। महँगा खा लेंगे। मगर पानी कहाँ से बुलाकर पिएँगे। कुएँ सूख रहे हैं। भोपाल में नलों से सिर्फ एक बार पानी मिलेगा। भोपाल के बराबर बड़ा तालाब दूसरा नहीं है। पर उसकी भी हालत पतली है। हमारे शहर के मेयर साहब ने कहा है कि जलाशयों में बहुत कम पानी है। उन्होंने लोगों से पानी बचाने की अपील की है। कहा है कि लोग व्यर्थ पानी बरबाद न करें। साधो, मेयर साहब कह रहे थे कि बंगलेवाले शिकायत करते हैं कि हमारे बगीचे में पानी नहीं मिलता। वे नाराज होते हैं। वे ठीक ही नाराज होते हैं। उनकी तकलीफ हम छोटे लोग समझ ही नहीं सकते। उन्हें यह समझाना व्यर्थ है कि आदमी को पीने का पानी नहीं मिल रहा है और आपको बगीचे की पड़ी है। आदमी प्यासा मरने से बच जाएगा तो बगीचे बहुत बन जाएँगे। बंगले और बगीचेवाले सोचते हैं कि बगीचा बच जाए। आदमी का क्या है, मर जाएँगे तो और पैदा हो जावेंगे।

साधो, उन्हें शर्म दिलाने से क्या फायदा कि बगीचे का इतना शौक है तो हैंड पंप लगवा लो। मगर नहीं, बगीचे में आदमी के पीने का पानी पाइप से इतना बहाते हैं कि उधर सड़क पर पहुँच जाता है और इधर गरीब औरतें 2 बजे रात से नल के पास घड़ा और बाल्टी लिये बैठती हैं। इस उच्चवर्ग के दुख ही दूसरे हैं, हमसे अलग दुख हैं वे। अन्न संकट का हमारे लिए दूसरा मतलब है। उन्हें अन्न संकट तब महसूस होता है जब प्यारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुत्ते को विदेशी बिस्कुट नहीं मिलता। भारतीय मेम साहब कहती हैं—इस देश का नाश हो जाय। देखो 'डागफूड' नहीं मिल रहा है।

साधो, हमारा-तुम्हारा भी अच्छा ही हाल है। मेयर साहब की अपील से क्या होता है। तरसना अपने को ही है। पर अपना यह हाल है कि नल खुला है तो खुला ही पड़ा है। सड़क के नल भी बहुत खुले मिल जाएँगे। हम कहते हैं—कौन अपने बाप का जा रहा है। सब जगह यह कहा जाता है। सरकारी गोदाम में माल सड़ रहा है—सड़ने दो। कौन अपने बाप का जाता है। कारखाने में बरबादी हो रही है—होने दो। कौन अपने बाप का जाता है। जो सार्वजनिक नल है वह हममें से किसी के बाप का नहीं है। फिर वह किसके बाप का है? चीनी के बाप का है या अमेरिकी के या पाकिस्तानी के बाप का ?

साधो, मुझे चैन है। हैंड पंप है। पीने का पानी नल से बुलाते हैं। पर हैंड पंप का पानी बाकी सब काम आता है। आगे इसी को पिएँगे। इस पंप में पानी आना कभी कम नहीं होगा, क्योंकि नाला लगा हुआ है। यह नाला परम पावन ओमती मैया की सहायक नदी है। यह नाला वर्षा का मोहताज नहीं। यह न गंगोत्री से निकलता न अमरकंटक से। यह कहीं बाथरूमों से निकलता है और सारा साल इसमें बाथरूमों का पानी भरता आता है। हमारे पंप में हर हालत में पानी आएगा। बाथरूमों का पानी इसमें है तो 'शिवाम्बु' भी काफी रहता होगा।

खटिया खड़ी हो गई

साधो, कभी-कभी ऐसा होता है कि जिसे मसखरा समझते हैं, वह हीरो हो जाता है और जो हीरो बने फिरते हैं, वे मसखरे मालूम होते हैं। भारत की राजनीति में राजनारायण एक जोकर की हैसियत रखते थे। इंदिरा गांधी को हराना भी एक जोकर का करतब माना गया था। जनता पार्टी में बड़े-बड़े योद्धा जो मुकुट पहने थे, जिरह-बख्तर पहने थे, तलवार लटकाए थे, मूँछें ऐंठे थे, इस जोकर को मजाक में उड़ाते थे। उन्होंने राजनारायण को अनुशासन भंग के आरोप में केंद्रीय समिति से निकाल दिया। तो जोकर राजनारायण ने जनता पार्टी छोड़ दी। सिपहसालार खुश हुए कि चलो जोकर से छुट्टी मिली। मगर साधो, आज वही जोकर राजनारायण इन सिपहसालारों को जोकर बनाकर बदहवास इस दरवाजे से उस दरवाजे दौड़ा रहा है। इन सिपहसालारों की सूरत देखकर लोगों को हँसी आती है। संसद के बाहर लोग इन्हें देखने और ताली बजाने को खड़े रहते हैं। ये काँपती टाँगों से कहते हैं कि हमारे पाँव जमे हैं। ये पसीना पोंछते हुए कहते हैं कि हम घबराते नहीं हैं।

साधो, तुम पूछोगे कि यह चमत्कार कैसे हो गया। बात यह है कि जितने बुनियादी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और गंभीर मामले हैं, इसी जोकर ने उठाए हैं। राजनारायण ने ही सबसे पहले पार्टी में अनुशासन का मामला उठाया। इसी जोकर ने बोगस सदस्यता का मामला उठाया। जोकर ने ही दुहरी सदस्यता का मामला उठाया कि संघ फासिस्ट है और जनता पार्टी लोकतांत्रिक। इसलिए दोनों का साथ नहीं हो सकता। साधो, आज हाल यह है कि कोई पार्टी या गुट राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोगों के साथ बैठना नहीं चाहता। कांग्रेस, इंदिरा कांग्रेस, दोनों कम्युनिस्ट पार्टियाँ, भालोद, समाजवादी, कोई संघ से सरोकार नहीं रखना चाहता। संघ के पवित्र लोग अछूत हो गए हैं। देश में सीधा राजनैतिक विभाजन हो गया है–लोकतांत्रिक शक्तियाँ बनाम फासिस्टवाद। गांधी हत्याकांड के बाद संघ की अब दूसरी बार यह सद्गति हुई है।

साधो, यह फासिज़्म कैसे काम करता है, लोग यह समझ गए हैं। जनता अपने प्रतिनिधि चाहे चुन ले, पर फासिस्ट उन्हें विधानसभा और संसद में जाने ही नहीं देंगे। हरियाणा के विधायकों को 10-12 दिन हरण करके गायब रखा। जान से मारने की धमकी। टाँग तोड़ने की धमकी। अमृत नाहटा ने शिकायत की है कि उन्हें फोन पर धमकी मिली है कि अगर अविश्वास के प्रस्ताव पर बोले तो खैर नहीं। दो संसद-सदस्य गायब हैं। फासिज़्म विरोधी से बहस नहीं करता, उसका मुँह तोड़ देता है। ऐसे में चला लो लोकतंत्र। साधो, तुम पूछोगे कि आगे क्या होगा ? यह सरकार तो गिर गई। यशवंतराव चव्हाण को अविश्वास का प्रस्ताव रखते वक्त इसके महत्त्व का बोध नहीं था। उन्होंने यह समझकर प्रस्ताव रखा था, जैसा आमतौर पर होता है कि बहस होगी और प्रस्ताव गिर जाएगा। शाम को उन्हें मालूम हुआ कि मेरे हाथ से तो ऐतिहासिक काम हो गया है। उन्होंने शेरवानी बदली, गले तक बटन लगाए और चेहरे पर गुरुत्व धारण कर लिया।

साधो, यह गैरजनता सरकार अगर बनी भी तो ज्यादा टिकेगी नहीं। साल-भर काट ले तो बहुत है। मोरारजी अच्छे हैं; पर अलीबाबा चालीस चोरों में फँस गए थे। सरकार कोई रही नहीं थी। कलेक्टर का काम संघ के प्रधान करने लगे थे। सरकार बदले तो कलेक्टर को उसके अधिकार मिलें।

साधो, रावण की सभा में हनुमान की पूँछ में आग लगाकर सोचा था कि बंदर भाग जाएगा। मगर हुआ कुछ और–'उलट-पलट लंका तेहि जारी, कूद परेउ कपि सिन्धु मझारी।' रावण ने अंगद से बाद में कहा था कि तुम्हारी सेना में एक ही वीर है–'है कपि एक महा बलशाली।' वह कौन है? 'आय प्रथम लंका जेहि जारी।' इस समय हनुमान के अवतार राजनारायण की जय हो रही है–'जै हनुमान ज्ञान-गुन-सागर!'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसका जनतंत्र हारा

साधो, जयप्रकाश नारायण हम सबसे बड़े साधू हैं। वे कहते हैं कि इंदिरा गांधी की जीत कोई घटना नहीं है। ठीक है। पर इसी घटनाविहीन घटना को घटित न होने देने के लिए जयप्रकाश ने मतदाताओं के नाम अपील निकाली थी। उस अपील में कहा था कि इंदिरा गांधी तानाशाही की प्रतिनिधि हैं और जनता पार्टी लोकतंत्र की। अब साधो, जनता ने तानाशाही को वोट देकर जिता दिया। याने जनता पार्टी का लोकतंत्र हार गया। तो अब जनता सरकार को इस्तीफा दे देना चाहिए, क्योंकि लोकतंत्र ही हार गया है। और इंदिरा गांधी को तानाशाह बन जाने देना चाहिए।

साधो, बड़े मजाक हो रहे हैं। ये सब नेता जोकर हो गए हैं। रामकृष्ण हेगड़े कहते हैं कि इंदिरा कांग्रेस ने चिकमगलूर के लोगों को बेवकूफ बनाकर वोट लिये। इसका मतलब यह हुआ कि लोग बेवकूफ बनाए जा सकते हैं। लोगों को बेवकूफ जॉर्ज फर्नांडिस भी बना रहे थे और इंदिरा कांग्रेस भी बना रही थी। मगर जॉर्ज बेवकूफ बनाने में असफल रहे। अमीर लोगों को तो बेवकूफ बनना ही था, तो वे इंदिरा गांधी के पक्ष में बेवकूफ बन गए। याने जनता-नेताओं को यह पक्का विश्वास है कि लोग सोच-विचारकर वोट नहीं देते, बेवकूफ बनकर देते हैं। तो 1977 में जो जनता पार्टी को वोट दिए थे वे भी बेवकूफ बनकर दिए होंगे। तो जो सरकार बेवकूफों के वोटों से बनी है उसे इस्तीफा दे देना चाहिए।

साधो, इनकी ऐंचक-बेंचक बातों का अंत नहीं है। पसीना आ रहा है। उसे पोंछ रहे हैं। मुँह सूख रहा है। हाथ-पाँव ठंडे हो गए हैं। मगर चिल्लाते हैं—इंदिरा गांधी के संसद में आने से कुछ नहीं होता। उनका जीतना महत्त्वहीन है। अगर उनका जीतना महत्त्वहीन है तो आपको इतना पसीना क्यों आ रहा है कि हम साधुओं को अपनी चादर से पोंछना पड़ता है।

साधो, एक दादा कृपलानी हैं—राजनीति के बाबा सनकीदास। वे कहते हैं कि इंदिरा गांधी की जीत से सड़क की राजनीति फिर चालू हो जाएगी। दादा कृपलानी को याद दिलानी पड़ेगी कि गांधीजी के नेतृत्व में उन्होंने जो लड़ाई लड़ी थी वह सब सड़क की राजनीति थी। गांधीजी राजनीति को वाइसराय भवन से निकालकर सड़क पर ले आए थे। वह तो एक आदर्श के लिए, एक अनुशासित सड़क की राजनीति थी। पर, सन् 1974 में संपूर्ण क्रांति के नाम से जो सड़क की राजनीति हुई थी, वह कैसी थी? सारे गुंडे क्रांतिकारी हो गए थे। लोगों को पकड़ना, पीटना, बस जलाना, भीड़ लेकर विधानसभा पर हमला करना, यह सब क्रांतिकर्म था। औरतों का दुपट्टा छीनना और जेब काटना भी तब क्रांतिकर्म हो गया था। तब जयप्रकाश ने पुलिस से कहा था कि वह आदेश न माने। मगर अभी चिकमगलूर में जब केंद्रीय रिजर्व पुलिस गई तो जनता पार्टी के लोगों ने उसकी जय बोली। पुलिस की जय बोलकर चुनाव जीतने की कोशिश करना जनता पार्टी का लोकतांत्रिक अधिकार है।

साधो, सबसे विचित्र हाल तो जॉर्ज फर्नांडिस का रहा। उसने किसी निराश प्रेमी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह गरेबाँ फाड़ डाला। बाल नोच लिये। लुंगी लपेट ली। वीरेंद्र पाटिल को पीछे ढकेलकर जॉर्ज खुद उम्मीदवार बन गए। जॉर्ज-ही-जॉर्ज का नाम गूँज रहा था। जॉर्ज अपने भाई पर पुलिस-जुल्म का और माँ की बलात्कार की धमकी का प्रचार कर रहे थे, वीरेंद्र पाटिल का नहीं।

साधो, जॉर्ज एक अभिनेत्री नंदना को ले आए। नंदना मुँह पर पट्टी बाँधे एक तख्ती लिये घूमती थी—'मेरी माँ को किसने मारा?' उसे यह कौन समझाए कि उसकी माँ स्नेहलता रेड्डी दमा से मरी थी। उसे जेल में जॉर्ज ने डाला था, अपने रेल की पटरी उखाड़ने के काम में साथ लेकर। जॉर्ज समझते थे कि सुंदर अभिनेत्री जनता पार्टी को वोट दिला देगी।

साधो, उत्तर भारत में भी उपचुनाव होनेवाले हैं। मैं जॉर्ज को बता दूँ कि अभिनेत्री हेमामालिनी के पिता की मृत्यु हार्टफेल से हो गई है। जॉर्ज अब हेमामालिनी को पटाएँ। हेमामालिनी को एक तख्ती लेकर घुमवाएँ जिस पर लिखा हो—'मेरे पिता को किसने-किसने मारा?' शायद वोट मिल भी जायँ। या लोग कह दें कि तुम्हारे बाप को तुम्हारी खूबसूरती ने मारा। तुम्हारी खूबसूरती पर पागल एक युवक तुम्हारे बंगले में घुसा था, जिसे देखकर घबराहट में तुम्हारे पिता के प्राण निकल गए।

साधो, हमें इस समय इंदिरा गांधी को बधाई देने के बदले जनता पार्टी के लोकतंत्र के हारे हुए 'वीरों' के आँसू पोंछना चाहिए।

ताला, चूड़ियाँ और सिंदूर

साधो, अपने प्रधानमंत्री ने अलीगढ़ में अच्छी बात कही। वैसे वे हर जगह अच्छी बात कहते हैं, चाहे दिल्ली हो या वाशिंगटन। उन्होंने कहा—अलीगढ़ के ताले मशहूर हैं। लोगों को अपने दिमाग पर ताले लगा लेना चाहिए, जिससे भीतर की सांप्रदायिकता न निकल सके। बहुत उम्दा बात है। सही भी है। लोगों के दिमाग में सांप्रदायिकता भरी है। वह कभी-कभी निकल पड़ती है और दो संप्रदाय लड़ पड़ते हैं। सवाल यह है कि इनके दिमाग में सांप्रदायिकता भर कैसे गई? किसने भर दी? कार में पेट्रोल भरा जाता है, तो किसी पेट्रोल पंप से। सांप्रदायिकता के पंप, प्रधानमंत्री को मालूम है कि कहाँ हैं? पर वे उन्हें बंद नहीं करते। उलटा यह कहते हैं कि सांप्रदायिकता का जो पेट्रोल भर गया है वह निकल न जाय, इसलिए ताला लगा लो। भीतर पेट्रोल रहेगा तो सांप्रदायिकता की गाड़ी चलती रहेगी।

साधो, प्रधानमंत्री को याद दिलाओ कि जैसे अलीगढ़ के ताले मशहूर हैं वैसे ही फीरोजपुर की चूड़ियाँ मशहूर हैं। तो प्रधानमंत्री को कहना था कि रामनरेश यादव और दूसरे मंत्रियों को फीरोजपुर की चूड़ियाँ पहन लेनी चाहिए, क्योंकि वे अलीगढ़ में एक महीने में भी दंगे पर नियंत्रण नहीं पा सके। जिम्मेदारी केंद्र की भी है। इसलिए प्रधानमंत्री को खुद चूड़ी पहन लेना था और कहना था—मैंने तो चूड़ियाँ पहन ही ली हैं, पार्टी अध्यक्ष, चंद्रशेखर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए भी ले जा रहा हूँ। अब साधो, तुम कहोगे कि गुरु चूड़ियाँ तो हो गईं, माँग का क्या होगा ? तो नागपुर का सिंदूर मशहूर है। नानाजी देशमुख से नागपुरी सिंदूर से माँग भी भरवा लेंगे।

साधो, प्रधानमंत्री दिमाग पर अलीगढ़ी ताला लगाने को कहते हैं। मगर अलीगढ़ के ताले तो पहले ही लुट चुके हैं। ये ताले गए कहाँ? ये ताले जनता पार्टी के नेताओं के मुँह पर जड़ दिए गए हैं। इसीलिए सही बात न प्रधानमंत्री बोलते हैं न चंद्रशेखर। चंद्रशेखर को उनके सबसे निकट के आदमी रिपोर्ट लाकर देते हैं कि अलीगढ़ के दंगे 'संघ' ने कराए। मगर चंद्रशेखर के मुँह पर ताला लगा था। वे यह नहीं कह सके। अब तुम पूछोगे कि राजनारायण क्यों बोल रहे हैं। राजनारायण चमत्कारी हस्ती हैं। वे हनुमान के अवतार हैं। हनुमान पर मनुष्य का ताला नहीं लगता। पर हनुमान भी सुभीते से साम्यवादी होते हैं। जब जनसंघ चरणसिंह के साथ था और चौधरी गृहमंत्री थे, तब राजनारायण संघ के बारे में यह सब नहीं बोलते थे। अब इसीलिए बोलते हैं कि चौधरी से संघ ने कुट्टी कर ली है। कल दोस्ती हो जाएगी तो राजनारायण फिर पलट जाएँगे। ईमान का मामला ऐसा ही होता है।

साधो, प्रधानमंत्री ताला लगाने के पहले उस फोड़े का ऑपरेशन नहीं कराएँगे जो कुछ लोगों के दिमाग में है। उसे काटकर उसका मवाद निकाल देने की झंझट में कोई नहीं पड़ना चाहता। भीतर मवाद जहर बनता रहता है। प्रधानमंत्री या किसी के भी उपदेशों से इस फोड़े का ऑपरेशन नहीं होता। साधो, प्रधानमंत्री तो ताले की बात कर रहे हैं, पर इस देश में पिछले 50 सालों से दिमाग सील किए जा रहे हैं। सील करनेवाले तो छोटी उम्र के बच्चों को ले जाते हैं। उनसे कवायद कराते हैं। लाठी चलवाते हैं। उनके दिमाग में जहर भरकर बाहर सील लगा दी जाती है। यह सील प्रधानमंत्री की अपील से टूट नहीं सकती। वे लोग तो प्रधानमंत्री का दिमाग सील करने की कोशिश में हैं।

साधो, हिंदू-मुसलमान नहीं लड़ते। इन दंगों का धर्म से कोई संबंध नहीं है। कोई अपने धर्म और भगवान के लिए प्राण नहीं लेता या देता। यह शुद्ध राजनीति है। अर्थ-नीति है। अगर प्रधानमंत्री को हत्या, आगजनी और लूट की राजनीति लोकतांत्रिक लगती है तो लोकतंत्र की यह वापसी उन्हें मुबारक।

इस नेहरू का क्या करें ?

साधो, इस बार नेहरू के जन्मदिन पर मैंने रेडियो पर एक बार तो सुना—भारत के एक भूतपूर्व प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू। याने भारत के जो पचीसों प्रधानमंत्री हो गए हैं, उनमें एक नेहरू भी थे। मगर दूसरे समाचार बुलेटिन में कहा गया—महान् देशभक्त पंडित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जवाहरलाल नेहरू। रेडियो पर जो प्रोग्राम बनाते हैं और प्रसारण करते हैं, वे बेचारे सरकारी नौकर हैं। वे जानते हैं, हमारे मंत्री आडवाणी जनसंघी हैं। इसलिए उन्हें नेहरू को छोटा-से-छोटा करके बताना है। तो वे कहते हैं—भूतपूर्व प्रधानमंत्रियों में से एक, याने एक मामूली रिटायर्ड तहसीलदार। फिर लगता है कि नेहरू को कुछ ज्यादा छोटा कर दिया। तो वे कहते हैं—महान देशभक्त, याने वे जो लाखों लोग जेल गए थे, उनमें एक जवाहरलाल नेहरू भी थे। उन्हें 'राष्ट्रनिर्माता' वगैरह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जनसंघी और समाजवादी उन्हें राष्ट्रघातक मानते हैं।

साधो, जनता सरकार बनने पर हमारी दूसरी आजादी लानेवालों को नेहरू बड़ा सिरदर्द हो गए। इस कमबख्त नेहरू का क्या करें? इसे न उगलते बनता, न लीलते। एक तो नेहरू के अपने पाप ही कम नहीं थे। नेहरू ने समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता की बुनियाद डाली। यह जनसंघ को पसंद नहीं। नेहरू का समाजवाद और औद्योगीकरण चरणसिंह को पसंद नहीं। मोरारजी भाई की यह शिकायत कि गांधीजी के बाद तो सीधे मुझे होना था। यह नेहरू कहाँ से बीच में घुस गया? समाजवादियों का तो समाजवाद ही नेहरू को गाली देने पर टिका है। किसी समाजवादी नेता से पूछते थे कि तुम्हारा सिद्धांत क्या है, तो वह जवाब देता था—नेहरू ढोंगी है। नेहरू पाखंडी है। इसके सिवा उसे समाजवाद कुछ और समझ में नहीं आता था।

साधो, नेहरू का पाप और बढ़ गया क्योंकि वे इंदिरा गांधी के पिता थे। उसी इंदिरा गांधी के पिता जिसने इन लोगों को जेल में रखा। उसी इंदिरा गांधी के पिता जो अब भी इनकी नींद हराम कर रही है। नेहरू को तो माफ कर सकते हैं, पर उनके इस अपराध को माफ नहीं कर सकते कि वे इंदिरा के पिता थे।

मगर साधो, नेहरू का करें तो करें क्या? नेहरू का तो अब बिगड़ने से रहा, क्योंकि उनकी मृत्यु हो चुकी। असल मुसीबत यह है कि नेहरू की नीतियाँ भूत की तरह पीछे पड़ी हैं। जब तक नेहरू को नष्ट नहीं किया जाता तब तक जनसंघ भारत को हिंदू राष्ट्र कैसे बना सकता है? जब तक नेहरू खत्म नहीं होता, तब तक चरणसिंह फिर से जमींदारी प्रथा कैसे ला सकते हैं, सामंतवाद कैसे चालू रख सकते हैं? नेहरू को नष्ट किए बिना अमेरिका के सामने समर्पण कैसे कर सकते हैं? रूस से संबंध कैसे तोड़ सकते हैं? समाजवाद का नाम इस देश से कैसे मिटा सकते हैं?

मगर साधो, इस नेहरू को मिटाएँ तो मिटाएँ कैसे? इसके नाम की संस्थाएँ, संगठन, हजारों इमारतें, पार्क, लाखों सड़कें, लाखों आदमियों के नाम ही जवाहरलाल हैं। अटलबिहारी वाजपेयी विदेश जाएँ, तो वहाँ के नेता नेहरू की पहले बात करें। अगर वाजपेयी नेहरू की बुराई करें तो कोई विदेशी नेता उनसे बात न करे। कहें—आप रोटी खाइए और घर जाइए। साधो, बड़ी आफत कर रखी है इस नेहरू ने। सारे बौने पंजों पर खड़े होकर नेहरू के चेहरे को पोतने की कोशिश करते रहे, पर उनके हाथ कमर से ऊपर नहीं जाते। अब क्या करें? थूककर देखा, पर थूक अपने ही मुँह पर गिरता है। बड़ी आफत कर रखी है इस नेहरू ने।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधो, इन लोगों ने तब कहा—एक आइडिया है। इस नेहरू को गांधीजी की लाठी से पिटवाओ। नारे—नेहरू गांधी विरोधी थे। हम गांधी की नीतियों पर चलेंगे। महात्मा गांधी की जय! गांधीजी का चित्र गुरु गोलवलकर के साथ लगने लगा।

मगर साधो, काम नहीं चला। नेहरू का कुछ बिगड़ा नहीं। समझदारों ने कहा—नेहरू गांधी विरोधी नहीं, उनके अनुयायी थे। अब साधो, मैं बड़ा मजेदार हाल देखता हूँ। हमला होता है—तुम गलत विदेशनीति अपना रहे हो। तो यही नेहरू विरोधी अपनी रक्षा के लिए नेहरू का सहारा लेते हैं। कहते हैं—नहीं, नहीं, हम तो नेहरूजी की नीति पर ही चल रहे हैं। रूस कहता है—आपकी सरकार विदेशनीति में हेर-फेर कर रही है। तो जवाब देते हैं—नहीं साहब, नेहरू की नीति पर ही चल रहे हैं। विकास नीति की आलोचना होती है तो कहते हैं—नहीं, नहीं, नेहरू की नीति पर बढ़ रहे हैं।

साधो, बड़ी दया आती है इन जनता नेताओं पर, जो अपनी रक्षा के लिए उसी नेहरू का सहारा लेते हैं, जिसे वे मिटाना चाहते हैं।

कविता, विज्ञान और धार्मिक मूढ़ता

साधो, अज्ञान और अंधविश्वास का राज लंबा चलता है। एक संगठित धर्माचार्यों और पुरोहितों की परंपरा जब भगवान के नाम पर अज्ञान और अंधविश्वास का राज चलाए और राजनैतिक सत्ता इसमें सहयोग दे क्योंकि उसकी भी इससे रक्षा होती है, तब ये दोनों सत्ताएँ क्रूर और मानव-प्रगति-विरोधी होती हैं। अब 350 साल बाद रोम के कैथोलिक पोप पाल यह स्वीकारते हैं कि चर्च ने वैज्ञानिक गेलीलियो को सताकर गलती की। गेलीलियो का कहना सही था। साधो, तुम जानते हो, गेलीलियो का कहना यह था कि पृथ्वी सूर्य के आसपास घूमती है। अंतरिक्ष-विज्ञान का यह तथ्य उसने बड़ी शोध के बाद प्राप्त किया था। परन्तु पादरियों ने कहा कि ऐसा कहना धर्म और ईश्वर के विरुद्ध है। सूर्य पृथ्वी के आसपास घूमता है और पृथ्वी स्थिर है। गेलीलियो को पादरियों की अदालत के सामने पेश किया गया। इस कार्यवाही को 'इन्क्वीजीशन' कहते थे। वहाँ गेलीलियो ने तर्क पर तर्क दिए पर पादरी नहीं माने। उन्होंने फैसला दिया कि यदि गेलीलियो यह नहीं मानता कि सूर्य पृथ्वी के आसपास घूमता है तो उसे प्राणदंड दिया जाय। उन दिनों प्राणदंड का तरीका था खंभे से बाँधकर आग लगा देना। गेलीलियो 70 वर्ष का था। वह अपने वैज्ञानिक विचारों का प्रचार भी करना चाहता था। उसने पादरियों के सामने मान लिया कि पृथ्वी नहीं घूमती। मगर बाहर आकर कहा—वह अभी भी घूमती है।

साधो, चर्च के धर्मपंडितों को 350 साल बाद पादरियों की यह भूल समझ में आई और 1983 में रोम के पोप स्वीकार करते हैं कि ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में चर्च को हस्तक्षेप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं करना चाहिए। अभी तक पादरियों के लिए सूर्य पृथ्वी के चक्कर लगा रहा था। अब पोप ने मान लिया है तो कल से पृथ्वी सूर्य के चक्कर लगाने लगी होगी। साधो, भारत में तो बहुत शताब्दियों पहले आर्यभट्ट और भास्कराचार्य ने अंतरिक्ष और सौर-मंडल का अध्ययन कर डाला था। यह खोज भी कर डाली थी कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है और चंद्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है। गनीमत है कि इन दोनों वैज्ञानिकों की दुर्गति नहीं हुई। दंड-विधान था। जो वेद-विरोधी है उसके हाथ, पाँव, जीभ काट लेने का दंड-विधान अपने यहाँ भी है। वेदों में सूर्य देवता है। देवता पृथ्वी के चक्कर लगातार लगाए, यह कहना वेद-विरुद्ध ही हुआ। पर ये भारतीय वैज्ञानिक बच गए। साधो, चार्वाक ने पदार्थ को सत्य माना था। उसने पदार्थों की परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया से सृष्टि की उत्पत्ति और विकास माना था। वह पदार्थवादी दार्शनिक था, जो ईश्वर की सत्ता, पुनर्जन्म, नर्क-स्वर्ग, कर्म-फल, दैवी शक्ति, भाग्य, सबको नकारता था। उसने 'लोकायत' धर्म चलाया। पर चैतन्यवादी दार्शनिकों और ब्रह्मवादियों ने लोकायत दर्शन माननेवालों पर घोर अत्याचार का विधान दिया है।

साधो, कई सौ साल तक रोमन कैथोलिक चर्च ने अत्याचार किए! ज्ञान-विज्ञान की उन्नति नहीं होने दी। दया, करुणा और क्षमावाले ईसाई धर्म के ये मठाधीश अत्यंत नीच, पाखंडी, क्रूर, स्वार्थी हो गए थे। ये आदमी से यहाँ पेमेंट लेकर स्वर्ग में उसके लिए सुख-साधनों के इंतजाम का सौदा करते थे। जर्मनी के एक पादरी मार्टिन लूथर ने इस पाखंड का विरोध किया तो उसे जिंदा जला दिया गया। अगर आंतरिक विद्रोह न होता, 'प्रोटेस्टेंट' रोम के पोप की सत्ता को न त्यागते, 'चर्च ऑफ इंगलैंड' अलग न होती तो यूरोप ज्ञान, विज्ञान, तकनीक और उद्योग में उन्नति न करता। वह आदिम अवस्था में रह जाता। इंगलैंड के सबसे बड़े विज्ञान, तकनीक और उद्योग संपन्न देश हो जाने का एक कारण यह भी था कि 'चर्च ऑफ इंगलैंड' रोमन कैथोलिक सत्ता के बाहर आ गई थी। नहीं तो भाप की शक्ति से जब रेलगाड़ी चलने लगी, उद्योग चलने लगे, तो रोम के पोप इसे रुकवा देते। वे कहते—यह शैतान की शक्ति है। ईश्वर विरोधी है। इसे बंद करो। इसे खोजनेवाले को मार डालो। वैसे, साधु, तुम्हें जानकर मजा आएगा कि पहली बार जब इंगलैंड में रेलगाड़ी चली तो संसद में ऐसे ज्ञानी सदस्य थे जिन्होंने कहा कि यह गाड़ी शैतान की शक्ति से चलती है। या भूत, प्रेत, जिन्न इसे चलाते हैं। यह देश के लिए अमंगलकारी है।

साधो, यह मध्ययुग की बात है। वह युग गया। यह अब तर्क और विज्ञान का युग है। मगर कुछ लोग मध्ययुग लौटाने की कोशिश में लगे हैं। ये दुनिया को मध्ययुग के भी पीछे ले जाना चाहते हैं। ये आगे बढ़ते इतिहास के पहिए को अपने हाथों से थामने की कोशिश करते हैं। वे नहीं जानते, पहले भी ऐसा हुआ है। रोकनेवालों के हाथ टूट जाते हैं और इतिहास आगे बढ़ जाता है। इनके हाथ भी टूटेंगे। वे समझते हैं इतिहास को हमने रोक लिया है। पर, यह उनकी समझ का भ्रम है। इतिहास आगे बढ़ रहा है। रोकनेवालों के हाथ टूटनेवाले ही हैं। साधो, सारे पूर्व में यह हो रहा है, धर्म के नाम पर। मुस्लिम देशों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के शाह और शेख अपनी जनता को इस्लाम के नाम पर सातवीं शताब्दी में रखे हैं। पर वहाँ भीतरी विद्रोह है और अपनी सुरक्षा के लिए ये शाह अमेरिका पर निर्भर हैं। इधर खोमैनी और जिया-उल-हक़ भी इस्लाम के नाम पर यही कर रहे हैं। अपढ़ कठमुल्ले इनकी ताकत हैं। बांग्ला देश के जनरल इरशाद भी इस्लामी राष्ट्र बनाना चाहते हैं। ये सब मनुष्य की स्वतंत्र चेतना को दबाकर हुकूमत करना चाहते हैं। बीसवीं सदी को सातवीं सदी बनाना चाहते हैं। ये सामान्य आदमी को इस्लामी आदेश के डर से दबाए रखना चाहते हैं। पर ईरान और पाकिस्तान में विद्रोह सुलग रहा है और यह कट्टर तानाशाही रहेगी नहीं।

साधो, भारत में भी यह पुनरुत्थानवाद की प्रक्रिया चालू है। हिंदू धर्म की राजनीति करनेवाले कई सालों से हिंदू मानसिकता को पुरोगामी और कट्टर बना रहे हैं। यही काम मुसलमानों में जमायते-इस्लामी करती है।

मगर साधो, सबसे अचरज की और सबसे चोट करनेवाली बात देखो। सिख धर्म सरीखा उदार कोई धर्म नहीं है। इसमें कोई कर्मकांड नहीं है। मानव-प्रेम और मानव-सेवा है। कभी गुरुद्वारे में ठहरकर देखो। किसी भी जाति और धर्म के हो, सिख तुम्हारी सेवा करेंगे। तुम्हें थाली नहीं उठाने देंगे। तुम्हारे जूते तक साफ कर देंगे। मगर जब किन्हीं कारणों से उन्माद आया है तो सिख धर्म के ज्ञानियों और संतों ने बहुत बड़ी पंजाबी कवयित्री अमृता प्रीतम की पाँच कविताओं को 'धर्म विरोधी' बताया है और उन्हें कानूनी कार्यवाही की धमकी दी है। पंजाब की जो बेटी दुनिया में पंजाब का गौरव है, अपनी उसी बेटी की जबान ये धर्मगुरु काट लेना चाहते हैं। धर्म के नेताओं की मर्जी से साहित्य लिखवाया जाने लगा, तो एक कविता भी नहीं लिखी जा सकेगी। तुममें कई कविताएँ लिखते हैं। क्या तुम ऐसा करोगे कि कविता लिखो और उसे पहले नागपुर जाकर संघ के सर संघचालक से मंजूर कराओ, फिर दिल्ली जाकर जामा मस्जिद के इमाम की मंजूरी लो, फिर स्वर्ण मंदिर जाकर संत लोंगोवाल और संत भिंडरावाला से अनुमति लो, फिर बिशप की मंजूरी लो, तब कविता छपाओ। साधो, जिस जाति के धर्मगुरु कविता पर, साहित्य पर बंदिश लगाते हैं, उस जाति पर हम साधुओं को दया आती है। हमें उस जाति के भविष्य के बारे में भी चिंता होती है। कालिदास बच गए। उन्होंने 'कुमारसंभव' में तो शिव-पार्वती के रमण का वर्णन किया है, तो शैव उन्हें त्रिशूल से मार डालते। पर तब धर्मगुरु संकीर्ण नहीं थे।

जॉर्ज का जेरुसलम

साधो, जॉर्ज फर्नांडिस ने हफ्ता भर पहले कहा है कि मैं छत्तीसगढ़ में 6 महीने रहूँगा। उन्होंने तीन महीने पहले भी कहा था कि मैं 6 महीने छत्तीसगढ़ में रहूँगा। तो वे 3 महीने तो रह लिये। अब 3 महीने और बचे। मगर जॉर्ज अभी भी कहते हैं कि मैं 6 महीने छत्तीसगढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में रहूँगा। साल-भर बाद भी कहेंगे कि मैं 6 महीने छत्तीसगढ़ में रहूँगा। ऐसा कब तक चलेगा? छत्तीसगढ़ियों को चिंता है कि इस तरह वे खींचते गए, तो न जाने उन बेचारों का कौन-सा भयानक भला हो जाय। वे एक तारीख तय कर दें, ताकि लोग राहत तो अनुभव करें।

साधो, जॉर्ज फर्नांडिस एक तूफानी नेता हैं। वे किस बात पर किस तरह का तूफान उठाएँगे कह नहीं सकते। 1974 में उन्होंने जो रेलवे हड़ताल कराई थी, और समय पर समझौता नहीं होने दिया था तो रेलवे-कर्मचारियों को जो भुगतना पड़ा, वे वही जानते हैं। रेलवे कर्मचारी और उनके परिवार के लोग अभी भी जॉर्ज के नाम को रोते हैं। जॉर्ज ने खुद महीने-भर पहले यह स्वीकार किया कि उस रेलवे-हड़ताल में हमसे कुछ भूलें हो गई थीं। जॉर्ज तो भूल स्वीकार कर बरी हो गए, पर जो कर्मचारी बरबाद हो गए वे क्या करें? वे जॉर्ज के नाम से नफरत ही कर सकते हैं।

साधो, जॉर्ज करिश्मा करनेवाले नेता हैं। कुछ करिश्मे रहस्य में ढँके हैं। जरा याद करो—जब चरणसिंह प्रधानमंत्री बनने को उतारू थे तब जनता पार्टी-सरकार के खिलाफ चरणसिंह ने अविश्वास का प्रस्ताव रखवाया था। तब लोकसभा में जनता सरकार के पक्ष में सबसे अच्छा जॉर्ज बोले थे। वे लगातार 2 घंटे बोले थे। लगता था, जनता सरकार बच गई। पर दूसरे दिन खुद जॉर्ज ने उसी जनता पार्टी से इस्तीफा दे दिया जिसके काम की तारीफ वे चौबीस घंटे पहले कर चुके थे। साधो, यह क्या चमत्कार था? कैसे बदल गए वीर शिरोमणि जॉर्ज। तब अखबारों में संकेत दिए गए थे और दिल्ली में आम चर्चा थी कि रात को गृहमंत्री चरणसिंह ने जॉर्ज के बंगले में भ्रष्टाचार विरोधी फोर्स की 'रेड' (छापा) डलवा दी थी। नतीजा यह हुआ 'रेड' से कि फौरन जॉर्ज के राजनैतिक विचार बदल गए, उन्होंने जनता पार्टी छोड़ दी और चरणसिंह के साथ हो गए। इसमें क्या रहस्य है? 'रेड' में ऐसा क्या मिल गया? बहादुर जॉर्ज, चरणसिंह से बकरी की तरह क्यों डर गए? छोड़ो इन बातों को। जॉर्ज ईमानदार आदमी हैं, पैसे के लोभी नहीं हैं, बहादुर हैं, बात के पक्के हैं, भरोसे के आदमी हैं—यह इस दुर्घटना से सिद्ध होता है।

साधो, शुरू से समाजवादी पार्टी में दो भिंडरावाला रहे हैं—जॉर्ज फर्नांडिस और राजनारायण। डॉ. लोहिया थे, तो वे इनसे हिसाब से तलवार चमकवाते थे। लोहिया की मृत्यु के बाद समाजवादियों ने अपने हाथ अपनी बड़ी दुर्गति की। अच्युत पटवर्द्धन ने इनके हाथ जोड़कर आश्रम खोल लिया। बुद्धिजीवी किशन पटनायक भी इनके हाथ जोड़कर तटस्थ हो गए और लिखने-पढ़ने लगे। जो भैंस को डंडा मारने को भी क्रांति कहते हैं, उनके साथ कोई बुद्धिजीवी कैसे रह सकता है? लोहिया विचारवान आदमी थे, मगर व्यावहारिक राजनीति में उन्होंने नेहरू परिवार के विरोध को एक राजनैतिक दर्शन बना दिया। चेलों ने कुल इतना सीखा। इन लोगों ने लोहिया की किताबें भी नहीं पढ़ी होंगी। साधो, जब नेहरू परिवार-विरोध राजनैतिक दर्शन बन गया, तब ये दार्शनिक इंदिरा विरोधी घोर बुर्जुआ राजनीति की गोद में अनाथ बच्चे की तरह चले गए। बुर्जुआ राजनीति ने अपने सगे बेटों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की बची जूठन इन्हें खिलाई। ये बुर्जुआ जूठन खा रहे हैं और समझ रहे हैं, क्रांति कर रहे हैं। इनकी दयनीय हालत है। कभी ये मोरारजी के पाँव दबाते हैं, कभी चरणसिंह के।

साधो, अगर ये सच्चे समाजवादी होते तो 1960 के आसपास कम्युनिस्ट पार्टी से मिलकर एक वामपंथी मोर्चा बना सकते थे। यह लोहिया ने बनने नहीं दिया। एक तो वे साम्यवाद विरोधी थे। दूसरे वे जर्मनी-सरीखा समाजवाद चाहते थे, जिसमें पूँजीवाद बढ़ता जाता है। तीसरे वे आशंकित थे कि अगर वामपंथी मोर्चा बना तो नेतृत्व साम्यवादी नेताओं के हाथ चला जाएगा। साम्यवादी पार्टी संगठित होती है, उसमें नियमित केडर होता है और उसमें राजनारायण-जैसे वानर राजों की जगह नहीं होती। लोहिया गुरु गोलवलकर से कई बार हाथ मिला चुके थे, पर कम्युनिस्टों से नहीं।

साधो, बदलती वास्तविकताओं से राजनैतिक रणनीति तय होती है। लोहिया के बाद भी ये समाजवादी सोच सकते थे कि अगर एक वामपंथी मोर्चा बन जाय तो वह विकसित होकर आगे वामपंथी विकल्प बन सकता है। देश की समस्याओं का हल वामपंथी रास्ते से ही है। पर लोहिया के बाद ये आपस में लड़े और हर एक की राजनीति इतनी रह गई कि किस बुर्जुआ नेता के चरण छूकर एक सीट पा ली जाय।

साधो, जॉर्ज को छत्तीसगढ़ के भले की याद आई। उन्होंने समझ लिया कि वहाँ पृथकतावादी आंदोलन बढ़ रहा है। वहाँ सी.आई.ए. बहुत सक्रिय है। कई संस्थाएँ सी.आई.ए. चला रही हैं। जॉर्ज को लगा कि वहाँ नेता चाहिए और वह नेता मैं हूँ। वे छत्तीसगढ़ आ गए। उनका कहना है कि एक करोड़ से ज्यादा आबादी का कोई राज्य नहीं होना चाहिए। याने छत्तीसगढ़ अलग राज्य। फिर वे कहते हैं—छत्तीसगढ़ की रेवेन्यू छत्तीसगढ़ के लिए खर्च हो। ऐसा हर जिला कहेगा, तो हर जिला एक राज्य बन जाएगा। क्या भिलाई का पूरा इस्पात और बेलाडीला का पूरा कच्चा लोहा जॉर्ज छत्तीसगढ़ियों को खिला सकेंगे? साधो, जॉर्ज छत्तीसगढ़ में पृथकतावादी राजनीति, सी.आई.ए., असंतुष्ट सत्ताहीन कांग्रेसी नेताओं के भरोसे गए हैं। खुदा छत्तीसगढ़ की खैर करे। जॉर्ज जेरुसलम पहुँच गए हैं।

स्वस्थ विपक्ष की बीमारी

साधो, इंदिरा गांधी कहती हैं कि विपक्ष के लोग समस्याएँ पैदा करते हैं, उन्हें हल नहीं होने देते और फिर सरकार को दोष देते हैं कि वह समस्या हल नहीं करती। साधो, इंदिराजी का इशारा दक्षिणपंथी दलों की तरफ है। वे सही कहती हैं। मगर ये विपक्षी जो करते हैं, उचित करते हैं। भारतीय इतिहास में विपक्ष का यही रोल रहा है। महमूद गजनवी को किसने बुलाया था? विपक्ष ने। गजनवी का सिपहसालार और पथ-प्रदर्शक एक अमीचंद था। मुहम्मद गोरी से भारत पर हमला किसने कराया? भारतीय विपक्ष ने। नादिरशाह को किसने बुलाया ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विपक्ष ने। बाबर को किसने भारत पर हमले के लिए बुलाया? विपक्ष ने। तो आज का विपक्ष भी अपने इतिहास और संस्कृति के अनुसार देशभक्ति कर रहा है।

साधो, इंदिराजी शायद ब्रिटिश संसद के जिम्मेदार विपक्ष की बात सोच रही होंगी। दूसरे महायुद्ध के समय शुरू में वहाँ नेबिल चेम्बरलेन प्रधानमंत्री थे, जो कमजोर आदमी थे। उन्हें हटाकर शांति से चर्चिल को प्रधानमंत्री बना दिया। विपक्ष में लेबर पार्टी थी। इस विपक्षी पार्टी ने इस कदर पूरा सहयोग दिया सरकार को कि तारीफ हुई। मगर मुझे तो लेबर पार्टी कमजोर और विवेकहीन विपक्ष लगी। 1962 में चीनी हमले के वक्त अपने विवेकशील विपक्ष को देखते, कितना बढ़िया रोल था। सरकार का, खासकर नेहरू और रक्षामंत्री मेनन का मनोबल किस ठाठ से गिराया है। बक-बककर लड़ रही सेना का मनोबल किस कदर गिराया है। ये नेता कहते थे—हिमालय की बर्फीली चोटी पर सैनिक नंगे पाँव खड़े हैं। कोई जड़बुद्धि भी जानता है कि ठंड में पत्थर के फर्श पर भी नंगे पाँव चलना कठिन है। फिर ये सिपाही बर्फ पर चलते-चलते बर्फीली चोटी पर चढ़ कैसे गए? मगर विपक्ष का उद्देश्य था कि चीन चाहे लखनऊ तक आ जाय, मगर जवाहरलाल नेहरू और कृष्ण मेनन को पद से गिरा देना चाहिए। कृष्ण मेनन शहीद हो ही गए। विपक्ष का यही रोल है।

साधो, जिस विपक्ष की बात मैं कर रहा हूँ और जिस पर इंदिराजी आरोप लगाती हैं, उसकी राजनीति कुछ इस तरह की है। कार्पोरेशन दूसरी पार्टी की है। विपक्ष उसे बदनाम करके भंग कराना चाहता है तो विपक्ष के लोग अपने ही मुहल्ले के किसी मकान में आग लगा देंगे। फायर ब्रिगेड चलेगी तो उसके रास्ते में बोल्डर डाल देंगे। किसी तरह फायर ब्रिगेड पहुँची, तो उसे पानी लेने में अड़चन डाल रहे हैं। अब आग मुहल्ले में फैल रही है। विपक्षी का अपना मकान भी खतरे में है। पर विपक्षी को कार्पोरेशन को बदनाम करके उसे भंग करवाना है। जब मकान जल गए तो विपक्षियों ने जुलूस निकाल दिया। नारे—कार्पोरेशन निकम्मी है। कार्पोरेशन भंग की जाय।

साधो, आग लग जाय, मुहल्ले को खतरा हो तब स्वस्थ विपक्ष की यही भूमिका है। ऐसा स्वस्थ विपक्ष अगर दूसरे महायुद्ध में ब्रिटेन में होता, तो अपनी सरकार को तंग करता, अंगरेज फौजों को बदनाम करता, नैतिक बल गिराता। यह स्वस्थ विपक्ष यदि ब्रिटेन में होता, तो हिटलर के खिलाफ रूस, ब्रिटेन, अमेरिका का जो संयुक्त मोर्चा था, उसमें फूट डालने की कोशिश करता। सफल हो जाता तो अपने देश का भी नाश करवाता और दुनिया का भी।

साधो, गनीमत है कि ऐसा स्वस्थ विपक्ष ब्रिटेन में नहीं है। मगर भारत में है। असम की समस्या यही स्वस्थ विपक्ष नहीं सुलझने देता। अभी जो सामूहिक नरसंहार हुआ, वह इसी स्वस्थ विपक्ष के प्रोत्साहन से हुआ। दिल्ली में जिन कुछ नेताओं से इंदिराजी नमस्ते करती हैं उन सबके मुँह में खून लगा है। असम भारत से टूट जाय। वहाँ चीनी घुस आएँ। वहाँ से हमला हो। यह सब इस स्वस्थ विपक्ष को मंजूर है, क्योंकि इससे केंद्र सरकार और पार्टी बदनाम होती है और इन पार्टियों को फायदा होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधो, इंदिराजी कहती हैं कि असम के आंदोलनकारी नेता दिल्ली में तो समझौता कर लेते हैं पर असम लौटकर समझौते से इनकार करने का फैसला तो दिल्ली में ही हो जाता है। इंदिराजी के खुफिया विभाग के लोग बतलाते ही होंगे कि असम के नेता दिल्ली में किनसे मिलते हैं। उनमें एक अटलबिहारी वाजपेयी हैं। छात्र-नेताओं से कह दिया जाता है कि यहाँ नहीं, गोहाटी जाकर इनकार कर देना।

साधो, पंजाब में भी समस्या अकाली दल ने पैदा की। दूसरे यही विवेकशील विपक्षी उस समस्या को हल नहीं होने दे रहे हैं और चिल्लाते हैं कि सरकार समस्या को हल नहीं कर रही है। साधो, एक और बात है जो इंदिराजी जानती ही होंगी। जिस राज्य में भी समस्या है वहाँ कांग्रेस का दूसरा गुट विपक्षी का रोल करता है, समस्या को हल नहीं होने देता। पंजाब का दरबारा विरोधी कांग्रेसी गुट अकालियों द्वारा पैदा की गई समस्या से निपटने में नहीं लगा है, बल्कि दरबारासिंह को हटाने में लगा है।

साधो, इंदिराजी बार-बार कहती हैं कि कुछ शक्तिशाली देश हमारे देश में गड़बड़ पैदा करवाते हैं और अखंडता को नष्ट करना चाहते हैं। वे नाम नहीं लेतीं, पर वह बड़ा देश है—अमेरिका, और खुराफाती है—सी.आई.ए. और उसका षड्यंत्र तथा अपार पैसा।

साधो, तुम इसका सबूत माँगोगे। सबूत दिया है भारत में रहे अमेरिकी राजदूत, प्रसिद्ध राजनैतिक अर्थशास्त्री जान गालब्रेथ ने। हाल ही में उन्होंने लिखा है कि मुझे सी. आई.ए. ने बड़ी अड़चन में डाला। मुझसे कहा गया कि इतना पैसा इन विपक्षी दलों और इन व्यक्तियों को दे दो। मुझे कठिनाई हुई। फिर भी मैंने यह कर दिया। साधो, इससे बड़ा सबूत क्या चाहिए?

क्या संतों का दिमाग खराब होता है ?

साधो, गुरु नानक के बारे में हम जानते हैं। गुरुग्रंथ साहब में संतों की वाणी है—सूफी संत बाबा फरीद की, कबीरदास की और दूसरे संतों की। नानक ने कोई कर्मकांड नहीं चलाया। गुरु-वाणी में मानवप्रेम, सदाचार, भाईचारा, दया, परोपकार आदि की शिक्षा है। कोई दाढ़ी और केश न बढ़ाय, गुरुद्वारा न जाय, तो भी वह संतों के उपदेश मानकर 'सिख' हो सकता है। 'सिख' का अर्थ है—सीखा हुआ, यानी शिक्षित, यानी ज्ञानवान। हम सब सिख होने की कोशिश कर सकते हैं। गुरु नानक जैसी मानवीयता का शिक्षण और कहाँ मिलेगा ? नानक की वाणी का ही दूसरा शब्द 'अलमा' है—अव्वल अल्ला नूर उपजाया। यह सर्वधर्म समभाव है।

साधो, मैं सोचता था कि अगर कोई धर्म ग्रहण करना जरूरी होता तो मैं सिख धर्म ग्रहण करूँगा। मगर इन दिनों स्वर्ण मंदिर और वहाँ भी 'नानक निवास' से जो हो रहा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह देखकर लगता है कि हमारे लिए सिख धर्म में भी गुंजाइश नहीं है। अगर आत्मा अमर है तो स्वर्ग में गुरु नानक की आत्मा रोती होगी और पछताती होगी कि क्यों मैंने यह पंथ चलाया, क्यों ये दाढ़ी, केश, कच्छा, कड़ावालों की जमात बनने दी। ये ठीक उसका उलटा कर रहे हैं, जो मैंने और दूसरे संतों तथा गुरुओं ने सिखाया।

साधो, अगर मैं सिख बना तो संत या ज्ञानी भी बनना पड़ेगा। ज्ञानी फिर भी चला लूँगा। मगर अगर मुझे संत हवलदारसिंह बना दिया गया तो? वैसे मैं संत कबीर कहा जाता हूँ। पर बाकायदा सिख धर्म में दीक्षित होकर सिख संत हवलदारसिंह बन गया तो क्या करूँगा ? मुझे अज्ञानी, सनकी, संकीर्ण दिमाग का, जिद्दी, अराजक, क्रूर, हठी, नफरत करनेवाला, हिंसक और उपद्रवी होना पड़ेगा। तब मैं सफल संत कहलाऊँगा। सबसे सफल और महान संत इस समय जरनैलसिंह भिंडरावाला हैं। उन पर लाला जगतनारायण की हत्या का आरोप लगा, गिरफ्तारी-वारंट निकला, तो वे स्वर्ण मंदिर में गुरु नानक निवास में छिप गए। उनके उन्मादी चेलों में जो भी हत्या या दूसरा अपराध करता है, भागकर नानक निवास में छिप जाता है। गोया गुरु नानक ने एक किला बनवा दिया है अपने प्रताप से, जिसमें हत्यारा, चोर, तस्कर, बलात्कारी आकर छिप जाय तो गुरु उसकी रक्षा करेंगे। गुरु नानक संत नहीं हुए, अपराध करानेवाले और अपराधियों की रक्षा करनेवाले हो गए। इस दुर्गति की कल्पना होती, तो नानक कभी पंथ नहीं चलाते।

साधो, स्वर्ण मंदिर, नानक निवास, दूसरे गुरुद्वारे मानो दूसरे दुश्मन-राज्य के किले हैं। इनमें सेनापति है, कमांडर है, सिपाही हैं। ऐसा लगता है, जैसे इन किलों से भारत गणराज्य पर हमला किया जा रहा है और वह भी मध्ययुगीन तरीके से। ये संत और ज्ञानी शायद इस कोशिश में हैं कि पंजाब को जीत लिया जाय, भारत की सरहद पर एक राज्य बन जाय। तब भारत को पाकिस्तान और इस अकाली राज्य से निपटना पड़ेगा।

साधो, यह क्या धर्म की रक्षा के लिए हो रहा है? पंथ की पवित्रता के लिए हो रहा है ? कानूनी और गैरकानूनी हथियारों का भंडार, बम, सिख युवकों में उन्माद ! धमकी—सड़क पर निपट लेंगे। मार डालेंगे। विधायकों को घेर लेंगे। बाहर निकलना बंद कर देंगे। विधानसभा होने नहीं देंगे। उपद्रव करेंगे। पंजाब में किसी की जिंदगी सुरक्षित नहीं रहने देंगे। ये क्या संतों के काम होते हैं? ये काम क्या मंदिरों और गुरुद्वारे से कराए जाते हैं? इन कामों के साथ क्या गुरु नानक का नाम जोड़ा जाता है?

साधो, इस तरह के संगठित गिरोह जो ऐसे काम करते हैं, गुंडों, अपराधियों, डाकुओं के होते हैं। मगर भिंडरावाला संत हैं और लोंगोवाल भी संत हैं। और न जाने कितने संत हैं। भिंडरावाले सबसे उग्र और उन्मादी हैं, जिनके कमांड में कई हजार उन्मादी सिख युवक हैं—हथियारबंद। यह फौज है। इनसे संत भिंडरावाले उत्तेजित करके हमले, हत्याएँ, लूटपाट सब करवा सकते हैं। यह क्या धर्म के लिए है? पंथ के लिए है? हजारों सिख युवकों की जिंदगी भिंडरावाला नष्ट कर रहे हैं। अब यह हाल है कि लोंगोवाल, टोहरा, प्रकाशसिंह बादल अगर शांति से बातचीत करके समस्या का हल निकालना भी चाहें तो भिंडरावाला का डर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता है। दूसरे अकाली नेता नरम पड़ें तो भिंडरावाला उनकी दुर्गति करा देंगे। अपने ही बनाए जाल में ये फँस गए हैं और संत भिंडरावाला एक डिक्टेटर हो गए हैं।

साधो, धर्म का मामला यह बिलकुल नहीं है। धर्म को तो ये गंदी नाली में डाल चुके। गुरुग्रंथ साहब के पन्ने भी फाड़कर फेंक दिए। इन्हें चाहिए चंडीगढ़, इन्हें चाहिए राजस्थान और हरियाणा के भू-भाग, इन्हें चाहिए पंजाब में से बहनेवाला सारा पानी—चाहे उसमें संत लोग डूब जाएँ, इन्हें चाहिए तस्करी, चार-सौ-बीसी का धंधा। साधो, इन्हें चाहिए अकाली सरकार जो अनंत काल चले और चाहिए ज्ञानी जैलसिंह का इस्तीफा, क्योंकि वे 'रामगढ़िया' हैं। वे राज नहीं कर सकते। राज जाट करेगा।

साधो, इन संतों ने अभी तक उस डॉक्टर जगजीतसिंह चौहान का प्रतिवाद नहीं किया है, जिसने भारत से बाहर स्वतंत्र 'खालिस्तान' की माँग की है और खुद उसका राष्ट्रपति हो गया है। इस षड्यंत्र को अमेरिका मदद दे रहा है। इसका सबूत यह है कि सब देशों से भगाए गए डॉक्टर जगजीतसिंह को अमेरिकी प्रशासन ने कृषि विशेषज्ञ के रूप में अपने देश में बुला लिया है। मजाक यह है कि डॉक्टर जगजीतसिंह कृषि विशेषज्ञ नहीं हैं, डॉक्टर ऑफ मैडिसिन याने चिकित्सक हैं। डॉ. जगजीतसिंह हिंद महासागर में एक द्वीप खरीदकर वहाँ 'खालिस्तान' सरकार की स्थापना करेंगे और अंतर्राष्ट्रीय दबाव याने अमेरिकी 'ब्लैकमेल' से पंजाब को भारत से अलग करेंगे। जरूरत हुई तो अमेरिका की मदद से भारत पर हमला भी करेंगे।

साधो, संतों से पूछो कि क्या वे इससे सहमत हैं ? सहमत नहीं हैं, तो खुला बयान दें कि वे जगजीतसिंह की निंदा करते हैं। अगर ये ऐसा नहीं करते तो ये सारे संत, ज्ञानी, जत्थेदार विदेशी हमलावर माने जायँ और वैसी ही इन पर कार्यवाही की जाय।

तेरा-मेरा मनुआ बंदे कैसे एक होय रे !

साधो, दो हफ्ता पहले मैंने जो कहा था, उससे एक धर्म के कुछ लोगों को बुरा लगा है। उनकी शिकायत है कि मैंने उनके धर्म पर आघात किया। सही यह है कि मैंने धर्म पर आघात किया ही नहीं था। मैंने तो यह सलाह दी थी कि तुम खुद अपने धर्म पर आघात मत करो। अगर मेरी सलाह बुरी लगी हो, तो सलाह वापस! तुम अपने धर्म पर डटकर आघात करो। धर्म तुम्हारा है। करो तुम अपने ही धर्म पर हमला! मैंने कहा था कि अपने धर्म को देखो और अपने कर्मों को देखो। अगर ऐसा कहना धर्म पर आघात मानते हैं तो तुम्हें छूट है कि खूब ऐसे ही कर्म करो और खुद उसका फल भोगो तथा दूसरों को भोगवाओ।

साधो, मैंने जो भी कहा था, कुछ लोगों के बारे में कहा था, जो अति कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मगर बुरा उन बहुतों को लगा जिनसे मैंने कुछ कहा ही नहीं था। जो कहा था, वह उन्हीं के भले के लिए कहा था। पर 'वो बात जिसका पूरे फसाने में कहीं जिक्र न था वो बात उन्हें बहुत नागवार गुजरी है।'

साधो, मैंने पाखंड के बारे में कहा था। अगर मैंने गलत कहा था, तो मेरी सलाह वापस। डटकर पाखंड करो। मेरा क्या बिगड़ता है? साधो, अगर मैं देखूँ, कि कोई अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मार रहा है, तो मैं उसे सलाह दूँगा—भाई मेरे, अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मत मार। इस पर वह बुरा माने और आँख दिखाए, तो मैं कहूँगा—भैया, जोर से मार अपने पाँव पर कुल्हाड़ी। कुल्हाड़ी भी तेरी और पाँव भी तेरा। मेरा तो कुछ नहीं है। पर दूसरे के पाँव पर कुल्हाड़ी मत मार बैठना। वह बरदाश्त नहीं करेगा। रही यह बात कि भाषा सख्त है। तो आलोचना की भाषा सख्त तो होगी ही। फिर कबीर कोई 'फकत अल्लाहू अल्लाहू' नहीं है। इस स्तंभ में जो लिखा जाता है वह अक्सर व्यंग्य होता है। व्यंग्य का सही अर्थ समझना चाहिए। दुर्घटना यह है कि व्यंग्य से जिन्हें सही बात समझाना चाहता था, वे गलत बात समझ गए और उनके हृदय को आघात लग गया। मगर दूसरे लोग तो सही अर्थ समझ गए। वे तारीफ कर रहे थे।

खैर साधो, छोड़ो समझ की बात को। देखो, जगह-जगह शोभा-यात्राएँ निकल रही हैं, मठाधीशों, महंतों, साधुओं और बाबाओं की। इसी शहर में हर दूसरे-तीसरे दिन किसी की शोभा-यात्रा निकल जाती है। इतने शोभावान एकदम कैसे प्रगट हो गए? क्या चुनाव नजदीक आ रहे हैं, इसलिए इतने धार्मिक शोभावान पैदा किए जा रहे हैं? और लोग इतने निठल्ले कैसे हो गए कि हर 2-3 दिनों में शोभा-यात्रा में शामिल हो जाते हैं? जिनकी शोभा-यात्रा निकलती है उनमें किस चीज की शोभा होती है? क्या मुख की शोभा? हाँ, बिना कमाया बढ़िया माल खाने से चेहरे पर शोभा आती है। मगर धर्मेंद्र और हेमामालिनी आ जाएँ, तो इन सब धर्म-पुरुषों से बड़ी और शानदार उनकी शोभा-यात्रा निकलेगी। एक शोभा तप की होती है, सदाचार की होती है, लोक-कल्याण करने की शोभा होती है, ज्ञान की शोभा होती है। इनमें से कौन-सी शोभा इन शोभा-यात्रावालों में होती है। और शोभा-यात्रा से किसको क्या मिल जाता है। क्या बेकारों को नौकरी मिल जाती है? गेहूँ सस्ता हो जाता है? शक्कर का ब्लैक खत्म हो जाता है? ऐसा नहीं होता तो क्या फायदा शोभा-यात्रा से। यह तो एक निरर्थक कवायद हुई।

साधो, सच पूछो तो मेरे मन में भी यह इच्छा है। मैं साधु हूँ। संत हूँ। तुम लोग मेरी भी शोभा-यात्रा निकाल दो। यों तो मुझे अचरज होता है कि शोभावान मठाधीश, महंत, साधु इसे बर्दाश्त कैसे कर लेता है ! यह तो घोर कपट की बात है कि आप सीधे सिंहासन या पालकी पर बैठे हैं। ढोये जा रहे हैं। आसपास भीड़ है। शोर है। और आप घंटों इसे बरदाश्त कर लेते हैं। ऐसा तो सर्कस का मँजा हुआ खिलाड़ी भी नहीं कर सकता। वह आधा घंटे में बोर होकर भाग जाएगा।

मगर साधो, शोभा-यात्रा में कुछ सुख होता होगा। तुम लोग मेरी शोभा-यात्रा निकाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो। मुझे सिंहासन पर बिठाओ, आसपास चँवर डुलें, भक्त मुझे ढोएँ, मेरी जय बोली जाय और मैं बौड़म की तरह बैठा हुआ प्रसन्न होऊँ। मगर तुम वही कहोगे कि गुरु, तुमने बोलकर और लिखकर उन सबको नाराज कर रखा है जो शोभा-यात्रा निकालते हैं। हम भुक्खड़ तुम्हारी क्या शोभा-यात्रा निकालेंगे?

साधो, तुम ठीक कहते हो। शोभा-यात्रा उनकी निकलती है जो भभूत रमानेवाले शिव के पत्थर के लिंग पर सोना मढ़ते हैं। शोभा-यात्रा उनकी निकलती है जो दसवीं शताब्दी के बाद दुनिया में क्या हुआ, यह नहीं जानते और आधुनिक समाज़ को उपदेश देते हैं।

साधो, शोभा-यात्रा किसकी निकलनी चाहिए? सवारी रिक्शे में नोटों से भरा बटुआ छोड़ जाती है। रिक्शावाला बाद में देखता है और जिसका बटुआ है उसे वापस कर देता है। इस रिक्शेवाले की शोभा-यात्रा निकलनी चाहिए। इसे फूलों से लाद देना चाहिए। उसने वह गुण दिखाया है और उस आचरण की शिक्षा दी है जो अब खत्म होने लगा है। इस रिक्शेवाले को मैं जगद्गुरु मान सकता हूँ।

अभिनंदन की उपहास कथा

साधो, इधर कुछ दिन पहले मेरे एक वरिष्ठ साहित्यकार-पत्रकार समाजसेवी मित्र आए थे। वे अभिनंदन, स्मारक आदि के विशेषज्ञ और सक्रिय कर्मकांडी हैं। बहुत प्रतिष्ठित हैं। वे कहने लगे—इस बार मार्च में तुम्हारे जन्मदिन पर हम एक बड़ा अभिनंदन समारोह करेंगे। एक दूसरे मेरे हमउम्र मित्र बैठे थे। वे बोले—इनका जन्मदिन मार्च में नहीं है। इनका जन्मदिन 22 अगस्त है। जिसका सही जन्मदिन ही आपको नहीं मालूम, उसका अभिनंदन आप क्या करेंगे? बुजुर्ग ने कहा—तो कोई बात नहीं। हम 22 अगस्त को ही एक विशाल आयोजन करेंगे। मैंने उनसे कहा—आप अपने मित्रों को इतना प्यार करते हैं और उनके यश के बारे में इतने चिंतित रहते हैं कि आप मेरा, इन मित्र का भी अभिनंदन ही नहीं आयोजित करेंगे, बल्कि हम लोगों का ठाठदार श्राद्ध करके फिर आप मरेंगे। वे बोले—अरे, यह क्या बात करते हो! तुम लोग हजार बरस जियो—वगैरह।

साधो, अभिनंदन और जन्मदिन-समारोह मैंने बहुत देखे हैं। और एक-से-एक हास्यास्पद देखे हैं। ऐसे पराक्रमी यशोकामी मैंने देखे हैं जो सारा इंतजाम खुद कर लेते हैं, पैसा भी खुद लगाते हैं और रोजनदारी पर कार्यकर्ता भी रखते हैं। ऐसे एक मशहूर आदमी ने मेरे एक मित्र को पाँच सौ रुपए देकर कहा कि अपने शहर में मेरे जन्मदिन का समारोह करना। उनका खयाल था कि नगर-नगर, गाँव-गाँव उनका यशोगान लोग कर रहे हैं। इसे इकट्ठा करने की जरूरत है जो चार-पाँच सौ रुपयों में हो जाएगा। मेरे मित्र ने रुपए तो रख लिये, पर समारोह नहीं किया। कुछ दिन बाद उन महान् ने उन्हें पत्र लिखा—आपको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे जन्मदिन पर समारोह करने के लिए मैंने पाँच सौ रुपए दिए थे। आपने समारोह नहीं किया और न रुपए वापस किए। आप तुरंत पाँच सौ रुपए वापस कीजिए। यह पत्र मेरे मित्र के पास अभी भी रखा है। यश के उन्मादी को यह ध्यान नहीं रहा कि ऐसी बातें पत्र में लिखी नहीं जातीं, जबानी कहलाई जाती हैं।

साधो, यह यश का उन्माद बहुत बुरा होता है। नार्मल यशोकामना रहे और नार्मल तरीके से यश मिले तो ठीक है। सब यश चाहते हैं। मगर कुछ लोग ज्यादा उस्ताद होते हैं। वे जानते हैं कि साधारण तरीके से हमारा सीमित यश फैलेगा। इसलिए वे ऐसे तरीके अपनाते हैं, जिनसे उनकी हँसी उड़े। उपहास प्रशंसा से ज्यादा फैलता है और नगर-नगर, गाँव-गाँव लोग चर्चा करते हैं कि उसने ऐसा किया।

साधो, सम्मान और अभिनंदन से मैं बहुत घबराता हूँ। ऐसा नहीं है कि मैं यश नहीं चाहता। चाहता हूँ। पर सम्मान या अभिनंदन करनेवाले शुभचिंतक क्या सद्गति या दुर्गति करेंगे, कुछ ठिकाना नहीं। एक स्थानीय स्तर के नेता का सम्मान-समारोह मैंने देखा था। उनकी शान में बोलनेवाले प्रमुख व्यक्ति शराब पीकर आए थे। वे कहने लगे–'ये मेरे मित्र हैं। इन्होंने देश की बहुत सेवा की है। अभी भी ये समाजसेवा करते हैं। मगर इनमें एक गड़बड़ी है। ये ठर्रा पीते हैं और बहकते फिरते हैं। मैंने इन्हें सलाह दी कि ठर्रा मत पिया करो। व्हिस्की पिया करो, जो मैं पीता हूँ। इससे आदमी बहकता नहीं है। पर ये मानते ही नहीं। अब देखिए, मैं व्हिस्की पीकर आया हूँ और आपके सामने खड़ा बोल रहा हूँ। बताइए, मैं क्या बहक रहा हूँ? मैं बिलकुल नार्मल हूँ। और फिर जरा सोचिए–इन-जैसे बदमाश आदमी की, जो देश को बेचकर खा गए, कोई भी आदमी तारीफ क्या बिना शराब पिये कर सकता है?'

साधो, अभिनंदन करनेवालों का कोई भरोसा नहीं। भक्त अपने आराध्य की न जाने क्या दुर्गति करें। एक गुरु के दो भक्त चेले उनके पाँव श्रद्धापूर्वक दबा रहे थे। दोनों एक-एक पाँव लिये थे। दोनों में अनबन थी। एक चेले का हाथ दूसरेवाले के पाँव पर चला गया। उस चेले ने गुस्से से कहा–तूने मेरेवाले पाँव को क्यों दबाया? मैं तो तेरेवाले पाँव को मारूँगा। और उसने गुरु के दूसरेवाले पाँव पर 3-4 घूँसे लगा दिए। यह देखकर अब इस चेले को गुस्सा आ गया। उसने कहा–तूने मेरेवाले पाँव पर घूँसा मारा। मैं तेरेवाले पाँव पर लाठी मारूँगा। उसने गुरु के दूसरे पाँव पर लाठी का एक वार किया। जवाब में दूसरे चेले ने दूसरी टाँग पर लाठी से वार किए। नतीजा यह हुआ कि गुरु की दोनों टाँगें टूट गईं। भक्तों की गुरुभक्ति सच्ची थी। मगर भक्तों के झगड़े में श्रद्धेय की दोनों टाँगें टूट गईं।

साधो, इसी संदर्भ में ये समाचार पढ़ो। एक रायपुर निवासी महंत लक्ष्मीनारायण दास हैं। बड़े संपन्न मठ के महंत रहे हैं। कांग्रेसी भी रहे हैं और कभी मध्यप्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष भी थे। वे 81 साल के हो गए। प्रशंसकों, भक्तों ने तय किया कि इनकी 81वीं जन्मतिथि जोर-शोर से मनाई जाय और 81 हजार रुपयों की थैली भेंट की जाय। मगर भक्तों में, जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकतर कांग्रेसी हैं, मतभेद हो गए। नतीजा यह हुआ कि 81 हजार की थैलीवाला वह अभिनंदन-समारोह जिसका 2 महीनों से प्रचार हो रहा था, नहीं हुआ। सम्मान टटोलते हुए महंत के हाथों अपमान लगा। अब अखबारों में नेताओं के वक्तव्य छप रहे हैं कि भक्तों में झगड़ा हो गया। एक नेता कमलनारायण शर्मा अखबार में बयान छापते हैं कि 81 हजार की थैली देने का तय ही नहीं हुआ था। इस पर महंत बयान देते हैं कि 81 हजार रुपए की थैली देने का प्रस्ताव लेकर मेरे पास यही कमलनारायण शर्मा आए थे। उन्होंने यह भी कहा कि मेरा अभिनंदन करनेवालों में कोई मतभेद नहीं है। जरा महंत की दयनीय हालत पर गौर करो। भक्तों ने भक्ति में उनके दोनों पाँव तोड़ दिए।

साधो, अब तो इस संसार में न दादा कृपलानी रहे न जयप्रकाश नारायण। पर तुम्हें याद होगा कि जनता पार्टी सरकार के जमाने में जयप्रकाश नारायण के 75 वर्ष पूरे होने पर पटना में 'अमृत महोत्सव' मनाया गया था जिसमें उन्हें 75 लाख रुपए भेंट किए गए थे। अभी भी यह विवाद चल रहा है कि उस पैसे का क्या हुआ, यानी कौन खा गए।

बहरहाल साधो, इस अभिनंदन-समारोह के मुख्य अतिथि दादा कृपलानी ने जो कहा, वह अद्‌भुत था। जयप्रकाश नारायण के सामने ही दादा ने कहा—अब यह जयप्रकाश है, इसका तुम लोग सम्मान कर रहे हो। इसका कुछ ठिकाना रहा है? अमेरिका से लौटा था तो कम्युनिस्ट था। गांधीजी के पास गया तो गांधीवादी हो गया। फिर कहने लगा कि मैं कांग्रेस में समाजवादी हूँ। गांधी मर गया, तो ये लाल टोपी पहनने लगा। फिर विनोबा के पास चला गया। भूदानी हो गया। फिर जीवनदानी हो गया। अरे, दान अच्छी चीज का करते हैं। मेरा जीवन तो इतना अच्छा नहीं है कि उसका दान करूँ। इस जयप्रकाश का जीवन कैसे अच्छा हो गया कि इसने उसका दान कर दिया? साधो, अभिनंदन में ऐसी भी दुर्गति हो जाती है।

कबीर का स्मारक बनेगा

साधो, हिन्दू और मुसलमान एक ही सार्वजनिक संडास में जा सकते हैं, दस्त के मामले में भाई-भाई होते हैं। मगर कबीरदास की मुसलमानों ने मजार बना ली थी और हिंदुओं ने समाधि बना ली थी। और दोनों के बीच में एक दीवार खड़ी कर ली थी जिससे मजार और समाधि पर एक-दूसरे की नजर न पड़े। कबीर जब जिंदा थे तब समूचे थे, एक थे, मगर मरने के बाद उनके दो टुकड़े कर दिए गए—हिंदू कबीर और मुसलमान कबीर। कबीरदास हिंदू और मुसलमान दोनों के ढोंग की पिटाई करते थे। मरने के बाद ढोंगियों ने कबीरदास के सत्य की पिटाई कर दी। सत्य को हिंदू और मुसलमान दो टुकड़ों में तोड़कर समाधि और मजार में गाड़ दिया। बीच में दीवार खड़ी कर दी अपनी मूर्खता के ईंट-गारे से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधो, काशी के पास मगहर में समाधि और मजार बनाए गए थे। जिंदगी भर कबीर काशी में रहे और ठाठ से रहे। पंडितों और मुल्लाओं के बीच रहकर दोनों के पाखंड को ठेठ गाली देते रहे। उस जमाने में, जब किसी को मार डालना बहुत आसान था, कबीर पाखंडी ब्राह्मणत्व की राजधानी में जिंदा कैसे रहे? उन्मादी मुल्लाओं और उतने ही रूढ़िवादी पंडितों ने उन्हें मरवा क्यों नहीं डाला? ऐसा मालूम होता है कि नीची जातियों के लड़ाकू भक्त कबीर की रक्षा करते होंगे। ये नीची जाति के महा चमार, भंगी आदि जिन्होंने कबीर के उपदेश से वर्ण-व्यवस्था तोड़ दी थी, इन पर ब्राह्मणों का अनुशासन नहीं चलता था। इन्होंने मनु के विधान को कूड़े में फेंक दिया था। ये निर्भय हो गए थे। वरना मनुस्मृति में तो यह विधान है—'यदि कोई द्विज किसी शूद्र की हत्या कर दे, तो उसे उतना ही प्रायश्चित करना चाहिए, जितना कुत्ता और सूअर को मारने पर करना होता है।' मनु ने जिन शूद्रों को कुत्ता और सूअर बना दिया था, वही मुक्त होकर कबीर के चेले हो गए थे। इसी तरह बहुत-से गरीब मुसलमान भी मुल्लाओं के चक्कर से छूट गए थे। उन्हें कबीर की यह बात पट गई थी जो खुदा हर जगह है, आदमी के भीतर भी है, उसे मुल्ला मस्जिद पर चढ़कर पुकारता है, जैसे खुदा बहरा हो गया हो। कबीरदास के शब्द हैं—'ता चढ़ मुल्ला बाँग दे।' बाँग मुर्गा देता है। कबीर ने मुल्ला को मुर्गा बना दिया। तो नीची जाति के हिंदू और गरीब मुसलमान जो लड़ाकू थे, कबीर की फौज थी। ये कहते होंगे—हमारे गुरु को छुआ तो गर्दन काट लेंगे। यानी कबीरदास गुंडों के सरदार भी रहे होंगे, उनका संगठन होगा लड़ने के लिए। वे कोरे जुलाहे संत नहीं थे।

साधो, कबीरदास मरने के लिए मगहर क्यों गए? कबीरदास ने जीवन में तो विद्रोह किया ही, मृत्यु में भी विद्रोह किया। ब्राह्मणों ने अंधविश्वास फैला रखा था कि काशी में मरने से स्वर्ग मिलता है और मगहर में मरने से नर्क मिलता है। कबीर ने कहा—हम मगहर में मरेंगे। वे मगहर में जाकर मरे। उन्होंने कहा था—

ज्यों काशी त्यों ऊसर मगहर राम बसै हिय मोरा,
जो कबीर काशी मरै रामहिं कौन निहोरा।

मैं जीवन-भर तो 'राम की बहुरिया' रहा। अब काशी में मरकर हराम में स्वर्ग जाऊँ, तो राम का क्या अहसान। मैं मगहर में मरूँगा और राम में सचाई और प्रताप हो तो मुझे स्वर्ग दे।

साधो, कबीर मरते-मरते उस अंधविश्वास को तोड़ना चाहते थे कि काशी में मरने से स्वर्ग और मगहर में मरने से नर्क मिलता है। फ्रांस के विद्रोही लेखक वाल्तेयर भी मृत्यु के क्षण में वैसी ही ताकत रखे थे। वे जीवन-भर सामंतवाद से और ईसाई धर्म के ढोंगों तथा पादरियों के पाखंडों से लड़ते रहे। जब वाल्तेयर 90 साल की उम्र में मर रहे थे, तब पादरी आए। वाल्तेयर ने पूछा—तुम लोग क्यों आए हो? पादरियों ने कहा—अंतिम समय आपकी आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करने। वाल्तेयर ने कहा—मेरी आत्मा शांति में है। तुम अपनी आत्मा की चिंता करो। मगर तुम्हें किसने बुलाया? पादरियों ने कहा—हमें तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर ने भेजा है। हम ईश्वर के भेजे ही आते हैं। वाल्तेयर ने कहा—तो मुझे ईश्वर का दिया हुआ अधिकार-पत्र दिखाओ। पादरी लौट गए। मगर वाल्तेयर के शव को पेरिस के किसी कब्रगाह में पादरियों ने नहीं दफनाने दिया। पेरिस से 30-40 मील दूर गाँव के छोटे चर्च के पादरी ने तब कहा था—धर्म के नियम महान् प्रतिभाओं के लिए नहीं होते। उस पादरी ने गाँव की कब्रगाह में वाल्तेयर के शव को दफनाया। आगे फ्रेंच क्रांति हुई, जनता को अपने क्रांतिकारी चिंतक, लेखक की याद आई। वाल्तेयर का शव निकाला गया, विशाल जुलूस के साथ पेरिस लाया गया और शाही कब्रगाह में शान से दफनाया गया।

साधो, पता नहीं मगहर में कबीर की समाधि और मजार के बीच दीवार किन लोगों ने खड़ी की होगी। ये कबीर के सच्चे भक्त तो नहीं हो सकते। पैसेवाले लोगों ने, जो भेद रखना चाहते थे, दीवार खड़ी की होगी। शासक और शोषक वर्ग ही हिंदू-मुस्लिम के भेद पैदा करके उन्हें लड़वाते हैं। जो बुजुर्ग अभी जीवित हैं उन्हें याद होगा—अंग्रेजों के शासन काल में रेलवे-स्टेशनों पर 'हिंदू चाय' और 'मुस्लिम चाय' होती थी। 'हिंदू पानी' और 'मुस्लिम पानी' भी होता था। स्टेशन पर रेलगाड़ी रुकने पर चाय बेचनेवालों की आवाजें आती थीं—'हिंदू चाय!' 'मुस्लिम चाय!' अब चाय की बिरादरी नहीं रही।

साधो, आज मैं कबीरदास की बात इसलिए उठा बैठा कि समाचार पढ़ा कि केंद्र सरकार ने मगहर में कबीर की समाधि—मजार-स्थल—को स्मारक-जैसा बनाने के लिए 41 लाख रुपए मंजूर किए हैं। भेद की वह दीवार टूट जाएगी अब। बढ़िया पार्क बनेगा। यह स्थान मेन रोड से जोड़ा जाएगा। अच्छा है। मगर यह स्मारक फिर भी बिड़ला मंदिर की बराबरी नहीं कर सकेगा। हर राज्य की राजधानियों में और दिल्ली में भी वैष्णव बिड़लाजी ने 'लक्ष्मीनारायण मंदिर' बनवाए हैं। मगर लोग उन्हें 'बिड़ला मंदिर' कहते हैं। हजारों साल बाद भक्त मंडली और इतिहासकार यही मानेंगे कि द्वापर के कृष्णावतार के बाद कलियुग में विष्णु का 'बिड़ला अवतार' हुआ।

काम नहीं करना ही देशभक्ति है

साधो, संसद एक झंझट की संस्था होती है। इसलिए तानाशाह, महाराजाधिराज, शहंशाह चुनाव करके संसद बनने ही नहीं देते। लोकतंत्र में संसद सर्वोपरि, सर्वशक्तिमान होती है। यह किसी भी मामले की जाँच के लिए समिति बना देती है। साल-भर पहले संसद ने एक समिति बनाई थी, जिसका काम था इस बात की जाँच करना कि गांधी शांति प्रतिष्ठान को विदेशों से कौन कितना धन देते हैं। यह धन क्यों देते हैं? इस धन का क्या उपयोग किया जाता है? साधो, एक बात तो यह समझ लो कि गांधी शांति प्रतिष्ठान में न गांधी है, न शांति। सिर्फ प्रतिष्ठान है। फिर गांधी के पवित्र नाम से जो भी होता है उसकी जाँच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य तो क्या, भगवान भी नहीं कर सकता। जो जाँच करेगा, उसका यह लोक तो बिगड़ेगा ही, वह नर्क भी जाएगा। गांधी शांति प्रतिष्ठान के मालिक बहुत चालाक, चतुर और ताकतवर हैं। मैंने अभी 3-4 महीने पहले दिल्ली के जानकारों से पूछा कि वह संसदीय समिति क्या जाँच कर रही है? मुझे बताया गया कि उस्ताद गांधीवादियों ने उसे निष्क्रिय कर दिया। संसद के प्रति मेरा सम्मान है, इसलिए मैं यह तो कह नहीं सकता कि संसद-सदस्यों को भी पैसा खाने में शामिल कर लिया, या 'ब्लैकमेल' कर लिया। पर कोई गांधीवादी सत्य तरकीब जरूर की, जिससे समिति निष्क्रिय हो गई।

साधो, एक बहुत ताकतवर समिति है—पब्लिक एकाउंट्स कमेटी, यानी लोक लेखा समिति। यह सब शासकीय प्रतिष्ठानों की जाँच करती है और इसकी रिपोर्ट पर संसद में चर्चा होती है। समितियाँ बनना, उनके द्वारा जाँच किया जाना, रिपोर्ट बनाना, उस पर संसद में बहस होना—फिर उस रिपोर्ट का पहले की असंख्य रिपोर्टों के ढेर में डाल दिया जाना, लोकतांत्रिक प्रक्रिया के लिए जरूरी है। जितनी जरूरी जाँच है, उतना ही जरूरी यह है कि उस पर अमल न किया जाय।

साधो, लोक लेखा समिति को रेलवे विभाग की जाँच करने की तकलीफ नहीं उठानी थी। रेलवे की सारी अच्छाइयाँ नए रेलमंत्री गनी खाँ चौधरी तब संसद को बता चुके थे, जब वे उस समय के रेलवे बोर्ड से झगड़ रहे थे। उन्होंने कहा था—रेलवे विभाग अभी भी बैलगाड़ी के युग में है। अधिकांश ड्राइवर शराब पीकर रेलगाड़ी चलाते हैं। साधो, गनी खाँ तो रेल के बैलगाड़ी बनने की बात कहते हैं। हमारी महान् प्राचीन संस्कृति के हिसाब से तो हवाई जहाज को रथ होना चाहिए। चरणसिंह का वश चले तो वे हवाई जहाज में बैल जुतवा दें और बाला साहब देवरस तो गायत्री मंत्र से विमान को उड़ा दें। विष्णु के पुष्पक विमान में क्या पेट्रोल भरा जाता था? वह तो प्रभु-इच्छा के ईंधन से चलता था। साधो, लोक लेखा समिति ने एक छोटी-सी बात ढूँढ़ी कि रिजर्वेशन को चैक किया जाता है, इसका कोई प्रमाण नहीं मिला। ये संसद-सदस्य बहुत भोले हैं। उन्हें मालूम होना था कि रिजर्वेशन के रेट होते हैं। 15 साल पहले 2 रुपया देने से रिजर्वेशन हो जाता था, अब 10 रुपए तक एक बर्थ के लग जाते हैं, कहीं-कहीं 15 रुपए। यह तो एक युग से स्थापित सिस्टम है। इसे ऊपर का अफसर मानता है, क्योंकि उसका इसमें हिस्सा होता है। इसलिए वह चैक करे क्यों? कोई भी विभाग हो, कोई अकेला पैसा नहीं खाता। खा ले तो संग्रहणी हो जाय। महामानवों की शृंखला खाती है।

साधो, रही बात रेलवे दुर्घटनाओं की। तो रेलमंत्री ने संसद में कह ही दिया था कि अधिकतर ड्राइवर शराब पीकर एंजिन चलाते हैं। इसीलिए तो इतनी कम दुर्घटनाएँ होती हैं। शराब के नशे में तो भगवान दिखने लगता है। तो सिगनल, या रेल की उखड़ी पटरी या उसी लाइन पर आती गाड़ी क्यों नहीं दीखेगी? अगर ड्राइवरों के शराब पीने पर रोक लगी, तो हर गाड़ी का एक्सीडेंट होगा।

साधो, लोक लेखा समिति ने सैन्य सामग्री के उत्पादन में कमी भी पाई है। उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नोट किया है कि फौजी ट्रक जितनी मात्रा में चाहिए, उतने व्हीकल फैक्टरियों ने नहीं बनाए। दूसरे उस विदेशी तोप का गोला अभी तक नहीं बना जो 1965 में आई थी। संसद को जानना चाहिए कि सुरक्षा का मामला ऐसा ही चला है इस महान भारत देश में। पहले महावीर त्यागी को रक्षामंत्री बना दिया। किस योग्यता के कारण? त्यागीजी ब्रिटिश फौज में सूबेदार थे। जब कृष्णमेनन रक्षामंत्री बने तब सुरक्षा-उत्पादन वास्तव में शुरू हुआ। फौज के लिए ट्रक और जीप जो टाटा-बिड़ला से बहुत ऊँचे दाम पर खरीदे जाते थे, मेनन ने जबलपुर के सुरक्षा कारखानों में बहुत कम खर्च से बनवाना शुरू किया। हथियार भी बनवाना शुरू किया। मेनन दूसरे महायुद्ध के दौरान यूरोप में सारी फौजी जानकारी लेकर आये थे। वे भारत को सुरक्षा-उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे। आज यह बात उनके तब के विरोधी भी मानते हैं। मगर तब संसद में जनसंघ और स्वतंत्र पार्टी और दादा कृपलानी कहते थे कि मेनन सुरक्षा-कारखानों में हथियार नहीं, कप-बसी बनवाते हैं। मेनन पैसा माँगते थे तो कृपलानी ने कहा था—महात्मा गांधी के देश को हथियारों की क्या जरूरत है? मोरारजी तब अर्थमंत्री थे और मेनन के विभाग को पैसा देने में कमी करते थे। जब चीनी हमला हुआ तब वही वयोवृद्ध सत्यवादी गांधीवादी दादा कृपलानी संसद में चिल्लाते थे—मेनन ने देश की सुरक्षा की तैयारी नहीं की। यह देशद्रोही है। कृपलानी ने तब यह नहीं कहा कि मैं चीनी सेना के सामने गांधीवादी सत्याग्रह करूँगा। अमेरिकी दबाव ने, प्रतिक्रियावादियों ने और मिडिलचियों ने परम बुद्धिमान और देशभक्त मेनन को इस्तीफा देने को बाध्य किया।

तो साधो, लोक लेखा समिति चिंतित न हो। मैनेजमेंट भी ईमानदार और मजदूर भी ईमानदार और मजदूर-नेता भी ईमानदार। सबमें समझौता है कि चाहे इस देश पर दूसरा देश कब्जा कर ले पर न काम करेंगे, न करने देंगे। सब देशभक्त हैं। चिंता की बात नहीं। ट्रक नहीं बने तो किराए से ले लेंगे या बैलगाड़ी से काम ले लेंगे। गोला नहीं बना तो तोप में कंडे रख देंगे।

वैज्ञानिक इतिहास का डर

साधो, हम न मानते, अगर हमसे बड़े साधु और अब जब विनोबा नहीं रहे तो देश के सबसे बड़े साधु मोरारजी न कहते कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की संकीर्ण हिंदू राष्ट्र की विचारधारा है, जबकि हमारा 'भारत' राष्ट्र है। मोरारजी को पवनार में जाकर बैठना चाहिए। ऐसे बयान नहीं देने चाहिए। उन्हें यह भी ध्यान नहीं रहा कि उधर धारा ही धारा है, विचार नहीं। उन्हें यह भी ध्यान नहीं रहा कि जो संगठन संघ ने बनाए हैं, वे सब भारतीय हैं—भारतीय जनता पार्टी, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद, भारतीय मजदूर संघ। मोरारजी यह भी भूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गए कि वे तो सिर्फ संकीर्ण भारतीय हैं, मगर संघ अखिल विश्व को एक मानता है। सबूत—विश्व-हिंदू परिषद! अगर मोरारजी और आक्षेप करेंगे तो वे बना लेंगे—अखिल ब्रह्मांड परिषद। मोरारजी उनकी विराटता का मुकाबला नहीं कर सकते। जो लहसुन तक गुजराती खाते हैं, वे संघ की विराट दृष्टि को समझ नहीं सकते। उसमें 100 सूर्य और 1000 चंद्रमा है। और ये सब हिंदू परिषद के हैं।

साधो, मोरारजी ने आक्षेप का गलत वक्त चुना। दुश्मन पर भी ऐसे मौके पर हमला नहीं किया जाता, जब वह गर्दिश में हो। इस समय संघ और उसकी राजनैतिक भारतीय जनता पार्टी गर्दिश में है। यह इतिहास की गर्दिश है। जिस इतिहास को मोरारजी ने प्रधानमंत्री की हैसियत से, नानाजी देशमुख के कहने से, आर.सी. मजूमदार के नोट पर दबाया था, वह इतिहास अब फिर खड़ा हो गया है संघ के सामने, और संघ उससे डर रहा है। साधो, जब जनता सरकार ने उन इतिहास-पुस्तकों को प्रतिबंधित किया था, तब जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के अध्यक्ष डॉ. एस. गोपाल ने 'सेमिनार' में एक लेख में लिखा था—मैं जानता हूँ कि जनता पार्टी में कुछ उद्धत मूर्ख (ऐरोगेंट इडियट्स) हैं। इतिहास विज्ञान है। आज सरकार इतिहास में हस्तक्षेप करती है तो कल भौतिक शास्त्र फिजिक्स में हस्तक्षेप करेगी।

साधो, यह नया इतिहास क्या है, जिससे बेचारा संघ और भारतीय जनता पार्टी डरे हुए हैं। अभी तक ये इतिहास की ही दुहाई देते थे, मध्ययुग के इतिहास की। यह इतिहास यह था कि मुसलमान राजा सब हिंदू विरोधी थे, हिंदुओं पर अत्याचार करते थे, हिंदू-मंदिर तोड़ते और लूटते थे। इसलिए हिंदू, मुसलमान परस्पर दुश्मन थे, दुश्मन हैं, दुश्मन रहेंगे। साधो, ऐसे इतिहास के सबसे बड़े पुरोधा थे डॉ. आर.सी. मजूमदार। वे अब भगवान के प्यारे हो गए। ईश्वर ने उनकी आत्मा को शांति दी या नहीं, हमें पता नहीं। मगर वे अशांति के मंत्र देकर सिधार गए। इस इतिहास के कारण ही दंगे होते हैं। इस इतिहास के कारण ही राष्ट्रीय एकता नहीं होती। मजूमदार ने तो एक लेख में लिख दिया था कि भारत के सारे मुसलमानों को पाकिस्तान चले जाना चाहिए। इस लेख पर राष्ट्रीय एकता परिषद में बहुत गर्म चर्चा हुई और अटलबिहारी वाजपेयी की हालत इतनी खस्ता हुई कि उन्होंने यह झूठ कहा कि 'आर्गनाइजर' से (जो संघ का मुखपत्र है) हमारा कोई संबंध नहीं है। साधो, इसी इतिहास के इसी सांप्रदायिक द्वेष पर संघ का संगठन टिका है, तब जनसंघ की राजनीति चलती थी और अब भारतीय जनता पार्टी की राजनीति चलती है।

साधो, अभी देवरसजी की उपस्थिति में विद्वानों और इतिहासकारों की मीटिंग हुई। कहाँ हुई, कब हुई, यह नहीं बताऊँगा। सब कुछ गुप्त था। स्वयंसेवकों तक को नहीं मालूम था। घबराए हुए संघी बुद्धिजीवियों ने विचार किया कि बाप रे, अब क्या किया जाय ? नए इतिहासकार तो दूसरा इतिहास लिख रहे हैं और वह प्रचारित भी हो रहा है। हम तो इतिहास को कथा बनाए थे, ये उसे विज्ञान बना रहे हैं। कैसे इस इतिहास से लड़ा जाय ?

साधो, बड़ी करुण स्थिति है हिंदू राष्ट्रवालों की। इफ यू हैव टीअर्स प्रिपेयर टु शेड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देम नाऊ। अगर तुम्हारी आँखों में आँसू हैं, तो उन्हें गिराने को तैयार हो जाओ। यह मार्क एंटनी ने जूलियस सीजर को दफनाते वक्त कहा था। साधो, इस नए इतिहास में औरंगजेब वैसा नहीं था, जैसा बताया जाता रहा है। वह मंदिरों को तोड़ता नहीं, उनका निर्माण करवाता था। मंदिरों को दान देता था। इसके प्रमाण मिल गए हैं। 'जजिया' कर हिंदुओं को त्रास देने के लिए नहीं लगाया जाता था। वह एक तरह का 'सेल्स टैक्स' था। मुसलमान जब भारत आए, तब वे व्यापारी और किसान नहीं लाए थे। सिर्फ सिपाही लाए थे। इसलिए व्यापार हिंदुओं के हाथों में ही रहा। इस व्यापार पर जब कर लगा तो वह हिंदुओं पर लगा, क्योंकि व्यापारी हिंदू थे। मुसलमानों पर भी कर लगता था। इसे 'जकात' कहते हैं।

साधो, जहाँ तक मंदिर लूटने का सवाल है, सब राजा मंदिर लूटते थे। हिंदू राजा भी मंदिर लूटते थे। प्रमाण मिला है कि राजा हर्ष का तो मंदिर लूटने का एक डिपार्टमेंट ही था। यह लूट धर्म के लिए नहीं, धन के लिए होती थी। तब बैंक थे नहीं। मंदिरों में लोग भगवान की चौकसी में सोना-चाँदी रखते थे। मूर्तियाँ सोने की होती थीं। जब भी राजा को धन की जरूरत होती, वह हुक्म देता कि फलाँ-फलाँ मंदिर लूट लाओ। यह वैज्ञानिक और सच्चा इतिहास लिखा जा रहा है।

साधो, बड़ी दयनीय हालत है, सांप्रदायिक संगठन और राजनीतिवालों की। इसीलिए जिस संगठन में ज्यादा अध्ययन करना, शंका और प्रश्न करना अनुशासनहीनता है, वह अपने विद्वानों से कहता है कि सांप्रदायिक इतिहास लिखो।

शब्द पीछा कर रहे हैं

साधो, शब्द बड़े ताकतवर होते हैं। शब्द बोलते ही नहीं हैं, वे चलते भी हैं। शब्द पीछे पड़ जाते हैं तो आफत हो जाती है। पिछले साल मोरारजी भाई-जैसे गंभीर बुजुर्ग नेता ने कह दिया था कि स्त्रियाँ शासन करने के योग्य नहीं होतीं। तारकेश्वरी सिन्हा-जैसी लचकदार मंत्री मोरारजी के मातहत मंत्री रहीं पर वे भी उन्हें नरम नहीं कर सकी थीं। स्त्रियों के खिलाफ शब्द मोरारजी भाई के पीछे पड़ गए और उन्हें नारियों से माफी माँगनी पड़ी। साधो, देवकांत बरुआ कांग्रेस के अध्यक्ष थे। तुम लोगों को शायद मालूम हो कि बरुआ बहुत बड़े कवि हैं। असमिया काव्य में वे युगांतरकारी माने जाते हैं। राजनीति में वे शून्य हो जाएँ, पर कवि तो बड़े रहेंगे। अब कवि अतिशयोक्ति अलंकार से काम लेता ही है। तो कवि-स्वभाव के मुताबिक बरुआ कहते थे—इंदिरा इज इंडिया—इंदिरा भारत है। ये शब्द इंदिराजी को भी अच्छे नहीं लगे होंगे। पर कवि कह गया। पर शब्द पीछे पड़ गए और लोग कहने लगे—अरे बरुआ तो दरबारी मसखरा है। शब्द पीछे पड़ गए। आज इंदिरा है, भारत भी है पर बरुआ नहीं है। साधो, इसी तरह अपने अशोक मेहता हैं। शब्द उनके भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे पड़ गए थे। अशोक मेहता तब केंद्र में मंत्री थे। वे अमेरिका गए। वहाँ वे गद्गद हुए। उन्हें लगा मैं भारत का मंत्री नहीं, अमेरिका का कोई अर्थसचिव हूँ। वे अमेरिकी पूँजीपतियों को सलाह देने लगे किं अमेरिकी पूँजी को भारत में पीछे की सीट से ड्राइव करना चाहिए। ये शब्द उनके पीछे पड़ गए। भारत में हल्ला हुआ कि हमारा मंत्री तो अमेरिकी पूँजी की घुसपैठ करवा रहा है। धोखे से हमारी अर्थव्यवस्था को अमेरिका को सौंपना चाहता है। पंडित नेहरू ने तब अशोक मेहता से कहा कि अब तुम पीछे की सीट पर बैठकर दाढ़ी के सफेद बाल उखाड़ो, ड्राइव मत करना। इसी तरह 'संपूर्ण क्रांति' शब्द जयप्रकाश के पीछे पड़ा है, 'सर्वोदय' विनोबा के पीछे पड़ा है।

साधो, इन दिनों शब्द सबसे ज्यादा परेशान कर रहा है अटलबिहारी वाजपेयी को। उन्हीं के शब्द उनके पीछे पड़े हैं। उन्होंने पाकिस्तान और चीन के संबंध में क्या कहा था, यह लोगों को याद है। वही शब्द उनके पीछे पड़ा है और वे लजाकर हँसकर कहते हैं—वह सब भूल जाओ। अब मैं बदल गया हूँ। वह तो मैंने जनसंघ के नेता के रूप में कहा था पर जनसंघ तो अब रहा नहीं। साधो, जनसंघ तो अभी भी है। वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ है। और वह रहेगा। सारी राजनीति तो यही करता है। तभी देवरसजी इस संस्था के सांस्कृतिक काम से मोरारजी और चरणसिंह से मिलते हैं।

साधो, पहले अटलबिहारी भी हमेशा ही केसरिया बाना पहने रहते थे। तुमने वीर रस के नाटकीय भाषण सुने होंगे। तब दहाड़ते थे—हमें पाकिस्तान से काश्मीर का वह हिस्सा छीन लेना चाहिए, जिस पर उसने कब्जा कर रखा है, हमें चीन से एक-एक इंच भूमि वापस लेनी चाहिए, हमें उनसे कोई बात नहीं करनी चाहिए। यह सरकार डरपोक है, नपुंसक है। हम कहते हैं फौज भेजो, मगर यह चिट्ठी भेजती है। साधो, ऐसे अटलबिहारी जब विदेशमंत्री हुए तो हमें लगा था कि अब भारत दिग्विजय करेगा। इधर पाकिस्तान पर हमला होगा, उधर चीन पर। दोनों पर फतह। अश्वमेध यज्ञ। अगर मंत्रिमंडल फौजी कार्यवाही करने की मंजूरी नहीं देगा तो अटलबिहारी स्वयंसेवकों से चढ़ाई करा देंगे। काली टोपी, हाफ पैंट, लाठीवाली हमारी राष्ट्रीय फौज!

मगर साधो, अटलबिहारी ने निराश किया। वे तो इस्लामाबाद पहुँच गए और जनरल जिया-उल-हक से प्रेम-निवेदन करने लगे—

'यों जिंदगी गुजार रहा हूँ तेरे बगैर, जैसे कोई गुनाह किए जा रहा हूँ मैं,' और जनरल जिया ने जवाब दिया—'है हर एक उनके इशारे में निशाँ और, करते हैं मुहब्बत तो गुजरता है गुमा और'। याने आप इतने झूठे हैं कि मुहब्बत करते हैं। तो कुछ और गुमा होता है। साधो, शिमला-समझौते पर अटलबिहारी ने विरोध किया था। एक विरोध-रैली का नेतृत्व किया था और कहा था, शिमला-समझौता राष्ट्रघाती है। मगर अब कहते हैं कि हम शिमला-समझौते का पालन करेंगे।

साधो, कोई पूछे कि अगर तब शिमला-समझौता राष्ट्रघाती था तो अब क्यों नहीं है ? आप राष्ट्रघात तब कर रहे थे कि अब कर रहे हैं? आप तब देशद्रोही थे कि अब हैं ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधो, हम नहीं, उनके शब्द ही वाजपेयी के पीछे पड़े हैं। वे अब चीन जा रहे हैं प्रेम-वार्ता के लिए। चीन ने कराकोरम सड़क बना दी है जिससे टैंक सीधे पाकिस्तान आ सकते हैं। चीन ने काश्मीर में जनमत-संग्रह की पाकिस्तानी माँग का समर्थन भी किया है। मगर वाजपेयी जी जा रहे हैं। एक सदस्य ने संसद में कह भी दिया कि वे चीन जाएँ तो अपने पहले के भाषण भी लेते जाएँ।

साधो, अपने ही शब्द पीछे पड़ जाएँ तो बड़ी फजीहत पड़ जाती है। पाक और चीन पर फौजी कार्यवाही न करने के कारण कांग्रेस सरकार नपुंसक थी तो यह सरकार कौन-सी मर्दानगी दिखा रही है?

साधो, वाजपेयी से अकेले में पूछो कि पाकिस्तान से इतने ज्यादा हिलगना क्यों चाहते हो? वह अमेरिकी सैन्य संगठन का सदस्य है मगर तुमने उसे गुट-निरपेक्ष में घुसेड़ दिया। वाजपेयी कहेंगे—उनका ऐसा ही इशारा है। फिर पूछो—रेंगकर चीन क्यों जा रहे हो? वे कहेंगे—उनका ऐसा ही इशारा है। साधो, अब पूछो कि वे हैं कौन? कौन का इशारा है ? क्या नाम है उनका? वाजपेयी कहेंगे—भारतीय संस्कृति में 'उनका' नाम नहीं लिया जाता। हम तो उन्हें 'एजी' कहते हैं।

अब साधो, तुम सोचने लगोगे कि ये 'एजी' जिमी कार्टर हैं। सोचो, सोचो!

विदेशियों का आकर्षण

साधो, भूपेश गुप्त ने राज्यसभा में कहा था कि दिल्ली की वर्तमान सरकार विदेशी पर्यटकों के लिए सबसे बड़ा आकर्षण है। विदेशी यह देखना चाहते हैं कि आखिर यह सरकार चलती कैसे होगी, जिसके सदस्य एक-दूसरे से इतने विपरीत हैं। साधो, ताजमहल, खजुराहो, अजंता, लालकिला इन सबका पानी उतर गया। कोई विदेशी इन्हें देखना नहीं चाहता। भारतीय हाथी, गैंडा, साँप भी कोई नहीं देखना चाहता। अब विदेशी पर्यटक भारत में उतरता है तो उससे गाइड कहता है—क्या देखेंगे साहब, लालकिला? ताजमहल ? पर्यटक कहता है—ये तो बाद में देख लेंगे। पहले असली चीज दिखाओ। तुम्हारी सरकार। तुम्हारा मंत्रिमंडल किस अजायबघर में है। वह बेचारा गाइड परेशान होता है। वह कहता है—साहब, हमारी सरकार अजायबघर में नहीं है। मंत्री लोग बंगले में रहते हैं। सचिवालय में काम करते हैं। विदेशी कहता है, तुम हिंदुस्तानी बहुत झूठ बोलता है। तुम हमें दिखाना नहीं चाहता। हमें तो उधर यही बताया गया था कि भारत, दैट इज इंडिया में सबसे अजीब चीज वहाँ का मंत्रिमंडल है। सुना है, सब मंत्री एक-दूसरे की तरफ पीठ किए हैं और रस्सी से बँधे हैं। वे अलग-अलग खींचते हैं मगर रस्सी से बँधे होने के कारण इकट्ठे हैं। हमें यही दृश्य दिखाओ। अब साधो, बेचारा गाइड परेशान होता है। वह कहता है—'साहब, और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छी-अच्छी चीजें इस देश में हैं। चलिए, आपको कुतुबमीनार दिखा लाऊँ।' मगर विदेशी फिर भी नहीं मानता। उसकी अपनी मंत्रिमंडल देखने की उत्सुकता वैसी ही है, जैसी पहले अपने यहाँ के ग्रामीणों की रेलगाड़ी के बारे में थी। ग्रामीण रेलगाड़ी देखते थे और कहते थे—अरे भैया रे, ये तो गजब है। न बैल जुते हैं न कोई धकियाता है, फिर भी ये चलती है, कमाल है। इसी तरह विदेशी कहता है—गजब है इस सरकार का। न कोई दिशा है, न कदम उठते हैं। फिर भी सरकार चल रही है। साधो, वह विदेशी गाइड से कहता है—मुझे वहाँ ले चलो जहाँ चरणसिंह के खेत पर जॉर्ज फर्नांडिस कारखाना बनवा रहे हैं, या वह जगह बताओ जहाँ जॉर्ज का कारखाना तुड़वाकर चरणसिंह ने हल चलवा दिया है।

साधो, ये विदेशी कुछ और देखना नहीं चाहते। अपना गाइड कहता है—साहब, हमारे यहाँ करतब भी बहुत तरह के होते हैं। एक रस्सी का जादू है—रोपट्रिक! इसमें बाजीगर एक रस्सी को आसमान में उछालता है और उसके सहारे ऊपर चढ़ जाता है। फिर लोहे के एक छोटे-से गोल में घुसकर आदमी आरपार हो जाता है। साधो, विदेशी कहता है—मुझे वह रस्सी दिखाओ जिस पर चढ़कर बृजलाल वर्मा मंत्रिमंडल में पहुँचे और वह छेद दिखाओ जिसमें से सिंकदरबख्त मंत्रिमंडल में घुस गए।

साधो, आखिर गाइड विदेशी को चिड़ियाघर ले जाता है। वहाँ बताता है—देखिए साहब, यह बड़ा बंदर। इतना बड़ा बंदर यूरोप में नहीं होगा। यह हनुमानजी के वंश का है। विदेशी पूछता है—इसका नाम क्या राजनारायण है? गाइड कहता है—साहब, आप भी क्या मजाक करते हैं। अच्छा यह बारहसिंगा देखिए। विदेशी पूछता है—इसका नाम क्या चरणसिह हैं ?

साधो, यह हाल है। विदेशियों को ऐसा विश्वास हो गया है कि हमारी सरकार कोई अचरज की चीज है। विदेशी अब ताजमहल और कुतुबमीनार छोड़कर उसी को देखना चाहते हैं। टिकिट लगा दें तो बहुत-से डालर और पौंड मिलेंगे।

भूत-पिशाच का हनुमान चालीसा

साधो, राजनैतिक जीवन में कुछ महापुरुष ऐसे होते हैं जिनकी प्रतिभा और संभावना कभी खत्म नहीं होती। वे कभी घिसते ही नहीं। उसकी नोक कभी घिसती ही नहीं। ऐसे अपने राजनारायण हैं, पहलवान स्वास्थ्यमंत्री। उन्होंने इस कहावत को झूठा कर दिया कि—

करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान
रसरी आवत-जात ते सिल पर परत निसान।

साधो, कुएँ के घाट पर रस्सी बार-बार घिसती है तो पत्थर पर निशान पड़ जाते हैं। पर इधर रस्सी घिस-घिसकर टूट गई मगर राजनारायण पर निशान नहीं पड़ा। देवी-देवता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी राजनारायण से घबराते हैं। साधो, पिछले मार्च में जीत के बाद कई नेताओं के कोने निकले थे। मधु दंडवते साइकिल पर दफ्तर जाते थे। जॉर्ज फर्नांडिस चाहे जो बोलते थे। चरणसिंह डान क्विकजोट की तरह पनचक्की को राक्षस समझकर उस पर तलवार से हमला करते थे। अटलबिहारी रामलीला मैदान में स्कूल की डिबेटिंग सोसायटी का जोशीला भाषण देते थे। मोरारजी भाई सत्य और ईश्वर की खोज करते थे। मगर साधो, समय, अनुभव और जिम्मेदारी ने सबको घिस दिया। नहीं घिसे तो एक राजनारायण। राजनारायण स्वास्थ्यमंत्री हैं, पर उनके रोग का इलाज कोई नहीं कर सकता। उनके दिमाग पर कई सनकें चढ़ी हैं। फिर रोग एक हो तो उसका इलाज हो। राजनारायण के रोग का हाल यह है, जैसा तुलसीदास ने कहा है—

ग्रह ग्रहीत पुनि वातबस
तापर बीछी मार
ताकि पिआइअ वारुणी
कहहु कवन उपचार।

यानी एक तो ग्रह खराब, फिर वात रोग, फिर बिच्छू का काटा हुआ। उस पर शराब और पिला दी। अब बताओ ऐसे रोगी का क्या इलाज हो। डाक्टर सुशीला नैयर ने कृपा करके मानसिक रोगों के उपचार के इंतजाम के लिए संसद में एक बिल रखा है। इस उपचार से शायद राजनारायण को लाभ हो।

साधो, कुछ भी हो, हमें तो यह आदमी बहुत पसंद है। जीवन में रस घोलता रहता है। अभी राजनारायण ने डाक्टरों की एक सभा में कहा कि हर सर्जन को ऑपरेशन के पहले हनुमान चालीसा का पाठ करना चाहिए। हनुमान चालीसा की शक्ति बताते हुए उन्होंने कहा कि मैंने एक लाख बार हनुमान चालीसा का पाठ किया तो इंदिरा गांधी को हरा दिया। संघवाले भी कहते थे कि हमने सवा लाख सूर्य-नमस्कार किए तो इमर्जेंसी उठ गई। साधो, राजनारायण ठीक कहते होंगे। पर सवाल फिर भी खड़े होते हैं। हनुमान चालीसा हम लोगों ने भी पढ़ा है। उसमें हनुमान के प्रताप के बारे में कहा है—

भूत-पिशाच निकट नहिं आवै
महावीर जब नाम सुनावै।

हनुमान का नाम सुनकर भूत-पिशाच पास नहीं फटकते। पर तब क्या होता होगा जब भूत-पिशाच खुद हनुमान चालीसा का पाठ करने लगें। हनुमान चालीसा तो राजनारायण जैसे भूत-पिशाच को भगाने के लिए है। मगर भूत खुद ही कहते हैं कि मैंने एक लाख बार हनुमान चालीसा का पाठ किया और जीत गया। अब या तो हनुमान चालीसा में भूत भगाने का दम नहीं है या राजनारायण झूठ बोलते हैं कि उन्होंने पाठ किया। अगर वे सचमुच पाठ करते तो हार जाते, क्योंकि भूत-पिशाच निकट नहिं आवै।

साधो, हम राजनारायण की बात मान लेते हैं। सर्जन ऑपरेशन के पहले हनुमान चालीसा का पाठ जरूर करें। दर्द के लिए मरीज से हनुमान बाहुक का पाठ करवाएँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनारायण पूरी विधि बतला दें तो ठीक रहेगा। ऑपरेशन थियेटर को और औजारों को स्टेरिलाइज किया जाय या नहीं? रोगी को बेहोश किया जाय या नहीं? ऑपरेशन औजारों से करें या कुल्हाड़ी, रंदे आदि से? एक्स-रे करने की जरूरत है कि नहीं? साधो, हनुमान चालीसा का यह प्रताप है तो क्यों न बढ़ई और लुहार को ऑपरेशन करने का लाइसेंस दे दिया जाय? गाँव में वही लुहार और बढ़ई ऑपरेशन कर दिया करेंगे।

साधो, इस हनुमान-चालीसा-सर्जरी में एक छोटी-सी कठिनाई और आएगी। डाक्टर तो मुसलमान, ईसाई भी हैं। वे हनुमान चालीसा का पाठ कैसे करेंगे? इसका हल भी स्वास्थ्यमंत्री ने सोच लिया होगा। शायद वे मुसलमान और ईसाई डाक्टरों की शुद्धि करके उन्हें हनुमान भक्त बनाएँगे। उन्हें डिग्री के साथ ही यह हनुमान-कोर्स भी करना होगा। आगे तो हमें सर्जनों को ट्रेनिंग देने की जरूरत भी नहीं पड़ेगी। स्वास्थ्यमंत्री हनुमानजी की फौज याने बंदरों को उस्तरा देकर ऑपरेशन में लगा देंगे। इससे सच्चा रामराज आ जाएगा।

इंग्लैंड की रानी के चर्चे

साधो, इस समय इंग्लैंड की रानी एलिजाबेथ और प्रधानमंत्री में ठनी है। यों हम लोगों को राज-परिवारों से मतलब कोई है नहीं, मगर सबसे पुराने लोकतंत्र-प्रतीकात्मक राजशाही के मेल से बनी ब्रिटिश सरकार की परंपराएँ दिलचस्प हैं। अंग्रेज लोग अपने राजा चार्ल्स-1 का सिर काट चुके हैं, मगर फिर राजा बना लिया और 'गॉड सेव्ह दी किंग' गाने लगे। अंग्रेज लोग बहुत परंपरा-प्रेमी और दकियानूस माने जाते हैं। कभी ब्रिटिश संसद में किसी ने सीट पर बम रख दिया था। वह फटा तब बिजली थी नहीं। तो सावधानी के लिए यह हुक्म हुआ कि संसद की मीटिंग के पहले एक आदमी लालटेन लेकर हर सीट को देखे कि कुछ रखा तो नहीं है। अब तो बिजली की जगमगाहट रहती है, मगर फिर भी एक आदमी आज भी हाथ में लालटेन लेकर सीटों को देखता है।

साधो, राज-परिवार के सदस्यों के भत्ते बँधे हैं, उनके महल हैं। अधिकार कुछ भी नहीं हैं। राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद ने यह विवाद उठाया था कि क्या भारत का राष्ट्रपति इंग्लैंड के राजा की तरह है, जिसके कोई अधिकार नहीं हैं, जो प्रतीकात्मक है।

साधो, राज-परिवार की चर्चाओं, बदनामियों और मामूली घटनाओं में लोगों की दिलचस्पी रहती है। वे उनका मजा लेते हैं। मगर संसद में बार-बार यह माँग भी उठती है कि राज-परिवार को मिलनेवाला धन कम किया जाय। वर्तमान राज-परिवार में रानी की छोटी बहन मार्गरिट बहुत चर्चा का विषय रही है। वह स्वभाव से रूमानी है। पहले उसका प्रेम राजमहल के रक्षक दल के एक कैप्टिन से हुआ। पर शादी नहीं हो सकी, क्योंकि एक तो उसकी बीवी और दो बच्चे थे। फिर उसकी नाड़ियों में राज-खानदान का खून नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर एक जोन्स साहब मिले, जिनका धंधा फोटोग्राफी है। उनके बारे में पता लगाया गया कि 7-8 पीढ़ी पहले उनके परिवार में राज-खानदान का खून था। इनसे मार्गरेट की शादी हुई। पर मार्गरेट स्वभाव से आवारा, आनंदभोगी है। तो वह ऐक्टरों और गायकों की टोलियों में रहने लगी और गाँजा वगैरह का शौक करने लगी। आजकल वह तलाक देकर 50 साल की उम्र में 30 साल के गायक युवक के साथ भोगविलास में लिप्त है। इसका खर्च भी ब्रिटेन की प्रजा दे रही है।

साधो, रानी एलिजाबेथ भी नैतिक संकट में हैं। वे 55 साल की हैं। 1949 से वे और उनके पति फिलिप अलग-अलग बैडरूम में सोते हैं। राजमहल में कड़ी सुरक्षा व्यवस्था है। पर एक दिन पता चला, मिस्टर फागन नाम का एक आदमी रात को उनके सोने के कमरे में घुस गया। वह रानी के बिस्तर पर बैठा रहा और बातें करता रहा। सुरक्षा-अधिकारियों ने जाँच की तो दोनों ने यही बात कही। अब इस बात पर लोगों ने सवाल उठाए कि रात में बैडरूम में आखिर कोई आदमी घुस कैसे गया? सुरक्षा-व्यवस्था ढीली है? या सुरक्षावालों को उसने पटा लिया था? या रानी ने ही सुरक्षा-अधिकारियों से कह दिया था कि इसे आने दो। आखिर रात में बैडरूम में आदमी को घुसा देखकर रानी चिल्लाई क्यों नहीं, शोर क्यों नहीं किया, बातें क्यों करती रहीं?

साधो, इधर प्रधानमंत्री थैचर पर हमले होने लगे कि रानी की सुरक्षा का प्रबंध ठीक नहीं है। फिर रहस्य खुलने लगे। सुरक्षा-व्यवस्था के प्रधान को हटाया गया, क्योंकि उसे समलिंगी मैथुन की आदत है। उसने रहस्य खोला कि लगभग आधे सुरक्षा-अधिकारी समलिंगी मैथुनवाले हैं।

साधो, रहस्य और खुले। मालूम हुआ कि फागन रानी के बैडरूम में पहली बार नहीं गया था, बारहवीं बार गया था। उसके मित्र ने बताया कि जब वह जा रहा था, तब उसने मुझसे कहा था—मैं अपनी 'गर्ल फ्रेंड' से मिलने जा रहा हूँ। या इलाही ये माजरा क्या है? रानी का 'ब्वाय फ्रेंड'! साधो, अब रानी कहती हैं कि मेरे चरित्र पर संदेह होने लगा है, इसलिए मैं पद त्याग करके अपनी जगह अपने लड़के चार्ल्स को राजा बना देना चाहती हूँ। निकम्मे राजवंश की इस दिलचस्प वारदात का मजा ब्रिटिश जनता इन दिनों ले रही है।

संन्यासी की वापसी

साधो, तुम लोग भी साधु-संन्यासी हो। क्या तुममें कोई ऐसा संन्यासी है या तुमने ऐसा देखा है जो यों तो घर-बार त्याग चुका है पर आश्रम से हुक्म देता है—बड़ा घर से बेदखल किया गया, छोटा भाई घर से निकाल दिया गया, भतीजे का घर छीन लिया गया। या ऐसा संन्यासी देखा है जिसे लड़के, भाई, भतीजे संन्यास त्यागने को मनाते हों, और वह संन्यासी कहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो—उस सुंदरी से शादी करा दो तो मैं संन्यास त्याग दूँगा या उस फर्म का मालिक बना दो तो संन्यास त्याग दूँगा।

साधो, अपने यहाँ धर्म में तो नहीं पर राजनीति में ऐसे संन्यासी होते हैं। अपने चरणसिंह को लो। वे राजनीति से संन्यास लेकर बैठ गए। मगर वहीं आश्रम में बैठे-बैठे फरमान निकाल रहे थे देवीलाल, बीजू पटनायक वगैरह दल से निलंबित किए गए। संन्यासी सबकी खैर माँगता है, पर यह संन्यासी बैठा-बैठा दूसरों का बुरा कर रहा था और अंत में चरणसिंह ने कह भी दिया कि मैं—संन्यास इस शर्त पर छोड़ सकता हूँ कि मुझे प्रधानमंत्री बनाया जाय।

साधो, संन्यास विभिन्न कारणों से लिया जाता है। एक तो—'नारि मुई, घर संपत्ति नासी, मूड़ मुड़ाय भये संन्यासी!' एक और कारण है कि दुनिया से मन भर जाय, सारे भोग आदमी कर ले और यह कहकर संन्यास ले ले कि बहुत हुआ, अब दुनिया से कोई मतलब नहीं। एक और होता है—जो चोरी-तस्करी में लगा होता है, और पुलिस से परेशान रहता है, वह संन्यासी हो जाता है। आश्रम में बाहर का तस्करी का माल बिकता है और सोना गलाया जाता है। एक वह होता है जो चटोरा होता है। बुढ़ापे में उसकी लोलुपता और बढ़ जाती है। वह गुलाबजामुन, रसमलाई, आलूबंडा माँगता है। परिवारवाले कहाँ तक उसके चटोरेपन की माँग पूरी करें। बूढ़ा खीझकर नदी-किनारे जा बैठता है—लो मैं संन्यासी हो गया। शाम तक, जब पेट और जीभ खाने को माँगते हैं, तब वह किसी बहाने संन्यास त्यागकर घर आ जाता है। एक वह होता है जिसके बेटे, बहू, भाई-भतीजे तंग करते हैं। वे उसका हर गलत-सही हुक्म नहीं मानते। उसकी अवहेलना करते हैं। उसकी प्रतिष्ठा घटाते हैं। तो सुबह धमकी देता है—देखो रे, तुम ऐसा करोगे तो लो मैं संन्यासी हो जाता हूँ।

साधो, अब तुम बताओ कि इनमें से कौन-सा संन्यास अपने चौधरी साहब का था। पदलोलुपता का संन्यास था, इसमें तो कोई शक नहीं। वह घर के भाई, बेटा, भतीजा वगैरह से तंग होने का भी नतीजा था। देवीलाल, बीजू पटनायक, कुंभाराम आर्य अपने को नेता मानने लगे थे। ऐसा हो नहीं सकता। चौधरी साहब हैं तो कोई और नेता कैसे हो सकता है, फिर महीनों से विपक्षी एकता की बात चल रही है मगर यह तय ही नहीं हो रहा कि इस एकता का नेता कौन होगा। यह तो गलत तरीका है कि पहले दल एक हो और तब नेता तय हो। सही बात यह है कि नेता पहले तय हो और दलों में एकता फिर स्थापित हो।

साधो, ब्रिटेन के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और दूसरे महायुद्ध के प्रधानमंत्री विन्सटन चर्चिल के बारे में कहा जाता है—वे जहाँ जाते थे, वहाँ सबसे प्रमुख और ध्यान के केंद्र होना चाहते थे। अगर वे बारात में जाएँ तो दूल्हा होना चाहेंगे और शवयात्रा में जाएँ तो लाश होना चाहेंगे। ऐसा ही अपने चौधरी साहब का व्यक्तित्व है। इसीलिए उन्होंने कह दिया कि विपक्षी एकता में मैं प्रधानमंत्री बना दिया जाऊँ तो मैं संन्यास छोड़ता हूँ? किसी ने ऐसा वचन उन्हें नहीं दिया, मगर फिर भी संन्यासी वापस लौट आए।

18.4.1982

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पति-मंच' भी बन गया

साधो, तुमसे कई हफ्तों से बात नहीं हुई। इस बीच अंग्रेजी मुहावरे के अनुसार बहुत-सा पानी पुल के नीचे से बह गया। लघु आम चुनाव में गंगा और यमुना का पानी पुल के नीचे से बह गया। नदी-नालों का मटमैला पानी पुल के नीचे से बह गया। पत्ते डूब गए और पत्थर पार लग गए। अब विवाह का सीजन चल रहा है। सौभाग्यकांक्षी और सौभाग्यकांक्षिणी परिणय-बंधन में बँध रहे हैं। कोई सौभाग्यकांक्षिणी दुर्भाग्यकांक्षिणी हो रही है, क्योंकि उसकी मुसीबत विवाह के बाद ही शुरू हो जाती है। लड़कों के पिताओं के हिसाब रजिस्टर खुले हैं। टेंडर मँगाए जा रहे हैं। अच्छी क्वालिटी का माल (वर) इस मैरिज सीजन के 'क्लीअरेंस सेल' के पहले दिन किफायत से मिल जाता है। लड़कियों के पिता चक्कर लगा रहे हैं। उधर वे प्रॉविडेंट फंड, लोन फंड से पैसे निकाल रहे हैं। पत्थर भी बहे जा रहे हैं। प्रगतिशील खयालों के खूब शिक्षित सुधारक टाइप वर, मंडप में बैठकर वधू के पिता से कहते हैं—पिताजी, हम तो स्कूटर लेंगे। जिन्हें घर में चाय मयस्सर नहीं, बारात में आकर रबड़ी के कप को लात मार रहे हैं। दूल्हे शेरवानी पहनकर अपने दिन फेर रहे हैं।

साधो, सभी पार लग रहे हैं। 'वर जीत गई मोरी कानी, वर खड़ा होय तब जानी !'···वधू पक्ष ने गर्व से गाया। 'वर जीत गई मोरी कानी', तो बरातियों ने सोचा कि इन्हें हमारे वर की क्वालिटी नहीं मालूम है—वर खड़ा हो तब जाने। तुम्हारी कानी है, तो हमारे बहादुर लँगड़े हैं। हम जीते हैं, तुम नहीं। सासें खट्टी-मीठी हो रही हैं। जो वधू अच्छा माल नहीं लाई है, उसे किस तरह सास देखेगी, इसकी योजना बना रही हैं।

साधो, विवाह से ही संवद्ध कई बातें हैं। एक है—वधू का पीड़न। अच्छा दहेज नहीं लानेवाली वधू को ससुराल में उत्पीड़ित किया जाता है। इसके विरोध में नारी के अधिकारों की रक्षा के लिए आंदोलन होते हैं। राजधानी में महिलाओं के प्रदर्शन होते हैं और नारे लगते हैं—वधू जलाने के लिए नहीं है। वाइब्ज आर नाट फॉर वर्निंग। दहेज प्रथा मुर्दाबाद! दिल्ली में कोई वधू जलकर मरी कि प्रदर्शनों का ताँता लग जाता है। इन प्रदर्शनों में ज्यादातर वे महिलाएँ शामिल होती हैं, जो प्रौढ़ा होती हैं और तीसरे पहर के आलस को नारे से भुलाना चाहती हैं। अगर प्रौढ़ाएँ तीसरे पहर न ऊवें तो कोई प्रदर्शन नारियों के पक्ष में न हो। कोई ऐसी भी होगी जो बहू को खाट से बाँधकर, पीटकर आई होगी।

साधो, अब पतियों की रक्षा के लिए भी एक 'पति मंच' कानपुर में बन गया है। पति भी प्रताड़ित होते हैं, यह तुम सब जानते हो। दहेज का तो सवाल नहीं है; पति-पत्नी द्वारा प्रताड़ित होते हैं, तनखा को लेकर। कम तनखा लेनेवाले पति पत्नी द्वारा जब-तब प्रताड़ित किए जाते हैं। जो पति वेतन के दिन कलारी होते हुए आते हैं वे भी पिटते हैं। पति के प्रताड़ित होने के कारण और भी हैं। कोई पति इसलिए प्रताड़ित होता है कि उसकी स्टेनो सुंदरी है। दूसरे की बीवी की तारीफ करनेवाले भी प्रताड़ित होते हैं।

साधो, आमतौर पर यह माना जाता है कि पति पत्नी से बहुत जोरदार होता है। पति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का पत्नी पर रौब गालिब होना चाहिए। एक कथा है। दो राजकुमारियाँ थीं। उनकी शर्त थी कि वे उसी से शादी करेंगी जो रोज सुबह उनकी पाँच जूतियाँ खाए। उनकी शादी हो गई। पहली ने पति से सबेरे कहा—बैठो मियाँ और 5 जूतियाँ खाओ। पति ने पाँच जूतियाँ खाईं। जब दोनों मिले तो दूसरे ने पहले से पूछा—कैसा चल रहा है? पहले ने कहा—बस, रोज पाँच जूतियाँ खा रहे हैं। और तुम? दूसरे ने बताया कि मैं तो उलटे पत्नी को ही पाँच जूतियाँ मारता हूँ। हुआ यह कि सुहागरात को मैंने कमरे में पहले से बिल्ली छोड़ रखी थी। पत्नी कमरे में आई। मैंने यहाँ-वहाँ देखकर कहा—यह बिल्ली कैसे घुस आई? और तलवार उठाकर बिल्ली की गर्दन काट दी। सुबह मैंने पत्नी से कहा—लो, मारो 5 जूतियाँ। वह काँपते हुए बोली—अरे, आप जैसे क्रोधी को मारकर क्या मुझे जान देनी है? और सिर आगे कर दिया। पिटनेवाले पति ने भी यह तरकीब अपनाई। उसने भी रात को कमरे में बिल्ली छोड़ दी और तलवार से उसका सिर काट दिया। इस पर बीवी ने वही 5 जूती मारकर कहा—बिल्ली पहले दिन मारी जाती है।

साधो, पहले दिन बिल्ली मारनेवाले पति होते हैं, तो दब्बू भी होते हैं। जोरू का गुलाम और इनपेक्ड हसबैंड के बहुत किस्से प्रचलित हैं। बहरहाल, पतियों की रक्षा के लिए पति-मंच बन गया। इसमें एक डॉक्टर और एक न्यायाधीश भी शामिल किए गए हैं। डॉक्टर पिटे हुए पति की मरहम-पट्टी के लिए जरूरी है और न्यायाधीश कानूनी पेचीदगियों के लिए। साधो, तुम भी स्थानीय पीड़ित पतियों का एक पति-मंच बना लो।

4.6.1982

तेरी जुल्फों के पेचो-ख़म नहीं हैं !

साधो, आज जब मैं यह लिख रहा हूँ तब फिल्मों के सर्वशक्तिमान भगवान जिनकी भृकुटि के कुटिल होने से नाश होता है और कृपा-कटाक्ष से कल्याण होता है, वे भगवान एन.टी. रामाराव जो राजनीति के किंडरगार्टन के शिशु हैं, उनकी हालत दीन सुदामा-जैसी हो गई है। वे सुदामा का रोल बखूबी कर सकते हैं, जिन्होंने दीनता से कृष्ण के हृदय को द्रवित कर दिया था। तुम पूछोगे—'गुरु, भगवान को सुदामा किसने कर दिया?' साधो, जनता की समस्याओं और माँगों ने, जिनकी कल्पना फिल्मी प्रभु को नहीं थी। इस समय आंध्र में सरकारी कर्मचारियों की पूर्ण हड़ताल चल रही है। चपरासी और ड्राइवर तक भगवान रामाराव को नहीं मिल रहे हैं। यह श्रमिक वर्ग है—वर्किंग क्लास। यही संगठित हो जाए तो भगवान को उतारकर खुद वहाँ बैठ जाता है।

साधो, मैंने ऊपर कहा है कि रामाराव राजनीति के किंडरगार्टन में हैं। उन्होंने भगवान होने के नाते सुदर्शनचक्र चलाने की धमकी दी। कहा—अगर कर्मचारी हड़ताल पर जाएँगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो उनकी जगह मेरी पार्टी के स्वयंसेवक काम करेंगे। यह बिलकुल राजनीति की टाफी चूसनेवाले बच्चे-जैसा बयान है। यह सुदर्शन चक्र नहीं है। गनीमत है कि रामाराव ने अपने स्वयंसेवकों को नहीं उलझाया। मुख्य सचिव ने, जिसे रामाराव ने हटा दिया, ठीक सलाह दी थी कि अपनी पार्टी के कार्यकर्ताओं का उपयोग सरकारी काम के लिए मत कीजिए। एक तो वे काम जानते नहीं हैं। जरूरी, गोपनीय फाइलें इन गैरजिम्मेदार लोगों के हाथों में पड़ जातीं, फाइलें और कागजात गुमते या चोरी जाते। याने शासनतंत्र बिखर जाता। दूसरे, इन पार्टी-कार्यकर्ताओं की मुठभेड़ हड़ताली कर्मचारियों से होती। मार-पीट होती, लाठियाँ चलतीं, दंगे होते। अच्छा किया कि रामाराव ने मूर्खता का यह सुदर्शनचक्र नहीं चलाया। साधो, पार्टी-कार्यकर्ताओं का उपयोग वही पार्टी कर सकती है, जिसकी निश्चित विचारधारा हो और उस विचारधारा में दीक्षित अनुशासित, समर्पित पक्के कार्यकर्ता हों। पिछले साल बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु जब सचिवालय में अपने कमरे में बैठे थे, तब युवक कांग्रेस के जुलूस ने तोड़-फोड़ की, खिड़कियों के काँच फोड़ डाले, ज्योति बसु को भी खतरा पैदा हो गया था। पुलिस क्या कर रही थी? यह सवाल था। ज्योति बसु ने पुलिस कमिश्नर को बुलाया और डाँटा—जुलूस यहाँ तक कैसे आया? उसने तोड़-फोड़ कैसे कर डाली ? तुम और तुम्हारा फोर्स क्या कर रहे थे? अगर तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, तो मेरी पार्टी के कार्यकर्ता मेरी रक्षा कर लेंगे। पर मैं तुम्हारे इस पद से तुम्हें फौरन हटा दूँगा। साधो, ऐसी बात ज्योति बसु कह सकते हैं भगवान रामाराव नहीं कह सकते, जिनके पास भावुक भक्तों की बेतरतीब भीड़ है।

साधो, फिर भी रामाराव हमारे प्यारे हैं। वे हमारे अखाड़े के हैं। उन्होंने भगवा वस्त्र धारण कर लिये हैं और साधो हो गए हैं। उन्हें हम अपने अखाड़े में बुलाएँगे। गाँजे की चिलम चलेगी। सत्संग होगा। हम रामाराव से खुश हैं। उन्होंने उन राजनेताओं को चूना लगा दिया, जो राजनीति क़रते-करते बूढ़े और जर्जर हो गए हैं। रामाराव के बुलाने पर सारे विपक्षी नेता विजयवाड़ा चले गए। दक्षिणपंथी नेता समझे थे कि भगवान पूछेंगे—भक्तो, तुम्हें क्या चाहिए? मैं वरदान के 'मूड़' में हूँ। ये नेता कहेंगे—प्रभु, हमें दक्षिणपंथी विपक्षी एकता चाहिए। भगवान हाथ उठाकर कहेंगे—एवमस्तु! जाओ, तुम्हारी एकता हो गई।

मगर साधो, भगवान ने यह चमत्कार नहीं किया। तब बहुगुणा ने दिल्ली में विपक्षी नेताओं की बैठक बुलाई। बेचारा बहुगुणा जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय से राजनीति कर रहा था, नेताओं के हाथ जोड़ता घूम रहा था कि भैया, बैठक में जरूर आना। मगर वे नेता कह रहे थे कि हम नहीं आएँगे। उन्हें डर था कि अगर बहुगुणा के बुलाए चले गए, तो यह विपक्ष का नेता हो जाएगा और फिर प्रधानमंत्री बन जाएगा। 40-50-60 सालों की राजनीति में कैसे मजबूत रेत के किले बनाए हैं इन लोगों ने। साधो, फिर भगवान का रूप धारण किए हमारे रामाराव आए। उनके कहने से चरणसिंह-जैसे हठी भी आ गए और चंद्रशेखर भी, जिन्हें पैदल चलने के कारण दूसरा गांधी बनाया जा रहा है। रामाराव राजनीति में कल ही आए हैं। हमें लगा जैसे बच्चे ने बाबा के सिर पर पेशाब कर दिया हो। रामाराव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने सिद्ध कर दिया कि मैं अगर राजनीति के कान्वेंट में के.जी. टू में हूँ, तो तुम लोग के. जी. वन में हो।

साधो, दक्षिण में फिल्मी हीरो की राजनीति का यह दौर अभी चलेगा। कर्नाटक में फिल्मी हीरो है—राजकुमार। जब वहाँ हिंदी विरोधी आंदोलन चला, तो उसका नेतृत्व बुद्धिजीवी या जमी हुई राजनैतिक पार्टियों के नेता नहीं कर रहे थे। उसका नेतृत्व कर रहे थे—फिल्मी हीरो राजकुमार। जुलूस में उनके पीछे चल रहे थे राजनेता और बुद्धिजीवी। वे राजकुमार की जय बोल रहे थे। हाथी-घोड़ा पालकी, जय कन्हैया लाल की! और साधो, केरल में मलयाली फिल्मों के हीरो प्रेम नज़ीर राजनीति में आ रहे हैं।

साधो, दिशाहीन और विचारधाराहीन और सिद्धांतहीन राजनीति जिंदगीभर करने के कारण ये बूढ़े नेता इस सद्गति को प्राप्त हुए हैं कि कल राजनीति में आए फिल्मी हीरो इन्हें बंदर की तरह नचाते हैं।

साधो, हमारे अखाड़े के साधु रामाराव को याद रखना चाहिए कि उन्होंने वादे किए थे। दो रुपया किलो चावल देने का वादा किया था, गरीबों की दशा सुधारने का वादा किया था, भ्रष्टाचार खत्म करने का वादा किया था, जरूरी चीजें सस्ती करने का वादा किया था। फिल्मी हीरो भगवान के प्रति भावुकता का दौर खत्म हुआ। अब जिंदगी के ठोस यथार्थ से सामना है।

ये जिंदगी की उलझनें हैं मेरी जान
तेरी जुल्फों के पेचो-ख़म नहीं हैं।

शिक्षक सम्मान से इनकार करें

साधो, एक भाई ने बताया—मेरे पड़ोस में एक रिटायर्ड शिक्षक रहते हैं। 5 सितंबर को मैंने देखा वे एक हाथ में माला और दूसरे में नारियल लिये चले आ रहे हैं। कपाल पर लाल तिलक भी है। वे मजे के विनोदी स्वभाव के बुजुर्ग हैं। मैंने पूछा—कहाँ से आ रहे हैं पंडितजी ? उन्होंने कहा—आज नागपंचमी है न? कुश्ती जीतकर आ रहे हैं। मैंने कहा—नागपंचमी तो पिछले महीने हो गई, पंडितजी। आज तो पाँच सितंबर है, 'शिक्षक दिवस'। पंडितजी हँसकर बोले—वही शिक्षक कुश्ती जीतकर आ रहा हूँ। रोटरी क्लब में सम्मान कराके आ रहा हूँ। देखो, साल-भर साँप दिखे तो उसे भगाते हैं। मारते हैं। मगर नागपंचमी को साँप की तलाश होती है, दूध पिलाने और पूजा करने के लिए। साँप की तरह ही शिक्षक दिवस पर रिटायर्ड शिक्षक की तलाश होती है, सम्मान करने के लिए।

साधो, वे दोनों शाम को बात करते-करते मेरे पास आ गए। बुजुर्ग शिक्षक बोले जा रहे थे—तो हम शिक्षक-दिवस के नाग-देवता हैं। पहली सितंबर से हमारी तलाश शुरू हो जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। कितनी संस्थाएँ हैं, शिक्षक का सम्मान करनेवाली—रोटरी क्लब, रोटरेक्ट क्लब, लायंस क्लब, लायनेस क्लब (शेरनियों का)। कई चैम्बर हैं—चैम्बर ऑफ कामर्स, जूनियर चैम्बर, जेसीज़, वस्त्र-विक्रेता संघ—25-30 संस्थाएँ हैं बड़े आदमियों की। 5 सितंबर आते-आते इन पर शिक्षक की गरिमा सवार हो जाती है। वैसे इन्हें बीच में मानवीयता के 'फिट्स' आते रहते हैं, जब ये गरीबों के लिए मुफ्त 'आई कैम्प' खोलते हैं, बस स्टेशन पर प्याऊ खुलवाते हैं, अनाथालय के बच्चों को मिठाई बाँटते हैं। ये रोटरी, लायंसवाले अच्छे ही लोग हैं। व्यापारी, बड़े वकील, बड़े ठेकेदार, अफसर, बड़े डॉक्टर। इन्हें धंधा बढ़ाना होता है। प्रतिष्ठा बढ़ानी होती है। साथ ही समाज के हितकारी की छवि बढ़ानी होती है। ये देखते रहते हैं कि कौन-सा शेयर मार्केट में कब चलता है। वह शेयर ये ले लेते हैं। ये समझते हैं कि देश में 5 सितंबर को शिक्षक का सम्मान करने का फैशन चल पड़ा है। राष्ट्रपति शिक्षकों को सम्मानित करते हैं, तो ये भी सोचते हैं कि यह कार्यक्रम अच्छा रहेगा। अखबारों में समाचार छपेगा। लोग जानेंगे कि हम सिर्फ पैसा पीटनेवाले लोग नहीं हैं। हम गुरु की महिमा जानते हैं और उसका सम्मान भी करते हैं। अब आप समझ लीजिए कि अगर डाकुओं का इसी तरह शान से आत्मसमर्पण होता रहा और ऐसी ही गरिमापूर्ण फिल्में बनती गईं, तो आगे चलकर डाकू-सम्राट मानसिंह का जन्म-दिन 'दस्यु दिवस' के रूप में मनाया जाएगा। मानसिंह अपने क्षेत्र में डॉ. राधाकृष्णन से कम योग्य और सम्मानित नहीं था। फिर एक 'मिलावटी दिवस' होगा, 'कालाबाजारी दिवस' होगा, 'तस्करी-दिवस' होगा, 'घूसखोर-दिवस' होगा। ये चलेंगे। शिक्षक दिवस तो इसलिए चल रहा है जबरदस्ती कि डॉ. राधाकृष्णन राष्ट्रपति रहे। अगर वे सिर्फ महान् अध्यापक मात्र रहते, तो शिक्षक-दिवस नहीं मनाया जाता।

साधो, ये रिटायर्ड गुरुजी काफी मुँहफट किस्म के आदमी हैं। रोटरीवालों ने गलत नाग बुला लिया था—ऐसा नाग जिसके दाँत हैं और जहर भी है। इन गुरुजी ने कहा—भैया, वे बड़े-बड़े रोटेरियन जिस तरह मेरा बढ़-चढ़कर सम्मान कर रहे थे, उसी से मुझे समझ में आ रहा था कि ये मुझे बहुत तुच्छ समझते हैं। पर एक तुच्छ का सम्मान करना जरूरी था, क्योंकि उन्हें एक सफल कार्यक्रम करना था। सफल कार्यक्रम तो बंदर का खेल दिखाना भी होता है—जिसमें बंदर लाठी लेकर ससुराल अपनी दुलहन बंदरिया को लेने जाता है। बंदर के बंदरिया दुलहन लाने और शिक्षक के सम्मान में कोई फर्क नहीं है। न कोई बंदर की शादी को गंभीरता से लेता है और न शिक्षक को। दोनों ही खेल हैं। बंदर, बंदर ही है। और गुरु वही दो कौड़ी का 'मास्टर-वास्टर' है।

साधो, हमने पूछा—तो गुरुजी, आपने सम्मान के जवाब में भाषण दिया होगा ? क्या बोले आप? गुरुजी ने कहा कि मैं तो घोर त्रास में था। मुझे रोटरी क्लब के उन कीमती गुड्डे-गुड्डियों पर हँसी भी आ रही थी। मैं नौकरी में था, तब भी साफ बोल देता था। बदनाम था। अब तो कोई मेरी नौकरी भी नहीं ले सकता। मैंने कहा—मैं सम्मान के लायक नहीं हूँ। मैंने किसी पीढ़ी का निर्माण नहीं किया। मैं राष्ट्र-निर्माण नहीं कर सका क्योंकि राष्ट्र को नष्ट करनेवाले मुझसे ज्यादा ताकतवर हैं। मैं अपने छात्रों का चरित्र-निर्माण भी नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर सका। मैं कई अपने प्रिय छात्रों को जानता हूँ, जो दो नंबरी धंधेवाले हैं, या घूसखोर सरकारी कर्मचारी हैं। मेरे सब छात्र चरित्रहीन और भ्रष्ट निकले। जिस व्यवस्था में बेईमानी उत्तम गुण मान लिया गया हो, उसमें आचार्य बृहस्पति भी किसी को ईमानदार नहीं बना सकते। आप बड़े-बड़े लोग भी ईमानदार कतई न बनें। अगर ईमानदार बन गए तो धंधा चौपट हो जाएगा, प्रैक्टिस कम हो जाएगी। घूस का धन चला जाएगा। ईमानदारी और चरित्र की इस व्यवस्था में कोई जरूरत नहीं है।

साधो, गुरुजी अपना रोटरी क्लब का भाषण सुनाए जा रहे थे—कहा, यह झूठ है कि आप लोग शिक्षक का सम्मान करते हैं। आप एक पर्व का निर्वाह कर रहे हैं। मुझे रिटायर हुए दो साल हो गए, पर मुझे अभी तक पेंशन मिलना शुरू नहीं हुआ। उसमें घूस देनी पड़ती है दफ्तर में। मेरे सम्मान-अम्मान को आप लोग जाने दें भाड़ में। आप बड़े-बड़े लोग दबाव डालकर मेरी पेंशन चालू करा दें। वे मेरे दाहिने तरफ शिक्षा विभाग के ऊँचे अफसर बैठे हैं। इन्होंने मुझे तिलक किया है, मगर इन्हीं के दफ्तर से मेरी पेंशन का आदेश जारी नहीं हुआ अभी तक!

साधो, गुरुदेव ने कहा—वहाँ सन्नाटा छा गया। उन अफसर ने नीचा माथा कर लिया। मैंने कहा—हमारी क्या प्रतिष्ठा है? एक बार अफसर आकर तीन दिन शहर में ठहर गए। उनके साथ 4-5 आदमी और थे। हम शिक्षकों को चंदा करके उनके तथा उनके चमचों के लिए मुर्गा और शराब का इंतजाम करना पड़ा। यह गुरु की महिमा है। गुरु अब वह काम का है जो ट्यूशन करे, पेपर आउट कराए, नकल कराए और नंबर बढ़ाए। आप लोग इन्कमटैक्स और सेल्सटैक्स के क्लर्क का सम्मान दिवस मनाया कीजिए। अध्यापकों का नहीं। हमारा क्या दम है? प्राइवेट स्कूलों के मालिक शिक्षक का आधा वेतन खाते रहे हैं, और हम उनमें से एक की भी हत्या नहीं कर सके इतने सालों में।

साधो, इन गुरुजी का कहना है कि 5 सितंबर शिक्षकों का अपमान दिवस है। झूठ है। पाखंड है। गरीब अध्यापक का उपहास है। प्रहसन है। वेतन ठीक नहीं देंगे। सुभीते नहीं देंगे। सम्मान करके उल्लू बनाएँगे। यह शिक्षक दिवस उपहास दिवस है। इस देश के शिक्षकों को 5 सितंबर को सम्मान कराने से इनकार कर देना चाहिए। लोग बुलाएँ तो शिक्षक कह दें—हमें अपना सम्मान नहीं कराना। आप जबरदस्ती करेंगे तो हम पुलिस में रिपोर्ट करेंगे।

राखीबंध राजनीति

साधो, चरणसिंह के लोकदल और बाला साहब देवरस की भारतीय जनता पार्टी की दोस्ती करेला और नीम की दोस्ती है। संघ-वानर-वृत्ति के ऊपर चरणसिंह की जाट-जड़ता और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तर्कहीन ज़िद चढ़ गई है—नतीजा यह है कि ग्वालियर में सिंधिया राज परिवार के जयविलास पैलेस के अहाते में मध्यप्रदेश भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष और 'अभूतपूर्व' जनता पार्टी-मुख्यमंत्री कैलाश जोशी अनिश्चितकालीन अनशन पर बैठे हैं। आज चौथा दिन है, और मुसम्मी का रस पिलानेवाला कोई मिल नहीं रहा है। पहले दिन ही जनता पार्टी ने खबर उड़ा दी कि कैलाश जोशी का वजन चार पौंड घट गया। मुझे डॉक्टरों ने बताया कि चौबीस घंटे कुछ न खाने से वजन बिलकुल नहीं घटता। आज चौथा दिन है। आज कृष्ण की जन्माष्टमी है। मंदिरों में भजन-पूजन हो रहे हैं, मिठाई बँट रही है, पँजीरी खाई जा रही है। मेरा कोमल हृदय भर-भर आता है कि इसी समय कैलाश जोशी जयविलास पैलेस में भूखे बैठे हैं। उन्हें चोरी से मिठाई भी नहीं खिला सकते। कोई उन्हें मुसम्मी का रस पिला नहीं रहा है। एक बड़ी मुसीबत यह है कि उन्हें विजयाराजे सिंधिया ने राखी बाँध दी है। यानी—हे मेरे वीर भैया, तू प्राण देकर भी मेरी प्रापर्टी की रक्षा करना। राखी की लाज रखना। मैं आर्य नारी हूँ। मेरा लड़का अत्याचारी यवन हो गया है।

साधो, इस मुसीबत में कैलाश जोशी पड़ गए हैं। अर्जुनसिंह ने उनके इस पवित्र वीर-कर्म को 'हास्यास्पद' कह दिया है। मगर किसी भी क्षण कैलाश जोशी का अनशन टूट जाएगा। अभी, जब मैं यह लिख रहा हूँ तभी शायद वे मुसम्मी का रस पी रहे हों। या रात को पी लें। या कल अनशन टूट जाए। कोई और आग्रह करनेवाला नहीं मिलेगा, तो पार्टी के लोगों के आग्रह का नाटक करके उन्हें रस पिला दिया जाएगा। किसी भी हालत में जब तुम यह पढ़ रहे होगे, कैलाश जोशी का अनशन टूट गया होगा। वे भोजन कर रहे होंगे।

साधो, तुम कहोगे कि गुरु, जब कैलाश जोशी का अनशन खत्म ही हो रहा है, तब तुम इस बीती बात पर क्यों बोले जा रहे हो? वह कांड खत्म हो गया। उसे छोड़ो। साधो, माना कि अनशन खत्म हो गया। एक घटना हो चुकी। मगर अब यह बात इतिहास हो गई। मुझे इतिहास भी तो लिखना चाहिए। फिर कांड खत्म नहीं हुआ। यह तो 'बालकांड' हुआ है—'ठुमुक चलत रामचंद्र बाजत पैजनियाँ' वाला। आगे अयोध्याकांड को गोल करके भारतीय जनता पार्टी सितंबर में 'किष्किंधाकांड' करनेवाली है—वानरों का कांड। पुलिस थानों, कचहरियों में आंदोलन के नाम पर वानर-लीला। उसे 'लंकाकांड' की यानी आगामी चुनाव की तैयारी करनी है। इसलिए मैं इस लगातार चलनेवाले कांडों के पहले अध्याय पर लिख रहा हूँ।

साधो, कैलाश जोशी एक सीधे बेचारे संघी हैं। 1977 में जब वे मुख्यमंत्री थे, तब भी बेचारे ही थे। वीरेंद्र कुमार सकलेचा और कुशाभाऊ ठाकरे उनके पीछे दैत्य की तरह पड़े थे कि इस्तीफा दे दो। बेचारे जोशी दो-दो दिन बेहोश पड़े रहते थे। उन्हें इतनी धमकियाँ संघी नेताओं ने दीं कि उन्होंने पद-त्याग कर दिया। तब वीरेंद्रकुमार सकलेचा मुख्यमंत्री हुए जिन्होंने भ्रष्टाचार में अंतर्राष्ट्रीय यश पाया और 'गिनेस बुक ऑफ रिकार्ड्स' में उनका नाम आ गया होगा। कहते हैं—कैलाश जोशी को संघ के बड़े नेताओं ने इसलिए निकाला कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
वे ईमानदार हैं। ईमानदार आदमी जनसंघ के लिए बेकार है। मुख्यमंत्री ऐसा हो जो खुद भी खाए और पार्टी तथा नागपुर के कोष में भी डालता जाय ! तो साधो, इन सीधे कैलाश जोशी को खुर्राट संघी नेता चाहे जहाँ उलझा देते हैं।

साधो, बात दुख की है और हँसी की भी। जो विजयाराजे सिंधिया विश्व के हिंदुओं का कल्याण का जिम्मा ले रही हैं, उन्हें अपने बेटे से ही प्रापर्टी का झगड़ा गुंडा स्तर से लेकर अदालत और पार्टी स्तर तक लड़ना पड़ रहा है। भारतीय संस्कृति हम संघवालों से ही सीखते हैं। केवल वही इस संस्कृति से प्रेरित पवित्र लोग हैं। ग्वालियर में जो हो रहा है, वही अगर भारतीय संस्कृति की परिणति है, तो इन्हें सौ बार प्रणाम! आज कृष्ण जन्माष्टमी है। यशोदा कृष्ण की सगी माँ नहीं थी, मगर कृष्ण को बेटे से ज्यादा प्यार करती थी। माखन-मिसरी खिलाती थी। और इधर ग्वालियर में सगी माँ बेटे से माखन-मिसरी के लिए छीन-झपट कर रही है। सूरदास देख लें। और बेचारे कैलाश जोशी बिलकुल बाल-लीला कर रहे हैं—मैया मोरी मैं नहिं माखन खायो। ग्वाल बाल सब बैर पड़े हैं, बरबस मुख लपटायो। कैलाश जोशी को यशोदा और पूतना में फर्क मालूम है या नहीं, पता नहीं।

साधो, जब प्रापर्टी का मामला अदालत में हो, जिला मजिस्ट्रेट ने कुछ महल सील कर दिए हों, मुकदमे चल रहे हों, दावेदार जमानत पर हो, तब जनता पार्टी के अध्यक्ष वहाँ राखी बँधाकर अनशन पर बैठे हैं। विजयाराजे सिंधिया उच्च न्यायालय जाएँ, सर्वोच्च न्यायालय जाएँ। उनकी हैसियत है। कहते हैं—विजयाराजे की तरफ से अन्याय के खिलाफ लड़ रहे हैं। मगर माधवराव का कहना है कि अन्याय मेरी माँ कर रही है जो प्रापर्टी सरदार आंग्रे और संघ को खिला रही है।

साधो, क्या अटलबिहारी वाजपेयी की सलाह से भारतीय जनता पार्टी यह जादू का खेल कर रही है? अगर ऐसा ही है तो चरणसिंह पहले ही चुंबन में अटलबिहारी की अक्ल को चाट गए। साधो, यह नाटक जो जनता को प्रभावित करने के लिए किया जा रहा है, उस पर जनता हँस रही है। जिस पर जनता हँसती है उसे अगर वोट देती होती, तो दुनिया में कई जोकर प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति हो जाते।

साधो, सितंबर में यह पार्टी सघन आंदोलन करेगी—अकालियों से सीखकर। थाने घेरेगी, ब्लाक आफिस घेरेगी, दफ्तर घेरेगी। क्यों घेरेगी?—अराजकता है, भ्रष्टाचार है, जन-जीवन सुरक्षित नहीं है। बहुत अच्छी बात है। मगर अपराधियों को संरक्षण सबसे ज्यादा यह पार्टी देती है। जिस थाने में ये नेता अपने चेलों को छुड़वाने जाते हैं, उस थाने का घेराव ये कैसे करेंगे? भ्रष्टाचार अगर सरकार में है, तो पहले उन अफसरों, कर्मचारियों का भ्रष्टाचार छुड़वाओ, जो संघ में रहे हैं। मगर वे भ्रष्टाचार छोड़ेंगे नहीं, क्योंकि उनमें भारतीय संस्कृति भरी हुई है और उनका चरित्र-निर्माण हो चुका है। इसलिए दूसरों को सदाचारी बनाएँगे।

साधो, हम समझते हैं कि ये सब आंदोलन जनवरी में चुनावों के अंदाज से हो रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। मगर मेरा कहना है कि जनवरी में चुनाव नहीं हुए तो? उत्तेजना के फुग्गे की हवा निकल जाएगी। फिर आगे इन सिकुड़े हुए कार्यकर्ता-फुग्गों में हवा भरना कठिन होगा। इसलिए अति मत करो। चुनाव 1985 में ही होंगे।

साधो, कृष्ण की झाँकियाँ सामने से निकल रही हैं। उधर बहन विजयाराजे की राखी से बँधे भूखे कैलाश जोशी ग्वालियर में बैठे हैं। तुम भगवान कृष्ण से प्रार्थना करो कि किसी को प्रेरित करके जोशीजी के मुँह में माखन-मिसरी डलवाएँ!

लोकनायकजी, दिल्ली मत जाना

मुझे आपकी चिंता है। वे जनता पार्टी के लोग आपको ठेलकर दिल्ली ले जाना चाहते हैं कि आप पार्टी में एका करा दें। इनका हाल यह है जैसे चार भाई आपस में प्रापर्टी के लिए मारपीट करें और फिर मुहल्ले के सयानों के पास जाकर कहें—भैयाजी, आप हम लोगों को एक करा दो न। कोई एका नहीं कराएगा तो हम लड़ते ही रहेंगे। किसी के समझौता कराए बिना हममें एका हो ही नहीं सकता। पर आप हरिजन दिल्ली मत जाइए। ये लोग तो महात्मा गांधी के पास भी गए पर गांधीजी ने कह दिया कि मैं तुम्हारे झगड़े में हाथ नहीं डालूँगा। तुम लोग राजघाट पर ली गई शपथ का रिकार्ड सुनते रहो। ये लोग तो भगवान के पास भी गए थे और कहा था—प्रभु, अब आपका ही भरोसा है। आप एकता कराइए। दुष्टों का दमन कीजिए और साधुओं की रक्षा कीजिए। पर भगवान ने इन्हें यह कहकर भगा दिया कि साधु कौन है और दुष्ट कौन, अभी यही साफ नहीं है। लोकनायकजी, मैं जो 'परलोकघातक' माना जाता हूँ, पर ये मेरे पास भी अपना एका कराने आए थे। मैंने कह दिया—न मैं एकता कराऊँगा, न लोकनायक कराएँगे। लोकनायक कदमकुआँ पटना में डायलिसिस ले रहे हैं और मैं नेपियर टाउन, जबलपुर में अपनी चोटखाई टाँग की सिंकाई और मालिश करवा रहा हूँ। हम दोनों को फुरसत नहीं है।

लोकनायकजी, जनता-नौटंकी का मजा आप भी लीजिए। आप बहुत सीरियस हैं। जरा हँसा कीजिए। आपने ऐसी नौटंकी नहीं देखी होगी, जिसमें सभी विदूषक हों। समझ में नहीं आता, किसके करतब पर हँसें। मोरारजी भाई का रोल कमाल का है। उत्तरप्रदेश विधानसभा में घूँसे चल जाते हैं तो वे कहते हैं—यह पार्टी के भीतर का लोकतंत्र है। यों पार्टी एक है। किसी दिन दिल्ली में संसद के बाहर सड़क पर बड़े नेताओं में आपस में जूते चलेंगे तो मोरारजी खुश होकर कहेंगे—हाँ, अब पार्टी का लोकतंत्र चरमबिंदु पर है। ये जूते जो चल रहे हैं, वे परस्पर उछाले जानेवाले विचार हैं। विरोधी इन्हें जूते कहते हैं। पार्टी तो एक है। मध्यप्रदेश में जनसंघी कहते हैं कि इन समाजवादियों के हम अब हाथ-पाँव तोड़ेंगे। हरियाणा में देवीलाल पार्टी विधायकों का विश्वास प्राप्त कर रहे होते हैं और बाहर विरोधियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
को मारने के लिए देवीलाल के वीर एकत्र होते हैं। तब पुलिस उनके हाथ-पाँव बचाती है। राजनारायण लखनऊ जाकर रामनरेश से कहते हैं—इस सत्यप्रकाश मालवीय को डिसमिस कर दो। रामनरेश पूछते हैं—क्या हाईकमान ने कहा है? राजनारायण कहते हैं—हाईकमान ने नहीं, अपने ज्योतिषी व तांत्रिक ने कहा है। सत्यप्रकाश को डिसमिस कर देगा तो उत्तरप्रदेश के तीनों चुनाव जीत जाएगा। उधर सत्यप्रकाश मालवीय के लोग कहते हैं—हम कांग्रेस का सहयोग लेकर भी रामनरेश यादव को हटाएँगे।

बड़ा मजा आ रहा है। लौहपुरुष चौधरी चरणसिंह इस एक साल में सात बार इस्तीफे की धमकी दे चुके हैं। इन दिनों उनके शुभचिंतक कह रहे हैं—चौधरी साहब को दिल की बीमारी है। सेहत अच्छी नहीं रहती। गृहविभाग बहुत भारी पड़ता है। कोई हल्का विभाग दे दिया जाय। इस पर चरणसिंह आँखें निकालकर कहते हैं—गृहविभाग से बड़ा विभाग नहीं दिया जा सकता, इसी गम में तो दिल का दौरा पड़ा। प्रधानमंत्री के पद का बोझ होता तो दिल का दौरा नहीं पड़ता। अब तो इलाज से दिल पक्का हो गया। अटलबिहारी उत्सुकता से आँखें फाड़े देख रहे हैं कि मेरे हाथ में क्या आया। चतुर साहब जगजीवनराम मुस्कुराते हुए इधर भी देखते हैं और उधर भी।

अब तो ऐसा हो रहा है कि नेता लोग अलग-अलग मुँह धोकर उजला कर रहे हैं। अगर पार्टी टूटी तो या पार्टी से निकले तो पब्लिक के सामने अपना मुँह उजला होगा और बाकी का काला। पार्टी नहीं टूटी, तब भी सब काले मुँहों के बीच अपना उजला मुँह चमकना चाहिए। चरणसिंह ने अपने इस्तीफे के पत्र में लिख ही दिया है कि पार्टी के नेताओं में आदर्श, सिद्धांतवादिता और ईमानदारी का अभाव है। याने कि लोगो, मेरा मुँह उजला है, बाकी सबके काले हैं। अटलबिहारी कहते हैं कि मैं तो खुद जनता पार्टी के काम से दुखी हूँ और सरकार से इस्तीफा देने की इच्छा प्रकट कर चुका हूँ। साधु तो कंबल को छोड़ना चाहता है, पर कंबल ही साधु को नहीं छोड़ता। अटलबिहारी ने अपना मुँह अलग से उजला कर लिया। ये सारे नेता पार्टी के चेहरे पर ब्रुश से काला रंग पोतते हैं। इसमें एकता है। फिर अपने-अपने मुँह धोकर उजले कर लेते हैं।

आप परेशान हैं। ये नेता कुएँ के पाट पर खड़े हैं और एक-दूसरे को, नजर बचा कुएँ में ढकेलने के इरादे में हैं। जो जरा-सा भी असावधान हुआ, वह ढकेल दिया जाएगा। इतने में हल्ला होता है कि कोई सबको एक साथ ढकेलने आ रहा है। तो ये कसकर एक-दूसरे का हाथ पकड़ लेते हैं और चिल्लाते हैं—खबरदार, हम एक हैं। सत्ता का एक भूत बंगला है। कहीं से इन्हें यह भूत बंगला मिल गया है। अब हर एक को पड़ी है कि इसके हिस्से पर कब्जा कर ले। कौन कितना सामान झपट ले। तो कोई किसी कमरे में अपना ताला लगाता है, कोई पेटी छिपाता है, कोई सोफा गायब करता है।

इन्हीं को करने दें। आप हरगिज दिल्ली न जाएँ। ये पाँच साल पूरे कर लेंगे। हो सके तो अपने चंद्रशेखर वगैरह और समाजवादियों को बचाएँ।

संपूर्ण क्रांति अच्छी चल रही है। हत्या, डकैती, अपहरण वगैरह की शिकायत पुलिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अफसरों से लोग करते हैं तो वे जवाब देते हैं—होने दीजिए। संपूर्ण क्रांति हो रही है। अभी एक चौराहे पर दो गुटों में जमकर लाठियाँ चलीं, होटलों के काँच फूटे, राहगीर पिटे। पुलिस अफसर कहते हैं—कुछ नहीं। दस-बारह लोग होटल से निकले तो दूसरे गुट ने उन पर हमला कर दिया। देखते-ही-देखते वहाँ संपूर्ण क्रांति होने लगी। इसमें पुलिस भी क्या करे?

आपं देख रहे हैं, हर स्तर पर संपूर्ण क्रांति हो रही है।

तबियत आपकी ठीक होगी। आप एका कराने दिल्ली मत जाइए। ये लोग कह देंगे कि आप फूट डालने आए थे।

जनरल जिया-उल-हक के नाम

जनरल साहब,

बड़ा मजा है। दोनों तरफ मजा है। इधर भी जिया है और उधर भी जिया है। अपने-अपने को राष्ट्रपति बना लिया, खुद ही अपने 'लिफ्ट' हो गए। उधर पूरब के जिया ने भी अपने को राष्ट्रपति बना लिया। अब आप दोनों के लिए एक ही ओहदा बचा है—खुदा का। किसी दिन आप ऐलान कर दें कि अब खुदा ने भी इलाही चौधरी की तरह इस्तीफा दे दिया है, इसलिए मैंने खुदा का काम भी सँभाल लिया। जब कुछ नहीं रहेगा तब भी खुदा रहेगा। तो आपके उखड़ने का सवाल ही नहीं उठता। 'मिटाया मुझको होनी ने'—आप पर लागू नहीं होता। अगर कभी पाकिस्तान नहीं रहेगा, तब भी आप खुदा तो रहेंगे ही।

जनरल साहब, इस्लामी राज्य बना लेने के दो बड़े फायदे हैं। एक तो देश के भीतर जनतांत्रिक और प्रगतिशील माँगों को दबाने में सुभीता होता है। जनता ने माँग की है कि हमें नागरिक अधिकार दो। तो आप जवाब देंगे—अरे यह माँग तो इस्लाम के खिलाफ है। उलेमा, मौलवियो, जरा समझाओ इन काफिरों को। मजदूरों ने माँग की—हमें अपने हक चाहिए। हमारी मजदूरी बढ़ाओ। तो शाह या तानाशाह चिल्लाए—लाहौल वला कूवत, यह क्या माँग है। अरे, इस्लाम में कहीं मजदूरों के हक भी होते हैं। उलेमा, मौलवियो, निपटो इन कम्युनिस्टों के भड़काए हुओं से। जनता ने माँग की कि चुनाव कराओ, लोकतंत्र की स्थापना करो, तो तानाशाह कहेगा—तौबा! तौबा!! चुनाव, एसेम्बली कानून! अरे, कानून तो एक बार खुदा ने बना दिए। इंसान को कोई हक नहीं है कानून बनाने का। मुल्ला-मौलवियो, जरा इन वहशियों की अक्ल ठीक करो। जनता के असंतोष का शर्तिया इलाज है मजहब का एनेस्थीसिया और मुल्ला-मौलवियों की सर्जरी। मगर जमाना खराब आ गया है। मुल्ला-मौलवी भी धोखा देने लगे। ईरान में देखिए। मुल्ला-मौलवी कम्युनिस्टों के साथ मिलकर शाह की फजीहत कर रहे हैं। आगे यह होगा कि शाह अखबारों में इश्तिहार छपाएँगे कि एक प्रधानमंत्री की जरूरत है, मगर कोई दरख्वास्त नहीं देगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस्लाम का दूसरा बाहरी फायदा है। सऊदी अरब-जैसे तेल के धनी देश इस्लाम की जिम्मेदारी लिये बैठे हैं। आप चाहे जब सऊदी शाह के पास जाकर कह सकते हैं—गरीबपरवर, हथियार खरीदने के लिए पैसा दे दीजिए। इस्लाम खतरे में है। शाह कहेंगे—अगर इस्लाम खतरे में है तो जरूर पैसा ले जाओ। देखो, इस्लाम की पूरी हिफाजत करना। फिर कभी पहुँच जाइए और कहिए—अन्नदाता, शानो-शौकत के लिए पैसा कम पड़ रहा है। इस्लाम खतरे में है। कुछ पैसा दे दीजिए। शाह कहेंगे—इस्लाम खतरे में है तो पैसा ले जाओ। शानो-शौकत की कमी से इस्लाम को खतरा नहीं पहुँचना चाहिए।

ये तेल-शाह और तेल-शेख मजहब के बड़े पाबंद हैं। इनमें बहुत-से बंबई आते हैं। नमाज बराबर पाँच बार अदा करते हैं। मगर दारू पीते हैं और रंडीबाजी करते हैं। अरब-शाह समझते हैं कि इस्लामी जीवन-पद्धति का मतलब है बर्बर जीवन-पद्धति। ये एक लाख साल पुराने लोग हैं। मौत की सजा पत्थर मार-मारकर देंगे। उन्हें पता नहीं है कि ईसा को तो इसलिए सूली पर चढ़ाया था कि तब फाँसी देना नहीं आता था। अब बिजली की कुर्सी, गैस चैम्बर जैसे फाँसी के साधन होते हुए भी ये पत्थर मारकर मौत की सजा देते हैं। इस्लाम का मतलब ये यह भी समझते हैं कि औरत को गुलाम रखा जाए। वह पर्दे और बुर्के में रहे। प्रेसीडेंट कार्टर जब सऊदी अरब गए थे, तब उनकी बीवी रोजलिन को अपने शौहर से दस कदम पीछे चलना पड़ा था। गनीमत है कि रोजलिन को हवाई जहाज से उतरते ही बुरका नहीं ओढ़ा दिया गया। फिर भोज में रोजलिन सबके साथ नहीं बैठ सकी। औरत मर्द के साथ बैठकर खाना खाने लगे तो इस्लाम का क्या होगा। रोजलिन ने पर्दे में शाहजादियों के साथ खाना खाया। अमेरिका में लोगों ने हल्ला किया कि यह अमेरिकी स्त्री का अपमान है। यह 'मानव अधिकार' का हनन है। पर कार्टर बेचारे क्या करते? अगर वे वहाँ मानव अधिकार और स्त्री की प्रतिष्ठा पर जोर देते तो शाह तेल की कीमत बढ़ा देते। सस्ता तेल बड़ा कि मानव अधिकार?

जनरल साहब, आप लोग किन-किन चीजों को मजहब मान लेते हैं। जिन मुल्कों में भरपूर पानी है वहाँ भी टोंटीवाले लोटे को इस्लाम मानते हैं, जिससे चार बूँद में वजू हो जाती है। आप भी कोड़ा मारने और हाथ काटने को इस्लाम मानते हैं। आप उस किस्म के आदमी हैं जिसे 'किलजाय' कहते हैं। आप शराब नहीं पीते। सिगरेट भी आपने छोड़ दी है। एक प्रेसीडेंट अयूब थे। प्रेसीडेंट याहिया खाँ थे, जिन्होंने मालिश के लिए यूरोप की परियाँ रखी थीं और एक आप हैं।

जनरल साहब, आपने टेलीविजन पर औरतों का नाचना बंद करवा दिया है। गले तक का कमीज पहनने की हिदायत दी है। बहुत अच्छा है। आगे फिल्में कैसी बनेंगी ? आप हुक्म देंगे कि फिल्मों में हीरोइन बुरका ओढ़े। औरत से मुहब्बत न हो, बुरके से हो। अब फिल्म में मुहब्बत का सीन इस तरह होगा। आशिक गली के नुक्कड़ पर खड़ा है। एक बुरका माशूका के घर से निकला। आशिक समझा, यह मेरी प्यारी नज़्मा है। वह पास आकर प्यार से कहता है—नज़्मा! तभी बुरके से मुँह निकालकर बुढ़िया कहती है—मैं नज़्मा नहीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी माँ हूँ। क्या काम है नज़मा से। सकपकाया हुआ आशिक कहता है—कुछ नहीं अम्मीजान, नज़मा से केमिस्ट्री की किताब लेनी थी। अम्मीजान कहेगी—हरामी के मैं ही तेरी पूरी पढ़ाई कराए देती हूँ! ले। और आशिक को बुढ़िया की चप्पल पड़ जाएगी।

तो जनरल साहब, ऐसे इश्क का चलन पाकिस्तान में मत डालिए। जिंदगी बे-मजा मत कीजिए। आपने शराब बंद कर दी है, तो यहाँ भारत से स्मगल करके लाना पड़ता है। आप बुर्का लगा देंगे तो आसपास के मुल्कों से इश्क भी स्मगल होगा।

एक डॉक्टरेट की कथा

जनवरी 1980 में दिल्ली में इंदिरा कांग्रेस सरकार बनते ही सागर विश्वविद्यालय कोर्ट के बुद्धिमानों को ऐसा बोध हो गया कि संजय गांधी की साहित्य-साधना इतनी ऊँची हो चुकी है कि उन्हें डॉक्टर ऑफ लिटरेचर की मानद उपाधि दे देनी चाहिए। संजय को डी.लिट्. अभी तक न देकर भारतीय विश्वविद्यालय वही पाप कर रहे हैं जो नोबेल पुरस्कार समिति ने ताल्सताय को पुरस्कार न देकर किया था। इन बुद्धिमानों ने कोर्ट की मीटिंग में यह प्रस्ताव रख दिया।

विश्वविद्यालय कोर्ट में ऐसे लोग भी हैं जो यह मानते हैं कि बाला साहब देवरस की साहित्य-साधना इतनी ऊँची चढ़ चुकी है कि उन्हें डॉक्टर ऑफ लिटरेचर की मानद उपाधि देनी चाहिए। उन्हें डी.लिट्. न देकर विश्वविद्यालय वही पाप कर रहे हैं जो नोबेल पुरस्कार समिति ने पाब्लो नेरूदा को पुरस्कार देने में देरी करके किया था। लिहाजा इन लोगों ने कोर्ट में प्रस्ताव रख दिया कि बाला साहब देवरस को डी.लिट्. की उपाधि दी जाए।

अब बुद्धिमानों के दोनों गुटों में वहीं झगड़ा होने लगा। एक गुट चिल्लाता—संजय गांधी अयोग्य हैं। दूसरा गुट चिल्लाता—बाला साहब देवरस अयोग्य हैं। एक तरफ कांग्रेसी तो दूसरी तरफ संघी।

यहाँ फिर संघ, कांग्रेस कूटनीति और तत्परता में हार गया। तीन साल तक भोपाल में संघ की सरकार रही। इस अवधि में सारे बुद्धिमान बाला साहब देवरस के भक्त हो गए थे। इन तीन सालों में राज्य के सात विश्वविद्यालयों से बाला साहब को डॉक्टरेट दिलाई जा सकती थी। इन तीन सालों में जहाँ-जहाँ कुलपति का पद खाली हुआ वहाँ चड्डीवाला विद्वान ही कुलपति बनाया गया। मगर संघ चूक गया। अब जब देवरसजी के भक्त विद्वान देवता बदलकर संजय के भक्त हो चुके हैं, देवरसजी का नाम प्रस्तावित करना कूटनीतिक भूल थी। विश्वविद्यालय में विद्यार्थी परिषद का काम करनेवाले आचार्य अब युवक कांग्रेस का काम करने लगे थे। कोर्ट में इन आचार्यों के सिवा ग़ैर-आचार्य चुने हुए सदस्य भी होते हैं। इनमें राजनीतिक पार्टियों के लोग, वकील, डॉक्टर, बनिये, तस्कर और गुंडे होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये भी अधिकांश संजय-समर्थक हो गए थे।

लिहाजा मई में कोर्ट की मीटिंग में सर्वसम्मति से तय किया गया कि संजय गांधी को डॉक्टर ऑफ लिटरेचर की उपाधि दी जाय। एक आचार्य फौरन दिल्ली चले गए संजय को 'लिटरेचर' का अर्थ समझाने और हिज्जे बताने।

यों तो दुनिया-भर में नेताओं, समाजसेवकों, मंत्रियों, प्रधानमंत्रियों आदि को सम्मानित करने की विश्वविद्यालयों में प्रथा है। पर इन्हें एल.एल.डी. यानी डॉक्टर ऑफ लॉ की उपाधि दी जाती है, लिटरेचर की नहीं। डी.लिट्. की उपाधि उन्हीं नेताओं को दी जाती है, जिन्होंने उच्चकोटि की पुस्तकें लिखी हों, जैसे जवाहरलाल नेहरू को।

वैसे जिस धड़ल्ले से ये थीसिसवाली और मानद डाक्टरेटें मिल रही हैं, उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं रह गई। डॉक्टरेट के सस्तेपन पर भदन्त आनन्द कोसल्यायन एक लतीफा सुनाते हैं–

फ्रांस में डॉक्टरेट बहुत सस्ती हो गई थी। कोई 500 फ्रेंक विश्वविद्यालय को भेज दे और मनचाहे विषय की डॉक्टरेट ले ले। एक रईस ने 8-10 विषयों की डॉक्टरेट ले ली। वह अपने घोड़े को बहुत प्यार करता था। उसने विश्वविद्यालय को 500 फ्रेंक भेजे और लिखा कि मेरे घोड़े डिक को भी एक डॉक्टरेट दे दी जाय। विश्वविद्यालय से जवाब आया–हम घोड़ों को डॉक्टरेट नहीं देते। सिर्फ गधों को देते हैं।

बहरहाल, अब साल-भर संजय को डॉक्टरेट लेने से फुरसत नहीं मिलेगी। खबर है, कोर्ट में किन्हीं सदस्यों ने कहा था–इस मामले को एकेडेमिक कौंसिल से आना चाहिए। इसका विरोध हुआ। एकेडेमिक कौंसिल में बात उठाई जाती तो योग्यता की तफसील होती। शिक्षा–नॉन मैट्रिक। साहित्य रचना–दस्तखत कर लेते हैं। अध्ययन–कॉमिक पढ़ते हैं।

लोग कहते हैं–विश्वविद्यालयों के ये बुद्धिजीवी क्या करते हैं। ये तो ऋषि हैं, शास्त्रकार हैं। सही बात यह है कि विश्वविद्यालय रक्षित-वन–सेंक्चुअरी हैं, इसमें गैंडे हैं, बारहसिंगे हैं, हिरन हैं, नीलगाय है, चीते भी हैं। शेर कहीं कोई एकाध होता है। सुअर भी हैं। कीचड़ में केंचुए भी हैं। हर एक को अपना-अपना भोजन मिल जाता है। चीते को गोश्त मिल जाता है, हिरन को घास और सुअर को उसका प्रिय भोजन। काम किसी जानवर को करना नहीं पड़ता। सब सुरक्षित भी हैं, क्योंकि यहाँ शिकार करना मना है। इन जानवरों में कभी-कभी आपस में सींग मारने का खेल होता है। सियार रात को 'एकमत' से 'हुआ-हुआ' बोलते हैं। बाकी चैन है। सारे जानवर उस अफसर की जय बोलते हैं, जिसके चार्ज में 'सेंक्चुअरी' है। अफसर बदलता है तो जानवरों को अपनी प्रतिभा से पता चल जाता है और वे नए अफसर की जय बोलते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रधानमंत्री के नाम

प्रिय मोरारजी भाई,

आप सोचेंगे कि यह पत्र गलती से आपको मैंने भेज दिया है। इसे तो इंदिरा गांधी को भेजना था। पर भाईजी, आप भी इमरजेंसी प्रधानमंत्री ही हैं। जनता पार्टी पर पैदा होते ही आपातकाल आ गया था। इससे निपटने के लिए ही आपको प्रधानमंत्री बनाया गया। आप संकटकालीन प्रधानमंत्री हैं। इसलिए आप इस तरह पद की शोभा बढ़ा रहे हैं कि लोग कहते हैं—मोरारजी भाई के सिवा बाकी सब मंत्री प्रधानमंत्री हैं। आप दीर्घजीवी हों और यह देश बिना प्रधानमंत्री के ही रहे।

भाईजी, अभी आपने उज्जैन में कालिदास समारोह का उद्‌घाटन भी कर डाला। कालिदास तो कवि थे—सौंदर्य, प्रेम, रस के कवि थे। पर आपने कालिदास से भी इंदिरा गांधी और उनकी इमरजेंसी की शिकायत कर दी। आपने अच्छा किया, कालिदास इंदिरा गांधी पर नाटक लिख देंगे और उनकी प्रतिष्ठा धूल में मिल जाएगी। भाईजी, मेरी सलाह है कि आप काव्य, संगीत, रूप आदि के चक्कर में न पड़ा करें। आप उस गायिका रूना लैला से भी मिल लिये। मैंने वह फोटो अखबार में देखा। वह सुंदरी आपसे दूर सहमी बैठी थी। उसे डर था, कहीं आप ताजा 'जीवनजल' पीकर न बैठे हों। आपने उससे जरूर कहा होगा कि गाना वगैरह अनैतिक हैं। संगीत से चरित्र भ्रष्ट होता है। ब्रह्मचर्य खंडित होता है। तुम अपना नाम लैला क्यों रखी हो? यह वही लैला है जो इश्क वगैरह किया करती थी। बड़ी गंदी बात है। तुम अपना नाम घसीटीबाई रख लो और इंदिरा गांधी की इमरजेंसी के खिलाफ चिल्लाया करो।

भाईजी, आपमें बड़ी तबदीली हुई है। आप अब हठ नहीं करते, किसी का बुरा नहीं मानते। कारण है कि आप बिना अनुयायियों के प्रधानमंत्री हैं। आप अद्‌भुत प्रधानमंत्री हैं, जो बिना अनुयायी के नेता हैं। आप किसी का बुरा नहीं मान सकते। कोई मंत्री आपको किसी पार्टी में शराब पीता दिख जाय तो उससे आप शिकायत जरूर करेंगे। पर वह कहेगा—अगर आपको शराब पर इतना ऐतराज है तो सोचना पड़ेगा कि प्रधानमंत्री किसे बनाएँ। तो भाईजी, आप फौरन कहेंगे—नहीं, नहीं, मेरा यह मतलब नहीं है। कभी पी लिया करो।

भाईजी, आपने शराबबंदी पर हठ करके अच्छा किया। आप शराब के पीछे डंडा लेकर न पड़ते तो लोग माँग करते कि महँगाई, गरीबी, बेकारी, शोषण के पीछे डंडा लेकर पड़ो। यह झंझट की बात होती। आपने शराबबंदी के लिए जान दे देने का ऐलान कर दिया। बदमाश लोग कहते हैं कि अच्छा होता कि आप कहते कि कीमत कम नहीं की तो मैं मर जाऊँगा। मैं जानता हूँ, मुनाफाखोर आपकी जान नहीं बचाते। आपका विश्वास भी सही है कि अगर लोगों ने शराब छोड़ दी तो बेकारी मिट जाएगी, गरीबी दूर हो जाएगी, भूमिहीनों को जमीन मिल जाएगी, हरिजनों पर अत्याचार नहीं होंगे, व्यापारी मुनाफा कमाना बंद कर देंगे। यह सब चमत्कार केवल शराब छोड़ने से हो जाएगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाईजी, अभी आप दौरे पर थे तो एक जगह आपके सामने पाँच सौ आदिवासियों ने शपथ खाई कि हम शराब नहीं पिएँगे। आप बहुत खुश हुए। पर भाईजी, आपको पता नहीं है कि इन आदिवासियों को यह वायदा करके इकट्ठा किया गया होगा कि शपथ के बाद तुम्हें ठर्रा पिलाएँगे। और आपके हटने के बाद उन्हें ठर्रा पिलाया गया होगा। फिर आपको क्या पता, कितने लोगों ने नशे में यह शपथ ली कि नशा नहीं करेंगे। भाईजी, ये सरकारी अफसर बड़े चतुर हैं। ये प्रधानमंत्री का शौक या सनक समझते हैं। जवाहरलाल नेहरू के सामने ये गुलाब के गमले रख देते थे। आपके सामने ये मूत्र (जीवनजल) की बोतलें रख देंगे। अपना-अपना शौक है।

भाईजी, आपने उस दिन एक सभा में कहा—कीमतें घटी हैं, और आगे ज्यादा घटेंगी। उस सभा में जो लोग बैठे थे वे उसी दिन महँगी चीजें खरीदकर लाए थे। वे कह रहे थे—हमने तो महँगा सामान खरीदा है। और प्रधानमंत्री कहते हैं कि सस्ता हो गया है। महँगा खरीदनेवाले से ही कहते हैं कि तुमने सस्ता खरीदा है।

बात यों है। मरीज ने डॉक्टर से कहा—मेरे पेट में बहुत दर्द है। डॉक्टर ने कहा—नहीं, तुम्हारे पेट का दर्द अब मिट गया है। मरीज ने कहा—मैं कहता हूँ दर्द है। डॉक्टर ने कहा—मैं कहता हूँ, दर्द नहीं है। मरीज ने कहा—पर डॉक्टर साहब, पेट तो मेरा है। इस पर डॉक्टर ने कहा—पेट तुम्हारा होगा, पर डॉक्टर तो मैं हूँ। मैं कहता हूँ कि दर्द नहीं है, तो नहीं है।

भाईजी, आप राज्यों के दौरे न किया करें। अड़चन होती है। आपके जाने से कहीं भी जनता पार्टी में एकता नहीं होती। आप तो चैन से दिल्ली में रहें। आप कई बार कह चुके हैं कि आपको न चिंता है न तनाव। दुनिया में कोई प्रधानमंत्री नहीं है, जिसे न चिंता हो न तनाव। आपको चिंता और तनाव क्यों हो? जिसे देश की कोई समस्या ही नहीं दीखती, उसे चिंता क्यों हो? प्रधानमंत्री न बनने की चिंता और तनाव थे तो वे अब खत्म हो गए। अब देश में जो होना होगा, होता रहे। आप तो चिंता और तनाव से बरी हैं।

उस्ताद के चेले

रोनाल्ड रीगन के राष्ट्रपति बनने के बाद से जो दृश्य हो रहा है, उससे आदम को ऐसी ही एक वारदात याद आ रही है जो मैंने कभी देखी थी।

एक मुहल्ले में एक रंगदार उस्ताद रहते थे। उनके कुछ शागिर्द भी। उस्ताद मूँछें ऐंठी हुई रखते। गले में गंडा। सिर में चमेली का तेल। हाथ में रंगीन रूमाल। अकड़कर चलते। शागिर्द उस्ताद के पीछे-पीछे।

पड़ोसी मुहल्ले में एक बलवान आदमी रहता था। वह बहुत ताकतवर, मगर शरीफ आदमी था। उस्ताद अकड़कर मुहल्ले में निकलता और उस बलवान आदमी को सुनाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिल्लाता—खबरदार, हमारे मामलों में दखल मत देना। इधर हमारे शागिर्द रहते हैं उन्हें तंग मत करना। मैं तुम्हें ठीक कर दूँगा। मैं धूल चटा दूँगा तुम्हें। हम कोई कमजोर नहीं हैं। तैयार हो जाओ पट्ठो लड़ने के लिए।

वह बलवान आदमी कहता—अरे, इस तरह धमकी क्यों देते हो? बकते क्यों हो। आओ बैठकर बात कर लो। मुहल्ले में अमन-चैन तो रहने दो। समझौता क्यों नहीं कर लेते ? उस्ताद समझौते की बात टालता था। धमकी देता था, शागिर्दों से कहता—मेरे रहते तुम्हें उससे नहीं डरना है। मगर तुम अपने हथियार तैयार रखना। भाला, बल्लम, छुरा तैयार रखो। लड़ाई के लिए हमेशा तैयार रहो। पता नहीं वह किस दिन हमला कर दे। शागिर्द उस्ताद की मालिश करते। कहते—वाह उस्ताद, बदन में क्या कसाव है। गुठली की तरह मांसपेशियाँ हैं। उस्ताद उन्हें बादाम, दूध के लिए पैसे दे देता। उस्ताद का धमकी देना, गाली देना बहुत बढ़ गया। वह बलवान शरीफ आदमी छज्जे पर से कहता—अरे जबरदस्ती झंझट क्यों करता है। आ, बात कर लेते हैं। उस्ताद कहता—अरे बात करते हैं बुजदिल। हम बहादुर हैं। जो आँख दिखाए, उसकी आँख निकाल लेते हैं। खबरदार, हमारे शागिर्दों से गड़बड़ मत करना।

शागिर्दों ने सोचना शुरू किया—यह उस्ताद रोज-रोज उस बलवान को धमकी देता है। उससे लड़ने के लिए कसमसाता रहता है। कहीं यह उस्ताद उससे झंझट मोल न ले ले। हम इधर उस बलि के पड़ोस में हैं। हम मारे जाएँगे। वे लोग डरे। सोचने लगे कि झगड़ा तो मोल उस्ताद लेगा, मगर पिटेंगे हम।

वे मालिश करते-करते समझाते—उस्ताद, आप-जैसे बहादुर को बार-बार धमकी देना शोभा नहीं देता। उसे व्यर्थ ही चिढ़ाओ मत उस्ताद! अभी वह कुछ कर भी नहीं रहा है। वैसे हम तैयार हैं। आपके दिए हुए हथियार हैं। हमारे अपने भी हथियार हैं। पर उस्ताद, आप जरा शांति से काम लो। धीरज बड़ी चीज है। उस्ताद, आप तो खुद समझदार हो। हम तो छोटे लोग हैं। उस्ताद, आज जलेबी हो जाए।

अब जो मैं देख रहा हूँ, वह ऐसा है—उस्ताद रीगन हैं। शागिर्द हैं पश्चिमी यूरोप के देश। बलवान है सोवियत संघ। रीगन रोज सोवियत संघ को धमकी देते हैं। कहते हैं, रूस पश्चिमी यूरोप में हस्तक्षेप न करे। हम चेतावनी देते हैं। हम सब जगह अपनी फौजी ताकत बढ़ा रहे हैं। यूरोप के हमारे साथी देशो, तैयार रहो। पैसा खर्च करके अपनी फौजी ताकत को अपटुडेट रखो। मिसाइल लगाओ। न्यूट्रोन बम लगाओ। रूस से विकट खतरा है तुम्हें।

पश्चिमी यूरोप के देश सोचते हैं—यह रीगन तो रोज धमकी देता है। जबरदस्ती हमारे यहाँ न्यूट्रोन बम रखना चाहता है। चौबीस घंटे तलवार घुमाता है। हम यहाँ रूस के पड़ोस में हैं। रीगन कुछ ऊटपटाँग कर बैठा तो हमारा कचूमर निकल जाएगा। तो यूरोप के देश धीरे-से कहते हैं—हमें तैयार तो रहना चाहिए, मगर संयम से काम लेना चाहिए। रूस से बातचीत शुरू कर देनी चाहिए। किसी समझौते पर हमें पहुँचना चाहिए।

मार्गरेट थैचर अपने को रीगन से भी जोरदार मानती हैं। मगर मैडम ने अभी बड़ी शालीनता से कहा है—रूस से कोई सीधा खतरा नहीं है और हमें रूसी खतरे को बढ़ा-चढ़ाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं देखना चाहिए।

उस्ताद बमकता है और चेले घबराते हैं।

एक पिद्दी का शोरबा

कहावत है—बुद्धिमान का मुँह उसके दिल में रहता है और मूर्ख का दिल उसके मुँह में होता है। डॉ. सुब्रह्मण्यम स्वामी हालाँकि मूर्ख नहीं हैं, मगर दिल मुँह में रखते हैं—ज्यादा सही यह है कि वे दिल मुँह के अंदर नहीं रखते, बाहर लटकाए रहते हैं जैसे घोड़े का चना मुँह के सामने तोबड़े में लटकता है। जिसका दिल मुँह के पास बाहर ही लटकता रहता है, वह सत्यवादी होता है। उसके पास छिपाने का, झूठ बोलने का कोई उपाय नहीं होता, क्योंकि दिल तो बाहर लटकता रहता है। अमेरिका या पाकिस्तान का कोई नेता भी यह नहीं कह सकता था कि भारत पाकिस्तान को फौजी मदद दे, बल्कि एक पर्वतीय डिवीजन बनवा दे। पर स्वामी ने यह बात कही। आमतौर पर लोग कहेंगे, यह मूर्खता की, उचक्केपन की बात है। कुछ लोग इसे देशविरोधी बात कहते हैं। मगर यह बात स्वामी के दिल की है। उनके दिल में है कि भारत मदद दे, उधर चीन है ही। तो पाकिस्तान अफगानिस्तान पर हमला कर दे। अमेरिकी जंगी बेड़ा है ही। चीन, पाक, भारत, अमेरिका मिलकर अफगानिस्तान से आगे बढ़कर रूस पर हमला कर दें। यह सुनहरा सपना है स्वामी का। दिन में सपने देखते हैं वे।

बहरहाल, लोग चाहे स्वामी को सनकी कहें चाहे मूढ़, आदम को तो वे प्रिय हैं। वे छिपाते नहीं हैं। उन्हें जिमी कार्टर को मोजे और जूते पहनाना है तो वे खुलेआम फोटो खिंचाकर पहनाएँगे। मैं उनसे मिलने गया। स्वामी व्यस्त थे। कागजात ब्रीफकेस में रख रहे थे।

आदम—बहुत व्यस्त हैं स्वामीजी?

स्वामी—यस वी आर आफुली बिजी!

आदम—'वी' याने कौन? जनसंघ के लोग?

स्वामी—नहीं जी। हम लोग—यानी कार्टर साहब, साइरस, वान्स, जिया-उल-हक, आगा शाही, हुआ कुओ फेंग और मैं।

आदम—वही सपना पुराना होगा, साम्यवाद को 'कंटेन' करने का?

स्वामी—नहीं, 'कंटेन' करने का नहीं, 'इरेडिकेट' करने का—नेस्तनाबूद करने का। वियतनाम के बाद से हम लोगों ने 'कंटेन' करना छोड़ दिया है।

आदम—मगर 'कंटेन' करने में वैसी दुर्गति हुई थी कि भागने के लिए 24 घंटे की मोहलत माँगना पड़ी थी, तो 'इरेडिकेट' करने में तो और गौरवशाली नतीजा निकलेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी–क्यों नहीं। इधर एशिया की जिम्मेदारी मुझे दी गई है।

आदम–बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। इतनी बड़ी जिम्मेदारी तो टिटहरी को भी नहीं दी गई। वह टाँगे ऊँची करके सोती है, तो आसमान वहीं थमा है। वरना गिर जाता। आप भी अपने मिशन में टिटहरी की तरह ही सफल होंगे। तो आपको चेयरमैन हुआ कुओ फेंग ने मिलने को बुलाया होगा।

स्वामी–सब सलाह करना चाहते हैं मुझसे। मैं जैसा हुक्म देता हूँ, वे, वैसा करते हैं। पहले मैंने जिमी कार्टर को सलाह दी, फिर जनरल जिया को और अब हुआ को सलाह देने जा रहा हूँ।

आदम–इन्हें आप दिल्ली ही क्यों नहीं बुला लेते मिलने के लिए?

स्वामी–वे तो आने को तैयार हैं। मगर उनके ठहरने के लिए यह सरकार राष्ट्रपति भवन किराए पर नहीं देती।

आदम–तो दीनदयाल उपाध्याय शोध संस्थान में ठहरा देते।

स्वामी–वहाँ कमोड नहीं है। खुड्डी है।

आदम–मगर कमोड तो आसानी से लगाया जा सकता है।

स्वामी–नानाजी देशमुख नहीं मानते। वे कहते हैं कि खुड्डी भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। कान में जनेऊ डालना हिंदू धर्म है।

आदम–डॉक्टर स्वामी, आपकी बात दुनिया के सब बड़े-बड़े देश मानते हैं। आप कुछ भला इस गरीब भारत का भी कीजिए।

स्वामी–यू मीन भारत, दैट इज इंडिया? देखो, हम इंडियन लोगों से बहुत नाराज हैं। 'नेटिव' लोगों से बात भी नहीं करना चाहते। इन लोगों ने जनता पार्टी को वोट नहीं दिया। खैर, क्या चाहते हो 'इंडिया' के लिए?

आदम–तारापुर परमाणु बिजलीघर के लिए अमेरीका से यूरेनियम दिलवा दीजिए।

स्वामी–इंपासिबल! पब्लिक सेक्टर कारखाने की हम मदद नहीं कर सकते। तारापुर प्राइवेट कंपनी को दे दिया जाय तो हम उसे किसी बहुराष्ट्रीय कंपनी से जोड़ देंगे और यूरेनियम भी मिल जाएगा।

आदम–अच्छा, क्या जनरल जिया-उल-हक ने आपसे कहा है कि पाकिस्तान अणुबम नहीं बनाएगा?

स्वामी–हाँ, जिया ने हमसे वादा किया है।

आदम–मगर ऐसा वे हमारी प्रधानमंत्री से क्यों नहीं कहते?

स्वामी–वह इस सरकार को मान्यता ही नहीं देते। वे मुझे मानते हैं।

आदम–आपकी यह चीन-यात्रा भी पिछली यात्रा की तरह सफल रहेगी, जिसके बाद अटलबिहारी वाजपेयी चीन गए थे।

स्वामी–हाँ! तब तो तेंग सियाओ पेंग ने मुझसे कहा था कि हम जब वियतनाम पर हमला करें, तब हमें एक गवाह चाहिए। तो मैंने गवाही के लिए अटलबिहारी को भेज दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदम—आप चीन कैसे जाएँगे? मेरा मतलब है, आपको हवाई जहाज का टिकिट कौन देगा?

स्वामी—हम विदाउट टिकिट जाएँगे। हमें हुआ कुओ फेंग ने बुलाया है। हम अफगानिस्तान, भारत और रूस की घेराबंदी कर देंगे।

आदम—डॉक्टर स्वामी, आपने कभी पिद्दी का शोरबा खाया है?

स्वामी—यह 'पिद्दी' क्या चीज है। हम तुम्हारे नार्थ इंडिया की ये बातें नहीं जानते। क्या मतलब है तुम्हारा?

आदम—मतलब तो आप किसी से पूछ लीजिए। इतना ही बताता हूँ कि नार्थ इंडिया में कहावत है—क्या पिद्दी और क्या पिद्दी का शोरबा!

महामिलन की कथा

महामिलन के लिए बड़ी-बड़ी तैयारियाँ की गई थीं। बीजू पटनायक और श्यामनंदन मिश्र हवन करा रहे थे। राजनारायण अलग से अपने लिए तांत्रिक से अनुष्ठान करवा रहे थे। मारणमंत्र का भी जप हो रहा था। चरणसिंह सुबह से दूल्हे की तरह सज रहे थे। दो बार दाढ़ी बनाई। सिर पर तरावट के लिए तेल की मालिश कराई। चूड़ीदार पाजामा पहना। चुस्त चूड़ीदार। फिर चौधरी साहब ने आईना सामने रखकर टोपी को साधा। तैयार हो गए। एक भक्त ने कहा—आज तो फियेट में जाइए। दूसरे ने कहा—हट! इम्पाला बुलाते हैं। चौधरी ने कहा—नहीं, मैं किसान नेता हूँ। बैलगाड़ी में जाऊँगा। बुलाओ। चेलों ने कहा—बैलगाड़ी का इंतजाम तो नहीं किया। चरणसिंह नाराज हुए—तुम लोग खाक संगठन चलाओगे। किसान सम्मेलन के दफ्तर के सामने 10-12 बैलगाड़ी हमेशा पड़ी रहनी चाहिए। खैर, एम्बेसेडर में जाऊँगा।

कार आ गई। चौधरी बढ़े। चमचे ने कहा—चौधरी साहब, दबना नहीं है। दूसरे ने कहा—पागल हुए हो। चौधरी साहब टूट जाएँगे पर झुकेंगे नहीं। तीसरे चमचे ने घबराकर कहा—अरे टूटना भी तो नहीं है। इतने में वे चार मंत्री आ गए, जिन्होंने चौधरी साहब के समर्थन में इस्तीफा दिया था। वे चरणसिंह के आजू-बाजू लटक गए। चौधरी गिरते-गिरते बच गए। शेरवानी पर फिर से ब्रश कराया। कार में बैठने लगे। राजनारायण ने कहा—चौधरी साहब, मोरारजी को डिसमिस करके आना।

चरणसिंह की गाड़ी बढ़ी। राजनारायण रामचरित मानस का पाठ करने लगे—

प्रविसि नगर कीजे सब काजा। हदय राखि कोसलपुर राजा।।
मसक समान रूप कपि धरी। लंका चले सुमरि नरहरी।।
कह लंकेश कवन तू बंदर। मैं रघुवीर दूत दसकंधर।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उलट-पलट लंका सब जारी। कूद पड़ेउ कपि सिंधु मझारी।।
सियावर रामचंद्र की जय!
पवनसुत हनुमान की जय!

किसी मखसरे ने रिमार्क किया—सवारी जा रही है। ये नेजा पकड़े हैं।

चरणसिंह संसद भवन पहुँचे। फोटोग्राफर फोटो खींचने लगे। चरणसिंह ने कहा—क्या आप लोग मेरे आइडियाज की भी तस्वीर खींच सकते हैं।

फोटोग्राफर आपस में बातें करते हैं। एक ने कहा—इन्होंने क्या कहा? दूसरे ने कहा—वे पूछते हैं कि क्या आप लोग मेरे विचारों की तस्वीर भी खींच सकते हैं? तीसरे ने कहा—हमें मालूम होता कि इनके पास भी विचार हैं तो दूसरा कैमरा लेकर आते। सब हँसने लगे। एक ने कहा—हम इनकी फोटो खींचते हैं तो ये समझते हैं कि हम इनके प्रशंसक हैं।

चौधरी मोरारजी के कमरे में घुसे। नमस्कार की अदला-बदली हुई। चौधरी बैठ गए। मोरारजी ने कहा—दिल्ली में बड़ी ठंड है। ऐसे मौसम में क्यों बाहर निकले। तबियत खराब हो जाएगी।

चौधरी—आपने मिलने का तय किया था न। सुना है, आप अब मुझसे खुश हैं।

मोरारजी—मैं अपने सिवा किसी और से खुश नहीं होता। मुझे अपने से खुश होने की फुरसत ही नहीं मिलती।

चौधरी—पर मुझसे कहा गया है कि आप मेरी तारीफ कर रहे थे कि मैं तबियत खराब होते हुए भी⋯

मोरारजी—मैं सिर्फ अपनी तारीफ करता हूँ। गांधीजी तक की तारीफ नहीं करता। आपको बात क्या करनी है?

चौधरी—यही कि पार्टी में अब एकता हो जाए।

मोरारजी—मैं भी यही चाहता हूँ।

चौधरी—तो मैं लौट आऊँ?

मोरारजी—लौट आइए।

चौधरी—तो फिर वही गृहमंत्री का पद लूँगा और साथ ही उप-प्रधानमंत्री का पद।

मोरारजी—पोर्टफोलियो तय करना प्रधानमंत्री का अधिकार है। और उप-प्रधानमंत्री के लिए जगजीवनराम का भी दावा है।

चौधरी—आप उसका नाम क्यों लेते हैं। उसके नाम से मुझे नफरत है।

मोरारजी—नफरत मुझे भी है। पर एक नफरत को दूसरी से काटना पड़ता है।

चौधरी—राजनारायण सहित मेरे उन पाँच समर्थकों को भी लेना होगा।

मोरारजी—मुझे अब मदारी नहीं बनना है।

चौधरी—तो मुझे उप-प्रधानमंत्री नहीं बनाया जाएगा?

मोरारजी—आपको बनने से फायदा भी क्या है? मैं ही उप-प्रधानमंत्री बना था तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आखिर निकाला गया। फिर मेरा कोई 'उप' हो नहीं सकता। मैं संपूर्ण पुरुष हूँ, कृष्ण की तरह 16 कलाओं से युक्त।

चौधरी—23 तारीख को किसान रैली होगी।

मोरारजी—मेरे साथ 302 में से 180 सदस्य हैं।

चौधरी—किसान रैली होकर रहेगी।

मोरारजी—302 में से 180 सदस्य मेरा समर्थन करते हैं।

चौधरी—धमकी मत दो। बड़ी विकट किसान रैली होगी। लेने के देने पड़ जाएँगे।

मोरारजी—धमकी मत दो। मैं निपट लूँगा। मेरे साथ 180 हैं।

चौधरी—तो मैं जाऊँ?

मोरारजी—तुम्हें बुलाया किसने था?

चौधरी—दुष्ट!

मोरारजी—दुष्ट!

चौधरी—मैं कहे देता हूँ, मैं भ्रष्टाचार का सख्त विरोधी हूँ।

मोरारजी—मैं भ्रष्टाचार खोलनेवालों का जरूर विरोधी हूँ।

दलितों के मसीहा

आदम उस दिन बहुत खुश था। हमारे सदाबहार बाबू जगजीवनराम की वर्षगाँठ थी। उनका अभिनंदन हुआ था। उन्हें दलितों के मसीहा का खिताब दिया गया था। उनके बारे में भी एक फिल्म बनाई गई थी।

आदम भी बाबूजी को बधाई देने पहुँचा।

मैंने कहा—बाबूजी, अपने दास इस आदम की भी बधाई स्वीकार करें।

बाबूजी—तुम्हें क्या मोरारजी ने भेजा है?

आदम—नहीं।

बाबूजी—तो चरणसिंह ने भेजा होगा।

आदम—नहीं।

बाबूजी—तो क्या बाला साहब देवरस ने भेजा है?

आदम सोचने लगा। बाबूजी के चेहरे को देखा। फिर यों ही कह दिया—जी हाँ, बाला साहब ने भेजा है।

बाबूजी खुश हुए। कहने लगे—

तू दयाल दीन हौं तू दानी हौं भिखारी,
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंज हारी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने पूछा—यह तुलसीदास का पद क्यों गाते हैं बाबूजी?

बाबूजी—स्तुति करता हूँ। शिकायत भी करता हूँ—

मैं बैरी सुग्रीव पियारा। कारण कवन नाथ मोहि मारा।।

याने सुग्रीव मोरारजी ही तुम्हें प्यारा क्यों है। मैंने क्या बिगाड़ा है?

आदम—आप दलितों के मसीहा कहलाते हैं, आपने दलितों का क्या भला किया है?

बाबूजी—मैंने दलितों का यह भला किया है कि मैं उनके नाम से 33 सालों से मंत्री हूँ। दलित या किसान खाद हैं। दलितों के खाद पर फूला हुआ एक गुलाब हूँ मैं।

आदम—और चरणसिंह?

बाबूजी—वह तो किसानों के खाद पर बढ़ा बबूल है।

आदम—बाबूजी, आपकी राजनैतिक सफलता का रहस्य क्या है?

बाबूजी—मैंने हमेशा विकेट को बचाकर रन बनाए हैं। मैं विकेट से चिपका रहा हूँ। मैंने चौआ या सिक्सर कभी नहीं बनाया। जब तीन रन बनने की संभावना हो तब मैं सिर्फ एक रन बनाकर विकेट से चिपक जाता हूँ। मैंने कभी विकेट गिरने का खतरा नहीं उठाया।

बाबूजी—अब आश्वस्त होकर बैठ गए थे। वे दार्शनिक भाव से कह उठे—कैसा अच्छा होता कि सब कुछ अपने अनुकूल होता। द्वंद्व अपरिहार्य नहीं होता।

मैंने उन्हें दार्शनिकता से यथार्थ में खींचा—बाबूजी, यह जो सी.एफ.डी. है न…

बाबूजी भड़क उठे—तुम क्या बहुगुणा के आदमी हो?

आदम—क्या बहुगुणा आपके आदमी हैं?

बाबूजी—नहीं, कोई किसी का आदमी नहीं है। आदमी खुद अपना आदमी नहीं है। बहुगुणा का नाम मत लो।

आदम—नाम तो आपने ही लिया था।

बाबूजी—यह भी मजबूरी है कि नाम लेना पड़ता है।

आदम—यह जो फिर से राजनैतिक ध्रुवीकरण की बात चल रही है, उसके बारे में आपका क्या खयाल है?

बाबूजी—अभी मेरा कोई खयाल नहीं है। मेरा खयाल ठीक वक्त पर बनता है। जब यह पक्का हो गया कि इंदिरा गांधी मुझे टिकिट नहीं देगी और यह भी अंदाज हो गया कि कांग्रेस हारेगी, तब मेरा खयाल बन गया कि इंदिरा तानाशाह है और इमरजेंसी बुरी थी। 1975 में मेरा खयाल दूसरा था। तब मैंने ही लोकसभा में इमरजेंसी का प्रस्ताव रखा था।

आदम—आपका समाजवाद में विश्वास है?

बाबूजी—जब समाजवाद आता दिखेगा तब बताऊँगा।

आदम—क्या आपका विश्वास हिंदू राष्ट्र में है?

बाबूजी—जब हिंदू राष्ट्र बनता दिखेगा तब बताऊँगा।

आदम—क्या आपका विश्वास गांधीवाद में है?

बाबूजी—जब गांधीजी पूछेंगे तब बताऊँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदम—क्या आपकी कोई आइडियालॉजी है?

बाबूजी—जगजीवनरामवाद।

आदम—देश के भविष्य के बारे में आपका कोई सपना है?

बाबूजी—हाँ है। सपना है—मेरा प्रधानमंत्री होना।

आदम—वे जो सुरेश-सुषमा के फोटो हैं, उनके बारे में आपका क्या खयाल है?

बाबूजी—जब मैं जवान था तब ऐसे अच्छे कैमरे नहीं थे।

दोनों में कौन भारत है

आदम इन दिनों बहुत दिलचस्प दृश्य देख रहा है। इंदौर में एक सभा में विद्याचरण शुक्ल ने कहा—इंदिराजी भारत हैं। इस वक्त जब मैं यह लिख रहा हूँ, विद्याचरण शुक्ल मुख्यमंत्री पद के उम्मीदवार हैं। विद्याचरण ने सोचा होगा—सी.एम. स्टीफन कुछ दिन पहले कह चुका है कि इंदिरा भारत है। तो उसकी केंद्रीय मन्त्रिमंडल में नौकरी पक्की हुई। मगर मैं अभी बेकारी की समस्या से पीड़ित इंसान हूँ। मेरा कार्ड रोजगार दफ्तर से निकल चुका है पर 'बॉस' की खुशी तो हो। मैं स्टीफन से कोई कम अक्ल का इंसान हूँ। मैं भी नारा लगाता हूँ—इंदिरा भारत है।

संयोग से उसी जगह श्रीमान् कमलनाथ उपस्थित थे। इनके अभी 2-3 भाषण इस शहर में हुए। लोग कहते हैं—काफी चालू आदमी हैं। झटके देता है। शेरो-शायरी फटकारता है। सब कामों का जिम्मा लेता है। यह भी कह सकता है कि आगामी पंचवर्षीय योजना का खर्च मैं अपने ऊपर लेता हूँ। कमलनाथ ने सोचा—इसलिए सोचा कि यह बात चलाई जा रही है कि अब की बार प्रदेश में युवा मुख्यमंत्री होंगे। संजय उत्तरप्रदेश के होंगे, तो कमलनाथ मध्यप्रदेश के। तो कमलनाथ ने घोषणा की—संजय गांधी भारत हैं। 'इंदिरा भारत हैं' की टकराहट कमलनाथ के 'संजय भारत हैं' से हो गई। सैद्धांतिक संकट खड़ा हो गया। राजनीतिक गतिरोध पैदा हो गया। तब वरिष्ठ होने के नाते विद्याचरण ने ही समझौता फार्मूला बना लिया—इंदिरा और संजय दोनों भारत हैं। यह तो ठीक है। मगर आदम को यह खुलासा नहीं हो पाया कि भारत का कौन-सा हिस्सा संजय है और कौन-सा इंदिरा। इन दोनों भारतों में टकराहट की स्थिति तो नहीं है।

इस बीच यह आवाज उठ चुकी थी कि संजय को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया जाय। दूसरी आवाज यह उठ चुकी थी कि संजय को उत्तरप्रदेश का मुख्यमंत्री बनाया जाय।

कर्नाटक मुख्यमंत्री गुंडूराव ने तुरंत जोरदार समर्थन किया—संजय को कांग्रेस अध्यक्ष बनाया जाय। गुंडूराव और भजनलाल ऐसे मुख्यमंत्री हैं जो राहत कार्य पर लगे 'मस्टर रोल' वाले मजदूरों की हैसियत रखते हैं। रोजाना मजदूरी पर हैं। चपरासी को तो निकालने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए नोटिस देना पड़ता है। इन्हें शाम को कह दिया जाएगा—गुंडूराव और भजनलाल, कल से यह राहत कार्य बंद हो रहा है। काम पर मत आना। तो ये घाम और पत्ती खाने पर मजबूर होंगे। केंद्र के लगभग सभी मंत्री भी रोजाना मजदूरी पर राहत कार्य के 'मस्टर-रोल' में दर्ज हैं। इनमें सबसे दीन मजदूर ज्ञानी जैलसिंह हैं।

आदम को आज विकट आनंद प्राप्त हुआ, जब पढ़ा कि एक भेंट में मैडम गांधी ने कहा—संजय कांग्रेस अध्यक्ष या उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री कतई नहीं बनाए जाएँगे। मैं स्वयं कुछ समय कांग्रेस अध्यक्ष रहूँगी।

मैडम, आपने समर्पित कांग्रेसमैन को बड़ी नैतिक उलझन में डाल दिया। सुबह मुझे दो कांग्रेसमैन मिले थे। कह रहे थे—मैडम तो ऐसा कहती हैं। समझ में नहीं आता माँ-बेटे में कौन हमारा दीनबंधु है। इंदिराजी भारत हैं या संजय? हमने संजय के कांग्रेसाध्यक्ष बनाने का नारा दिया और मैडम नाराज हो गईं, तो हम डूबे। और मैडम ही कांग्रेसाध्यक्ष रहें, यह नारा दिया और संजय नाराज हो गए, तो भी डूबे। कुछ समझ में नहीं आता कि हमारा उद्धार दोनों में से किसके हाथों होगा? दूसरी तरफ संजय खुद कुछ बन गए और दूसरों को बनाने लगे और हमने संजय की जय नहीं बोली तो भी गए। आदम की अर्ज है—मैडम, भक्तों को इस धर्मसंकट से आप ही उबारो। यह पार्टी का आंतरिक लोकतंत्र काम कर रहा है। देख रही हैं आप?

शाम को दो सुलझे हुए और आश्वस्त कांग्रेसमैन मिले। वे बोले—कुछ उलझन नहीं है। मैडम चाहती हैं कि आवाजें उठें कि संजय को कांग्रेस अध्यक्ष बनाओ, केन्द्रीय मंत्री बनाओ। जब ये आवाजें छा जाएँगी, तब मैडम कहेंगी—मैं तो कतई नहीं चाहती कि संजय को कोई पद दिया जाय। पर पार्टी चाहती है। मैं तो पार्टी में लोकतंत्र पर विश्वास करती हूँ। पार्टी की माँग नहीं टाल सकती।

रात को दो तटस्थ आदमियों ने कहा—वे कौन ताकतें हैं, जो इंदिराजी को कांग्रेस-अध्यक्ष पद से खिसकाकर संजय के मारफत पार्टी और सरकार पर कब्जा करना चाहती हैं? मैडम अपने और अपनी नीतियों के देशी और विदेशी शत्रुओं को तो पहचानती हैं न। उनको सावधान हो जाना चाहिए।

यह 'अवकाशवाणी' है...

यह 'अवकाशवाणी' है। अब आप 'आदम' से समाचार सुनिए। आज दोपहर दो बजे मोरारजी देसाई के निवास पर उनकी और चरणसिंह की भेंट हुई। दिन को दो बजे का समय इसलिए रखा गया था कि मोरारजी भाई ने समझौता-वार्ता करानेवाले नेताओं से कह दिया था कि मैं चरणसिंह को न भोजन कराऊँगा न चाय पिलाऊँगा। इसीलिए दो बजे दोपहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का समय तै किया जा रहा था, क्योंकि चरणसिंह को रात-भर नींद नहीं आती। पर मोरारजी भाई ने कहा कि उस समय मैं गहरी नींद में होता हूँ।

सरकारी प्रवक्ता ने इन अफवाहों को गलत बताया है कि मोरारजी भाई के घर में चरणसिंह जबरदस्ती घुस गए। इस तरह की कोई रिपोर्ट पुलिस थाने में दर्ज नहीं है। प्रवक्ता ने इस खबर को भी गलत बताया है कि चरणसिंह ने पुलिस को रिपोर्ट दी है कि मोरारजी भाई ने उनके दिल पर आघात पहुँचाया है। पुलिस थाने में ऐसी कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं है। डाक्टरों के अनुसार चरणसिंह के हृदय पर चोट के कोई निशान नहीं हैं। एक हृदय-विशेषज्ञ का कथन है कि हम पिछले तीन महीनों से यह पता लगाने की कोशिश कर रहे हैं कि चरणसिंह का दिल शरीर में कहाँ है। पहले डाक्टरों ने अनुमान लगाया था कि उनका दिल नाक में है, पर अब निश्चित रूप से पता चल गया है कि उनका दिल एड़ी में है। ऐसी स्थिति में मोरारजी भाई के उनके दिल को चोट पहुँचाने का कोई सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि चोट पहुँचाने के लिए भी मोरारजी भाई पाँवों पर नहीं झुकेंगे।

ये समाचार आपको 'अवकाशवाणी' से सुनाए जा रहे हैं।

दोनों नेताओं में सहमति हुई है कि चरणसिंह रोज कहेंगे कि मेरी मंत्रिमंडल में लौटने में कोई दिलचस्पी नहीं है और मोरारजी भाई रोज बयान देंगे कि मैं अभी एक महीना मंत्रिमंडल में हेरफेर नहीं करूँगा।

दोनों में इस बात पर भी सहमति थी कि सबसे ईमानदार पार्टी जनसंघ है। इस पर कोई भी भरोसा कर सकता है। जनसंघ पर भरोसा करने के सुखद परिणामों का ब्यौरा चरणसिंह ने दिया। मोरारजी भाई ने आशा प्रकट की कि निकट भविष्य में उन्हें भी जनसंघ पर भरोसा करने के सुखद परिणाम मिलेंगे।

दोनों नेताओं ने नैतिकता का मानदंड भी तय किया। इसके अनुसार जब चरणसिंह मोरारजी भाई से नाराज होंगे तब कांतिभाई भ्रष्टाचारी हो जाएँगे। और जब चरणसिंह का मोरारजी भाई से समझौता हो जाएगा तब कांतिभाई सदाचारी हो जाएँगे। यही नैतिकता चरणसिंह के रिश्तेदारों पर लागू होगी।

दोनों नेताओं में इस बात पर भी सहमति हुई कि ऊँचे नेताओं के भ्रष्टाचार मिटाने का यह तरीका है कि सब मिलकर उन भ्रष्टाचारों को दबा दें।

चरणसिंह के इस आरोप पर भी चर्चा हुई कि पाँच मंत्री और नेता अपनी पत्नियों के प्रति वफादार नहीं हैं। यह तय किया गया कि सी.बी.आई. के द्वारा यह जाँच कराई जाए कि इनकी पत्नियाँ वफादार हों तो इन मंत्रियों और नेताओं से कहा जाए कि वे अपनी पत्नियों से मजिस्ट्रेट के सामने हलफिया बयान दिलवाएँ कि हमारे पति हमारे प्रति वफादार हैं। ये बयान प्रधानमंत्री को सौंप दिए जाएँ।

यह भी तय हुआ कि चरणसिंह भविष्य में स्वास्थ्य लाभ के लिए सूरजकुंड नहीं जाएँगे। सूरजकुंड से दिल्ली पर हमला करना ठीक नहीं है। प्रधानमंत्री पानीपत में एक विशेष विश्रामस्थल बनवा देंगे। पानीपत में दिल्ली के तख्त के लिए तीन लड़ाइयाँ हो चुकी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणसिंह के लिए उचित होगा कि ऐतिहासिक परंपरा के निर्वाह के लिए वे पानीपत को युद्धस्थल बनाएँ।

यह भी तय किया गया कि किष्किन्धा का राज राजनारायण को दे दिया जाए, जहाँ से वे वानर समाज का कल्याण करें।

चरणसिंह ने मोरारजी भाई से यह जानना चाहा कि वे बीमार कब पड़ेंगे। मोरारजी भाई ने इस संबंध में कोई निश्चित वादा नहीं किया।

ये समाचार 'अवकाशवाणी' से सुनाए जा रहे हैं।

मोरारजी भाई और चरणसिंह में अगले हमले पर भी चर्चा हुई। चरणसिंह ने कहा बताते हैं कि इसकी योजना तब बनेगी जब जनसंघ हमले में साथ देने को तैयार होगा। जनसंघ चाहता है कि अगले युद्ध के प्रधान सेनापति बाला साहब देवरस हों और जाटों की सेना की एक टुकड़ी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की महासेना के अंतर्गत हो। विजय के बाद दिल्ली के सिंहासन पर बाला साहब देवरस का अभिषेक हो और चरणसिंह को दसहजारी मनसबदार बनाया जाय। जब इस प्रकार की संधि हो जाएगी, तब अगला युद्ध होगा।

कैम्प फ्रॉड में एक भेंट

मोरारजी ने कहा—आदम, तारापुर के लिए यूरेनियम का इंतजाम करना है। तुम राष्ट्रपति कार्टर से मिलो।

मैंने कहा—मैं नहीं मिलूँगा। लोग तरह-तरह की बातें करते हैं। नए पोप के लिए मैंने आपकी चिट्ठी लिख दी थी, तो लोग मुझे उलाहना देते हैं कि तुमने मोरारजी जैसे पवित्र आदमी से एक कम्युनिस्ट देश के पोप को बधाई दिलवा दी, यह उतना ही अपवित्र काम है, जितना जगजीवनराम का इंदिरा गांधी को बधाई देना। आप अपने हेनरी किसिंगर को भेज दीजिए।

मोरारजी ने पूछा—मेरा हेनरी किसिंगर कौन है?

मैंने कहा—डॉ. स्वामी।

मोरारजी ने कहा—नहीं, नहीं, वह नहीं। वह चीन गया था तो अटलबिहारी के पेट में दर्द हो गया था।

मैंने कहा—तो फिर आप ही जिमी कार्टर से मिलिए।

दूतावासों के माध्यम से दोनों के मिलने का कार्यक्रम बना। कार्टर ने खबर भेजी कि मैं आजकल वाशिंगटन में नहीं, कैम्पों में मिलता हूँ जैसे कैम्प डेविड में। मैं भारतीय प्रधानमंत्री से कैम्प 'फ्रॉड' में मिल सकता हूँ।

मैंने कहा—भाईजी, आप सत्यवादी हैं और फ्रॉड का मतलब होता है, छल, धोखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप कैम्प फ्रॉड में कैसे मिलेंगे कार्टर से? आपकी गाँधीवादी आत्मा कैसे मानेगी?

मोरारजी ने कहा—सत्य की साधना में असत्य के घर जाना ही पड़ता है। मैं कैम्प फ्रॉड में कार्टर से मिलूँगा। तुम मेरे साथ रहना।

कैम्प फ्रॉड में भेंट हुई। वहाँ एक दीवार पर लिंकन का चित्र टँगा था। दूसरी दीवार पर एक चित्र था जिसमें एक गोरा एक नीग्रो को मार रहा था।

कार्टर—कहिए, क्या हाल हैं?

मोरारजी—ठीक है। आप शराब मत पिया करिए। सिगरेट भी छोड़ दीजिए। मांस खाना बंद कर दीजिए। दूध पिया कीजिए और केला खाया करिए।

कार्टर—आप बहुत 'बोर' आदमी हैं। आप उपदेश देते हैं। आपके मंत्रिमंडल के आधे मंत्री शराब पीते हैं।

मैंने वार्ता भंग होने से बचाई।

मैंने कहा—साहब, उन मंत्रियों का शराब पीना जरूरी है। बात यह है कि मोरारजी के सदाचार के उपदेश इतने भारी होते हैं कि बिना शराब पिये उन्हें बरदाश्त करना कठिन होता है। वे मंत्री इनके उपदेश सहने के लिए ही शराब पीते हैं। न पियें, तो घबराकर मर जाएँ।

कार्टर—और अगर मैं दिल्ली में शराब पीऊँ तो?

मोरारजी—अरे साहब, आप क्या आपका कुत्ता भी शराब पीना चाहे तो मजे में पिये। बस जरा छिपकर पियें। राष्ट्रपति भवन में अलग इंतजाम कर देंगे। वो यूरेनियम दे दीजिए मालिक!

कार्टर—यूरेनियम माँगते हो, मगर विदेशमंत्री को पीकिंग भेजते हो।

मोरारजी—जी, अटलबिहारी के पेट में दर्द हो गया था।

कार्टर—ऐसा कैसा दर्द? उन्हें अमेरिका भेज देते। हम दूसरा पेट लगा देते।

मोरारजी—गलती हो गई। आगे दूसरा दिमाग लगाने भी भेज देंगे।

कार्टर—दिमाग उनका ठीक है। पेट में ही गड़बड़ है। हाँ, यूरेनियम क्यों चाहते हो ?

मोरारजी—तारापुर के लिए। अपना आपसी करार है न सप्लाई का!

कार्टर—करार बराबरीवालों में होता है। बड़े और छोटे में नहीं होता। क्या करोगे तारापुर की ऊर्जा का?

मोरारजी—बिजली होगी साहब! लाइट वगैरह! और कारखाने चलेंगे।

कार्टर—क्या करोगे कारखानों का? यहाँ अमेरिका में तो बहुत कारखाने हैं। यहीं से माल ले लिया करो।

मैंने फिर हस्तक्षेप किया। कहा—कारखाने क्या साहब? आटे की चक्की वगैरह चलाएँगे। इतना आटा अमेरिका से पिसवाकर मँगवाना संभव नहीं है।

कार्टर—ठीक है। अणु-परीक्षण तो नहीं करोगे?

मोरारजी बोले—साहब, पहले भी कसम खा चुका हूँ और अब भी कसम खाता हूँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि एक पटाखा भी नहीं फोड़ेंगे। मुझे पछतावा है कि जब इंदिरा गांधी ने वह अणु-परीक्षण किया था तब मैंने अनशन क्यों नहीं कर दिया।

कार्टर—अच्छा, मानव-अधिकार के बारे में क्या खयाल है? ईरान में मानव-अधिकार हैं या नहीं?

मोरारजी—जिसे आपका समर्थन है वहाँ जरूर मानव-अधिकार होते हैं। ईरान में तो बिलकुल लिंकन ही जैसा आदर्श है—जनता की सरकार, जनता के द्वारा, जनता के लिए।

कार्टर—देखिए, यूरेनियम के बारे में ऐसा है कि अगले साल नया कानून लागू हो रहा है। फिर कांग्रेस की मंजूरी भी तो चाहिए।

मोरारजी—साहब, आपकी कृपा हो तो क्या कानून और क्या संसद? आप सर्वशक्तिमान हैं।

आदम का नया घोषणापत्र

आदम ने पिछली बार लोकदल का घोषणापत्र जारी किया था। आज मैं जनता पार्टी का घोषणापत्र जारी कर रहा हूँ। मैंने लोकदल के दल-बदलुओं का नाम छोड़ दिया है। दल-बदलना एक राजनीतिक पाप है। इस प्रवृत्ति से सब देशभक्तों को लड़ना चाहिए। दल-बदल की प्रवृत्ति से लड़ने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि खुद दल-बदल कर लेना चाहिए। मैंने देश में दल-बदल रोकने के लिए ही दल बदला है। लोकदल-कांग्रेस गठबंधन में मैंने टिकिट माँगा था। मैंने धमकी दी थी कि अगर मुझे टिकिट नहीं दिया गया तो मैं मुस्लिम मजलिस में चला जाऊँगा। मेरी हव्वा जुल्फिकारउल्ला की बीवी से गुपचुप मिलती रहती है।

इस पर चरणसिंह ने कहा—मैं धमकी से नहीं डरता। तुम्हें कांग्रेस के हिस्से में से टिकिट ले लेना चाहिए। मैंने कहा—जिस क्षेत्र से मैं लड़ना चाहता हूँ वहाँ से आपने अपना उम्मीदवार खड़ा कर दिया है। कांग्रेस की टिकिट से मैं अपने ही लोकतांत्रिक मोर्चे के उम्मीदवार से कैसे लड़ूँगा। चरणसिंह ने कहा—कोई हर्ज नहीं। दोस्ताना लड़ाई हो जाएगी। कई सीटों पर हो रही है।

आदम को यह बात पसंद नहीं आई।

इसी समय आदम की टिकिटपीड़ित आत्मा से आवाज उठने लगी। मेरी आत्मा ने कहा—अधम, इन दल-बदलुओं का साथ छोड़। तो मैंने इंदिरा कांग्रेस के रोजगार दफ्तर में दरखास्त दे दी। मुझे इंदिराजी के सामने पेश किया गया। उन्होंने पूछा—इधर क्यों आए हो? मैंने कहा—आत्मा की आवाज पर, जैसे कभी रेड्डी आत्मा की आवाज पर यहाँ आए हैं। इंदिराजी ने पूछा—अच्छा, इमरजेंसी के बारे में तुम्हारा क्या खयाल है। मैंने कहा—इमरजेंसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो ठीक थी। वह तो 'शॉक ट्रीटमेंट' था, जिसकी देश को जरूरत थी। इंदिराजी ने कहा—तुम्हारी आत्मा में यह कुलबुलाहट कबसे होने लगी? मैंने कहा—तभी से जबसे बहुगुणा को होने लगी थी। मुझे भी रात-भर नींद नहीं आती थी, अमृत नाहटा की तरह। इंदिराजी ने पूछा—तो बहुगुणा के साथ ही इधर क्यों नहीं आ गए? मैंने कहा—बहुगुणाजी की आत्मा चपल है। मेरी आत्मा जरा सुस्त है बाबू जगजीवनराम की आत्मा की तरह। इंदिराजी ने कहा—तो क्या चाहते हो? मैंने कहा—लोकसभा का टिकिट। इंदिराजी ने कहा—वह तो खाली नहीं है। जो पहले आ गए हैं, उन्हीं के लिए जगहें पूरी नहीं हो रही हैं। नंदादेवी चुनाव क्षेत्र से लड़ोगे ? मैंने कहा—वहाँ बड़ी ठंड है। बीमार पड़ जाऊँगा। इंदिराजी ने कहा—तो तुम ग्राम पंचायत का सरपंच बन जाना। मैंने कहा—बहुत छोटा पद है। मेरी सेवा का खयाल कीजिए। मैं आत्मा की आवाज पर आया हूँ। इंदिराजी ने कहा—तो तुम्हें हम विदेशसेवा में भेज देंगे। आदम खुश हुआ। पूछा—कहाँ का राजदूत बनाएँगी? इंदिराजी ने कहा—राजदूत नहीं जी। अभी क्लर्क बनाएँगे कहीं।

अब मेरी उम्मीद संजय गांधी पर टिकी थी। मैं उनके पास गया। कहा—मुझे युवक कांग्रेस में भरती करके टिकिट दे दीजिए। संजय ने पूछा—तुम्हारी कितनी उम्र हैं। मैंने कहा—पचपन साल। संजय ने कहा—उम्र तो कोई ज्यादा नहीं है, पर हमारे कार्यक्रम में तुम्हारा विश्वास है? पत्थर फेंक सकते हो? स्कूल के दिनों में साइकिलें पंचर करते थे? मैंने कहा—ये काम तो मैंने कभी नहीं किए। संजय ने कहा—तो इधर नहीं चलोगे। ममी के पास जाओ। सारे मुर्दे वहीं जा रहे हैं।

आदम निराश हो गया। सड़क पर श्रद्धेय नानाजी देशमुख मिल गए। मैंने कहा—नानाजी, आजकल आप दिल्ली में नहीं दिखते? कहाँ राष्ट्रसेवा करते हैं? नानाजी ने कहा—मेरा अवमूल्यन हो गया है। देवरसजी ने कहा कि तुम्हारी अक्षमता के कारण ही जनता पार्टी टूटी और संघ बदनाम हुआ। मैं दिल्ली में 'एक्सपोज' हो गया, याने मेरा भेद खुल गया। देवरसजी ने कहा है कि तुम कोई बड़ा सफल पाखंड करके बताओ तब संघ में तुम्हें प्रतिष्ठा दी जाएगी, तो अब पाखंड की तलाश में घूम रहा हूँ।

आदम ने उन्हें अपना दुख बताया। वे द्रवित होकर बोले—कोई बात नहीं। मैं तुम्हें जनता पार्टी में भरती कराके टिकिट दिला देता हूँ। चलो चंद्रशेखर के पास। पर एक बात का ध्यान रखना—चंद्रशेखर, बाबूजी, सुरेंद्र मोहन, मोरारजी—इनमें से हर एक से कहना है कि मैं तुम्हारा आदमी हूँ। और मेरी तरह पोल मत खुलवा लेना।

मैं अब जनता पार्टी में हूँ। टिकिट पा गया हूँ।

अब रही घोषणापत्र की बात। हमारी पार्टी का मुख्य कार्यक्रम है—मोरारजी, जगजीवनराम, अटलबिहारी, चंद्रशेखर, एक-दूसरे को प्रधानमंत्री बनने से रोकेंगे। चुनाव के बाद पार्टी बाला साहब देवरस को सौंप देंगे। वे जनता पार्टी के अयातुल्ला खोमैनी हैं। कृषि, ग्रामोत्थान, उद्योग, गरीबी हटाना, बेरोजगारी, शिक्षा आदि फालतू बातें हैं। हम इनके बारे में कुछ नहीं करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवरसजी से संवाद

देवरसजी ने भोपाल में कह दिया कि दस सालों में संघ भारत में शासन स्थापित कर लेगा और उज्जैन में जाकर कह दिया कि मैंने ऐसा कहा ही नहीं। मगर बवंडर तो खड़ा हो ही गया।

मैं देवरसजी का भक्त हूँ। उनसे मिलने नागपुर पहुँचा।

वे मुझे देखकर खुश हुए। बोले—मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। जितना प्रचार तुम संघ का करते हो, उतना हमारे पेपर भी नहीं करते। तुम हमारे पत्र 'आर्गनाइजर' में क्यों नहीं आ जाते?

मैंने कहा—मैं योग्य नहीं हूँ। मैं उतनी बुरी अंग्रेजी नहीं लिख सकता।

बाला साहेब ने कहा—कोई बात नहीं। अभ्यास करो। खासी बुरी अंग्रेजी लिखने लगोगे! अच्छा, नागपुर आए हो तो यहाँ का चिवड़ा और आलूबंडा खाया?

मैंने कहा—जी हाँ, कल से वही खा रहा हूँ। सकलेचाजी ने मुझे रतलाम के सेब भी खिलाए थे।

देवरसजी बोले—हाँ, चिवड़ा और आलूबंडा नागपुर का शुद्ध राष्ट्रीय खाद्य है। पर तुम नागपुरी संतरा कभी मत खाना। उसकी संस्कृति बिगड़ चुकी है। न जाने कहाँ-कहाँ के विदेशी बीज तक लाए जाते हैं। 'स्वकीय' और 'परकीय' बीज मिलाकर संतरे की संस्कृति ही भ्रष्ट कर दी है।

आदम—यह बताइए, 'बाला' साहब और 'बाल' साहब में क्या अंतर है?

देवरस—तुम उस बंबईवाले लफंगे बाल ठाकरे की बात कर रहे हो न? वह ब्राह्मण विरोधी है, पापी है।

आदम—आपने क्या भोपाल में यह कहा था कि संघ दस सालों में भारत पर शासन करेगा?

बाला साहब—अगर कहा भी तो ऐसा क्या कह दिया जो लोगों को न मालूम हो। असल में तो मार्च 1977 में ही यह तय था कि दस साल बाद, यानी मार्च 1987 में संघ सत्ता पर कब्जा कर लेगा। पर बीच में नानाजी से थोड़ी गड़बड़ हो गई। तो अब मैं कहता हूँ कि 1989 में हम सत्ता पर कब्जा करेंगे। यानी मैं इन 'सेकुलर' राष्ट्रद्रोहियों को ढाई साल का एक्सटेंशन दे रहा हूँ। इन्हें मेरा अहसान मानना चाहिए।

आदम—पर आपने उज्जैन में कह दिया कि यह गलत रिपोर्ट है।

देवरस—यह बताओ कि नेता का पहला वक्तव्य सत्य होता है कि बाद का प्रतिवाद?

आदम—प्रतिवाद असत्य होता है।

देवरस—ठीक। तुम बुद्धिमान हो। कहाँ से आई तुममें इतनी बुद्धि?

आदम—जी, कुछ समय शाखा में बौद्धिक वर्ग अटेंड किया था। अच्छा, आप कहते हैं कि 10 सालों में संघ सत्ता पर कब्जा करने लायक लोकप्रिय हो जाएगा तो क्या हम 'लोकप्रियता' का रास्त अपनाएँगे।

देवरस—लोकप्रियता का अर्थ 'लोक आतंक' होता है। समझे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदम—देवरसजी, आपने 'भारतीय राष्ट्र' क्यों मान लिया? हमें तो 'हिंदू राष्ट्र' चाहिए न!

देवरस—बात एक ही है। वह अटलबिहारी जनता पार्टी में थोड़ी तकलीफ में पड़ गया था न। तो मैंने कहा, चलो भारतीय राष्ट्र ही सही! अटलबिहारी अच्छा लड़का है। बचपन से निष्ठावान स्वयंसेवक रहा है और बच्चे-जैसे उत्साह से ही बोलता है।

आदम—और चंद्रशेखर?

देवरस—अच्छा लड़का है। अभी नया स्वयंसेवक है। सीख जाएगा।

आदम—और मधुलिमये?

देवरस—उसका वास्तविक नाम 'माधृव लिमायेव' है। वह रूसी एजेंट है।

आदम—हिंदू राष्ट्र की आपकी कल्पना क्या है?

देवरस—देखो, निरतंर संकीर्ण होते जाना राष्ट्रधर्म है। पहले हम जंबू द्वीप के थे। यह पूरा एशिया था। फिर हम 'भरतखंड' हुए, और छोटे हुए।

आदम—तो आगे 10 सालों में हमारी संकीर्णता का विकास कैसे होगा?

देवरस—देखो, अब हम 'आर्यावर्त' होंगे। इससे दक्षिण के ये द्रविड़ अलग हो जाएँगे। फिर आर्यावर्त को भी छोटा करना होगा। ये बंगाली जो हैं न, कम्युनिस्ट हैं। इन्हें हिंदू राष्ट्र में जगह नहीं मिलेगी। तो हम बनाएँगे 'उत्तराखंड'। इससे पूर्वी भारत से हमें छुट्टी मिल जाएगी।

आदम—तब तो हिंदीभाषी ही हिंदू राष्ट्र में रह जाएँगे।

देवरस—नहीं, सारे हिंदीभाषी भी हिंदू राष्ट्र में नहीं होंगे। हम 'द्विजराष्ट्र' का नारा देंगे।

आदम—यानी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, ये हिंदू राष्ट्र में होंगे। शूद्र इसके बाहर होंगे।

देवरस—सुनो तो। इसके बाद अगला कदम होगा—'विप्रराष्ट्र'।

आदम—यानी केवल ब्राह्मण का राष्ट्र होगा। तब अपने सर कार्यवाहक राजेंद्रसिंह जी का क्या होगा?

देवरस—वे तो विदेशी हो जाएँगे।

आदम—बाला साहेब, यह तो बड़ी विराट कल्पना है। 5-6 तहसीलों का हिंदू राष्ट्र होगा। मैं ब्राह्मण हूँ, मुझे इस हिंदू राष्ट्र में कोई स्थान मिलेगा?

देवरस—हाँ, 'हिंदू पद पादशाही' में तुम्हें हम 'जकातदार' बना देंगे या 'फड़नीस' बना देंगे।

आदम—ये क्या होते हैं? फड़नीस क्या जुए का फड़ चलाता है?

देवरस—नहीं जी, तुमने हिंदू पद पादशाही का इतिहास नहीं पढ़ा। जकातदार याने टेक्स विभाग का अफसर। फड़नीस याने दफ्तर का प्रधान!

आदम—और आपका पद क्या होगा?

देवरस—हम होंगे, पेशवा बाला साहेब देवरस महाराज!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्गरेट थैचर को बधाई

मोरारजी ने आदम से कहा—तुम मेरे दिमाग को अच्छी तरह समझते हो। कई लोग तो यही नहीं मानते कि मेरे पास दिमाग भी है। तो मार्गरेट थैचर को मेरी तरफ से बधाई की चिट्ठी तुम्हीं बना दो। मैं दस्तखत करके भेज दूँगा। आदम ने जो मसौदा बनाया, नीचे दिया जा रहा है—

प्रिय मार्गरेट थैचर,

मैंने जो आपको 'प्रिय' संबोधन लिखा है, उससे गलतफहमी नहीं होनी चाहिए। आपको मोरारजी भाई वल्द रणछोड़ भाई देसाई साकिन सूरत ने 'प्रिय' नहीं कहा, भारत के प्रधानमंत्री ने कहा है। मोरारजी तो ब्रह्मचारी है, जो किसी स्त्री को 'प्रिय' कहना तो दूर, उसकी तरफ देखना भी पाप समझता है।

मैं किसी मार्गरेट नाम की महिला को 'प्रिय' नहीं कह सकता। यह बहुत खराब नाम है। देख लीजिए, एक मार्गरेट आपकी रानी की बहन है जो इस वानप्रस्थाश्रम में अपने ब्याहता घरवाले को छोड़कर एक कम उम्र के गवैये के साथ मौज कर रही है। फिर आप उसे ब्रिटिश जनता के पैसे में से लाखों पौंड अलाउंस देंगी। दूसरी मार्गरेट कैनेडा के प्रधानमंत्री त्रूदो की पत्नी है जो पति परमेश्वर को छोड़कर गवैयों-नचैयों के साथ घूमती है।

देखिए, मैं हठी आदमी हूँ। मैं अभी भी यही मानता हूँ कि स्त्री शासन करने के योग्य नहीं है। हमने एक स्त्री को देख लिया। मैं इस वक्तव्य के लिए आपसे माफी माँग सकता हूँ, क्योंकि आप विदेशी हैं। देशी स्त्री से मैं कतई माफी नहीं माँगूँगा, हालाँकि एक देशी स्त्री के कारण ही मैं आज प्रधानमंत्री हूँ।

आपको बधाई देने के कारण हैं। एक तो आप भी कंज़रवेटिव हैं और मैं भी कंज़रवेटिव हूँ। कंजरवेटिव—कंज़रवेटिव भाई-बहन! ये लेबर-फेबर, सोशलिस्ट-ओशलिस्ट, कम्युनिस्ट-अम्युनिस्ट मुझे भी बिलकुल पसंद नहीं हैं। मेरा आपकी जाति से लगाव है, मैंने अंग्रेज बहादुर की नौकरी की, मैं मलिका विक्टोरिया के राज में पैदा हुआ था और महाराजा पंचम जॉर्ज के राज में डिप्टी कलेक्टर था। मैंने अंग्रेजी साम्राज्यवाद की खिदमत की है। फिर मैंने नौकरी छोड़ दी और गांधीजी के आंदोलन में शामिल हो गया। अगर नौकरी न छोड़ता तो डिसमिस होता। डिसमिस होने के डर से स्वतंत्रता आंदोलन में कूद जाने के कारण ही आज मैं प्रधानमंत्री हूँ। इतिहास में ऐसा दूसरा उदाहरण नहीं मिलेगा जब कोई डिप्टी कलेक्टर, जो डिसमिस होनेवाला हो, देश का प्रधानमंत्री हो गया हो। मैं सब तरह से अद्‌भुत हूँ। बेमिसाल हूँ। अभूतपूर्व हूँ। अद्वितीय हूँ। 'मेचलेस' हूँ। मैं आपको भी इसलिए बधाई दे रहा हूँ कि आपने कोई स्त्री अपने मंत्रिमंडल में नहीं ली। तुलसीदासजी ने कहा है—मोहि न नारि नारि के रूपा। हमारे यहाँ की उस 'लेडी' ने भी तारकेश्वरी सिन्हा और नंदिनी सत्पथी को काटकर फेंक दिया था!

मुझे सबको उपदेश देने का अधिकार है। आपको भी उपदेश देता हूँ। संयम से रहना,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृतिक उपचार करना, मदिरापान न करना, हो सके तो निभाइए। राजनैतिक उपदेश यह है कि अपने देश में जयप्रकाश नारायण और विनोबा भावे जैसे आदमी मत बनने दीजिए। आप दो उप-प्रधानमंत्री रखिए और दोनों को लड़ाती रहिए। ये कभी एक न हो पाएँ। वैसे आपने एडवर्ड हीथ को काटकर बुद्धिमानी की। यह आदमी 'लोकनायक' बनने का खतरा पैदा करता!

एक सलाह जरूरी है। आपके यहाँ वे नस्लवादी और रंगभेदवादी नेता ऐनोक प्रावेल हैं, उन्हें मिलाए रखो। उन्हीं का आदेश मानो। जब तक वे आपका समर्थन करेंगे तब तक आप राज करेंगी। मैंने खुद बाला साहब देवरस से ऐसे ही संबंध बनाए हैं और राज कर रहा हूँ।

आप हड़ताल गैर-कानूनी कर दें। हड़तालियों को जेल में डालकर जिन कारखानों का राष्ट्रीयकरण हो चुका है, उन्हें फिर प्राइवेट हाथों में दे दें।

हमारे इधर की इस 'लेडी' से कोई संबंध न रखें।

ईश्वर ब्रिटेन की आपसे रक्षा करें!

शोध-संस्थान में शोध

18 तारीख की बात है। मोरारजी कहते हैं—मैं जनता पार्टी का नेतृत्व नहीं छोड़ूँगा। मेरे देखते जगजीवनराम प्रधानमंत्री नहीं बन सकता। जगजीवनराम को याद आता है कि मैं हरिजन हूँ, तो हरिजनों, अनुसूचित जातियों के सदस्यों से अपील निकलवाई जाती है कि पंचो, मिलकर बाबूजी को प्रधानमंत्री बनाओ। जो नहीं मानेगा, उसका हुक्का-पानी बंद।

आदम को सबसे ज्यादा चिंता 'हिंदू राष्ट्र' की थी। हिंदू राष्ट्र का मामला संकट में पड़ गया था। मैं दीनदयाल शोध-संस्थान गया, जहाँ ऋषि-मुनि इकट्ठे थे। नानाजी थे, सुंदरसिंह भंडारी थे, कुशाभाऊ ठाकरे थे। मैंने उन्हें खुश करने के लिए जोर से कहा—त्वदीयाय कार्याय श्रद्धा कटीयं। उन लोगों ने आदम को डाँट दिया—चुप बैठो। फालतू मत बको। मैं सिकुड़कर बैठ गया। अनुशासन का मामला था।

नानाजी ने कहा—राजेंद्रसिंहजी, हमने जल्दी कर दी। इसी से मामला बिगड़ गया। लोग छड़क गए।

राजेंद्रसिंह—नहीं, हमने देर कर दी। शिकार पर झपट्टा नहीं मारा। धीरे-धीरे उसके पास सरकते रहे। लोगों को छड़कने का मौका ही नहीं देना था।

नानाजी—मेरा खयाल है, हमने 'शो' ज्यादा कर दिया। केदारनाथ साहनी वगैरह को संघ की रैली में चड्डी पहनकर नहीं बुलाना था।

भंडारी—नहीं, नानाजी, हमें तो अटलबिहारी और आडवाणी को भी चड्डी में बुलाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। हमारी गलती यह रही कि हमने अटलबिहारी की 'उदार' इमेज बनने दी।

इतने में एक स्वयंसेवक परेशान-सा आया। उसने कहा—मैं अब शाखा जाऊँ कि नहीं?

नानाजी—तुम कौन हो?

स्वयंसेवक—मैं एक शाखा का शिक्षक हूँ।

राजेंद्रसिंह—तुम्हारे मन में यह शंका क्यों उठी कि शाखा जाऊँ या नहीं?

स्वयंसेवक—इसलिए कि आप लोगों ने 'हिंदू राष्ट्र' का उद्देश्य छोड़ दिया।

राजेंद्रसिंह—गलत है। हमने नहीं छोड़ा।

स्वयंसेवक—पर यह पेपर में छपा है।

नानाजी—तुम कैसे शाखा-शिक्षक हो जी? क्या तुम्हें यह पता नहीं है कि हिंदू राष्ट्र का आधार झूठ है। अगर तुम्हारी झूठ के प्रति निष्ठा नहीं है तो तुम क्या निर्माण करोगे हिंदू राष्ट्र का! तुम्हारा 'बौद्धिक' ठीक से नहीं हुआ। देखो, इस समय हम दूसरों को धोखा देने के लिए यह झूठ बोल रहे हैं। तुम स्वयंसेवकों को समझा दो कि हमारे सार्वजनिक बयान सब झूठे होते हैं। सत्य केवल हमारे गुप्त सर्कुलर में होता है।

स्वयंसेवक—पर और भी कठिनाई है। मैं चड्डी और टोपी पहनकर निकला था तो लोग आवाजें कसने लगे।

भंडारी—क्या कहते हैं लोग?

स्वयंसेवक—कहते हैं, इन चड्डीवालों को सबने त्याग दिया। इनके साथ कोई नहीं बैठना चाहता। ये अछूत हैं। और भी गंदी बातें कहते हैं।

नानाजी—क्या बातें?

स्वयंसेवक—आप वयोवृद्ध हैं। आपके सामने वे बातें नहीं कह सकता।

इतने में एक और स्वयंसेवक आ गया। वह आते ही रोने लगा।

भंडारी—अरे, रोते क्यों हो?

स्वयंसेवक—मुझ पर संकट आ गया।

नानाजी—अरे, राष्ट्रसेवा में संकट तो आते ही हैं।

स्वयंसेवक—आपको राष्ट्र की पड़ी है। मेरी तो लगी-लगाई शादी टूट गई। एक अच्छी जगह शादी लगी थी। मैंने कह दिया था, आडवाणीजी मुझे रेडियो पर अच्छी नौकरी देनेवाले हैं।

भंडारी—आडवाणीजी तो फिर मंत्री हो जाएँगे।

स्वयंसेवक—सो तो ठीक है। पर मेरा ससुर कहता है कि हिंदू दो जातियों में बँट गया है—संघी हिंदू, और गैर-संघी हिंदू। मैं गैर-संघी हूँ। तुम संघी हो। तुम नीची जाति के हो। मैं अपनी लड़की की शादी तुमसे नहीं करूँगा।

नानाजी ने उसे समझाया कि हम तुम्हारी शादी किसी 'राष्ट्रसेविका' से करा देंगे। वह चला गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदम ने अब बात शुरू की।

आदम—नानाजी, मैं तो बहुत दुखी हूँ। आखिर, आप लोग अपने ऊँचे-ऊँचे आदर्श क्यों छोड़ रहे हैं। सुना है, ये अपने मंत्री लोग कहनेवाले हैं कि हमारे संघ से संबंध नहीं हैं।

नानाजी—हाँ, तो क्या हुआ?

आदम—और आप लोग यह कहने लगे हैं कि हम हिंदू राष्ट्र का उद्देश्य छोड़ते हैं।

नानाजी—हाँ, तो इससे क्या हुआ?

आदम—देवरसजी ने तो यहाँ तक कह दिया है कि संघ का विश्वास संसदीय लोकतंत्र और समाजवाद में है।

नानाजी—तो इससे तुम परेशान क्यों हो। अरे, मौका देखकर कह ही तो रहे हैं। कर तो नहीं रहे हैं। सत्ता अपने को चाहिए न। देखो, मान लो ऐसी स्थिति आए कि बाकी दल कहें कि हम सिर्फ मुस्लिम लीग के साथ मिलकर सरकार बनाएँगे। तब संघ का क्या कर्तव्य होगा। संघ कहेगा—वास्तविक मुस्लिम लीग तो हम हैं।

आदम—तो क्या संघ मुस्लिम लीग हो जाएगा?

नानाजी—बिलकुल। इसमें क्या झंझट है। सत्ता में रहना है, नाम कोई भी हो।

राजनीति के रंगा-बिल्ला

आदम हैरान है कि खबरों में बिल्ला और रंगा छाए हुए हैं। रेडियो खोलो तो बिल्ला-रंगा। अखबार खोलो तो बिल्ला-रंगा। किसी से बात करो तो वही विषय—बिल्ला-रंगा। मोरारजी, चरणसिंह, राजनारायण वगैरह का कोई नाम नहीं लेता। अपराध की दुनिया के बिल्ला-रंगा ने राजनीति की दुनिया के बिल्ला-रंगा को दबा दिया।

सोचा, राजनीति के बिल्ला-रंगा गर्दिश में हैं। इनसे मिल आऊँ तो इन्हें कुछ राहत मिले। मैं पहले मोरारजी के पास पहुँचा। वे मुझे देखते ही बिचके। बोले—तुम पत्रकार हो न, और कोई आरोप कांतिभाई के खिलाफ लाए हो। लाओ, फाइल में रख लूँ।

मैंने कहा—नहीं भाईजी, मैं कांतिभाई का प्रशंसक हूँ, जैसे संजय गांधी का था। मैं तो इसलिए आ गया कि बिल्ला और रंगा के कारण आपको कोई पूछ नहीं रहा है।

मोरारजी ने कहा—मैं सब समझता हूँ, तुम शिकायत करने आए हो कि अपराध बहुत हो रहे हैं। अरे, जब मैंने सबको भयहीन कर दिया है तो भयहीन लोग क्या चिड़ियों को दाना खिलाएँगे या गाय के आगे घास डालेंगे? भयहीन लोग मार-पीट, हत्या वगैरह ही तो करेंगे। फिर तुम लोग भारत को एक आधुनिक राष्ट्र क्यों नहीं बनने देना चाहते ? देखते नहीं, आधुनिक राष्ट्र में क्या होता है? न्यूयार्क में हर दो मिनट में एक हत्या होती है, लंदन में दस मिनिट में एक हत्या होती है, पेरिस में सात मिनिट में, रोम में साढ़े आठ मिनिट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में···भाईजी, इतने ही आँकड़े काफी हैं। मैं तो यह कहने आया हूँ कि अपराधी कहते हैं कि आप लोगों से, यानी नेताओं से ही प्रेरणा ले रहे हैं। जैसा आप लोग कर रहे हैं, वैसा ही वे कर रहे हैं।

मोरारजी खुश हुए, बोले—यह तुमने अच्छी बात बताई। आखिर देशवासी हमसे प्रेरणा लेते हैं। तीस सालों के बाद लोगों को प्रेरणादायक नेतृत्व मिला है।

मैंने कहा—जी हाँ, यही चोरी-चमारी, अपहरण, सेंध लगाना स्टैंडर्ड से करते हैं।

भाईजी बोले—वे अपने से कुछ भी करें। प्रेरणा तो ले रहे हैं हमसे। कितने देशों के भाग्य में ऐसा नेतृत्व है।

मैंने कहा—और सुनाइए। सत्य के क्या हाल हैं?

भाईजी ने कहा—सत्य स्वस्थ है। सत्य बढ़ रहा है। अब 18 महीने का सत्य हो गया।

मैंने कहा—पर लोग तो कहते हैं कि सत्य मारा गया। उसकी बाल-हत्या हो गई कांतिभाई के मामले में। पुलिस आदत के अनुसार हत्यारे का पता नहीं लगा पा रही है, मगर लोगों को विश्वास है कि आपने ही अपने एक बेटे कांतिभाई के लिए दूसरे बेटे सत्य की हत्या कर दी। अगर सत्य जीवित रहता तो कांतिभाई बर्बाद होते।

मोरारजी भाई संत की मुद्रा में आ गए। कहने लगे—देखो, सत्य अपना-अपना होता है। जो मेरा सत्य है वह चरणसिंह का नहीं है। जो चरणसिंह का सत्य है, वह मेरा सत्य नहीं है।

मैंने पूछा—तो क्या सत्य और मिथ्या साथ-साथ पलते हैं?

भाईजी ने कहा—अरे भाई, ऐसा समझो कि सत्य एक लचीली बेल की तरह है। बेल अपने आप तो चढ़ नहीं सकती। तो वह मिथ्या के खंभे के सहारे चढ़ती। सत्य की बेल और मिथ्या का खंभा। समझे? अच्छा, मैंने तुम्हें काफी दर्शन सिखा दिया। अब दूसरी बात करो।

मैंने कहा—इस देश में बेकारी कब तक मिट जाएगी।

मोरारजी भाई एकदम नारे के मूड में आ गए। जोर से बोले—जनता पार्टी एक है। पार्टी नहीं टूटेगी।

मैंने कहा—मैंने तो यह पूछा है कि बेकारी कब तक मिटेगी?

मोरारजी भाई ने कहा—उसी का जवाब दे रहा हूँ। जनता पार्टी में पूर्ण एकता है। पार्टी नहीं टूटेगी।

मैंने पूछा—महँगाई कब कम होगी?

उन्होंने जवाब दिया—जनता पार्टी में पूर्ण एकता है। पार्टी नहीं टूटेगी।

मैंने आगे पूछा—गरीबी कब मिटेगी?

मोरारजी भाई ने जवाब दिया—जनता पार्टी में पूर्ण एकता है। पार्टी नहीं टूटेगी।

मैंने पूछा—हरिजनों पर अत्याचार कब मिटेंगे?

जवाब मिला—जनता पार्टी में पूर्ण एकता है। पार्टी नहीं टूटेगी।

मैंने कहा—मैं पूछ रहा हूँ कि ईश्वर का सच्चा स्वरूप क्या है??

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जवाब मिला—उसी का जवाब दे रहा हूँ। जनता पार्टी में पूर्ण एकता है। पार्टी नहीं टूटेगी।

मेरे सब प्रश्नों का ऐसा संतोषजनक उत्तर मिल गया तो मैं 'सत्यमेव जयते' करके चल दिया।

देशहित जिज्ञासा

अभी हम अटलबिहारी वाजपेयी की पाकिस्तान यात्रा की तारीफ ही कर रहे थे कि वे मारीशस चले गए। अभी पिछली यात्रा की तारीफ ही पूरी नहीं हुई है। अटलजी दो विदेश यात्राओं के बीच इतना समय तो हम-जैसे प्रशंसकों को दिया करें कि हम उनकी पिछली यात्रा का राग पूरा कर लें। हम भैरवी गा रहे हैं कि बीच में ही जैजैवन्ती उठाना पड़ता है। पाकिस्तान यात्रा की उनकी हर अदा पर हम गद्गद हो रहे हैं। वहाँ महाराजा रणजीतसिंह की समाधि पर उन्होंने फूल चढ़ाए तो उनकी छवि सिखों के दिलों में ऐसी उतर गई जैसे लस्सी उतरती है। अभी भी ओठ चाट रहे हैं। और इकबाल की समाधि पर फूल अर्पित किए तो उनकी छवि को मुसलमानों ने सुरमे की तरह आँज लिया। सिखों और मुसलमानों के प्यारे वे हुए। हिंदुओं के प्यारे तो वे तभी से हैं जब वे गौमाता की पूँछ से नजर उतारा करते थे। इमेज अच्छी बन रही है। मुस्कुराकर, हँसकर, आधी रात को कवि-सम्मेलन में पहुँचकर, 'तुम भी अच्छे, तुम्हारे दुश्मन भी अच्छे' कहकर वे सबके प्यारे बन रहे हैं।

मगर ऐसे मीठे-मीठे वातावरण में कोई अड़चन का सवाल पूछ बैठता है, तो मजा बिगड़ जाता है। पाकिस्तान में एक दुष्ट पत्रकार ने पूछ लिया कि आप पहले शिमला-समझौते का विरोध करते थे और अब उसका समर्थन क्यों कर रहे हैं। ऐसे सवाल नहीं पूछना चाहिए। सच्चे आदमी को अड़चन होती है। सच्चे आदमी से ऐसे सवाल नहीं पूछे जाते, जिससे उसकी सच्चाई खुले।

आदम से ही लोग पूछते हैं—शिमला-समझौता देश के हित में है कि देश-हित के खिलाफ ? इस समझौते का विरोध करना देशभक्ति है या समर्थन करना? पहले शिमला-समझौता करनेवालों को देशद्रोही कहा था तो अब उसका समर्थन करनेवालों को क्या कहा जाय?

मैं तो अज्ञानी हूँ। अपनी शंकाओं का समाधान अटलजी से करा लेता हूँ। अंतिम सत्य उन्हीं के पास है। मैं अटलजी के पास गया। मैंने कहा—कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूँ। कुछ ज्ञान प्राप्त करना है। अटलजी मुस्कुराते हुए बोले—अच्छा, गोया यक्ष धर्मराज से प्रश्न कर रहा है या युधिष्ठिर भीष्म से धर्म-नीति पूछ रहा है। मैंने कहा—नहीं अटलजी, मैं यक्ष नही, क्योंकि मैंने आपके भाइयों को कैद नहीं किया और आप भीष्म नहीं, क्योंकि आप शर-शैया पर नहीं हैं। मैं एक साधारण जिज्ञासु हूँ और आप ज्ञानी हैं। आपने पहले शिमला-समझौते का विरोध किया था?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अटलजी ने कहा—उस समय मैं विरोधी पक्ष में बैठा था।

मैंने पूछा—अब उसका समर्थन क्यों कर रहे हैं?

अटलजी ने कहा—अब हम सत्ताधारी हैं।

मैंने कहा—आप शिमला-समझौते का विरोध करें तो भी देशभक्ति हुई और समर्थन करें तो भी देशभक्ति हुई। आप गौ की पूजा करें तो भी गौ-भक्ति हुई और गौ-हत्या करें तो भी गौ-भक्ति हुई। मेरी मंद बुद्धि में यह जटिल रहस्य नहीं आ रहा है।

अटलजी मुझे मूढ़ समझकर हँसे। उनके कृपा-कटाक्ष से मैं कृतार्थ हो गया। उन्होंने कहा—मतिमंद, यह सत्ता राजनीति है। तुम नहीं समझोगे।

मैंने कहा—आप ठीक कहते हैं। मतिमंद न होता तो आपका प्रशंसक क्यों होता ? मुझे आप यह बता दीजिए कि सच आप पहले बोलते थे या अब बोलते हैं।

अटलजी ने कहा—सच की व्याख्या विरोधी पक्ष और सत्ता पक्ष के लिए अलग-अलग होती है।

मैंने पूछा—सत्ता राजनीति में ईमानदारी का क्या महत्त्व है?

अटलजी ने कोई उत्तर नहीं दिया। मेरी शंका का समाधान हो गया था। मैं उठने लगा तो अटलजी ने कहा—बैठो। कविता सुनते जाओ। कुछ नई कुंडलियाँ लिखी हैं।

मैंने कहा—नहीं अटलजी। ज्योतिषी ने बताया है कि मेरी मृत्यु न क्षय से होगी, न कैंसर से, न हार्टफेल से। मेरी मृत्यु कविता सुनने से होगी। प्राण मुझे भी प्यारे हैं।

वादे पूरे करो—मत करो

युवा जनता 18 मार्च को 'वादे पूरे करो' दिवस मना रहा है। युवा जनता जनता पार्टी में समाजवादियों का संगठन है। युवा जनता के युवक जनता सरकारों से वादे पूरे करने की माँग करेंगे। इसमें एक मूल गलती है। कोई भी अपनी सरकार से सड़क पर माँग नहीं करता कि वादे पूरे करो। वह चुपचाप मंत्री के घर या दफ्तर में जाकर वादा पूरा करा लेता है। यों वादे पूरे हो भी रहे हैं। जैसे मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री सकलेचा ने पुलिस से युवा जनता के सिर फुड़वा दिए। चुस्त प्रशासन का वादा पूरा हुआ। संपूर्ण क्रांति थोड़ी-सी बकाया रह गई थी, सो पूरी हुई।

जनता पार्टी में केवल यही युवा नहीं है। जनता युवा मोर्चा भी है। यह जनसंघ का है। मैं इन जनता युवा मोर्चावालों से कहता हूँ—वीरो, क्यों सुस्त बैठे हो। तुम अतुलित बल-बुद्धि निधाना। वीरो, उठो। युवा जनता 'वादे पूरे करो' के नारे के साथ जुलूस निकालनेवाले हैं। तुम भी जुलूस निकालो। नारे लगाओ—वादे पूरे मत करो।

मजा आ जाएगा। जनता की जिंदगी नीरस हो रही है। उसे रस मिलेगा, जब ऐसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारे सुनने को मिलेंगे–

–वादे पूरे करो।

–वादे पूरे मत करो।

–वादे पूरे करो वरना गद्दी छोड़ दो।

–वादे पूरे मत करो और गद्दी पर डटे रहो।

जनता अल्पसंख्यक सम्मेलन

भोपाल में 'जनता अल्पसंख्यक सम्मेलन' हो रहा था। मुझे एक मुलाकाती मिल गए।

मैंने पूछा–कहो खाँ, कहाँ से आ रिये हो?

उन्होंने कहा–जलसे से आ रिया हूँ। बड़ा मजा आया। तुम नहीं गए वहाँ? कैसे मुसलमान हो?

मैंने पूछा–कौन-सा जलसा मियाँ?

उन्होंने कहा–अरे, वही जनता अल्पसंख्यक सम्मेलन–जनता माइनारिटीज़ कान्फ्रेंस।

मैंने पूछा–अच्छा, अगर यह जनता पार्टी का जलसा था तो उसमें मुख्यमंत्री सकलेचा, दूसरे संघी मंत्री और पार्टी के सदर कुशाभाऊ ठाकरे भी होंगे।

उन्होंने कहा–इनमें से कोई नहीं था। शायद ये लोग शहर के बाहर होंगे। मगर इसी वक्त ये सब शहर के बाहर क्यों चले गए?

तब एक तीसरे अल्पसंख्यक मुलाकाती वहाँ आ गए थे। उन्होंने कहा–हो सकता है, दंगे के अंदेशे में जिला मजिस्ट्रेट ने इन्हें जिलाबदर कर दिया हो।

मैंने कहा–जनाब, ये इसलिए नहीं गए कि वहाँ राजनारायण साहब आनेवाले थे। राजनारायण आजकल खुलेआम कह रहे हैं कि दंगा आर.एस.एस. कराता है। यहाँ भी उन्होंने यही कहा। ऐसी हालत में इन बेचारे संघियों की फजीहत हो जाती। चुप कैसे बैठते? और जवाब भी कैसे देते? माना कि वे मुख्यमंत्री और मंत्री हो गए हैं, फिर भी कुछ इज्जत रखने का हक तो उनको भी है। बहरहाल, जलसे में क्या हुआ?

दूसरे अल्पसंख्यक ने कहा–तकरीरें हुईं जनाब! बढ़िया तकरीरें। खुदा की कसम, मजा ही आ गया। चंद्रशेखर साहब ने कहा कि अब 'माइनारिटी फोरम' बन जाना चाहिए।

तीसरे अल्पसंख्यक ने कहा–यह तो बहुत अच्छी बात है। कमीशन बहुत हो गए। अब 'फोरम' होना चाहिए। पर अगले दंगे के बाद क्या बनेगा? कमीशन, कार्पोरेशन, बोर्ड? फोरम के बाद कौन-सा नाम मिलेगा अब?

मैंने कहा–नामों की कमी नहीं पड़ेगी। जितने दंगे, उससे ज्यादा अंग्रेजी में शब्द मिल जाएँगे। अब होंगे–माइनारिटीज़ कौंसिल, माइनारिटीज़ सिंडीकेट, माइनारिटीज़ गिल्ड।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरे अल्पसंख्यक ने कहा—साहब, आप जरा सरकार को ऐसे कुछ नाम सुझा दीजिए। ऐसा न हो कि नाम न मिलने से कमेटियाँ बनना बंद हो जाएँ। आखिर हमारा भला कमेटियों, तकरीरों और बयानों से ही तो होनेवाला है। हम तो घबरा जाते हैं अगर किसी महीने कमेटी, कमीशन नहीं बनता।

मैंने पूछा—और जॉर्ज साहब की तकरीर कैसी रही?

दूसरे ने कहा—बहुत लाजवाब! उनका इंकिलाबी किरदार तब तक कायम रहेगा जब तक नेहरू खानदान है। अगर राजीव गांधी का लड़का सिर्फ मुंशी हुआ तो वे उस मुंशी के खिलाफ भी इंकिलाब करेंगे।

मैंने पूछा—मियाँ, यह सम्मेलन क्या हम मुसलमानों के भले के लिए बुलाया गया था ?

दूसरे ने कहा—नहीं साहब, यह तो उन्हीं के भले के लिए बुलाया गया था। जनता पार्टी के लिए, हमारे भले के लिए नहीं।

मैंने पूछा—तो फिर आप लोग उसमें शरीक क्यों हुए?

तीसरे ने कहा—वाह साहब, कोई अगर हमारा नाम लेकर अपना भला करना चाहे तो हमें उसमें जरूर शिरकत करना चाहिए। हम शरीफ इन्सान हैं। कांग्रेस भी अपने भले के लिए ऐसा जलसा करेगी तो हम उसमें भी शरीक होंगे। आखिर सबको अपना भला करने का हक है।

मैंने पूछा—मगर वे मुसलमानों से चाहते क्या हैं? उनका भला किस बात में है?

दूसरे ने कहा—उनका कुल कहना यह है कि मुसलमानो, संघ हमारी पार्टी में है; सरकार में है। संघ के बिना सरकार रह नहीं सकती। तो संघ अगर तुम्हें मारे, तुम्हारे घर जलाए, तो बुरा मत मानना। शोर मत मचाना, रोना मत। हमारा खयाल करना। खुदा तुम्हें जन्नत देगा। कुल इतना चाहते हैं ये बेचारे। बड़े परेशान हैं। हमें इनकी मदद करनी चाहिए। इन्सानियत भी कोई चीज है।

इतने में चौथे अल्पसंख्यक आ गए। उन्होंने एक दूसरी बात उठा दी। कहने लगे—सब पार्टी के लोग, दीगर लोग, सेकुलर लोग कह रहे हैं कि अलीगढ़ में संघ ने मुसलमानों पर हमला किया। पिछले दंगों के जाँच कमीशनों की रिपोर्ट भी होम-मिनिस्ट्री के पास है, जिसमें यही कहा गया है। होममिनिस्ट्री के पास खुफिया रिपोर्ट भी है। इसके बावजूद हमारे राष्ट्रपति उसी संघ के सर संघचालक बाला साहब देवरस के साथ गोंडा में जलसे में शरीक हो रहे थे। उनके साथ खाना खा रहे थे। वह फोटो भी छपी है।

तीसरे ने कहा—यह तो ऐसा ही हुआ जैसे डाकू कहीं डाका डाल रहे हों और सुपरिंटेंडेंट पुलिस उसी वक्त डाकुओं के सरदार के साथ खाना खा रहे हों। हमारे राष्ट्रपति ने यह क्या किया?

आदम इस पर क्या बोलता? मैंने कुल इतना कहा—भाई, इस वक्त हर अल्पसंख्यक को अपने भले की पड़ी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिली के तानाशाह पिनोशे से भेंट

(भाग-3)

मेरे मित्र कमलेश्वर के आग्रह पर मैं स्तंभ शुरू कर रहा हूँ। मैं बहुत व्यंग्य लिखता हूँ। काफी व्यंग्य मैं उपनाम से लिखता हूँ। हरिशंकर परसाई तो सबसे मिल नहीं सकता, पर 'कबीर' और 'आदम' मिल सकते हैं। इसीलिए मैंने स्तंभ का नाम रखा है—'कबिरा खड़ा बजार में'।

कबीर क्रांतिकारी कवि था। उसने कहा था—

'तू बाम्हन बम्हनी का जाया,
आन द्वार काहे नहिं आया।
तू है तुरक तुरकनी जाया,
भीतर खत्तन क्यों न कराया'।।

तो कबीर ही लोगों से मिलेगा। बात करेगा। आकर कहेगा—

'कौन ठगवा नगरवा लूटल हो!'

मुझे पहले जगन्नाथ काका मिल जाते थे। वह बातें करते थे, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय। उनकी मौत हो गयी।

अब यह एक कनछेदी लाल है, हालाँकि इसके कानों में छेद नहीं है। इस देश में यही है—गरीबमल करोड़पति है और मायाराम गरीब।

तो कबीर चिली गया—

एलेंदे मार डाले गए थे।

मैंने फौजी राष्ट्रपति से भेंट करनी चाही। मैंने चिट पर लिख भेजा—कबीर वांट्स टू मीट विद यू! (कबीर आपसे मिलना चाहता है।)

एक अफसर आया। कहने लगा—हू इज दिस कबीर? वी डू नाट मीट रास्कल्स! (यह कबीर कौन है? हम बदमाशों से नहीं मिलना चाहते।)

मैंने कहा—कबीर बदमाश था पर बदमाश आप भी हैं, जो जनतांत्रिक सरकार को नष्ट करके सत्ता पर हावी हो गए हैं।

अफसर ने पूछा—यह कबीर कौन था? कहाँ का था?

मैंने कहा—कबीर कवि था। भारत का था।

उसने कहा—ओ, अ पोएट! ही मस्ट हैव बीन लाइक पैब्लो नेरूदा। वी आर आफ्रेड ऑफ पोएट्स। देअर वाज ए रास्कल इन टर्की—नाज़िम हिकमत। ही इज डैड। (अरे कवि! हम कवियों से बहुत डरते हैं। एक बदमाश कवि था तुर्की में नाज़िम हिकमत। वह मर गया। अच्छा हुआ।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने कहा—मेहरबानी करके मेरी नए फौजी राष्ट्रपति से भेंट करा दो।

अफसर मुझे भीतर ले गया। फौजी तमगे लगाए नए राष्ट्रपति बोले—बैठ जाओ। तुम भारत से आए हो। भारत देश तो महान है, पर तुम्हारी प्रधानमंत्री हमारी क्रांति के खिलाफ क्यों बोल रही हैं?

मैंने कहा—यह क्या आपने क्रांति की है?

राष्ट्रपति ने कहा—बिलकुल क्रांति की है, मगर यह 'कॉपर क्रांति' है।

मैंने कहा—जैसे अरब देशों में 'तेल क्रांति' होती है?

राष्ट्रपति बोले—बिलकुल ठीक। ऐसी ही क्रांति है।

मैंने कहा—यह क्रांति किसने करवायी?

राष्ट्रपति बोले—डॉलर ने।

मैंने कहा—अमेरिका के पास डॉलर तो हैं पर सोना नहीं है। अफ्रीका का सारा सोना स्विट्ज़रलैंड के मार्फत यूरोप के काला बाजार में बिकता है। अब तो भिखारी भी तख्ती लगाता है—'डॉलर्स नॉट एक्सेप्टेड' (डॉलर नहीं लिया जाएगा।) जब भिखारी भी डॉलर नहीं लेता, तो फिर डॉलर ने चिली में क्रांति कैसे करवा दी?

राष्ट्रपति बोले—हॉट आर्म्स (गरम हथियार) और षड्यंत्र सी. आई. ए. का। तुम्हारा भुट्टो भी तो गरम हथियारों के लिए निक्सन के पाँव पकड़ता है!

मैंने कहा—पर निक्सन खुद कहते हैं कि हमारा कोई हाथ चिली की घटना में नहीं है।

फौजी राष्ट्रपति बोले—दी वूमन प्रोटेस्ट्स टू मच। (यह औरत बहुत ज्यादा विरोध करती है।) यह औरत की आदत है। जब 'नहीं' कहती है, तब इसका अर्थ 'हाँ' होता है। पूरे लेटिन अमेरिका पर, इस विरोध करनेवाली औरत पर, अमेरिकी साम्राज्यवाद कब्जा करेगा। हम करवाएँगे।

कबीर ने कहा—नेरूदा से मुलाकात हो सकेगी?

राष्ट्रपति बोले—वह तो मर गए।

मैंने पूछा—मर गए या मार डाले गए?

राष्ट्रपति ने कहा—कुछ भी समझो, पर उनकी आत्मा हमने एक शीशी में बंद कर रखी है। तुम चाहो तो बात कर लो।

मैंने कहा—नेरूदा मार्क्सवादी था। मार्क्सवादी शरीर के बाहर आत्मा नहीं मानता। फिर यह आत्मा?

राष्ट्रपति बोले—यही तो हमारा कमाल है। हम मार्क्सवादी की आत्मा भी शीशी में बंद कर लेते हैं।

मैं शीशी के पास गया। मैंने कहा—नेरूदा, यह कबीरदास है।

शीशी से नेरूदा की आत्मा बोली—अरे कबीरदास? तुम तो पाँच सौ साल पहले मर गए थे। मैंने रवींद्रनाथ का तुम्हारी 100 कविताओं का अंग्रेजी अनुवाद पढ़ा है। तुमने क्या फिर जन्म ले लिया?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने कहा—हाँ। क्या कहना है, आपको?

नेरूदा की आत्मा शीशी से बोली—अब क्या कहना है? मैं पहले ही कह चुका—

सोमवार मंगलवार से जुड़ा है
और सप्ताह पूरे साल से
काल को काटना असंभव है
तुम्हारी कैंचियों से
और दिन के सारे नाम
घुल जाते हैं, रात के जल में।

× × ×

समय अपने जूते खो चुका है
एक साल चार शताब्दियों-जैसा होता है।

नेरूदा की आत्मा चुप हो गयी। मैंने कहा—और क्या कहना है? मैं कबीरदास हूँ।

नेरूदा की आत्मा बोली—मैं कैंसर से नहीं मरा। मेरी हत्या की गयी है। आत्महत्या करता तो पिशाच हो जाता। पिशाच मैं होना नहीं चाहता था। मेरा दोस्त एलेंदे भी पिशाच नहीं होना चाहता था। और मैं क्या कहूँ—

लकड़बग्घे! हमारे इतिहास के गंदे चूहे
तुम कुतर रहे हो उन झंडों को जो हम जीतकर लाए थे।

और फिर नेरूदा ने कबीर से अंत में कहा—मैंने लिखा है—

कमजोर तानाशाह बात कर रहा है नर्क से
सुनहरे फीते, पट्टे, बैज लगाकर।

कबीर ने कहा— नेरूदा, बात हो चुकी। वॉल्तेयर ने जीवन-भर ईसाइयत के पाखंड का विरोध किया। 99 साल की उम्र में जब वॉल्तेयर मर रहा था, तो पादरी आए। कहने लगे—हम आपकी आत्मा की शांति की प्रार्थना करने आए हैं। वॉल्तेयर ने कहा—मेरी आत्मा बिलकुल ठीक है, तुम अपनी आत्मा की चिंता करो। पर तुम आए किसकी तरफ से? पादरी बोले—हम तो ईश्वर की तरफ से आए हैं। वॉल्तेयर ने कहा—तो फिर मुझे ईश्वर की चिट्ठी दिखाओ कि मैं इन्हें वॉल्तेयर के पास भेज रहा हूँ। पादरी लौट गए। वॉल्तेयर मर गया। पेरिस के किसी कब्रगाह में उसे दफना नहीं सके। पेरिस से 40 मील दूर एक कस्बे के पादरी ने कहा—धर्म के पाखंडी नियम महान प्रतिमाओं के लिए नहीं होते। वॉल्तेयर को मैं दफन करता हूँ।

नेरूदा की आत्मा बोली—कबीरदास, तुमने सच कहा। हम सब शहीद होते रहे हैं। मैं भी हो गया। तुम मेरे लिए परेशान क्यों हो?

मैंने कहा—कोई चिंता की बात नहीं है। एक ऐतिहासिक 'नियति' होती है। मैंने पूर्वजन्म में कहा था—

मन फूला-फूला फिरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगत् में कैसा नाता रे!

लौटा तो वही कनछेदीलाल मिल गए।

कहने लगे—गुरु, बहुत दिन बाद लौटे। क्या चिली हो आए? नये राष्ट्रपति से भेंट हुई?

मैंने कहा—हुई। पर मैं थका हूँ, आराम करूँगा।

कनछेदीलाल कहने लगे—गुरु, कुछ तो कह दो।

मैंने कहा—जाते समय मैंने कहा था—कौन ठगवा नगरवा लूटल हो!

मैंने ठग को पकड़ लिया।

पर अब मैं यही कह सकता हूँ—

कहत कबीर सुनो भई साधो
सारी दुनिया झूठल हो!

पर कनछेदीलाल, जिनके कान में छेद नहीं है, और जो शायद दूसरे के कान में छेद करते हैं, कहने लगे—गुरु, चावल के राष्ट्रीयकरण की बात चल रही है। कई मुख्यमंत्री विरोध कर रहे हैं। देश लौट आए हो, तो इंदिराजी से बात कर लो।

मैंने कहा—कनछेदीलाल, दो-तीन दिन बाद कबीर इंदिराजी से मिलेगा। मगर तुम तलाश करो—कौन ठगवा नगरवा लूटल हो?

और तुम यह भी समझो—

चली कुलबोरन गंगा नहाय के
खसम के माथे पे सूपा धराय के
पाँच-पचीस के धक्का खाय के
चली कुलबोरन गंगा नहाय के।

कनछेदी, यह क्या कुलबोरन धर्म इस देश में चल रहा है?

कनछेदी चुप हो गए।

फिर बोले—गुरु, आगे मैं चावल के राष्ट्रीयकरण पर पूछूँगा। इस बीच आप प्रधानमंत्री से मिल आइए।

मैंने कहा—ठीक है, कनछेदीजी। 'सारिका' के अगले अंक में तुम पढ़ लेना। पर कान तो छिदवा लो।

कनछेदी बोले—गुरु, कान बचपन में छिदवाए जाते हैं। पर जमाना ऐसा आ गया है कि मुझे 50 साल की उम्र में कान छिदवाना पड़ेगा। यह भी मैं कर लूँगा।

इंदिरा गाँधी से भेंट

कबीरदास ने सोचा कि गुजरात का खून सूखा नहीं है और इधर बिहार में गीला खून बह रहा है। आगे महाराष्ट्र में, उत्तरप्रदेश में कहीं भी खून बह सकता है। इधर खाने की चीजों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हाय-हाय' मची ही है। कबीर ने सोचा कि इस बार प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी से ही मिल लें।

घर से निकला तो चमचमाता सूट पहने हुए था। कनछेदीलाल ने टोका—अरे कबीरदास, आज तो तुम आई. ए. एस. लग रहे हो, या किसी राहत कार्य के ओवरसियर मालूम होते हो!

मैंने कहा—प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी से मिलने जा रहा हूँ। पाँच सौ साल पुराने कपड़े पहनकर जाता तो मुझे चपरासी दो चाँटे मारकर पुलिस के हवाले कर देता। पर, कनछेदीलाल, यह तो बताओ कि तुम घंटे-भर से दाँत क्यों खोद रहे हो?

कनछेदीलाल ने कहा—देखो कबीर, बात यह है कि आज दोपहर को भर पेट भोजन किया। सोचा कि जी-भरकर दाँत खोद लेना चाहिए। अनाज की जो हालत तुम देख रहे हो, तो ऐसा समय आ सकता है, जब दाँत खोदने की जरूरत ही न पड़े।

मैं कनछेदीलाल की बात से चकित रह गया। मैंने कहा—कनछेदी, तुमने कान के बदले दिमाग छिदवा लिया है! ऐसी बातें करते हो। इतने निराश क्यों हो? केंद्र राज्यों को विदेशों से मँगवाकर भी अनाज देता है। प्रदेश की सरकार जिलों को भेजती है। जिले का अधिकारी अनाज के अधिकारी को देता है। वह अपने नीचे के अधिकारी को देता है। फिर वह अनाज सहकारी दूकानों और सरकारी दूकानों में जाता है। वहाँ से जनता को मिलता है। इतने अधिकारी इसमें लगे हैं कि जनता को अनाज मिलेगा ही।

कनछेदीलाल ने कहा—पकड़ यहीं पर है। इतने अधिकारी एक के ऊपर एक इस काम में न लगे होते तो जनता को खूब अनाज मिल जाता।

मैं समझा नहीं तो कनछेदीलाल ने कहा कि मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूँ—एक राजा को भाँग खाने की आदत थी। वह शाम को भाँग का एक बड़ा गोला खाता। अपने खास नौकर को उसने आदेश दे रखा था कि मैं तो नशे में रहूँगा, तुम मुझे रात को हर दिन एक पाव मलाई खिलाया करना। नौकर ने सोचा कि राजा तो नशे में है, तो आधा पाव खुद खा लेता और आधा पाव राजा के मुँह में डाल देता। कुछ दिनों बाद राजा को लगा कि मुझे पूरी मलाई नहीं मिलती और यह नौकर भ्रष्टाचार करता है। उसने उस नौकर पर निगरानी के लिए एक नौकर और रख दिया। वे दोनों एक हो गए। पौन पाव मलाई दोनों खा जाते और एक छटाँक राजा को खिला देते। कुछ दिनों बाद राजा को फिर शक हुआ कि दोनों बेईमानी करते हैं और उसने तीसरा आदमी उन पर निगरानी के लिए रख दिया। अब राजा को कुल आधा छटाँक मलाई मिलने लगी। बाकी वे तीनों नौकर खा जाते। राजा ने इस भ्रष्टाचार को रोकने के लिए पाँचवाँ और फिर छठा नौकर रखा। इन लोगों ने सोचा कि यह तो नशे में रहता है, इसलिए थोड़ी-सी मलाई उसकी मूँछों पर चुपड़कर बाकी मलाई वे लोग बाँट खाते। यही हो रहा है। जनता की मूँछ पर मलाई लगायी जा रही है और सारी मलाई बीच के लोग खा रहे हैं। तुम यह कहानी इंदिरा गाँधी को जरूर सुना देना।

बड़ी मुश्किल से कबीरदास इंदिरा गाँधी के कमरे में पहुँचा। उन्होंने कहा—वैसे मैं बहुत व्यस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ। कुछ घंटों बाद मुझे एक विदेशी मेहमान का स्वागत करना है। पर तुम मुझे वह कबीरदास तो नहीं लगते। वह जुलाहा था और तुम चमचमाता सूट पहनकर शायद टैक्सी में आए हो। तुम कैसे कबीरदास हो!

मैंने जवाब दिया—यह मत समझिए कि माया ने मुझे ठग लिया है या 'रमैया की दुलहन' ने मेरा बाजार लूट लिया। मैं वही कबीरदास हूँ, लेकिन शताब्दी बीस का हूँ। स्वभाव से वही हूँ। मैं सबसे पहले आपको बधाई देना चाहता हूँ कि फूड कॉरपोरेशन के अध्यक्ष पर भ्रष्टाचार का मुकदमा चल रहा है। नीचे के लोगों के बारे में भगवान ही जानता होगा, पर इसी एक मामले से अपने राज्य-व्यापार, राष्ट्रीयकरण और अनाज-वसूली के कार्य की सफलता सिद्ध होती है।

इंदिराजी थोड़ी देर उदास-सी रहीं। संत होने के कारण उन्होंने मुझे डाँटकर नहीं भगाया।

वह कहने लगीं कि हम पूरी सावधानी बरतते हैं। हमारे पास भ्रष्टाचार-विरोधी विभाग है, सी. बी. आई. है, निगरानी आयोग है। ये तो इक्का-दुक्का मामले हैं। होते ही हैं।

कबीर ने कहा—आप बुरा न मानें। मुझे अभी रेलगाड़ी में एक आदमी मिला। मैंने पूछा कि किस विभाग में काम करते हो? उसने जवाब दिया—मैं भ्रष्टाचार-विरोधी विभाग के 'भ्रष्टाचार सेक्शन' का अधिकारी हूँ।

इंदिराजी परेशानी में पड़ गयीं। कहने लगीं—ऐसा भी होता है। मैंने यह तो सुना था कि निगरानी आयोग का अधिकारी भ्रष्टाचारियों से निगरानी के पैसे ले लेता है।

मैंने उनके मन को खुश करने के लिए कहा—एक कनछेदीलाल है। उसने मुझे अभी एक कहानी सुनायी है। आपको सुनाता हूँ। और मैंने राजा की मलाई की कहानी सुना दी। वह पहले तो खूब हँसीं, फिर गंभीर हो गयीं। कहने लगीं—क्या सरकार की मूँछ पर मलाई लगा दी जाती है, मलाई बाकी लोग खा जाते हैं?

मैंने कहा—इस कहानी का अर्थ यह है कि सरकारें भाँग के नशे में पड़ी रहती हैं। जनता की मलाई को बीच के लोग खा जाते हैं। आप किस देश के राष्ट्रपति का स्वागत करने जाएँगी?

इंदिराजी बोलीं—हिंद महासागर में एक नया द्वीप मिला है, जिसकी आबादी करीब बीस हजार है। इस द्वीप का नाम हमने 'बीमारी द्वीप' रख दिया है। इसका राष्ट्रपति आनेवाला है।

मैंने कहा—आप पालम क्यों जाएँगी? बीस हजार की आबादीवाले द्वीप के पास हवाई जहाज तो होगा नहीं। राष्ट्रपति तो तैरकर आ सकता है। और बंबई में आप इसका स्वागत करतीं।

इंदिराजी ने कहा—नहीं, हमने उनके लिए हेलीकॉप्टर भेज दिया है, और अच्छे कपड़े भी भेज दिए हैं।

मैंने कहा—आपका स्वभाव ही यह है कि आप अनाथ बच्चों को पाल लेती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका के कितने ही अनाथ बच्चे आपने पाल रखे हैं।

उन्होंने कहा—नहीं, बात यह है कि इस द्वीप में गुलाल का बड़ा भारी भंडार है और हमारे यहाँ होली पर गुलाल का उपयोग बहुत होता है। हम तो भाई. जिस देश से किसी चीज की जरूरत हो, उसी के राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री को बुला लेते हैं। ताजमहल दिखाते हैं, राष्ट्रपति भवन में भोज देते हैं और सौदा कर लेते हैं।

मैंने कहा—हिंद महासागर में डायगो द्वीप पर अमेरिका सैनिक अड्डा बना रहा है। तो रूस चुप नहीं बैठेगा।

इंदिराजी ने कहा—संत हो न! राजनीति नहीं समझते। राजनीति की चादर में कई गाँठें होती हैं। रूस ने तो अपने यहाँ एक द्वीप तैयार कर लिया है, जिस पर मिसाइलें भी फिट कर दी गयी हैं। उसे कभी भी रूस हिंद महासागर में लाकर जमा देगा।

मैंने पूछा—निक्सन के बारे में आपका क्या खयाल है?

इंदिराजी ने कहा—निक्सन के आचरण से हम लोगों को नैतिक बल मिलता है। महाभियोग की परंपरा शुरू हो गयी, और राष्ट्रपति पद छूटने लगे तो इसी देश के कुछ लोग माँग करेंगे कि राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाया जाए, क्योंकि वह चावल खाते हैं।

कबीरदास खूब जोर से हँसा।

इंदिराजी ने कहा—इसमें हँसने की क्या बात है?

मैंने कहा—मैं इसलिए हँसा कि आप वाटरगेट कांड और चावल को एक ही समझती हैं।

इंदिराजी ने कहा—देखो संत, तुम्हारा क्या है! तुम तो भीख माँग लेते हो। तुम माया के जाल में नहीं हो, पर हमारे मंत्रियों को तो माया जोड़ना है और पद पर बने रहना है।

कबीर ने कहा—ये जो इतने प्रदेशों के हजारों विधायक हैं, इन्हें आप यह काम क्यों नहीं सौंपतीं कि वे जनता तक खाने की चीजें पहुँचाएँ और वितरण-व्यवस्था को ठीक रखें!

इंदिराजी ने कहा—तुम चादर बुनते थे, और हम राजनीति बुनते हैं। विधायकों का काम है दो गुटों में बँट जाना और चौबीस घंटे मंत्रिमंडल गिराने और बनाने में लगे रहना। फिर कहीं कोई मुख्यमंत्री कह दें कि मंत्रिमंडल में हेर-फेर होगा, तो विधायकों का काम है दिल्ली की भागदौड़ करना। यह भाग-दौड़ मैं इसलिए करवाती हूँ कि विधायक दिल्ली की सत्ता को मानते रहें।

अब मैंने कहा—चार साल पहले आपने 'गरीबी हटाओ' का नारा दिया था। उसका क्या हाल है?

इंदिराजी ने उलटे मुझसे ही पूछा कि कबीरदास तो समाज में घुला-मिला है। वही बताए कि गरीबी हट रही है कि नहीं?

मैंने कहा—कुछ जगह तो बराबर गरीबी हट रही है। मुनाफाखोर, कालाबाजारिए, घूसखोर, चोर आदि की हट रही है।

इंदिराजी खुश हुईं और बोलीं—खुशी की बात है कि कम-से-कम एक तबके की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गरीबी तो हट रही है।

मैंने कहा—लेकिन 100 में से 95 आदमियों की गरीबी बढ़ रही है। चावल की वसूली आपकी आधी हुई, और गेहूँ की वसूली के मामले में सारे मुख्यमंत्री अपनी दुम को लँगोट बनाकर भाग गए। आगे आप लोगों को क्या खिलाएँगी? महँगाई, अभाव, भुखमरी के कारण निराश, क्रोधित जनता हिंसा पर उतर आयी।

इंदिराजी ने कहा—देश में बढ़ती हुई हिंसा से मैं चिंतित हूँ। प्रतिक्रियावादी, जो समाजवाद विरोधी हैं, छात्रों को उभाड़कर उनसे सार्वजनिक संपत्ति नष्ट करवाते हैं, हिंसा करवाते हैं। ये समाजविरोधी पार्टियाँ पूँजीवादी तानाशाही लाना चाहती हैं।

मैंने कहा—आप ठीक कहती हैं—महँगाई और अभाव से पीड़ित जनता की भावना का उपयोग ये प्रतिक्रियावादी कर रहे हैं। पर मुझे बताइए कि आप अपनी पार्टी को समाजवादी पार्टी कहती हैं, रोज समाजवाद लाने के नारे लगाती हैं, आप क्रांति की बात करती है। क्रांति ये छात्र भी चाहते हैं।

इंदिराजी ने कहा—मैं जानती हूँ, पर ये छात्र पथभ्रष्ट हो जाते हैं। गलत रास्ते पर चले जाते हैं।

मैंने कहा—बहनजी, उनके सामने रास्ते ही नहीं हैं। जब रास्ते ही नहीं हैं, तो गलत रास्ते पर जाने का सवाल ही नहीं उठता है। आप कहती हैं बार-बार कि छात्र देश के विकास के लिए श्रम करें, पर वे कहाँ श्रम करें? और कौन-सा श्रम करें?

बोलीं—देखिए, भला जयप्रकाशजी-जैसे वयोवृद्ध गाँधीवादी, अहिंसावादी नेता विहार में छात्रों को हिंसा के लिए भड़काते हैं।

मैंने कहा—जयप्रकाशजी मुझे कभी समझ में नहीं आए। 1947 के बाद वह अपने को चिंतक बनाने में लग गए और अजीब सपने देखने लगे। जब रूसी अंतरिक्ष यात्री यूरी गागारिन अंतरिक्षयान में कुछ घंटे अंतरिक्ष में घूमकर लौटा तो 'मनीला टाइम्स' का संपादक तर्जी बिटाशी आपके पिताजी पंडित नेहरू से मिला। पंडितजी मजाक के मूड में थे। उन्होंने कहा—यह यूरी गागारिन कुछ घंटे अंतरिक्ष में घूम आया तो दुनिया में इतना हल्ला मचा हुआ है। हमारे देश में एक आदमी है, जो पिछले सोलह सालों से अंतरिक्ष में घूम रहा है, और उसका कोई शोर दुनिया में नहीं है। पत्रकार चौंका। उसने कहा—यह तो मुझे भी नहीं मालूम कि आपके यहाँ ऐसा आदमी है। कौन है वह? पंडित नेहरू ने कहा—उस आदमी का नाम जयप्रकाश नारायण है।

इंदिराजी बड़ी देर तक हँसती रहीं और बोलीं—पापू जब अच्छे मूड में रहते थे, तब अच्छा मजाक करते थे।

कबीर ने कहा—बात यह है कि चंबल के डाकुओं ने जयप्रकाशजी का हृदय-परिवर्तन कर दिया है।

मैं चलने के लिए उठा। उन्होंने कहा—कबीरदासजी, अंत में कुछ कहना है? मैंने कहा—कबीर को बहुत कुछ कहना था और वह कह चुका है। विदा होते समय यही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहता हूँ कि–

कहत कबीर सुनो भई साधो, छोड़ो सबकी आसा रे!

और सुनना है? सुनो–मंत्रिमंडल बदल रहे हैं पर आदमी की हालत गिरती जाती है। लाश तो वही है, सिर्फ कफन बदले हैं। यानी कमलापति गए और बहुगुणा आए, तो क्या आदमी को राहत मिलेगी? नहीं मिलेगी, क्योंकि देश को लगभग 'लाश' मान लिया गया है। और आपके ये बदलते हुए मंत्रिमंडल केवल कफन हैं। अंत में मैंने कहा–इंदिराजी, एक बात मैं भी पूछना चाहता हूँ–आपकी पार्टी में कितने समाजवादी हैं?

इंदिराजी ने कहा–तीतर के दो आगे तीतर, तीतर के दो पीछे तीतर। बतलाओ कुल कितने तीतर?

कबीरदास ने कहा–कुल तीन तीतर हुए, लेकिन लोग समझते हैं कि पाँच तीतर हैं।

इंदिराजी ने कहा–आप ठीक कहते हैं।

जयप्रकाश नारायण से भेंट

इस बार कबीर ने सोचा कि जयप्रकाश बाबू से मिल लेना चाहिए। वह एक बार फिर से अखबारों में आ गए हैं और सत्याग्रह वगैरा-वगैरा की बातें करने लगे हैं।

मैं घर से निकला तो देखा कि वही कनछेदीलाल आँगन में जुआर सुखा रहे थे। मैंने कहा–कनछेदी, जुआर सुखा रहे हो?

कनछेदी का जवाब था–तुम्हें अनाज की पहचान तक नहीं है! करघा चलाते थे और कविता कहते जाते थे! इस कारण दोनों में पूरा मन न लगने के कारण न कविता अच्छी बनती थी, और न कपड़ा अच्छा बुनते थे। इसलिए तुमने कहा है–'झीनी-झीनी बिनी रे चदरिया'। यह चदरिया बिकती नहीं होगी, इसलिए भीख माँगकर खाते होगे। तभी तुम्हें अनाज की पहचान नहीं है। और जहाँ तक कविता का सवाल है, उसमें व्याकरण की बड़ी भूलें हैं। एक विद्वान आचार्य कहते थे कि कबीरदास कवि है ही नहीं।

मैंने कहा–कनछेदी, जड़बुद्धि आचार्यों का यह विशेष गुण है कि वे जड़बुद्धि महान प्रतिभा में कविता नहीं, व्याकरण देखते हैं, जैसे कोई गुलाब के फूल की सुगंध का आनंद न ले, और कहे कि इसमें काँटे हैं। तुलसीदास तो मेरी तरह अपढ़ नहीं थे। विद्वान थे। पर वह कहीं लिखते हैं 'राजा', कहीं 'राजन्' और कहीं 'राजू', और सौंदर्य-वर्णन के ये हाल कि 'कोटि मनोज लजावन हारे'। अब बताओ कनछेदी, करोड़ों कामदेवों से तुलना करने से कोई सौंदर्य-चित्र बनता है? अरे, दस ही कह देते।

कनछेदी ने कहा–छोड़ो इस कविता की बात को! मैं तो यह कहना चाहता हूँ कि सरकार ने बड़े बनियों को अनाज की छूट दे दी है तो वे जुआर को गेहूँ कहते हैं और हमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानना पड़ता है! पर तुम इस वक्त जा कहाँ रहे हो?

कबीर ने जवाब दिया—भारतीय राजनीति के उस पुरुष से मिलने जा रहा हूँ, जिसने चदरिया ऐसे जतन से ओढ़ी कि 'जस की तस' धर रहा है—यानी जयप्रकाश नारायण से मिलने जा रहा हूँ।

कनछेदी ने कहा—खतरनाक आदमी के पास जा रहे हो। वह हृदय-परिवर्तन करता है। कहीं उसने तुम्हारा हृदय बदलकर कुत्ते का कर दिया तो रात-दिन मोहल्ले में भौंकोगे और काटोगे।

मैंने कहा—कनछेदी, कबीर भी कम नहीं है। मैंने भी कई हृदय बदले हैं। अभी मैं जयप्रकाश का हृदय बदलकर आता हूँ।

जब मैं जयप्रकाश के पास पहुँचा तो वह अकेले बैठे सिर पकड़कर सोच रहे थे। मैंने अपना परिचय दिया तो वह खुश हुए और बोले—तुम कबीरदास हो? तुम संत हो लेकिन उग्र कवि भी हो। संत उग्र नहीं होता। मैंने कहा—होता है। तुम कभी उग्र थे और अब संत हो गए हो। कुंभनदास संत थे, पर जब सीकरी अकबर से मिलने गए तो लौटकर उग्रता से कहा—

संतन कहा सीकरी सौं काम?

आवत जात पन्हैयाँ घिस गयी बिसर गयो हरिनाम!

जयप्रकाश ने कहा—मैं कबीर को जानता हूँ। तुमने कई को गिराया है—ऊँचे वर्ण और ऊँचे वर्ग को, पंडित, मौलवी, धर्मगुरु, बनिया सबको। क्या तुम पूरे देश के मंत्रिमंडलों को नहीं गिरा सकते?

मैंने कहा—जयप्रकाशजी, आपने क्या गिराने का काम ले लिया है? इस देश में सब गिरानेवाले हो गए हैं, उठानेवाला कोई नहीं है। आप मुझे गलत समझते हैं। मैंने गिराया नहीं है, उठाया है। फिर मैंने पूछा—क्या आप राजनीति में हैं?

जयप्रकाश ने कहा—मैं राजनीति में नहीं हूँ।

मैंने कहा—तो आप राजनीति में नहीं हैं?

वह तपाक से बोले—मैं राजनीति में हूँ।

कबीर ने कहा—आप जीवन-भर 'हाँ' और 'नहीं' में रहे, 'हूँ' और 'नहीं हूँ' में रहे। हमारे जैनेन्द्र की तरह। कभी राजनीति से संन्यास में पहुँच जाते हो और कभी संन्यास से राजनीति में लौट आते हो। कभी असिस्टेंट विनोबा हो जाते हो और कभी उन्हें 'सनकी' कहते हो।

जयप्रकाश ने जवाब नहीं दिया। वह उदास हो गए। मैंने मूड को हल्का करने के लिए कहा—आप बिहार के हैं। बिहार में नाम विशेष प्रकार के होते हैं। आपका नाम जयप्रकाश नारायण प्रसाद सिंह होना चाहिए था। इस पर वह हँसने लगे और बोले—तुम ठीक कहते हो। मेरा नाम यही था, पर गाँधीजी के पास गया तो उन्होंने कहा कि तेरा नाम बहुत बड़ा है। तू सिर्फ जयप्रकाश रह जा। मैंने कहा—बापू, आप तो अपने नाम के आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'महात्मा' लगाए फिरते हो और मेरे नाम में से 'नारायण' निकालना चाहते हो! मैं 'नारायण' नहीं छोड़ूँगा। और मैं जयप्रकाश नारायण ही कहलाने लगा। आगे न जाने कैसे यह 'नारायण' निकल गया और मैं 'जयप्रकाश बाबू' हो गया और अब अखबारवालों ने मुझे सिर्फ 'जे. पी.' बना दिया है।

मैंने कहा—बात यह है कि जैसे आप राजनीति में सिकुड़ते गए, वैसे ही नाम सिकुड़ता गया। राजनीति में 'नारायणत्व' समाप्त हुआ, तो नाम में से 'नारायण' निकल गया।

फिर मैंने पूछा—आजकल आप क्या कर रहे हैं?

उन्होंने कहा—बेकारी की समस्या से पीड़ित हूँ। मध्यप्रदेश में डाकू रहे नहीं, और अब मुझे कुछ डाकू चाहिए।

मैंने कहा कि आप खुद डाकू क्यों नहीं बन जाते? आपको काम मिल जाएगा और देश के दूसरे बड़े बेकार विनोबा को हृदय-परिवर्तन का काम मिल जाएगा। पर आपके उस भूदान, ग्रामदान, तहसीलदान, जिलादान वगैरा का क्या हुआ?

जयप्रकाश उदास हो गए और बोले—मैं तो 'देशदान' तक चाहता था कि लोग देश मुझे दे दें, पर लोगों ने एक गाँव तक नहीं दिया। विनोबा ने मेरी जिंदगी के इतने साल बरबाद कर दिए।

मैंने मजाक में कहा—मगर गाँधीजी ने तो विनोबा की पूरी जिंदगी ही बरबाद कर दी! वरना आज वह पवनार आश्रम में दूसरों के सहारे न जीते। लड़कों की कमाई खाते और बहू से लड़ते।

उदासी में भी जयप्रकाश हँस पड़े और कहा—तुम कबीर हो। तुम्हारी बात-बात में व्यंग्य और पेंच होता है।

मैंने कहा—जे. पी. जी, मुझे तो इस बात का दुख है कि आप-जैसा बड़ा नेता किसी नगरपालिका का सदस्य तक नहीं हो पाया।

इस पर उन्होंने कहा—मैं चाहता तो दिल्ली के मंत्रिमंडल में शामिल हो सकता था, पर मैंने पसंद नहीं किया, क्योंकि मैं अपने को प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति से भी ऊँचा व्यक्ति मानता रहा। पर नतीजा यह हुआ कि मैं अब ग्रामपंचायत तक का सदस्य नहीं हूँ।

मैंने कहा—इसीलिए आप वही कर रहे हैं, जो ग्राम-पंचायत का हारा हुआ उम्मीदवार करता है। वह ग्राम-पंचायत भंग करवाने में लग जाता है और आप सारे प्रदेशों की सरकारें भंग करने का नारा दे रहे हैं।

फिर भी पूछा—आखिर आप विनोबा की शरण में कैसे पहुँच गए?

जे. पी. ने कहा—एक तो हताशा में। दूसरे यह सोचकर कि देश में सर्वोदय ले आएँगे''मैं''ईमानदार हूँ।

मैंने कहा—सुना है, आप अमेरिका में कम्युनिस्ट कहलाते थे।

उनका चेहरा तमतमा उठा और वह गुस्से में बोले—कौन कहता है? आइ वाज नेवर ए ब्लडी कॉमी! (मैं कभी भी बदमाश कम्युनिस्ट नहीं रहा।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने सर्वोदय की बात उठायी और कहा कि सर्वोदय का अर्थ होता है सबका उदय—पर यह कैसे हो सकता है? जब सूर्य का अस्त होता है, तब चाँद का उदय होता है, पर आप सूर्य की आग और चाँद की शीतलता एक साथ बरसाना चाहते हैं। मेरा मतलब है, सर्वोदय में शोषक का भी उदय और शोषित का भी उदय, मुनाफाखोर का भी उदय और जिसकी जेब वह काटता है, उसका भी उदय। आप 'ब्लडी कम्युनिस्ट' न रहे हों, पर समतावादी समाज पर विश्वास तो रखते रहे हैं!

जयप्रकाश थोड़े तैश में आ गए और कहने लगे—मैं समझ गया। तुम्हारा मतलब 'वर्ग-भेद' और 'वर्ग-संघर्ष' से है। तुम संत हो और सर्वोदय का मजाक उड़ाते हो। यू आर ए ब्लडी कम्युनिस्ट!

मैंने सिर्फ इतना पूछा कि इतिहास में कोई उदाहरण ऐसा है, जब दान से किसी देश में समतावादी समाज की स्थापना हुई हो?

जयप्रकाश ने जवाब दिया—मैं इतिहास को नहीं मानता और न तुम्हारी 'उस' हिस्टॉरिकल डेस्टिनी (ऐतिहासिक नियति) को। मैं खुद इतिहास बनानेवाला आदमी हूँ।

मैंने कहा—आप सन् '42 की क्रांति के 'हीरो' हैं। युवक आपके भक्त थे। हम सोचते थे कि आप क्रांति करेंगे और लेनिन हो जाएँगे।

उन्होंने कहा—भारत रूस नहीं है और लेनिन के पहले रूस में कोई गाँधी नहीं हुआ था। लेनिन का मैं आदर करता हूँ, पर मैं लेनिन हो नहीं सकता था। मैंने तो एक नया सिद्धांत दिया था—'फोर टायर स्टेट' का कार्यक्रम। पर नेहरू ने उसे फेंक दिया।

मैंने मजाक में कहा—लेकिन रेल में 'थ्री टायर' तो हो गया है।

जयप्रकाश इस मजाक से चिढ़-से गए। फिर वह बोले—नेहरू के पाँव तो भारत में थे, मगर सिर ब्रिटेन और पूर्वी यूरोप के समाजवादी देशों में। लेनिन ने कहा था कि 'जनता की सत्ता और बिजली मिलकर साम्यवाद बनता है।' तो नेहरू भारी उद्योगों की स्थापना में लग गए और गाँव को भुला दिया। वह कई सालों तक 'समाजवाद' शब्द का उच्चारण तक नहीं कर पाए, क्योंकि इसे बाबू राजेंद्रप्रसाद, मोरारजी भाई, सरदार पटेल, पाटिल आदि पसंद नहीं करते थे। पार्टी पर अधिकार पटेल का था। वह पार्टी में नेहरू की स्थिति खराब कर देते। तो एक तरफ तो वह तकनीकी शब्दों और मुहावरों में सोचने और बोलने लगे और दूसरी तरफ 'सोशलिस्टिक पैटर्न ऑफ सोसाइटी' जैसे मुहावरे गढ़ने लगे। कांग्रेस को 'किंडरगार्टन' के बच्चे की तरह सीधा 'समाजवाद' कहने में सोलह साल लग गए।

मैंने सीधा सवाल उनसे किया—आप क्या हैं : सोशल डेमोक्रेट, लिबरल, क्रांतिकारी, समाजवादी, या फासिस्ट?

उन्होंने जवाब दिया—मुझे इन सारे शब्दों से नफरत है।

मैंने कहा—एक तरफ तो आप राजनीति के इन पारिभाषिक शब्दों से नफरत करते हैं और दूसरी ओर आपने अपने साथियों के साथ मिलकर कांग्रेस के भीतर समाजवादी गुट बनाया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयप्रकाश ने कहा—यह सही है कि हमने कांग्रेस में समाजवादी गुट बनाया। उन दिनों यूरोप में 'सोशल डेमोक्रेट्स' का दबदबा था। मैंने कहा—आपके सोशल डेमोक्रेट्स ने ही हिटलर को तानाशाह बनाया था। क्या आप भी यही चाहते थे?

जयप्रकाश ने कहा—मैं जानता हूँ, कबीरदास ऊटपटाँग बात करता है। मैं लोकतंत्र में विश्वास रखता हूँ, पर यह सही है कि हम लोगों में कोई सोशल डेमोक्रेट था, कोई गाँधीवादी और कुछ मार्क्सवादी। और फिर आचार्य कृपलानी-जैसे लोग भी थे जो जवानी में 'एंग्री यंगमैन' थे और बुढ़ापे में भी 'एंग्री ओल्डमैन' हैं। फिर अशोक मेहता थे, जिनके मुँह से आँकड़े इस तरह निकलते थे जैसे कोई कुल्ला कर रहा हो। फिर लोहिया थे जो चाहते थे कि चौबीसों घंटे तूफान चलता रहे। इस तरह सामाजिक न्याय में तो सबका विश्वास था, पर यह गुट शंकरजी की बारात हो गया।

मैंने पूछा—आचार्य नरेंद्रदेव?

जयप्रकाश भावुक हो गए। कहने लगे—वह महागुरु थे। उनका ज्ञान, चरित्र, सिद्धांतवादिता, निर्लोभ, निष्ठा ऐसी थी कि हम जब उनके सामने पहुँचते तो ऐसा लगता जैसे कोई बौना हिमालय के सामने खड़ा हो।

मैंने कहा—अब मुझे आप बताइए कि आजादी के बाद आप समाजवादियों ने क्या किया?

जयप्रकाश ने कहा—जनता की नजरों में मैं, अशोक, लोहिया, अरुणा पटवर्धन, आदि '42 की क्रांति के बाद हीरो हो गए थे। हमने अंदाज लगाया कि एक तो हम 'हीरो' हैं, दूसरे यह गरीब देश समाजवादी परिवर्तन के लिए एकदम तैयार है। तो हम कांग्रेस से अलग हो गए और नयी पार्टी—समाजवादी पार्टी बना ली। हमारा अंदाजा था कि जनता मत हमें ही देगी। अशोक मेहता, जो बहुत अच्छी अंग्रेजी बोलता है, ने तब कहा भी था अंग्रेजी मुहावरे में कि 'वी विल स्वीप द पोल्स।' इसका अर्थ होता है कि मतदान केंद्रों में हम बाकी सब पार्टियों को खत्म कर देंगे।

मैंने कहा—उसके बाद का हाल मैंने देखा है। आप लोग चुनाव लड़े, पर एक तरफ तो नेहरू का मोहक व्यक्तित्व, फिर जनता के दिमाग में यह बात कि आजादी कांग्रेस ने दिलायी है। तो आप लोगों ने अशोक मेहता के शब्दों को निभाया। 'स्वीप' का अर्थ है 'झाड़ू लगाना'। मतगणना के बाद आप लोग मतदान केंद्रों में झाड़ू लगा रहे थे। शंकर का ऐसा कार्टून था।

जयप्रकाश बहुत चिढ़े, बोले—तुम संत और कवि हो, इसलिए माफ करता हूँ वरना छात्रों को बुलवाकर तुम्हें पिटवा देता।

कबीर ने कहा—मैं सिर्फ संत और कवि ही नहीं था। मेरे हजारों गुंडे चेले थे जो नीची जातियों के थे। ये मेरी रक्षा करते थे। वरना 500 साल पहले मेरा सिर कोई भी बैंगन की तरह काट लेता, क्योंकि मैंने सबकी चमड़ी उधेड़ी थी। आप छात्रों को बुलवा लीजिए और आप देखेंगे कि कबीर आपको ही उनसे पिटवा देगा। छात्रों की बात निकल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयी है तो यह बताइए कि गुजरात का छात्र-आंदोलन तो महँगाई और मुनाफाखोरी के खिलाफ हुआ, पर यहाँ अठारह तारीख को छात्रों ने विधानसभा घेरी, सार्वजनिक इमारतों को जलाया, रेल जलायी, बस जलायी, पुस्तकालय जलाए, विज्ञान-कक्ष जलाए पर मुनाफाखोरी, जमाखोरी और कालाबाजारी के खिलाफ कुछ नहीं किया। आप इन छात्रों को आशीर्वाद और उत्तेजना दे रहे थे। ये किस चीज के लिए लड़ रहे थे ? लोगों का कहना है कि ये लड़के बड़े-बड़े सेठों की तिजोरियों से निकले थे और सही क्रांतिकारी छात्र-आंदोलन को नष्ट करना चाहते थे। कुछ यह भी कहते हैं कि यह सी.आई.ए. का षड्यंत्र था। और उसने पैसे खर्च किए।

जयप्रकाश ने कहा—मैं तो हमेशा आंदोलन के पक्ष में रहा हूँ और जहाँ तक सी. आई. ए. का सवाल है, दो कुत्ते भी लड़ जाएँ तो लोग हल्ला करने लगते हैं कि यह उपद्रव सी. आई. ए. ने करवाया।

—आपने इन लड़कों को मुनाफाखोरों और कालाबाजारियों के खिलाफ क्यों नहीं लगाया ? आप बड़े बनियों को क्यों छोड़ते हैं?

जयप्रकाश बोले—तुम संत हो, कवि हो! बहुत-सी बातें नहीं समझते हो! मैं इन लोगों का हृदय-परिवर्तन करूँगा।

मैंने कहा—और उस लाइब्रेरी को जलवाएँगे जिसमें राहुल-जैसे महापंडित ने पहाड़ों की यात्रा करके पांडुलिपियाँ इकट्ठी करके रखी हैं, जिनका संपादन अभी तक नहीं हो रहा है।

अब जयप्रकाश कुछ अकचका गए और अपने फार्मूले पर आए। बोले—कबीरदास, तुम्हारा हृदय भी काला है। मैं तुम्हारा हृदय बदलूँगा। बैठो।

कबीर ने कहा—मैं सिद्ध हूँ। आप बैठिए और दो मिनट में मैं आपका हृदय बदलता हूँ।

दो मिनट मैंने लगातार उनकी आँखों में देखा और उनका हृदय बदल गया। एक चमत्कार हुआ—जयप्रकाश उठे और सड़क पर खड़ी बस पर पत्थर फेंकने लगे। मैं यह देख रहा था। वह फिर पास में एक बहुत बड़े सेठ की दूकान पर गए और कहा कि एक-दो पीपे मिट्टी के तेल के हों तो दे दो। मैं विधानसभा में आग लगाना चाहता हूँ और मंत्रिमंडल को भस्म कर देना चाहता हूँ।

तब मैंने उनका हाथ पकड़ा। मैंने कहा—हृदय किसका बदला, तुम्हारा कि मेरा ? अब यहीं रुक जाओ। मंत्रिमंडल तो कफन है और देश लाश हो रहा है। तुम मंत्रिमंडल को भंग करवाकर दूसरा मंत्रिमंडल चाहते हो—इसका अर्थ है कि तुम देश को, जो लाश होने जा रहा है, सिर्फ नया कफन देना चाहते हो।

जयप्रकाश सहमकर बैठ गए। बोले—कबीरदास, तुम जाओ। मैं तुम्हारी कुछ पंक्तियाँ याद रखे हूँ, जैसे 'घूँघट का पट खोल री तोहे पिया मिलेंगे।' मेरे घूँघट का पट नहीं खुला। फिर तुमने कहा था—'मन फूला-फूला फिरै जगत् में कैसा नाता रे।' कहा है, 'कहत कबीर सुनो भई साधो छोड़ो जग की आसा रे।' कहा है, 'कहत कबीर सुनो भई साधो सारी दुनिया झूठल हो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
फिर वह कहने लगे कि अब तुम जाओ। मेरा नैतिक बल बहुत कम हो गया है। तुम खतरनाक बदमाश हो। मैंने कहा—मैं जाता हूँ, पर जाने के पहले आपके ही बारे में अपनी कविता की एक पंक्ति कहता हूँ—'नाव नदी को लील गयी रे भेद न जाना कोय !'

राष्ट्रपति निक्सन से भेंट

इस बार कबीर ने तय किया कि अमेरिकी राष्ट्रपति निक्सन से मिल आए। बेचारा बड़े जाल में फँसा है। साधू के सत्संग से कुछ लाभ उसे हो जाए। कबीर से हर छह महीने में अमेरिकी अधिकारी पूछते थे—क्या आप अमेरिका की यात्रा करना चाहते हैं? मैं कहता—हाँ। पर आज तक उन्होंने मुझे भेजा ही नहीं। संत-फकीर ऐसे ही नहीं जाता। यों तो कहीं भी घूमता रहता है पर जब आसन पर होता है, तब विदेशी लाभ के निमंत्रण पर भी डोलता नहीं।

'आसन से मत डोल री तोहे पिया मिलेंगे,' लेकिन इसके लिए 'सुन्न महल' में 'दियना' जलाए रहना पड़ता है और 'घूँघट का पट' खोलना पड़ता है।

इस बार पिया से मिलने का मौका आ गया, क्योंकि कबीर आसन से नहीं डोला। यह आसन बड़ा विचित्र है। इसे कम लोग समझते हैं। यह है विश्वास का आसन बिछाकर उस पर डटे रहना।

मैं अपनी पाँच सौ साल पुरानी साधू की पोशाक में एयर बैग लेकर निकला, तो कनछेदीलाल ने कहा—अब कहाँ चले? प्रधानमंत्री से मिलने जाते हो तो बढ़िया सूट पहनते हो। सूट, धोतीवालों के देश में! पर इस पाँच सौ साल पुरानी पोशाक में जुलाहा संत कहाँ जा रहा है?

मैंने कहा—सूटवालों के यहाँ अमेरिका!

कनछेदीलाल ने कहा—फँस गए सी. आई. ए. के चक्कर में!

मैंने कहा—सी. आई. ए. वाले कहते हैं कि मैं के. जी. बी. के चक्कर में हूँ।

कनछेदीलाल ने कहा—यानी हर आदमी किसी-न-किसी के चक्कर में माना जाता है। आदमी नहीं हुआ, कुत्ता हुआ—यह देखा जाता है कि इसके गले में किसका पट्टा है। पर तुम ठीक कर रहे हो कि साधू-फकीर के लिबास में जा रहे हो। अमेरिका में योगी, साधू, संत, फकीर की बड़ी पूछ है। अमेरिकी बड़ा विचित्र आदमी होता है। वह भीतरी, व्यक्तिगत शांति तो चाहता है पर बाहर सरकार को अशांति फैलाने देता है। एक बात बताओ, कुछ गाँजा, चरस, चंडू वगैरा ले जा रहे हो?

मैंने कहा—हाँ, यही तो प्रेमोपहार है इस देश का।

कनछेदीलाल ने कहा—तुम साधू-संत हो! कुछ गेहूँ मेरे लिए ले आना। यही दो-तीन बोरे। कबीर का वंश नहीं बूड़ेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीर ने कहा—लाऊँगा तो दो-तीन बोरे क्यों? दो-तीन लाख बोरे लाऊँगा। कबीर पहुँच गया अमेरिका। पास का गाँजा, चरस वगैरा सब बाँट दिया लड़के-लड़कियों को।

मैंने, जब वे नशे में धुत्त थे, पूछा—कहो, कैसा लग रहा है?

वे बोले—अद्‌भुत! भारत-जैसा नशा कहीं नहीं।

मैंने कहा—नशे में तो हम सैकड़ों सालों से हैं। हमारे कई नशे हैं—भ्रम का नशा, सम्प्रदाय का, जाति का, और सबसे बड़ा नशा अपने को पवित्र मानने का। तुमने 'मदक' का मजा लिया है?

वे बोले—नहीं। अब की बार मदक लाना। यू आर ए ग्रेट सेंट स्मगलर इन ड्रग्ज ! (तुम नशे के बड़े भारी साधू-तस्कर हो।)

कबीर ने माथा ठोंक लिया। कहाँ जा रही है दुनिया!

इस अमेरिकी महान समाज में तस्कर-साधू की बड़ी इज्जत है, सच्चे साधू की नहीं। मैंने लड़के-लड़कियों से कहा—तुम इस तरह नशे के आदी क्यों हो?

वे बोले—बिकॉज वी आर नॉट कन्सिडर्ड ह्यू. मन बीइंग्स। वी आर टेकन ऐज पिग्ज़ ! (क्योंकि यहाँ हमें मनुष्य कोई नहीं मानता। हम सूअर माने जाते हैं।) तो हम कहते हैं, पोर्क (सूअर का मांस) का मजा लो! यानी हमारा गोश्त खाओ। बेटों का गोश्त! और वह खाया जा रहा है।

कबीर ने सोचा, राष्ट्रपति निक्सन से भेंट कर ली जाए! मेरे चारों तरफ खुफिया अफसर लगे थे।

एक ने पूछा—आपका कोई संगठन है? कोई 'मिशन' है?

मैंने कहा—नहीं। मैं अकेला ही आया हूँ। मेरे साथ चलनेवाले कम होते हैं। तब मैंने उससे कहा—मैं कवि भी हूँ और मैंने अंग्रेजी में अनुवाद करके अपना पद सुनाया—

'जो घर फूँकै आपना, चलै हमारे साथ।'

वे लोग बोले—यहाँ तो सब घर भरनेवाले आते हैं—चाहे साधू हो, संत हो, योगी हो। पर तुम्हारी शर्त अजीब है। तुम्हारा कोई चेला भी नहीं होगा।

मैंने कहा—कई चेले हैं, और यह तुम्हारी दुनिया इन्हीं बेवकूफों के दम पर सदियों से कायम है, जो अपना घर फूँकते हैं। घर भरनेवाले दुनिया का नाश करते हैं, दूसरे का घर जलाकर।

गुप्तचर विभाग का प्रधान आया। कहने लगा—कौन-सा मिशन है तुम्हारा? 'डिवाइन लाइट' वाले साधू यहाँ बहुत हैं, 'ट्रांसेंडेंटल कान्शसनेस' वाले भी बहुत हैं। तुम कौन हो?

मैंने कहा—तुम्हें सब जानकारी है, यहाँ तक कि कौन आदमी बीवी के साथ कब-कब सोया। मुझसे क्यों पूछते हो? दुनिया-भर में तुम्हारी जासूसी का जाल फैला है। तुम क्या समझते हो कि मैं कोई बेवकूफ, लुच्चा, बदमाश, डॉलर का भिखारी हूँ? या मैं कोई रूसी गुप्तचर हूँ! मुझे राष्ट्रपति से मिलना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब कबीर का रोब जमा।

आखिर मैं राष्ट्रपति के पास ले जाया गया।

निक्सन ने कहा—मेरे पास समय नहीं था। पर भारत के साधू, संत, योगी आते हैं तो एक मिनट बात कर लेता हूँ। कई साधू आते रहते हैं। ये हमारी नयी पीढ़ी को बेवकूफ बनाकर मुझे बड़ा चैन देते हैं। बोलो, कौन-से मिशन के नेता हो? कितने डॉलर चाहिए ?

कबीर ने कहा—कोई मिशन नहीं। डॉलर एक भी नहीं चाहिए। मैं कवि भी हूँ। वाल्ट ह्विटमैन अमेरिकी जनतंत्र का कवि था न! आप जानते हैं? मैं भी भारतीय जनतंत्र का कवि हूँ।

निक्सन ने चकित होकर पूछा—ह्विटमैन अमेरिकी कवि था?

मैंने कहा—हाँ, आपको नहीं मालूम?

निक्सन ने कहा—नहीं, मुझे कवि से क्या मतलब? मैं राजनीति का आदमी हूँ।

कबीर ने कहा—हाँ, इसीलिए आपको विएतनाम, लाओस, कंबोदिया, चीन, इसराइल से मतलब है। आप कविता के इंजेक्शन लिया करो। आपकी तबियत ठीक हो जाएगी। आप बड़े बीमार हैं।

अब निक्सन चौंका। मैंने कहा—एक अब्राहम लिंकन नाम का आदमी आपके यहाँ हो गया है…

निक्सन ने कहा—यहाँ तो हजारों अब्राहम और हजारों लिंकन नाम के आदमी हैं!

मैंने कहा—वह आपकी तरह ही राष्ट्रपति था। उसने कहा था—'जनता की सरकार, जनता के द्वारा, जनता के लिए!'

निक्सन ने कहा—हाँ, हाँ, एक लिंकन था। वह लकड़ी काटता था। गँवार था।

मैंने कहा—और आप भी सिर्फ तहसील की कचहरी में वकील थे, पर लिंकन तो बड़ा वकील भी हो गया था।

निक्सन ने कहा—तुम शायद उस लिंकन के गेटिसवर्ग-भाषण का हवाला दे रहे हो, पर मैं क्रांतिकारी राष्ट्रपति हूँ। मैं कहता हूँ—'मेरी सरकार, जनता की बेवकूफी के द्वारा, निक्सन के लिए।'

निक्सन से मैंने कहा—आपकी नाक बड़ी लंबी है।

उन्होंने जवाब दिया—मैंने हिसाब से लंबी नाक रखी है। इस लंबी नाक को कोई कितना काटेगा? तुम देख नहीं रहे हो, वॉटरगेट में, टेप में, इन्कम टैक्स के घपले में, कितनी नाक कटी, पर तुम देख लो, नाक वैसी ही है!

मैंने कहा—बेशर्म की नाक इस्पात की बनी होती है।

निक्सन इस बात से खुश हुए।

मैंने टेपों के बारे में कहा—आप कह देते कि ये टेप मेरे और पत्नी के बीच की प्रेम की बातचीत के हैं, ये प्राइवेट हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निक्सन ने कहा—क्या तुम समझते हो कि मैं झूठ बोलने में कमजोर हूँ? मैंने बहुत बोले, पर चली नहीं। घर में भेदिया थे।

कबीर ने कहा—आप पर महाभियोग की सिफारिश हो गयी है। जनता भी माँग कर रही है।

निक्सन ने कहा—महाभियोग मामूली बात है। हमारा समाज बहुत महान है। यहाँ जब राष्ट्रपति को गोली से उड़ा दिया जाता है, तो महाभियोग तो मामूली बात है! मैं दुनिया में कहीं लड़ाई छिड़वा दूँगा, तो सब लोग इन चीजों को भूल जाएँगे। सफल राष्ट्रपति वह है, जो जनता और कांग्रेस को बेवकूफ बना सके। अब देखो, जूडिशल कमेटी हुक्म देती है कि 50 टेप भेजो, मैं 10 भेज देता हूँ। फिर कहती है 45 और भेजो, मैं पाँच और भेज देता हूँ। तुम्हारे यहाँ के राष्ट्रपति ऐसा कुछ कमाल करते हैं?

कबीर ने कहा—नहीं, हमारे यहाँ संसदीय लोकतंत्र है। आपके यहाँ प्रेसीडेंशल लोकतंत्र है। जनता ने एक बार राष्ट्रपति चुन दिया, तो वह तानाशाह हो गया। हमारे यहाँ एक भस्मासुर हो गया है। उसने शिव नाम के महादेवता की—लॉर्ड शिव की—पूजा की; वही शिव जिसकी मूर्तियाँ चोरी से अमेरिका लाकर लाखों डॉलरों में बेची जाती हैं। शिव उससे खुश हुए। वर दे दिया कि तू जिसके सिर पर हाथ रख देगा, वह जलकर राख हो जाएगा। बस, उसने कई को राख बना दिया। एक दिन वह अपने देवता, अपने मालिक, गुरु शिव के ही सिर पर हाथ रखने लगा, तो शिव भागे-भागे फिरने लगे। यही हाल आपका है। आपकी जनता शिव है। उसने आपको राष्ट्रपति बना दिया और आप भस्मासुर हो गए।

निक्सन ने जम्हाई ली। कहने लगे—छोड़ो मेरी बात। अपने देश के हाल बताओ। भुखमरी अभी है न?

मैंने कहा—हाँ, है।

निक्सन ने कहा—मुझे यह जानकर बड़ी खुशी हुई। अब तुम्हारी सरकार भीख का कटोरा लेकर मेरे पास दस बार आएगी। और मैं पहले तो टरकाऊँगा, कि गेहूँ हमारे पास है ही नहीं, फिर कुछ दे दूँगा। पर तुम्हारी प्रधानमंत्री रोज हमारा अपमान क्यों करती हैं? नहीं जानतीं हमारी ताकत?

कबीर ने कहा—वह गलत बात तो नहीं कहतीं। कहती हैं—महाशक्तिवाले देश गरीब देशों के मामलों में दखल न दें। पर आपके बगल में इस छोटे-से देश क्यूबा का फिदेल कास्त्रो रोज आपको गाली देता है। उसका आपने क्या बिगाड़ लिया?

निक्सन ने कहा—फिदेल गाली नहीं देता, उसके मुँह से रूस गाली देता है। मुँह उसका है, गाली रूस की है। इसीलिए मैं चुपचाप सुन लेता हूँ; वरना दो मिनट में खत्म कर दूँ।

मैंने कहा—मैं समझ गया। रूस से आपको इतना प्रेम है कि फिदेल की गाली को प्रेमी की गाली मानकर शांत रहते हैं। पर इधर इंडियन ओशन में डायगो पर सैनिक अड्डा क्यों बना रहे हैं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निक्सन ने पूछा—उसे इंडियन ओशन नाम किसने दिया? सारे महासमुद्र तो हमारे हैं। यह हिंद महासागर नाम किसने दिया?

कबीर ने कहा—पता नहीं। शायद पुर्तगाली वास्कोडि-गामा ने दिया हो या अंग्रेजों ने।

निक्सन ने कहा—बास्टर्ड्स! हमसे क्यों नहीं पूछा?

मैंने कहा—तब अमेरिका नाम का देश था ही नहीं। और क्या पता कि आपके पूर्वज पुर्तगाल-स्पेन से यहाँ आए हों। बाप-दादों की गाली मत दीजिए।

निक्सन ने कहा—खैर छोड़ो, पर तुम्हारी यह मादाम इंदिरा गाँधी ऐसे बोलती हैं, जैसे सारी दुनिया पर इसी की हुकूमत हो!

मैंने कहा—वह चतुर स्त्री हैं। दूसरे देशों के नेताओं की बेवकूफी का फायदा उठाती हैं। आपकी बेवकूफी का फायदा भी उठाती हैं। इसीलिए तो उन्होंने अणु-विस्फोट का सिर्फ परीक्षण करवाया—शांति के साथ अपने देश में उद्योग के विकास के लिए। और फिर देखती रहीं कि आप-जैसे दुनिया के नेता क्या कहते हैं। आपकी बात सुनी, जापान की सुनी, कनाडा की सुनी और आप लोगों की बेवकूफियों का मजा लेती रहीं। हम लोग भी मजा लेते रहे। चीन होशियार है—कुछ बोला ही नहीं। भुट्टो ने देखा कि यही वक्त है कि भारत के ऐटम बम हमले का डर दिखाकर जितना मिले, ले लो। तो वह दुनिया का चक्कर लगाने लगा—अरे मालिक, अरे गरीब-नवाज, हम तो मौत के मुँह में हैं। हमारी मदद करो। हमें बचाओ। पता नहीं भुट्टो आपको बेवकूफ बना रहा है या आप भुट्टो को।

निक्सन ने कहा—हम दोनों एक-दूसरे को बेवकूफ बना रहे हैं। सच्ची दोस्ती वही है, जब दोस्त एक-दूसरे को बेवकूफ बनाएँ।

मैंने कहा—एशिया में आपका क्या स्वार्थ है?

निक्सन ने कहा—'बिग पावर' का यह कर्तव्य है कि वह कहीं शांति न रहने दे। सब डर के साए में जिंदा रहें। इसीलिए कहीं हमारा सातवाँ बेड़ा है, कहीं हमारा छठवाँ बेड़ा है। शांति ही रही, तो हमें 'महाशक्ति' कौन मानेगा? फिर इतना पैसा, इतने हथियार, इनका भी तो कुछ करना पड़ेगा! फिर हर महाद्वीप में हमारे चमचे देश हैं। उन्हें दिखाने के लिए कुछ तो करते रहना चाहिए। कुछ सिरफिरे लोग यानी कम्युनिस्ट इसे 'अमेरिकी साम्राज्यवाद' कहते हैं—पर यह सही अर्थ में 'अमेरिकी मजबूरी' है।

मैंने सोचा, अब उठूँ। तहसीलदार की अदालत के वकील से कहाँ तक बात करूँ? मैं विदा लेने उठा तो निक्सन ने कहा—साधू हो, कोई मिशन तो होगा ही। हर मिशन एक खूबसूरत धोखा होता है। बोलो—कितने डॉलर दिलवा दूँ? या यहीं रहो। मेरी जनता को 'भीतरी' शांति में ले जाओ जिससे सबकुछ बाहरी, वे मुझ पर छोड़ दें।

मैंने कहा—डॉलर साधू को एक भी नहीं चाहिए। मानवतावादी हो, तो मेरे देश को बिना एहसान, बिना अहंकार के गेहूँ भेज देना। मगर उसमें धतूरा मत मिलाना। धतूरे के जंगल हैं हमारे यहाँ! हम मिला लेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निक्सन ने कहा—तुम बड़े अजीब साधू हो। सब साधू तो यहाँ लेने आते हैं और तुम...

मैंने कहा—तुम नहीं समझोगे। जो जाल में फँसा है, उस जाल को तोड़ना नहीं चाहता, बल्कि उसे चूमता है, वह क्या समझेगा? तुम जाल को चूम रहे हो और खुश हो। खुश रहो! साधू का आशीर्वाद है कि जो भ्रम में खुश है, खुश रहे।

निक्सन ने कहा—कवि हो, कुछ तो कह जाओ। मैंने कहा—

'कबिरा नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाय,
यह पुर-पट्टन यह गली बहुरि न देखौं आय।'

निक्सन ने 'गुड बाई' किया और कहा कि अपनी प्रधानमंत्री को सलाह देना कि अंग्रेजी भाषा में मीठे शब्द भी होते हैं।

लौटा तो कनछेदी दतौन करते दिखे। कहने लगे—मिल आए निक्सन महान से! कुछ डॉलर या यहाँ अमेरिकी डॉलर के रुपए लाए? अमेरिकी एजेंट बने?

मैंने कहा—कुछ नहीं। जिसे यही पता नहीं कि महान राष्ट्रपति लिंकन और महान कवि ह्विटमैन अमेरिकी थे, उससे क्या लाता? वह हवलदार है।

कनछेदी ने कहा—साधुओं में सबसे बेवकूफ तुम हो। अरे, ऐसे ही खरबपति से तो पैसा ऐंठा जाता है और तुम सूखे लौट आए! कबीर का वंश डूब गया। तुम भूखा मरने को पुण्य मानते हो?

मैंने कहा—नहीं, मजबूरी या पाप मानता हूँ। कायरता भी संतोष देती है—'कायर संतोष'। मैं कहता हूँ—घी से चुपड़ी रोटी को छीन लाओ और खाओ!

कनछेदी ने कहा—बात ठीक है, पर इसके लिए दम चाहिए। पर संत, यह बरसात गेहूँ के बिना कैसे कटेगी? दो बोरे दिला दो।

मैंने कहा—दिला दूँगा! यहाँ भी तो सब ईमानदार हैं।

कबीर फिर इंदिरा गाँधी से मिला।

मैंने कहा—निक्सन से मिल आया, बहनजी! उसके पास गेहूँ बहुत है। वह देना भी चाहता है। भारत को खोना नहीं चाहता।

इंदिराजी तैश में आ गयीं। बोलीं—क्या मतलब? भारत को खोना नहीं चाहता—इसका क्या अर्थ है? भारत कोई बाजारू सामान है? भारत कोई आलू-बैंगन है?

कबीर ने कहा—बस यही तो निक्सन कहता था कि अंग्रेजी में मीठे शब्द भी हैं।

इंदिराजी ने पूछा—निक्सन की अंग्रेजी कैसी है?

मैंने कहा—मेरे से घटिया! कस्बे के पटवारी-सरीखी अंग्रेजी है। एक बार राष्ट्रसंघ में जब कृष्ण मेनन बोल रहे थे, ब्रिटेन के विदेशमंत्री ने टोका कि यह गलत अंग्रेजी है। मेनन ने फौरन कहा—आई कैन नॉट बी ब्रीफ्ड वाई यू इन इंग्लिश। आई हैव लर्ट इट, ह्वाइल यू हैव पिक्ड इट अप! (तुम मुझे अंग्रेजी के बारे में सलाह नहीं दे सकते। मैंने अंग्रेजी सीखी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, पढ़ी है, जबकि तुमने उसे रास्ते में पड़ी चीज की तरह उठा लिया है।)

इंदिरा जी हँसने लगीं। बोलीं—सही बात है। खैर, मैं अंग्रेजी में मीठे शब्दों की तलाश करती हूँ।

जनाब भुट्टो से भेंट

कनछेदीलाल ने पूछा—कहो गुरु, क्या हाल हैं जयप्रकाशजी के?

मैंने कहा—अच्छे हैं। मैंने उनका हृदय बदल दिया। पहले वे पत्थर फेंकनेवालों और आग लगानेवालों की पीठ ठोंकते थे। मैंने उनसे इस उम्र में बस पर अपने हाथ से पत्थर फिंकवा दिए और इमारतों में आग लगवा दी। अब वे सारे देश की सरकारें भंग करवा देंगे। यह देश बिना सरकार का हो जाएगा।

कनछेदी काँइयाँ है। कहने लगा—मुझे ऐसा लगता है कि यदि इंदिरा गाँधी उनका नाम ले दें तो वे आंदोलन बंद कर दें। बस इसी की राह देख रहे हैं। बेचारे कहते हैं, इंदिरा गाँधी मेरी बेटी की तरह है। पर इंदिरा गाँधी जयप्रकाश बाबू का नाम ही नहीं लेतीं। बस 'कुछ लोग', 'कुछ लोग' कहती हैं। इतना ही कह दें कि बाबू जयप्रकाश नारायण उपद्रव करवा रहे हैं, तो जयप्रकाशजी फौरन आंदोलन बंद कर दें, मगर यह बड़ी क्रूर स्त्री है। खैर, अब कहाँ चले?

कबीर ने कहा—शहंशाहे आजम भुट्टो साहब से मिलने।

कनछेदी ने कहा—पर भुट्टो तुम्हें मिलेंगे कहाँ? उन्होंने तो हवाई जहाज में घर बना लिया है। रोज विदेश यात्रा पर होते हैं।

मैंने कहा—हवाई जहाज में होंगे, तो उतरने की राह देखूँगा।

कबीर को इत्तिफाक से भुट्टो राजधानी में ही मिल गए।

कबीर ने परिचय दिया तो भुट्टो तपाक से बोले—मैंने तुम्हारा नाम सुना है। तुम साधु-संत हो। इंदिरा गाँधी पहले कूटनीतियों को भेजती थीं, अब साधु-संत भेजने लगीं। भई, मैं इस मौसम में शिमला नहीं जाऊँगा, कोई और जगह तय करो।

मैंने कहा—सुनिए तो! तुम्हें इंदिरा गाँधी ने नहीं बुलाया। मैं तो साधु हूँ। मन से घूमता रहता हूँ।

भुट्टो ने कहा—कोई बात नहीं। जब तक चाहो रहो। पाकिस्तान तुम्हारा घर है। तुम तो मुसलमान हो न—जुलाहा—याने घटिया मुसलमान।

मैंने कहा—मुसलमान मुझे मुसलमान नहीं मानते और हिंदू हिंदू नहीं मानते। तुम क्या मुसलमान हो?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भुट्टो ने कहा—हाँ!

मैंने पूछा—नमाज पढ़ते हो?

भुट्टो ने कहा—नमाज गँवार पढ़ते हैं, मैं तो क्लबों में 'डांस' करता हूँ, वही मेरी नमाज है। देश के आदमी नमाज पढ़ते हैं और मैं डांसनमाजी उन पर हुकूमत करता हूँ।

मैंने कहा—बांग्ला देश में जो सुलूक तुम्हारे साथ हुआ और जैसे तुम निकले, उससे मुझे अफसोस है। यही कहूँगा—

निकलना खुल्द से आदम का सुनते आए थे लेकिन
बड़े बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले।

फिर कहा—कुछ समझौता नहीं हुआ शेख मुजीब से?

भुट्टो ने कहा—समझौता करने गया ही कौन बेवकूफ था! मैं तो झगड़ा बढ़ाने गया था—सो बढ़ा आया। 'बेवकूफ बंगाली' कहकर चला आया। वे लोग बिहारियों को मेरे सूटकेस में डालना चाहते थे और अरबों डॉलर चाहते थे। इधर बलूची और पखतून नाक में दम किए हैं। बिहारियों को ले आऊँ, तो एक आफत और मोल ले लूँ। मैं इतना बेवकूफ नहीं हूँ, मैं पूर्व का सबसे बुद्धिमान आदमी हूँ।

कबीर ने कहा—दाद देता हूँ।

भुट्टो ने कहा—अपना तो यह हाल है—

कूचए यार में इस ठाठ से हम निकले
पीछे-पीछे हम चले आगे मेरी रुसवाई थी।

कबीर ने कहा—आप भारत में ही क्यों नहीं रह गए? वहाँ आपकी प्रॉपर्टी भी थी।

भुट्टो ने कहा—भारत में रह जाता तो न जवाहरलाल प्रधानमंत्री बनते, न इंदिरा गाँधी। मैं इन लोगों पर दया करके पाकिस्तान चला आया। यहाँ मैंने दो फौजी तानाशाह खाए और अपने ही देश के एक हिस्से बंगाल को अलग करवा दिया। दुनिया में किसी ने ऐसा किया ?

मैंने कहा—किसी ने ऐसा नहीं किया। अब बलूचिस्तान और पख्तूनिस्तान भी पाक से अलग कर दोगे। धीरे-धीरे पाकिस्तान कुल 2-3 जिलों का रह जाएगा।

भुट्टो ने कहा—फकीर तुम ठीक कहते हो। मैं इसी कोशिश में हूँ। आगे खुदा हाफिज!

मैंने कहा—तुम इस उप-महाद्वीप में शांति की बात करते हो पर काम ठीक उलटे करते हो।

भुट्टो ने कहा—शांति कौन बेवकूफ चाहता है! जब तक उथल-पुथल न हो, झगड़ा-फसाद न हो, मुझे नींद नहीं आती। जब भारत से लड़ाई चल रही थी, तब मुझे खूब नींद आती थी।

मैंने पूछा—तुम्हारी कोई विदेशनीति है?

भुट्टो ने कहा—विदेशनीति बनाकर उसे 'फ्रिज' में बेवकूफ रखते हैं। अपना तो यह है कि अमेरिका को आका माना। उससे हथियार और डॉलर लिए। फिर देखा कि भारत-चीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का झगड़ा है तो माओ की कदमबोसी कर आए और हथियार ले आए। पर चीन ज़रा कंजूस है, ज्यादा नहीं देता। भारत से हमारी लड़ाई होती है, तो पीठ ठोंक देता है, पर लड़ाई में उतरता नहीं। फिर देखता हूँ कि रूस-चीन में तनाव है तो पहले पेकिंग गए, रूस की बुराई की और कह दिया कि हम तुम्हारी तरफ! फिर हम मास्को गए और वहाँ कह दिया कि हम तुम्हारी तरफ!

मैंने टोका—पर माओ और ब्रेजनेव बाद में हँसकर यह नहीं कहते होंगे कि क्या पिद्दी और क्या पिद्दी का शोरबा!

भुट्टो ने कहा—कहने दो! पर प्रभाव क्षेत्र तो सब चाहते हैं—अमेरिका, रूस और चीन! मैं इसका फायदा उठाता हूँ।

मैं अब खास मुद्दे पर आया। मैंने कहा—भारत ने जो अणु-विस्फोट किया है, उससे आप बहुत नाराज हैं?

भुट्टो ने कहा—तुम साधु हो। तुमसे क्या छिपाऊँ! दिल में मैं बहुत खुश हूँ और भारत का बड़ा शुक्रगुजार हूँ। मैं जानता हूँ और तुम भी जानते हो कि दुनिया में अणुयुद्ध कभी नहीं होगा। पर भारत के इस अणु-विस्फोट का हल्ला करके, डर दिखाकर अपनी जनता को बेवकूफ बना रहा हूँ। तुम्हारी प्रधानमंत्री ने भी असंतुष्ट जनता को खुश करने के लिए यह पटाका छोड़ा है। फिर मैं दुनिया के हर देश जा रहा हूँ और हाथ जोड़कर कहता हूँ, देखो भारत ने अणु हथियार बना लिए। अब हमारी सुरक्षा खतरे में है, अब हमें बचाओ। सारी दुनिया में भीख का कटोरा लेकर घूम रहा हूँ और जो कुछ कोई दे दे; ले आता हूँ।

कबीर ने पूछा—पर क्या इन देशों के बड़े-बड़े नेता तुम्हारे इस 'स्टंट' को नहीं समझते हैं?

भुट्टो—समझते होंगे, पर कुछ दे ही देते हैं। कुछ लोग ऐसा करते हैं न कि लोगों के पास जाते हैं और बनावटी आँसू लाकर कहते हैं, भाई की स्टेशन पर अचानक मौत हो गयी। कफन-दफन के लिए पैसे नहीं हैं। मेरी जेब रेल में कट गयी, कुछ दे दीजिए। लोग यह जानते हुए भी कि यह आदमी झूठ बोल रहा है, कुछ दे ही देते हैं। मैं भी दुनिया-भर में कफन-दफन के लिए पैसे माँगता फिरता हूँ।

कबीर ने पूछा—याने पाकिस्तान नहीं हुआ, यतीमखाना हुआ।

भुट्टो—यतीमखाना क्या बुरा होता है? बहुत पाक होता है। सबसे बड़ी बात है, जनता को बेवकूफ बनाए रहना। जनता माँग करेगी कि तुम भी अणु शक्ति बनाओ, तो मैं कह दूँगा कि 'निक्सन' एक बहुत बड़ा अणु छाता बना रहा है जिससे पाक का आसमान ढाँक दिया जाएगा। जनता इससे नहीं मानी तो एकाध नमूने का एटम बम हवाई जहाज में वाशिंगटन से डाल लाऊँगा और दिखा दूँगा।

कबीर ने पूछा—और क्या करते हो?

भुट्टो—और कई तरकीबें हैं। मुल्क में कुछ भी गड़बड़ हुई तो कह देता हूँ कि इसमें विदेशी ताकतों का हाथ है। कभी मेरा मतलब भारत से, कभी अफगानिस्तान से होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो कुत्ते अगर सड़क पर लड़ रहे हों, तो कह दूँगा—यह भारत की साजिश है। जनता चुप!

थोड़ी देर भुट्टो चुप रहे, फिर पूछा—तुम्हारे मुल्क में अनाज की कमी, महँगाई वगैरह है न?

मैंने कहा—हाँ, है।

भुट्टो ने पूछा—और जनता में हलचल है, असंतोष है? जनता इंदिरा सरकार से नाराज भी है। इधर मेरी हालत भी खराब है। मेरा एक प्रस्ताव है जिससे इंदिरा गाँधी का भी फायदा है और मेरा भी। तुम साधु हो। तुम्हारी पहुँच सब जगह है। क्या तुम उनसे इस प्रस्ताव पर बात कर सकते हो?

कबीर ने पूछा—प्रस्ताव क्या है?

भुट्टो ने कहा—उधर उनकी हालत खराब है इधर मेरी । क्यों न हम लोग 15 दिन की एक लड़ाई और लड़ लें? एक टूर्नामेंट-सरीखा। मैं अमेरिका से हथियार ले आऊँगा और वे रूस से ले लें। फिर हम दोनों 5 साल तक जनता को बेवकूफ बनाकर मजे में राज कर सकते हैं।

कबीर अकचका गया। मैंने कहा—अरे बाप रे! 'वार बाई एग्रीमेंट!' आपस में समझौता करके लड़ाई? हद हो गयी! सचमुच आप राजनीति में बेनजीर आदमी हैं। दुनिया में कहीं ऐसा भी होता है?

भुट्टो—राजनीति में सबकुछ होता है। आपस में तय करके भी लड़ाई होती है। तुम संत हो, राजनीति नहीं समझते।

कबीर ने कहा—मैं मान गया। आप किसी भी हद तक जा सकते हैं।

भुट्टो ने कहा—चकित मत होओ। मैं पढ़ता-लिखता नहीं और राजनीति में नहीं आता तो अमेरिका में 'काऊ ब्याय' होता।

कबीर ने कहा—आपके संस्कार ऐसे ही हैं। आपने 1965 में राष्ट्रसंघ में भारतीयों को 'कुत्ता' कहा था, और अभी बंगालियों को 'ईडियट (निपट बेवकूफ) कहकर आ रहे हो। तुम अरबों के खिलाफ भी हो और उनके साथ भी। पता नहीं तुम किसके साथ हो? अच्छा यह बताओ, भारत के साथ संबंध सुधारोगे?

भुट्टो ने कहा—क्या फालतू बात करते हो? भारत के साथ संबंध ठीक कर लूँगा, तो मेरा खात्मा हो जाएगा। किसी भी शासक का खात्मा हो जाएगा। भारत से दुश्मनी तो हमारे शासन की बुनियाद है।

मैंने पूछा—और काश्मीर?

भुट्टो ने कहा—मैं जानता हूँ कि हमारी तरफ का काश्मीर जाएगा, जैसा उन कमबख्त बंगालियों का बंगाल गया। पर हम जब तक बने, काश्मीर के मामले को जिंदा रखेंगे। तुम्हारा शेख मुहम्मद अब्दुल्ला भी तो धोखा दे गया हमें। अब वह 'भारत-भारत' चिल्लाता फिरता है।

कबीर ने कहा—पर वह साथ ही 'काश्मीर' भी कहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भुट्टो—पुराना खिलाड़ी है। भारत उसका देश, पर काश्मीर अलग।

कबीर ने पूछा—बंगाल जाने से आपको क्या नुकसान हुआ?

भुट्टो ने कहा—बहुत नुकसान हुआ। मछली कम पड गयी और रईस-जादियों को पान नहीं मिलते। बंगला पान! अहा! क्या जायका!

कबीर ने पान का डब्बा खोला और भुट्टो को दो बढ़िया किमामवाले पान दिए। कहा—लो, ये बंगला पान खा लो!

भुट्टो ने पान खाए और कहा—वाह! मजा आ गया। बंगाल हाथ से न जाता तो ऐसा पान रोज मिलता।

कबीर उठा। कहा—मैं अव चलता हूँ। आपके 'वार बाई एग्रीमेंट' की बात इंदिरा जी से करूँगा।

भुट्टो ने कहा—तुम कबीर, शायर भी हो। एकाध चीज सुना जाओ!

मैंने कहा—

कबिरा नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाय।
ये पुर-पट्टन ये गली बहुरि न देखौं आय।।

विनोबा भावे से भेंट

कबीर ने सोचा, इस बार 'बाबा' से मिल आऊँ। जयप्रकाश मिल आए, सर्व सेवा संघ का जलसा हो गया। काफी पैदल चलने के बाद बाबा ने पवनार में 'क्षेत्र संन्यास' ले लिया है। फुरसत में होंगे।

घर से निकला तो वही कनछेदीलाल बरामदे में एक कटोरी से शहद चाटते मिल गए।

मैंने कहा—कनछेदी, क्या कर रहे हो?

कनछेदी ने कहा—शहद खा रहा हूँ। सर्वोदयी हो गया हूँ। सर्वोदय का मतलब शहद चाटना और दही खाना होता है।

मैंने कहा—जब सर्वोदय खत्म हो गया तब तुम सर्वोदयी हो गए हो।

कनछेदी ने कहा—यही तो ठीक वक्त है सर्वोदयी होने का। बाबा के बाद कहीं यह शहद चाटने का सर्वोदय खत्म न हो जाए। मैं असिस्टेंट विनोबा बनने का अभ्यास कर रहा हूँ, पर तुम कहाँ चले?

मैंने कहा—उन्हीं संत विनोबा से मिलने।

कनछेदी ने कहा—बहुत अच्छा कर रहे हो। दो संतों का मिलन बड़ा मजेदार रहेगा। कह देना, कनछेदी असिस्टेंट विनोबा बन रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीर पवनार आश्रम पहुँचा तो देखा, बाबा दातौन कर रहे हैं। मैं बैठ गया।

—दातौन के बाद बाबा ने मेरी तरफ ध्यान दिया। पूछा—तुम कौन हो?

मैंने कहा—कबीरदास!

बाबा बहुत खुश हुए। मुझे गले लगा लिया। बोले—संत हो, कवि हो, मैं तो संतों की वाणी ही बोलता हूँ। तुकाराम के अभंग बोलता हूँ। तुम्हारी वाणी बोलता हूँ।

मैंने कहा—पर आप मेरी तरह उलटवासी भी बोलते हैं।

बाबा ने कहा—क्यों नहीं बोलूँगा? आखिर मैं भी संत हूँ। उलटवासी न बोलूँ, तो चमत्कार कैसे पैदा होगा? अब देखो, मैं दातौन करता हूँ। सब दातौन करें, तो मंजन और टूथपेस्ट की समस्या हल हो जाय।

मैंने कहा—बाबा, पर शहरों में बबूल नहीं होते। दातौन कहाँ से लाएँगे?

बाबा ने जवाब दिया—तो शहरों में बबूल की खेती करें! सब टूथपेस्ट के कारखाने ठप्प हो जाएँगे। मैं तो कहता हूँ, ग्राम निर्भरता हो। अब लोग कहते हैं कि साबुन नहीं मिलता तो मैं कहता हूँ, साबुन से क्यों नहाते हो? मिट्टी शरीर पर मलकर नहाओ। साबुन के कारखाने बंद हो जाएँगे; मुनाफाखोर खत्म हो जाएँगे।

मैंने कहा—बाबा, हर गाँव में इस्पात का कारखाना कैसे खुलेगा? इस्पात बनाना गृह उद्योग तो है नहीं।

बाबा ने कहा—मगर इस्पात की जरूरत ही क्या है?

कबीर ने कहा—फिर रेलें कैसे बनेंगी? लोग यात्रा कैसे करेंगे?

बाबा ने कहा—पदयात्रा करें। बंबई से कलकत्ता जाना है तो पैदल जाएँ! रास्ते में माँगते-खाते चले जाएँ। सुदामा भी तो माँगते-खाते कृष्ण के पास द्वारका गए थे।

मैंने कहा—बाबा, मैं आपकी बात समझ गया। जिस चीज का अभाव हो, जिसे मुनाफाखोर दबाए हों, उसका उपयोग ही न करें। अन्न दबा है, तो अन्न न खाएँ, अन्न की समस्या हल हो गयी। जब खानेवाले ही भूखे मर जाएँगे तो अन्न की मुनाफाखोरी बंद हो जाएगी।

बाबा ने कहा—कबीर, आ गए न तुम उसी अपनी बदमाशी की आदत पर! मुझे ही फँसा रहे हो।

मैंने कहा—बाबा, मैं नहीं फँसा रहा हूँ, आप खुद अपने ही जाल में इतने सालों से फँसे जा रहे हैं। इधर लोग समाजवाद की बात कर रहे हैं। कहते हैं, इने-गिने लोग जो अपार पैसेवाले हैं, मजा कर रहे हैं। बाकी कष्ट में हैं। तो संपत्ति छीनी जाय और सब बराबर हो जाएँ। आपका क्या खयाल है?

बाबा ने कहा—मैं समाजवाद को भ्रम मानता हूँ। संतोष ही सुख है। जिन्हें भगवान ने लक्ष्मी दी है, उनसे क्यों छीनोगे?

रूखा-सूखा खाय के ठंडा पानी पीव,
देख पराई चूपड़ी मत ललचावै जीव!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीर ने कहा—छोड़िए इसे। यह बताइए कि आपके उस सर्वोदय आंदोलन का क्या हुआ?

बाबा दुखी हुए। कहने लगे—वह तो गया। मेरे साथ हारे-थकं, लोभी लोग ही आए। जिन्हें टिकिट नहीं मिली, वही सर्वोदय में आ गए। इनमें लोकसेवा की भावना थी ही नहीं। बाबा के साथ रहने से गुलछर्रे उड़ाने को मिलते हैं, तो सर्वोदयी हो गए। बाबा को तो पेट में अल्सर है, तो वह दही और शहद खाता है, पर इन सब लोगों को अल्सर हो गया और ये भी बाबा की नकल करने लगे। अब बाबा क्या करे? हाथ का पिसा आटा खाएँगे, शहद खाएँगे, दही पीएँगे, गुलबकाबली के फूल खाएँगे। जा सर्वोदय शिविर का इंतजाम करते, वे परेशान हो जाते।

कबीर ने कहा—बाबा, आपने ठीक बात कही। आपको इंदौर के उस सेठ की बात याद होगी। इंदौर में उस समय सर्कस चल रहा था, तभी आप अपने सर्वोदयी चेलों को लेकर पहुँचे। लोगों ने एक बड़े सेठ से कहा कि आप अरबपति हैं, सर्वोदय शिविर का प्रबंध कर दीजिए। सेठ ने कहा—भैया, मैं सर्कस का इंतजाम तो कर सकता हूँ, पर सर्वोदय कंपनी का इंतजाम करना मेरे वश की बात नहीं है।

बाबा इस बात पर खूब जोर से हँसे। कहने लगे—ठीक बात है, सर्वोदय सर्कस कंपनी ही हो गयी थी।

मैंने पूछा—पर बाबा, आप ज्ञानी हैं। सबका उदय एक साथ कैसे हो सकता है ? मुनाफाखोर माल दबाए बैठा है और गरीब झोला लिये लाइन में खड़ा है। दोनों का उदय कैसे होगा?

बाबा सोच में पड़ गए। बोले—यही वर्गसंघर्ष तो मैं टालना चाहता था। मैं इन बड़े शोषकों का हृदय-परिवर्तन करके एक मंगलमय समाज की स्थापना का सपना देखता था।

मैंने कहा—बाबा, हृदय हो तो उसमें परिवर्तन होगा। जिनके पास हृदय ही नहीं है, तो परिवर्तन काहे का होगा!

बाबा ने कहा—यह क्या बात कहते हो संत? हृदय तो हर आदमी का होता है!

कबीर ने कहा—मैं नहीं मानता, बाबा! फिर कुछ लोग ऐसे भी तो होते हैं, जिनका हृदय तलुवे में होता है। वे हृदय को कुचलते हुए चलते हैं। डाक्टरों से पूछ लीजिए। वे सारे शरीर में हृदय खोजते हैं, पर वह नहीं मिलता। बड़ी मुश्किल से तलुवे में मिलता है।

बाबा ने कहा—मैंने तुम्हारा लिखा पढ़ा है। तुम ऐसी ही सधुक्कड़ी बातें करते हो। पर डाकुओं का तो हृदय-परिवर्तन हुआ।

कबीर ने कहा—वह मुझे मालूम है। जयप्रकाश डाकुओं का हृदय बदलने गए थे। कुछ डाकुओं ने समर्पण भी किया, पर लोगों का कहना है कि हृदय जयप्रकाश ने नहीं, पुलिस ने बदला। और जब छतरपुर नाम के जिले के सदर मुकाम में मुख्यमंत्री सेठी और जयप्रकाश दोनों थे, तब लोग सेठी की जय बोल रहे थे, जयप्रकाश की जय कोई नहीं बोल रहा था तो जयप्रकाश बुरा मानकर चले गए और कहते गए कि अब मैं मध्यप्रदेश कभी नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आऊँगा।

बाबा ने कहा—हुआ होगा, पर सर्वोदयी को जय से, मान-सम्मान से क्या मतलब?

मैंने कहा—जयप्रकाश बाबू को है क्योंकि वे आधे संत और आधे राजनेता हैं। अच्छा, यह तो बताइए, जयप्रकाश बाबू आपके पास आए थे। उनके आंदोलन के बारे में आपका क्या खयाल है?

बाबा बोले—मैं बड़ा काँइयाँ आदमी हूँ। मैंने उनसे ऐसा कहा जिसका मतलब हाँ भी होता है और नहीं भी। मैंने कहा—विवेक कहता है, तो परिवर्तन करो, पर अहिंसा से करो। अब देखो, हिंसा दोनों तरफ से हो रही है तो बाबा को मतलब नहीं।

कबीर ने कहा—बाबा, पर जयप्रकाश तो इसे क्रांति कहते हैं।

बाबा ने कहा—कहते हैं, तो कहने दो। क्रांति और भ्रांति में थोड़ा-सा अंतर होता है। कभी-कभी भ्रांति को भी क्रांति समझ लिया जाता है।

कबीर ने बाबा को पकड़ा—जैसे आपका भूदान! भूदान से आप क्रांति लाना चाहते थे, पर वह भ्रांति निकल गया।

बाबा ने कहा—कबीर, तुम गलत समझे। क्रांति मैंने कभी नहीं लानी चाही। वह तो तेलंगाना में किसानों के हिंसक आंदोलन को देखकर मुझे लगा कि भूमिहीन किसान को भूमि की भूख है, तो मैं निकल पड़ा भूदान के लिए पैदल।

कबीर ने पूछा—फिर क्या हुआ?

बाबा ने माथा ठोंककर कहा—बाबा को सब 'सालों' ने—अरे, माफ करना, संत को गाली नहीं देनी चाहिए, सबने बाबा को धोखा दिया। बंजर जमीन बाबा को दे दी, जहाँ घास की एक पत्ती नहीं उगती; और अखबारों में छपवा लिया कि हमने 100 एकड़ भूमि-दान कर दिया। अब उन पत्थरों पर कौन किसान खेती करेगा?

मैंने पूछा—बाबा, पर क्या दान से आर्थिक परिवर्तन हो सकता है?

बाबा ने कहा—मैं पहले कह चुका हूँ कि ग्राम-आत्मनिर्भरता—यही क्रांति है। हर गाँव जरूरत की चीजें अपने ही गाँव में पैदा करे।

मैंने कहा—बाबा, पर मैंने देखा है कि गाँव के कुछ लोग ट्रांजिस्टर बजाते हैं। गाँव में ट्रांजिस्टर कैसे बनेंगे? रेडियो कैसे बनेगा? शहर पर निर्भर तो रहना ही पड़ेगा।

बाबा ने कहा—यही तो बीमारी है। इच्छाएँ बढ़ती हैं तो उनकी पूर्ति के लिए आदमी भागता फिरता है।

कबीर ने कहा—मैंने माना कि गाँवों को हजार साल पीछे चला जाना चाहिए। आपकी यह बात भी मानी कि हर गाँव को आत्मनिर्भर हो जाना चाहिए, पर हर साल लाखों गाँवों में अकाल पड़ता है। वे आत्मनिर्भर कैसे होंगे? वे तो भुखमरी में आत्मनिर्भर हो सकते हैं, फिर जिन गाँवों में पैदावार अच्छी है और जो आत्मनिर्भर हैं, वे इन अभावग्रस्त गाँवों को कुछ नहीं देंगे।

बाबा ने कहा—तो गाँवों का संघ बन जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने कहा—बिहार और केरल के गाँवों का संघ कैसे बनेगा? ये कोई 3-4 किलोमीटर दूर तो हैं नहीं। फिर वही व्यवस्था करनी होगी कि रेल से यहाँ का अनाज वहाँ भेजा जाय। और आप कहते हैं, पद-यात्रा करो। आपकी ग्राम-निर्भरता से बाबा देश के आधे से अधिक ग्रामीण मर जाएँगे।

बाबा सोच में पड़ गए। घड़ी देखी और बोले—मेरा दही खाने का समय हो गया। कुटी में गए और दही का कटोरा लेकर आ गए। दही खाने लगे। बोले—तुम्हारा जी तो नहीं ललचाता?

कबीर ने कहा—नहीं।

बाबा ने कहा—सच्चे साधु हो!

कबीर ने कहा—सो तो ठीक है, पर संतों को बाँटकर खाना चाहिए। आप तो दही के मामले में पूँजीपति हो गए।

बाबा ने कहा—बात यह है कि एक संत दूसरे को बाँटे तो उसकी खुराक कम पड़ जाती है। मैं नापकर खाता हूँ।

मैंने कहा—ठीक है बाबा, साधु तो कंबल को छोड़ना चाहता है, पर कंबल साधु को नहीं छोड़ता। 'माया महाठगनी हम जानी। तिरगुन फाँस लिए कर डोलै, बोलै मधुरी बानी।' रमैया की दुलहन ने संतों का बाजार भी लूट लिया।

बाबा दही खा चुके थे। कहने लगे—मैं भी राम का परम भक्त हूँ।

कबीर ने कहा—पर मैंने तो अपने को 'राम की लुगाई' कह दिया।

बाबा ने कहा—तुम कुछ साधना-वाधना करते हो? मैंने तो इतने कर्म किए और करता हूँ। तुम क्या करते हो?

कबीर ने कहा—इतने हजार मील पैदल चलने से क्या मिला आपको? मैं 'सहज साधना' करता हूँ—

साधो, सहज समाधि भली
जहँ-जहँ डोलौं सोइ परिकरमा, जो-जो करौं सो सेवा
जब सोवौं तब करौं दंडवत, पूजौं और न देवा।

फिर मैंने बाबा को थोड़ा संकट में डाला—बाबा, आप रामनाम को परम औषधि मानते हैं। कुछ साल पहले आपको टाइफाइड हुआ था। तब आपने 'क्लोरोमाइसिटीन' ली और अच्छे हुए। रामनाम कहाँ चला गया था?

बाबा थोड़े अकचकाए, फिर बात बनायी—बात यह है कि 'एंटीबायोटिक' भी रामबाण है, इसलिए मैंने ले ली!

मैंने कहा--और आप 'रामबाण' के बड़े कारखानों के खिलाफ हैं।

मैंने देखा बाबा कुछ परेशान हैं। उचित समझा कि इन्हें छोड़ूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने कहा—बाबा, अब मैं चलता हूँ।

बाबा ने कहा—कुछ कहते जाओ, साधु। मेरे विचार तुम्हें कैसे लगे?

कबीर ने कहा—साधु हूँ। सच को मुँह पर कह देता हूँ। आप न जाने किस दुनिया में रहते हैं। वह दुनिया कितनी शताब्दी पहले की है। आपकी सब बातें उलझी-पुलझी। मेरे विचारों से मेल नहीं खातीं। कहता हूँ—

तेरा मेरा मनुआ बंदे कैसे एक होय रे!
तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखन की देखी
मैं कहता सुलझावन हारी, तू राखै उलझाए रे
तेरा मेरा मनुआ बंदे कैसे एक होय रे!

और कबीर चल दिया।

कनछेदी ने पूछा—क्या हुआ?

मैंने कहा—कुछ खास नहीं। यही हुआ—तेरा मेरा मनुआ बंदे कैसे एक होय रे ! तुम शहद और दही का अभ्यास करो। 'वेकेंसी' होनेवाली है।

राजनारायण सिंह से भेंट

कबीर घबड़ा उठा। मैंने कनछेदी से कहा—अरे कनछेदी, गजब हो गया। राजनारायण सिंह की चिट्ठी आयी है। लिखा है—क्यों वे कबीर के बच्चे, तू सबसे मिल रहा है, पर अभी तक मेरे पास क्यों नहीं आया? तू भी काशी का और मैं भी काशी का और तू काशीवाले राजनारायण से नहीं मिला। 7-8 दिन में मैं ही तेरे घर आता हूँ। या तो तुझे पीटूँगा या तेरे दरवाजे पर अनशन कर दूँगा।

कनछेदी ने कहा—कबीरदास, पहली गाड़ी से जाओ। अगर वह यहाँ आ गया तो पता नहीं इस मुहल्ले का क्या होगा! वह इस किस्म का आदमी है कि—उलट-पलट लंका सब जारी।

कबीर काशी पहुँचा और राजनारायण का दरवाजा खटखटाया तो भीतर से आवाज आयी—ठहर न बे! हम दंड पेल रहे हैं।

कबीर बाहर बैठा रहा। थोड़ी देर बाद दरवाजा खुला और राजनारायण ने कहा—अब आओ। वे पसीने से लथपथ थे।

मैंने कहा—मैं कबीरदास हूँ। आपकी चिट्ठी मिली तो एकदम भागा चला आया। पर आपने इतनी कठोर और क्रोधभरी चिट्ठी मुझे क्यों लिखी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनारायण ने कहा—जब वह चिट्ठी लिखी, तब मेरा 'मूड' बहुत खराब था। उस दिन संसद में इस इंदिरा के बिगड़ैल बेटों ने मुझे बोलने नहीं दिया था। बार-बार 'हूट' करते थे। गुस्से में था, इसलिए वैसी चिट्ठी लिख दी होगी।

मैंने कहा—आप हिंदीभक्त हैं, मगर 'मूड' और 'हूट' अँगरेजी शब्द बोलते हैं।

राजनारायण ने कहा—इस रानी इंदिरा के रहते हिंदी कहाँ पनप सकती है? मगर डॉक्टर साहब (डॉ. लोहिया) भी 'रिपोर्ट' की हिंदी 'रपट' बना लेते थे।

मैंने कहा—तभी आप लोग रपट गए। पार्टी के हिस्से हो गए। आप लोकदल में चले गए। खैर, इस उम्र में भी आप इतने दंड पेलते हैं?

राजनारायण ने कहा—दंड पेले बिना संसदीय कर्म कैसे होगा? अभी तो मुझे शीर्षासन करना है।

और वे शीर्षासन करने लगे।

निपटे तो बोले—शीर्षासन का राजनीतिक फायदा यह है कि इसमें हर चीज उलटी दिखती है। और सफल राजनीति के लिए चीजें उलटी दिखना जरूरी हैं।

कबीर ने कहा—तो आपकी राजनीति यही है कि सीधी चीजें उलटी दिखें?

राजनारायण ने कहा—और क्या? सीधा ही दिखे तो राजनीति क्या हुई? जब कभी लिमये या जॉर्ज सीधा देखने लगते, मैं डाँट देता—ए, उलटा देखो, वरना पार्टी से निकल जाओ।

वे बाथरूम गए। लौटे तो थाली में जलेबियाँ ले आए। खाने बैठे तो पूछा—कबीर, जलेबी खाओगे!

मैंने कहा—नहीं, आप खाइए!

राजनारायण ने क्रोध से कहा—अबे खा साधु, नहीं तो एक झापड़ा मार दूँगा! सिर्फ तीन जलेबी लेना, वरना मेरी खुराक कम पड़ जाएगी।

कबीर ने तीन जलेबियाँ लीं और घबड़ाकर निगल गया।

जलेबी खाकर राजनारायण भीतर गए और दूध का लोटा ले आए। भाप निकल रही थी। वे पीने को हुए तो मैंने कहा—भाप निकल रही है। थोड़ा ठंडा कर लीजिए।

राजनारायण ने कहा—कुनकुना दूध कायर पीते हैं। उनकी राजनीति कुनकुनी होती है। डॉक्टर साहब उबलती हुई राजनीति पीते थे, मैं उबलता हुआ दूध पीता हूँ। साधु, तुम आसन, ध्यान, योग वगैरह करते हो?

कबीर ने कहा—नहीं करता। अपना तो यह है कि—

साधो, सहज समाधि भली,
जहँ-जहँ डोलों सोइ परिकरमा,
जो-जो करौं सो सेवा,
जब सोवौं तब करौं दंडवत,
पूजौं और न देवा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनारायण ने कहा—अरे, काशी में रहकर यह सब नहीं किया? तभी तो 'द्विज' तुमसे नफरत करते थे।

कबीर ने कहा—हाँ यह सही है पर मैंने भी तो द्विजों की चमड़ी उधेड़ी है।

राजनारायण ने कहा—और यही मैं भी करता हूँ। द्विजों की चमड़ी उधेड़ता हूँ। डॉक्टर साहब 'वर्ण संघर्ष' पर बड़ा जोर देते थे, पर पता नहीं जोशी-फोशी जैसे 'द्विज' पार्टी में कैसे आ गए?

कबीर ने कहा—तुम तो डॉक्टर लोहिया को बात-बात में इस तरह याद करते हो, जैसे कोई विधवा भावुक होकर कहती है—वे कहते थे कि बिब्बो, तुम्हें नीली साड़ी बहुत अच्छी लगती है।

राजनारायण ने कहा—अपनी प्रकृति के अनुसार कबीर तुमने उदाहरण ऊटपटाँग दे दिया। पर सच है कि डॉक्टर साहब राम थे, और मैं उनका हनुमान था। एक बार लिमये से उनके कुछ मतभेद हो गए, तो मैंने उन्हें लिखा कि मैं लिमये को ठीक कर दूँगा। ऐसा हमारा संबंध था। तुम ठीक कहते हो, तुमने अपने को 'राम की बहुरिया' कहा है, हम डॉक्टर साहब की बहुरिया थे। रुको, तुम्हें चाय पिलाता हूँ।

उन्होंने चाय बुलवायी। मेरे लिए कप-बसी में और अपने लिए केतली में। मैं चाय पीने लगा, पर देखता क्या हूँ कि केतली की टोंटी नाक में लगाकर वे नाक से गरम चाय पी गए।

मैंने कहा—कमाल है! गर्म चाय नाक से पीते हो!

राजनारायण ने कहा—और नहीं तो क्या? चाय ठंडी करके मुँह से पीऊँ तो मेरा नाम राजनारायण सिंह कैसे होगा? और समाजवादी क्रांति कैसे आएगी? अरे साधु, समाजवाद फूँक-फूँककर नहीं पिया जाता। वह उबलता हुआ उँड़ेला जाता है।

इतने में एक आदमी कोई शिकायत लेकर आया। राजनारायण ने शिकायत सुनी और गुस्से में कहा—मुझसे क्यों शिकायत करते हो? जाओ अपनी उसी दिल्लीवाली रानी के पास। वोट उसे दोगे, प्रधानमंत्री उसे बनाओगे और शिकायत मुझसे करोगे! जाओ, पहले उससे इस्तीफा दिलाओ, तब मुझसे बात करो।

राजनारायण ने एक फूहड़ शब्द भी कहा था, जो छपाने लायक नहीं है।

वह आदमी भाग खड़ा हो गया।

मैंने कहा—जन-समस्याओं का हल क्या आप इसी तरह करते हैं?

राजनारायण ने कहा—हाँ, ये हरामजादे वोट तो उसे देंगे और अपनी तकलीफ राजनारायण से कहेंगे।

कबीर ने पूछा—प्रधानमंत्री से आप लोग इतना क्यों चिढ़ते हैं?

राजनारायण ने कहा—यह नेहरू खानदान है। इस नेहरू खानदान ने देश का नाश कर दिया।

कबीर ने पूछा—मोतीलाल नेहरू ने भी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनारायण ने कहा—मोतीलाल नहीं, मोतीलाल के परदादों ने भी। यह खानदान ही विनाशकारी है। जब तक यह खानदान राजनीति में है, तब तक देश का नाश होता रहेगा। डॉक्टर साहब कहते थे कि इस जवाहरलाल नेहरू ने हमारी क्रांतिकारिता को मार डाला।

कबीर ने कहा—पर क्रांतिकारिता एक क्या, सौ नेहरुओं से नहीं मरती।

राजनारायण ने कहा—तभी तो राजनारायण अभी भी चौबीसों घंटे क्रांतिकारी है। बताऊँ?

और वे उचककर अलमारी पर चढ़ गए और टेबल पर कूद पड़े। कहा—देखा, ये है लगातार क्रांति!

कबीर ने पूछा—संसदीय जीवन आपका कैसा है?

राजनारायण ने कहा—अरे, मेरा संसदीय जीवन बहुत पुराना है। मेरी तारीफ ब्रिटेन के प्रधानमंत्री एटली ने भी की थी। मैं तब उत्तरप्रदेश विधानसभा का सदस्य था। एटली विधान सभा की कार्यवाही देख रहे थे। मैं पूरे 'मूड' में था—'संसदीय' 'मूड' में। मैं कुर्सी के ऊपर खड़ा हो गया और चिल्लाने लगा। अध्यक्ष ने कहा—बाहर निकल जाओ तो मैं कुर्सी के नीचे घुस गया। अब विधानसभा के गार्ड मुझे बाहर निकालने की कोशिश कर रहे हैं और मैं निकल नहीं रहा हूँ। बड़ा मजा आया! बाद में एटली ने तारीफ की। नेहरू से कहा—आपकी विधानसभा तो बड़ी जीवंत है। हमारी संसद के अधिवेशन बड़े नीरस होते हैं।

कबीर ने पूछा—आप समझते हैं यह तारीफ थी?

राजनारायण ने कहा—और नहीं तो क्या था?

मैंने कहा—अरे पहलवान, यह व्यंग्य था, मजाक था कि हमारी संसद में गंभीर विचार होते हैं और तुम्हारे यहाँ हुल्लड़!

राजनारायण ने कहा—तुम मूर्ख हो! कुछ नहीं समझते। वह मेरी तारीफ थी, इसीलिए अपने इस संसदीय कार्य को मैं चालू रखे हुए हूँ। अध्यक्ष कहता है, बैठ जाओ। मैं नहीं बैठता। अध्यक्ष कहता है—निकल जाओ, मैं नहीं निकलता और कुर्सी के नीचे घुस जाता हूँ।

कबीर ने पूछा—क्या तुम संसद की कार्यसूची पढ़ते हो? संसद में उठनेवाले विषयों का अध्ययन करते हो?

राजनारायण ने कहा—यह सब वे बुद्धू लिमये और जॉर्ज करते हैं। बैठे हैं। पढ़ रहे हैं। सोच रहे हैं। अपना यह है कि दंड पेले, जलेबी खायी, दूध पिया और संसद में पहुँच गए, और जो भी विषय उठा, उसी पर चिल्लाने लगे। मेरे फेफड़े बहुत ताकतवर हैं। विषय से अपने को मतलब नहीं। विषय चाहे जो भी हो, हमें तो हंगामा करना है।

कबीर ने कहा—पर संसद की मर्यादा होती है।

राजनारायण ने कहा—काहे की मर्यादा? जब तक वह मलिका सिंहासन पर बैठी है, तब तक कोई मर्यादा रह नहीं सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीर ने कहा—पर राजनारायण, तुम्हें, तुम्हारे गुट और तुम्हारे समाजवाद को वह चौधरी चरणसिंह लील गया।

राजनारायण ने कहा—भई, बात यह है कबीर, कि उसके पास जाट नेता बहुत हैं। और हमें बनाना है इंदिरा विरोधी मोर्चा। तो हम उसी के साथ हो गए। पर जिस दिन चाहूँगा, उस चौधरी को पछाड़कर नेता हो जाऊँगा।

मैंने पूछा—तुम्हारा कैसा समाजवाद है?

राजनारायण ने कहा—इंदिरा का विरोध करना ही समाजवाद है।

मैंने कहा—पर इंदिरा अपने को और अपनी पार्टी को समाजवादी कहती है।

राजनारायण ने कहा—खाक समाजवादी हैं! डॉक्टर साहब कहते थे कि जब तक यह जवाहरलाल नेहरू है, तब तक समाजवाद नहीं आ सकता। नेहरू गए तो यह मलिका आ गयी। जब तक नेहरू खानदान है, तब तक समाजवाद आ ही नहीं सकता।

कबीर ने पूछा—अगर लिमये प्रधानमंत्री हो जाएँ तो तुम क्या करोगे?

राजनारायण ने कहा—तब भी मैं विरोध करूँगा। नारा लगाऊँगा—लिमये-परिवार ने देश का नाश कर दिया। मैं हमेशा विरोध करूँगा।

मैंने पूछा—तुमने कार्ल मार्क्स पढ़ा है?

राजनारायण ने कहा—नहीं पढ़ा। क्यों पढ़ें? डॉक्टर साहब तो थे।

मैंने पूछा—डॉक्टर लोहिया ने जो लिखा है, वह पढ़ा है?

वे बोले—वह भी नहीं पढ़ा। जब डॉक्टर साहब हमारे साथ थे तब उनका लिखा क्यों पढ़ें? अभी तुमने कार्ल मार्क्स की बात की। ये कम्युनिस्ट कार्ल मार्क्स को गुरु मानते हैं। ये बदमाश कांग्रेस में घुस गए हैं। बाहर से उनकी पार्टी और भीतर से ये घुस-पैठिए उस रानी का दिमाग खराब कर रहे हैं। उसे गलत रास्ते पर चलाते हैं।

मैंने पूछा—जयप्रकाश नारायण का आंदोलन कैसा है?

वे बोले—बहुत अच्छा है। मैं तो उनका समर्थक हूँ।

मैंने पूछा—क्या इसीलिए कि वे क्रांति लाना चाहते हैं?

वे बोले—नहीं, इसलिए कि जयप्रकाश इंदिरा गँधी को तंग कर रहे हैं। हमें तो इस सुरसा को खत्म करना है, राजनीति से। और यह मैं ही करूँगा—

जस-जस सुरसा बदन बढ़ावा,
तासु दुगुन कपि रूप दिखावा।

मैंने पूछा—अभी क्या कार्यक्रम है?

वे बोले—बस संसद का सत्र खत्म होते ही विश्वविद्यालय के फाटक पर अनशन शुरू कर दूँगा। उधर हमारी यूनियन है।

—अब चलूँ। संसद में आज मेरा हुल्लड़ का प्रोग्राम है—जय बजरंगबली—तोड़ दुश्मन की नली!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने कहा—यह जरूरी थोड़े ही है कि प्रश्न के घंटे में ही हुल्लड़ का संसदीय कार्य करो। दिन-भर पड़ा है।

राजनारायण ने कहा—हाँ, सो तो ठीक है। एक बात कहना भूल गया। तुम भी काशी के, तुलसीदास भी काशी के, भारतेंदु भी काशी के और मैं भी काशी का हो गया। फिर भारत की राजधानी काशी क्यों न हो? मैं संसद में इस बारे में एक बिल लाऊँगा कि भारत की राजधानी काशी हो। तुम्हारा गालिब से अच्छा स्मारक बनवाऊँगा।

कबीर ने कहा—बिल तो लोकसभा में आता है और तुम हो राज्य-सभा में।

वे बोले—हाँ, यह कठिनाई है। खैर, आगे देखा जाएगा। पर एक बात कहता हूँ। भारतेंदु ने कहा था—प्यारे हरिचंद की कहानी रह जाएगी। मैं कहता हूँ—प्यारे राजनारायण की कहानी रह जाएगी!

कबीर ने विदा ली।

लौटा तो कनछेदी ने पूछा—मिल आए?

मैंने कहा—मिल आया।

कनछेदी ने कहा—साधु, तुमने मुहल्ले का बड़ा भला किया।

डाक्टरों से भेंट

कबीरदास राजनेताओं से मिलता था, मजे की बातें होती थीं। राजनारायण सिंह से मिलने का मजा गया नहीं था। सोच रहा था कि गुजरात जाऊँ या बिहार जाऊँ, पर एक गैर-राजनैतिक काम में फँस गया—मानवीय काम में। इसका यह मतलब नहीं कि राजनीति अमानवीय होती है, पर यह एक व्यक्तिगत काम आ गया।

मैं बाहर निकला, तो कनछेदी बरामदे में बैठा दिख गया। कबीर ने पूछा—कहो कनछेदी, क्या कर रहे हो?

कनछेदी ने कहा—कुछ नहीं, आसमान में मानसून की राह देख रहे हैं और फिर छत को देखते हैं। मानसून अच्छा आए, तो किसान से लेकर कृषिमंत्री तक खुश होते हैं पर मेरा दिल बैठने लगता है। सारा घर टपकता है। हर बरसात में लगता है कि अब घर की जगह झील बन जाएगी।

मैंने कहा—तो मरम्मत कराओ।

कनछेदी ने कहा—मरम्मत तो कराता हूँ, पर छत हो तो उसकी मरम्मत हो। यह जो है, छत दिखती है, पर छत है नहीं। एक छेद ढाँको तो दूसरा खुल जाता है—जैसे सरकार एक पोल ढाँकती है, तो दो नयी खुल जाती हैं। देखो, तुम्हारी ही झीनी-बीनी चदरिया है, अगर वह फटकर तार-तार हो जाए, तो पैबंद कहाँ लगाओगे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीर ने कहा—सो तो ठीक है, कनछेदी! इस देश की चादर भी तार-तार हो गयी है। देश के भाग्य-विधाता चादर बदलना नहीं चाहते। उसी तार-तार चादर में पैबंद लगाने की कोशिश करते हैं। खैर, तुम दूसरा मकान ले लो।

कनछेदी ने कहा—साधु, तुम होगे ज्ञानी, पर दुनियादारी नहीं समझते। सस्ते अच्छे मकान सरकारी नौकरों को मिल जाते हैं। वे 'रेंट कंट्रोल' में आते हैं। नये मकान का किराया अपने बस का नहीं। एक नए मकानवाले से पूछा तो उसने कहा—यह मकान तुम्हारे लिए नहीं है, सरकार के लिए है। तुम हद से हद सौ रुपये दोगे, पर सरकार किसी दफ्तर के लिए पाँच सौ में ले लेगी। सरकार की तरफ से कोई मोलभाव नहीं करता, क्योंकि किराया अफसर की जेब से नहीं जाता। खैर, इस बरसात में मकान गिर जाए और मैं दबकर मर जाऊँ, तो यहाँ तुम 'कनछेदी स्मारक' बनवा देना। जीते जी जो नहीं मिला, उसे मरकर ले लूँगा। पर तुम कहाँ जा रहे हो?

मैंने कहा—कनछेदी, अपने अखाड़े का यह भगत है न, रामदास, उसके इलाज का इंतजाम कराने जा रहा हूँ। उसके पेट में जोर का दर्द उठा और सुना, वह अस्पताल में भर्ती हो गया है।

कनछेदी ने कहा—गोया डाक्टरों के चक्कर में पड़ गए! अरे, रोग से आदमी बच जाता है, पर डाक्टरों से नहीं बचता। इधर एक बड़ा डाक्टर है। पिछले साल मेरे चचेरे भाई बीमार पड़े। उस डाक्टर को बुलाया। जब तक डाक्टर पहुँचे, भाई मर चुका था, पर डाक्टर ने उस मुर्दे को ही एक इंजेक्शन दे दिया और 35/-ले लिए। खैर, जाओ। साधु समझकर शायद कुछ दया कर दें।

कबीर अस्पताल पहुँचा, तो देखा रामदास वार्ड के सामने एक झाड़ की छाया में पड़ा कराह रहा है। मेरा खयाल था, वह भरती कर लिया गया होगा। मैंने पूछा—क्यों रामदास, वार्ड में भरती नहीं हुए?

रामदास ने कहा—भरती करते ही नहीं हैं। कहते हैं, बेड खाली नहीं है! मेरा तो पेट फटा जा रहा है।

मैं वार्ड में गया। देखा, सात-आठ बेड खाली हैं। कबीर भरती करनेवाले डाक्टर के कमरे में पहुँचा। वहाँ दरवाजे पर एक चपरासी बैठा बीड़ी पी रहा था। उसने मुझे भीतर जाने से रोका। मैंने झट झोले में से गाँजा निकाला और उसे देते हुए कहा—क्या कोरी बीड़ी पी रहे हो! यह लो गाँजा! थोड़ा गीला करके मलकर बीड़ी में भर लो और कश खींचकर बोलो—लेना हो शंकर!

उसने कहा—वाह महात्मा, क्या परसाद दिया है! कल से ये खतम हो गया था। जाओ, भीतर जाओ, साधु महाराज!

वह गाँजा मलने में लग गया। मैं भीतर घुस गया। डाक्टर नीचा माथा किए, अपने आप कह रहे थे—क्या डल सीजन है! साला 'हैल्दी सीजन' चल रहा है। प्रैक्टिस आधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रह गयी है।

डाक्टर साहब ने सिर उठाकर मुझे देखा और गुस्से से कहा—कौन हो जी? किसने आने दिया? हर कोई साधु, भिखमंगा चला आता है! क्या काम है?

मैंने कहा—एक रामदास नाम का आदमी झाड़ के नीचे पड़ा है। उसे भरती कर लीजिए न!

डाक्टर ने कहा—बेड खाली नहीं है।

मैंने कहा—मैं खुद देखकर आ रहा हूँ कि सात-आठ बेड खाली हैं।

डाक्टर ने खीजकर कहा—होंगे खाली! पर जब वे बेड उसे लेते नहीं हैं, तो मैं क्या करूँ? जिस बेड पर डालो, वही उछालकर फेंक देता है। जाओ, तुम्हीं किसी बेड को मना लो!

मैंने पूछा—मरीज आप तय करते हैं या बेड?

डाक्टर ने कहा—बेड तय करता है। क्या करता है, यह तुम्हारा मरीज?

मैंने कहा—गरीब आदमी है। थोड़ी-सी खेती है।

डाक्टर ने कहा—गरीब है तो घर पर क्यों नहीं मरता? इधर मरने क्यों आया ? वह भरती नहीं होगा।

कबीर को क्रोध आ गया। मैंने कहा—मैं आपकी रिपोर्ट करूँगा।

डाक्टर ने कहा—किससे रिपोर्ट करोगे? इस दुनिया में तो कोई सुननेवाला नहीं है! तुम्हारी तो भगवान ही सुनता है, पर भगवान को मैंने अभी ताकत के इंजेक्शन दिए हैं। और पिछले साल जब शंकर को 'टाइफाइड' हुआ था, तब मैंने ही उन्हें 'क्लोरोमाइसटीन' दी थी। तुम्हारी सुनेगा कौन? निकल जाओ यहाँ से।

कबीर बदहवास कमरे से बाहर निकला।

तब वही चपरासी जो गाँजा फूँक चुका था, मिला। उसने कहा—गुरु, ऐसे काम नहीं होगा। डाक्टर साहब के बँगले जाओ—और कुछ 'कलदार' टेंट में लेकर जाओ, तब बेड खाली होगा।

मैंने रामदास से कहा—थोड़ा धीरज रखो। शाम तक सब ठीक हो जाएगा।

मैं बड़ा दुखी लौटा। तभी कनछेदी आ गया। पूछने लगा—कहो, कैसा है रामदास?

मैंने कहा—झाड़ के नीचे पड़ा तड़प रहा है। भरती नहीं किया गया।

कनछेदी ने कहा—तुमने ऊपर रिपोर्ट क्यों नहीं की?

मैंने कहा—रिपोर्ट किससे करता? सबसे ऊपर तो भगवान है, पर डाक्टर कहता है कि भगवान खुद मुझसे ताकत के इंजेक्शन लेते हैं।

कनछेदी खूब हँसा। कहने लगा—भगवान को भी ताकत के इंजेक्शन लगते हैं ? वाह रे भगवान! देखो कबीर, कल जब अस्पताल जाओ तो रामदास के कफन-दफन का इंतजाम करके जाना। हमेशा इस तैयारी से अस्पताल जाना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने कहा—नहीं कनछेदी, मैंने आशा नहीं छोड़ी है। शाम को डाक्टर से बँगले पर मिलूँगा। भगवान से ऊपर भी एक सत्ता है।

—तुम्हारे पास सौ रुपये होंगे?

कनछेदी ने कहा—दो सौ ले जाओ, पर उस गरीब रामदास को बचाओ।

शाम को कबीर बड़े डाक्टर के बँगले पहुँचा। बँगले के फाटक पर एक तख्ती लगी थी—'कुत्ते से सावधान!' मेरा खयाल था, इस बँगले में आदमी रहता है! पर मैं घुस गया। कुत्ता भयंकर था, पर एक बार गुर्राकर शांत हो गया। यह ज्यादा समझदार निकला।

डाक्टर के कमरे में घुसा। उनके सामने फार्मों की एक थप्पी लगी थी। वह उन्हें देखकर दस्तखत करते जा रहे थे।

मुझे देखकर भड़क पड़े—तुम फिर आ गए भिखमंगे! मैंने कह दिया न कि वह तुम्हारा रामदास भरती नहीं होगा।

मैंने जेब से पचास रुपये निकालकर रख दिए। कहा—यह बात करने की फीस है। ये जो फार्म हैं, काहे के हैं?

डाक्टर ने कहा—ये 'रिइम्बर्समेंट' के फार्म हैं। तुम इस कठिन काम को क्या समझोगे ?

मैंने कहा—समझता हूँ। सरकारी नौकरों और उनके परिवार के इलाज के बिलों पर आप दस्तखत कर रहे हैं। मैंने ऐसे सरकारी नौकर भी देखे हैं, जिनके बीवी-बच्चे सब लगातार हर महीने बीमार रहते हैं। पता नहीं, ये मरते क्यों नहीं! यह आपके इलाज की कृपा है कि परिवार बीमार पड़ा है, दवा केमिस्ट की अलमारी में है, डाक्टर घर बैठा है -बस सिर्फ बिल बन रहे हैं। इसी दवा से लोग स्वस्थ हो जाते हैं। यह तो विज्ञान नहीं, जादू है!

अब डाक्टर चौंका। बोला—तुम कौन हो जी? क्या तुम सी. बी. आई. के आदमी हो?

मैंने कहा—हुजूर, मैं जानता ही नहीं कि सी. बी. आई. क्या है! मैं तो भीख माँगनेवाला हूँ। भीख माँगकर पचास आपको दिए। पर मैं यह मानता हूँ कि आपके ऊपर इन फार्मों का ही इतना बोझ है कि इलाज करने या मरीज की तरफ ध्यान देने क। आपको समय नहीं मिलता। आप सचमुच दया के पात्र हैं। आप पर इन्कमटैक्स चोरी का मुकदमा चल रहा है और वह फौजदारी भी है। जमानत का इंतजाम तो कर लिया होगा, वरना मैं भीख माँगकर जमानत ले लूँगा। आप देवता हैं।

डाक्टर घबड़ाया। उसने मुझे पचास रुपए वापस किए। फिर भीतर गया और पाँच सौ रुपए लाया। मुझे देकर कहा—यह और लो। मैं सब समझ गया। कल रामदास की भरती कर लूँगा। बाकी कृपा बनाए रखना। पर आपका 'रैंक?' पद?

कबीर ने कहा—सुपरिंटेंडेंट स्पेशल ब्रांच।

डाक्टर ने कहा—अरे बाप रे! आप जाइए! ज़रा मेरे कुत्ते से बचकर जाइए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने कहा—कुत्ता आपसे ज्यादा समझदार है। उसने मुझे छेड़ा ही नहीं। कुत्ते भी तरह-तरह के होते हैं।

लौटकर कबीर ने कनछेदी से कहा—लो अपने दो सौ। ऊपर से डाक्टर के दिए पाँच सौ मेरे पास हैं।

कनछेदी ने पूछा—डाक्टर ने तुम्हें रुपए क्यों दिए?

मैंने कहा—कनछेदी, हर चादर मैली है। पहले मूरख मैली करता था, अब बुद्धिमान मैली करता है। डाक्टर समझा कि मैं सी. बी. आई. का आदमी हूँ और उनके हिसाब की जाँच करने आया हूँ।

खैर, दूसरे दिन रामदास भरती हो गया।

मैंने उसके वार्ड के डाक्टर से कहा—इसके पेट का एक्स-रे करा दीजिए।

उसने कहा—तुम क्या डाक्टर हो? आ गए एक्स-रे कराने! एक्स-रे मशीन इंकार कर रही है। जाओ मनाओ उसे!

कबीर गया और एक्स-रे मशीन के चरणों पर पचास रुपए रखकर कहा—हे देवि, तू मान जा। यह तेरी भेंट है। अब तू गरीब रामदास की फोटो उतार दे।

मशीन खुश हो गयी। रामदास का एक्स-रे हो गया।

मैंने पूछा—डाक्टर साहब, क्या मशीनों में विल पावर (इच्छा-शक्ति) होती है?

वह मेरी तरफ देखने लगा। मैंने कहा—जवाब दीजिए।

उसने कहा—तुम हो कौन जो इस तरह की बातें करते हो? तुम कहीं···

मैंने कहा—यों ही गँवार हूँ, पर एक बात तो बताइए—इन्कमटैक्स में तो आप नहीं फँसे हैं?

उसने कहा—तुम्हें मतलब?

मैंने कहा—कोई मतलब नहीं।

डाक्टर थोड़ी देर एक कोने में खड़ा सोचता रहा। फिर आकर मुझे पचास रुपए वापस किए और कहा—ये ले जाओ। तुम शायद 'वो' हो।

अब रामदास का इलाज ठीक चलने लगा।

पर एक दिन रामदास को बेहद दर्द होने लगा। मैंने एक डाक्टर से कहा, तो उसने जवाब दिया—वह डाक्टर प्रसाद का पेशेंट है, मैं नहीं देखूँगा।

मैंने कहा—अगर वह मर रहा हो तो?

उसने कहा—तो मर जाए। डाक्टर प्रसाद का केस है, वही बदनाम होगा।

किसी तरह रामदास ठीक हो गया। तब मैंने डाक्टरों से कहा—मैं कबीरदास हूँ—संत कवि!

वे चौंके—अरे वही संत कबीर—'घूँघट के पट खोल रे, तोहे पिया मिलेंगे' वाले!

मैंने कहा—हाँ वही। पर तुम्हारे घूँघट के पट कब खुलेंगे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामदास घर लौट गया।

कनछेदी ने कहा—कहो कबीरदास, अब क्या सोचते हो?

मैंने कहा—सोचता क्या हूँ! गालिब को याद करता हूँ—

पड़ जाइए बीमार तो कोई न हो तीमारदार,
और जो मर जाइए तो नौहःख्वाँ कोई न हो।

कनछेदी भी काँइयाँ है। कहने लगा—यह कैसा रहेगा—

लायी हयात, आए, कजा ले चली चले,
न अपनी खुशी आए थे, न अपनी खुशी चले।

कबीर ने कहा—अच्छी बात है, कनछेदी! अच्छा, 'गुड मार्न, डाक!'

कनछेदी ने कहा—यह 'गुड मार्न डाक' क्या है जी?

मैंने कहा—कनछेदी इसका मतलब है—गुड मार्निंग डाक्टर! एक-दूसरे से सब ऐसा ही अभिवादन करते हैं। यह अँगरेजों के जमाने से चला आ रहा है। अभी हिंदी-वीरों का ध्यान इस तरफ नहीं गया।

कनछेदी उठा। बोला—अच्छा, गुड मार्न डाक!

मैंने कहा—कनछेदी, फिर तुम गलती कर गए। जाते वक्त यह नहीं कहा जाता।

सरकार और साहित्यकार*

पिछले 2-3 सालों से, जबसे हिंदी के लेखकों-कवियों की 'भरती' रेडियो और सरकारी पदों में अधिक होने लगी है, यह आवाज जगह-जगह से उठने लगी है कि सरकार स्वतंत्र चिंतक को सरकारी फर्मे में जमा रही है, प्रतिभा का उपयोग सरकारी 'रोटीन' में करती है, साहित्यकार के सत्य, निर्भय और स्पष्ट स्वर को कुंठित कर रही है। इसे सरकार द्वारा साहित्यकारों की 'खरीद' भी कहा जा रहा है। इस प्रकार की आवाजें विभिन्न क्षेत्रों से आ रही हैं, जिनमें एक स्वर उनका भी है, जिन्हें अभी ये नौकरियाँ मिलने में देर है। अक्षमता घृणा को जन्म देती है। विफल आशा भी उपदेश-वृत्ति की जननी है। लेकिन केवल यही है, यह मानना शुतुरमुर्ग की आत्मरक्षा की क्रिया से कुछ कम मूर्खतापूर्ण नहीं है। इस आवाज में अनेक स्वर उन ईमानदार, स्वार्थहीन, स्वतंत्रचेता साधकों के हैं, जिन्हें 'पराई विभूति' देख सकने का अभ्यास है। 'हिंदुस्तान' साप्ताहिक में जो पत्र छपते रहते हैं, वे इस बात के द्योतक हैं कि इस बात को लेकर हिंदी संसार में कितनी हलचल है। दिल्ली से प्रधानमंत्री, सचिव और नेताओं के आसपास हिंदी की बड़ी-बड़ी दुमें हिलने की जो खबरें आती हैं, वे बड़ी शर्म दे जाती हैं। हाल ही में 'अमृत बाजार पत्रिका' में श्रीकृष्णलाल श्रीधरानी का एक

* वसुधा, वर्ष : 1, अंक : 4, अगस्त 1956

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख इस संबंध में छपा था। 26 जनवरीवाले राजधानी के सर्व-भाषा कवि-सम्मेलन में हिंदी के ही दो कवि ऐसे निकले, जिन्होंने पंडित नेहरू की प्रशंसा में कविताएँ लिखीं—दोनों डॉक्टर कवि, जिनमें एक भारत के विदेश विभाग में, दूसरे उसके बाद काठमांडू में नियुक्त। अन्य भाषाओं की कविताओं की तुलना में उस रात हिंदी की कविताएँ काफी घटिया रहीं, क्योंकि बड़े-बड़े कवियों ने उस राष्ट्रीय पर्व पर राष्ट्र की महती आत्मा, आशा और आकांक्षा को सतही करना ज्यादा जरूरी समझा। राज्यों की राजधानियों से भी खबरें आती हैं कि किस प्रकार साहित्यकार सचिवों और मंत्रियों को खीसें दिखाते हैं और अपनी सफलता की फसल के लिए अपने खेत में दूसरे की निंदा-चुगली का 'खाद' देते रहते हैं।

ये सब परिस्थितियाँ बड़ी भयावह हैं। विगत मास की 'राष्ट्रवाणी' में धर्मवीर भारती का काफी क्षुब्ध मन से लिखा गया एक लेख छपा है, जिसमें दो मूर्धन्य साहित्य-सेवकों का उदाहरण देकर बतलाया है कि हिंदी के कलाकार 'धुरीहीन' हैं।

हिंदी के साधक की गरीबी सर्वविदित है। आराम का लोभ सबसे संवरण नहीं हो सकता। जीने के लिए साधन चाहिए; सरकारी नौकरी अच्छा साधन ही है। पर सवाल यह है कि अगर ये सरकारी नौकरियों पर न जावें, तो करें क्या? इसका एक आम जवाब यह है कि साहित्य-रचना धंधा नहीं है; तपस्या है। कबीर कपड़ा बुनकर कविता लिखते थे; रैदास जूते बनाकर पेट भरते थे। उन्होंने साहित्य को कभी जीविका का साधन नहीं बनाया। यह जवाब बड़ा मोहक लगने पर भी असंगत और अयथार्थ है। एक तो वह जमाना दूसरा था। फिर हर आदमी कबीर और रैदास बन भी नहीं सकता। यह माना कि भारत में अभी तक लिखने से रोटी नहीं मिलती। फिर भी यह तो सही है ही कि रोटी कमाने के काम में सारी शक्ति और समय लगाकर श्लथ मन और तन से लेखक आखिर क्या लिखेगा? जो आदमी जिस चीज का निर्माण करता है, उससे उसे रोटी मिलती है। कुम्हार को बर्तनों से रोटी मिलती है, चमार को जूते से। जो साहित्य का निर्माण करता है, उसे ही आखिर उससे रोटी क्यों न मिले? नहीं मिलती, इसका कारण है कि घड़े खरीदनेवाले तो समाज में हैं, पर पुस्तक खरीदनेवाले नहीं हैं। जो हैं वे जासूसी पढ़ते हैं या वे उपन्यास पढ़ते हैं जिनमें हर पैराग्राफ के बाद आता है—"फिर हाथ और साड़ी के युद्ध में साड़ी हार गयी।" हल्की फिल्म और हल्का साहित्य चला है। अच्छी फिल्में फेल होती हैं, अच्छा साहित्य अलमारियों में रखा रहता है। परिणाम यह है कि हिंदी का लेखक वास्तव में भूखा मरता है।

ऐसे समय में सरकार ने बड़ी कृपा की है (?) कि उसे रोटी देना आरंभ कर दिया। लेकिन गलों में रस्सी बाँधकर, खूँटे से कसकर, रोटी पशु के लिए शायद हितकर हो, साहित्य रचनेवाले के लिए घातक ही है। कोई भी देख सकता है कि आमतौर पर सरकारी पदों पर जाने के बाद लेखक की रचनाओं में वह ओज, वह स्पष्ट स्वर नहीं मिलता, जो पहले मिलता था। 'केरिअर' बहुत बुरी बला है, 'क्लास टू' से 'क्लास वन' तक चढ़ जाने की आकांक्षा बड़े पतन का कारण बन रही है। सचिवालय की घुटन में और रेडियो के संकीर्ण साँचे में प्रतिभाएँ नष्ट हो रही हैं, आत्माएँ कलुषित हो रही हैं;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छल, कपट, प्रवंचना धीरे-धीरे इस पवित्र क्षेत्र में आ रही है। जागरूक साधक इस शिकंजे में चीख-चीख पड़ता है।

साहित्य-सृजेता को स्वतंत्र होना ही चाहिए, तभी उसका स्वर निर्भय और स्वतंत्र होगा। शासन का पिछलग्गू साहित्य, समाज को पतन की ओर ले जाएगा। लेकिन जो लेखक को सामान्य समाज से ऊपर ऐश-आराम की जिंदगी की सुविधा कर देना चाहते हैं, वे उसकी साहित्यिक मौत का प्रबंध करना चाहते हैं। उसे सामान्य जन-जीवन के सुख-दुख में भाग लेना चाहिए, उसी स्तर पर जीना चाहिए, तभी उसके साहित्य में सत्य उभरकर आएगा। 'एयरकंडीशंड' कमरे में वह 'यूटोपिया' के ख्वाब देखेगा। जो 'केरिअर' की धुन में है, उसे तो एकदम साहित्य रचना बंद ही कर देना चाहिए। साहित्य रचना तपस्या तो है ही। इसमें मिटना तो पड़ता ही है। तहसीलदार को डिप्टी कमिश्नर होते देखकर अगर कलेजे से ठंडी साँस निकल जाती है तो तुरंत नौकरी कर लेना चाहिए, साहित्य रचना वश की बात नहीं है। जो बेलाग जिंदगी जी सकते हैं, उनसे ही कुछ नए की उम्मीद कर सकते हैं।

पर यह लिखने का मतलब यह नहीं है कि हिंदी के लेखक को मर जाने के लिए छोड़ देना चाहिए। उसे जीने के साधन तो देने ही होंगे। और यह साधन उसकी कृतियों से होने चाहिए। सरकार अगर वास्तव में लेखक की सहायता करना चाहती है तो उसकी रचनाओं की बिक्री का प्रबंध करना चाहिए। गाँव-गाँव में पुस्तकालयों की स्थापना करनी चाहिए, जिससे पुस्तकें खप सकें। फिर पत्रों द्वारा शोषण बंद होना चाहिए। विज्ञापन में हजारों रुपए कमाकर कितने पत्र लेखक को 5 या 10 में निपटा देते हैं या केवल 'नमस्कार' कर लेते हैं। फिर सामाजिक रुचि का भी परिष्कार जरूरी है। अच्छा साहित्य पढ़ने की और खरीदकर पढ़ने की आदत जब तक लोगों में नहीं आएगी, लेखक की जिंदगी कष्टमय रहेगी ही।

अंतिम रूप से इस संबंध में कोई योजना देना अभी कठिन है, पर समाज और साहित्य के हितचिंतकों को शीघ्र ही कोई रास्ता निकालना होगा, अन्यथा धीरे-धीरे सरकारी फाइलों की श्रेणी का साहित्य निकलने लगेगा। साहित्य को सरकारी चीज बनने देने से बचाना होगा।

'क्वाँरा' की दुर्गति*

पिछले 7-8 वर्षों से हिंदी कविता में कुछ शब्दों की ऐसी पिटाई मची है कि अब कविता में इन्हें देखकर रसोद्रेक होना बंद हो गया है, केवल दया आती है। एक नमूना देते हैं—क्वाँरा

*वसुधा, वर्ष : 1, अंक : 5, सितंबर 1956

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और क्वाँरी।

न जाने कब से चल रहा है 'क्वाँरा' और 'क्वाँरी'। हिंदी के क्वाँरेपन के आरंभ में धर्मवीर भारती के प्रयोग—'क्वाँरी साँसों का देवता' ने ध्यान खींचा था। इसके बाद तो क्वाँरा और क्वाँरी की झड़ लग गयी। शायद ही कोई सप्ताह ऐसा गुजरा हो, जब किसी कविता में यह प्रयोग न पढ़ा हो। कभी क्वाँरी किरण है तो कभी क्वाँरे खेत!

क्वाँरापन बड़ा लुभावना होता है, कवियों को तो और अधिक। क्वाँरा या क्वाँरी में जो ग्रामीणत्व है, हमारी भूमि की मिट्टी की गंध है, अकृत्रिम अभिव्यक्ति है, वह सहज ही मन को मोह लेती है, इसमें कोई शक नहीं। पर जब हर चीज क्वाँरी होने लगी, तब बड़ा कष्ट होने लगा। हिंदी के नवीन कवियों ने पिछले सालों में लगभग हर चीज को क्वाँरी बना दिया है—विवाहिता को भी और विधवा को भी। नजर से जो असंख्य प्रयोग इस प्रकार के गुजर चुके हैं, उनमें से यहाँ-वहाँ के जो नोट किए हैं, वे ये कुछ हैं—

क्वाँरी कली, क्वाँरी बाल, क्वाँरी किरन, क्वाँरा यौवन, क्वाँरा आसमान, क्वाँरी धरती, क्वाँरी मिट्टी, क्वाँरी आशा, क्वाँरे अरमान, क्वाँरी ऊषा, क्वाँरी दूब, क्वाँरी संध्या, क्वाँरी उमंग, क्वाँरा बादल, क्वाँरी लता, क्वाँरी नदी, क्वाँरी धड़कन, क्वाँरा चाँद, क्वाँरा सूरज, क्वाँरे पौधे !

ये केवल कुछ हैं। अगर सबकी गिनती करेंगे तो 2-3 पृष्ठ घेर लेंगे। हर चीज हिंदी कविता में क्वाँरी हो गयी है। और अभी उस दिन 'धर्मयुग' के कवितांक में नीरज की कविता देखी, तो चलते-चलते कंठ में अटकी 'मेले की क्वाँरी चहल-पहल!' अब और क्या रहा ? 'क्वाँरा मकान', 'क्वाँरा स्टेशन', 'क्वाँरा एंजिन', 'क्वाँरा घंटाघर', 'क्वाँरी मडी', 'क्वाँरी कोतवाली' और हो जाए! हिंदी के बड़े-छोटे कवियों से कहना है कि भाइयो, प्रतिभा को ज़रा खराद पर रखो, बार-बार शब्दों की पिटाई कम करो। पंतजी ने दो मात्राओं की कमी देखी, तो 'चिर' धर दिया और हर किसी संज्ञा के पहले शत-शत लगाना शुरू कर दिया, माखनलालजी सूझ, पीढ़ी और ईमान के बिना दस वाक्य नहीं लिखते। नये लोग बुजुर्गों से कम-से-कम यह बात न सीखें।

रेडियो की बात*

रेडियो की बात कितने बार, कितने लोगों ने कितनी तरह से लिखी है—कोई सीमा नहीं ! पर बात समाप्त नहीं हो रही है—'हरि अनंत हरि कथा अनंता!'

बातें वही हैं—रेडियो की रंगभेद नीति, फर्म में 'फिट' करने की प्रवृत्ति।

रेडियो के कार्यक्रमों की लिस्ट देखने से मालूम होता है कि शायद रेडियोवालों के

* उपरोक्त अंक में प्रकाशित दूसरा सम्पादकीय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास दो लिस्टें हैं—एक काली लिस्ट और एक गोरी लिस्ट। गोरी लिस्ट में कुछ तो श्वेत केशधारी होते हैं; शेष वे होते हैं जो रेडियो-अधिकारियों से मिल लेते हैं, या चिट्ठी द्वारा नमन कर लेते हैं, जो उनके गुट्ट से हैं, उनके अखाड़े के शागिर्द हैं। वे भी इस गोरी लिस्ट में हैं, जो पूर्णतः सरकारी साहित्यकार हैं। वे भी, जो शराबबंदी पर, योजना पर, मंत्री-अभिनंदन पर, भूदान पर, प्रधानमंत्री पर, कविता और लेख लिखकर हुक्म मिलते ही दे देते हैं। वे भी इस गोरी लिस्ट में हैं जो अपनी रचनाओं से ओजपूर्ण शब्द छाँट-छाँटकर निकाल देते हैं, जिनकी रचना 'फिल्मफेयर' में भी छप सकती है और 'कल्याण' में भी। वे भी जो सामाजिक और आर्थिक क्रांति की बात करना पाप समझते हैं। रेडियोवाले इस कदर गुलामी के शिकंजे में कसे हैं कि कोई शक्ति और ओज की बात सुनवाना राजद्रोह मानते हैं।

शेष काली लिस्ट में।

प्रोग्राम दोनों को देते हैं।

अगर काली लिस्टवाला अच्छा लिख लेता है, तो उसका प्रोग्राम न देने से, हल्ला-गुल्ला होगा। इसलिए काली लिस्टवाले का कोई पुराना रिकार्ड तीन रुपए में बजा दिया या 10-15 रु. में कोई रचना-वचना पढ़वा दी। फिर गोरी लिस्टवाले को 80-90 रुपयों में रेडियो पर बुलाकर भाषण करवा दिया। दोनों का प्रोग्राम हो गया न। अब तो कोई एतराज नहीं।

इसमें सबसे ज्यादा पिसता है, नया साहित्यकार। बुजुर्गों को कभी ऐसा लगता नहीं है कि इस नीति का विरोध करें, क्योंकि उनको तो प्रोग्राम मिलते हैं। नए लेखकों में, जो अपने आपको इस ढाँचे में फिट कर लेते हैं, लाभ लेते हैं; जो नहीं कर पाते, कलाकार के आत्मसम्मान को जाने नहीं देते, सत्य को स्पष्ट घोषित कर देते हैं, वे अछूत हैं।

कितनी नवीन उद्‌भट प्रतिभाओं की अवहेलना करके रेडियो अपना स्तर नीचे गिरा रहा है!

हिंदी-विरोधी शक्तियाँ*

हाल ही में श्री राजगोपालाचारी के एक भाषण से तथा उसके कुछ समय पूर्व राज्यों के शिक्षामंत्री-सम्मेलन के एक निर्णय से, हिंदी-संसार में बड़ी हलचल मच गयी है।

राजाजी बड़े जिम्मेदार आदमी हैं, वे स्वयं एक बड़े साहित्य-साधक हैं इसलिए उनकी बात बड़ा वजन रखती है। उन्होंने कहा है कि भारत में राज्यों के आपसी संबंधों की भाषा अँगरेजी होनी चाहिए। बात तो यह हुई, पर इसका तर्क बड़ा दिलचस्प है—यह कि अगर हिंदी ही अनिवार्य राष्ट्रभाषा बनायी गयी तो दक्षिण के प्रति अन्याय होगा, क्योंकि दक्षिण

* वसुधा, वर्ष : 1, अंक : 7, नवंबर 1956

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लोगों ने दो सौ वर्षों से अँगरेजी सीख ली है। वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध और कूटनीतिवृद्ध राजाजी से विनम्रतापूर्वक यह कहना है कि क्या 'केवल' दक्षिण के खयाल से राष्ट्रभाषा निश्चित होगी? उत्तर, पूर्व और पश्चिम भारत का इसमें कोई हित नहीं देखा जाएगा? और अगर दक्षिणवालों ने विदेशी शासकों की विदेशी भाषा इतनी कुशलता से सीख ली, तो क्या वे राष्ट्रभाषा हिंदी को नहीं सीख सकेंगे? या क्या वे राष्ट्र की भाषा का सीखना तौहीन समझेंगे और विदेशी भाषा पर गर्व करेंगे? हिंदी के पक्ष में जो सबसे बड़ी बात है, वह यह है कि यह देश के सबसे बड़े जनसमाज द्वारा बोली, लिखी और समझी जाती है और अब तक इसने वह सामर्थ्य भी प्राप्त कर ली है, जो एक राष्ट्रभाषा में अपेक्षित है।

पर हिंदी के प्रति एक प्रकार का पूर्वाग्रह कुछ लोगों के मन में है, जिनमें पंडित नेहरू-जैसे लोग भी हैं। पंडितजी में हर विषय पर अंतिम शब्द बोल देने की जो प्रवृत्ति है, उसी के अनुसार उन्होंने कुछ दिन पहले कह दिया कि यदि हिंदी से काम चलाया गया तो पंचवर्षीय योजना के क्रियान्वयन में कठिनाई होगी। यह बात समझ में नहीं आयी। हिंदी भाषा से काम चलाने पर बाँध, पुल, रेलमार्ग, कारखाने और सड़क बनाने में क्या कठिनाई होगी? इंजीनियरिंग की शिक्षा अँगरेजी के माध्यम से ही होती है—यह शायद पंडितजी का विचार है। पर रूसी विशेषज्ञ भी क्या अँगरेजी से काम चलाते हैं? और क्या जर्मन शिल्पी और यंत्री अँगरेजी भाषा के मोहताज रहते हैं? नयी व्यवस्था लागू करने में पहले-पहल जो अचरज लगता है, उसी के शिकार हम लोग हो रहे हैं। यह तो लगेगा ही। विद्यार्थी को 'मे आइ कम इन सर' की जगह 'क्या मैं आ सकता हूँ' कहने में बड़ी झेंप लगती है। पर क्या समय के साथ यह बिलकुल स्वाभाविक नहीं हो जाएगा?

दूसरा कारण आशंका का यह है कि हिंदी की सच्ची सामर्थ्य लोगों को मालूम नहीं है। अधिकांश लोग जो इस 'टोन' में बातें करते हैं, हिंदी का मतलब सेठ गोविंददास और बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन समझते हैं। हिंदी के लिए इन आंदोलनकर्ताओं के सिवा हिंदी की सर्जनात्मक शक्तियों और कृतियों की उन्हें बहुत कम जानकारी है। पंडित नेहरू की धारणा भी हिंदी के बारे में लगभग ऐसी ही है। 'दिनकर' की पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' की पंडितजी ने भूमिका लिखी है, पर हम नहीं समझते, उन्हें उसे पलटकर देखने की भी फुरसत मिली होगी। हिंदी की सामर्थ्य प्रतिदिन किस वेग से बढ़ रही है, यह बहुत-से लोगों को नहीं मालूम और इसी कारण वे यह आशंका व्यक्त करते हैं कि हिंदी इस जिम्मेदारी को सँभाल नहीं पावेगी।

प्रगति जो पर्याप्त नहीं हुई है, उसका कारण स्वयं सरकार है। सन् 1965 में हिंदी को अंग्रेजी का स्थान लेना है—जब यह विधान में स्पष्ट अंकित है, तब भारत के शिक्षा मंत्रालय ने इस ओर कितने धीरे और कितने बेमन से कदम बढ़ाए हैं। हर साल 100-50 इनाम बाँट देने से काम नहीं होता। न अभी तक पारिभाषिक शब्दावली हुई, न वैज्ञानिक शब्द। सब गोलमाल कर रखा है। क्या इस प्रकार जानबूझकर हिंदी की सामर्थ्य को कम नहीं किया जा रहा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और एक विचित्र बात है। हमारे यहाँ भाषा और साहित्य के मामले भी मंत्रियों के द्वारा तय होते हैं। भाषा या लिपि के निर्णय विशेषज्ञ नहीं लेते, मंत्रिगण बैठकर तय कर लेते हैं। इन मंत्रियों को शिक्षा, साहित्य और भाषा के विषय में कितना ज्ञान है, यह कोई बताने की बात नहीं है। हमारी हर वस्तु का भाग्य-विधाता राजपुरुष और राजनेता है—वह सर्वोपरि है, सर्वज्ञ है। शिक्षा मंत्रियों ने तय कर लिया है कि अंग्रेजी अनिवार्य रूप से पढ़ाया जानेवाला विषय होना चाहिए। क्यों होना चाहिए? उन्हें क्या सामान्य भारतीय विद्यार्थी की विडंबना मालूम है? सामान्य बुद्धि के, तीसरे दर्जे में ढकेलनेवाले लड़के अंग्रेजी में क्यों सर खपाएँ? कितने लड़कों की जिंदगी खराब होती है, इसे वे ही जानते हैं जो शिक्षण-कार्य में लगे हैं। मंत्री इसे नहीं जान सकते। भाषा की खूबियाँ, उसकी लिपि, विशेषज्ञ ही ठीक से जानते हैं, मंत्री नहीं। इस प्रकार के निर्णय बड़े हानिकर सिद्ध हो रहे हैं।

कुछ अँगरेजी पत्र भी, जिनके कर्मचारियों की जीविका अँगरेजी से चलती है, हिंदी का विरोध कर रहे हैं। एक पीढ़ी अपना लाभ देखकर आगामी सब पीढ़ियों का भविष्य बिगाड़ने की क्रिया में लगी है।

अँगरेजी से दुश्मनी किसी की नहीं है। यह बड़ी समृद्ध भाषा है। उसके अध्ययन के द्वार योग्य लोगों के लिए खुले रहने चाहिए। लेकिन उसे हर किसान, मजदूर, मुंशी और दूकानदार की मातृभाषा तो नहीं बनाया जा सकता।

आलोचना की आवश्यकता*

'नया पथ', नवंबर में उदयनारायण तिवारी द्वारा लिखित 'नीरज की पाती' की आलोचना हमें अच्छी लगी। अच्छी इसलिए नहीं लगी, कि उसमें 'निंदा सबद रसाल' का आनंद आया, बल्कि इसलिए कि 'कविता' के नाम से जो माल साहित्य के बाजार में स्वर के डब्बों में बंद होकर बिक रहा है, उसकी साहसपूर्ण, स्पष्ट और निष्पक्ष आलोचना की परंपरा हम हिंदी में चाहते हैं। हिंदी में कविता पढ़ायी नहीं जाती, केवल सुनी जाती है। और जिसे सुना है, उसे छपा पढ़ने पर न जाने कैसा-कैसा लगता है, लज्जा आती है अपने आप पर कि हमने कवि-सम्मेलन में इसी की दाद दी थी।

आम कवि-सम्मेलनों में या तो गाना जमता है, या गाली, क्योंकि ये दोनों सहज ही समझ में आते हैं; इन दोनों के परे जो कविता नाम की चीज है, वह अगर सुनायी जाय, तो कवि को 'हूट' कर दिया जाएगा। परिणाम यह हो रहा है कि कवि स्वर-साधना अधिक करता है, काव्य-साधना कम, क्योंकि उसे मंच पर 'जमना' है और अच्छे कवियों की 'मट्टी पलीद' करना है। इसलिए वह अच्छी हल्की चीज लिखता है, जिसमें कहीं चिक और कहीं

*वसुधा, वर्ष : 1, अंक : 8, दिसंबर 1956

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाली, कहीं महावर और कहीं चितवन और कहीं कंपन आदि जड़कर, बिलकुल नट की तरह झूमकर जब मंच पर पढ़ता है, तो सस्ते भावों और शब्दों से विकल हो श्रोता दाद देते ही हैं। ये न छायावादी कवि, न प्रगतिवादी कवि, न प्रयोगवादी कवि—ये केवल 'कंठ-कवि।' कवि न होहुँ नहिं चतुर कहाऊँ। मति अनुरूप सिनेमा गाऊँ!

कविता जिसके लिए है, उसके पास पहुँचायी जाए, इसे हम मानते हैं! मंच से सहस्रों जनों को कविता सुनने को मिलती है, मंच के द्वारा कवि जनता के पास पहुँचता है। लेकिन वह क्या लेकर पहुँचता है? उसे क्या देता है? उसे किस कदर धोखा देता है? जिसे स्वस्थ, उदात्त, उच्च भाव देना चाहिए, उसे कैसी हल्की चीज सौंपता है?

विज्ञापनों को देखिए—साइकिल का विज्ञापन है, तो स्त्री की तस्वीर उसमें जरूर है। बीड़ी के विज्ञापन में स्त्री, मोटर के विज्ञापन में स्त्री, डालडा में स्त्री—हर चीज के विज्ञापन में स्त्री की तस्वीर जरूर होगी। बिना स्त्री की छाप के कोई चीज अच्छी या लोकप्रिय नहीं। विज्ञापनबाजों ने जिस तरह नारी का उपयोग किया है, उसी तरह हमारे कुछ कवि कर रहे हैं। नारीछाप साबुन और नारीछाप कविता—एक ही टाइप है। कभी स्त्रियों ने विज्ञापनबाजी के खिलाफ आंदोलन किया था, क्या वे कवियों के खिलाफ नहीं करेंगी? क्यों नहीं उनसे कहतीं कि यह क्या मचा रखा है? हमारा यह क्या उपयोग है? हम क्या केवल 'छुईमुई' हैं? हम क्या तुम्हारे ड्राइंगरूम के गुलदस्ते हैं? क्या केवल कुम्हला जाने का नाम नारीत्व है? क्या नारी का कर्म केवल सिंगार करना और तुम्हें देखकर लजा जाना है? उदयनारायण तिवारी ने ठीक ही पूछा है—

"नीरज साहब का झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई या गोवा के मोर्चे पर प्राणोत्सर्ग कर देनेवाली उस लड़की के बारे में क्या खयाल है?"

राजपूत जब युद्ध के लिए तैयार होता तो उसकी पत्नी उसे तिलक करके तलवार हाथ में देती थी और कहती थी कि या तो जीतकर आना या युद्धभूमि में प्राणों की बलि चढ़ा देना। और मुगल राज्य के अंतिम समय में बादशाही फौज रणभूमि में जाती तो साथ में 'हरम' भी चलता था। हमारे काव्य की जय-यात्रा में जो 'हरम' साथ चल रहा है, वह हमें कहाँ ले जाएगा? हिंदी के मूर्धन्य गीतकार बच्चन की कविता की दो-एक पंक्तियों का मुलाहजा फरमाइए—"हमने पास बिस्तर कर लिया था! जानती हो, क्या कर गुजरने के लिए" या "कर दिया मजबूर तुमने!"

कवि पर जिम्मेदारी है कि वह जन-रुचि का परिष्कार करे। यह कहना गलत है कि जनता समझती नहीं है। हम ही जनता को नहीं समझते। हमने अपने ऊपर नट, गायक और मेमने का 'रोल' ले लिया है। तो जनता जाति की शक्ति हुंकारती भी है। हमने तो केवल घुटन के गीत सुनाए! हमारी आधी कविता का स्रोत तो यह है कि 'उसका' पिता उसे हमसे मिलने नहीं देता—इसलिए हम घुट रहे हैं! और आधी का विषय है, उस न मिल सकनेवाली के सलमासितारे! बस प्रेम-गीत हो गया! नर भी प्रसन्न, नारी भी प्रसन्न! ताली, 'वंसमोर' और फिर एक प्याला काव्य-वारुणी! इस किस्म का क्षयग्रस्त प्यार हमें नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए, बीमार आदमी के प्यार के गीत हमें नहीं चाहिए। हमें स्वस्थ आदमी का स्वस्थ प्यार गीतों में ढालकर देना होगा! नारी को गुलदस्ता बनाने से काम नहीं चलेगा। इस पतनशील प्रवृत्ति को रोकना होगा।

हिंदी में मंच शरीफ पर रंग जमाने के लिए जो ये सस्ते गीत लिखे जा रहे हैं, उससे अच्छी प्रतिभाएँ नष्ट हो रही हैं। जिनमें अच्छा लिखने की क्षमता है, वे भी रंगमंचीय सफलता के लिए स्वरमय हल्का-फुल्का लिखते हैं। और जो अच्छी कविता होती है, उसे कोई सुनता नहीं। अतएव, केवल रंगमंचीय गीतों की इस बाढ़ की जाँच करनी होगी, उसमें जो कूड़ा-करकट होगा, उसे कूड़ा-करकट कहना होगा। कवि-सम्मेलन की ताली किसी भी आलोचना-शास्त्र में समीक्षा-पद्धति नहीं मानी गयी।

पीढ़ियों का संघर्ष*

पुरातन और नवीन का संघर्ष सब देशों और कालों में होता है।

हिंदी में इस समय हो रहा है, इसमें चिंतनीय या नाक-भौं सिकोड़ने की सुविधा देनेवाला कुछ नहीं है। सतत परिवर्तनशील, इसीलिए प्रगतिशील मानव समाज में युगानुकूल नए आदर्शों की प्रतिष्ठा होती है, नवीन मूल्य सामने आते हैं। इसमें कुछ बिगड़ता है, तो कुछ बनता भी है।

एक पीढ़ी पूज्य होती जाती है, उसे मंदिर में बिठाना पड़ता है, कभी-कभी जल और पुष्प अर्पित करना पड़ता है। दूसरी पीढ़ी कर्म के क्षेत्र में आ जाती है। बूढ़ा किसान अपने जवान बेटों को हल लेकर खेत जाते हुए देखता है, तो उसकी छाती गर्व से फूल उठती है और चिलम की फूँक के साथ उसके मन से बेटों के लिए आशीर्वाद निःसृत होता है।

लेकिन अगर तारुण्य से दीप्त बेटों को खेत पर जाते देखकर नष्ट-यौवन बूढ़े के मन में शूल चुभने लगे और वह केवल अपनी सत्ता और अस्तित्व बनाने के लिए उनके खेत में जाकर अड़ंगा डाले, नवीन बीज और नवीन खाद डालने से रोके, 'हमारे समय में'—कहकर बार-बार उन पर हीनता आरोपित करे तो बूढ़े के प्रति बेटों के मन में खीझ पैदा होगी ही।

और अगर बेटे भी केवल इस कारण कि किसान बूढ़ा हो गया है, उसका मजाक उड़ाएँ, उसके पुरातनपने पर फब्तियाँ कसें, उसे निपट मूर्ख समझें, तो बूढ़ा भी खीझ पड़ेगा।

हिंदी काव्य में यह दुतरफा खीझ इस समय चल रही है। खूब जोर से चल रही है, मजे में चल रही है। छायावादी खेत में कुछ लोगों ने एक खास किस्म के बीज बोए थे, वे उगे भी और 25-30 सालों तक खेत हरे-भरे रहे। लेकिन युग तो रुक नहीं सकता। मनुष्य

* वसुधा, वर्ष : 1, अंक : 9, जनवरी 1957

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की विकासमुखी प्रवृत्ति को कोई रोक नहीं सकता। नवीन पीढ़ी आयी और उसने दूसरे किस्म के बीज बिखराए। बस यहीं झगड़ा शुरू हो गया।

एक ओर दुराग्रह!

दूसरी ओर उद्धतता!

अनेक छायावादी कवियों को जानता हूँ, जो रात को एकांत में बैठकर नयी कविता लिखने की कोशिश करते हैं और जब नहीं बनती, तो सबेरे उठकर लोगों से कहते हैं—"नयी कविता सब कूड़ा-करकट है।"

और अनेक नवीन कवियों को भी जानता हूँ जो यह समझते हैं कि विगत पीढ़ी को बुरा कहने और गाली देने से ही वे युगप्रवर्तक के रूप में स्वीकार कर लिए जावेंगे।

साहित्य में बुढ़ापा सफ़ेद बालों या झुर्रियों का नाम नहीं है। साहित्य में बुढ़ापे का अर्थ है नवीन चेतना ग्रहण करने की शक्ति का लोप, अपनी मान्यताओं और मूल्यों को बदलने की भीरुता, 'आज' के बदले विगत 'कल' में ही जीने का मोह, प्रतिभा का शैथिल्य ! यह सब न हो, तो साहित्य में बूढ़ा आदमी 'परिपक्व' कहलाता है। अपनी अपरिवर्तनशील प्रवृत्ति के कारण अनेक लोग राह में जाकर चट्टान की तरह डट गए और खुद ही चिल्लाए—'गतिरोध हो गया! गतिरोध हो गया!!' भले आदमी, तुम्हीं तो राह में अड़ गए हो, तुम्हीं चिल्लाते हो कि राह बंद हो गयी है। जिसे चलना है, वह आखिर तुम्हें लाँघकर ही तो जाएगा। तब तुम चिल्लाओगे, 'हमें लात मारते हैं! हमारा अपमान करते हैं ये!!'

साफ बात है—काम कर सकते हो, चल सकते हो, तो चलो। अन्यथा देवता बनकर मंदिर में बैठो, हम कभी-कभी आकर अक्षत, पुष्प चढ़ाएँगे, आरती भी कर देंगे। लेकिन अगर तुम भक्तों को इकट्ठा कर राह चलनेवालों पर पत्थर फिंकवाओगे, तो तुम्हें कौन पूजेगा ?

जिन्हें देवता मान लेने में कोई देर नहीं थी, उनमें से कुछ ने वास्तव में पत्थरबाजी की और करवायी। 'अखाड़ा', 'महंती', 'धूनी', 'दादाबाद' आदि शब्द कोरी कल्पना के नहीं हैं, ये सब चीजें हिंदी में हैं और इन सबके कारण बड़ा आक्रोश जहाँ-तहाँ देखने में आता है।

रेडियो पर, सम्मेलन में, कान्फ्रेंसों में, पुरस्कारों में सब जगह 'नास्ति' को 'अस्ति' का भ्रम पहनाने के लिए लोग डटे रहते हैं। समझ में नहीं आता है कि हर समय, हर उत्सव पर रेडियो पर भावहीन, शिथिल तुकबंदी पढ़ने का मोह कुछ बुजुर्गों को क्यों जकड़े रहता है, जबकि वे स्पष्ट देखते हैं कि श्रोता उन्हें केवल संकोचवश सह लेते हैं? वे सिर्फ आशीर्वाद क्यों नहीं देते?

दूसरी तरफ का नज्जारा भी बड़ा मजेदार है। अनेक नवीन रचनाकारों को लगता है कि अब तक जो लिखा जा चुका है वह बिल्कुल निरर्थक है, रद्दी है। उससे कुछ सीखने का नहीं है, उसमें कोई प्राणवान तत्त्व नहीं है। इसे मूर्खता के सिवा और क्या कहा जाय? कुछ वर्ष पहले तुलसीदास को एक-दो वजनदार नए दिमागों ने 'बुर्जुआ' कह दिया। बस, कई वर्षों तक वे बुर्जुआ रहे आए। इस बीच प्रगतिशीलों ने तुलसी को पढ़ा नहीं, क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुर्जुआ को क्या पढ़ना? चलो छुट्टी मिली। और अभी-अभी फिर से कुछ बड़ों ने कहा कि तुलसी तो 'प्रोग्रेसिव' हैं। बस, अब तुलसी 'प्रोगेसिव' हो गए। पूर्ण-कंठ (Full throated) प्रोग्रेसिव कहने लगे—''तुलसी के बराबर 'प्रोगेसिव' कौन है? उन्होंने कहा है—'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।' अत्याचारी को नर्क भेज देने का आह्वान है यह!''

एक वर्ग और है जिसे बुरा मान लिया गया है—वह वर्ग जिसने 'पेट' अथवा 'फैट' (Fat) के लिए सरकार अथवा शोषक वर्ग से समझौता कर लिया है, अथवा जो कहीं राज्यसभा, कमीशन, डेलीगेशन आदि की सदस्यता का मुकुट अब अपनी साधना के सिर पर रखना चाहता है। 'पेट' की मजबूरी उपहास और घृणा की अपेक्षा सहानुभूति के ही योग्य है। 'फैट' और पद की लोलुपता की मजबूरी पर अवश्य प्रहार होना चाहिए और वे हो भी रहे हैं—गद्य में भी और पद्य में भी। पर इसमें भी एक कलात्मकता होनी चाहिए। वर्ड्सवर्थ और राबर्ट सदे के 'राजकवि' हो जाने पर क्रमशः टेनीसन और वायरन ने अच्छी तीखी कविताएँ लिखी थीं, जो अभी भी उनकी सर्वोत्तम रचनाओं में मानी जाती हैं। क्या हम जो गालियाँ लिख रहे हैं, उनमें यह क्षमता है?

पीढ़ियों के अवश्यंभावी संघर्ष में वैचारिक संघर्ष व्यक्तिगत घृणा और द्वेष के स्तर पर आ रहा है, यह बात ज़रा चिंतनीय है। विगत पीढ़ी में एक प्रकार की खीझ है, जो अक्षमता तथा मूल्य-परिवर्तन से उपजी है और वर्तमान पीढ़ी में क्रोध है, जो मार्ग की बाधाओं के कारण प्रकट हुआ है। इन दोनों सीमांतों पर स्थित लोगों से अलग अनेक ऐसे व्यक्तित्व हैं, जिनमें दृष्टि की उदारता है, और जो साहित्य में नवीन विचार, नवीन शिल्प-शैली का विकास स्वाभाविक और अनिवार्य मानकर नवीन धारा के प्रति सहानुभूति और सहयोग की दृष्टि रखते हैं। ऐसे तरुण भी हैं जो नवीन के विकास के लिए पुरातन को गाली देना या उसे निरर्थक और खोखला मानना जरूरी नहीं समझते। इनसे ही साहित्यिक सद्भावना के रक्षण की आशा है।

ढलवाँ साहित्य*

जैसे एक साँचे में ढले गहने होते हैं, वैसा ही कुछ साहित्य विशेष प्रकार के साँचों में ढलकर बनता है।

साँचे में सुभीता होता है—सुनार को सोचने का काम नहीं करना पड़ता। साँचे में नुकसान भी है—एक किस्म का माल ढलता है, कारीगर की कला-प्रतिभा व्यर्थ चली जाती है, बदलती जनरुचि उसी के माल को कुछ दिनों बाद नापसंद करने लगती है।

* वसुधा, वर्ष : 1, अंक : 10, फरवरी 1957

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर भाषा के साहित्य में साँचे बन जाते हैं, जिनमें ढलकर कृतियाँ आने लगती हैं। छायावादी युग में 'किसी' अलक्ष्य को पुकारने, प्रेम-निवेदन करने का एक ढाँचा था। बादलों के उस पार अंतरिक्ष के परदे में कोई बैठा हुआ, प्रेम की डोर से मन को खींचता हुआ, शायद ही किसी को दिखता हो—'हिए की आँखों' से भी! मगर साँचा तैयार था—लोग अपनी सामर्थ्य के अनुसार शब्द लाकर उसमें डालते—कविता तैयार!

इन दिनों साँचे बड़े जोर से काम में लाए जा रहे हैं। एक प्रयोगवाद का साँचा है। अछूते प्रतीकों द्वारा अब तक कवियों द्वारा विस्मृत भाव व्यक्त किए जाएँ, यह तो ठीक है लेकिन केवल 'विचित्र' बनने के लिए सर्कस के खेल किए जावें, तो अच्छा नहीं लगता। एक कविता देखी थी—

मेरा मन भावना की 'पेरेम्बुलेटर' में घूमता है,
आशा के कपोल चूमता है,
कामना की दुलहिन-संग रमता है।

मन बच्चा है तो कोई हर्ज नहीं। 'पेरेम्बुलेटर' का अर्थ बच्चा-गाड़ी होता है, यह शायद कवि महोदय की आराम करने की जगह हो। आशा के कपोल बच्चे को चूमते देख हम चौंके, पर बाद में मन को इस बात पर जारी किया कि बच्चे को माता-पिता सिखा देते हैं—'बेटा, चूमा लो!' मगर जब 'पेरेम्बुलेटर' के बच्चे को दुलहिन के संग 'रमते' देखा, तो अक्ल गुम हो गयी। फ्रॉयड इस 'केस' का अध्ययन कर सकता था! उन असंख्य ढलवाँ रचनाओं में से एक है यह, जिनमें महज एक यांत्रिक क्रिया की तरह प्रतीक फिट किए जाते हैं।

दूसरा एक ढाँचा और है—प्रगतिवादी ढाँचा! अनेक लोग प्रगतिवाद को केवल ढाँचा मानकर चल रहे हैं। सामाजिक यथार्थ को सच्चे मानवीय संवेदन के साथ बहुत कम ग्रहण करते हैं। शेष ने 'शार्टकट' अपना ली है। 'हंस' के शांति अंक में रूमानिया, बलगेरिया, रूस, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया आदि की जो कथाएँ छपी हैं, उनको हेर-फेर के साथ कई लेखकों के नाम से छपा मैंने देखा है। फिर कृष्णचंद का एक ढाँचा भी हिंदी में कुछ लोगों ने अख्तियार कर लिया है—काश्मीर की लड़कियों के रूप और 'जोबन' को खूब रँगकर लिखा और फिर उसमें किसी पर्यटक की एकाध बदमाशी मिला दी! बस प्रगतिशील हो गया। हिंदी के कई लेखकों में मैंने यह कोरी रूमानियत देखी है। यह ढाँचा होता है, आत्मा गायब! कई यथार्थवादी लेखक यथार्थ जीवन में प्रवेश किए बिना, जनजीवन से सीधा और संवेदनात्मक संपर्क स्थापित किए बिना, एक साँचे पर ढलाई कर रहे हैं। इनमें 'मनुष्य' कहीं नहीं दिखता। कुछ समझते हैं कि सुर्ख मेहँदी, सुर्ख सूरज, लाल कमीज, सुर्ख धरती आदि लिख देने से यह प्रगतिवाद कहलाने लगेगा। या किसी से किसी की प्रेमिका को 'सुर्ख रूमाल' भेंट दिलवाने-मात्र से ही क्रांति हुए बिना नहीं रहेगी। इन रचनाओं में ठप्पेदार शब्दों के सिवा कुछ नहीं रहता। जीवन-तत्त्व गैर-हाजिर! संवेदना लुप्त!!

रूस और चीन के लेखकों के सामने यह प्रश्न है कि क्रांतिकालीन और उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वकालीन साहित्य की तुलना में आज का साहित्य क्यों हीन है? टालस्टाय, गोर्की, चेखव और लू-शुन क्यों नहीं हैं? इसलिए तो नहीं कि इनका संबंध मनुष्य के जीवन से था, अब कोरे साँचों से। अमेरिकन और पश्चिमी यूरोप के उपन्यासों में दूसरा साँचा दिखता है--एक तो हर आदमी का लक्ष्य व्यक्तिगत स्वार्थ और सुख होता है। इस व्यक्तिगत स्वार्थ और सुख के पीछे ये दौड़ते फिरते हैं और अपनी इच्छा के लिए कुछ भी भला-बुरा कर सकते हैं, किसी की भी बलि चढ़ा सकते हैं। डी. एच. लारेंस के उपन्यास 'सेंटमार' में नायिका, उपद्रवी घोड़े की उष्णता व जीवनी-शक्ति पर मुग्ध हो, उसे अपने पति की सवारी के लिए ले आयी है, जिससे वह उसके करीब रहे। मन में विचार आता है कि यदि इसने पति को मार डाला तो? 'कोई बात नहीं' वह सोचती है। आदमी पशु है न!

जीवन को चित्रित करने के लिए जीवन देखना पड़ता है, समझना पड़ता है। मानव-जीवन गणित के सूत्रों पर नहीं चलता, वह मनोविज्ञान के नियमों से भी बँधा हुआ नहीं है। साँचों में ढला हुआ साहित्य प्राणहीन होता है।

हिंदी कवि-सम्मेलन*

हिंदीभाषी क्षेत्रों के कवि-सम्मेलन अपनी रोचकता, बाहुल्य, समय और हल्कापन, असमयता, वजनदारी आदि के कारण प्रसिद्ध हैं। हर मौके पर, हर उत्सव में, हर जगह होते हैं। कोई हफ्ता नहीं गुजरता है, जब कवि-सम्मेलन सुनने को न मिलता हो।

अब इस संबंध में हिंदी के कवियों, आलोचकों और श्रोताओं में भी विचार होने लगा है।

सहयोगी 'हिंदुस्तान' में अनेक हफ्तों से धारावाहिक रूप से कवि-सम्मेलनों के संबंध में साहित्यिकों तथा कवियों के विचार प्रकाशित हो रहे हैं। इनमें बड़ी मजेदार बातें सामने आ रही हैं--एक कवि ने इस बात को स्पष्ट रूप से कह दिया है कि कवियों को पहले पैसा दे देने से वे मन से कविता पढ़ते हैं और एक संयोजकजी ने लिखा है कि किसी कवि-सम्मेलन में किन्हीं कवि की नारियों के प्रति कुरुचिपूर्ण चेष्टाएँ देखकर एक राजपूत तलवार खींचकर मारने दौड़ा और भाग खड़े होनेवालों में 'दिनकरजी' भी थे। कुछ कवियों ने इस बात की शिकायत की है कि सम्मेलन हो जाने के बाद संयोजक कवियों की बिलकुल भी परवाह नहीं करते--"रहिमन भाँवर के परे नदी सिरावत मौर।" एक कवि मित्र ने सुनाया कि एक जगह जब वे कवि-सम्मेलन के लिए पहुँचे, तो उन्होंने संयोजकों से कहा कि उनके कमरे में किसी कवि को न ठहराया जाय, क्योंकि उनकी आदत सवेरे 4 बजे उठकर दंड-बैठक लगाने की है। संयोजक बोले, "तो आप करिए; दूसरा आदमी सोया

* वसुधा, वर्ष : 1, अंक : 12, अप्रैल 1957

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहेगा।'' वे बोले, ''नहीं, मेरी आदत है कि दंड-बैठक के बाद जो भी सामने हो, उससे जोर करता हूँ।'' कवि-सम्मेलन समाप्त होने पर जब संयोजक ने मुँह नहीं दिखाया, तो वे उन्हें खोजते पहुँचे और कहा, ''पैसे दीजिए और स्टेशन तक पहुँचाने का प्रबंध कीजिए, वरना सवेरे के दंड-बैठक का उपयोग आप पर करता हूँ।'' उनका कहना है कि संयोजकजी ने घबड़ाकर पैसे दे दिए।

कितनी ही घटनाएँ हैं जिनसे मालूम होता है कि लोग कवि-सम्मेलन कला के प्रसार की दृष्टि से या सांस्कृतिक दृष्टि से नहीं कराते, वरन् सस्ते मनोरंजन के लिए बुलाते हैं। इतना सस्ता हो गया है यह प्रोग्राम कि लोग यह सोचने लगे हैं कि चाहे जब कवियों को इकट्ठा करा सकते हैं। जो लिखता है, वह तो झख मारकर सुनाएगा, ऐसा लोगों का खयाल है।

कवि-सम्मेलन क्यों होते हैं, इस संबंध में कवियों का यह कहना है कि कविता का जनता में प्रसार होना चाहिए, समाज का सांस्कृतिक स्तर उठना चाहिए। वह ठीक हो सकता है; वैसे हमें अनुभव है कि यह दृष्टि 100 में से 1 की हो तो हो। शेष के लिए कवि-सम्मेलन टकसाल है, सुनाने की लोलुपता की तुष्टि का साधन है। कुछ कवियों की जीविका है।

उधर श्रोताओं की दृष्टि से इसका महत्त्व यह है कि इतने कम दाम पर न सिनेमा देखा जा सकता है न नाच! अपवादों की बात मैं नहीं कर रहा।

होता यह है कि कवि और श्रोता में एक व्यावसायिक संबंध हो गया है। संयोजक सोचते हैं कि हमने दाम दिए हैं, हम काम लेंगे। कवि सोचता है कि पैसे मिलें तो कहीं भी मजदूरी करने में क्या हर्ज है। कवि के साथ एक मजबूरी और भी है—मंच और माइक के आकर्षण से उनकी शक्ति काफी क्षीण हो गयी है।

परिणाम सामने है—कवि की इज्जत को जितना इस व्यावसायिक काव्य-पाठ ने कम किया है, उतना किसी ने नहीं। तरह-तरह के अपमान, अवहेलना और उपहास सहने पड़ते हैं। दूसरा एक कुपरिणाम यह हुआ है कि स्टेज की कविता अलग किस्म की होती जा रही है और मुद्रित कविता अलग। कहा हुआ शब्द क्षण में कान पर से निकल जाता है, इसलिए मंचीय कविता बहुत आसान और कर्णप्रिय होती है। कई बार तो सुरीली मूर्खता सबसे अधिक जमती है। अच्छी कविता की बड़ी दुर्गति हो रही है। रंगमंचीय सफलता काव्य-रचना की कसौटी बन गयी है। अच्छे स्वर से निरर्थक शब्दों को गानेवाले कवि समाज में जाने जाते हैं, पर अच्छा लिखनेवाले, लेकिन मंच पर न कहनेवाले श्रेष्ठ कवियों को भी लोग नहीं जानते!

प्रयोगवादी कवि मंच पर कम ही आते हैं। तो क्या इनमें बहुत श्रेष्ठ लिखनेवाले लोग भी समाज के लिए अज्ञात रह जावेंगे?

एक और बात होती है—मंच पर पढ़नेवाले कवियों में बड़ी घृणित स्पर्धा, मार-काट, निंदा और निम्नस्तरीय उखाड़-पछाड़ मची रहती है। 'मैंने उसे उखाड़ दिया'—अक्सर सुनने को मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदतन या व्यावसायिक मंचीय काव्य-पाठ के बारे में लोगों का कुछ अच्छा खयाल नहीं है।

लेकिन कवि-सम्मेलन बंद करने की सलाह हम नहीं देते। उनसे बड़ा काम हो रहा है। यह सही है कि जिस समाज के लिए कवि लिखता है, उस तक काव्य पहुँचता है। जरूरत इस बात की है कि कवि-सम्मेलन का सस्तापन ज़रा कम हो, कवि ज़रा पठन-लोलुपता को रोकें, व्यवसाय के मामले में मारवाड़ी न बन जाएँ। इस बात का जरूर खयाल रखें कि वे जनता को क्या दे रहे हैं—तो कवि-सम्मेलन में एक 'डिगनिटी' आ सकती है। श्रोताओं को बहुत मूर्ख समझकर 'गाना' और 'गाली' सुनने के योग्य ही उन्हें मानना, बड़ी गलती है। अच्छी चीजें सुनने-समझने की क्षमता भी हमारे समाज में आ रही है। इसलिए जो कविताएँ पढ़ी जावें, वे इतनी हल्की न हों कि 'फिल्मियाँ' हो जावें या गाली हो जावें। कवि-सम्मेलनी कवि इस बात का भी तो खयाल रखें कि वे मंच से पढ़ रहे हैं, वह अगर छपी तो कैसी लगेगी।

जैसा भी चल रहा है, वैसा ही चला तो आगे चलकर दो प्रकार के कवि अलग-अलग हो जाएँगे—मंच के कवि और छापे के कवि! सवाल यह उठेगा कि इन दोनों में कौन कवि है और कौन अभिनेता या गायक? कवियों को और जागरूक पाठकों, श्रोताओं को इस बात पर गंभीरता से विचार करना होगा।

साहित्य और राज्य-संरक्षण*

(परिमल का आयोजन)

सरकार और साहित्य के संबंध को लेकर पिछले कुछ काल से हिंदी लेखकों में जो हलचल मची है, उसका स्पष्ट और संस्थाबद्ध रूप 'परिमल' की 3, 4, 5 मई को होनेवाली संगोष्ठी में प्रकट हुआ है।

सामंती युग के 'राज्याश्रय' ने प्रजातंत्र में 'राज्य-संरक्षण' का रूप ले लिया है और ऐसा मालूम होता है कि इस देश के लेखकों के स्वतंत्र चिंतन और अभिव्यक्ति पर संकट आनेवाला है और इस आसन्न संकट से रक्षा करने के लिए व्यूह-रचना हो रही है। सोचा जाता है, राज्य द्वारा लेखकों की स्वतंत्रता का अपहरण निम्न प्रकार से होता है—

1. रेडियो या सचिवालय में नौकरी,
2. सरकारी पुरस्कार,
3. सरकारी प्रकाशन,
4. सरकारी सम्मान आदि।

---

* वसुधा, वर्ष : 2, अंक : 1, मई 1957

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वातंत्र्य-रक्षा की चिंता तब से अधिक दिखायी देती है, जब से रेडियो पर चुन-चुनकर साहित्यकारों को नियुक्त किया जाने लगा या विभिन्न राज्यों और केंद्र में सांस्कृतिक पदों का निर्माण करके उनमें उन्हें फिट किया जाने लगा।

'परिमल' ने यह उचित ही किया कि इस संबंध में एक वृहत् संगोष्ठी का आयोजन किया है, जिसमें प्रचार के अनुसार कई भाषाओं के साहित्यकार भाग लेनेवाले हैं। इससे भी अधिक समझदारी की बात यह की है कि कोई प्रस्ताव पारित न करने का निश्चय करके केवल विचार-विनिमय तक ही कार्यक्रम को सीमित रखा है। किसी प्रस्ताव को पारित कर फिर उसमें से अपने को छुड़ाकर लाभ ले लेने की प्रवृत्ति हममें पुरानी है। साहित्य-सम्मेलन के रेडियो से असहयोगवाले निश्चय को तब एकदम तोड़ दिया··· जब कुछ लेखक बंधुओं को रेडियो पर नौकरी मिल गयी।

संगोष्ठी के आयोजन के समय हम एक-दो बातें इस संबंध में कहना चाहेंगे। पहली बात तो यह है कि इस प्रकार के आंदोलन में जितने लोग भाग लेते हैं, वे किस उद्देश्य से प्रेरित होकर ऐसा करते हैं? प्रयोजन क्या है? क्या वे कलाकार की स्वतंत्रता पर आसन्न संकट से विडोलित हैं? क्या वे इसी तरह चिंतन और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य में विश्वास करते हैं? क्या वे साहित्य के विराट हित की दृष्टि से ऐसा करते हैं या किसी दल या ग्रुप को आगे बढ़ाने के लिए नारे का उपयोग कर रहे हैं? उनका संघर्ष राज्य की नीति से है अथवा कुछ उन लोगों से जिन्हें राज्य ने पद, पुरस्कार और सम्मान दे दिया है?

संयोजकों के लिए ये प्रश्न बहुत महत्त्व रखते हैं। गलत कंठों से निकला अच्छा नारा भी अहितकर होता है। हमें अनेक लोग ऐसे मिलते हैं, जो अमुक या तमुक लेखक के रेडियो पर चले जाने की बड़ी आलोचना करते हैं, क्योंकि खुद उनको अभी पद मिलने में देर है; वैसे वे कोशिश में लगे हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो विरोधी स्वर उठाकर अपनी कीमत बढ़ाते हैं, सौदे में अपनी स्थिति को मजबूत बनाते हैं। कितने उदाहरण दें उन लोगों के, जो रात-दिन राज्य और 'बिके हुए' लेखकों की निंदा करते थे, और आज वे मजे में ऊँचे पद पर बैठे हैं। कितने ऐसे हैं जो 'घर फूँकने' की बात करके अब तिमंजिले के चक्कर में हैं।

हमारा यही प्रयोजन है कि सवाल तो सही है, पर संयोजकों को, आंदोलनकर्ताओं को यह छानबीन जरूर करनी चाहिए कि इसमें उन कंठों का स्वर भी तो नहीं है, जिनके मालिकों को राज्य से लाभ मिलने में देर है। गलत कंठों से यह नारा न लगे, तभी कुछ लाभ हो सकता है।

दूसरी बात यह है कि अब ऐसे क्षेत्रों का निर्माण हो गया है जिनमें राज्य लेखकों का सहयोग चाहता है। सरकार सांस्कृतिक कार्य करना चाहती है, उसका फर्ज है। इस कार्य में वह लेखकों, कवियों, कलाकारों का सहयोग चाहती है। यदि नहीं करेगी, तो उसकी आलोचना होगी। यदि वह लेखकों को द्रव्य देकर कार्य में उनसे सहायता लेगी, तो उसकी निंदा होगी। हमसे एक कवि ने पूछा, "सरकार पंचवर्षीय योजना कार्यान्वित कर रही है। यह योजना भारतीय जनता के जीवन को सुखी बनाने के लिए है। अगर मैं योजना के बारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में गीत लिखता हूँ, गाता हूँ, तो क्या जनसेवा नहीं करता? और जो यह नहीं करते, क्या वे देश की जनता के प्रति सच्चे हैं?'' हमारे जवाब से उसे संतोष नहीं हुआ। जवाब कुल यह था कि भाई, अगर तुम्हें बहुत ईमानदारी से इस प्रकार की प्रेरणा अंतःकरण में हुई हो, तो लिखो। अगर, सरकार गीत पर पुरस्कार देती है, इसलिए अगर लिखोगे तो यह 'रिटेल सेल' के सिवा कुछ और नहीं है।

रेडियो पर और सरकारी पदों पर काफी ऊँची दर पर राज्य लेखकों को स्थापित कर रहा है। कुछ लोगों की ओर से दी जानेवाली यह दलील मिथ्या है कि नौकरी अलग चीज है, उसका प्रभाव हमारे स्वतंत्र चिंतन और लेखन पर नहीं पड़ता। सरकार इतनी बेवकूफ नहीं है कि स्पष्ट बंधन पर प्रतिमास मिलनेवाला वेतन, आगे तरक्की के चांसेस, शासकों की प्रसन्नता आदि कुछ ऐसी चीजें हैं जो परोक्ष रूप से ही सही, उपचेतन में ही सही, यह भावना मन में बनाए रखती है कि मैं सरकार से वेतन पाता हूँ। यह चेतना, यह भावना कलम में झिझक जरूर पैदा करती है। यही असत्य के साथ समझौता होता है। समझौते से भयंकर, विनाशक चीज कलाकार के लिए दूसरी नहीं। समाज-सत्य को सामाजिक संदर्भ में लेखक जिस रूप में अनुभूत करता है, उस रूप में उसे निःसंकोच प्रकट करने में झिझक पैदा न हो। जहाँ असत्य है, पाखंड है, मिथ्याचार है; वहाँ कला नहीं। राजनीति और समाज-नीति में समझौते की गुंजाइश है, साहित्य और कला के क्षेत्र में समझौता आत्मघात का लक्षण है।

प्रमाण में उन अनेक लोगों की रचनाएँ सामने रख लीजिए, जो उच्च पद पाने के बाद लिखीं। उनमें वह तेज, वह स्पष्ट अभिव्यक्ति, वह बखिया-उधेड़ जीवनालोचन नहीं है, जो फाकामस्ती के वक्त की रचनाओं में थी। इनमें से अनेकों के तो मूल्य बदल गए हैं। अब वे 'फाइन-लिटरेचर' लिखते हैं; वे ऊबड़-खाबड़पन को असांस्कृतिक मानते हैं, कटु सामाजिक वास्तविकता और उसके कारणों को उनके सही घृणित रूप में प्रकट करना उन्हें ओछापन लगता है; उनके सौंदर्यबोध के स्तर बदल गए हैं। इसका कारण है, वे रंगीन पेंटवाले ड्राइंगरूम में बैठते हैं, वहीं लिखते हैं, वहीं सुनाते भी हैं। किसी समय के कुछ 'आगलगाऊ' प्रगतिवादी अब सरकार के फायर ब्रिगेड में काम कर रहे हैं।

इसीलिए यह सवाल सरकार की अपेक्षा साहित्यकार से अधिक संबंध रखता है। सरकार, वह चाहे किसी देश की हो, स्थितिवादी होती है। कलाकार, किसी भी देश का हो, वर्तमान से आगे बढ़कर अधिक उन्नत भविष्य के दर्शन करता है। स्थिति और प्रगति का यह संघर्ष ही सरकारी नौकरियों, पुरस्कारों और सम्मानों के पानेवाले में होता है। कभी-कभी यह कसमसाहट व्यक्त हो उठती है—भवानी मिश्र की उस कविता में दिल की कसमसाहट झलकती है जिसमें वे कहते हैं कि अब तो निरर्थक लिखने के दिन गए, सार्थक लिखने का आग्रह है। मनचाहा लिख सकने की स्वतंत्रता के अपहरण के समय ईमानदार आत्मा का आर्तनाद है यह! सरकार पुरस्कार देती है; जिस प्रकार के ग्रंथों पर पुरस्कार मिलता है, उसी प्रकार के ग्रंथ लिखें, तभी पुरस्कार मिलेगा। रेडियोवाले धीमी बात को पसंद करते हैं इसीलिए बात धीमी कहें। वर्ग-संघर्ष के बिना सच्चा समाजवाद नहीं आ सकता ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा विश्वास है, पर 'भूदान' पर लिखने से पैसे मिलेंगे; इसलिए दो-चार लिख दो। इस प्रकार के समझौते की वार्ताएँ कितने लोगों के मन में चला करती हैं। सिर से कफन बाँधनेवाले बिरले होते हैं।

आर्थिक हीनता बड़ी मजबूरी होती है। आर्थिक लोभ उससे भी बड़ी मजबूरी। खुद को और बाल-बच्चों को भूखा मरता देख कोई समझौता करे, तो वह कुछ हद तक क्षम्य है। पर जो फट्टी की जगह कारपेट, साइकिल की जगह कार, सूती की जगह रेशमी पाने के लिए समझौता करे, वह कदापि क्षम्य नहीं है। वह व्यापारी है, कलाकार नहीं।

लेखन से अर्थ की प्राप्ति होती है, केवल इसीलिए लेखन व्यापार नहीं हो जाता। कपड़े के व्यापारी पर सत्य के अन्वेषण की कोई जिम्मेदारी नहीं है, मनुष्य के उज्ज्वल भविष्य के लिए उसे चिंता नहीं, कपड़ा बेचने के लिए उसे आंतरिक प्रेरणा नहीं मिलती, कपड़ा बेचना यश नहीं दिलाता। कपड़ा बेचना उसकी आत्माभिव्यक्ति नहीं है। साहित्यकार की स्थिति दूसरी है। इसलिए लेखन, व्यापार कतई नहीं है—वह जीविका का साधन हो सकता है, लेकिन वह बहुत अंशों में तपस्या है। इसलिए जिसे आत्मा पर बंधन महसूस होते हैं तो वह छोड़कर चला जाय। प्रेमचंद को फिल्मी वातावरण में जब घुटन मालूम हुई, तो हजारों को लात मारकर चले आए, समझौता नहीं किया। जो अपने और समाज के प्रति ईमानदार है, उसके लिए रास्ता सीधा है। रास्ता कठिन उन लोगों के लिए है, जो प्राप्ति करके त्याग का रूपक साधना चाहते हैं, जो भीतर बेईमानी करके बाहर से ईमानदार दिखना चाहते हैं, जो अपने समझौते को तर्क से न्यायसंगत और सत्य सिद्ध करना चाहते हैं, जो कमरे में 'सरेण्डर' कर आते हैं, और बाहर आकर गर्दन ऐंठकर चलने लगते हैं; जो पतन को दंडवत् सिद्ध करना चाहते हैं; जो एक मुट्ठी में स्वर्ण लेकर दूसरे हाथ से भस्म दिखाते हैं।

ऐसे लोगों के लाभ के लिए ऐसी संगोष्ठी का उपयोग न होने पाए, इसकी सावधानी बरतना चाहिए। जो बात हो, ईमानदारी से हो। व्यक्तियों की अपेक्षा प्रवृत्ति और नीति ही अधिक ध्यान में रहे।

इस प्रकार के सामाजिक संकट का उपयोग अनेक निहित स्वार्थ के लोग अपने घृणित हितों के लिए करने लगते हैं। राजनीति में यह आम बात है, मगर अब यह प्रवृत्ति साहित्यकारों में भी आने लगी है। किसी सामाजिक महत्त्व के प्रश्न को उठाकर फिर उससे किन्हीं लोगों को नीचे खींचना या अपने लिए सीढ़ी बनाना, आम रिवाज हो गया है। इस संगोष्ठी के प्रयोजन के संबंध में कुछ मित्रों ने व्यक्तिगत रूप से और कुछ लेखकों ने पत्र लिखकर शंकाएँ व्यक्त की हैं। इन लोगों ने जैसे हमें सचेत किया है। इस बात को यहाँ नहीं कहना अपने प्रति और 'परिमल' वाले मित्रों के प्रति बेईमानी होगी। अतएव हमारा उनसे आग्रह है कि अपने कार्यों और वक्तव्यों द्वारा, किन्हीं क्षेत्रों में व्याप्त इस धारणा को निराधार सिद्ध करें। आयोजन की महत्ता, शुचिता और उपादेयता की दृष्टि से यह और जरूरी है। यह आयोजन लेखक की स्वतंत्रता की सिद्धि के लिए एक छोटा-मोटा यज्ञ ही है। यज्ञ की वेदी पर बैठे पुरोहित स्नानादि करके पवित्र होकर बैठते हैं। इस साहित्यिक यज्ञ के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरोहित भी स्नान करके ही बैठे होंगे, ऐसी आशा है। पर यदि कोई शंका करें, तो उन्हें फिर से उसके सामने नहा लेने में कोई हर्ज नहीं। वैसे तो हर आयोजन शंका की दृष्टि से देखा जाता है, क्योंकि सत्य-असत्य की पहचान कठिन हो गयी है। इसीलिए सत्य को भी प्रचार चाहिए, अन्यथा वह मिथ्या मान लिया जाता है। 'परिमल' वाले इस बात को समझें कि उक्त संगोष्ठी के निर्णयों और विचारों की बहुत-सी उपादेयता उनकी अपनी प्रवृत्ति और नियति और व्यवहार पर निर्भर है।

हमारा विश्वास है कि यह गोष्ठी सरकार, प्रकाशक वर्ग तथा साहित्यिक मठाधीशों द्वारा उत्पीड़ित, शोषित और अपमानित साहित्यकारों के अधिकारों के आंदोलन का सूत्रपात करेगी। हमें आशा है कि उस बहुप्रचारित 'निरीहता' के फतवे की धज्जियाँ उड़ेंगी, जो फतवा कब से शोषकों के हाथ में लेखकों के शोषण का जरिया रहा है। लेखक को अपने लेखन से सम्मानपूर्वक जीवनयापन का हक मिलेगा; उसकी कृतियों के साथ शासन, प्रकाशक और जन-समाज न्याय करेंगे, कंठरोधक सरकारी दबाव से लेखक को मुक्ति मिलेगी।

हम उक्त संगोष्ठी के विचारों की उत्सुकता से प्रतीक्षा करेंगे। 'परिमल' द्वारा उठाए गए अन्य प्रश्नों पर हम आगामी अंकों में लिखेंगे।

सरकारी पुरस्कार*

पिछले दिनों उत्तरप्रदेश सरकार ने हिंदी पुस्तकों पर इनाम बाँटे। हाल ही में मध्यप्रदेश शासन की साहित्य परिषद ने लेखकों से पुस्तकें और पांडुलिपियाँ पुरस्कार देने के लिए विचारार्थ माँगी हैं। हर साल जब इनाम बँटते हैं, तो पत्रों में पुरस्कार-वितरण की पद्धति और पुरस्कार-प्राप्त पुस्तकों और लेखकों की आलोचनाएँ होती हैं। यह तो नहीं कहा जा सकता कि सब इनाम घटिया रचनाओं पर मिल जाते हैं। हाँ, यह निश्चित है कि कई उच्चकोटि के ग्रंथों की अवहेलना हो जाती है।

सबसे पहले तो यह देखना चाहिए कि विचारार्थ पुस्तकें मँगाने की यह पद्धति ठीक है या नहीं। इसके लिए सरकारों को स्थिर मत होना पड़ेगा कि पुरस्कार उच्चकोटि के सृजन पर देना है या जो 6 प्रतियाँ भेज सकें उनमें से कुछ को देना है। ऐसे रचनाकार भी तो होंगे जो उच्चकोटि का साहित्य-सृजन करते हैं, पर अपनी पुस्तक को 'इम्तहान' के लिए सरकार के पास नहीं भेजते।

विगत वर्षों में प्रकाशित ग्रंथों को देखा जाय, तो कई कृतियाँ ऐसी मिलेंगी, जिन्हें पुरस्कृत होना चाहिए था, पर राज्य-सरकारों के पास उनकी 6 प्रतियाँ आयी नहीं और साथ में लेखक की शपथ नहीं आयी कि यह मेरी ही लिखी हुई है। इस प्रकार की प्रथा को निबाहने

* वसुधा, वर्ष : 3, अंक : 2, जून 1958

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की और पुस्तकें पेश करने की जिनकी इच्छा नहीं है, ऐसे भी लेखक हैं। सरकारों की दृष्टि में क्या ये पुस्तकें नहीं आनी चाहिए। साहित्य-रचना को प्रोत्साहन देने का कार्य जिला-कचहरी के कार्य से कुछ तो भिन्न होगा—जिला-कचहरी में ऐसा चल सकता है कि जिसकी दरखास्त आए उसके केस पर ही विचार होगा। क्या राज्य सरकारें प्रकाशकों के सहयोग से ऐसी एजेंसी नहीं कायम कर सकतीं जिससे समस्त प्रकाशित साहित्य सरकार की नजरों में आ सके और लेखकों को परीक्षा-कापियों की तरह पुस्तकें पेश न करनी पड़ें।

इनामों में जो धाँधलियाँ होती हैं, उनकी चर्चा जहाँ-तहाँ होती ही है। हम तो सरकार द्वारा प्रकाशित विषयों की विज्ञप्ति देखकर बता सकते हैं कि किस विषय को किस पुस्तक पर इनाम देने की गुंजाइश निकालने के लिए समाविष्ट किया गया है। इनाम देने के लिए पहले बड़े नाम छाँट लिए जाते हैं। फिर बड़े अन्य, जिनकी मोटाई काफी हो और जिनकी छपाई, गेट-अप अच्छे हों। नयनाभिराम कवर को भी एकदम इनाम मिलता है। फिर उनका नंबर आता है, जिन्होंने पुरस्कारार्थ प्रचार काफी कर लिया है। उत्तरप्रदेश की पुरस्कार की लिस्ट देखने से ये तीनों कोटि के ग्रंथ पकड़ में आ जावेंगे। बचे हुए ग्रंथ अपने 'मेरिट' पर पुरस्कृत हुए माने जावें।

भाग्य को अंधा माना गया है। पुरस्कार-वितरण में भी अंधापन काफी देखने में आता है—'जैसे उर्दू पुस्तक पर हिंदी का इनाम।'

पांडुलिपियों पर इनाम देने में बड़ा सुभीता होता है। अप्रसूत पुत्र का बीमा कराने की तरह है—यह। वैसे यह बहुत उचित है कि जिस अच्छे सृजन का प्रकाशन होने की सुविधा नहीं हो पायी, उसे पुरस्कृत किया गया। पर इसमें सुभीता यह भी तो है कि गुप्तदान की तरह इसमें किसी को कुछ ज्ञान नहीं होता। चाहे जिसे आप इनाम दे दीजिए, कोई कुछ कह नहीं सकता, क्योंकि पुस्तकें छपी तो हैं नहीं। पिछली बार, 2-3 वर्ष पूर्व, जिन कविता-पुस्तकों की पांडुलिपियों पर मध्यप्रदेश सरकार ने इनाम दे दिया था, वे तो अभी तक छपी नहीं दिखीं।

दुराग्रह*

उत्तरप्रदेश विधानसभा में राज्यपाल के भाषण की भाषा पर जो विवाद हुआ, उसने सोचने के लिए बाध्य किया। राज्यपाल श्री गिरि अपना भाषण अंग्रेजी में देनेवाले थे। उन्होंने असमर्थता जाहिर की कि वे हिंदी में कुशलता से अपने विचार प्रगट नहीं कर सकते, अतएव उन्हें अंग्रेजी में बोलना पड़ रहा है।

इस पर विधानसभा में समाजवादी दल के नेता ने माँग की कि राज्यपाल को भारत

* वसुधा, वर्ष : 3, अंक : 4-5, अगस्त-सितंबर 1958

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की विधान-मान्य राजभाषा हिंदी में ही भाषण करना चाहिए। राज्यपाल ने जब इस माँग को स्वीकार नहीं किया, तब श्री राजनारायण ने तथा उनके दल के अन्य सदस्यों ने व कुछ और सदस्यों ने राज्यपाल के भाषण के समय सभा-भवन त्याग दिया। इसके पहले गरमा-गरम बहस हो चुकी थी।

इस विवाद में कांग्रेस दल की, और विशेषकर हिंदी के बड़े हिमायती डॉ. संपूर्णानंद की, बड़ी मनोरंजक स्थिति हो गयी। विरोधी दल द्वारा यह प्रश्न उठाए जाने के कारण और विवाद का विषय गवर्नर का भाषण होने के कारण कांग्रेस दल को मजबूरन अंग्रेजी भाषा में राज्यपाल के भाषण का समर्थन करना पड़ा।

इस विवाद में कुछ बातें ऐसी हैं जिन्हें समझ लेना चाहिए। प्रश्न तो यह कि क्या राज्यपाल गिरि इतने वर्षों में भाषण पढ़ सकने लायक हिंदी नहीं सीख सकते थे ? और हिंदी जिनकी शासन की भाषा हो, उस राज्य के सर्वोच्च वैधानिक पद पर आसीन होकर क्या यह उचित है कि वे दूसरी भाषा में ही भाषण करें? गिरि की भाषागत कमजोरी तो वे और उनके निकटस्थ लोग जानें, हमें इसमें कहीं हिंदी सीखने का थोड़ा हठ जरूर दिखता है।

लेकिन राजनारायण का विरोध जिस प्रकार व्यक्त हुआ, उससे हिंदी का अहित ही अधिक होगा। हिंदी की समस्या को (किसी भी भाषा या साहित्य-संस्कृति की समस्या को) राजनैतिक तरीके से हमेशा नहीं सुलझाया जा सकता। समाजवादी दल के कार्यक्रम में हिंदी का प्रचार प्रमुखता रखता है और यह बड़ी प्रशंसनीय बात है कि जब कांग्रेस भाषा के मामले में बहुत अस्थिर नीति लिये है; प्रजासमाजवादी दल की कोई नीति ही नहीं है और साम्यवादी दल कभी 'अल्पसंख्यकों की भाषा' का नारा लगाकर समस्या को उलझाता है, तब समाजवादी दल ने स्पष्ट रूप से हिंदी-प्रचार का प्रोग्राम बनाया; प्रसार की कोशिश भी की और आंदोलन भी चलाया।

परंतु गवर्नर के भाषण की भाषा का जैसा विरोध राजनारायण ने किया, वह राजनैतिक दुराग्रह और हठधर्मी अधिक है, हिंदी का समर्थन कम। विरोधी-दल को सत्ताधारी दल के कार्यों में हमेशा उन मुद्दों की खुर्दबीनी तलाश रहती है जिन पर विरोध किया जा सके। कई बार—इस शाश्वत विरोध की भावना के कारण—जनहित के कार्यों में भी मतभेद हो जाता है। लगता है, हिंदी के इस समर्थन के पीछे दलगत विरोध की भावना अधिक थी। राजनारायण और उनके दल के सदुद्देश्य पर हम शक नहीं करते, पर राज्यपाल के भाषण के इस प्रकार के बायकाट से हिंदी-समर्थकों पर दुराग्रह और असहनशीलता का आरोप और पुष्ट होता है। राज्यपाल का भाषण एक वैधानिक महत्त्व रखता है; फिर राज्यपाल दक्षिण भारतीय हैं। ऐसी स्थिति में इस प्रकार के विरोध ने अहिंदी भाषियों के हाथ में एक और प्रबल तर्क दे दिया जिसका उपयोग हिंदी के विरुद्ध होगा। मजे की बात है कि 'हिंदीवालों' के व्यवहार-बर्ताव के कारण बेचारी हिंदी की हानि होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेपढ़ी समीक्षा*

हिंदी में आलोचना की दुर्गति के संबंध में तीसरा लेख इसी अंक में जा रहा है। समसामयिक साहित्य पर लिखनेवाले से यह अपेक्षा होती है कि वह अपने समय के प्रकाशित साहित्य से परिचित हो और धारणाएँ तथा वर्गीकरण में कच्चापन और जल्दबाजी न बरते। हिंदी का समीक्षक इस झंझट से बरी है। हमारे सामने एक पुस्तक है—'हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास।' लेखक हैं—रामबहोरी शुक्ल और भगीरथ मिश्र। दोनों साहित्य के पंडित और माने हुए विद्वान हैं। इस पुस्तक में आधुनिक लेखकों का जो वर्गीकरण किया गया है और कुछ प्रमुख स्कूल कायम करके कुछ लेखकों को 'भरती' किया गया है, वह मनोरंजक है। पढ़िए—

प्रसाद स्कूल—प्रसाद स्कूल के प्रमुख लेखक हैं—राजा राधिकारमणसिंह, रायकृष्ण दास, चंडीप्रसाद हृदयेश, विनोदशंकर व्यास, सियारामशरण गुप्त, उग्र, सुमित्रानंदन पंत, मोहनलाल महतो वियोगी, वाचस्पति आदि।

प्रेमचंद स्कूल—प्रेमचंद स्कूल के प्रमुख लेखक हैं—सुदर्शन, कौशिक, चतुरसेन, ज्वाला दत्त शर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, गंगाप्रसाद मिश्र।

जैनेन्द्र स्कूल—जैनेन्द्र स्कूल के प्रमुख लेखक हैं—इलाचंद्र जोशी, अंचल, रांगेय राघव, पहाड़ी, लक्ष्मीचंद्र वाजपेयी, ब्रजेंद्रनाथ गौड़ आदि।

अज्ञेय स्कूल—अज्ञेय स्कूल के प्रमुख लेखक हैं—कमलाकांत वर्मा, प्रभाकर माचवे, माखनलाल चतुर्वेदी, धर्मवीर भारती आदि।

यशपाल स्कूल—यशपाल स्कूल के प्रमुख लेखक हैं—उपेंद्रनाथ 'अश्क', जानकीबल्लभ शास्त्री, राहुल सांकृत्यायन, भगवतशरण उपाध्याय, अमृतराय आदि।

अत्यंत कौतुकमय वर्गीकरण है यह। अज्ञेय स्कूल में माखनलाल चतुर्वेदी हैं, जबकि जब अज्ञेय का 'स्कूल' खुल रहा था, तब माखनलाल का 'कालेज' चल रहा था। क्या माखनलाल अपना 'कालेज' बंद करके अज्ञेय के 'स्कूल' में दाखिल हो गए?

अभी हाल ही में महाकोशल के साहित्य और साहित्यकारों पर एक लेख छपा है। विशेषकर महाकोशल के लोग तथा साहित्यिक इस लेख को पढ़कर जानेंगे और फिर चकित होंगे कि यहाँ नर्मदाप्रसाद खरे के बाद कवि-लेखक पैदा ही नहीं हुए। सूचीपत्रों में हमारा विश्वास नहीं है फिर भी दस-पंद्रह नाम हम गिना सकते हैं।

ऊपर जिस पुस्तक का उल्लेख किया गया है, उसके लेखकों ने 'रत्नाकर' के बाद पढ़ना छोड़ दिया और लेख के लेखक ने नर्मदाप्रसाद खरे के बाद।

पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहीं लिखा है कि हिंदी में जो पढ़ता है, वह आलोचना नहीं लिखता और जो आलोचना लिखता है, वह पढ़ता नहीं है। हमारा खयाल है कि हिंदी का सब काम बड़ा वैज्ञानिक है। 'डिवीजन आफ लेबर' हो गया है।

*वसुधा, वर्ष : 3, अंक : 4-5, अगस्त-सितम्बर 1958

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यकार का साहस*

पं. सुंदरलाल ने 'विशाल भारत' के प्रथम अंक (जनवरी, सन् 1928) में लिखा था—

"लोकमान्य के कारावास के विरोध में एक सभा की गयी थी। मुख्य वक्ता था इन पंक्तियों का लेखक और सभापति थे पंडित बालकृष्ण भट्ट। श्रोताओं की संख्या लगभग सौ के रही होगी, जिसमें आधे स्कूलों व मुहल्ले के लड़के थे और आधे में थोड़े-से हिम्मतवाले बड़ी उम्र के लोग, और शेष पुलिसवाले। वक्ता ने लोकमान्य की जीवनी पर व्याख्यान दिया और अंत में उनके कारावास पर दुख प्रकट करते हुए अपना स्थान लिया। भट्टजी उठे। वह सदा अपनी सामान्य भाषा में ही बोला करते थे। अत्यंत सरल स्वभाव, किंतु भरे हुए हृदय से पूर्व वक्ता की बात को एक प्रकार काटते हुए भट्टजी कहने लगे—

'का तिलक-तिलक करत हौ? अपने देश के लिए गए हैं। फिर आय जइहैं। हमको दुख उन लोगन का है जो फिर कभी हमसे आयकर न मिलिहैं, जो बिन खिले ही मुर्झाय गए। हमको दुख खुदीराम बोस का है... '

लेखक खुदीराम बोस का नाम सुनते ही कुछ डरा। उसने पीछे से बूढ़े भट्टजी को सावधान करने के लिए हल्के से उनका पल्ला खींचा। भट्टजी तुरंत पीछे को लौट पड़े और चिल्लाकर बोले, 'हमरा पल्ला काहे खींचत हौ? सच तो कहित हैं।' फिर श्रोताओं की ओर मुँह करके कहने लगे, 'हमरा पल्ला खींचत हैं? हमसे कहत हैं, न कहो? कही काहे न ? हिए में तो लगी आग; कही काहे न?'

भट्टजी के भाषण की रिपोर्ट अधिकारियों तक पहुँची। शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर ने उन्हें आगाह करने के लिए बुला भेजा। अभी डाइरेक्टर के कमरे में कुर्सी पर बैठे कुछ मिनट ही हुए थे और डाइरेक्टर साहब ने असली विषय की ओर रुख ही किया था कि भट्टजी फौरन 'राम-राम, राम-राम! हमका अस नौकरी न चाही!' कहते हुए उठ खड़े हुए और बिना इजाजत चिक उठाकर बाहर निकल आए। फिर डाइरेक्टर साहब की ओर रुख न किया। इस स्पष्ट वक्तृत्व के मूल्य में भट्टजी को कायस्थ पाठशाला की प्रोफेसरी से हाथ धो डालने पड़े। उनके जीवन के अंतिम छह वर्ष बड़े ही जबरदस्त आर्थिक कष्ट के साथ बीते... "

स्व. पं. बालकृष्ण भट्ट की सत्यनिष्ठा, दिलेरी, आत्माभिमान और देशभक्ति की एक झलक इस घटना से मिलती है।

पुरातन काल से कलाकार को राजसिंहासन के आसपास परिक्रमा करने के लिए बाध्य करने का प्रयास किया गया है, उसके कंठ को राजभय से अवरुद्ध करने की कोशिश की गयी है, उसके मुँह में लोभ के ताले जड़ना चाहा है!

अनेक कलाकारों ने असत्य से समझौता किया है, अन्याय का समर्थन किया है।

---

* वसुधा, वर्ष : 1, अंक : 3, जुलाई 1956

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर अनेक कलाकार ऐसे भी हुए हैं, जिन्होंने सत्य के लिए जीवन की आहुति दे दी, जो टूट गए, पर झुके नहीं। अकबर ने जब गोस्वामीजी को मनसबदारी 'आफ़र' की, तो संतकवि ने उत्तर दिया—

हम चाकर रघुवीर के, पटौ लिखौ दरबार।
अब 'तुलसी' का होंहिंगे, नर के मनसबदार।।

अंग्रेज काल में भारत में देशभक्ति की बात करना राजद्रोह था। उस समय हिंदी के कितने ऐसे कवि थे, जिन्होंने क्रांति का आह्वान किया? कितने स्वातंत्र्य का उद्घोष कर जेल गए? बहुत थोड़े।

इस युग में जब सारे देश में इतना बड़ा तूफान आया था; जब चालीस कोटि नर-नारी स्वातंत्र्य-प्राप्ति के लिए कसमसा रहे थे; जब इतनी बड़ी क्रांति हो रही थी—तब कितने ही बड़े कवि गढ़वाल की शोभा देख रहे थे, पत्तों पर किरण का नर्तन देख रहे थे, रजनीगंधा की सुगंध ले रहे थे; मेघों के साथ आसमान में घूम रहे थे, तरंगों का संगीत सुन रहे थे। अनेक इस कुतूहल में मग्न थे कि विद्युत में कौन चमकता है? कुसुम में कौन हँसता है? और पूर्वाकाश से प्रातःकाल कौन झाँकता है? बड़ी विचित्र समाज-निरपेक्षता थी यह! जन-समाज इतने बड़े संघर्ष में से गुजर रहा है, और तुम आत्मकेंद्रित!

स्वतंत्रता के इस युग में यह खरीद कुछ कम नहीं चल रही है। कुछ माल बिकता जाता है—रेडियो के दलाल के मार्फत, सरकारी पदों के दलाल के मार्फत! कितने क्रांतिवादी और जनवादी अब धीरे-धीरे शून्यवादी या 'ब्लाउजवादी' होते जा रहे हैं!

सरकारी पुरस्कार-योजना और टेक्स्ट-बुक योजना जैसे नए प्रलोभन हैं, जिनमें पुरस्कार देनेवालों को अच्छी लगनेवाली बात लिखने के लोभ में कितनी बार आत्मा की आवाज दबानी पड़ती है।

आजकल राजशक्ति और साहित्य का संघर्ष बहुत तीव्र होता जा रहा है। राजनेता सरकते हुए धीरे-धीरे साहित्य के मंच पर आसीन होते जाते हैं; कुछ 'पीछे के दरवाजे' से घुस आते हैं और कुछ तो राजशक्ति के बल पर ससैन्य आ धमकते हैं। लज्जा तो हमारे ही हिस्से पड़ी है कि हम जुलूस बनाकर, बाजे-गाजे के साथ साहित्य के मंदिर में राजनीति की प्रतिमा स्थापित कर देते हैं। फिर नमन तो करते ही हैं, जो नहीं करते उन्हें बुरा कहते हैं।

उधर राजनीति अपने क्षेत्र में साहित्य को फटकने नहीं देती। आदरणीय पदुमलाल बख्शी एक छोटा-सा चुनाव लड़ना चाहते थे—उन्हें राजनीति ने निकाल बाहर कर दिया! पं. माखनलाल चतुर्वेदी जीवन-भर भारतीय स्वतंत्रता के लिए लड़े; कभी प्रदेश कांग्रेस कमेटी के उपसभापति थे। पर राजनीति ने केवल भाषण देने के लिए उनका उपयोग किया! बाकी के लिए जाति से बाहर!

जीवन की दरिद्रता और अभाव से तंग आकर अनेक साहित्यकार राजनीति की गोद में जाने को मजबूर होते हैं। फिर तो उसके स्तन-पान करके उसकी समस्त कूटनीति,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवसरवादिता, छल और प्रपंच सीख लेते हैं और उनके सत्य का स्वर उठ नहीं पाता। कुछ संपन्न होते हुए भी, ऊँचे पद और सम्मान और धन के लोभ में अपने को 'होलसेल' बेच देते हैं।

हमने अनेक साहित्य-समारोह देखे हैं, जिनमें 'पुच्छविषाणहीन' राजपुरुष पधारे हैं। तब उनके आसपास उज्ज्वल दंतावलि को दिखाते हुए अनेक साहित्यकार ऐसे घूमते हैं कि लगता है उन्हें पछतावा होता है—'हाय रे! आज अगर हमारी पूँछ होती तो हिलाने के काम आती!' रावण के दस सिरों में उन्हें एक ही लाभ दिखता है—दस बार सिज़दा करने का सुभीता उसे था।

जो नहीं समर्पण करते हैं—वे बहुत दुखी हैं। जीवन उनके लिए काँटों का जाल है। लेकिन वे ही धन्य हैं। उन्हीं की वाणी युग की वाणी है। उन्हीं की वाणी से समाज का नव-निर्माण होता है। साहित्य हमारे यहाँ व्यापार कभी नहीं रहा, वह धर्म रहा है। अभी भी वह धर्म है, एक mission है। इसमें मिटना पड़ता है। जो इसमें बनना चाहते हैं, वे बेहतर है कि आढ़त की दुकान खोलें। इसमें तो कबीर की तरह घर फूँककर बाहर निकलना पड़ता है; यह 'खाला का घर' नहीं है।

नर-नारी पात्र*

पिछले दो अंकों में हिंदी उपन्यासों के पुरुष और नारी पात्रों की चर्चा हो चुकी है। गत अंक में गोरखनाथ ने अति आधुनिक उपन्यासों की नायिकाओं के संबंध में बड़े तीखे विचार प्रकट किए हैं। मेरा विश्वास है, उनका इरादा यह कहने का नहीं है कि हिंदी में नारी-चरित्रों का निर्माण हुआ ही नहीं है। असल में जिस प्रकार के नारी पात्रों के रूपों से वे असंतुष्ट हैं, उनकी चर्चा उन्होंने की है। यह स्तंभ शिकायतों और आलोचनाओं से भरा रहता है, तो गलतफहमी हो सकती है कि हिंदी में कुछ अभिनंदनीय है ही नहीं। मैं सोचता हूँ, ऐसा समझने की भूल कोई समझदार आदमी तो नहीं करेगा।

पात्रों की बात ही आगे बढ़ाता हूँ। पात्रों के सृजन में हमारे यहाँ कुछ लोग बने-बनाए 'फर्मे' (साँचे) से काम लेते हैं, याने कोई दर्शन, नैतिक सिद्धांत या राजनैतिक प्रयोजन उनके मन में पहले बन जाता है और तब उसे सिद्ध करने के लिए या उसका उदाहरण देने के लिए वे कुछ पात्र बटोर लेते हैं। गणित के सूत्र पर वे पात्रों को चलाते हैं। इस प्रकार के 'फर्मे' हमारे यहाँ हैं—एक है 'मार्क्सवादी फर्मा' जिसमें हर बार हलकू की माँ को कोई जमींदार ठोकर मारकर प्राण ले लेता है या हलकू की स्त्री की अस्मत लूट लेता है। इन कहानियों में न कहीं हलकू नजर आता है, न उसकी माँ, न उसकी स्त्री! इनकी जगह एक

* वसुधा, वर्ष : 1, अंक : 6, अक्टूबर 1956

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढाँचा दिखता है। न हलकू के साथ हम रो पाते हैं, न हम अत्याचारी पर क्रोध कर पाते हैं। इस साँचे पर केवल हँस पाते हैं।

दूसरा 'फ्रायडवादी ढाँचा' होता है। इस साँचे के कलाकार की दृष्टि में पुरुष केवल 'नर' है और स्त्री केवल 'मादा' और अगर वे पास आते हैं, तो पशुवर्ग की तरह केवल प्रजनन-क्रिया के लिए! इनकी नारियाँ मानवी नहीं होतीं, 'सेक्स' की गुड़िया होती हैं, जिन्हें लेखक मनमाना नचाता है।

तीसरा सह अस्तित्ववाला साँचा—याने मार्क्सवादी—फ्रॉयडवादी ढाँचा! इसकी छटा आप यशपाल, कृश्नचन्दर, मुल्कराज आनंद और अहमद अब्बास तक में पा लीजिए। एक हाथ में 'केपिटल' और दूसरे में 'कोकशास्त्र' लेकर इनके पात्र ऐसे घूमते हैं कि अचरज होता है, इन्हें आदमी कहें तो कैसे!

कुछ पात्र मनुष्य नहीं होते, वे चलते-फिरते 'एनसाइक्लोपीडिया' होते हैं—इन्हें न प्रेम की अनुभूति होती है, न करुणा की। इनके पास केवल बुद्धि होती है, तर्क होता है, और ये बेचारे इस बात का डंका पीटने का काम करते हैं कि देखें, हमारे निर्माता के पास इतना ज्ञान है।

एक दूसरे प्रकार के वे पात्र हैं जो मनोग्रंथियों और कुंठाओं के वैज्ञानिक 'इलस्ट्रेशंस' हैं, उन्हें आप जान गए, तो मनोविज्ञान की जानकारी आपकी अपटुडेट हो गयी। मनुष्य को आप न जान पाएँ, तो लेखक की बला से।

साँचे का साहित्य इसी प्रकार दुर्गतिग्रस्त होता है। उसके लेखक एक खाली पिंजड़ा लिये रहते हैं, जिसके भीतर का तोता कभी का उड़ गया है। आप पिंजड़े को तोता नहीं समझेंगे, तो आपको नासमझ का खिताब मिलेगा।

मानव-चरित्र रचने के लिए मानव को देखना पड़ता है, मानव को समझना पड़ता है, उसके सुख, दुख, आशा, आकांक्षा, द्वंद्व, कुंठा सबको देखना होता है। जन-जीवन का बारीक अवलोकन करना होता है और साथ ही संवेदनात्मक दृष्टि रखनी पड़ती है। जिस समाज को, जिस जाति को, जिस वर्ग को चित्रित करना है, उसे सचाई से पहले समझकर तब उसका चित्रण करना होता है। उसी में से महती प्रवृत्तिवाले महान् पात्रों का जन्म हो सकता है। तीन महीने समुद्र के किनारे रहकर मछुओं के जीवन का सही चित्रण नहीं हो सकता, और 6 महीने सिनेमा स्टुडियो के आसपास चक्कर लगाकर सिनेमा-संसार का जीवन सच्चे रूप में कागज पर नहीं उतर सकता।

इसका कारण है तपस्या की कमी। अपने कमरे में बैठकर समस्त समाज को नहीं देखा जा सकता। कालिदास ने रेल और मोटर से विहीन उस युग में भारत-भ्रमण किया था, अन्यथा मेघदूत में प्रकृति के वे विभिन्न रूप न उछलते। प्रेमचंद ने जाने-पहचाने किसान-मजदूर और मध्यवर्ग के चित्र अंकित किए थे। उच्चवर्ग के चित्र अंकित करने में वे भी सफल नहीं हो पाए। प्रो. मेहता और मालती के प्रेम के अंकन में भी प्रेमचंद उतने सफल नहीं हुए, क्योंकि इस वर्ग के प्रेम का अतिरंजित आदर्शवादी और बुद्धिवादी रूप ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे प्रस्तुत कर पाए। महान् कलाकार भी जब जीवन का सच्चा रूप न जानने के कारण चित्रण में कमी ले आता है, तब साल में 4 दिन गाँव में 'पिकनिक' करके शहराती लेखक ग्रामीण जीवन का चित्र किस साहस से उतारता है? हार्डी 'वेसेक्स' के जिले से बाहर नहीं गया, पर उस स्थान के निवासियों का उसे इतना गहरा अध्ययन था, उनकी भावनाओं की उसे ऐसी परख थी, उनके जीवन का उसने इतने पास से निरीक्षण किया था कि उसका हर पात्र बोलता है। चेखव और गोर्की ने रूसी जीवन को आत्मसात किया था। हाल ही प्रकाशित रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' की सबसे बड़ी खूबी यह है कि उसका चित्र पूर्ण रूप से सत्य है। पूर्णिया जिले के उस अंचल के जीवन के कितने उजले 'स्नेपशाट्स' हैं!

जीवन को न देख सकने के कारण लेखक की रचनाओं में एकरूपता आती है। एक लेखक 15 साल से एक ही प्रकार के आदमियों में रह रहा है, उन्हीं में उठता-बैठता है। ताजगी कहाँ से लाय? वही आदमी, वही दिनचर्या, वही क्रिया-प्रतिक्रिया। एक ही 'सेटअप' उसके भीतर संवेदना हमेशा उत्पन्न नहीं कर सकता। हाँ, अगर उसके पास विभिन्न अनुभवों का अक्षय भण्डार हो, तो बात अलग है। आजकल एक ही प्रकार की कहानियों और उपन्यासों के सृजन का यह बड़ा भारी कारण है।

हमारे यहाँ लेखक को घूम-फिर सकने की, जीवन को देख सकने की सुविधा नहीं है। नौकरी करके पेट जिसे पालना पड़ता है, वह स्त्री-बच्चों को देखे या जीवन देखने जाय? माम के हर उपन्यास में एक ताजगी देखने में आती है। एक उपन्यास से बिल्कुल भिन्न स्तर के, भिन्न प्रकार के पात्र दूसरे उपन्यास में मिलेंगे। यहाँ तक कि विभिन्न भू-भाग के निवासी मिलेंगे। उसे सुविधा है। पर यदि हमें देश-विदेश घुमाई की सुविधा नहीं है, तो हमारे समाज को संवेदनात्मक दृष्टि से देख सकने की सुविधा तो है।

नामदेव ढसाल की कविता और अश्लीलता का प्रश्न*

नामदेव ढसाल की कविता 'भूख' के कुछ शब्दों और मुहावरों को लेकर यह आलोचना हो रही है कि ये 'अश्लील' हैं। मैं कुछ दिनों के लिए रायपुर में हूँ। मेरी साहित्यिक मित्रों से चर्चा होती ही है। इन चर्चाओं में यह बात भी उठी कि क्या ये अंश अश्लील हैं। मैंने इन कविताओं को पढ़ा है 2-3 बार। नामदेव ढसाल दलित कवि हैं। ये कविताएँ, घोर त्रास और क्रोध की कविताएँ हैं, जिन्हें वही कवि लिख सकता है जिसने भूख की पीड़ा को भोगा है। एक छोटा-सा नार्वेजियन उपन्यास है—हंगर। जेम्स हेन्सन का उपन्यास है यह, जिस पर नोबल पुरस्कार दिया गया था। मुझे उपन्यास की याद आती है—भूख में पेट में कैसी पीड़ा होती है, पिंडलियों की नसें कैसे चटखती हैं, सिर कैसे भन्नाता है—और दुनिया के प्रति भूखे

* सितंबर, 1982

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
आदमी की दृष्टि कैसी हो जाती है—इसका वास्तविक और मार्मिक चित्रण है, जो वही कर सकता है जिसने भूख का त्रास भोगा है। नामदेव ढसाल की तरह हेन्सन को क्रोध नहीं है। इसका कारण यह है कि हेन्सन में वर्ग-चेतना नहीं है, वर्ग-घृणा भी नहीं है, वह नहीं जानता कि किन्हीं शोषकों द्वारा भूखा मारा जा रहा हूँ। ढसाल में वर्ग-चेतना है। वह जानता है कि मुझे भूखा रखने की जिम्मेदारी किन पर है। वह उनसे घृणा करता है। हेन्सन अपनी भूख को अपनी नियति मानकर उसके सामने लाचार होकर मिमियाता है। मगर ढसाल अपनी भूख को एक सामाजिक षड्यंत्र का, एक साजिश का फल मानता है। वह भूख की पीड़ा का तो वर्णन करता है, पर उसके सामने लाचार होकर मिमियाता नहीं, भूख को ठेठ गाली देता है—भूख, तेरी माँ···!

यह गाली 'भूख' नाम की फीलिंग को नहीं है, दूसरों को भूखा रखनेवाले वर्ग के लिए है। यही झंझट है। ढसाल-जैसे तमाम कवि दलित वर्ण के हैं, अछूत हैं, हरिजन हैं। लोकतंत्र और समता के इस जमाने में वे रूढ़ियों के अत्याचारी की स्मृतियों और आज भी उन पर हो रहे अत्याचार की वास्तविक चोटों से बौखलाकर, क्रोधित होकर, सच्ची और त्रासद गहरी अनुभूति और अभिव्यक्ति-क्षमता लेकर उठ खड़े हुए हैं और इस अन्यायी व्यवस्था में शब्दों की चिनगारी से आग लगा देना चाहते हैं।

उनकी भाषा कैसी होगी। भाषा विषय, अनुभूति और संस्कार और परिवेश के अनुसार होती है। दो दलित आदमी जब लड़ते हैं, तब विश्वविद्यालय के हिंदी और संस्कृत विभाग से भाषा नहीं लाते। वे यह नहीं कहते—'यदि आप क्षमा करें तो मैं आपकी परमपूजनीया माताजी से भाषा संभोग करूँगा।' यह भाषा उनकी नहीं है। इस भाषा में घृणा और क्रोध व्यक्त नहीं होते। इस भाषा से लड़ाई का वातावरण भी नहीं बनता। इस भाषा से लड़ाई नहीं हो सकती। सदियों से इस वर्ग की अपनी भाषा बनी है—प्रेम को, पीड़ा को, क्रोध को व्यक्त करने की। यह उनका भाषा-संस्कार है। यह उनके परिवेश की भाषा है। वे जब गहरे कहीं चोट खाएँगे तो बेसाख्ता यह भाषा उनके मुँह से निकलेगी। दलित कवि भी, यदि वह सच्चा है, उसकी अनुभूति गहरी है, उसे वास्तविक क्रोध है, तो अपनी कविता में वह इसी भाषा का प्रयोग करेगा, जो उसके संस्कार की, परिवेश की भाषा है। इस भाषा के बिना उसकी कविता झूठी और बनावटी हो जाएगी। वह बेअसर होगी। उसे जिस भाषा में काव्यानुभूति हुई है, उसी में वह कविता लिखेगा।

नामदेव ढसाल ने जिन गालियों का प्रयोग किया है, वे अश्लील हैं। अश्लील क्या है, यह तय करना कठिन काम है। 'लेडी चेटरलीज लवर' अश्लील है या नहीं, इसे तय करने में इंग्लैंड की अदालतों को 30 साल लग गए। भारत में भी डी. एच. लारेंस के इस उपन्यास पर जस्टिस छागला का लंबा फैसला है, जिसमें अश्लीलता का विवेचन है। अब 'लेडी चेटरलीज लवर' बाल साहित्य जैसी-लगती है, क्योंकि बेहिसाब किताबें छप गयी हैं जो सेक्स के विवरण के मामले में उससे कहीं ज्यादा खुली हैं, जैसे 'टापिक और कैंसर' और अमेरिकी विश्वविद्यालयों के परिसरों में बनने और छपनेवाला साहित्य। फिर हमारे देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में 'कुमारसंभव' के कुछ प्रसंगों और जयदेव के 'गीत गोविंद' के संभोग-प्रसंगों को क्या कहा जाएगा। ये क्या इसलिए अश्लील नहीं हैं कि यह देवी-देवता के बीच का मामला है !

नामदेव ढसाल की कविता में आयी ये गालियाँ अश्लील कतई नहीं हैं। अधिक-से-अधिक इन्हें शास्त्रीय पवित्रतावादी 'फूहड़' कह सकते हैं। पुराने सौंदर्यशास्त्र की दृष्टि से फूहड़पन दोष है, पर वह वर्जित नहीं है। पर उस सौंदर्यशास्त्र के धुर्रे उड़ गए हैं। नया सौंदर्यशास्त्र आ गया है। अब अभिजात वर्ग के शयनकक्ष का सौंदर्यशास्त्र नहीं चलता। सड़क की गंदी बस्तियों का, भुखमरों की झोंपड़ियों का, अधपेटे, अधनंगे मजदूरों का, गंदी नालियों और चकलाघरों का नया सौंदर्यशास्त्र चल रहा है। इस वर्ग की छटपटाहट, पीड़ा और क्रोध को व्यक्त करने में नपुंसक अभिजात भाषा सक्षम नहीं है। इसके लिए जीवंत, खड़ी, ठेठ और चुटीली भाषा चाहिए। वह भाषा चाहिए जिसे यह वर्ग रोजमर्रा की जिंदगी में बोलता है।

कृष्णा सोबती की एक कहानी है—'यारों के यार।' इस कहानी में एक दफ्तर के क्लर्क लंच की छुट्टी में एक जगह इकट्ठे होते हैं और खुलकर बातें करते हैं—'बॉस' को खूब गाली देते हैं। उसकी खूबसूरत सेक्रेटरी को लेकर मजाक करते हैं—''क्यों सूरी उस्ताद, क्या लो कट ब्लाउज पहनने से टाइपिंग अच्छा होता है।'' डटकर गालियों का प्रयोग करते हैं। जिसने लंच टाइम में क्लर्कों की बातें सुनी हैं, वह जानता है कि वे इसी भाषा में बातें करते हैं। गुबार निकालते हैं। अफसरों की माँ-बहन करते हैं। उनकी बीवियों के स्केण्डल उड़ाते हैं।

इस कहानी पर भी एतराज उठे थे कि इसमें भद्दी गालियों का प्रयोग लेखिका ने किया है। इस मसले पर राजकमल प्रकाशन में गोष्ठी भी हुई। निष्कर्ष यह निकला कि छुट्टी में क्लर्क वही भाषा बोलते हैं जो लेखिका ने लिखी है। वैसा ही वातावरण होता है। अगर लेखिका उन शब्दों का और उन गालियों का प्रयोग नहीं करती, तो कहानी झूठी पड़ जाती। लेखिका रामकथा नहीं लिख रही थी। क्लर्कों की जिंदगी के, छुट्टी के, स्वतंत्रता के, मस्ती के एक घंटे का चित्रण कर रही थी, जो उन गालियों के बिना हो नहीं सकता।

ऐसा ही एतराज राही मासूम रजा के उपन्यास 'आधा गाँव' पर उठा था। गाँव के जिन लोगों की वह कथा है वे गाली में ही बात करते हैं। उनकी बातों को गाली के बिना लिखा ही नहीं जा सकता। लिखा जाए तो वह झूठा चित्रण होगा।

एक बात इस संबंध में विचारणीय है। क्या इन शब्दों और मुहावरों में गाली का कोई सेंस है। भोपाल की पुरानी गलियों में बिना गाली के बात ही नहीं होती—'माँ के··किधर जा रिए हो!'

बेटा बाप से कहता है—'अब्बा, वो माँ का··· टिकिट बाबू आ रिया है। अपने पास टिकिट नहीं है। दोनों की माँ··· जाएगी!' खाली स्थानों में कौन शब्द हैं, सब समझते हैं। पर यह क्या गाली है। नहीं, यह कहने की 'मेनरिज़्म' है।

अभी संयोग से मेरे मित्र भाऊ समर्थ नागपुर से आ गए। वे दलित लेखकों के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। संघर्ष करते हैं। पिट भी चुके हैं। उनसे ढसाल की इन कविताओं पर बात हुई। उन्होंने कहा—महाराष्ट्र में भी ढसाल तथा उनके साथियों पर उच्च वर्ण के साहित्यकार हमला करते हैं। हर मराठी साहित्य-सम्मेलन में ये दलित लेखक सरदर्द पैदा करते हैं। वे झूठे, पतनशील आभिजात्य को एक चुनौती हैं। उनमें तेज है, शक्ति है, सच्चाई है, निर्भयता है। वे बहुत जेनुइन हैं। मराठी साहित्य यदि इस समय जीवंत है, तो इन दलित लेखकों के दम पर। इन पर हमले उच्च वर्ग और वर्ण का सुनियोजित षड्यंत्र है। मरे और सड़े हुए साहित्य के सर्जक इनसे घबड़ाते हैं, क्योंकि उन्हें खुद अपनी बदबू सताने लगी है। वे इन लेखकों को दबाना चाहते हैं। अमरावती मराठी साहित्य-सम्मेलन में तो मारपीट की नौबत आ गयी थी। 2-4 धप्प मुझे भी पड़े। इन प्राणवान लेखकों को ही सही समझ के बुद्धिजीवी का समर्थन मिलना चाहिए। ढसाल तो इनका नेता है।

कैफियत*

एक सज्जन अपने मित्र से मेरा परिचय करा रहे थे—यह परसाईजी हैं। बहुत अच्छे लेखक हैं। ही राइट्स फनी थिंग्ज़।

एक मेरे पाठक (अब मित्रनुमा) मुझे दूर से देखते ही इस तरह हँसी की तिड़तिड़ाहट करते मेरी तरफ बढ़ते हैं, जैसे दिवाली पर बच्चे 'तिड़तिड़ी' को पत्थर पर रगड़कर फेंक देते हैं और वह थोड़ी देर तिड़तिड़ करती उछलती रहती है। पास आकर अपने हाथों में मेरा हाथ ले लेते हैं और ही-ही करते हुए कहते हैं··· वाह यार, खूब मिले। मजा आ गया। उन्होंने कभी कोई चीज मेरी पढ़ी होगी। अभी सालों से कोई चीज नहीं पढ़ी; यह मैं जानता हूँ।

एक सज्जन जब भी सड़क पर मिल जाते हैं, दूर से ही चिल्लाते हैं—'परसाईजी नमस्कार! मेरा पथ-प्रदर्शक पाखाना!' बात यह है कि किसी दूसरे आदमी ने कई साल पहले स्थानीय साप्ताहिक में एक मजाकिया लेख लिखा था, 'मेरा पथ-प्रदर्शक पाखाना।' पर उन्होंने ऐसी सारी चीजों के लिए मुझे जिम्मेदार मान लिया है। मैंने भी नहीं बताया कि वह लेख मैंने नहीं लिखा था। बस, वे जहाँ मिलते हैं—'मेरा पथ-प्रदर्शक पाखाना' चिल्लाकर मेरा अभिवादन करते हैं।

कुछ पाठक यह समझते हैं कि मैं हमेशा उचक्केपन और हल्केपन के मूड में रहता हूँ। वे चिट्ठी में मखौल करने की कोशिश करते हैं! एक पत्र मेरे सामने है। लिखा है—कहिए जनाब बरसात का मजा ले रहे हैं न! मेढकों की जलतरंग सुन रहे होंगे। इस पर भी लिख डालिए न कुछ।

* सदाचार का तावीज़ : 1962

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिहार के किसी कस्बे से एक आदमी ने लिखा कि तुमने मेरे मामा का, जो फॉरेस्ट अफसर हैं, मजाक उड़ाया है। उनकी बदनामी की है। मैं तुम्हारे खानदान का नाश कर दूँगा। मुझे शनि सिद्ध है।

कुछ लोग इस उम्मीद से मिलने आते हैं कि मैं उन्हें ठिलठिलाता, कुलाँचें मारता, उछलता मिलूँगा और उनके मिलते ही जो मजाक शुरू करूँगा तो हम सारा दिन दाँत निकालते गुजार देंगे। मुझे वे गंभीर और कम बोलनेवाला पाते हैं। किसी गंभीर विषय पर मैं बात छेड़ देता हूँ। वे निराश होते हैं। काफी लोगों का यह मत है कि मैं निहायत मनहूस आदमी हूँ।

एक पाठिका ने एक दिन कहा—आप मनुष्यता की भावना की कहानियाँ क्यों नहीं लिखते?

और एक मित्र मुझे उस दिन सलाह दे रहे थे—तुम्हें अब गंभीर हो जाना चाहिए। इट इज़ हाई टाइम!

व्यंग्य लिखनेवाले की ट्रेजडी कोई एक नहीं। 'फ़नी' से लेकर उसे मनुष्यता की भावना से हीन तक समझा जाता है। 'मजा आ गया' से लेकर 'गंभीर हो जाओ' तक की प्रतिक्रियाएँ उसे सुननी पड़ती हैं। फिर लोग अपने या अपने मामा, काका के चेहरे देख लेते हैं और दुश्मन बढ़ते जाते हैं। एक बहुत बड़े वयोवृद्ध गाँधी-भक्त साहित्यकार मुझे अनैतिक लेखक समझते हैं। नैतिकता का अर्थ उनके लिए शायद गबद्दूपन होता है।

लेकिन इसके बावजूद ऐसे पाठकों का एक बड़ा वर्ग है, जो व्यंग्य में निहित सामाजिक-राजनीतिक अर्थ-संकेत को समझते हैं। वे जब मिलते या लिखते हैं, तो मजाक के मूड में नहीं। वे उन स्थितियों की बात करते हैं, जिन पर मैंने व्यंग्य किया है, वे उस रचना के तीखे वाक्य बनाते हैं। वे हालातों के प्रति चिंतित होते हैं।

आलोचकों की स्थिति कठिनाई की है। गंभीर कहानियों के बारे में तो वे कह सकते हैं कि संवेदना कैसे पिछलती आ रही है, समस्या कैसी प्रस्तुत की गयी—वगैरह। व्यंग्य के बारे में वह क्या कहे? अक्सर वह यह कहता है—हिंदी में शिष्ट हास्य का अभाव है। (हम सब हास्य और व्यंग्य के लेखक लिखते-लिखते मर जाएँगे, तब भी लेखकों के बेटों से इन आलोचकों के बेटे कहेंगे कि हिंदी में हास्य व्यंग्य का अभाव है), हाँ, वे यह और कहते हैं—विद्रूप का उद्घाटन कर दिया, परदाफाश कर दिया है, करारी चोट की है, गहरी मार की है, झकझोर दिया है। आलोचक बेचारा और क्या करे? जीवन बोध, व्यंग्यकार की दृष्टि, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक परिवेश के प्रति उसकी प्रतिक्रिया, विसंगतियों की व्यापकता और उनकी अहमियत, व्यंग्य संकेतों के प्रकार, उनकी प्रभावशीलता, व्यंग्यकार की आस्था, विश्वास—आदि बातें समझ और मेहनत की माँग करती हैं। किसे पड़ी है?

अच्छा, तो तुम लोग व्यंग्यकार क्या अपने 'प्राफ़ेट' को समझते हो? 'फ़नी' कहने पर बुरा मानते हो। खुद हँसाते हो और लोग हँसकर कहते हैं—मजा आ गया, तो बुरा मानते हो और कहते हो—सिर्फ मजा आ गया? तुम नहीं जानते कि इस तरह की रचनाएँ हल्की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानी जाती हैं और दो घड़ी की हँसी के लिए पढ़ी जाती हैं।

(यह बात मैं अपने-आपसे कहता हूँ, अपने-आपसे ही सवाल करता हूँ।) जवाब : हँसना अच्छी बात है। पकौड़े-जैसी नाक को देखकर भी हँसा जाता है, आदमी कुत्ते-जैसे भौंके तो भी लोग हँसते हैं। साइकिल पर डबल सवार गिरें, तो भी लोग हँसते हैं। संगति के कुछ मान बने हुए होते हैं—जैसे इतने बड़े शरीर में इतनी बड़ी नाक होनी चाहिए। उससे बड़ी होती है, तो हँसी आती है। आदमी आदमी की ही बोली बोले, ऐसी संगति मानी हुई है। वह कुत्ते-जैसा भौंके तो यह विसंगति हुई और हँसी का कारण। असामंजस्य, अनुपातहीनता, विसंगति हमारी चेतना को छेड़ देते हैं। तब हँसी भी आ सकती है और हँसी नहीं भी आ सकती—चेतना पर आघात पड़ सकता है। मगर विसंगतियों के भी स्तर और प्रकार होते हैं। आदमी कुत्ते की बोली बोले—एक यह विसंगति है। और वनमहोत्सव का आयोजन करने के लिए पेड़ काटकर साफ किए जाएँ, जहाँ मंत्री महोदय गुलाब के 'वृक्ष' की कलम रोपें—यह भी एक विसंगति है। दोनों में भेद है, गो दोनों से हँसी आती है। मेरा मतलब है—विसंगति की क्या अहमियत है, वह जीवन में किस हद तक महत्त्वपूर्ण है, वह कितनी व्यापक है, उसका कितना प्रभाव है—ये सब बातें विचारणीय हैं। दाँत निकाल देना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है।

—लेकिन यार, इस बात से क्यों कतराते हो कि इस तरह का साहित्य हल्का ही माना जाता है।

—माना जाता है, तो मैं क्या करूँ? भारतेंदु युग में प्रतापनारायण मिश्र और बालमुकुंद गुप्त जो व्यंग्य लिखते थे, वह कितनी पीड़ा से लिखा जाता था। देश की दुर्दशा पर वे किसी भी कौम के रहनुमा से ज्यादा रोते थे। हाँ, यह सही है कि इसके बाद रुचि कुछ ऐसी हुई कि हास्य का लेखक विदूषक बनने को मजबूर हुआ। 'मदारी' और 'डमरू' 'टुनटुन'-जैसे पत्र निकले और हास्यरस के कवियों ने 'चोंच' और 'काग'-जैसे उपनाम रखे। याने हास्य के लिए रचनाकार को हास्यास्पद होना पड़ा। अभी भी यह मजबूरी बची है। तभी कुंजबिहारी पांडे को 'कुत्ता' शब्द आने पर मंच पर भौंककर बताना पड़ता है और काका हाथरसी को अपनी पुस्तक के कवर पर अपना ही कार्टून छपाना पड़ता है। बात यह है कि उर्दू-हिंदी की मिश्रित हास्य-व्यंग्य परंपरा कुछ साल चली, जिसने हास्यरस को भड़ौआ बनाया। इसमें बहुत कुछ हल्का है। यह सीधी सामंती वर्ग के मनोरंजन की जरूरत में से पैदा हुई थी। शौकत थानवी की एक पुस्तक का नाम ही 'कुतिया' है। अज़ीमबेग चुग़ताई नौकरानी की लड़की से 'फ्लर्ट' करने की तरकीबें बताते हैं! कोई अचरज नहीं कि हास्य-व्यंग्य के लेखकों को लोगों ने हल्के, गैरजिम्मेदार और हास्यास्पद मान लिया हो।

—और 'पत्नीवाद' वाला हास्यरस! वह तो स्वस्थ है? उसमें पारिवारिक-संबंधों की निर्मल आत्मीयता होती है?

—स्त्री से मजाक एक बात है और स्त्री का उपहास दूसरी बात। हमारे समाज में कुचले हुए का उपहास किया जाता है। स्त्री आर्थिक रूप से गुलाम रही, उसका कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तितव नहीं बनने दिया गया, वह अशिक्षित रही, ऐसी रही—तब उसकी हीनता का मजाक करना 'सेफ' हो गया। पत्नी के पक्ष के सब लोग हीन और उपहास के पात्र हो गए—खासकर साला; गो हर आदमी किसी-न-किसी का साला होता है। इसी तरह घर का नौकर सामंती परिवारों में मनोरंजन का माध्यम होता है। उत्तर भारत के सामंती परिवारों की परदानशीन दमित रईसजादियों का मनोरंजन घर के नौकर का उपहास करके होता है। जो जितना मूर्ख, सनकी और पौरुषहीन हो, वह नौकर उतना ही दिलचस्प होता है। इसलिए सिकंदर मियाँ चाहे काफी बुद्धिमान हों, मगर जान-बूझकर बेवकूफ बन जाते हैं क्योंकि उनका ऐसा होना नौकरी को सुरक्षित रखता है। सलमा सिद्दीकी ने सिकंदरनामा में ऐसे ही पारिवारिक नौकर की कहानी लिखी है। मैं सोचता हूँ सिकंदर मियाँ अपनी नजर से उस परिवार की कहानी कहें, तो और अच्छा हो।

—तो क्या पत्नी, साला, नौकर, नौकरानी आदि को हास्य का विषय बनाना अशिष्टता है?

—'वल्गर' है। इतने व्यापक सामाजिक जीवन में इतनी विसंगतियाँ हैं। उन्हें न देखकर बीवी की मूर्खता बयान करना बड़ी संकीर्णता है।

और 'शिष्ट' और 'अशिष्ट' क्या है? अक्सर 'शिष्ट' हास्य की माँग वे करते हैं, जो शिकार होते हैं। भ्रष्टाचारी तो यही चाहेगा कि आप मुंशी की या साले की मजाक का 'शिष्ट' हास्य करते रहें और उस पर चोट न करें—वह 'अशिष्ट' है। हमारे यहाँ तो हत्यारे 'भ्रष्टाचारी' पीड़क से भी 'शिष्टता' बरतने की माँग की जाती है—'अगर जनाब बुरा न मानें तो अर्ज है कि भ्रष्टाचार न किया करें। बड़ी कृपा होगी सेवक पर।' व्यंग्य में चोट होती ही है। जिन पर होती है वह कहते हैं—'इसमें कटुता आ गयी। शिष्ट हास्य लिखा करिए।' मार्क ट्वेन की वे रचनाएँ नए संकलनों में नहीं आतीं, जिनमें उसने अमेरिकी शासन और मोनोपली के बखिए उधेड़े हैं। वह उसे केवल शिष्ट हास्य का मनोरंजन देनेवाला लेखक बताना चाहते हैं—'दी डिलाइटेड मिलियंस!'

—तो तुम्हारा मतलब यह है कि मनोरंजन के साथ ही व्यंग्य में समाज की समीक्षा भी होती है?

—हाँ, व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखंडों का परदाफाश करता है।

—यह नारा हो गया।

—नारा नहीं है। मैं यह कह रहा हूँ कि जीवन के प्रति व्यंग्यकार की उतनी ही निष्ठा होती है, जितनी गंभीर रचनाकार की—बल्कि ज्यादा ही, वह जीवन के प्रति दायित्व का अनुभव करता है।

—लेकिन वह शायद मनुष्य के बारे में आशा खो चुका होता है। निराशावादी हो जाता है। उसे मनुष्य की बुराई ही दीखती है। तुम्हारी रचनाओं में देखो—सब चरित्र बुरे ही हैं।

—यह कहना तो इसी तरह हुआ कि डॉक्टर से कहा जाए तुम रुग्ण मनोवृत्ति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमी हो। तुम्हें रोग ही रोग दीखते हैं। मनुष्य के बारे में आशा न होती, तो हम उसकी कमजोरियों पर क्यों रोते? क्यों उससे कहते कि यार तू ज़रा कम बेवकूफ, विवेकशील, सच्चा और न्यायी हो जा।

—तो तुम लोग रोते भी हो। मेरा तो खयाल था कि तुम सब पर हँसते हो।

—जिंदगी बहुत जटिल चीज है। इसमें खालिस हँसना या खालिस रोना-जैसी चीज नहीं होती। बहुत-सी हास्य रचनाओं में करुणा की अंतर्धारा होती है। चेखव की कहानी 'क्लर्क की मौत' क्या हँसी की कहानी है? उसका व्यंग्य कितना गहरा, ट्रेजिक और करुणामय है। चेखव की ही एक कम प्रसिद्ध कहानी है—'किराएदार।' इसका नायक 'जोरू का गुलाम' है—बीवी के होटल का प्रबंध करता है। अपनी नौकरी छोड़ आया है। अब बीवी का गुलाम तो उपहास का ही पात्र होता है न! मगर इस कहानी में यह बीवी का गुलाम अंत में बड़ी करुणा पैदा करता है। अच्छा व्यंग्य सहानुभूति का सबसे उत्कृष्ट रूप होता है।

अच्छा यार, तुम्हें आत्म-प्रचार का मौका दिया गया था। पर तुम अपना कुछ न कहकर जनरल ही बोलते जा रहे हो। तुम्हारी रचनाओं को पढ़कर कुछ बातें पूछी जा सकती हैं। क्या तुम सुधारक हो? तुममें आर्यसमाजी-वृत्ति देखी जाती है।

—कोई सुधर जाए तो मुझे क्या एतराज है। वैसे मैं सुधार के लिए नहीं, बदलने के लिए लिखना चाहता हूँ। याने कोशिश करता हूँ—चेतना में हलचल हो जाए, कोई विसंगति नजर के सामने आ जाए। इतना काफी है। सुधरनेवाले खुद अपनी चेतना से सुधरते हैं। मेरी एक कहानी है 'सदाचार का तावीज़'। इसमें कोई सुधारवादी संकेत नहीं है। कुल इतना है कि तावीज़ बाँधकर आदमी को ईमानदार बनाने की कोशिश की जा रही है, (भाषणों और उपदेशों से)। सदाचार का तावीज़ बाँधे बाबू दूसरी तारीख को घूस लेने से इंकार कर देता है मगर 29 तारीख को ले लेता है—'उसकी तनख्वाह खत्म हो गयी। तावीज़ बँधा है, मगर जेब खाली है।' संकेत में यह करना चाहता हूँ कि बिना व्यवस्था में परिवर्तन किए, भ्रष्टाचार के मौके बिना खत्म किए और कर्मचारियों को बिना आर्थिक सुरक्षा दिए, भाषणों, सर्कुलरों, उपदेशों, सदाचार समितियों, निगरानी आयोगों के द्वारा कर्मचारी सदाचारी नहीं होगा। इसमें कोई उपदेश नहीं है। सिर्फ विरोधाभासों को सामने लाया गया है और कुछ संकेत दिए गए हैं। उपदेश का चार्ज वह लोग लगाते हैं, जो किसी के प्रति दायित्व का कोई अनुभव नहीं करते। वह सिर्फ अपने को मनुष्य मानते हैं और सोचते हैं कि हम कीड़ों के बीच रहने के लिए अभिशप्त हैं। यह लोग तो कुत्ते की दुम में पटाखे की लड़ी बाँधकर उसमें आग लगाकर कुत्ते के मृत्यु-भय पर भी ठहाका लगा लेते हैं।

अच्छा यार, बातें तो और भी बहुत-सी करनी थीं। पर पाठक बोर हो जाएँगे। बस एक बात और बताओ—तुम इतना राजनीतिक व्यंग्य क्यों लिखते हो?

—इसलिए कि राजनीति बहुत बड़ी निर्णायक शक्ति हो गयी है। वह जीवन से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिलकुल मिली हुई है। वियतनाम की जनता पर बम क्यों बरस रहे हैं? क्या उस जनता की अपनी कुछ जिम्मेदारी है? यह राजनीतिक दाँव-पेंच के बम हैं। शहर में अनाज और तेल पर मुनाफाखोरी कम नहीं हो सकती, क्योंकि व्यापारियों के क्षेत्रों से अमुक-अमुक को चुनकर जाना है। राजनीति—सिद्धांत और व्यवहार की—हमारे जीवन का एक अंग है। उससे नफरत करना बेवकूफी है। राजनीति से लेखक को दूर रखने की बात वही करते हैं, जिनके निहित स्वार्थ हैं, जो डरते हैं कि कहीं लोग हमें समझ न जाएँ। मैंने पहले भी कहा है कि राजनीति को नकारना भी एक राजनीति है।

—अच्छा, तो बात को यहीं खत्म करें। तुम अब राजनीति पर चर्चा करने लगे। इससे लेबिल चिपकते हैं।

—लेबिल का क्या डर! दूसरों को देशद्रोही कहनेवाले, पाकिस्तान को भूखे बंगाल का चावल 'स्मगल' करते हैं। ये सारे रहस्य मुझे समझ में आते हैं। मुझे डराने की कोशिश मत करो।

कहत कबीर*

संयोग कुछ ऐसा घटा। सन् 1961 में 'नई दुनिया' जबलपुर के (तत्कालीन) संपादक और मेरे (दीर्घकालीन) मित्र (आगे की कौन जानता है?) मायाराम सुरजन ने, हम दोनों के मित्र श्रीबाल पांडे के साथ तय किया कि मैं उनके पत्र में प्रति सप्ताह व्यंग्य-स्तंभ लिखूँ।

नाम का सवाल उठा, तो मेरे सिर पर चढ़कर कबीरदास बोला। (पाप ही नहीं, पुण्य भी सिर पर चढ़कर बोलता है)। कबीर के सीधे, बेलौस, बखिया-उधेड़, चरबा-उतार, मस्ती और फक्कड़पन से भरे व्यंग्यों का मैं भक्त रहा हूँ। इतना ताकतवर कोई और हुआ नहीं क्योंकि और किसी ने न 'सीस काटकै भुँई धरा' न 'अपना घर फूँकिया', न 'बाजार में लिये लुकाठी' खड़ा हुआ—'सब ही भुलाने पेट का धंधा!'

तो स्तंभ का रूप यों निश्चित हुआ कि 'कबीर' हर सप्ताह साधुओं से बात करे। सप्ताह की कोई घटना का छोर पकड़कर उसमें निहित प्रवृत्ति को व्यापक आयाम देकर उस पर व्यंग्य किया जाय। स्थिति की पूरी 'एब्सर्डिटी' को उभारकर, उसे तर्कपूर्ण और न्यायसंगत बनाकर प्रस्तुत किया जाय, तो स्थिति पर पुरअसर व्यंग्य हो जाता है। इसी तरह छिपाकर किए जानेवाले मिथ्याचार को करनेवाले से प्रगट अधिकारपूर्वक और न्यायोचित ढंग से कराया जाय, तो भी प्रवृत्ति पर करारी चोट होती है। विकृति इतनी व्यापक हो जाय और उसे इतनी मान्यता मिल जाय कि उसका गोपन एक उपचार मात्र रह जाय, तो उसके विद्रूप को ऊपर ले आना चाहिए। ऐसी ही कुछ शैली मैंने इन स्तंभों में अपनाई। नाम हुआ

* सुनो भई साधो : 1964

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सुनो भई साधो' और वक्ता हुआ 'कबीर'। हर सप्ताह साधु इकट्ठे होते हैं और कबीर सप्ताह की किसी घटना को लेकर उनसे बात करता है–'साधो, तुमने सुना–'

यों ही जो स्तंभ शुरू कर दिया, उसने आगे मुझे बाँध लिया। इसकी प्रभावकारी 'अपील' और विकट लोकप्रियता ने मुझे बाध्य किया कि इसे जिम्मेदारी से लिखूँ। मैं इसे लेखन के माध्यम से अपने सामाजिक दायित्व की आंशिक पूर्ति के रूप में ग्रहण करने लगा। 'ऊँचे' लेखकों को यह दायित्व की बात गलत लगती है। उन्हें मुनाफाखोर सस्ता अनाज दे देता होगा, मुझे तो नहीं देता। लंबी कतार में खाली थैले लिये मैं भी कहीं खड़ा हूँ।

'कबीर' के ये प्रवचन इंदौर और रायपुर की 'नई दुनिया' में भी उद्धृत होने लगे और बहुत पढ़े जाने लगे। यह स्तंभ बहुत लोकप्रिय है और जितने प्रशंसक तथा दुश्मन इसने बनाए, उतने मेरे किसी और लेखन ने नहीं। इसकी चोट से बहुत लोग तिलमिलाते हैं और उनकी गालियाँ तथा धमकियाँ भी मुझे मिलती हैं। मगर जन-समर्थन मुझे हमेशा आश्वस्त कर देता है।

सामाजिक-राजनैतिक व्यंग्य-स्तंभ के लेखन की पहली शर्त लेखक की स्वतंत्रता है। इस संबंध में 'नई दुनिया' के तीनों संस्करणों में मुझे पूरी छूट है। जबलपुर 'नई दुनिया', से मायाराम सुरजन के अलग होने के बाद भी श्री परमानंद पटेल ने तथा उनके नए संपादक श्री मुंदर शर्मा ने लेखकीय स्वतंत्रता की कद्र की है और इस स्तंभ के लिए आवश्यक सुविधा दी है।

इन व्यंग्य-चर्चाओं की रचना अनायास हो जाती है। मित्रों से सामाजिक-राजनैतिक विषयों और सामयिक घटनाओं पर चर्चा रोज ही होती है, मुख्यतः मेरे एक खुशमिजाज और मेधावान मित्र हनुमान वर्मा से। लोगों से बात करते-करते किसी स्थिति का विद्रूप मन में चमक उठता है और व्यंग्य की रेखाएँ खिंच जाती हैं। तब व्यंग्य के फ़िकरे निकलने लगते हैं। सुननेवाले अंदाज लगाकर कह भी देते हैं कि अगले इतवार यही आ रहा होगा।

अब तक लगभग 150 किस्तें लिख चुका हूँ। हर हफ्ते अभी भी लिख रहा हूँ। मुझे सलाह मिली कि इनका संग्रह छपा दिया जाय। मेरे मित्र (आगे प्रकाशक) शेष नारायण राय ने यह दायित्व ले लिया। ये 36 किस्तें इस संग्रह में जा रही हैं। आगे और संग्रह भी होंगे।

पहले मेरे मन में आया था कि इन स्तंभों को अखबार के पन्नों में पड़ा रहने दूँ और इन विषयों को निबंधों का रूप दे दूँ। फिर मैंने यह रूप-परिवर्तन का इरादा त्याग दिया। जब इसी रूप में संग्रह में जाने का तय हुआ, तब पहले सोचा कि इन्हें फिर से लिख दूँ, ताकि ये सुव्यवस्थित हो जाएँ। लेकिन यह इरादा भी त्याग दिया। मेरे आलस्य ने इन निर्णयों में कितना योगदान किया, मैं जानता हूँ। अब ये उसी मौलिक रूप में छप रहे हैं, जिसमें मैंने इन्हें लिखा था। इनकी अव्यवस्था और ऊबड़-खाबड़पन भी पढ़नेवालों को आकर्षक लगा है। जैसा कि स्वाभाविक है, इनमें अव्यवस्था है, बिखराव है, भाषा का ऊबड़-खाबड़पन है, पुनरुक्ति भी है। एक बात विभिन्न प्रसंगों में, विभिन्न अर्थ-समर्थन के लिए कई बार आ गई है। कुछ प्रसंग, जैसे एकलव्य का अँगूठा और नारद का बंदर का चेहरा, मेरी चेतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर जमे रहे हैं और वे बार-बार आ गए हैं। कुछ उक्तियाँ मेरी दूसरी रचनाओं की भी अनायास आ गई है। मैंने इन्हें रहने दिया है।

सवाल है—इस लेखन का मूल्य क्या होगा? पढ़नेवाले के लिए फिलहाल सवा तीन रुपया। आलोचना करनेवाले के लिए, जो वह चाहे सो। साहित्यिक मूल्य में कुछ निश्चित नहीं होता। आज की गाली कल शायद सद्-साहित्य मान ली जाय। अधिकांश साहित्यालोचक जड़ और संकीर्ण दृष्टि तथा भोथरे संवेदन के होते हैं। वे एक परंपरा के गुलाम बन जाते हैं। मैं तो छोटा आदमी हूँ, पर उस मेरे पूज्य महाप्राण कबीरदास के व्यंग्यों की सैकड़ों साल तक क्या कद्र की गई! उच्चवर्गियों और पंडितों ने उसे गँवार ही माना। होली पर उत्तर भारत में जो गाली बकी जाती है उसे अभी भी 'कबीर' कहते हैं—'अरे रे रे सुनो हो कबीर'—याने कबीर की बात गाली-गलौज ही हुई! हमारे जमाने में एक उच्चवर्गीय महान् कवि रवींद्रनाथ ने उसके सामने सबको दिखाकर माथा झुकाया और उसके पदों का अंगरेजी में अनुवाद किया। ब्राह्मणों द्वारा निंदित कबीर पर एक ऊँचे ब्राह्मण पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने पुस्तक लिखकर उसकी महत्ता का प्रतिपादन करके, पहले के ब्राह्मणों के पाप को धोया।

साहित्य-समीक्षा के प्रति मैं आत्म-रक्षा के खयाल से ही लापरवाह हूँ। पाठक को अलबत्ता मैं यह संग्रह बेझिझक और निःसंकोच दे रहा हूँ। उसने मेरा विश्वास किया है और मैंने उसका—और दोनों को अभी तक तो धोखा नहीं हुआ।

व्यंग्य क्यों ? कैसे ? किसलिए ?*

मैं व्यंग्य लेखक माना जाता हूँ। व्यंग्य को लेकर जितना भ्रम हिंदी में है, उतना किसी और विधा को लेकर नहीं। समीक्षकों ने भी इसकी लगातार उपेक्षा की है। अभी तक व्यंग्य की समीक्षा की भाषा ही नहीं बनी। 'मजा आ गया' से लेकर 'बखिया उधेड़ दी' तक कुछ फिकरे इस पर चिपकाकर समीक्षा की इतिश्री समझ ली जाती है। अक्सर विनोद, हास्य, मखौल से व्यंग्य को अलग करके नहीं देखा जाता। मेरी ही कोई रचना पढ़कर प्रबुद्ध पाठक भी कह देता है—बड़ा मज़ा आया, जबकि मैंने खिजाने के लिए वह चीज लिखी है।

आदमी कब हँसता है? इस संबंध में बड़ी दिलचस्प और विभिन्न धारणाएँ हैं। एक विचार यह है कि जब आदमी हँसता है, तब उसके मन में मैल नहीं होता। हँसने के क्षण-भर पहले उसके मन में मैल हो सकता है और हँसी के क्षण-भर बाद भी। पर जिस क्षण वह हँसता है, उसके मन में किसी के प्रति मैल नहीं होता। फिर जिसका हाजमा अच्छा हो वही हँस सकता है। कब्ज का मरीज मुश्किल से हँसता है। फिर जब मनुष्य को चैन की (well being) अनुभूति होती है, तब वह हँसता है। बिना चैन की हँसी खिन्न हँसी होती है, जैसी

* तिरछी रेखाएँ : 1967

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंडित नेहरू की अंतिम वर्षों में हो गई थी।

आदमी हँसता क्यों है? परंपरा से हर समाज की कुछ संगतियाँ होती हैं, सामंजस्य होते हैं, अनुपात होते हैं। ये व्यक्ति और समाज दोनों के होते हैं। जब यह संगति गड़बड़ होती है तब चेतना में चमक पैदा होती है। इस चमक से हँसी भी आ सकती है और चेतना में हलचल भी पैदा हो सकती है। शरीर में कितनी बड़ी नाक हो इसका एक अनुपात मानस में बना हुआ है। पर अगर किसी की बहुत मोटी नाक हो तो लोग कहते हैं—अरे, यह तो नाक की जगह आलूबड़ा रखे हैं—और हँस पड़ते हैं। साइकिल पर एक आदमी बैठे, यह संगति है। दो को बरदाश्त कर लिया जाता है, पर एक साइकिल पर तीन सवार हों और वे गिर पड़ें तो उनकी चोट के प्रति सहानुभूति नहीं होगी, बल्कि दर्शक हँस पड़ेंगे—अच्छे गिरे साले! हमारे यहाँ कंजी आँख बुरी मानी जाती है। कंजी आँखवाले पर लोग हँसते हैं। कहावत है—

सौ में सूर सहस्र में काना,
सवा लाख में ऐंचकताना।
ऐंचकताना करे पुकार,
मैं कंजे से खाई हार।

पर कंजी आँखें पश्चिम में अच्छी मानी जाती हैं। आमतौर पर पतले ओंठ सुंदर माने जाते हैं पर नीग्रो लोगों में अच्छे मोटे ओंठ भी अच्छे लगते हैं। भारत में किसी के नीग्रो-जैसे मोटे ओंठ हों तो लोग हँसेंगे, क्योंकि सौंदर्यबोध की संगति बिगड़ती है।

लोग किसी भी बात पर हँसते हैं। हल्की, मामूली विसंगति पर भी हँस देते हैं। आदमी अगर घोड़े-सरीखा हिनहिनाए तो इस पर भी हँस देते हैं। दीवाली पर कुत्ते की दुम में पटाखे की लड़ी बाँधकर उसमें कुछ लोग आग लगा देते हैं। बेचारा कुत्ता तो मृत्यु-भय से भागता और चीखता है, पर लोग हँसते हैं।

पर व्यंग्य में जरूरी नहीं कि हँसी आए ही। मार्क ट्वेन ने लिखा है—यदि कोई भूखे कुत्ते को रोटी खिलाए तो वह उसे काटेगा नहीं। मनुष्य और कुत्ते में यही खास फर्क है। इस कथन से हँसी नहीं आती पर व्यंग्य की वह करारी चोट यह चेतना पर करता है कि पाठक पहले तो भौचक रह जाता है और फिर सोचने लगता है।

व्यंग्य के साथ हँसी भी आती है, पर वह दूसरे प्रकार की होती है। मेरी ही एक लघुकथा है—संसद में एक सदस्य ने कहा कि अमुक जगह पुलिस की गोली से ग्यारह आदमी मारे गए। गृहमंत्री इसका जवाब दें। गृहमंत्री बड़ी शांति से उठे। जिन्हें रोज गोली चलवानी है वे कब तक अशांत रहेंगे। गृहमंत्री ने जवाब दिया—गोली का कारखाना जनता के पैसे से चलता है। जनता के पैसे से जो सामान बनता है, उसे जनता के ही काम आना चाहिए। अब जनतांत्रिक असूल में यह बात पूरी तरह संगत है। पर यह कितनी बड़ी विडंबना पैदा करती है और संसदीय प्रणाली पर चोट करती है। इस लघुकथा से हँसी जरूर आती है पर यह हँसी और किस्म की होती है और सोचने को बाध्य करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यंग्य लेखन एक गंभीर कर्म है। कम-से-कम मेरे लिए। सवाल यह है कि कोई लेखक अपने युग की विसंगतियों को कितने गहरे से खोजता है। उस विसंगति की व्यापकता क्या है और वह जीवन में कितनी अहमियत रखती है। मात्र व्यक्ति की ऊपरी विसंगति—शरीर रचना की, व्यवहार की, बात के लहजे की, एक चीज है। और व्यक्ति तथा समाज के जीवन की भीतरी तहों में जाकर विसंगति खोजना, उन्हें अर्थ देना तथा उसे सशक्त विरोधाभास से पृथक करके जीवन से साक्षात्कार कराना दूसरी बात है। सच्चा व्यंग्य जीवन की समीक्षा होता है। वह मनुष्य को सोचने के लिए बाध्य करता है। अपने से साक्षात्कार करता है। चेतना में हलचल पैदा करता है और जीवन में व्याप्त मिथ्याचार, पाखंड, असामंजस्य और अन्याय से लड़ने के लिए उसे तैयार करता है।

जोनाथन स्विफ्ट कहता है—मैं मनुष्य को अपमानित करने और उसे नीचा दिखाने के लिए लिखता हूँ। परंतु मार्क ट्वेन कहता है--मैं बुनियादी तौर पर एक शिक्षक हूँ। मेरा खयाल है, कोई भी सच्चा व्यंग्य लेखक मनुष्य को नीचा नहीं दिखाना चाहता। व्यंग्य मानव सहानुभूति से पैदा होता है। वह मनुष्य को बेहतर मनुष्य बनाना चाहता है। वह उससे कहता है—तू अधिक सच्चा, न्यायी, मानवीय बन। यदि मनुष्य के प्रति व्यंग्यकार को आशा नहीं है, यदि वह जीवन के प्रति कनसर्न्ड नहीं है तो वह क्यों रोता है, उसकी कमजोरियों पर। जो यह कहते हैं कि व्यंग्य लेखक निर्मम, कठोर और मनुष्य विरोधी होता है, उसे बुराई ही बुराई दिखती है, तो मैं जवाब देता हूँ कि डॉक्टर के पास जो लोग जाते हैं उन्हें वह रोग बताता है। तो क्या डॉक्टर कठोर है? अमानवीय है? अगर डॉक्टर रोग का निदान न करे और अच्छा ही अच्छा कहे तो रोगी मर जाएगा। जीवन की कमजोरियों का निदान करना कठोर होना नहीं है।

अच्छे व्यंग्य में करुणा की अंतर्धारा होती है। चेखव में शायद यह बात सबसे साफ है। चेखव की एक कहानी है—बाबू की मौत। इस कहानी को पढ़ते-पढ़ते हँसी आती है पर अंत में मन करुणा से भर उठता है। जिस बात पर कहानी का ताना-बाना चेखव ने बुना, वह यह है—

थियेटर में एक बाबू नाटक देख रहा है। उसके ठीक सामने उसका बॉस बैठा है। बॉस के चाँद है। बाबू को छींक आती है और उसे लगता है कि उसकी छींक के छींटे साहब की चाँद पर पड़ गए हैं। वह घबड़ाता है और इंटरवल में साहब से माफी माँगता है—साहब माफ कर दीजिए। मुझसे गलती हो गई। मैंने जान-बूझकर गुस्ताखी नहीं की। अब मज़ा यह है कि साहब की चाँद पर छींटे पड़े ही नहीं हैं। वह नहीं जानता कि बाबू माफी किस बात की माँग रहा है। वह उसे डाँटता है—क्या बक-बक लगा रखी है। भागो यहाँ से। इधर बाबू समझता है कि साहब ज्यादा नाराज हैं। वह खेल छूटने पर फिर माफी माँगता है—साहब, मैं क्षमा चाहता हूँ। मुझे जुखाम हो गया है। मैंने जान-बूझकर वैसा नहीं किया है। साहब फिर उसे डाँटकर भगा देता है। तीन दिन तक यह क्रम चलता है। बाबू माफी माँगता है, पर साहब नहीं जानते कि माफी किस बात की माँग रहा है। वह अधिकाधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
खीजकर उसे भगाता है। इधर बाबू समझता है कि साहब को बड़े छोटे पड़े होंगे तभी नाराज हैं। यहाँ तक तो कहानी में एक कॉमिक का वातावरण रहता है। पर जब साहब उसे चपरासी से बाहर निकलवा देता है तब वह सोचता है—अब नौकरी गई। मेरी बीवी है। तीन बच्चे हैं। इनका पालन कैसे होगा ?

इसी घबराहट में वह घर आता है। कुर्सी पर बैठता है और उसके प्राण निकल जाते हैं।

कैसा करुण प्रसंग है। कहानी में चेखव ने इस कठोर नौकरशाही पर चोट की है जिसमें साहब अहंकार के कारण बाबू से पूछता तक नहीं कि तू माफी क्यों माँग रहा है। सिर्फ इतना पूछ लेता तो बाबू की जान नहीं जाती।

व्यंग्य के संबंध में कुछ बातें मैंने यहाँ कहीं, इस मकसद से कि व्यंग्य का मर्म समझने में इनसे कुछ सहायता मिलेगी।

यह कैसा वसंत आया !*

सुना है वसंत आ गया। उषाकाल में ब्राह्म मूहूर्त में उठकर समीर दसों दिशाओं में ऋतुराज के आगमन का संदेशा दे आया—वनोपवनों से कह आया कि कोमल कुसुमों का सुंदर हार सँजोएँ—ऐसा जैसा कि आकाश ने पावस को पहनाया था। आकाश और पृथ्वी की यह स्पर्धा ही तो हमारे धर्म, कर्म, वेद, पुराण, शास्त्र, भजन, पूजा, साधना की आधार बनी हुई है। कोकिल के कान में भी वह यह बात डालना न भूला कि वह अपनी वर्ष-भर की साधना को स्वरों में भरकर मंगलगान करे; और मधुकर के कान में भी चुपचाप कह दिया कि वसंत के अभिनंदन में नवीन विरुदावलि रचे।

परंतु संसार के सुख को ग्रहण करने में हमेशा 'लेट', सीधे, चिकने, कोटि-कोटि पाँवों से कुचले हुए, सनातन मार्ग पर फिसलकर अपना नवीन पथ पकड़ उस पर जल सींच-सींचकर शूलों को उगाने-बढ़ाने और उनको पद-दलित कर नीड़ों में आनंद का पूर्ण गौरव अनुभव करनेवाला—मैं—आदत से लाचार इस पवन-संदेश को भी न सुन पाया। और फिर पर-हर्ष से पुलकित होने का प्रयास मात्र करने की आकांक्षा और उदारता का दर्प रखनेवाला—मैं—परखने लगा—युवक-युवतियों को, बालकों को, वृद्धों को।

और देखा, इस भर-वसंत में भी मनुष्य पतझड़ में लुटी हुई उस विगत वैभव, नग्न, शुष्क, क्षीण तरुशाखा के समान लगता है जो पवन के प्रत्येक थपेड़े पर उस ओर से इस ओर हिलती है। देखा, जीर्ण वस्त्र पहने नर-कंकालों को जिनके दृष्टि-गह्वरों में दीप की अंतिम श्वास के समान टिमटिमाते हुए छोटे नेत्र जिनमें मादकता और इसके स्थान पर अतृप्त

* प्रहरी, 27 फरवरी, 1948

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकांक्षाएँ, करुणा और निराशा। ललाट पर चिंताओं की स्पष्ट लिपि, रक्तहीन शिथिल त्वचा के भीतर से झाँककर दीनता की गाथा कहती हुई अस्थियाँ।

और सोचा—यह कैसा पागल मानव है? वर्ष में एक बार पाँच ऋतुओं की परिक्रमा कर आया वसंत—मन में रस उड़ेलने, प्राणों में स्फूर्ति भरने, निराशा को आशा का जामा पहनाने। और यह मानव है जिसके मुख पर स्मित की एक रेखा नहीं, जिसके नयनों में तनिक उल्लास नहीं, जिसके हृदय में तनिक स्पंदन नहीं, मन में उमंग नहीं, आह्लाद नहीं।

तो क्या यह मनुष्य परमहंस हो गया—योगी है—जो आत्म-साधना के उस सोपान पर पहुँच चुका है जहाँ सुख-दुख की अनुभूति स्पर्श नहीं करती? या अनादि काल से सहस्रों नर-नारियों के हृदयों में प्रविष्ट हो, सहस्रों मानिनियों के दर्प-दुर्ग के प्रकोष्ठ तोड़, निर्मोही के कठोर हृदयों को बेधते-बेधते मदन के पंचशर कुंठित हो गए हैं? या इस संघर्ष के युग में मानव-हृदय ही विपत्ति, अन्याय, अत्याचार से कट-पिटकर ऐसा पाषाणवत् हो गया है कि बेचारे अनंग के पुष्पशर उसमें प्रवेश नहीं कर पाते? या हृदय में विश्व के प्रहारों से इतने छिद्र हो गए हैं कि काम के कोमल बाण भी बिना नवीन छिद्र किए, बिना आघात किए इन्हीं छिद्रों में से निकल जाते हैं? तभी तो कोई सिहरन-उत्पीड़न दृष्टिगोचर नहीं होता।

और नहीं तो क्यों देखता जीवन के मध्य भाग में से गुजरते हुए युवक-युवतियों को अपने ही भार से दबे हुए—निष्प्राण से? श्वेतकेश वृद्धों को भी दाढ़ी पर हाथ फेरते देखा—पर—'केसव केसन असकरी'—का पश्चात्ताप और बलवती आकांक्षा नहीं दिखी।

यह कोकिल—इसकी वाणी में भी आज वह शक्ति कहाँ जो विस्मृत सुख-स्वप्न, सुप्त अभिलाषा को झकझोरकर उठा दे, उमंग को दो पग और ठेल दे! ऐसा लगता है मानो सारी संसृति के दुख को द्रवीभूत कर वाणी से उड़ेल रही हो—जैसे कोई 'मरसिया' गा रही हो। यह शीतल समीर—मीठी सिहरन उत्पन्न करना संभवतः भूल गया और अब तो नग्न नरकंकालों की हड्डियों तक पहुँच उन्हें खड़खड़ाकर वस्त्राभाव की याद-भर दिला देता है। बेचारा भौंरा अपने ही स्वर के भार से दबा हुआ, केवल जीर्ण और मलिन वस्त्रों पर वसंती रंग चढ़ाना—अपनी दरिद्रता को छिपाने का असफल प्रयास!

सुना है—पढ़ा है—कभी ब्रज में कालिंदी के तीर सुंदर घने वनकुंजों में नटवर कृष्ण की वेणु के छिद्रों से रस बरस पड़ता था और मादक आनंद में भीगे गोप-गोपियाँ वसंती परिधान पहने प्रत्येक कुसुम पल्लव-वल्लरी से सुख-गाथा सुनते थे, रास रचाते थे, नृत्य करते थे। परंतु अब—जो दुर्बल पाँव शरीर और उससे भारी मन का बोझ सम्हालने में भी असमर्थ हैं, नृत्य की गति कहाँ से लावेंगे?

कैसी विडंबना है! मैं इन क्षुधातुर, दीन-हीन मानवनामी जीवधारियों के ठंडे निःश्वासों में 'मधुकर' का गुंजार ढूँढ़ रहा हूँ! निराश, निराश्रिता, पीड़ित नारियों के करुण क्रन्दन में कोकिल की 'कुहू' पा जाने का प्रयास कर रहा हूँ।

फिर सोचता हूँ, मदन भी 'अनंग' बनकर शरीरजन्य सब क्लेशों से मुक्ति पा गया। शीत, आतप, वात, क्षुधा, तुझे कहाँ उत्पीड़ित कर पाते हैं! भगवान आशुतोष का रोष तेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए वरदान बन गया! अन्यथा आज के युग में तेरे कोमल करों में पुष्पवाणी के स्थान पर कुदाली-फावड़ा होते, मुख पर मधुस्मिति के स्थान पर विषाद की कालिमा होती और तू इस प्रकार नर-नारियों के हृदयों से खिलवाड़ कर मनोरंजन न करता होता—वरन् एक कोने में बैठकर आगामी कल की चिंता में व्यस्त रहता।

पर, राजा भूखा था*

स्वतंत्रता-दिवस के दिन शहर का काया-पलट हो जाए तो आश्चर्य क्या? यह महान् राष्ट्रीय पर्व प्रतिदिन तो आता नहीं है! रंगीन झण्डियाँ, वंदनवार, फूल, रंग-बिरंगे बल्ब—सबने लक्ष्मी की अलक्ष्य प्रेरणा से वातावरण में सौंदर्य ला दिया था। पर इस सबमें मुझे वह सत्यता नहीं मिली जिसे देखने मैं निकला था। एक प्रकार का कोरापन था; हृदय का अभाव था। संभवतः इसलिए कि वे 'अनेक' जो सड़क पर से कौतूहलपूर्ण नेत्रों से देखते हुए चले जा रहे थे, उस 'एक' से जो दूकान पर बैठा हुआ गर्वदृष्टि से देख रहा था—इतने भिन्न थे।

एक विशाल चाँदी-सोने की दूकान विशेष आकर्षण लिए थी। काँच के 'शो केस' में चाँदी, सोने, जवाहरात के बीच में गाँधीजी और नेताजी के चित्र सजे हुए थे। जिन्होंने सोने की शृंखला को तोड़ अपना स्थान दरिद्रों में बनाया उनको ही सोने के पिंजड़े में बंद कर दिया! कृतघ्न देश! तूने राष्ट्रपिता का उपयोग आखिर विज्ञापन के लिए किया ! तूने 'गाँधी भंडार' नाम से मिठाई की दूकान खोली, तूने 'गाँधी स्टोर्स' खोल दिया; तूने 'गाँधी वस्त्रागार' खोल दिया जहाँ तू सत्य के देवता के नाम पर एक गज का पंद्रह गिरह नापता है!

एक जगह और देखा। दूकान के सामने की भूमि बाँसों के द्वारा घेर रखी थी जिससे दर्शक बहुमूल्य सजावट को समीप से न देख सकें। वहाँ केवल चुने हुए सेठ-साहूकार, ऊँचे अफसरों की पहुँच थी। बाहर भूखा भिखारी पेट दिखाकर एक पैसा माँग रहा था; भीतर धनी सेठ रसगुल्ले खाने के आग्रह पर 'नहीं-नहीं' कह रहा था। पर वह घेरा! एकाधिपत्य का लोभ सरलता से संवरणशील नहीं है। दूसरों का दृष्टि-अधिकार छीनकर संचय करना भी कितनी बड़ी निर्लज्जता है। क्या बेचारा दरिद्र पर-वैभव को देखकर प्रसन्न होने का अधिकारी भी नहीं। हजारों वर्ष पूर्व हमारे ही पूर्वज उपनिषदों में कह गए हैं, 'मा गृधः कस्यस्वित् धनम्।' कितना अंतर है—तब और अब। धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र तो बंद पेटी से तब निकाले जाते हैं जब धन के स्वार्थों का समर्थन करना होता है।

गाँधीजी का मूल्य भी रुपए-आने-पाई में होने लगा। 1001 रुपए गाँधी-स्मारक कोष में देकर 10001 रु. कमाने की इच्छा कौन नहीं रखता? और 10 रु. देनेवाले लखपति का

* प्रहरी, 29 अगस्त, 1948

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम अखबार में छप जाता है; पर 10 रु. देनेवाले उस बेचारे चपरासी का नाम कोई नहीं जानता जो एक-तिहाई वेतन देकर 10 दिन भूखा रहेगा। 'सबै सहायक सबल के।'

तो स्वतंत्रता की खुशी में भरे पेट को और भरकर अजीर्ण उत्पन्न करने की अपेक्षा यह अच्छा होता कि उस मुँह में मिठाई पड़ जाती जिसने उसे कभी नहीं चखा। एक दिन के लिए गरीबों के मुहल्ले सज जाते; एक दिन के लिए उनके अंधकार में ही प्रकाश हो जाता; एक दिन वे ही स्वतंत्रता का अनुभव कर लेते! इन्हीं के लिए तो गाँधीजी जिए और मरे। पर मैं कह तो चुका हूँ कि गाँधी के नाम की दूकान खोलकर गाँधी के ही दरिद्रनारायण को लूटने का उपक्रम देशप्रेम का रूप धारण कर रहा है। गाँधी-गुण-गान के नाम पर दूकान पर सिनेमा की बदनाम-शुदा रागों पर पूज्य गाँधीजी के नाम के गाने माइक्रोफोन पर बजते ही हैं।

यदि कोई पूछे कि स्वराज्य किसका? तो हम सब कहेंगे—किसान का, मजदूर का, ग्रामीण का। परंतु क्या वास्तव में वह जानता है कि उसे राज्य मिल गया है; वह राजा हो गया है? उसकी राजनीति, साहित्य, संस्कृति, कला—पेट के बाहर कहीं भी नहीं है। स्वतंत्रता दिवस को उसके पास दीप है तो तेल कहाँ से लावे? फिर भी वह माँ स्वतंत्रता का स्वागत करता है। भूख की ज्वाला उसके पेट में निरंतर जलती है; अन्याय, शोषण की लपटें उसके आसपास उठ ही रही हैं—और इनके बीच वह स्वयं बत्ती बनकर जल रहा है। वह क्षुद्र टिमटिमाता हुआ मिट्टी का दीप क्या जलावे! राजा की यह तपस्या धन्य है! प्राचीन आर्य नरेशों की परंपरा के अनुसार यह नवीन राजा भी कुछ कम तपोबल संचय नहीं कर रहा है।

तो राजा ने भूखे पेट स्वतंत्रता की वर्षगाँठ मनाई। राजकुमार और राजकुमारी अस्थियों का नंगा ढाँचा समेटे रानी से 'रोटी' की पुकार कर रहे थे। राजमहल में फूटा लोटा, एक मिट्टी का बर्तन—बस और कुछ नहीं था।

झोंपड़ी का अंधकार महल के प्रकाश के मुख पर कालिख पोतने आ रहा था।

15 अगस्त को राजा भूखा था!

समाज के गुरु का यह उपहास !*

अभी उस दिन मेरे एक परिचित शिक्षक महोदय मिले और बड़ी प्रसन्न मुद्रा से बोले, "पढ़ा आपने? बंबई सरकार ने प्राथमिक शालाओं के शिक्षकों को 'गुरुजी' का संबोधन किया है और आदेश दिया है कि हर उत्सव, सभा-सोसाइटी में उन्हें आगे स्थान दिया जाय। बधाई का तार भेजना चाहिए।"

* प्रहरी, 28 नवम्बर, 1948

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बधाई? किस बात की बधाई? क्या गुरु वसिष्ठ की परंपरा के उस भारतीय गुरु को बधाई दी जाय जो आज एक रोटी के टुकड़े के लिए परमुखापेक्षी और अपने सम्मान के लिए सरकारी कानून की अपेक्षा करता है? या उन कानून बनानेवालों की चातुरी पर दी जाय जिन्होंने गरीब शिक्षकों का मुँह कम-से-कम 10 साल को और बंद कर दिया? कैसी विडंबना है! कैसा निष्ठुर मजाक है! कैसा झूठा सम्मान है! इस युग में जहाँ रुपया ही 'राम नाम' की तरह सत्य हो रहा है, इस सम्मान की नकली गुरिया को फोड़कर कोई देखे तो कि उसमें रुपया-आना-पाई कहाँ लिखा हुआ है? काश ! इस झूठे सम्मान के बदले वेतन में 10 रुपए की ही वृद्धि हो जाती। भूखे पेट, फटे कपड़े पहने, नंगे पैर प्राइमरी स्कूल का मास्टर बेचारा दिमाग में चिंताओं का भार लेकर जब आगे बैठेगा, तब उसे कौन-सा सुख होगा? और यह सम्मान देनेवालों से ईमानदारी से पूछा जाय कि यह कहाँ का विचित्र तर्क है, कि समाज का सबसे सम्मानित व्यक्ति सबसे दरिद्र रखा जाय? जिसकी वे इतनी कीमत करते हैं, क्यों नहीं उसके जीवन को सुखी बनाने की सोचते? न 'गुरु' में और न आगे बैठने में हमें कोई ऐसा तत्त्व दिखता है जिससे क्षुधा निवृत्ति हो सके, कपड़े बन सकें, बच्चों का पालन हो सके।

ज्ञान की ज्योति जलाए रखने के लिए जिसने अपने शरीर के रक्त की बूँद-बूँद दान कर दी है, ज्ञान की मशाल को पकड़े हुए जिसके हाथ जल रहे हैं पर वह उसे छोड़ता नहीं है; युगों से ज्ञान के भारी रथ को खींचते हुए जिसके कंधे छिल गए हैं, पैर लड़खड़ाने लगे हैं, आँखों के आगे अंधकार छा चला है; और अज्ञानासुर से युद्ध करने के लिए जिसने अपनी हड्डी-हड्डी निकालकर दे दी है—उस दधीचि का यह उपहास !

आज के युग में धर्म, नैतिकता, ज्ञान—सबको वस्तुमत्ता दे दी गई है, जब छल-कपट, स्वार्थ ही मानव-धर्म बन गया है, जिस समाज में धन के साथ पाप का समझौता ही प्रतिष्ठा का कारण है—वहाँ समाज का गुरु अवहेलना का पात्र हो यह आश्चर्य की बात तो नहीं है; दुख की अवश्य है और वह इस देश के दुर्भाग्य पर है जो एक बार किसी समय अपने ज्ञान के आलोक से संसार को चकाचौंध करके अब धीरे-धीरे अंधकार ही पसंद करता जा रहा है। और आज ज्ञान के देवता के दुख पर पर्याप्त मात्रा में बह सकें, इतने आँसू हम कहाँ से लावें?

तो बधाई के तार की अपेक्षा तो बेचारे उन अभागे अध्यापकों को एक समवेदना का तार भेज दिया जाय, क्योंकि उन पर 'झूठे सम्मान' के रूप में यह दुख का पहाड़ टूट पड़ा है। उन्हें या हमें सुख काहे का? यह सम्मान तो वह विषैला फोड़ा है जिसे धीरे-धीरे सहलाने से एक मीठी-सी खुजलाहट होती है, पर क्या उसके विष को हम भूल जाते हैं!

और सम्मान क्या है, यह मजाक है! सरकार से रजिस्टर्ड सम्मान-पात्र बेचारा जब आगे बैठेगा तब पीछेवाले लोग अँगुली उठाकर हँसेंगे ही और कहेंगे—'सरकारी इज्जतदार बैठा है।' यह अपमान बेचारा गुरु कैसे सहेगा?

कुछ लोग वही पुराना सड़ा हुआ राग अलापेंगे—'गुरु को त्याग करना चाहिए।' स्वयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वार्थ-साधन में नंबर एक; झूठ, चोरी, बेईमानी से धन इकट्ठा करनेवालों के मुखों से यह सलाह वैसी ही लगती है जैसी नशे में चूर शराबी के मुँह से निकली हुई सलाह—'भाइयो, शराब नहीं पीना चाहिए।' क्यों? मरते हुए मरीज से फीस ऐंठनेवाले डाक्टर से; फटे हाल मुवक्किल से पैसा ऐंठनेवाले वकील से और झूठा हिसाब लिखकर गरीब की झोंपड़ी नीलाम करानेवाले महाजन से, कोई त्याग करने को क्यों नहीं कहता ?

वैसे हमारे यहाँ के लोग बोलने में किसी से कम नहीं हैं। अभी एक दिन शिक्षक-गगन में खबर फैल गई कि बड़े 'अन्नदाता' आए हैं और मास्टरों की फरियाद सुनेंगे। बेचारे दिन-भर पढ़ाने के बाद थके-माँदे 5 बजे सब एकत्रित हुए। शिक्षा का भारी बोझ ढोते-ढोते जिनकी कमर झुक गई थी वे वृद्ध भी थे, बीच रास्ते में पछताते हुए रथ के जुए को उतार फेंकने की असफल चेष्टा से व्याकुल प्रौढ़ भी थे, परिस्थितियों द्वारा पकड़कर जबरदस्ती जोत दिए गए युवक भी थे और इस ज्ञान-रथ को खींचने का गौरव प्राप्त करने की अभिलाषा से अपनी गर्दन जुए के नीचे रखनेवाले उत्साही लोग भी थे। बड़े 'आका' आए; मास्टरों ने फरियाद सुनाई, दुखड़ा रोया, प्रार्थना की। बड़े 'आका' घड़ी देखते रहे और फिर बोल दिया—'त्याग करना चाहिए आप लोगों को प्राचीन गुरुओं की तरह।' यही होता तो खैर, बेचारे सुन लेते; सुनने के आदी थे। पर उनका मन न भरा और 'फुर्र' होने के पहले बड़े 'आका' यह भी कह गए—"Teaching profession of the refuge of stupid." अर्थात् 'शिक्षा व्यवसाय में तो मूर्ख लोग शरण लेते हैं।' धन्य भाग बेचारे गुरुओं के कि 'मूर्ख' खिताब पा गए।

और मैं सोचता हूँ, मूर्ख नहीं तो और क्या हैं? मूर्ख इसलिए कि इन्होंने मूर्खों को ज्ञानवान बनाने का पवित्र काम हाथ में लिया; मूर्ख इसलिए भी कि उन्होंने इस छल-कपट के संसार में बगुलावृत्ति धारण नहीं की; मूर्ख इसलिए भी कि उन्होंने चोर-बाजार में कालेपन से, दोनों हाथों से गरीबों को नहीं लूटा, मूर्ख इसलिए कि उन्होंने अभी तक काटने की कौन कहे, फुफकारना भी नहीं सीखा।

और सुनिए, समाज के कर्णधार यह भी कहते हैं कि योग्य व्यक्ति नहीं मिलते। योग्य व्यक्ति की पहचान अंधे समाज को कब से आ गई? क्या बात है कि थोड़े-से रुपयों में ही साक्षात बृहस्पति को नौकर रखना चाहते हैं? हमारे आदर्शों की ऊँचाई का तो कहना ही क्या? हमारे देश को संसार का नेता बनने की बात भी बहुत-से आदमी कहते हैं। पर कोई पूछे कि कैसे? क्या फौजी ताकत से? नहीं, नहीं—राम-राम! भारत तो पशुबल के पक्ष में नहीं है। तो फिर कैसे? और स्वाभाविक उत्तर मिलता है—बौद्धिक बल से। तो मैं पूछता हूँ ये सब बल कहाँ से आएँगे, यदि समाज का गुरु इसी प्रकार पंगु रखा गया तो ?

राजाजी ने अभी हाल ही में कहा था कि जिस स्कूल के लड़के प्रसन्न न हों उस स्कूल को बंद कर देना चाहिए। यह तो सर्वमान्य बात है। पर मुश्किल तो यह है कि सूर्य के बिना प्रकाश कैसे होगा? वस्तु ही न होगी तो उसका प्रतिबिंब कहाँ से आवेगा ? यदि शिक्षकों के मुख पर प्रसन्नता होगी तभी तो उसकी प्रतिक्रिया विद्यार्थियों के ऊपर होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने ही दारिद्र्य से परेशान शिक्षक बेचारा क्या खाक प्रसन्नता उत्पन्न करेगा ? क्या खाक पढ़ावेगा?

पर फिर सोचता हूँ, इस अरण्यरोदन को कौन सुनता है? तो मेरे बंबई के पीड़ित गुरुओं से मेरी हार्दिक सहानुभूति है–तुम्हारी इस विपत्ति में जबकि तुम्हें पेट-भर अन्न न देकर झूठा सम्मान दिया है जिससे तुम और हास्यास्पद बन जाओ। मैं समझता हूँ कि इस समय तुम्हें सम्मान की आवश्यकता नहीं है, बल्कि उस रुपए की आवश्यकता है जिसमें पूरे सोलह आने या चौंसठ पैसे होते हैं।

हमारे समाज में वर-विक्रय*

इस बार मेरे एक परिचित वृद्ध सज्जन कन्या के ऋण से मुक्त होने के लिए जब वर के पिता के दरवाजे पर माथा टेकने पहुँचे तो मुझ अनुभवहीन को शायद इसलिए ले गए कि मौका पड़ने पर सहानुभूति का मलहम लगानेवाला एक आदमी तो साथ रहे। 'नमस्कार' इत्यादि के उपरांत वर के पिता जब चश्मे के काँच की किनार से मुझे घूरकर देख चुके तब उन्होंने दफ्तर से चोरी हुई एक फाइल निकाली और मेरे साथी की ओर मुँह करके बोले, "देखिए, साहब, मैंने तो तीनों लड़कों की यह फाइल खोल रखी है। जिनके यहाँ से जितने रुपयों की बात आती है उनका नाम सिलसिलेवार दर्ज करता जाता हूँ। अब ये देखिए--मनोहरलालजी के यहाँ से 5000/- की बात आई है, और रामकिशनजी के यहाँ से 6000/- की। तो आप भी अपना हिसाब बतला दीजिए, मैं नोट कर लूँगा। साहब अपना तो खुला काम है। 'अहारे-व्यवहारे लज्जा निकारे'–समझे न आप?" मेरे साथी बेचारे, जो केवल दो हजार का इंतजाम करके लड़का खरीदने निकले थे, किस मुँह से बोली लगाते! फिर आने का वायदा करके और वर के पिता की व्यंग्यपूर्ण मुस्कुराहट से तिलमिलाकर बेचारे उठ दिए।

मैं नहीं जानता था कि वर-विक्रय हमारे समाज में इतने वैज्ञानिक तरीके से होने लगा है कि फाइल, रजिस्टर, रसीद इत्यादि रखे जाने लगे। और अब मैं सोचता हूँ कि जो थोड़ी-सी झिझक बची है वह भी त्याग दी जाय और लड़के का पिता लड़के के सिर पर 'वर बिकाऊ है' की तख्ती लगाकर मवेशियों के बाजार में इतवार को खड़ा करे और नीलाम करके सबसे ऊँची बोली लगानेवाले को लड़के के गले में रस्सी बाँधकर सौंप दे।

विवाह-सा पवित्र बंधन जो पारस्परिक प्रेम बढ़ाकर दो परिवारों को अधिकाधिक समीप लाता था, न जाने कब से वाणिज्य बनकर रह गया? और आज खुलेआम वर की बिक्री होती है जिसकी कीमत कन्या के रूप-गुण से नहीं, वरन् उसके पिता के टकों से लगाई

* प्रहरी, 2 जनवरी, 1949

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती है। जिसके पास पैसे हों वह अपनी कन्या के लिए अच्छा वर खरीद ले, जिसकी सामर्थ्य नहीं है वह बेचारा थोड़ी देर बैठकर अपने भाग्य को रो ले और फिर कन्या को 'जहर' दे दे अर्थात् किसी वृद्ध, रोगी, अपढ़, गँवार के हाथ उसे सौंप दे, 'क्योंकि' इनकी कीमत कुछ कम होती है।

किसी ने गिना है कि वर-विक्रय की इस प्रथा के फलस्वरूप कितनी आत्महत्याएँ होती हैं? किसी ने हिसाब लगाया है कि कितने घर जलकर खाक हो जाते हैं? किसी को मालूम है कि कितने पिताओं का जीवन अभिशाप की अग्नि में जला करता है? कितनी बाल-विधवाएँ होती हैं, कितनी भ्रूण-हत्याएँ होती हैं, कितना व्यभिचार होता है, कितनी निरपराध स्त्रियों का जीवन निरंतर जला करता है? जिस दिन इसका हिसाब लग जाएगा उस दिन हमारा रामानंदी तिलक मिट जाएगा, हमारा चंदनछाप काला पड़ जाएगा—कलंक बन जाएगा; हमारी गाँधी टोपी की नोक मिट जाएगी, और हमारा भगवान मंदिर से भागकर कहीं शरण लेने पहुँचेगा।

विदेशी लोग हमारे समाज के विषय में अन्य देशों में भ्रमपूर्ण बातें फैलाकर हमें असभ्य, जंगली बतलाते रहे हैं और हमारा उनके प्रति रोष भी सर्वथा उचित ही रहा है। पर एक बात में तो हम पूर्व ऐतिहासिक काल के इस जंगली को भी मात करते हैं और आज के अफ्रीका के वनभाग के हब्शी को भी मात करते हैं—और वह बात यह है कि हममें अभी भी मनुष्य का क्रय-विक्रय होता है और वह कानूनी भी माना जाता है।

हमारे धर्म में दूसरे का धन सबसे निकृष्ट माना गया है, पर-धन की इच्छा करना पाप माना गया है और उसे ग्रहण करना तो अत्यंत निंदनीय कर्म समझा गया है। इसलिए तो भिक्षावृत्ति हमारे यहाँ अत्यंत नीच मानी गई है। परंतु तिलक लगाए, सुमरनी में हाथ घुसेड़े पंडित की निगाह भी कन्या के पिता के धन पर रहती है, 'रोटरी क्लब' में गला फाड़कर भाषण देनेवाले सभ्य साहब की आँख भी लड़के के ससुर के धन पर लगी रहती है और जन्म-भर देश-सेवा की डींग हाँकनेवाले सुधारक की जीभ में भी दूसरे का पैसा देखकर पानी आ जाता है। यह श्वान-वृत्ति हमारे समाज में कैसे आई यह कौन बताएगा ? वर के पिता के मुख में 'नहीं' के स्थान पर 'और' कब जम बैठा? और आज तो उसका मुँह इतना फट गया है कि कन्या के पिता की सारी जायदाद उसमें समा जाय।

ऐसा लगता है कि हमारी जातिगत दुर्बलता के कारण जब हमें अपनी भुजाओं पर विश्वास नहीं रहा तब हममें मुफ्त का माल खाने की घृणित प्रवृत्ति आई और जाति की संकीर्णता से उत्पन्न लड़कों की सीमित संख्या ने इस नई 'वस्तु' की क्रयशीलता की ओर संकेत किया। और परिणाम यह हुआ है कि समाज में जड़ वस्तुओं की भाँति लड़के भी बिकने लगे हैं। वह समय अब दूर नहीं है जब वर का पिता लड़कीवालों से 'टेंडर' बुलवाएगा और अधिक-से-अधिक कीमतवाले को ही अपना लड़का देगा।

वैसे तो हम 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता' की घोषणा करना नहीं भूलते और हमारे आदर्शवाद का पोला ढोल भी काफी जोर से बजाते रहते हैं, परंतु हमारे अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवारों में लड़के और लड़की के प्रति व्यवहारों में कितनी विषमता पाई जाती है और यह क्यों पाई जाती है, इस पर कभी विचार किया है? घर में मुन्ना को चुपड़ी और मुन्नी को सूखी रोटी मिलने का क्या कारण है? मुन्ना को छींक आने पर ही डॉक्टर आ जाता है पर मुन्नी की दो-चार दिनों की बीमारी भी डॉक्टर को क्यों नहीं बुला सकती ? मुन्ना के रेशमी और मुन्नी के सूती का क्या रहस्य है? मुन्ना को पुचकार और मुन्नी को फटकार के कारण पर भी विचार किया है? लड़की के प्रति माता-पिता का ही अन्यायपूर्ण वर्ताव हमारे सारे आदर्शों, हमारे सारे सिद्धांतों के मुख पर कालिख पोत देता है। और इसका एक ही कारण है—दहेज। पिता समझता है कि लड़की उसके गाँठ का खर्च करानेवाली है और लड़का उसकी गाँठ में जोड़नेवाला है। अपनी धन-हानि और चिंता की कारणस्वरूप लड़की उसे अप्रिय लगती है। पुत्र उत्पन्न होने पर बाजे बजते हैं, मिठाई बँटती है—पुत्री के जन्म पर मातम-सी शांति रहती है, माता-पिता के मुखों पर दुख की छाप दिखाई देती है।

अभी एक विवाह में देखा कि गरीब कन्या के पिता से दो हजार ऐंठकर भी जब वरपक्ष की परधन-लिप्सा शांत न हुई तो विवाह के बीच में वर के पिता-मामा-फूफा ने वर से 500 रु. और माँगने को कहा। लड़का पढ़ा-लिखा समझदार-सा था पर बड़े-बूढ़ों की भृकुटि और लाल आँखों के सामने उसका विरोध ठहर न सका और उसने निर्लज्जता से, दस साल के बच्चे की भाँति घिघियाकर कहा—'500रु. और लेंगे।' ऐसा लगता था कि ये लोग बाराती नहीं बल्कि कचहरी के चपरासी हैं, जो किसी पुराने कर्ज की कुर्की लेकर आए हैं। गरीब ब्राह्मण ने आरजू-मिन्नत करके दया न पाई तो घर का सामान बेच-बाचकर उन राक्षसों के उदर में धन डाला। मुझे उस बी. ए. की डिग्री से विभूषित वर की परवशता पर दया भी आई—उसकी कमजोरी पर गुस्सा भी आया। उसकी नसों का रक्त ठंडा हो गया था; उसकी शिक्षा उसे अन्याय का सामना करना सिखाने में असमर्थ रही। ऐसी शिक्षा बेकार है; ऐसी युवावस्था को भी धिक्कार है।

पति-पत्नी के संबंध-विच्छेद का रास्ता साफ करने के लिए तलाक का कानून लागू करने से यह अधिक आवश्यक है कि इस दहेज-प्रथा को बंद करने के लिए कानून बनाया जाय। इसीलिए हमारा कोई प्रतिनिधि समाज-हित के लिए दहेज-विरोधी कानून का प्रस्ताव हमारी धारा-सभा में रखे।

वैश्य-ब्राह्मण वार्ता*

प्राचीन काल में आर्यावर्त के एक अल्प विख्यात नगर में स्वर्णगुप्त नामक एक वैश्य निवास करता था। वैश्य धन-धान्य से संपन्न था—तिजोड़ी के ताले की तरह निर्लिप्त, निर्विकार

* प्रहरी, 17 अप्रैल, 1949

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाव से धन की रक्षा करनेवाला, नश्वर मानव शरीर की चमड़ी को, परम आराध्य दमड़ी के हेतु कटा देनेवाला। प्रपितामह से वसीयत में प्राप्त पगड़ी की उलझी हुई लड़ियों की भाँति विचारवाला वणिक एकादशी को धर्म-पालन हेतु निर्जला उपवास भी करता था, जिसका उद्देश्य मितव्ययिता होता था; कभी-कभी एकाध खोटी ताम्र-मुद्रा भी परलोक सुधारने के लिए दान करता था।

वैश्य की धर्मपत्नी, पति की मन, वचन, कर्म से भक्ति करनेवाली, बड़ी ही धर्मपरायणा साक्षात् 'लक्ष्मी'। औसत से अधिक शरीर-धन, और औसत से कम बुद्धि-धन प्राप्त यह पतिपरायणा पति के धर्म-अधर्म में पूर्ण योग देती थी।

पति-पत्नी के अतिरिक्त तीन बच्चे—जिनके पिता होने का आरोप बेचारे वैश्य पर मढ़ा गया था।

स्वर्णगुप्त के पड़ोस में देवदत्त शर्मा नामक सदाचारी धर्म-कर्म में रत ब्राह्मण सपत्नीक रहता था। परंपरागत, धार्मिक रूढ़ियों में जकड़ा यह विप्र 'बाह्मन को धन, केवल भिच्छा' पर अक्षरशः चलनेवाला था। बच्चों को घृत के दर्शन भी दुर्लभ थे पर ब्राह्मण प्रतिदिन हवन कुंड में 'ॐ स्वाहा' के उच्चारण सहित एक पात्र घृत जला देता था, क्योंकि 'धर्म' पालन न होने से वर्णसंकर संतान उत्पन्न होती है और वर्णसंकर संतान से कुल का नाश होता है, कुल का नाश होने से पितरों को पिंडदान नहीं मिलता, जिससे उन्हें अनंत काल तक नर्क में वास करना पड़ता है। अतएव कुलनाश के भय से और मृत पूर्वजों के स्वर्ग-सुख के लिए ब्राह्मण जीवित पुत्रों को भूखा मारता था।

हाँ, स्वर्णगुप्त वैश्य के परिवार में एक गौ भी थी जो तृण के अभाव में वायु सेवन करके प्राणायाम से पिंजड़ा सम्हाले हुए थी। प्रातःकाल और संध्या समय वैश्य ताम्रघट लेकर आता और उसके स्तनों से दूध की दो-चार बूँदें निकाल ही लेता।

ब्राह्मणी अत्यंत गौ-भक्त थी। दो-दो बार बच्चे को लेकर वैश्य की गाय के पास जाती, रोटी देती, परिक्रमा करती, खुर की मिट्टी बालक के मस्तक पर लगाती, पूँछ के झौंरे को मुख पर फेरती।

वणिक बड़ा काँइयाँ था, ब्राह्मण की गौ-भक्ति को ताड़ गया। एक दिन प्रातःकाल ब्राह्मणी ने उठकर देखा, वैश्य की जर्जर गाय द्वार पर बँधी है। ब्राह्मण दंपति आश्चर्यचकित इस रहस्य को समझ न पाते। मध्याह्न हो गया, वणिक ने गौ की चिंता तक नहीं की। ब्राह्मण बड़े धर्मसंकट में पड़ गया। द्वार-आए साधारण अतिथि को भी नहीं फेरते, फिर यह तो गौ माता थी, कैसे इसका निरादर करते! उधर पराई वस्तु घर में भी कैसे रखते !

निदान ब्राह्मणी से नहीं देखा गया, घर में जाकर थोड़ा अन्न लाई और गौ के आगे रख दिया। ब्राह्मण गया और घास काटकर एक गट्ठा लाया और गौ के सन्मुख रख दिया। कई दिनों के अनशन के पश्चात् सुस्वादु भोजन पाकर गौ माता की आँखें चमकने लगीं।

संध्या समय वैश्य आया और ताम्रपात्र में दूध की धार गिराने लगा। धर्मपरायण ब्राह्मण-दंपति ने कोई आपत्ति नहीं की, क्योंकि पराए धन पर आँख डालना नर्क की तैयारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना था। प्रतिदिन ब्राह्मण घास छीलकर लाता, ब्राह्मणी गोबर उठाती, सफाई करती। गौ की हड्डियों पर मांस की परत पड़ने लगी और स्तनों में दूध की मात्रा बढ़ने लगी। उधर वणिक सायं-प्रातः आता और पात्र भर दूध लगाकर प्रसन्नचित्त से घर ले जाता। ब्राह्मण-बालक लालायित नेत्रों से खड़े-खड़े देखते, उन्हें एक बूँद भी नहीं मिलती। इधर वैश्य ने दूकान पर एक 'धर्मादा पेटी' रखी और प्रत्येक ग्राहक से कहता, "भाई, पड़ोस के गरीब ब्राह्मण की एक गाय है। बेचारे से उसका पालन नहीं होता। उसके हेतु जो कुछ बन सके, पेटी में डालो। आखिर गौ माता है, पुण्य होगा। मैं भी जो कुछ बनता है, सबेरे-शाम जाकर सेवा कर आता हूँ।"

अब, यहाँ पूछा जा सकता है कि यह पौराणिक कहानी इतनी दूर तक आ गई फिर भी अभी तक 'गौरा पार्वती' और शंकर भगवान कमंडल में अमृत भर घूमते-घूमते हर एक सूखे झाड़ पर छिड़कते, तोता-तोती को राजकुमार-राजकुमारी बनाते क्यों नहीं आए? मैं नास्तिक तो नहीं हूँ, पर जो कामारि भगवान अपने परम प्रिय मित्र विष्णु के रूप पर मोहित हो जंगल-जंगल उन्हें खदेड़ते फिरे, उनकी भक्ति को निरापद नहीं समझता। इसलिए मेरी इस कथा में ब्राह्मण के द्वार पर एक दिन अतिथि आया—अब आप इन्हें भगवान का 'पर्सनल एनवाय' समझ लें या स्वर्ग के सरकारी गजट का संवाददाता नारद मान लें।

संध्या समय ब्राह्मण देवदत्त जब 'साधु नाम बनिया' और 'लीलावती कलावती' की कथा सुनाकर वस्त्र में अन्नादि बाँधकर लौटा तो देखा, द्वार पर अतिथि विराजमान हैं। अत्यंत श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर विप्र ने अतिथि के चरण पखारे और कुशल पूछने लगा। अतिथि-सत्कार की महिमा जाननेवाला, महाभारत के सोने के नेवले की कथावाले धार्मिक ब्राह्मण का पूर्वज देवदत्त अतिथि-सेवा में लग गया। इस महा घोर कलियुग में तो 6 फुट का आदमी भी द्वार पर खड़ा अपने अस्तित्व को भूलकर भिक्षुक से कह देता है, "घर में कोई नहीं है।"

इसी समय वैश्य पात्र लेकर आया और आँगन में खड़ी हुई गौ का दूध दुहने लगा। क्षुधातुर अतिथि, मीठे दूध में रोटी डालकर किस प्रकार खाएगा, इसका मानसिक चित्र खींचकर आनंद लेने लगा।

भोजन के समय दूध का पात्र न देख अतिथि क्षण-भर को निराश हुआ पर सोचा, संभवतः विप्र भूल गया हो। सीधा प्रश्न पूछना उचित नहीं है, इसलिए वह बोला—

"बड़े भाग्यवान हो विप्रदेव! नंदिनी-सी गौ द्वार पर बँधी है। बड़ी सुलक्षणी धेनु है। दूध तो पर्याप्त देती होगी?"

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "नहीं भाई, वह गाय मेरी नहीं है। पड़ोसी वैश्य स्वर्णगुप्त की है और वही उसका दूध ले जाता है। मैं तो उसकी सेवा मात्र करता हूँ। भला उसके दूध पर मेरा क्या अधिकार।"

अतिथि ने विप्र के, मुख पर के असंतोष के भाव को परिलक्षित करके कहा, "नहीं ब्राह्मण देवता, तुम भ्रम में हो। वसुंधरा की सेवा कर कृषक जो अन्न उपजाता है, उस पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी का वास्तविक अधिकार है, राजा भी उसका केवल दशमांश लेता है। उत्पादन पर अधिकार उत्पादक का होता है, ऊसर भूमि को लेकर राजा भी क्या करेगा? सेवा करके गौ को तुम उर्वरा भूमि-सी बनाते हो, उसके दूध पर तुम्हारा कुछ तो अधिकार है ही।''

परंपरागत विचारों के कारण ब्राह्मण को अतिथि की यह बात युक्ति-संगत न लगी। परंतु ब्राह्मणी जो अपने लालों को तरसते और वैश्य पुत्रों को दूध उड़ाते देख-देखकर कुढ़ती थी, सहज ही अतिथि के तर्क को मान गई। रात्रि को ब्राह्मण-ब्राह्मणी में इस बात पर घोर विवाद हुआ और प्रातःकाल पौ फटी तो ब्राह्मण विद्रोही होकर जागा। मायारूपिणी स्त्री ने मायारूपी दूध से मिलकर ब्राह्मण के सारे अपरिग्रह को परास्त कर दिया।

प्रातःकाल वैश्य जब दूध दुहने आया तो ब्राह्मणी कर्कश स्वर में बोली, ''देखो जी, बहुत हो गया। तुम अकेले इस प्रकार दूध नहीं खा सकते। हमें भी इसमें हिस्सा देना होगा, हम भी मेहनत करते हैं।''

चतुर वैश्य ने हवा का रुख परखा और ब्राह्मण परिवार से समझौता कर लिया कि दूध में से एक पाव ब्राह्मण को भी दिया करेगा। दूध की मात्रा कम होते हुए भी 'संतोषं परम् धनं' वाले विप्र ने शांति की रक्षा के विचार से यह शर्त स्वीकार कर ली। अब प्रतिदिन वैश्य दूध लगाकर घर ले जाता और वहाँ से एक पात्र में पाव-भर दूध ब्राह्मण को भिजवा देता।

पर यह शांति अधिक दिन न चली। आदत से लाचार स्वर्णगुप्त ने एक नई चाल चलकर समझौते की शर्त को भंग कर दिया। वह तीन भाग निर्मल जल और सफेदी कायम रखने के लिए एक भाग दूध मिलाकर ब्राह्मण के यहाँ भेजता। विप्र दंपति इस मिथ्या व्यवहार को समझ गए।

और एक दिन ब्राह्मण ने कह ही दिया कि आज से तुम्हारी गाय का चारापानी बंद।

दिन-भर हो गया था। गौ को घास के तिनके के दर्शन भी न हुए थे। घर में बैठा-बैठा वैश्य ब्राह्मण के धैर्य के समाप्त होने की राह देख रहा था। उसे उसकी धर्मभीरुता का पूरा विश्वास था। इधर ब्राह्मण दंपति ने भी अन्न-जल ग्रहण नहीं किया था, द्वार पर भूखी गौ बँधी थी, भोजन कैसे करते।

दो दिन और दो रात हो गए। इस बीच कई बार ब्राह्मण घास डालने चला पर स्त्री ने रोक रखा। पत्नी की आज्ञा भंग कर दे, ऐसा वीर नर-पुंगव उस स्वर्णयुग में भी इस विशाल आर्यावर्त में मिलना कठिन था।

उन दिनों 'पाँच बुद्धिमानों' का एक दल पृथ्वी पर पर्यटन करता था और लोगों के झगड़ों का निपटारा करता था। इन बुद्धिमानों की घ्राणेंद्रिय इतनी तेज थी कि इन्हें झगड़े की गंध आ जाती थी और ये वहाँ तुरंत पहुँच जाते थे। विप्र-वैश्य-विग्रह की गंध पा ये 'पाँच बुद्धिमान' वहाँ तुरंत आ पहुँचे।

अब कुछ अश्रद्धालु लोग जो हर एक शास्त्र, पुराण, कथा में अविश्वास करते हैं और पूछ बैठते हैं कि 'मसक समान रूप कपिधरी' में जो यह कहा है गोस्वामीजी ने, कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हनुमानजी जब मच्छड़ बन गए, तो राम की दी हुई अँगूठी कहाँ रखी थी—कुछ शंका करेंगे कि ये पाँच बुद्धिमान किस वाहन पर तुरंत पहुँच जाते थे। तो हमारा उत्तर यह है कि किसी आँख बंद कर अक्षर-अक्षर करके दिन में एक चौपाई पढ़नेवाले भक्त से ही पूछ लो कि राम लंका से अयोध्या कैसे आए। अब तो यह भी सिद्ध हो गया है कि दधीचि एक बड़े वैज्ञानिक थे और उनके पास 'एटम बम' का एक भारी कारखाना भी था—और जिस अस्त्र से असुर मारे गए वह अस्थि नहीं 'एटम बम' था। खैर!

ये पाँचों बुद्धिमान यूनानियों की न्याय की देवी के समान आँखों पर पट्टी बाँधे रहते थे, तथा एक-दूसरे की बात नहीं सुनते थे। चौरस्ते पर वणिक और विप्र अपना-अपना मामला लेकर इनके पास आए।

पाँचों में से प्रथम कट्टर आदर्शवादी, जो निरंतर आकाश की ओर सिर उठाए रहता था, बोला—

''गाय के दूध के अधिकारी न तो तुम हो स्वर्णगुप्त वैश्य और न तुम हो ब्राह्मण देवदत्त। इस पर अधिकार उस बछड़े का है। ईश्वर ने माता के स्तनों में दुग्ध स्रवित करने का गुण इसलिए दिया है कि उससे शिशु का पालन हो। दुष्ट मनुष्य के लूटने के लिए वह नहीं है।''

कट्टर यथार्थवादी, जो पृथ्वी की ओर ही सिर झुकाए रहता था, बोला—

''नहीं-नहीं—असल में झगड़ा गाय का है। बहुत सरल मामला है। गाय के दो हिस्से करके एक वैश्य को और एक ब्राह्मण को दे दो।''

ब्राह्मण ने चौंककर कान पर हाथ रखे—शिव-शिव! गौ-हत्या का पाप! घोर कुंभीपाक नर्क जाना पड़ेगा। वैश्य भी सहमा!

तीसरा बुद्धिमान बोला, ''नहीं-नहीं, यह वैश्य गरीब विप्र का शोषण करता है। श्रम बेचारा ब्राह्मण करे और उसका फल यह वैश्य भोगे। समाज में अनर्जित धन किसी को नहीं मिलेगा। सब दूध ब्राह्मण को मिलना चाहिए।'' इतना कह उसने अपनी लाल टोपी ज़रा सम्हालकर सिर पर जमाई।

चौथा कुछ शांत था। वह बोला, ''भाई, उस दूध पर अधिकार विप्र देवता का है और न वैश्य का। गाय का राष्ट्रीयकरण कर दो और दूध का उचित विभाजन कर दिया जाय।'' इतना कह उसने भी अपनी आधी सफेद और आधी लाल टोपी सम्हाली।

पीली पगड़ी पहने हुए पाँचवाँ बुद्धिमान बोला, ''या गाय में बापरो बाम्हन को काई है। पैसो लग्यो वाणिया को—और दूध खाय यो बाम्हन। सब दूध वाणिया को है। बाम्हन कूँ गोबर तो मिल जाय है।''

मामला कुछ सुलझा नहीं। चख-चख प्रारंभ हो गई। बुद्धिमान लोग आपस में गाली-गलौज करने लगे। प्रत्येक कहता था, मेरा सिद्धांत ठीक है। वैश्य, ब्राह्मण और गाय बेचारी—सब यह नाट्य देख रहे हैं—अभी तक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनता की कष्ट-कथाएँ *

हमारा नेता जवाहर आज लंदन में है। हवाई जहाज का इंजन उसे खींचकर परदेश ले गया। सुना तो होगा आपने कि वहाँ राष्ट्रसंघ के बड़े-बड़े महारथी जुड़ेंगे। वो अफ्रीका का प्राइम मिनिस्टर मलन भी आवेगा जिसने रंगभेद की घृणा का यमदूतत्व अपने माथे स्वीकार किया है। उसके आते ही जवाहरलाल की लंबी नाक लाल हो जावेगी, हो जानी चाहिए। जब भाषण शुरू होंगे तो कैनेडा के प्रतिनिधि को छींक आ जाएगी, आ जानी चाहिए। और तब यह भ्रम फैलेगा, फैल जाना चाहिए कि यह आयरलैंड के उन बमों का धड़ाका तो नहीं है कि जिन्होंने उसे इंग्लैंड से पूर्णतः संबंध-विच्छेद करने की प्रेरणा दी। इसी वक्त चर्चा उठेगी, उठ जानी चाहिए कि बर्मा भी ब्रिटिश राज्य से अपना संबंध तोड़ चुका है। इस अवसर पर जवाहरलाल की नाक तनिक फूलेगी, फूल जानी चाहिए। और इसी समय पाकिस्तानी प्रतिनिधि ज़फरुल्ला खाँ की तकरीर सुनाई पड़ेगी कि पाकिस्तान और भारत की भलाई इसी में है कि वे ब्रिटिश राज से अपना संबंध बनाए रखें। इस वक्त जवाहरलाल की भौंह कुछ तनेगी, तन जानी चाहिए। वे सोचेंगे कि भारत ? और कहेंगे कि बड़ी उलझन की बात है, कि जो सुलझती नहीं है, गो कि उसे सुलझना चाहिए मगर उलझती ही जा रही है कि हमारे बुजुर्गों ने यह कहावत कैसे बनाई कि साँप मरे न लाठी टूटे। वाक्य में स्थिति 'न' की स्थिति पर वे झल्ला उठेंगे, झल्ला पड़ना चाहिए और तब उन्हें लगेगा, लगना चाहिए, कि ये हवाई जहाज का इंजन उन्हें कहाँ ले जा रहा है–

पड़े गुनगुनाते थे लाला निरंजन
न आँखों में अंजन,
न दाँतों में मंजन
छुटे हमसे अपने
वो अगले तरीके
कहाँ खींच ले जाएगा हमको इंजन?

आपने सुना कि अटलांटिक गुटबंदियों ने रूस का मुकाबिला करने के लिए अपनी मिलिटरी की मोर्चाबंदी की योजना प्रकाशित की है। कहते हैं कि सामना किया जाएगा इटली, हालैंड और फरान्सीसी भूमि से गुजरती हुई एक कल्पित रेखा पर–फिर यदि पलायन का मौका आ गया तो तय किया गया है कि असली मोर्चा उत्तरी अफ्रीका में लिया जाएगा। इसी मैदान में वारे-न्यारे होंगे।

आप कहेंगे कि लड़ाई तो आ ही गई। जब जुझाऊ बाजे ही बजने लगे तो अब कसर ही क्या रह गई! परंतु कभी ये भी सुना है आपने कि मोर्चेबंदी की योजना पहले ही से छापकर बाँट दी जावे। जी नहीं। तो फिर आप समझें कि ये अमेरिकारूपी सेट के डालरों को ठगने का तरीका है। लैंड-लीज पर अस्त्र-शस्त्र और सेना सब्जीकरण के लिए अन्य

* प्रहरी, 24 अप्रैल, 1949

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उपकरण खरीदे जाएँगे। और सेठ सोचता है कि चलो, इसी तरह सारे राष्ट्र हमारे कर्जदार होंगे। हमारा प्रभाव फैलेगा।

और अमेरिका भी कच्ची गोलियाँ नहीं खेलता। उसने भी किताब छपाकर घोषणा कर दी है कि लड़ाई के शुरू में ही एटम बम का उपयोग किया जाएगा रूस पर। चलने दो यारो, हम तो गाँधीजी के अनुयायी हैं सो अहिंसा के शस्त्र, तटस्थता की तोप और वाणी की बंदूकों से सभी को परास्त करेंगे, करना ही चाहिए, और वैसे अपने जवाहरलाल ने कहा ही है कि पाँच बरस लड़ाई नहीं होती, सो बैठे नर्मदा तट पर भाँग घोटो।

कौन कहता है कि हम-तुम में लड़ाई होगी,
किसी दुश्मन ने खबर यूँ ही उड़ाई होगी।

भाषण का शौक*

भाषण का शौक भी बड़ा खतरनाक! अनेक सुंदर मुखों को हमने मंच पर चढ़कर काला पड़ते देखा है। और जैसे पतंगा हर बार जलकर फिर-फिर दीपक के आसपास मँडराता है वैसे ही हर बार 'भदभदाकर' गिरनेवाले किसी-किसी वक्ता को हमने फिर-फिर मंच के आसपास मँडराते देखा है। मंच की मुहब्बत बड़ी उन्मादक!

तुलसी-जयंती का उत्सव, जिसमें तीन अच्छे विद्वान वक्ता बोलनेवाले थे। और वहीं एक मंच के आशिक भी बैठे हुए थे, जिन्हें मैंने हरिजन सभा के मंच पर छुमकते देखा; नारी समाज के प्लेटफार्म पर ठुमकते देखा, किसान सभा में गमकते देखा है, बाल-समिति, युवक सभा, और बुढ़ऊ सम्मेलन सबमें भभकते देखा है।

शहर में कहीं खबर लगी कि आज फलाँ जगह भाषण आदि हैं और उनका मन नहीं माना, खिंचते चले आए और इंतजाम में मदद करने लगे—कुर्सियाँ जमाने की योजना बनाने लगे, टेबिल पर 'फ्लावरपाट' जमा दिए, यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ व्यस्त घूमने लगे। ऐसा लगा कि सारे कार्यक्रम का भार इनके ही माथे पर।

सभा आरंभ हुई तो वे धीरे-धीरे सरकते-सरकते सभापति के पास आ गए और कहने लगे कि मैं भी दो शब्द कहना चाहूँगा।

पहले विद्वान वक्ता 'इंद्रजी' ने भाषण दिया। कहा, "तुलसी के राम ने जनजीवन के हर मोड़ पर एक प्रकाश-स्तंभ स्थापित किया।"

दूसरे वक्ता बोले, "तुलसी के राम के आदर्श की डोरी ने डूबते हुए भारतीय समाज को उबार लिया।"

तीसरे वक्ता 'महेशजी' बोले, 'तुलसी ने रुग्ण हिंदू जाति को राम-रसायन की पुड़िया

* प्रहरी, 29 फरवरी, 1951

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देकर प्राण-संचार कर दिया।''

अच्छा गंभीर वातावरण था सभा का कि उत्साही वक्ता ने भी बोलने की आज्ञा प्राप्त कर ली और खड़े होकर भाइयो और बहनो की रस्म अदा करके कहने लगे–''अरे, और जैसा कि महेशजी ने कहा है तुलसी ने रुग्ण हिंदू जाति को राम-रसायन का एक ही 'डोज' देकर प्राण-संचार कर दिया और जैसा कि ब्रह्माजी ने कहा है, तुलसी के राम के आदर्श की रस्सी ने डूबते हुए भारतीय समाज को उबार लिया। और जैसा कि इंद्रजी ने कहा है, तुलसी के राम ने जन-जीवन के हर मोड़ पर एक लालटेन खड़ा कर दिया। इतना कहकर मैं अपना स्थान ग्रहण करता हूँ।''

कल्लू के जन्म का मरसिया*

पूरब में लाल सूरज निकल रहा था। कवियों को यह ललाई आह्लाद से उन्मत्त करती रही है–'आसमान से लाल शराब की बूँदें झर रही हों और जमीन एक-एक बूँद पीकर हर क्षण मस्त होकर झूम-झूम उठती हो' अथवा 'अज्ञात-यौवना उषा के हृदय में तारुण्य का प्रथम उन्मेष हुआ हो और लाज की लाली कपोलों पर फिर हो गई हो।' ··· सुनता आया हूँ, यह सब अनेक वर्षों से, अनेक तरह से, अनेक मूर्खों से। और सुना है जगत् प्रातःकाल आशा, उत्साह, उमंग, प्रफुल्लता में नयन उघारता है।

लेकिन इस प्रभात का आकाश मानो खून के आँसू बहा रहा था। आसमान की ललाई में उषा सुंदरी के कपोलों की लाज-लाली कहीं नजर नहीं आती थी। ऐसा लगता था कि आसमान रात-भर रोता रहा है, जिससे उसकी आँखें लाल हो गई हैं, और पत्तों, दूबों पर पड़े उसके अश्रुकण ओस का भ्रम कराते थे। वातावरण में एक शून्यता थी, जैसे तूफान के पहले छा जाती है। दिशाओं में एक भयोत्पादक शांति थी जो किसी अशुभ विनाश की आशंका से हृदय को एकाएक भर देती थी। जमीन पर यह कैसा प्रभात उतरा है; आज क्या होनेवाला है।

लेडी एल्गिन अस्पताल के जचकी गृह के बाहर दीवाल से कंधा टिकाए एक अधेड़ आदमी खड़ा था। मैला-फटा कुरता और मैली धोती पहने था। कुरते में चार बटनों के छेद थे जिनमें से केवल तीन बटनें थीं और तीनों का अलग-अलग रंग था। धोती टाँग के पास से फटी जिसे वह परतों में दबाकर पहने था। जब वह एक-दो कदम चलता तो छेद खुल जाता और उसकी जाँघ लाज की जगह तक उघड़ जाती। बाल उसके बिखरे हुए थे, सूखे थे। दाढ़ी न जाने कब से नहीं बनी थी। आँखें सारी रात की नींद के बोझ को न सँभाल सकने के कारण दबी-सी जाती थीं। कई लोग ऐसे होते हैं जिनमें करुणा स्वयं बैठकर रोती

* प्रहरी, 30 अक्टूबर, 1951

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, जो जाने क्यों आपके हृदय को बार-बार छेदने लगते हैं, जिन्हें देखते ही पहला विचार मन में यह उठता है कि इसके साथ बैठकर रो लिया जाय—ऐसे ही नयन थे वे।

वह दीवाल से टिककर खड़ा था और दीवाल से कान लगाए भीतर की कराह को सुन रहा था। भीतर से दीवाल चीरकर आनेवाली हर कराह पर वह स्वयं कराह उठता था। कराह की वेदना को आँखें मूँदकर वह न जाने कैसे झेल लेता था और हर धक्का उसे उस दीवाल से एक कदम दूर ढकेल देता था और फिर न जाने किस आकर्षण से खिंचकर वह फिर दीवाल में कान लगा देता था और दूसरी कराह की राह देखता था। पीड़ा से ऐसा प्रेम कभी देखा नहीं।

एक-दो बार कुत्ते उसके पास भौंककर चले गए थे। अगर कुत्ते आदमी को देखकर नहीं भौंकते तो इस आदमी में शायद उन्हें खोजने पर भी आदमियत नहीं मिलती है। एक-दो बार मैदान साफ करनेवाला मेहतर भी यहाँ से झाड़ता हुआ निकला और एक-दो झाड़ू उसे भी मारता हुआ चला गया, मानो वह कोई कचरे का ढेर हो जो व्यर्थ ही वहाँ पड़ा हो और उस अट्टालिका से मेल नहीं खाता। और, वह वैसे ही प्राणहीन-सा खड़ा था।

उसने बीड़ी जलाई। भीतर कराह बढ़ रही थी और हर कराह के साथ इसके चेहरे की वेदना का रंग गाढ़ा होता जाता था। वह तड़प उठता और बीड़ी के जोर-जोर से कश खींचने लगता।

भीतर उसकी पत्नी थी। रात को वह तड़पकर, बिछौने से गिर पड़ी थी। तभी से उसके रक्त-स्राव हो रहा था। रात को सब नर्सें और डॉक्टर 'स्पेशल वार्ड' में इकट्ठे हो गए थे जहाँ शहर के रईस बैरिस्टर अग्रवाल की पत्नी को प्रसव हो रहा था। इसी बीच इस वार्ड में उस स्त्री की बेचैनी बढ़ी, सँभालनेवाला कोई था नहीं। वह भूमि पर गिर पड़ी और जब नर्सें 'बॉय' 'बॉय' चिल्लाती हुई इनाम लेकर लौटीं तो यह स्त्री खून के डबरे में बेहोश पड़ी थी। खीझ-भरी उन नर्सों ने उसे उठाकर बिछौने पर लिटाया; डाक्टरों ने एक-दो दवाइयाँ दीं। तभी से वह कराहती रही है; रात-भर उसकी आँख नहीं लगी। बीच-बीच में जब वह पीड़ा के आधिक्य से चिल्ला उठती तो आराम कुर्सी में सोती हुई नर्स आकर उसे डाँट की एक खुराक पिला जाती, "अरी सो क्यों नहीं जाती !" हुक्म लगाने पर नींद भी अगर दौड़ी चली आती तो कैसा अच्छा होता? नर्स को बीमार स्त्री की नींद की उतनी चिंता नहीं थी जितनी अपनी नींद की। और रात-भर वह आदमी वहीं उसी दीवाल के सहारे खड़ा था। बीच-बीच में वहीं खड़े-खड़े उसकी आँखें झप जातीं और फिर भीतर की चीख से अथवा चीख के स्मरण से वह चौंक उठता।

रात को एक-दो बार उसे डॉक्टर की झलक दिखाई दी थी और तब उसने व्याकुल होकर अपनी स्त्री का हाल पूछा था। एक बार डॉक्टर ने कहा था—'शायद बच्चा मर गया है।' दूसरी बार कहा था—'बच्चा सबेरे तक हो जाएगा।' तीसरी बार कहा था—'औरत के बचने की उम्मीद कम है।'

उसके दिमाग में रह-रहकर ये तीनों वाक्य आते थे। दीवाल से टिका वह सोच रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था—'उस दिन ज्योतिषी ने पत्रा देखकर बताया था कि लड़का होगा। कैसा अच्छा हो अगर लड़का हो जाय! तीन लड़कियाँ हैं : एक बेटे की बड़ी कमी है! लड़का हुआ और अच्छा निकल गया तो घर में उजियाला कर देगा। बड़ा होगा; सब दारिद्र्य मिट जाएगा। कैसा अच्छा हो अगर ज्योतिषी की बात सच हो जाय। मैं अभी बताशे बटवाऊँगा? लेकिन बताशे? बताशे?' वह न जाने कैसे रुक गया! बताशे की मिठास में न जाने क्या कड़वाहट थी कि उसने उसके मीठे सपने को कड़वा कर दिया। वह उदास हो गया। सोचना जारी था—'बताशे? लेकिन बताशे के लिए तो पैसे चाहिए ? और पैसे तो मेरे पास एक नहीं, फिर बताशे के लिए तो कहाँ से आवेंगे।' उधारी की संभावना पर बात छोड़कर वह आगे बढ़ ही रहा था कि उसे याद आया—'लड़का होगा। घर में एक प्राणी और बढ़ जाएगा। उसको खाना चाहिए, कपड़े चाहिए, पढ़ेगा तो किताबें चाहिए, फीस चाहिए—आखिर यह सब कहाँ से आएगा? महीने-भर खून सुखाता हूँ तब तो पाँच प्राणियों के पेट में इतना अन्न पड़ पाता है कि मौत नहीं आती। यह नई मुसीबत—लड़कियों के पास एक के सिवा दूसरी साड़ी नहीं है। उन्हीं को सींकर बेचारी पहनती हैं। मुहल्ले-पड़ोस की लड़कियाँ अच्छी साड़ियाँ पहनती हैं? और ये बेचारी देखकर रोती हैं; साड़ी माँगती हैं। लेकिन मैं अभागा मन मसोस रह जाता हूँ। और अगर लड़का न हुआ लड़की हो गई तो?' वह विकल हो गया। बार-बार प्रश्न उसे छेद रहा था—'अगर लड़की हो गई तो? लड़की हो गई तो? तीन तो अभी बैठी हैं। बड़ी की शादी का कोई प्रबंध नहीं हो पा रहा है। यह चौथी? इसकी भी शादी करना पड़ेगी—कहाँ से लाऊँगा रुपया—चार लड़कियाँ, अरे बाप रे!' उसके माथे में शूल चुभने लगे। उसे लगा, जैसे चार गरम छड़ें कोई उसके शरीर में चुभा रहा हो। उसका माथा भन्नाने लगा। उसके विचार अब बहुत तीव्र हो गए—'यह ठीक नहीं! मैं मर जाऊँगा। चार लड़कियों का बोझ! लेकिन डॉक्टर कह रहा था, शायद बच्चा पेट में मर गया है! कैसा अच्छा हो अगर बच्चा मरा निकले! जीवित बच्चा मुझे नहीं चाहिए। मरा बच्चा आधा गज कपड़े में निपट जाएगा। जिंदा बच्चा जिंदगी-भर की मुसीबत। हे भगवान! यह बच्चा मरा निकले। ज्योतिषी की बात झूठी हो जाय, डॉक्टर की बात सही निकले! लेकिन—लेकिन—मैं बाप हूँ और बेटे की मौत की भीख माँग रहा हूँ! लेकिन नहीं, कुछ भी हो—मुझे बच्चा नहीं चाहिए। हे भगवान! इस बच्चे से मुझे बचाओ, हे भगवान ! बच्चे का पाप हर लो।' इसी समय भीतर से चीख आई। वह ध्यान से सुनने लगा। भीतर नर्सों और डॉक्टर का कोलाहल गूँज रहा था। सोचने लगा—शायद ये लोग बच्चा निकाल रहे हैं। लेकिन डॉक्टर कहता था कि तुम्हारी औरत की बचने की उम्मीद नहीं है। तो क्या बच्चा मर गया तो वह भी मर जाएगी। दोनों मर जाएँगे। नहीं-नहीं, उसे नहीं मरना चाहिए—ये तीन लड़कियाँ अनाथ हो जाएँगी—20 साल से बेचारी मेरे साथ दुख भोग रही है। मुसीबत झेली है लेकिन कभी शिकायत नहीं की। नहीं, उसे बचा लो भगवान ! लेकिन बच्चा अगर मर गया तो स्त्री बच नहीं सकती, ऐसा डॉक्टर कह रहा था। तो क्या बच्चे के मरने के लिए उसका मरना जरूरी है। क्या यह नहीं हो सकता कि बच्चा मर जाय और वह बच जाय! क्या यह संभव नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
है? तो मैं सह लूँगा—दोनों ही मर जाएँ! 'हे भगवान, तू दोनों को उठा ले! मुझे बच्चा नहीं चाहिए। मुझे वैसे ही मुसीबत काफी है। मेरे माथे से इन दो का बोझ कम कर भगवान!'

उसकी चेतना विलुप्त-सी होने लगी! वह अपनी ही निगाहों में गिर गया। उसकी आत्मा बार-बार उसे फटकारती थी, 'रे नीच! तू बच्चे और पत्नी की कैसी कामना करता है!' पर उसने तुरंत इस आवाज को दबाया—'कोई हर्ज नहीं। मुझे मंजूर है—लड़का मर जाय, औरत भी मर जाय! और तीनों लड़कियाँ भी मर जाएँ। कितना अच्छा हो, अगर एकाएक हैजे से मर जाएँ या घर गिर पड़े और चारों दब जाएँ! या शाम को तालाब में डूब जाएँ! मैं एकदम हल्का हो जाऊँ।'

वह पागल-सा हो गया। उसकी आत्मा उसे धिक्कारने लगी पिता के राक्षस बन जाने पर! पर वह पछता नहीं रहा था अपने क्रूर विचारों पर!

इसी समय दरवाजा खुला! एक नर्स बाहर आई। वह दौड़ा गया और पूछने लगा—'डॉक्टर साहब?' नर्स ने बेमन से कहा—'लड़का हुआ'···और आगे चल दी।

वह बड़ी उलझन में पड़ गया। क्या यहाँ सब लड़के एक-सरीखे नहीं होते? रात को एक लड़के का पैदा होना उसने देखा था, जब यही नर्स किलकारी मारकर 'बॉय-बॉय' चिल्लाती निकली थी जैसे उसी के लड़का हो गया हो! लेकिन इस समय उसने ऐसा कुछ नहीं किया! न किलकारी मारी; न कूदी। उदास मुख से 'लड़का' कहकर चली गई! क्या हो गया? क्या यह दूसरे किस्म का लड़का है; वह दूसरे किस्म का? क्या यहाँ दो तरह के लड़के होते हैं! हाय रे अभागे! एक वह रात को हुआ था जिसने नर्सों को जन्मते ही खुशी से नचा दिया था, एक यह हुआ जिसने जन्मते ही नर्सों को उदास कर दिया। क्या दुनिया में आदमी जन्मते ही दो श्रेणियों में बँट जाता है? क्या एक की मौत भी उतनी दुखदाई नहीं होती, जितनी दूसरे का जन्म?

इसी समय नर्स ने आकर कहा—'तुम्हारी औरत मर गई। उसे जल्दी उठाकर ले जाओ !' बेटे का बाप माथा पकड़कर बैठ गया। नर्स ने फिर फटकार लगाई—'बैठना क्या है, जल्दी औरत को उठाकर ले जा यहाँ से!'

आसमान से पानी की कुछ बूँदें टपकीं। उस गरीब की मौत पर आँसू बहानेवाला जमीन पर एक था, सो उसके आँसू सूख गए थे। आसमान से नहीं रहा गया, आँसू निकल पड़े।

लड़के ने पहला शब्द किया जिसमें नवीन जीवन की प्राप्ति की हिलोर नहीं थी; मौत की पहली हिचकी थी, जो आँख खोलते ही प्रारंभ हो गई। जिस स्तन से जीवन की पहली धार वह चूसनेवाला था, वही खून सूख गया। अभागे ने आँखें खोलते ही अपनी माता को निगल लिया। उसके भाल पर दुर्भाग्य की रेखा ऐसी साफ उछली थी।

लड़के की माँ की लाश उठाई गई और जला दी गई। लड़का वहाँ रखा गया जहाँ बिना माँ के अनाथ बच्चे रखे जाते हैं और वहाँ पलता रहा। इसीलिए पाला गया कि वह जो उस समय सहज मौत मर रहा था, रोज जीकर मरने और मरकर जीने को बच जाय। एक किलकारी के बाद ही जिसके प्राण निकल सकते थे उसे इसलिए बचाया जा रहा था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि रोज वह मरे और रोज अपनी मौत आप ही मरे। उसको जीवन दिया जाने लगा, जिसका व्यर्थ जीवन इस मायने में कि वह मृत्यु को रोज टालते जाने का प्रयास मात्र।

और यही है वह मरसिया उस लड़के के जन्म का, जो आगे चलकर कल्लू कहलाया और दस साल की अवस्था से एक कारखाने में लोहा काटने का काम कर रहा है। और यही मरसिया सहज ही उस लड़के के जन्म का मंगलगीत है जो पिछली रात को हुआ था और अब उस कारखाने का मालिक है।

पूँजीवादी अमेरिका की नैतिक पूँजी का दिवाला*

प्रसिद्ध विचारक तथा लेखक रसेल महाशय का कहना है कि जब कोई देश सभ्यता के शिखर पर पहुँच जाता है तब उस देश की स्त्रियों में काम-लिप्सा की वृद्धि होती है और उसके साथ ही राष्ट्र का अधःपतन प्रारंभ हो जाता है। रसेल का कहना है कि इस समय अमेरिकन स्त्रियों में यह काम-लोलुपता अधिक दृष्टिगोचर होती है और 35 से 40 वर्ष की अवस्था की अमेरिकन स्त्री वेश्या का जीवन ग्रहण करना चाहती है, जिससे उसकी कामपिपासा शांत हो। रसेल साहब के विचारों से रूढ़िवादी अमेरिकनों के विचार मेल नहीं खाते और अमेरिका तथा यूरोप में उनके आलोचकों की कमी नहीं है। उनके विचारों ने पश्चिम में एक क्रांति-सी उत्पन्न कर दी है और जीवन की अनेक बातों की ओर एक नवीन दृष्टिकोण से देखना सिखाया है। यद्यपि स्त्री-पुरुष के संबंध के विषय में उनके अपने स्वतंत्र विचार हैं और एक अमेरिकन संभवतः उन पर कृत्रिम रोष भी प्रकट करे परंतु अभी तक रसेल साहब ने अमेरिकन समाज की नैतिक स्थिति के विषय में जो कुछ कहा है, अक्सर सत्य ही पाया गया है। अमेरिकन स्त्रियों के नैतिक पतन की जो बात रसेल साहब ने कही है वह निर्मूल नहीं दिखती, क्योंकि अमेरिका की नैतिक स्थिति के विषय में हमें अन्य साधनों से भी कुछ इसी प्रकार की बातें मिलती हैं।

अभी कुछ महीनों पहले समाचार पत्रों में एक आश्चर्यजनक समाचार छपा था कि 'हालीवुड' का एक अभिनेता इतना सुंदर है कि उसे परदे पर देखकर अमेरिकन लड़कियाँ मूर्छित हो जाती हैं; तो लड़कियाँ उसे आसपास से घेर लेती हैं और इस बात की चेष्टा करती हैं कि उनका कोई अंग उससे छू जावे। और यदि किसी लड़की का कोई अंग उससे स्पर्श कर जाता है तो वह वहाँ पर एक कागज का टुकड़ा पिन से अटका लेती है जिस पर लिखा होता है—"Frankle touched me here." (फ्रंकी ने मुझे इस स्थान पर स्पर्श किया)। इस प्रकार का 'सम्मान-पत्र' चिपकाये हुए वह लड़की अपने समाज में घूमती है और सबकी ईर्ष्या तथा आदर की पात्र बन जाती है। वास्तव में 'हालीवुड' तो अमेरिकन युवक-युवतियों

* प्रहरी, 21 मार्च, 1954

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का तीर्थस्थान-सा बन गया है। वहाँ से निकलनेवाले चुंबन, आलिंगन और कुत्सित प्रेम-लीला से भरे चित्र वासना को उभाड़ते रहते हैं। भारतवर्ष में भी इन गंदी पाश्चात्य फिल्मों के प्रदर्शन के विरुद्ध आवाज उठ रही है। यहाँ पर यह कह देना असंगत न होगा कि हमारे कुछ भारतीय फिल्म निर्माता इन्हीं अमेरिकन निर्माताओं के पास अनैतिकता का पाठ पढ़कर उन्हीं के कदमों पर चलने लगे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि ये इस प्रकार बिना लगाम के न छोड़े जावें। इन पर प्रतिबंध हो और खूब कड़ा प्रतिबंध हो, ताकि ये लोग जनता के सामने कला के नाम पर 'कूड़ा-करकट' न रखें।

समय-समय पर अमेरिकन डॉक्टरों तथा धर्माचार्यों के वक्तव्य निकलते हैं जिनमें इस बात का उल्लेख होता है कि विवाह के समय अधिकांश अमेरिकन 'कुमारियाँ' गर्भवती होती हैं। बेचारे समाज-सुधारक इस नैतिक ह्रास के लिए चिंता प्रकट करते हैं और कुछ लोग अब कहने लगे हैं कि गंदी फिल्म और अधिक अवस्था में विवाह इस पतन के मुख्य कारण हैं। इसी प्रकार के विचार हिटलर ने भी अपनी 'मीन केम्फ' में प्रगट किए हैं और इस बात की सिफारिश की है कि आर्थिक व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि प्रत्येक जर्मन युवक जल्दी विवाह कर ले। नाटक और सिनेमा के विरुद्ध भी उसने बड़े उग्र विचार व्यक्त किए हैं।

यह तो मैंने ऊपर स्त्रियों की बात की। पुरुषों का यह हाल है कि अभी एक अमेरिकन जाँच कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित हुई है जिसमें बताया गया है कि संसार के विभिन्न कोनों में ऐसे लाखों बच्चे हैं जो अमेरिकन पिता की संतान हैं। ये अमेरिकन पिता वे सिपाही हैं जो संसार के अन्य देशों में 'प्रजातंत्र' और 'स्वतंत्रता' की रक्षा के लिए गए थे और वहाँ गैर-कानूनी बच्चे उत्पन्न करने का कार्य कर रहे थे। क्या अमेरिकन सैनिक अधिकारियों ने इन सिपाहियों पर कोई रोकथाम लगाने की आवश्यकता ही नहीं समझी या अन्य देशों की नैतिकता का भी अमेरिकन 'डालर' से ही मूल्यांकन किया ?

अमेरिका में एक और अति घृणित प्रथा कुछ वर्षों से चल रही है और यह है "Test-tube babies", अर्थात् कृत्रिम साधनों से संतान उत्पन्न करने की। यह क्रिया यूरोप के कुछ देशों में भी फैल गई है, विशेषकर अंग्रेजों ने अपने समुद्र पार के चचेरे भाइयों से इसे सीख लिया है। संतान की इच्छा रखनेवाली स्त्री को किसी पर-पुरुष के पहले से ही एकत्रित किए हुए वीर्य से गर्भ धारण कराया जाता है। इस प्रकार की क्रिया को 'वैज्ञानिक व्यभिचार' ही कह सकते हैं। इस प्रकार से उत्पन्न संतान कई कानूनी गुत्थियाँ उपस्थित तो कर ही रही हैं, नैतिक दृष्टि से यह अत्यंत घृणित क्रिया है और अमेरिकन पुरुषत्व के लिए बड़ी अपमानजनक है। इस प्रकार उत्पन्न बच्चा जब बड़ा होने पर अपने जन्म की कथा सुनेगा तब उसके विकास पर कितना बुरा असर पड़ेगा। और फिर यह भी संभव है कि एक ही पुरुष के वीर्य से उत्पन्न दो भिन्न-भिन्न स्त्रियों की संतानों में अनजाने ही विवाह भी हो जावे। यह विवाह 'भाई-बहन' का विवाह ही हुआ और मानवता के लिए इससे बढ़कर लज्जा की बात नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य के अमृत-घट में राजनीति का घासलेट !*

मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन की बात इस बार करनी है। 'गिरा अर्थ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।' तुलसी की प्रसिद्ध उक्ति है जिसमें 'शब्द' और 'अर्थ' की अभिन्नता का रूपक साधा है महाकवि ने।

और हमारे इस जमाने में महासेठ ने साधा है 'गिरा' और 'अर्थ' के परस्पर विपरीत होने का रूपक—'हिंदी साहित्य सम्मेलन।'

बात समझाऊँगा। 'मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन' जिसका नाम है उसमें 'हिंदी' इतनी है कि वह हिंदी के नाम पर चलता है और 'साहित्य?' जहाँ साहित्य की बिलकुल बात न हो, जो असाहित्यिक है—(व्यक्ति और बात), उसी का सम्मेलन! बहुब्रीहि समास का विग्रह कर यों कह सकते हैं—

'जहाँ से हिंदी साहित्य निष्कासित कर दिया गया हो—सो हिंदी साहित्य सम्मेलन !'

गोंदिया जाकर जब हमने अकोला की दूकान की 'गोंदिया ब्रांच' का उद्‌घाटन देखा तो तय किया कि 'न गंगदत्तों पुनरेति कूपं!'

'ह्याँ की बातें तो यहिं छोड़ों, अब आगे का सुनो हवाल।'

दुर्ग सम्मेलन में 'सरकारी' स्वयंभू साहित्यिकों ने प्रस्ताव रखा कि साहित्य सम्मेलन एक अभिनंदन ग्रंथ भेंट करे। किसे?

बख्शीजी को?

नहीं, उन्हें नहीं। उन्होंने तो जीवन-भर साहित्य के लिए ही घोर तप किया है। फकीरी स्वीकारी है।

पंडित माखनलालजी को?

नहीं, उन्हें भी नहीं! उन्होंने तो इस प्रदेश के जीवित साहित्यकारों में सबसे अधिक वर्ष साहित्य-सृजन को दिए हैं।

इन दोनों तथा अन्य अनेक साहित्य-साधकों को साहित्य सम्मेलन अभिनंदन ग्रंथ भेंट नहीं करेगा। वे तो निरे साहित्यकार हैं बेचारे!

फिर किसे?

प्रांत के मुख्यमंत्री पंडित रविशंकर शुक्ल को उनकी सेवाओं के लिए।

हमने मान लिया, पंडितजी ने हिंदी के चरणों में माथा झुकाया है—सेवा की है। वे वयोवृद्ध हैं। उनका असम्मान हमें भी स्वीकार नहीं। पर साहित्य सम्मेलन 'साहित्य'-सेवा के लिए अभिनंदन करना चाहे तो किसका करेगा? शुक्लजी का? या चतुर्वेदीजी व बख्शीजी का? इस प्रश्न का उत्तर स्वयं शुक्लजी से किसी ईमानदारी के निर्मल क्षण में पूछ लीजिए—उत्तर उनके अपने पक्ष में बिलकुल न होगा।

शुक्लजी का प्रधानतः राजनैतिक जीवन है। राजनीति में सेवाएँ हैं। जो उनकी

---

* प्रहरी, 19 दिसम्बर, 1954

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सेवा'-'सेवा' की पुकार लगाते हैं और इस कारण उनके सिर पर साहित्य का मुकुट धरना चाहते हैं, वे इस बात को समझें कि राज्य की राजगद्दी पर इतने वर्षों तक बिठा देना उनकी समस्त सेवाओं का अधिक पुरस्कार है! बस! इससे अधिक नहीं।

कोई भी मुख्यमंत्री डॉक्टर रघुवीर को सरकारी पैसे से शब्दावली निर्माण के लिए बिठा सकता है।

कोई भी मुख्यमंत्री हुक्म दे सकता है कि फलाँ तारीख से शासन का काम हिंदी में हो।

यह राजभाषा का सवाल है। कोई भी सरकार इसे करेगी। यह उसका कर्तव्य है। उसके लिए अभिनंदन ग्रंथ नहीं अर्पित किया जाता। मुख्यमंत्री पद इस सबका यथेष्ट से अधिक पुरस्कार है।

शुक्लजी के प्रति हमारे मन में फिर भी कोई असम्मान नहीं। हमें अच्छा लगता अगर वे कह देते कि नहीं, अभिनंदन करो उनमें से किसी का जिन्होंने अपनी रक्त की हर बूँद से साहित्य का सृजन किया है। पर पंडितजी बहुत 'भोले' हैं। होंगे साहब!

तो दुर्ग की बात सुनिए। 'शुक्ल अभिनंदन ग्रंथ' का प्रस्ताव आया। किसी ने 'माखनलाल अभिनंदन ग्रंथ' का प्रस्ताव रख दिया। इस तरह जन्म-भर साहित्य-सेवी की और जन्म-भर राजनीतिसेवी की टक्कर करा दी—साहित्य सम्मेलन में ही! बात टाली गई और निर्णय किया गया कि कार्यकारिणी इसका निर्णय करेगी।

इस बीच में अभिनंदन के उत्साहियों ने तिकड़म जमाना आरंभ किया। उत्साहियों के उत्साह की भी व्याख्या करनी पड़ेगी और इस उत्साह-नद के उद्गम को खोजना पड़ेगा।

बात सीधी है। 'पंडित नेहरू के बाद कौन?' के 'माडल' पर मध्यप्रदेश में 'पं. शुक्ल के बाद कौन?' चल पड़ा है; खासकर उनकी दिल्ली में बीमारी के बाद (वे चिरायु हों!) और साहित्य-सम्मेलन के सभापति अपने को शुक्लजी का निकटस्थ, कृपापात्र, विश्वासपात्र, उत्तराधिकारी बनाने में संलग्न हैं। इस अभिनंदन ग्रंथ की सीढ़ी पर चढ़कर शुक्लजी की कृपा के शिखर पर चढ़ना चाहते हैं। उन्हें मुख्यमंत्री बनना है भाइयो! यह तो हुआ उद्गम इस 'अभिनंदन-उत्साह-नद' का।

अब इसमें नाले भी आकर मिल गए हैं—

अखबार में सरकारी विज्ञापनों के स्वार्थ का नाला!

ऊँची सरकारी नौकरी का नाला!

पुरस्कार का नाला!

ठेके का नाला!

इन्कमटैक्स-बचत का नाला!

भ्रष्टाचार-दोष-मुक्ति का नाला!

आदि। और यह नद बड़े वेग से बदबदाता हुआ आगे बढ़ रहा है।

कार्यकारिणी की बैठक तक 'उत्साहियों' ने माखनलाल अभिनंदन वाले प्रस्ताव को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वापस करा लेने का प्रबंध कर लिया था। बैठक में वह वापस हो गया। और शुक्लजी वाला मंजूर हो गया। पर इसके बाद माखनलालजी वाले प्रस्ताव के जनक प्रस्ताव-वापसी का स्पष्टीकरण करने खड़े हुए कि उनके नाम से धन नहीं मिल सकता, इसलिए साहित्यकारों का अभिनंदन करना कठिन है।

अतएव मुख्यमंत्री का ही अभिनंदन करना चाहिए, क्योंकि उनके नाम से धन मिल सकता है।

धन्य है!

पर वे यह भी बोले कि माखनलालजी के लिए तो मैं ही 10 हजार रुपए इकट्ठे करा सकता हूँ।

तो सभापतिजी बोले—'मैं 15 हजार देता हूँ, मेरा ही अभिनंदन करा दो!' धन्य है कुबेर!

याने साहित्यकारों के नीलाम के लिए बोलियाँ लगने लगीं। सेठ सभापति की बोली सबसे ऊँची होने ही वाली है। माखनलालजी हार गए।

पर छीछालेदार हो गई। साहित्य के अमृत-घट में राजनीति का घासलेट बेचनेवालों ने गत कर दी! उनके नादान दोस्तों ने भी!

और अब संपादन-समिति बन गई है भाइयो!

महाजनी सभ्यता के इस युग में अब अभिनंदन कराना बहुत सहज हो गया है। आप 10-15 हजार रुपए लेकर सम्मेलन के पास जाइए, वह आपका अभिनंदन कर देगा। मंत्री हो गए तब तो यह कीमत दूसरे ही पटा देंगे। अगर आप साहित्यकार हैं तो आपका अभिनंदन नहीं होगा, क्योंकि आपके पास पैसा है न आपको कोई पैसा देगा!

गोंदिया सम्मेलन में अपनी 35 वर्षों की तपस्या की दुहाई देकर 'सेठ-मंत्री' को सभापति बनाने के लिए झोली में 'वोटों' की भीख बटोरनेवाले श्रद्धेय पं. माखनलाल चतुर्वेदी को यह लेख सग्लानि, सरोष, सादर समर्पित है।

और हिंदी के साहित्यकारो!

'मोर भवन' की ईंटों को चाटो और साहित्य-सृजेताओं का अनादर होते देखो!

इस प्रकार 'सियावर रामचंद्र की जय' हो गई।

बुखार आ गया*

भैरव समाचार लाए हैं कि अमेरिका के राष्ट्रपति आइसनहावर को बुखार आ गया है और विदेशमंत्री फास्टर डलेस को जुकाम हो गया है।

*प्रहरी, 4 दिसम्बर, 1955

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाशिंगटन से प्रकाशित एक अविश्वस्त विज्ञप्ति में कहा गया है कि सरकारी डॉक्टर Mr. Twentieth Century fox ने कल दोनों राजपुरुषों की डॉक्टरी जाँच की। तत्पश्चात् पत्रकारों के साथ हुई एक मुलाकात में कहा–

मैंने प्रेसीडेंट आइस की ध्यान से जाँच की। वे हाल ही के हुए हृदय रोग के दौरे से कमजोर हैं ही, इसलिए वातावरण में तनिक परिवर्तन से ही उन्हें बुखार आ जाता है। इस समय भारत से जो वायु बह रही है उसमें अमेरिकन ज्वर के कीटाणु हैं। बुल्गानिन, ख्रुश्चेव और नेहरू के शांति और मित्रता के उद्‌गारों के वातावरण में मिलने से एक विशेष प्रकार की गैस बनती है, जिसके शरीर में प्रवेश करते ही हर अमेरिकन को बुखार आ जाता है। इस समय प्रेसीडेंट के सिवा अमेरिका के लगभग सब उद्योगपति ज्वर से पीड़ित हैं। शांति और मित्रता इन लोगों की तासीर के प्रतिकूल पड़ती है।

फास्टर डलेस के जुकाम के कारणों पर प्रकाश डालते हुए डॉक्टर फाक्स ने कहा है कि डलेस साहब का स्वास्थ्य तब से बड़ा खराब हो गया है जब से जिनीवा में चाऊ-एन-लाई की लताड़ के कारण वे भाग खड़े हुए थे। तभी से उन्हें बुरे-बुरे सपने आने लगे हैं जिनमें चाऊ-एन-लाई दिखते हैं और डलेस साहब एकदम चीखकर उठ बैठते हैं। अभी जो जुकाम हो गया है, उसका कारण यह है कि भारत से जो शांति के कबूतर उड़ाए गए हैं उनके पंख फड़फड़ाने से तमाम वायु में जुकाम के कीटाणु पैदा हो गए हैं। यही वायु फास्टर साहब की नाक में प्रवेश कर गई है, जिससे जुकाम हो गया है।

बीमारी के उपचार के संबंध में डॉक्टर फाक्स ने यह नुस्खा बतलाया है–

(1) रात को सोते समय दोनों के तकियों के नीचे एक-एक एटम बम रख दिया जाय, जिसकी गर्मी से रोगियों को लाभ पहुँचेगा।

(2) इस बात की सावधानी रखी जाय कि उनकी दृष्टि में कोई कबूतर नहीं आ जाय, नहीं तो मानसिक प्रतिक्रिया के द्वारा बीमारी के बढ़ने की संभावना है।

(3) रूस ने जो हाल ही में बम-विस्फोट किया है, उसकी खबर उन्हें न दी जाय, वरना बीमारी एकदम बढ़ जाएगी।

(4) उन्हें किसी प्रकार यह विश्वास दिलाने की कोशिश की जाय कि बुल्गानिन और ख्रुश्चेव को पंडित नेहरू ने वापस भगा दिया।

(5) रोज शाम को रोगियों को पंडित नेहरू की अमेरिका यात्रा की फिल्म दिखाई जाय।

(6) उनसे बातचीत करनेवाला कोई भी आदमी अपने मुख से 'शांति' शब्द का उच्चारण न करे और केवल 'युद्ध-युद्ध' शब्द उच्चारित करनेवाले रिकार्ड बनवाकर उनके सामने बजाए जावें।

भैरव से यह हाल जानकर हमें बड़ी चिंता हुई।

हमने भी अपना कर्तव्य पूरा किया। एक विशेष भैरव के हाथ यह नुस्खा भेजा–

'दोनों रोगियों को काँच के घर में निवास कराया जाय। उनके पास पत्थरों का ढेर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रख दिया जाय और कहा जाय कि सामने के मकान पर पत्थर फेंको। जब पत्थर फेंक चुकें तब कबूतर की विष्टा की धूनी देकर दोनों को सुला दिया जाय। सात दिन यह क्रिया करने से आराम हो जाएगा।'

स्वागत की विडंबना*

बैतूल का समाचार है। उपमंत्री गुमास्ता साहब पंचायतों के पंचों के सामने भाषण करने गए।

सब इंतजाम हो गया। सैकड़ों पंच आनेवाले थे। लेकिन जब गुमास्ता साहब पहुँचे तो कुल 5-6 पंच उपस्थित थे। पंच लोग उपमंत्री का भाषण सुनने आखिर नहीं आए।

लेकिन अधिकारी लोग बड़े चतुर निकले। उन्होंने झट स्कूल बंद करवाए और शिक्षकों को ले जाकर बिठा दिया। सब जगहें भर गईं। शिक्षक लोग पंचायत के पंचों के स्थानों पर बैठे और फिर प्रस्ताव-पर-प्रस्ताव पास होने लगे।

सब प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुए। जहाँ पंच ही नहीं थे वहाँ पंचायत संबंधी प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हो गए।

और हमें एक अखबार में यह पढ़कर बड़ा मजा आया कि एक अफसर की इसलिए तारीफ हुई कि उन्होंने बड़ी चतुराई से काम लिया और पंचों की जगह शिक्षकों को बिठाकर स्थिति को सँभाल लिया। याने शुद्ध घी के नाम से डालडा बेच देनेवाले सेट की जो तारीफ होती है वही तारीफ पंचों की जगह शिक्षकों को बिठा देने से अफसर की हुई।

अफसरों को इसका अभ्यास हो गया है। उन नेताओं के स्वागत में जिन्हें कोई सुनना नहीं चाहता, अफसर लोग लड़कों और शिक्षकों को इकट्ठा कर देते हैं। वे जानते हैं कि समाज शिक्षा केंद्र में स्वागत के दिन हाजिरी शून्य से किस प्रकार सौ तक चढ़ाई जाती है।

आजकल भाषण सुनने को कोई खाली नहीं है और भाषण-युग की पैदाइश इन नेताओं का मन बिना भाषण दिए मानता नहीं है। यहाँ जबलपुर की तिलकभूमि तलैया में बेचारे दिन-भर घोषणा करके सभा बुलाते हैं तो 25 आदमी पहुँचते हैं। इसलिए उस दिन तरण-तारण जयंती में हजारों की संख्या में नर-नारियों को देखकर नेताओं का मन हरा हो गया। कुछ ऐसा लगा जैसे भूखे आदमी के सामने छप्पन प्रकार के भोजन रखे हों। बस उस दिन कई नेताओं ने अपने मन की हविश निकाल ली। उस दिन उन्हें खुशी के मारे नींद नहीं आई होगी।

इन नेताओं से अधिक भीड़ तो वह चौराहे पर खड़ा होनेवाला साँप और बिच्छू दिखाकर दवाई बेचनेवाला जोड़ लेता है।

---

* प्रहरी, 25 दिसम्बर, 1955

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिलकभूमि में तो जिस दिन लाउडस्पीकर लगते दिखते हैं वहाँ रोज बैठनेवाले भी अन्यत्र भाग जाते हैं। एक दिन एक पार्टी के लोग शाम के 6 बजे से 7.30 बजे तक लाउडस्पीकर लगाए बैठे रहे। श्रोता नदारद। एक नेता हमारे पास आकर कहने लगे—'इस जनता को क्या हो गया है। लोग आते ही नहीं हैं।'

हमारे पास बैठे एक आदमी ने कहा—'आप लोग ये लाउडस्पीकर-चोंगे निकाल दो। इन्हें देखकर ही लोग नहीं आते। जब कुछ आदमी सहज ही यहाँ आकर बैठें तो एकदम भाषण शुरू कर दो। धोखे से पकड़ो जनता को!'

कुल्हाड़ी के बेंट*

स्वामी कृष्णानंद (सोख्ता नहीं 'धब्बा') याने भूतपूर्व छोटेलाल मास्टर, वर्तमान एम. एल.ए.।

और खूबचंद सोंधिया याने भूतपूर्व सोंधिया मास्टर और वर्तमान संसद-सदस्य।

दोनों ने कुल्हाड़ी के बेंट का काम किया, अपने ही वंश पर कुठार चलाया।

सागर के शिक्षक-दिवस की बात है कि शिक्षकों की एक सभा में भाषण में दोनों ने कुछ इस प्रकार के उद्‌गार व्यक्त किए—

'शिक्षकों का वेतन क्यों बढ़ाया जाय? वे क्या करते हैं? दिन-भर ऊँघते रहते हैं।'

दोनों ही पहले शिक्षक थे। दोनों ही ऊँघते रहे और ऊँघते-ऊँघते एक संसद के सदस्य हो गए और दूसरे हो गए विधानसभा के सदस्य! कांग्रेस में ऊँघनेवालों को ही पद मिल जाता है, क्योंकि अगर जाग्रत हुआ तो गड़बड़ करेगा, एकदम हाथ ऊँचा नहीं करेगा। इसीलिए दोनों ऊँघने की जय बोलते हैं—और संसद तथा विधानसभा में ऊँघते रहते हैं।

कुल्हाड़ी बनवाकर लकड़हारा जब वन में वृक्ष काटने पहुँचा तो उसके सामने अजब उलझन आई कि इस कुल्हाड़ी से वृक्ष कटेंगे कैसे? उसी समय बाँस ने कहा, 'मुझे कुल्हाड़ी में फिट करो और प्रहार करो।'

बाँस का बेंट कुल्हाड़ी में लगाकर लकड़हारे ने वृक्षों पर प्रहार किया और थोड़ी देर में बाँस ने अपना सारा वंश कटवा दिया।

शासन के लकड़हारे ने जब शिक्षक को शोषण की कुल्हाड़ी से काटने का काम आरंभ किया तो कृष्णानंद और सोंधिया झट बेंट बनकर लग गए।

राजनीति के छल-कपट, झूठे सदस्य बनाने के प्रपंच, पाखंड, क्षुद्रता और शोषण में लिप्त कांग्रेसी पदधारी क्या समझें कि शिक्षक का वेतन क्यों बढ़ाना चाहिए! और वे क्यों चाहें कि शिक्षक खुशहाल हो? शिक्षक खुशहाल होगा तो पढ़ाई अच्छी होगी, पढ़ाई अच्छी होगी

* प्रहरी, 22 जनवरी, 1956

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो देश की जनता समझदार होगी, और अगर जनता समझदार हो गई तो बैल छाप में कौन वोट डालेगा? और बैल छाप में वोट नहीं पड़ेंगे तो स्वामी और सोंधिया जैसे गोस्वामी मेम्बर कैसे होंगे ।

इसलिए अज्ञान तेरी जय! पाखंड तेरी जय! कुल-नाश-धर्म तेरी जय!

गप्पियों का देश*

पाकिस्तान में हर साल एक गप्प-सम्मेलन होता है जिसमें सबसे बड़ा झूठ बोलनेवाले को इनाम मिलता है। गत वर्ष इनाम पानेवाली गप्प यह थी—

'उत्तर के बर्फानी इलाके में एक कुत्ता खरगोशों का पीछा कर रहा था। इतने में बर्फ गिरने लगा और खरगोश तथा कुत्ता वहीं बर्फ में दब गए। 6 माह बाद गर्मी का मौसम आया और बर्फ पिघला तो लोगों ने देखा कि खरगोश भागे जा रहे हैं और कुत्ता उनका पीछा कर रहा है।'

यह गप्प-सम्मेलन कोई मजाक नहीं है। यह एक प्रकार का पब्लिक सर्विस कमीशन है। जो आदमी सबसे बड़ी गप्प हाँक सकता है उसे सरकार विदेश मंत्रालय का सलाहकार बना लेती है और उसे यह काम दिया जाता है कि विदेशी मामलों में वह अच्छा-से-अच्छा झूठ ईजाद करे। इस झूठ को पाकिस्तान के प्रधानमंत्री और विदेशमंत्री अपने भाषणों में जोड़ लेते हैं। काश्मीर के संबंध में इसलिए पाकिस्तान इतनी जल्दी ऐसे अच्छे-अच्छे झूठ कहता जाता है।

सबसे ताजा झूठ यह है कि पंजाब की पाँचों नदियाँ काश्मीर से निकलती हैं। इस झूठ ने भूगोल को भी झूठा कर दिया। यह बात पाकिस्तान के प्रधानमंत्री ने कही है। भूगोल कहती है कि केवल झेलम काश्मीर से निकलती है, शेष या तो बाहर हिमालय से या तिब्बत से। मगर पाकिस्तान के गप्पी सलाहकार ने प्रधानमंत्री को यही सलाह दी होगी कि सब नदियों को भी काश्मीर से जोड़ दो, भूगोलशास्त्र की परवाह मत करो।

अपनी सरकार को भी कुछ गप्पियों को सलाहकार बनाना चाहिए। वैसे देशी मामलों में तो सरकार का हर मंत्री, अफसर झूठ बोल लेता है। विकास-योजना की रिपोर्टें झूठों से भरी रहती हैं, आँकड़े अधिकांश झूठ होते हैं।

* प्रहरी, 15 अगस्त, 1957

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्तिबोध

राजनाँदगाँव में तालाब के किनारे पुराने महल का दरवाजा है—नीचे बड़े फाटक के आसपास कमरे हैं, दूसरी मंजिल पर एक बड़ा हॉल और कमरे, तीसरी मंजिल पर कमरे और खुली छत। तीन तरफ से तालाब घेरता है। पुराने दरवाजे और खिड़कियाँ, टूटे हुए झरोखे, कहीं खिसकती हुई ईंटें, उखड़े हुए पलस्तर की दीवारें। तालाब और उसके आगे विशाल मैदान। शाम को जब ज्ञानरंजन और मैं तालाब की तरफ गए और वहाँ से धुँधलके में उस महल को देखा, तो एक भयावह रहस्य में लिपटा वह नजर आया।

दूसरी मंजिल के हॉल के एक कोने में विकलांग मुक्तिबोध खाट पर लेटे थे। लगा, जैसे इस आदमी का व्यक्तित्व किसी मजबूत किले-सा है। कई लड़ाइयों के निशान उस पर हैं। गोलों के निशान हैं, पलस्तर उखड़ गया है, रंग समय ने धो दिया है—मगर जिसकी मजबूत दीवारें गहरी नींव में जमी हैं और वह सिर ताने गरिमा के साथ खड़ा है।

मैंने मजाक की, ''इसमें तो ब्रह्मराक्षस ही रह सकता है।''

मुक्तिबोध की एक कविता है, 'ब्रह्मराक्षस'। एक कहानी भी है जिसमें शापग्रस्त ब्रह्मराक्षस महल के खँडहर में रहता है।

मुक्तिबोध हँसे। बोले, ''कुछ भी कहो पार्टनर, अपने को यह जगह पसंद है।''

मुक्तिबोध में मैत्री-भाव बहुत था। बहुत-सी बातें वे मित्र को संबोधित करते हुए कहते थे। कविता, निबंध, डायरी सबमें यह 'मित्र' प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से रहता है। एक खास अदा थी उनकी। वे मित्र को 'पार्टनर' कहते थे। कुछ इस तरह बातें करते थे—'कुछ भी कहो पार्टनर, तुम्हारा यह विनोद है ताकतवर···आपको चाहे बुरा लगे पार्टनर, पर अमुक आदमी अपने को तो बिलकुल नहीं पटता।' ज्यादा प्यार में आते तो कहते—'आप देखना मालक, ये सब भागते नजर आएँगे।'

मुक्तिबोध जैसे सपने में डूबते-से बोले, ''जहाँ आप बैठे हैं वहाँ किसी समय राजा की महफिल जमती थी। खूब रोशनी होती होगी, नाच-गाने होते होंगे। तब यहाँ ऐश्वर्य की चकाचौंध थी। कुछ भी कहो, पार्टनर, 'फ्युडलिज्म' (सामंतवाद) में एक शान तो थी···बरसात में आइए यहाँ। इस कमरे में रात को सोइए। तालाब खूब जोर पर होता है, साँय-साँय हवा चलती है और पानी रात-भर दीवारों से टकराकर छप-छप करता है···कभी-कभी तो ऐसा लगता है, जैसे कोई नर्तकी नाच रही हो, घुँघरुओं की आवाज सुनाई पड़ती है। पिछले साल शमशेर आए थे। हम लोग 2-3 बजे सुबह तक सुनते रहे···और पार्टनर बहुत खूबसूरत उल्लू···मैं क्या बताऊँ आपसे, वैसा खूबसूरत उल्लू मैंने कभी देखा ही नहीं···कभी चमगादड़ें घुस आती हैं''···बड़े उत्साह से वे उस वातावरण की बातें करते रहे। अपनी बीमारी का ज़रा अहसास नहीं।

दोपहर में हम लोग पहुँचे थे। हमें देखा, तो मुक्तिबोध सदा की तरह—'अरे वाह, अरे वाह', कहते हुए हँसते रहे। मगर दूसरे ही क्षण उनकी आँखों में आँसू छलक पड़े। डेढ़-एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महीने पहले वे जबलपुर आए थे। एक्जिमा से परेशान थे। बहुत कमजोर। बोलते-बोलते दम फूल आता था। तब मुझे वे बहुत शंकाग्रस्त लगे थे। डरे हुए-से। तब भी उनकी आँखों में आँसू छलछला आए थे, जब उन्होंने कहा था—'पार्टनर, अब बहुत टूट गए हम। ज्यादा गाड़ी खिंचेगी नहीं। दस, पाँच साल मिल जाएँ, तो कुछ काम जमकर कर लूँ।'

आँसू कभी पहले उनकी आँखों में नहीं देखे थे। इस पर हम लोग विशेष चिंतित हुए। मित्रों ने बहुत जोर दिया कि आप यहाँ एक महीने रुककर चिकित्सा करा लें। पर उन्हें रुग्ण पिता को देखने नागपुर जाना था। सप्ताह-भर में लौट आने का वादा करके वे चले गए। फिर वे लौटे नहीं।

क्षण-भर में ही वे सँभल गए। पूछा, "आप लोगों का सामान कहाँ है?"

शरद कोठारी ने कहा, "मेरे घर रखा है।"

वे बोले, "वाह साहब, इसका क्या मतलब? आप लोग मेरे यहाँ आए हैं न?"

हम लोगों ने परस्पर देखा। शरद मुस्कराया। इस पर हम लोग मुक्तिबोध को कई बार चिढ़ाया करते थे—'गुरु, कितने ही प्रगतिशील विचार हों आपके, आदतों में 'फ्यूडल' हो। मेरा मेहमान है, मेरे घर सोएगा, मेरे घर खाएगा, कोई बिना चाय पिए नहीं जाएगा, होटल में मैं ही पैसे चुकाऊँगा, सारे शहर को घर में खाना खिलाऊँगा—यह सब क्या है?'

शरद को मुस्कराते देख वे भी मुस्करा दिए। बोले, "यह आपकी अनधिकार चेष्टा है, बल्कि साजिश है।"

यह औपचारिक नहीं था। मुक्तिबोध की किसी भावना में औपचारिकता नहीं—न स्नेह में, न घृणा में, न क्रोध में। जिसे पसंद नहीं करते थे, उसकी तरफ घंटे-भर बिना बोले आँखें फाड़े देखते रहते थे। वह घबड़ा जाता था।

बीमारी की बात की, तो वैज्ञानिक तटस्थता से—जैसे ये हाथ-पाँव और यह सिर उनके नहीं, किसी दूसरे के हैं। बड़ी निर्वैयक्तिकता से, जैसे किसी के अंग-अंग काटकर बता रहे हैं कि बीमारी कहाँ है, कैसे हुई, क्या परिणाम है?

"तो यह है साहब, अपनी बीमारी"—बोलकर चुप हो गए।

फिर बोले, "चिट्ठियाँ आती हैं कि आप यहाँ आ जाइए या वहाँ चले जाइए। पर कैसे जाऊँ? जाना क्या मेरे वश की बात है?...हाँ, एक भयंकर कविता हो गई। सुनाऊँगा नहीं। मुझे खुद उससे डर लगता है। बेहद डार्क, ग्लूमी! भयंकर 'इमेजें' हैं। न जाने कैसी मनःस्थिति थी। कविता वात्स्यायनजी को भेज दी है।...पर अब लगता है, वैसी बात है नहीं। जिंदगी में दम है। बहुत अच्छे लोग हैं, साथ। कितनी चिट्ठियाँ चिंता की आई हैं। कितने लोग मुझे चंगा करना चाहते हैं! कितना स्नेह, कितनी ममता है, आसपास!...पार्टनर, अब एक दूसरी कविता लिखी जाएगी। यानी ठीक बात लिखी जाएगी।"

ज्ञानरंजन ने कहा, "पिछली भी सही थी और अब जो होगी, वह भी सही होगी।"

वे आश्वस्त-से लगे। हम लोगों ने समझाया कि बीमारी मामूली है, भोपाल में एक-दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महीने में ठीक हो जाएगी।

उनकी आँखों में चमक आ गई। बोले, ''ठीक हो जाएगी न! मेरा भी यही खयाल है। न हो पूरी ठीक, कोई बात नहीं। मैं लँगड़ाकर चल लूँगा। पर लिखने-पढ़ने लायक हो जाऊँ।''

इतने में प्रमोद वर्मा आ गए। देखते ही मुक्तिबोध फिर हँस पड़े, ''लो, अरे लो, ये भी आ गए! वाह, बड़ा मजा है, साहब!''

प्रमोद और मैं शांता भाभी तथा रमेश से सलाह करने दूसरे कमरे में चले गए। इधर मुक्तिबोध ज्ञानरंजन से नए प्रकाशनों पर बातें करने लगे।

तय हुआ कि जल्दी भोपाल ले चलना चाहिए। मित्रों ने कुछ पैसा जहाँ-तहाँ से भेज दिया था। हम लोगों ने सलाह की कि इसे रमेश के नाम से बैंक में जमा कर देना चाहिए।

मुक्तिबोध पर बड़ी विचित्र प्रतिक्रिया हुई इसकी। बिलकुल बच्चे की तरह वे खीझ उठे। बोले, ''क्यों? मेरे नाम से खाता क्यों नहीं खुलेगा? मेरे ही नाम से जमा होना चाहिए। मुझे क्या आप लोग गैर-जिम्मेदार समझते हैं?''

वे अड़ गए। खाता मेरे नाम से खुलेगा। थोड़ी देर बाद कहने लगे, ''बात यह है पार्टनर कि मेरी इच्छा है ऐसी। 'आई विश इट'। मैं नहीं जानता कि बैंक में खाता होना कैसा होता है। एक नया अनुभव होगा मेरे लिए। तर्कहीन लालसा हो—पर है जरूर, कि एक बार अपना भी एकाउंट हो जाए! ज़रा इस संतोष को भी देखूँ।''

मुक्तिबोध हमेशा ही घोर आर्थिक संकट में रहते थे। अभावों का ओर-छोर नहीं था। कर्ज से लदे रहते थे। पैसा चाहते थे, पर पैसे को ठुकराते भी थे। पैसे के लिए कभी कोई काम विश्वास के प्रतिकूल नहीं किया। अचरज होता था कि जिसे पैसे-पैसे की तंगी है, वह रुपयों का मोह बिना खटके के कैसे छोड़ देता है। बैंक में खाता खुलेगा—यह कल्पना उनके लिए बड़ी उत्तेजक थी। गजानन माधव मुक्तिबोध का बैंक में खाता है—यह अहसास वे करना चाहते थे। वे शायद अधिक सुरक्षित भी अनुभव करते।

तभी एक ज्येष्ठ लेखक की चिट्ठी आई कि आप घबड़ाएँ नहीं, हम कुछ लेखक जल्दी ही अखबार में आपकी सहायता के लिए अपील प्रकाशित करा रहे हैं।

चिट्ठी पढ़कर मुक्तिबोध बहुत उत्तेजित हो गए। झटके से तकिए पर थोड़े उठ गए और बोले, ''यह क्या है? दया के लिए अपील निकलेगी! अब, भीख माँगी जाएगी मेरे लिए! चंदा होगा! नहीं—मैं कहता हूँ—यह नहीं होगा। मैं अभी मरा थोड़े ही हूँ। मित्रों की सहायता मैं ले लूँगा—लेकिन मेरे लिए चंदे की अपील! नहीं। यह नहीं होगा !''

हम लोगों ने उन्हें समझाया कि आपकी भावना से उन्हें परिचित करा दिया जाएगा और अपील नहीं निकलेगी।

उस शाम को रमेश ने एक चिट्ठी लाकर दी, जिसमें बीस रुपए के नोट थे। चिट्ठी उनके एक विद्यार्थी की थी। उसने लिखा था कि मैं एक जगह काम करके पढ़ाई का खर्च चला रहा हूँ। आपके प्रति मेरी श्रद्धा है। मैं देख रहा हूँ कि अर्थाभाव के कारण आप-जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यकार की ठीक चिकित्सा नहीं हो पा रही है। मैंने ये बीस रुपए बचाए हैं। इन्हें आप ग्रहण करें। ये मेरी ही कमाई के हैं, इसलिए आप इन्हें लेने में संकोच न करें। स्वयं आपको रुपए देने का साहस मुझमें नहीं है, इसलिए इस तरह पहुँचा रहा हूँ।

चिट्ठी और रुपए हाथ में लिये वे बड़ी देर तक खिड़की के बाहर देखते रहे। उनकी आँखें भर आईं। बोले, "यह लड़का गरीब है। उससे कैसे पैसे ले लूँ?"

वहाँ एक अध्यापक बैठे थे। उन्होंने कहा, "लड़का भावुक है। वापस कर देंगे, तो उसे चोट पहुँचेगी।" मुक्तिबोध बहुत द्रवित हो गए इस स्नेह से। बड़ी देर तक गुमसुम बैठे रहे।

भोपाल जाने की तैयारी होने लगी। उनका मित्र-भाव फिर जाग उठा। मुझसे कहने लगे, "पार्टनर, मैं आपसे एक साफ बात कहना चाहता हूँ। बुरा मत मानना। देखिए, आपकी जीविका लिखने से चलती है। आप अब भोपाल मेरे साथ चलेंगे। वहाँ रहेंगे। आप लिख नहीं पाएँगे, तो आपको आर्थिक कष्ट होगा। मैं कहता हूँ कि आप मेरे पैसे को अपना पैसा समझकर उपयोग में लाइए!"

मुक्तिबोध बहुत गंभीर थे। हम लोग एक-दूसरे की तरफ देख रहे थे।

वे मेरी तरफ जवाब के लिए आँखें उठाए थे और हम लोग हँसी रोके थे।

तभी मैंने कहा, "आपके पैसे को अपना पैसा समझने को तैयार हूँ। पर पैसा है कहाँ ?"

प्रमोद जोर से हँस दिया। मुक्तिबोध भी हँस पड़े। फिर एकदम गंभीर हो गए। बोले, "हाँ, यही तो मुश्किल है। यही तो गड़बड़ है।"

जो थोड़े-से पैसे उनके हाथ में आ गए थे, वे कुलबुला रहे थे। उन्हें कितने ही कर्तव्य याद आ रहे थे। कोई मित्र कष्ट में है, किसी की पत्नी बीमार है, किसी की लड़की बीमार है, किसी के बच्चों के लिए कपड़े बनवाना है। उस अवस्था में जब वे खुद अपंग हो गए थे और अर्थाभाव से पीड़ित थे, वे दूसरों पर इन पैसों को खर्च कर देना चाहते थे। आगे भोपाल में तो इस बात पर उनसे बाकायदा युद्ध हुआ और बड़ी मुश्किल से हम उन्हें समझा सके कि रोगी का किसी के प्रति कोई कर्तव्य नहीं होता; सबके कर्तव्य उसके प्रति होते हैं।

और उस रात जब हम लोग गाड़ी पर चढ़े, तो साथ में रिमों कागज था। मुक्तिबोध ने हठ करके पूरी कविताएँ, अधूरी कविताएँ, तैयार पांडुलिपियाँ सब लदवा लीं। बोले, "यह सब मेरे साथ जाएगा। एकाध हफ्ते बाद मैं कुछ काम करने लायक हो जाऊँगा, तो कविताएँ पूरी करूँगा, नई लिखूँगा और पांडुलिपियाँ दुरुस्त करूँगा। अपने से अस्पताल में बेकार पड़ा नहीं रहा जाएगा, पार्टनर!...और हाँ, वह पासबुक रख ली है न?"

पर उन कागजों पर मुक्तिबोध का न फिर हाथ चल सका और न वे एक चेक काट सके।

जिंदगी बिना कविता-संग्रह देखे और बिना चेक काटे गुजर गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वागत भाषण*

श्री दीपेन घोषजी, ओमप्रकाश गुप्तजी, एस. के. व्यास तथा तार यांत्रिक कर्मचारी साथियो और मित्रो,

आप सब कर्मचारी मित्रों और साथियों के संगठन के 8वें अधिवेशन के अवसर पर मैं आप सबका हृदय से स्वागत करता हूँ। मेरी यह हैसियत तो नहीं है कि मैं अधिकारपूर्वक इस नगर की ओर से आपका स्वागत करूँ, क्योंकि मैं नगर का प्रतिनिधित्व करनेवाले किसी राजनैतिक पद को धारण नहीं करता। यह भी ठीक ही है क्योंकि कार्पोरेशन परसों ही भंग हुई है। मैं एक प्रगतिशील श्रमजीवी लेखक की हैसियत से, तथा कुछ संगठनों की ओर से आपका स्वागत करता हूँ। मैं राष्ट्रीय प्रगतिशील लेखक महासंघ की ओर से, अखिल भारतीय शांति और एकता संगठन की ओर से, भारत-रूस सांस्कृतिक संघ की ओर से भी आपका स्वागत करता हूँ।

मैं खुद श्रमजीवी लेखक हूँ। कलम का मजदूर हूँ। इस कारण मैं आपका साथी हूँ और आपके वर्ग का। इस नाते मैं कामना करता हूँ कि आप अपने विभाग से संबंधित समस्याओं पर विचार करें, अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने का संकल्प करें और देश की परिवर्तनशील व्यापक परिस्थिति में अपनी भूमिका तय करें।

मैं लेखक हूँ, जिसके अनुभव और चिंतन का दायरा व्यापक होता है, इसलिए एक-दो बातें आप लोगों से कहूँगा जिन पर भी आप लोग विचार करें। आमतौर पर स्वागत-भाषण में ये बातें न कही जातीं, न सुनी जातीं। मगर आप लोग एक लेखक से अपना स्वागत कराने की जो भूल कर बैठे हैं, तो नतीजे में उसकी कुछ बातें सुननी ही पड़ेंगी, चाहे वे आपको अच्छी न लगें।

श्रमिक संगठन का प्रधान उद्देश्य श्रमिकों के हितों की रक्षा करना होता है। आपका संगठन भी यह करता है और करना चाहिए। लेकिन इसके साथ ही मेरा विचार है कि श्रमिक संगठनों को अपने चरित्र और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में अपनी प्रमुख भूमिका का अहसास होना चाहिए। याने संगठित श्रमजीवी वर्ग को अपने को एक क्रांतिकारी शक्ति समझना चाहिए और इसके लिए विचार-भूमि बनानी चाहिए और तदनुसार संगठन करना चाहिए। मैं सिर्फ आप लोगों के बारे में यह नहीं कहता, बल्कि अपने अनुभव के आधार पर यह कहता हूँ कि हमारे देश में श्रमिक संगठन का अर्थ केवल वेतन, भत्ता, बोनस और ओवर टाइम रह गया है। इसके सिवा कुछ नहीं है। श्रमिक संगठन सिर्फ पैसे की लड़ाई लड़ते हैं, अर्थवाद (इकानामिज्म) के चक्कर में पड़े हैं और अर्थवाद बहुत घातक चीज है। यह क्रांति-विरोधी है और स्वयं श्रमिकों तथा देश के लिए नुकसानदेह है। केवल अर्थवाद से श्रमिकों की शक्ति न विकसित होती न तैयार होती जो अंततः एक देशव्यापी संघर्ष से उस व्यवस्था को बदलकर नयी व्यवस्था स्थापित करती है जो एक विभाग को, एक तबके

* अ. भा. तार यांत्रिक कर्मचारी संघ के 8वें परिमंडल अधिवेशन, (जबलपुर) में स्वागत-भाषण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को, एक कारखाने को ही नहीं, सबको न्याय देती है। अलग-अलग आर्थिक लड़ाई से तात्कालिक लाभ अलग-अलग मिलते हैं, मगर स्थायी, व्यापक रूप से जीवनस्थिति में सुधार ज्यादा बड़े संघर्ष से होगा, जो सिर्फ आर्थिक नहीं होगा। मैं देखता हूँ अपने संगठन का, अपने नेता का, अपने झंडे का, अपने नारे का सिर्फ एक ही अर्थ, एक ही उपयोग, एक ही उद्देश्य श्रमिक मानता है कि यह वह है जो बोनस दिलाता है, वेतन-भत्ता दिलाता है, सस्पेंड हो गए तो बहाल कराता है। याने संगठन, नेता, झंडा, घोषणापत्र, सिद्धांत—पैसा है, सिर्फ पैसे के सिवा कुछ नहीं।

इस अर्थवाद के, पैसावाद के बहुत बुरे नतीजे हमारे सामने हैं। कर्मचारी केवल अपने अधिकार जानता है, अपने कर्तव्य नहीं जानता। वह समाज के प्रति अपना दायित्व न समझता है, न निभाता है जबकि सारे लाभ वह इसी समाज से चाहता है, जिसमें पैसा भी शामिल है। श्रमिकों ने जैसे अपनी एक अलग दुनिया बना ली है। बाकी दुनिया में क्या हो रहा है, इससे उसे मतलब नहीं है।

क्योंकि यह देशव्यापी श्रमिकवर्ग मुख्यतः औद्योगिक है, इसलिए इससे अपेक्षा है कि यह वैज्ञानिक दृष्टि रखेगा, प्रगतिशील चेतना ग्रहण करेगा, अग्रगामी जीवन-मूल्य मानेगा और उस सबको छोड़ेगा जो झूठा है, अंधविश्वास है, आत्मघाती और जातिघाती रूढ़िवादी है, प्रगति-विरोधी धार्मिक, सामाजिक परंपरा है। हमारी यह आशा व्यर्थ चली गयी है क्योंकि औद्योगिक और बौद्धिक श्रमिक चेतनाहीन, अवैज्ञानिक दृष्टिवाला, रूढ़िवादी और गलत परंपराओं का गुलाम है। इसका कारण है कि न वह कुछ सीखता, न समझता, न आसपास से मतलब रखता, न अपनी जिम्मेदारी मानता। वह एक ही सिद्धांत मानता है—पैसा! पैसा! पैसा!

सार्वजनिक क्षेत्र के कारखानों में घाटा-ही-घाटा होता है, प्राइवेट कारखानों में मुनाफा-ही-मुनाफा। इसके कई कारण हैं। मैनेजमेंट, योजना की गलती, राजनैतिक हस्तक्षेप, गलत प्लानिंग आदि। मगर हमें इसे मानने में शर्म नहीं आनी चाहिए कि उद्योगों के श्रमिक काम नहीं करते, लापरवाही करते हैं, उत्पादन को अपना लक्ष्य नहीं मानते। प्राइवेट कारखाने का श्रमिक ऐसा करे तो निकाल दिया जाय मगर इन सार्वजनिक उद्योगों का कर्मचारी सस्पेंड किया जाय तो वह दिल्ली अपने नेता के पास पहुँच जाता है और दिल्लीवाले नेता मंत्री से बात करके उसे बहाल करा देते हैं। इधर समाजवाद विरोधी कहते हैं, ऐसा ही क्या तुम्हारा समाजवाद होगा? उसमें ऐसे ही काम होगा और ऐसा ही उत्पादन होगा और ऐसा ही घाटा होगा। तो समाजवाद से क्या फायदा? इसका यह जवाब काफी नहीं है कि अरे, यह सरकार की गलत नीतियों के कारण है। हमें आत्मपरीक्षण करना चाहिए, आत्मालोचना करनी चाहिए।

श्रमिक वर्ग को शिक्षित और चेतना संपन्न होना चाहिए। उसका सरोकार देश की दूसरी समस्याओं से भी होना चाहिए। श्रमिक संगठनों को इन चीजों पर भी विचार करना चाहिए कि देश में सांप्रदायिकता बढ़ रही है, विघटनवादी प्रवृत्तियाँ सिर उठा रही हैं, क्षेत्रवाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बढ़ रहा है। असम और पंजाब में अराजकता और सांप्रदायिकता चरम सीमा पर हैं और लगता है जैसे देश टुकड़े-टुकड़े होनेवाला है। इन सब समस्याओं पर भी आपका ध्यान जाना चाहिए।

हम लेखक पूछते हैं और ठीक पूछते हैं कि मजदूर बस्ती में सांप्रदायिक दंगा क्यों नहीं रोका जा सकता। कुछ साल पहले जमशेदपुर में भयानक सांप्रदायिक दंगा हुआ था जिसमें एक लेखक जकी अनवर शांति के लिए गाँधी चौक में उपवास करते मारा गया था। हम इस पर नहीं रोते कि लेखक को क्यों मारा? जहाँ एंबुलेंस में बैठे स्त्री और बच्चों को बम से उड़ा दिया, वहाँ हम लेखक को छोड़ देने की माँग नहीं करते। हम जानते हैं कि फासिस्टों ने दुनिया-भर में सबसे पहले लेखकों, कवियों और कलाकारों को मारा है, क्योंकि वे मानवतावाद के प्रचारक होते हैं। पर लेखकों को सवाल पूछने का हक है और तब हमने सवाल जमशेदपुर और दिल्ली के श्रमिक नेताओं से पूछा था कि इतने सालों से आपकी यूनियनें हैं, यह मजदूरों का शहर है, आप मजदूर-एकता जिंदाबाद करते हैं, आप लगातार श्रमिक हितों की लड़ाई लड़ते रहते हैं, आपके मजबूत संगठन हैं—मगर आप दंगा रोक क्यों नहीं सके? आपने सांप्रदायिक नफरत पनपने क्यों दी? फिर दंगा शुरू होने पर आप उस आग को बुझा क्यों नहीं सके? हमें जवाब मिला कि हम निरुपाय (हेल्पलेस) हो गए थे। हम कुछ कर नहीं सकते थे। मैं पूछता हूँ, ऐन मौके पर आप निकम्मे और असहाय क्यों हो जाते हैं? क्यों आप वह ताकत पैदा नहीं करते जो ऐसी वारदातों को रोक सके? क्यों नहीं आप मजदूर को शिक्षित करते? क्यों नहीं उसे सांप्रदायिकता से लड़ने के लिए तैयार करते? क्यों नहीं श्रमिक संगठन को आप समाजघाती ताकतों से लड़ने के लायक बनाते? यह कहने से काम नहीं चलनेवाला है कि हम क्या करें, हम हेल्पलेस हो गए थे। मगर फिर दंगे के महीने-भर बाद बोनस के लिए दोनों सम्प्रदायों के मजदूर भाई-भाई बनकर हाथ-में-हाथ डालकर जुलूस निकालते हैं। मैं आप लोगों से कहना चाहता हूँ, मजदूर-बस्तियों में मजदूरों के बीच दंगे एक योजना के हिसाब से कराए जाते हैं। वे अकस्मात नहीं होते। वे मजदूरों में फूट डालने के लिए कराए जाते हैं। आप लोग जरूर इस पर सोचते होंगे, मुझे विश्वास है। मेरा कर्तव्य आपको याद दिलाने का था, क्योंकि नेतृत्व आपका मध्यम वर्ग करता है।

आप लोग और दूर नजर डालें। दिल्ली में गुटनिरपेक्ष देशों का शीर्ष सम्मेलन हो रहा है। इस सम्मेलन का उद्देश्य विकासशील देशों में परस्पर सहयोग, आर्थिक विकास और विश्वशांति है। आप लोग इन मसलों पर भी अपनी भावना को इस सम्मेलन के मारफत व्यक्त करें।

मैं आप लोगों का अधिक वक्त नहीं लूँगा। मैं अंत में फिर आप सबका हार्दिक स्वागत करता हूँ। आपको कोई असुविधा हो तो हमारी कमजोरी समझकर क्षमा कर देंगे। धन्यवाद !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांप्रदायिकता : प्रकृति, कारण और निदान

हैदराबाद में सांप्रदायिक दंगे के दौरान प्रसिद्ध तेलगु कवि गुलाम यासीन, उनकी पत्नी और बच्ची को दंगाइयों ने मार डाला। इस पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई। गुलाम यासीन प्रगतिशील कवि थे, वे शांति और सांप्रदायिक सद्भाव के लिए जीवन भर काम करते रहे। दंगे के दौरान भी वे सांप्रदायिक सद्भाव कायम करने की कोशिश कर रहे थे।

4 साल पहले जमशेदपुर के दंगे में प्रसिद्ध उर्दू लेखक ज़की अनवर की हत्या विशिष्ट परिस्थितियों में हुई। उन्होंने मुसलमानों के मुहल्ले में अपने मकान को बेचकर हिंदुओं के मुहल्ले में मकान खरीदा और वहाँ रहने लगे। उन्होंने इस मुहल्ले का नाम 'गाँधी नगर' रखा। उनका विश्वास था कि हिंदू और मुसलमानों की मिली-जुली आबादी होनी चाहिए। इसके बिना सांप्रदायिक सद्भाव पैदा नहीं होगा। दंगे के दौरान उन्हें सलाह दी गयी कि वे मुसलमानों के मुहल्ले में चले जाएँ या पटना चले जाएँ। पर वे वहीं रहे और अपने एक मित्र वर्मा के साथ सांप्रदायिक शांति के लिए अनशन पर बैठे। 13 घंटे बाद उन्हें अनशन खत्म करने पर मजबूर होना पड़ा। रात को जकी अनवर मार डाले गए और उनकी लाश कुएँ में डाल दी गयी। मगर जमशेदपुर-दंगे का सबसे जघन्य कांड था, लगभग 100 मुस्लिम स्त्रियों और बच्चों को एंबुलेंस में भरकर सुरक्षित स्थान पर ले जाने की कोशिश की जा रही थी कि उस एंबुलेंस को ही बम से उड़ा दिया गया। अस्पताल, एंबुलेंस और रेडक्रासवाले किसी स्थान पर युद्ध में भी हमला नहीं किया जाता।

लेखक का दंगे में मारा जाना विशेष अर्थ क्यों रखता है? यह स्वाभाविक है कि लेखक सांप्रदायिक हैवानों का शिकार हुआ, तो हम उसकी बिरादरी के लेखक उद्वेलित होंगे, इस कृत्य की निंदा करेंगे। यह हमने किया। इन दो लेखकों की हत्या इसलिए भी ज्यादा दर्दनाक है कि दोनों का विश्वास प्रगतिशील जीवन-मूल्यों में था, दोनों सांप्रदायिक भाईचारे के लिए प्रयत्नशील थे। जकी अनवर ने तो शांति के लिए अनशन किया था। उसने अपने एक दोस्त को लिखा था—मेरा विश्वास है कि इंसानियत अभी मरी नहीं है।

लेखक का मारा जाना समाज के लिए विशेष अर्थ क्यों रखता है? इसलिए कि लेखक मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए लिखता है, मानव-संस्कृति की रक्षा के लिए लिखता है, मानवजाति के उज्ज्वल भविष्य के सपने देखता है, जीवन के प्रति आस्था और श्रद्धा उत्पन्न करता है, भावनाओं का उदात्तीकरण करता है, एक बेहतर मनुष्य बनाना और न्यायपूर्ण समाज-व्यवस्था स्थापित करना चाहता है। अमानवी हाथों लेखक के मारे जाने का अर्थ है—इन सब उद्देश्यों, आदर्शों, सपनों की हत्या। इसलिए लेखक की हत्या पर लेखकों के रोने या क्रोध करने से ज्यादा महत्त्वपूर्ण यह है कि वृहत्तर समाज रोए और महसूस करे कि लेखक के बहाने किन मानव-मूल्यों की हत्या हो रही है।

जहाँ तक हम लेखकों का सवाल है, हमें हाय-हाय करने की कतई जरूरत नहीं। हमें दया भी नहीं माँगना है। स्त्री-बच्चे मार डाले जाएँ और लेखक छोड़ दिया जाय, यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शर्मनाक माँग हमारी कल्पना के परे है। इतिहास से हमने सीखा है कि लेखक, कलाकार के साथ ऐसा होगा ही और पहले होगा। इसे हम 'पागलपन', 'उन्माद', 'सिरफिरापन' जैसे नासमझी के अर्थहीन निर्दोष शब्दों से परिभाषित नहीं करते। हम इसे सीधा 'फासिस्टवाद' कहते हैं, जो संगठित, सुनियोजित अमानवीयता, बर्बरता है। इसका पहला हमला उन पर होता है जो मानवीयता का संदेश देते हैं। यह पहले हो चुका है। नाजियों ने यही किया। जनरल फ्रेंको ने यही किया। चिली के पिनोशे ने यही किया। जनरल जिया यही करते हैं। अमेरिका में इसी ने हेमिंग्वे को आत्महत्या करने पर मजबूर किया। अभी तुर्की में नाज़िम हिकमत के अनुयायी 19 कवियों पर फौजी मुकदमा चल रहा है, जिसमें सज़ा मौत है। लेखक जानता है कि उसके साथ यह होगा। इसके लिए उसे तैयार रहना होगा। मगर साथ ही उसे देश में बढ़ती हुई इस प्रवृत्ति से संघर्ष भी करना होगा और संघर्ष करने के लिए उसे जानना होगा कि यह सांप्रदायिकता है क्या, क्यों है, दंगे हर कहीं और लगातार क्यों होते हैं? वे कौन-सी वास्तविकताएँ हैं जिनसे यह जहरीली मानसिकता बनती है? वे कौन ताकतें हैं जो इन वारदातों के पीछे हैं? सी. आई. ए. और 'गल्फ मनी' के खाते में इसे डाल देने से काम नहीं चलेगा।

कुछ कटु पर सत्य वास्तविकताओं को स्वीकार करना होगा। अभी भी हिंदू मन में एक विजित जाति की हीनता की भावना है। मुसलमान में भी यह भावना है कि हम विजेता जाति के हैं और हमने इन पर हुकूमत की है। हिंदू और मुसलमान दोनों पर अँगरेजों ने हमला किया। दोनों पर हुकूमत की। अँगरेज ईसाई हैं। उन्होंने हिंदू-मुसलमान दोनों पर अत्याचार कम नहीं किए। मगर अँगरेजों से न हिंदू नफरत करता न मुसलमान। स्वतंत्र भारत का सबसे पहला गवर्नर जनरल ईसाई अँगरेज था। इसे हिंदू-मुसलमान दोनों ने सलाम किया। अँगरेज मूर्तिपूजक हैं। वे ईसा के बुत की पूजा करते हैं। मगर मुसलमान इन बुतपरस्तों से नफरत नहीं करता। अँगरेज साम्राज्यवादी थें। मुसलमान साम्राज्यवादी नहीं हैं। वे भारतीय ही हो गए। मगर हिंदू साम्राज्यवादी शोषक अँगरेज से नफरत नहीं करता, उसे आदर्श मानता है, उसकी रहन-सहन में नकल करता है। अँगरेजी साम्राज्य समाप्त हुआ, तो उसकी जगह ली नए प्रकार के अमेरिकी साम्राज्यवाद ने। अमेरिकी भी ईसाई है। मगर हिंदू जाति के बड़े-से-बड़े रहनुमा अमेरिका के भक्त हैं। यह क्या विरोधाभास है? कौन-सा तर्क है इसमें ?

हारे हुए निराश हिंदू मन ने अपने प्राचीन गौरव की याद की, उसका सहारा लिया और उस 'यूटोपिया' में जीकर, आधुनिकता का विरोध किया। उसने पुरातनवाद में जातीय गौरव की रक्षा खोजी। इस भावना ने उसे संकीर्ण, ज्ञान-विज्ञान विरोधी, अतीतजीवी और क्षुद्र बनाया। उधर मुसलमान के हाथ से हुकूमत अँगरेजों ने छीनी। उसे गुलाम बनाया। वह हीनता की भावना से पस्त हुआ, तो उसे भी इस्लामी अतीत की याद आयी कि उसने यूरोप और एशिया को रौंद डाला था। इस्लामी बिरादरी की याद आयी। वह भी बुनियादी इस्लाम में पहुँचा और 7वीं सदी के मक्का-मदीना में रहने लगा। वह ख्वाब देखने लगा फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस्लामी साम्राज्य की स्थापना के, क्योंकि—'उठता है फिर मुसलमाँ हर करबला के बाद।' मुसलमानों के कट्टर रहबर भी अमेरिकी साम्राज्यवाद के समर्थक हैं।

हिंदू-मुसलमान दोनों के रहनुमा बननेवाले आधुनिकता-विरोधी मगर अमेरिका-समर्थक हैं। दोनों अपने अतीत की संस्कृति और सभ्यता के कारण और उसी हथियार से आधुनिकता रोकना चाहते हैं। इसका कारण यह है कि आधुनिकता केवल पश्चिमी यूरोप और अमेरिका की नहीं है। आधुनिकता के रास्ते आगे निकल गए हैं और समाजवाद तक पहुँच गए हैं। यह समाजवाद खतरा है सामंतवाद और पूँजीवाद के लिए। यह वह मुद्दा है जहाँ हिंदू सांप्रदायिक और मुस्लिम सांप्रदायिक नेता एक-दूसरे के गले में हाथ डाले हैं। दोनों सामंतवाद, पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के समर्थक हैं—चाहे वह आर. एस. एस. हो, चाहे जमाइते इस्लामी, चाहे हिंदू महासभा, चाहे मुस्लिम लीग। मौलाना मौदूदी—जमाइते इस्लामी के संस्थापक, जब पाकिस्तान गए थे तब मुसलमानों के नाम यह पैगाम दे गए—मैं पाकिस्तान में इस्लामी हुकूमत कायम कराऊँगा और ए मुसलमानो, तुम भारत में हिंदू राष्ट्र बनवा देना! इधर गुरु गोलवलकर हिंदू राष्ट्र की स्थापना की तैयारी कर रहे थे। अभी भी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जमाइते इस्लामी के नेताओं में भाईचारा है।

सामंतवाद-पूँजीवाद की समर्थक ये धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एजेंसियाँ कैसे सांप्रदायिक मनोभावना को बनाए रखती हैं, उसे बढ़ाती हैं और जब जरूरत होती है विस्फोट करा देती हैं। एक तो जातीय स्मृतियाँ होती हैं जो दीर्घकालिक होती हैं। इन्हें जिंदा रखा जाता है। फिर इतिहास का 'हेंगओवर' होता है। हमारे देश में सांप्रदायिक द्वेष की जड़ मध्ययुग का इतिहास है, जो अर्द्धसत्य और गलत नजरिए से प्रचारित किया जाता है और पढ़ाया जाता है। अंग्रेज इतिहासकार मिलर और स्मिथ ने मध्ययुग का इतिहास सांप्रदायिक द्वेष को उभारते हुए लिखा। भारतीय इतिहासकारों ने इनकी नकल की। ऐसा बताया जाता है कि पूरे मध्ययुग में 6-7 सौ साल तक इस देश में एक ही काम हुआ—हिंदू-मुसलमान की लड़ाई। खेती, व्यवसाय वगैरह कुछ नहीं। संस्कृति की बात ही नहीं। मुसलमान शाहों, सुल्तानों का काम हिंदू राजाओं पर हमला करना, मंदिर तोड़ना, मूर्ति खंडित करना, लूटना, हिंदुओं पर अत्याचार करना—बस इतना ही था। राजनैतिक संघर्ष को धार्मिक संघर्ष बताया गया। आर्थिक कारणों से झगड़ा-फसाद हुआ तो उसे भी धार्मिक रूप दे दिया गया। वास्तव में महमूद गजनवी ने सोमनाथ का मंदिर इस्लाम के लिए नहीं, हीरे-जवाहरात और सोने के लिए लूटा था। औरंगजेब मंदिरों को दान देता था। जहाँगीर और शाहजहाँ अत्यंत उदार थे। अकबर शायद भारत का सबसे महान् शासक था—अशोक से भी बड़ा—जिसने एक गणराज्य की कल्पना की थी। मुसलमान कवियों ने हिंदू भक्त कवियों की तरह काव्य लिखा। औरंगजेब के कमांडर राजपूत थे और शिवाजी के कमांडर मुसलमान। सामान्य जनता में हेल-मेल था, समान जीवन-पद्धति विकसित हो रही थी, भाईचारा बढ़ रहा था, सांस्कृतिक आदान-प्रदान हो रहा था। ऊपर राजनैतिक कारणों से लड़ाइयाँ होती थीं।

मध्ययुग का गलत सांप्रदायिक इतिहास ही वह जहर है जिसने सांप्रदायिक द्वेष को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवित रखा है। इतिहास विज्ञान है। कल्प-कथा नहीं है। जब तक वैज्ञानिक दृष्टि से धार्मिक द्वेष से मुक्त, तथ्यपरक इतिहास नहीं पढ़ाया जाएगा, तब तक सांप्रदायिक द्वेष जा नहीं सकता। मगर जब भी इस तरह के इतिहास को लिखने और पढ़ाने का प्रयास किया जाता है, वही सामंतवादी-पूँजीवादी ताकतें उसे रोक देती हैं। जनता पार्टी सरकार के जमाने में इस तरह की तीन इतिहास पुस्तकों पर प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नेता नानाजी देशमुख के कहने से प्रतिबंध लगा दिया था। इसका इतिहासकारों ने विरोध किया था। डॉ. एस. गोपाल ने तो यहाँ तक लिखा था—मैं जानता हूँ जनता पार्टी और सरकार में कुछ उद्धत मूर्ख (एरोगेंट इडियट्स) हैं। इतिहास विज्ञान है। आज प्रधानमंत्री इतिहास में हस्तक्षेप करते हैं, कल वे भौतिक-शास्त्र में हस्तक्षेप करेंगे। यदि सांप्रदायिकता को खत्म करना है, तो नए सिरे से इतिहास लिखना, पढ़ना और पढ़ाना पड़ेगा। यही नहीं, भाषा और साहित्य की पाठ्य-पुस्तकों से भी सांप्रदायिक रचनाएँ निकालनी होंगी। उत्तर भारत में स्कूलों में पढ़ाई जानेवाली हिंदी भाषा की पाठ्य-पुस्तकें देखिए। इनमें रचनाओं का चयन सांप्रदायिक दृष्टि से किया जाता है। मुझे समझ में नहीं आता, अलाउद्दीन खिलजी और पद्मिनी की कथा को इतना महत्त्व क्यों दिया जाता है। सुलतान को सुंदर औरतों की तो कमी थी नहीं। वह लड़ाई तो राजनैतिक थी, सुंदरी रानी पद्मिनी के लिए नहीं।

एक कारण, और प्रमुख कारण आर्थिक है। नौकरियाँ, धंधे, प्रापर्टी के मामले में जब हिंदू-मुस्लिम-स्पर्धा और झगड़ा होता है, तो उसे सांप्रदायिक रूप दे दिया जाता है। नौकरी के मामले में हिंदू अफसर योग्य मुसलमान को नियुक्त न करके अयोग्य हिंदू को करेगा। इसी तरह मुसलमान अफसर अयोग्य मुसलमान को तरजीह देगा। इसमें अपवाद होते हैं और काफी होते हैं। मगर काफी हद तक यह सच है। मुसलमानों की यह शिकायत सही है कि उन्हें नौकरियों में बहुत कम प्रतिशत दिया जाता है। दंगे भी राजनैतिक-आर्थिक कारणों से होते हैं, धार्मिक कारणों से नहीं। अलीगढ़ का पिछला दंगा उस जमीन पर कब्जा करने के लिए हुआ था, जिस पर मुसलमानों की झोंपड़ियाँ थीं। इसमें ताले के धंधे की आर्थिकता भी थी। मुरादाबाद में झगड़ा बर्तनों की कमाई को लेकर था। लगभग एक अरब रुपयों के बर्तन यहाँ से अरब मुल्कों को बिकते हैं, जिन पर कुरान की आयतें लिखी होती हैं और जो अरबी कला से बनाए जाते हैं। दंगे का कारण यह था।

मेरठ में दंगा शुरू हुआ जमीन के एक टुकड़े को लेकर। फीरोजाबाद में दंगा हुआ था, चूड़ियों के व्यवसाय के कारण। आर्थिक कारणों से झगड़ा शुरू किया जाता है और उसे उन्माद फैलाकर हिंदू-मुस्लिम दंगे का रूप दे दिया जाता है। यह सत्य है कि इन दंगों में 90 फीसदी मुसलमान मारे जाते हैं, उन्हीं की प्रॉपर्टी का नुकसान होता है। उन्हें ही लूटा जाता है। शासन और पुलिस सांप्रदायिक हो जाते हैं, यह सच्चाई है।

फिर राजनैतिक कारण है। इतने सालों में न समाजवाद आया, न आर्थिक विपदा मिटी। महँगाई बढ़ती गयी। आर्थिक कष्ट मध्यम और निम्न वर्ग को त्रस्त किए हुए हैं। सत्ता के सारे वादे झूठे पड़ गए। लोग गहरे 'फ्रस्ट्रेशन' (विफलाशा) और अंधकार में जीते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। ऐसे में हिंदू सांप्रदायिक राजनीतिवाले इस मनःस्थिति का फायदा उठाते हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उसकी राजनैतिक मोर्चा भारतीय जनता पार्टी निराश, त्रस्त हिंदू मानस को यह बताते हैं कि इस दुर्गति का कारण मुसलमान हैं, यह शासन है, ये कंट्रोल हैं, ये कम्युनिस्ट हैं, यह लोकतांत्रिक व्यवस्था है। हिंदू को सुख-समृद्धि केवल हिंदू राष्ट्र में मिलेगी जो प्राचीन धर्मादर्शों के अनुसार चलेगा। इस आशा में हिंदू मानस के लिए आकर्षण है।

इसी तरह मुसलमानों के सांप्रदायिक नेता, जैसे जमाइते इस्लामी और जमाइते तुलबा के लोग मुसलमानों को समझाते हैं कि इस दुर्गति का कारण इस्लाम का कमजोर होना है। इस्लामी हुकूमत के बिना खुशहाली हो नहीं सकती। ये नेता जानते हैं कि मुसलमान यह विश्वास करेगा नहीं कि भारत में इस्लामी हुकूमत कायम हो जाएगी। इसलिए वह मुसलिम दिमाग को अयातुल्ला, खुमैनी, शाह सऊद और जनरल जिया की तरफ ले जाता है।

मैं चाहता हूँ, एक बात पूरी तरह साफ समझ ली जाय। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भारतीय जनता पार्टी को केवल सांप्रदायिक कहकर टालना नासमझी है, अपने आपको धोखा देना और लोकतंत्र को खतरे में डालना है। ये फासिस्ट ताकतें हैं जो नाज़ीवाद के तरीके पर चल रही हैं। ये फासिस्टी हिंदू राष्ट्र की स्थापना करना चाहती हैं और इनका समझौता अमेरिकी साम्राज्यवाद से है।

जमाइते इस्लामी और इत्तेहादे-मुसलमीन भी फासिस्ट हैं। ये भी खतरनाक हैं।

देश की राजनैतिक पार्टियों की, जो खुद धर्मनिरपेक्ष हैं, यह बेईमानी है कि वे इस या उस बहाने से भारतीय जनता पार्टी और केरल की मुसलिम लीग से समझौता कर लेती हैं। वामपंथी पार्टियाँ भी इस पाप से बरी नहीं हैं। बहुत अच्छी बात अभी यह हुई है कि दोनों कम्युनिस्ट पार्टियों ने भारतीय जनता पार्टी से समझौता नहीं करने का तय किया है और उसे राजनैतिक अछूत बना दिया है।

इस खतरनाक हद तक सांप्रदायिकता को बढ़ने देने की जिम्मेदारी बहुतों पर है। बहुत बड़ी जिम्मेदारी राजनैतिक पार्टियों के दोगलेपन पर है। कांग्रेस ने, जो अपने को धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी कहती है, सांप्रदायिकता को बढ़ावा दिया है। सांप्रदायिकता से अवसरवादी समझौते किए थे। आधे से अधिक कांग्रेसी सांप्रदायिक हैं, चाहे वे हिंदू हों या मुसलमान। कांग्रेसी भी दंगे कराते हैं।

फिर इस देश का ट्रेड यूनियन आंदोलन क्या करता रहा है? जमशेदपुर तो मजदूरों का शहर है। यहाँ 50 सालों से संगठित ट्रेड यूनियनें हैं जो अधिकतर वामपंथी नेतृत्व में हैं। मगर जमशेदपुर में मजदूर वर्ग दंगा क्यों नहीं रोक सकता? यही नहीं, मजदूर ऐन वक्त पर हिंदू-मुसलमान होकर आपस में एक-दूसरे का खून क्यों गिराते हैं? श्रमिक संगठन इतने निरुपाय क्यों हो जाते हैं? प्रगतिशील ताकतें कुछ कर नहीं पातीं। कारण यह है कि वामपंथी ट्रेड यूनियनों ने मजदूरों से सिर्फ आर्थिक लड़ाई लड़वायी है। बोनस, महँगाई-भत्ता, वेतनवृद्धि और ओवर टाइम की लड़ाई लड़वायी है। वे 'अर्थवाद' (इकानामिज़्म) के चक्कर में फँसे हैं, जिसकी लेनिन ने निंदा की है और क्रांति-विरोधी बताया है। मजदूरों को शिक्षित नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया गया। उनकी विचारधारा नहीं बनायी। उन्हें यह बोध नहीं कराया कि वे क्रांति की शक्ति हैं। नतीजा यह है कि लाल झंडेवालों को मजदूर कुल इतने काम का मानते हैं—ये बोनस दिलाते हैं, तनखा बढ़वाते हैं, महँगाई-भत्ता दिलवाते हैं, कोई सस्पेंड हो जाए तो उसे बहाल कराते हैं। कुल इतने काम के हैं ये लाल झंडेवाले। सार्वजनिक क्षेत्र के कारखानों तक में ये नेता मजदूरों को यह नहीं सिखाते कि ईमानदारी से काम करो। यह कारखाना प्राइवेट कंपनी का नहीं, तुम्हारे देश का है। एस. एम. बनर्जी ने मुझसे कहा कि मैं परेशान हूँ, इन लोगों से जो कारखानों में काम नहीं करते, चोरी करते हैं, गफलत करते हैं, हुकुम उदूली करते हैं और जब सस्पेंड होते हैं तो अपने नेता को लेकर मेरे पास चले आते हैं कि मंत्री से बात करके बहाल कराओ। इन मजदूरों के लड़के संघ की शाखा में जाते हैं, ये खुद जनसंघ को वोट देते हैं और आर्थिक लाभ के लिए लाल झंडे के नीचे आ जाते हैं।

फिर बुद्धिजीवी। हम लेखक। विश्वविद्यालयों के देदीप्यमान दीपक जो अंधकार फैलाते हैं। पत्रकार। हम बुद्धिजीवियों ने इस देश के साथ धोखा किया। इस देश की जनता के साथ घृणित छल किया। हमारे लेखन के द्वारा हमने सांप्रदायिक द्वेष को मिटाने की बिलकुल कोशिश नहीं की। हमने अपने लेखन के द्वारा इस समस्या से जूझा ही नहीं। हमने नासमझी, गैर-जिम्मेदारी और कायरता अख्तियार की। हमने कोई खतरा नहीं उठाया। हममें बहुतेरे तो अमेरिकी फैलोशिप के चक्कर में रहे। बहुत 'कांग्रेस फार फ्रीडम ऑफ कल्चर' और 'मारल रिआर्मामेंट' के मारफत यश और धन लेकर सी. आई. ए. के हाथों खेलते रहे, जिसका इस देश को बाँटने का षड्यंत्र है। हम लेखकों ने सांप्रदायिकता का न पर्दाफाश किया, न उसके खिलाफ लिखा, न बाहर जनता में सांप्रदायिकता से लड़े। सबसे बड़ा पाप तो हमारे सिर पर है। हिंदू लेखकों की कथाओं से मुसलमान पात्र ही गायब हो गए।

हमारे भाई पत्रकारों ने भी यही किया। पत्रकार भी लेखक हैं। वे हमसे अधिक ताकतवर हैं। हमारा लिखा उपन्यास, कहानी, निबंध तो लंबे अरसे में प्रकाशित होता है और इने-गिने लोग उसे पढ़ते हैं। मगर अखबार तो रोज सुबह आदमी के हाथ में होता है। जनमत पत्रकार बनाते हैं। पर अशिक्षित, अर्द्धशिक्षित, विश्वासहीन, निष्ठाहीन, विचारहीन, गैरजिम्मेदार इन पत्रकार बुद्धिजीवियों ने ज्यादातर सांप्रदायिक भेद और उन्माद पैदा किया। ये पत्रकार सांप्रदायिकता से नहीं लड़ते। तथ्य जनता को नहीं बताते। जनता को विवेक नहीं देते। सांप्रदायिक पार्टियों के और सांप्रदायिक जहनियत के अखबार तो यह करेंगे ही। मगर उदार तथा धर्मनिरपेक्ष अखबार भी सांप्रदायिकता फैलाते हैं। मेरठ के दंगे के समय के अखबारों की प्रदर्शनी दिल्ली में लगी थी। जिन्होंने उसे देखा वे कहते हैं कि वे अखबार पत्रकारों का मुँह काला करने को काफी हैं।

फिर मोटी तनख्वाह पाकर विश्वविद्यालयों और कॉलेजों के महान् बुद्धिजीवी आचार्यगण—इन्हें 'नाटो' और 'वारसा' संधि-शक्तियाँ समझ में नहीं आतीं, ब्राह्मण और कायस्थ गुटों का शीत और गर्म युद्ध समझ में आता है। ये इसी विश्वयुद्ध को लड़ते रहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इनका कोई संपर्क इस देश की जनता से नहीं होता। इन्हें कोई चिंता इस देश की नहीं है। ये खुद दकियानूस, पुरोगामी अंधविश्वासी होते हैं। ये राजनैतिक, सामाजिक समझ से शून्य होते हैं। इतिहास पढ़ाते हैं पर ऐतिहासिक शक्तियों को नहीं समझते। विज्ञान पढ़ाते हैं मगर खुद अवैज्ञानिक दृष्टि रखते हैं। कोई सामाजिक दायित्व ये नहीं समझते। पीढ़ी-दर-पीढ़ी भीड़ की भीड़ युवकों-युवतियों की ये विश्वविद्यालयों से निकालते जाते हैं, मगर इन्हें कोई आधुनिक वैज्ञानिक समझ नहीं देते। ये एक के बाद दूसरी पीढ़ियाँ नष्ट करते चले जाते हैं। आज विश्वविद्यालय सांप्रदायिकता, अंधविश्वास, अवैज्ञानिकता और पुरोगामिता के सबसे बड़े अड्डे हैं। जो आचार्य जाति और उपजाति के आधार पर लड़ते हैं, उनसे क्या उम्मीद की जाय कि ये सांप्रदायिक एकता की कोशिश करेंगे।

सुविधाभोगी, कायर, अवसरवादी लेखक, पत्रकार, अध्यापक, बुद्धिजीवी वर्ग ने इस देश और उसकी जनता के साथ बड़ा धोखा किया और करते जाते हैं।

मगर यह भी सही है कि वे कुछ लेखक ही हैं, जो 25 सालों से चिल्ला रहे हैं कि जिसे मामूली फसाद, गुंडों की हरकत, सिरफिरों का पागलपन, असामाजिक तत्त्वों के कार्य कहकर शुतुरमुर्ग की तरह आत्मवंचना की रेत में सिर छिपाकर निश्चिंत हो, वह नंगा फासिस्टवाद है। ये दंगे आकस्मिक नहीं, सुनियोजित होते हैं। सँभलो। मगर हमारे राजनेता न इस बात को समझे, न सँभले। आज जब उनकी गर्दन दबाने को ये फासिस्टवादी तैयार हो रहे हैं, तब वे मिसेज कर्कपेट्रिक का लेख और सी. आई. ए. का 'ब्लु प्रिंट' बार-बार पढ़ते हैं और घबड़ाते हैं।

इतना सब लिखने से यह अर्थ न निकाला जाय कि हालत काबू से बाहर हो गयी है। सब कुछ हारा जा चुका है। ऐसा कतई नहीं। मैंने स्थितियों का विश्लेषण किया है, तथ्य-अन्वेषण किया है और प्रवृत्तियों की सही पहचान बताकर सही नाम दिए हैं। निराशा की कोई बात नहीं है। आशा के लक्षण ज्यादा दिख रहे हैं। एक बहुत अच्छी बात तो यह हुई कि वामपंथी नेतृत्व में वामपंथी लोकतांत्रिक मोर्चे बन रहे हैं, जिनसे सांप्रदायिक दल दूर रखे गए हैं। इससे सांप्रदायिक राजनीति बहिष्कृत अछूत की तरह हो गयी। हमें विश्वास है कि वामपंथी लोकतांत्रिक दलों की यह एकता कायम रहेगी। सामान्य जनता में भी राजनैतिक समझ बढ़ी है और वह सांप्रदायिक गिरोहों के चक्कर में नहीं आती। भारतीय जनता पार्टी की कुछ सीटें जीत लेने का यह अर्थ कतई नहीं लेना चाहिए कि जनता की सांप्रदायिक रुझान बढ़ी है। ये नकारात्मक (नेगेटिव) वोट हैं। ये कांग्रेस के कुशासन के प्रति नाराजी के वोट हैं। जनता की नजर में सांप्रदायिक राजनीति गिरी ही है। इस देश का आदमी वैसे भी परंपरा से और संस्कृति से उदार, सहनशील, लोकतांत्रिक और लोकमंगल की भावना से युक्त है।

बहुत बड़ी आशा की बात यह है कि पिछले 5-6 सालों में प्रगतिशील विश्वासों वाले लेखक सक्रिय और संगठित हुए हैं। अनगिनत नए तरुण लेखक प्रगतिशील संगठनों से संबद्ध हुए हैं और वे न केवल लेखन में बल्कि सामाजिक क्षेत्र में भी प्रगतिशील चेतना का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसार कर रहे हैं। राजनैतिक संगठनों से ज्यादा प्रगतिशील लोक-शिक्षण इस समय लेखक कर रहे हैं। मैं व्यक्तिगत अनुभव से जानता हूँ कि किस तरह शहरों और कस्बों के केंद्र में चिपकायी गयी पोस्टर कविता हजारों लोग पढ़ते हैं, सोचते हैं और शिक्षित होते हैं। यह सिर्फ एक उदाहरण मैंने दिया है। लेखक को अब सक्रिय भी होना है, 'एक्टिविस्ट' होना है। उसे संगठित होना है। यह लड़ाई इस देश में है। यह वास्तविक है। इससे मुँह नहीं मोड़ा जा सकता। समझौता करनेवाले कर लें और 'धिक्कार' के बीच गर्व से जिएँ। मगर वास्तविक लेखकों को यह लड़ाई लड़ना है। इतिहास में ऐसी लड़ाइयाँ हो चुकी हैं और जीत हमारी ही हुई है। फ़ैज के शब्द कहूँ—

यूँ ही हमेशा उलझती रही है जुल्म से खल्क
न उनकी रस्म नयी है न अपनी रीत नयी
यूँ ही हमेशा खिलाए हैं हमने आग में फूल
न उनकी हार नयी है न अपनी जीत नयी।

ज्ञानरंजन द्वारा लंबी बातचीत

प्रश्न—आपने लेखन लगभग किस सन् में आरंभ किया?

उत्तर—मैंने सन् '48 के आसपास लिखना शुरू कर दिया परंतु जमकर मैंने '50-'51 में लिखा।

प्रश्न—यह वह समय था जब भारतीय साहित्य में अलगाव की प्रवृत्ति लेखकों में प्रमुख थी। परंतु आपकी भूमिकाओं तथा 'गर्दिश के दिन' जैसे आत्म-कथ्य से मालूम होता है कि आपने लेखन अलगाव से नहीं, लगाव से शुरू किया—ऐसा क्यों?

उत्तर—मेरे साथ ऐसा हुआ कि एक ओर तो मैं कुछ समय किशोरावस्था में भोगे व्यक्तिगत दुखों और उनकी स्मृतियों से आक्रांत था, दूसरी ओर जबलपुर में मेरा साथ उस समय ऐसे लोगों से हो गया जो साहित्य और राजनैतिक क्षेत्र के बुलंद लोग थे। व्यक्तिगत दुख का मोह 2-3 सालों में समाप्त हो गया। जिन लोगों के साथ मैं था, वे कांग्रेस के भीतर के समाजवादी थे, तथा 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन के 'हीरो' थे। वे उग्र समाजवाद के नारे के साथ कांग्रेस के बाहर आ गए, मैं इनके साथ हो गया। यह आंदोलन तब बहुत उग्र और 'पाजिटिव' था, बाद में 'निगेटिव' हो गया। पर इन वर्षों में एक आंदोलन में शामिल होने का बोध और उत्साह मेरे भीतर था। इसलिए कुंठा, निराशा, निर्वासन, अकेलेपन का प्रश्न ही नहीं था।

दूसरे महायुद्ध के बाद निर्वासन की प्रवृत्ति यूरोप में बढ़ी, उसके विशिष्ट कारण थे। एक तो युद्ध का महानाश, दूसरी ओर फासिस्ट पूँजीवाद और बुर्जुआ लोकतांत्रिक पूँजीवाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बीच के संघर्ष में भौतिक, नैतिक और आत्मिक विनाश हुआ। इसका कोई कारण पश्चिमी यूरोप के बुद्धिजीवी की समझ में नहीं आ रहा था। इसलिए वहाँ के लेखक अपनी नियति के बारे में अनिश्चित हो गए। सामूहिक नाश भोगे हुए लोग व्यक्तिगत हालत से घबरा उठे, ऐसे में उनकी आस्थाएँ टूट गयीं। वे उस परिवेश में अपने को अकेला और निर्वासित महसूस करने लगे। ध्यान देने की बात यह है कि आखिर इन लेखकों, कवियों में पुनर्निर्माण का उत्साह क्यों नहीं है? उसी समय रूस का हर कवि नष्ट कारखाने के फिर खड़े होने में उल्लसित होता था और कविता लिखता था। जबकि पश्चिमी यूरोप में पुनर्निर्माण के बावजूद लेखक निराश, कुंठित और निर्वासित अनुभव कर रहा था।

भारत में स्वतंत्रता आयी ही थी, युद्ध का विनाश इस देश ने नहीं भोगा था। विभाजन और नरसंहार अवश्य भोगा था। नव स्वतंत्र देश में निर्माण के उत्साह के बजाय निराशा और कुंठा आखिर क्यों थी? कारण—एक तो यह है कि स्वतंत्रता आंदोलन में भावुकता अधिक थी और आर्थिक-सामाजिक क्रांति के तत्त्व लगभग नहीं थे। हमने स्वतंत्रता में बहुत जल्दी बहुत अधिक आशा कर ली और एक क्रांति के बाद निर्माण का जो उत्साह होता है वह गायब था। फिर बहुत जल्दी राजनैतिक-आर्थिक-सामाजिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार फैल गया। उस समय जो लिखा गया उसके कुछ कारण तो ये थे, पर ऐसा लेखन बहुत कुछ झूठा और नकल थी।

प्रश्न—आपके लेखन में राजनैतिक चेतना की शुरुआत कब से होती है? इसके पीछे जीवन की शिक्षा है, कोई घटना, कोई व्यक्ति या कोई विचारधारा?

उत्तर—आरंभ में ही राजनैतिक लोगों के साथ रहने के कारण राजनैतिक चेतना मुझमें थी। वे लोकतांत्रिक समाजवादी लोग थे जिनके नेता जयप्रकाश नारायण थे। पहले आम चुनाव में इनका सफाया हो गया। इनमें खीझ आयी और 'फ्रस्ट्रेशन' आया और ये टूट-फूट गए। संयोग से तभी मेरा संपर्क कम्युनिस्ट पार्टी से हुआ और मार्क्सवादी दर्शन तथा साहित्य से मेरा परिचय हुआ। अध्ययन से और साम्यवादियों के संपर्क से मैंने बहुत कुछ सीखा। अब मेरी दृष्टि साफ है। मैं श्रमिक आंदोलन से भी तभी संबद्ध हो गया। मेरा अनुमान है कि सन् '53-'54 में मार्क्सवाद के प्रभाव में आ गया। तभी मेरा संपर्क मुक्तिबोधजी से हुआ और उन्होंने मेरे मार्क्सवादी विश्वासों को मजबूत किया तथा दृष्टि को बिलकुल साफ और सही कर दिया।

प्रश्न—आपके नाम के साथ व्यंग्य-शिल्पी, व्यंग्यकार-जैसे शब्द जुड़ गए हैं। अर्थात् आपका व्यक्तित्व मूल रूप में, या कहें केवल व्यंग्य-लेखक का मान लिया गया है। आपने व्यंग्य-माध्यम ही अभिव्यक्ति के लिए क्यों चुना?

उत्तर—एक तो इस प्रकार का लेबिल लगाना ठीक नहीं है, परंतु जिम्मेदारी कुछ मेरी भी है। मैंने यह तय करके लिखना शुरू नहीं किया कि व्यंग्य नाम की चीज ही लिखूँगा। वास्तव में हर लेखक जीवन की खोज और समीक्षा करता है और जीवन से साक्षात्कार करता है। इसके लिए किसी विशिष्ट शैली या रूप का चुनाव सहज ही हो जाता है। मैंने वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखा है जो दूसरे लेखकों ने दूसरे ढंग से लिखा है पर कुछ तो मेरी मानसिक प्रवृत्ति और चेतना तथा सामाजिक जीवन के प्रति मेरी प्रतिबद्धता थी जिसके कारण मैंने विसंगतियों, विकृतियों, अन्याय, शोषण, पाखंड, दोमुँहापन, ढोंग इत्यादि को पकड़ा। इस पर लेख भी लिखा जा सकता है या अखबारी टिप्पणी भी। पर एक रचनाकार के नाते इन्हें अभिव्यक्त करने के लिए मुझे व्यंग्य का माध्यम अनुकूल पड़ा।

प्रश्न—आपके पहले से और आपके समय में भी हास्य और विनोद की परंपरा थी। आपने हास्य और विनोद की इस परंपरा का जान-बूझकर त्याग किया था?

उत्तर—हास्य-विनोद अच्छी चीजें हैं। हँसना स्वास्थ्य का लक्षण है, पर हर बात पर हँसना गैर-जिम्मेदारी और मूर्खता है। जीवन में हर बात पर हँसी नहीं आती। किसी बात पर करुणा पैदा होती है, किसी से घृणा होती है, किसी से क्रोध होता है। इसलिए केवल विनोद और हास्य का लहजा गैर-जिम्मेदारी का काम है। कोई हास्य-लेखक पीटनेवाले पर भी हँसे कि कैसे मजे में पीट रहा है और पिटनेवाले पर भी हँसे कि कैसे मजे में पिट रहा है, तो ऐसे लेखक को आप क्या कहेंगे? जानवर कहेंगे न? मगर जानवर हँसते नहीं हैं, मेरा मतलब है यह समझ चाहिए कि क्या हँसने लायक है क्या रोने लायक है, अर्थात् सहानुभूति तय होनी चाहिए। इसके लिए लेखक को ठिठोली और छिछोरापन छोड़ करके सामाजिक जीवन में अपने को शामिल करना होता है, उसकी संबद्धता होनी चाहिए, यहीं से मात्र हास्य-विनोद और सामाजिक चेतनासंपन्न व्यंग्य अलग हो जाता है।

प्रश्न—क्या आप व्यंग्य को स्वतंत्र विधा मानते हैं?

उत्तर—इसका जवाब लेना चाहिए शास्त्रियों से। मेरे मत में व्यंग्य कोई विधा नहीं है। इसका अपना कोई 'स्ट्रक्चर' नहीं है। यह एक 'स्प्रिट' है, जो हर विधा में आ सकती है। कहानी में, नाटक में, उपन्यास में। बर्नार्ड शॉ का प्रधान स्वर व्यंग्य है, लेकिन उनका मूल्यांकन नाटककार के रूप में होता है। व्यंग्य कविता से लेकर उपन्यास तक में आ सकता है।

प्रश्न—जीवन के प्रति व्यंग्य का लहजा क्या हमें दार्शनिक रूप से एक अस्थिर और सिनिक नहीं बना देता?

उत्तर—व्यंग्य एक पाजिटिव चीज है, उसे नकारात्मक नहीं मानना चाहिए। व्यंग्य लेखक यही तो बताता है कि समाज में यह बुरा है, यह असंगत है, यह अकल्याणकारी है। वह ऐसा इसलिए करता है कि क्योंकि वह दुखी है कि इतना बुरा क्यों हुआ? वह एक बेहतर मनुष्य, एक बेहतर समाज-व्यवस्था के प्रति आस्था रखता है इसलिए जो बुराई आज उसे दिखती है उसे इंगित करता है। डॉक्टर अगर मरीजों को रोग बताता है तो वह निराशावादी, नकारात्मक और 'सिनिकल' नहीं है, वह आदमी को स्वस्थ करना चाहता है, इसलिए रोग बताता है। अगर वह रोगी से कह दे कि वह तो स्वस्थ है तो वह मर जाएगा। यह लहजा क्या सकारात्मक है?

प्रश्न—परसाईजी, मैं आपके सामने एक समस्या रख रहा हूँ। यह बताएँ कि व्यंग्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगर विसंगति में ही पैदा होता है, जैसा आप मानते हैं, तो क्या यह विधा संसार के साहित्य में अस्थायी तौर पर है? जब सारी दुनिया समाजवादी संगति में व्यवस्थित हो जाएगी तो व्यंग्य कहाँ जाएगा?

उत्तर—यह सही है कि पूँजीवादी व्यवस्था में सामाजिक, आर्थिक विषमताएँ बहुत होती हैं, अन्याय और ढोंग भी भरपूर होता है, इसलिए पूँजीवादी व्यवस्था में व्यंग्य के मुद्दे बहुत होते हैं, लेकिन समाजवाद स्थापित होने के बाद व्यंग्य की जरूरत नहीं रहेगी, ऐसी बात नहीं। वास्तव में दो मनुष्य, उनका चरित्र, उनके काम करने के तरीके, कभी एक-जैसे नहीं हुए। समाजवादी व्यवस्था में भी व्यक्ति और समाज में विसंगतियाँ रहेंगी। जहाँ समाजवाद है, वहाँ ये हैं और उन पर लिखा जा रहा है। रूस में नौकरशाही की बहुत विसंगतियाँ हैं। सरकारी फार्मों, सहकारी दूकानों में विसंगतियाँ हैं, कारखाने के मैनेजर तरह-तरह के होते हैं और उनमें तरह-तरह की सनक भी होती है, अतिक्रांतिकारिता के उबाऊ नारे भी होते हैं।

यह कल्पना नहीं की जा सकती कि रूस के किसी सहकारी स्टोर में अच्छे विदेशी जूते आए हों और स्टोर के मैनेजर ने उनमें दो-चार जोड़ी अपने लोगों के लिए बुक न कर लिए हों, यह होता है और रूसी लेखक इस तरह के व्यंग्य भी करते हैं। रूसी पत्रिका 'क्रोकोडाइल' में छपा एक व्यंग्य बताता है।

को-आपरेटिव स्टोर पर नोटिस लगा था—पाँच सौ इटालियन जूते अमुक साइज के आए हैं, इनमें से चार सौ पचास जोड़ी की माँग पहले से बुक है, उन्चास जोड़ी कार्यकर्ताओं ने ले लिये हैं, अब एक जोड़ी बचा है, सब ग्राहकों से अनुरोध है कि वे आकर उस जूते को देख लें और अपनी पसंद का ले जाएँ। और उदाहरण हैं। एक रूसी उपन्यास 'पाट होल्स' में है। सहकारी कृषि फार्मों का सेक्रेटरी एक मरते हुए आदमी को चार-पाँच मील दूर डॉक्टरों के पास नहीं ले जाने देता। वह कहता है कि ट्रैक्टर खेती के लिए है, दूसरे काम के लिए नहीं। उसे आखिर किसी तरह डॉक्टर के पास तक ले जाया जाता है, पर डॉक्टर उसे देखकर कहता है कि यह अभी-अभी मर गया। क्या तुम इसे कुछ पहले नहीं ला सकते थे? उसके साथ के लोग उसे बताते हैं कि सहकारी फार्म के सेक्रेटरी ने ट्रैक्टर नहीं दिया। डॉक्टर खीझकर कहता है—वह एक नौकरशाह है जो हत्यारा हो गया। देखिए, विसंगतियाँ हर मनुष्य-समाज में होती हैं, वे चाहे कम हों, उनका रूप बदला हुआ हो और उनका प्रतिफलन चाहे उतना घातक न हो।

प्रश्न—आपकी धारणा है कि आप सुधारवादी नहीं हैं, आप परिवर्तन के लिए लिखते हैं, या लिखना चाहते हैं। कृपया यह बताएँ कि योजना आयोग, विज्ञान संस्थाएँ, न्यायपालिका, संसद, प्रकाशन संस्थान, रेडक्रास, सामाजिक क्लब, कानून और परिवार—ये सभी संसदीय तंत्र, वर्तमान हालत में लेखन शास्त्र और लेखन शस्त्र में परिवर्तित हो सकेंगे? क्या साहित्य में क्रांतिकारी परिवर्तन हो सकेगा?

उत्तर—मैं सुधार के लिए नहीं बल्कि परिवर्तन के लिए लिखता हूँ, यह कहने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मेरा यह अर्थ नहीं है कि मैं और मेरे-जैसे परिवर्तनकामी लेखक केवल लेखन में समाज बदल देंगे। ऐसा दावा करना तो अहंकार और मूर्खता है। क्रांतिकारी परिवर्तन, क्रांतिकारी आंदोलन से ही होते हैं। भारत में एक प्रयोग जैसा हो रहा है। जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय बुर्जुआ के नेता थे, परंतु उन्होंने सार्वजनिक उद्योग क्षेत्र खोल दिया और योजना आयोग बैठा दिया। आयोग पूँजीवाद की नहीं, समाजवाद की चीज है, इससे कम्युनिस्ट और गैर-कम्युनिस्ट दोनों भौचक थे। ये कैसा बुर्जुआ है, जो 'पब्लिक सेक्टर' खोलता है? जवाहरलाल संसदीय तरीके से धीरे-धीरे समाजवाद को विकसित करना चाहते थे। 'पब्लिक सेक्टर' का विस्तार होता जाएगा, वह कभी जाकर 'प्राइवेट सेक्टर' को खतम कर देगा, ऐसा यह प्रयोग है। साम्यवादी पार्टियाँ भी रणनीति के हिसाब से ही सही संसदीय मार्ग अपना रही हैं। उन्हें काम करने के लिए संसदीय लोकतंत्र की आवश्यकता भी है। योजना आयोग, न्यायपालिका, शिक्षा-पद्धति आदि पूँजीवादी तंत्र की है, समाजवाद की नहीं, इसलिए देखा जा रहा है कि 33 वर्ष बाद भी कोई विशेष परिवर्तन हुआ नहीं। मेरा खयाल है कि पूरी व्यवस्था को बदले बगैर कुछ होनेवाला नहीं है और इसके लिए वर्ग-संघर्ष जरूरी मालूम होता है, ऐसे वर्ग-संघर्ष की तैयारी कब होगी यह मैं नहीं कह सकता। हम लेखक कुल इतना कर सकते हैं कि इस व्यवस्था की सड़ाँध को उजागर करें और परिवर्तन की चेतना का निर्माण करें।

प्रश्न—'वैष्णव की फिसलन' की भूमिका में आपने लिखा है कि कुछ लोग आपकी रचना 'अकाल उत्सव' पढ़कर सोचने लगे हैं कि लेखक का विश्वास संसदीय लोकतंत्र से उठ रहा है। श्याम बेनेगल की फिल्म 'अंकुर' और आपके 'अकाल उत्सव' के अंत में हिंसा का संकेत है। आपने अपनी भूमिका 1973 में लिखी थी और कहा था कि इस आरोप का उत्तर अभी मैं नहीं दूँगा। क्या आज 7 वर्ष बाद आप कोई उत्तर दे सकते हैं? उसी भूमिका से मैं आपका एक वाक्य दोहराता हूँ कि "इतिहास एक हद तक समय देता है, मेरा खयाल है हमें तीन सालों से ज्यादा का समय नहीं है।"

उत्तर—'अकाल उत्सव' जैसी और भी कहानियाँ मैंने लिखी हैं। एक कहानी 'चूहा और मैं' है। इसमें हिंसा का संकेत है। यह अजब बात है बल्कि षड्यंत्र है कि जब शोषित लोग लड़ने लगते हैं तब ही यह शोर हो जाता है कि हिंसा हो रही है। शोषक वर्ग की हिंसा सिर्फ 'लॉ एंड आर्डर प्राबलम' कहलाती है। शासन की हिंसा संवैधानिक बन जाती है।

एक प्रश्न है—'न्यूनतम मजदूरी'। खेत-मजदूरों को न कांग्रेस सरकार दिला सकती है न वामपंथी मोर्चे की सरकार। यह तथ्य है। न्यूनतम मजदूरी का कानून संसद और विधानसभा द्वारा पास करके रखा हुआ है। सरकार के आदेश हैं, इसके लिए अलग विभाग भी है और प्रोपेगेंडा, मशीनरी भी। मगर खेत-मजदूरों को 'न्यूनतम-मजदूरी' नहीं दिलायी जा सकी, वे माँगते हैं तो उनकी पिटाई। जमींदार, पुलिस, श्रम-विभाग के अफसर, स्थानीय विधायक, संसद-सदस्य तथा प्रदेश का राजनैतिक नेतृत्व सब मिले हुए हैं। ऐसी हालत में खेत-मजदूर क्या करे? वह यह करता है कि संगठित होकर, हथियार धारण करता है और किसी जमींदार को मार डालता है और इस आतंक के कारण क्षेत्र के डरे हुए भूमिपतियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से न्यूनतम मजदूरी ले लेता है। फिर पुलिस आती है, मिलिट्री आती है, सभी बच्चों-पुरुषों को मार डालती है, गाँव नष्ट कर देती है। मगर मजदूर संगठित होकर फिर वही करता है जिसे नक्सलवाद नाम दिया गया है। वह इन्हीं हालातों में पैदा हुआ है। आम आदमी का विश्वास लोकतांत्रिक संस्थाओं पर से डिग रहा है, क्योंकि वे कारगर नहीं हैं और शोषक वर्ग का साथ देती हैं। 1973 में आसार दिखने लगे थे कि इस व्यापक जन-असंतोष और क्रोध का उपयोग 1971 के चुनाव में हारे हुए दक्षिणपंथी, प्रतिक्रियावादी राजनैतिक दल करेंगे। उन्होंने '74-'75 में किया। 'संपूर्ण क्रांति' का आंदोलन इन्हीं दलों ने जनता से कराया। हालाँकि वह जन-विरोधी आंदोलन था। एशिया, अफ्रीका के पिछड़े हुए तथा विकासशील देशों में या तो कम्युनिस्ट सरकारें हैं या फौजी तानाशाही है। संसदीय लोकतंत्र कहीं नहीं है। श्रीलंका और मिस्र में राष्ट्रपति की तानाशाही कायम हो गयी। 1980 के चुनाव में जनता ने फिर से दो-तिहाई बहुमत से कांग्रेस (इंदिरा) को सत्ता सौंप दी। अब यदि लोगों की अपेक्षाएँ पूरी नहीं हुईं तो उन पर यह प्रतिक्रिया होगी कि संसदीय लोकतंत्र की आखिरी परीक्षा हो गयी, अब क्या हो? इंदिरा गाँधी कहती हैं, 'लोगों की इच्छाएँ पूरी नहीं हुईं तो लोकतंत्र को लात मार देंगे।' तब क्या ऐसी स्थिति आएगी कि वामपंथी क्रांतिकारी आंदोलन के काफी संगठित और ताकतवर न होने के कारण या तो इंदिरा गाँधी संवैधानिक तानाशाही ले आएँ या फौज का शासन हो जाए? ये प्रश्न विचारणीय हैं। इस स्थिति को तभी बचाया जा सकता है जब वामपंथी ताकतें बहुत तेजी से बढ़ें और विकल्प का रूप धारण करें।

प्रश्न—कबीरदास की असफलता के क्या कारण थे? वही कारण क्या आपकी असफलता के नहीं हो सकते?

उत्तर—कबीरदास कवि थे। आंदोलनकर्ता नहीं। मैं भी लेखक हूँ, आंदोलनकर्ता नहीं। लेखन की क्षमता और परिणामों की सीमाएँ होती हैं। कबीरदास पर निर्णय ऐसे नहीं दे सकते कि वे सफल हुए कि असफल। देखना होगा कि कबीरदास का क्या उद्देश्य था। कबीरदास विद्रोही थे। धार्मिक और दार्शनिक क्षेत्र में वे मूर्तिपूजा और कर्मकांड के विरोधी थे तथा सामाजिक क्षेत्र में वे जातिवाद के विरुद्ध थे। काव्य में उनका आंदोलन लोकतांत्रिक आंदोलन है। पर आंदोलन बहुत फैला। जितने भी कवि हुए और वे नीची जातियों के हुए, जिन्होंने समता और लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना के लिए काव्य रचा। अब जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैंने कभी यह दावा नहीं किया कि मेरे लेखन मात्र से कोई परिवर्तन हो जानेवाला है। असंख्य लोग हैं—मजदूर हैं, किसान हैं, गरीब लोग हैं, जो परिवर्तन के लिए लड़ रहे हैं। यही सफल होंगे, मैं इनके साथ कलम लेकर पैदल चलनेवाला हूँ।

प्रश्न—घोर अवसरवाद के झंझावात में विरुद्ध खड़े रहने का काम आगे बढ़ा है क्या ? क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि हास्य-व्यंग्य का साहित्य खतरों की तुलना में यशोपार्जन, धनोपार्जन से ही ज्यादा जुड़ा है?

उत्तर—साहित्य मात्र से अब यश और धन मिलते हैं। इन्हें कोई नकार नहीं सकता। केवल व्यंग्य लिखनेवाले से ही यश और धन के प्रति निर्मोही होने की और खतरा उठाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
की अपेक्षाएँ नहीं होनी चाहिए। खतरे हर प्रकार के लेखन में हैं—कविता में, उपन्यास में। आजादी की लड़ाई के जमाने में यह जो गीत था—'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा', यह काव्य तो नहीं है पर खतरनाक नारा था और इसे गाते हुए लाखों लोग जेल गए। खतरे का सवाल इस तरह पैदा होता है कि जो लिखा गया है वह किन हितों के विरुद्ध है? और उसकी कितनी व्यापक अपील है। 'इमर्जेंसी' के वक्त तो यह लिखना कि शहर में 'तेल की कमी है' खतरे से खाली नहीं था, फौरन प्रेस में खुफिया और सेंसर के लोग आ जाते थे। यह सही है कि बहुत कुछ जो व्यंग्य और विनोद के नाम पर लिखा जा रहा है, तीव्र सामाजिक चेतना से हीन है। इसमें गुदगुदाने और हँसाने की प्रवृत्ति ही देखी जाती है। कुछ लेखक अर्थसत्ता और राज्यसत्ता की मुँहदेखी भी करते हैं, कुछ लेखक बहुत अच्छे हैं मगर ऊँची सरकारी नौकरी पर। वे तो मेरी तरह नौकरी खोने का खतरा नहीं ले सकते। कुछ लेखक निश्चित रूप से और जान-बूझकर शोषक वर्ग के समर्थन में लिखते हैं। ये भी व्यंग्य लिखते हैं, पर इनकी चोट जनवादी शक्तियों पर होती है, ये धन और सुरक्षा के लिए ऐसा करते हैं। कुछ लेखक हैं जो लोकप्रिय भी हैं, जिनकी भाषा सधी हुई है, खूब पढ़े भी जाते हैं, लेकिन सामाजिक-राजनैतिक रूप से मूर्ख हैं। प्रगतिशील लेखन आंदोलन का विरोध कुछ संपादक, लेखक जिम्मेदारी के कारण करते हैं तो कुछ मूर्खता के कारण। ये शासन के पीछे खड़े होकर दुम हिला रहे हैं और समझते हैं कि वह हम चला रहे हैं। कुछ ऐसे लेखक भी हैं जिनसे कुछ भी लिखवाया जा सकता है। परंतु नयी पीढ़ी के लेखकों में मैंने देखा है कि तीव्र सामाजिक चेतना आ रही है, वे लेखन को केवल मनोरंजन नहीं मानते। उनमें वर्ग-चेतना भी है। अभी मैंने कुछ नए व्यंग्य-लेखकों के संग्रहों की भूमिका देखी। मैं उसे पढ़कर चमत्कृत हो गया कि बीस साल से जो मैं चिल्ला रहा हूँ वह इन नये लेखकों ने स्वीकार किया है। यह सही है कि प्रकाशन एक वर्ग के हाथ में होने के कारण दबाव बहुत है, पर फिर भी बहुत अच्छा लेखन चाहे न रहा हो लेकिन चेतना बराबर बढ़ रही है।

प्रश्न—पश्चिम के उल्लेखनीय साहित्य में आज व्यंग्य की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति नाटक की विधा में देखी जा रही है। क्या आप इस दिशा में भी प्रयास करने जा रहे हैं या आप किसी विशेष विधा की गतिशीलता के साथ उसमें अनुशासन को नापसंद करते हैं?

उत्तर—नाटक बहुत सशक्त माध्यम है। मैं भी महसूस करता हूँ कि नाटक के माध्यम से व्यंग्य अधिक कारगर हो सकता है। कुछ छुटपुट एकांकी के बिना कोई नाटक मैंने लिखा ही नहीं। इसका एक कारण तो यह है कि निबंध, कहानी, कालम आदि में मैं अपने को अभिव्यक्त कर लेता हूँ। असल में जितने जमकर और साधकर नाटक लिखा जाता है उतना समय और सुविधा मुझे कभी नहीं मिली। नाटक लिखना जरूर चाहता हूँ और आगे लिखूँगा। हर विधा का अपना अनुशासन होता है और नाटक में अनुशासन के प्रति मेरा उपेक्षा भाव नहीं है, बल्कि उस अनुशासन को निभाने में मैं अभी समर्थ नहीं हो पाया।

प्रश्न—सम्मान, पारितोषिक और अभिनंदन के संबंध में आपकी धारणा क्या है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय देश में कई स्तरों पर कई प्रकार से ये पुरस्कार जारी हैं? क्या आप ऐसे किसी संस्थान या राज्य संस्था से पुरस्कार लेना मंजूर करेंगे जो साहित्यकारों के बारे में गैर-साहित्यिक कारणों से निर्णय करती हों?

उत्तर—सम्मान और धन किसी को बुरा नहीं लगता। मुझे किसी अभिनंदन समारोह में माला पहनने और अभिनंदन-पत्र लेने में कोई रुचि नहीं है। मेरी रुचि उस पैसे के ऊपर है जो मिलता है। कोई मेरा सम्मान करना चाहे तो मैं उससे कहूँगा कि मुझे देने के लिए धन का इंतजाम तुम कर लो और अभिनंदन-पत्र मैं खुद लिखकर छपा लूँगा। सच्चा सम्मान तो वह है जो पाठकों से मिलता है, या आम जनता से। पुरस्कार या तो राज्य सत्ता देती है या पैसेवाले लोग। इनमें केवल साहित्यिक कारणों से निर्णय होता हो और ऐसा भी नहीं है कि साहित्यिक गुणों की कोई अवहेलना होती हो, यह जरूर है कि पुरस्कार देनेवाले के अपने वर्ग-हित, मान्यताएँ और विश्वास निर्णय पर प्रभाव डालते हैं।

यशपाल के उपन्यास 'झूठा सच' को साहित्य अकादमी पुरस्कार न देना गैर-साहित्यिक कारणों से हुआ। मैंने एक बार उत्तरप्रदेश साहित्य-परिषद का और एक बार म. प्र. कला परिषद का पुरस्कार लिया। म. प्र. कला परिषद ने एक बार मेरा सम्मान भी किया था। कला परिषद शासकीय संस्था है। मैं कांग्रेस सरकारों का विकट आलोचक रहा हूँ। पर मेरा सम्मान किया गया। प्रश्न यह है कि लेखक क्या पुरस्कार के लिए समझौता करता है? यदि नहीं तो पुरस्कार लेने में कोई हर्ज नहीं है। हमारे देश में अभी ऐसा नहीं हुआ है जैसा 'नोबल प्राइज' के साथ हो गया है कि पुरस्कार के साथ विशेष प्रकार की पक्षधरता जुड़ गयी है। फिर यह निर्णय करना भी संभव नहीं है कि अमुक संस्था गैर-साहित्यिक कारणों से पुरस्कार देती है। इसलिए इस संबंध में कोई नियम नहीं बनाया जा सकता।

प्रश्न—आप स्वभाव से बेचैन, मित्रवत्, भावुक, साहित्यिक, निर्मल, अंतरंग और मानवीय हैं और आपकी वैचारिकता संघर्षपूर्ण है—यह स्थिति आधुनिक क्लैसिक की रचना के सर्वथा उपयुक्त है, फिर इसका लाभ आपने अभी तक क्यों नहीं उठाया?

उत्तर—क्लैसिक इरादा करके नहीं लिखा जाता, बल्कि वह हो जाता है। क्लैसिक के लिए अन्य बातों के अलावा संपूर्ण जीवन का चित्रण होना चाहिए। मैं खंड-खंड चित्रण करता हूँ। शायद मुझमें 'एपिक टेलेंट' नहीं है और मैं परंपरागत अर्थों में महाकाव्य या उपन्यास नहीं लिख सकता। 'फैंटेसी' मुझसे सधती है। मेरा बहुत कुछ सोचना फैंटेसी में होता है। मैं अब कोशिश कर रहा हूँ, कोई लंबी 'फैंटेसी' लिखूँ, जैसी 'डान क्विक्ज़ोट' है।

प्रश्न—जब आपने सन् '52-'55 के आसपास 'फ्रीलांसिंग' शुरू किया तब लेखन का न अच्छा पारिश्रमिक था और न प्रकाशन की अच्छी सुविधाएँ और न कालम-लेखन की कोई ऐसी परंपरा, फिर आपने यह खतरा कैसे उठाया?

उत्तर—मैं हाईस्कूल में अध्यापक था। लिखने की तीव्र प्रेरणा मेरे भीतर थी। मेरा सबसे अच्छा समय और बहुत-सी शक्ति स्कूल में चली जाती थी। मैंने स्वतंत्र लेखन का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
फैसला किया। तब इसलिए कर लिया कि मैं अकेला था। मेरी बहन के परिवार का उत्तरदायित्व नौकरी छोड़ने के 6 माह बाद आया और मैं सचमुच घबड़ा गया। मेरे पास शिक्षण शास्त्र की डिग्री थी। मैं अध्यापक फिर से कभी भी हो सकता था। इसके अलावा स्थानीय एक दैनिक पत्र में मेरा नियमित कालम चल रहा था। मैंने बहुत तीव्र गति से लिखा और प्रकाशन और पारिश्रमिक की स्थितियाँ बेहतर होती चली गयीं। जैसी मेरी नौकरी थी वैसे मेरे 'कालम' हो गए। कठिनाइयाँ बहुत आयीं, पर मैं बिलकुल असुरक्षित कभी नहीं रहा।

श्यामसुंदर मिश्र से चर्चा*

(वर्तमान राजनैतिक परिदृश्य के भीतर विद्यमान दिशाहीनता और भटकाव उस इतिहास की उपज है, जिसके सूत्रों का निर्धारण कांग्रेस के नेतृत्व में चलनेवाले स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हुआ था। कांग्रेस के वर्गसमाजी चरित्र के भीतर नेहरू-युग में भी दक्षिणपंथी विचारधारा के नेताओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी, और आज भी इंदिरा कांग्रेस के भीतर सत्तालोलुप अवसरवादी तत्त्वों की भरमार है। कांग्रेस को अपदस्थ करने के लिए तत्पर विरोधी दलों में प्रतिक्रियावादी दक्षिणपंथियों का आधिक्य है, और वामपंथी जनवादी एकता के पैरोकार आपस में विभाजित हैं। इन स्थितियों और साहित्य की भूमिका पर हिंदी के वरिष्ठ साहित्यकार व्यंग्य शिल्पी श्री हरिशंकर परसाई से डॉ. श्यामसुंदर मिश्र की लंबी बातचीत प्रस्तुत है।

—संपादक)

डॉ. मिश्र—परसाईजी, स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों और उस समय के मूल केंद्रीय राजनैतिक आंदोलन के संबंध में आपके क्या विचार हैं?

परसाई—मिश्रजी, स्वाधीनता आंदोलन की मुख्य धारा कांग्रेस की थी जिसका नेतृत्व 1920 से पूर्णतया महात्मा गाँधी के हाथ में रहा है। गाँधीजी ने स्वाधीनता संग्राम को कार्य-पद्धति (मैथडालॉजी) दी जो गोखले और तिलक की पद्धतियों से भिन्न थी। तिलक उग्रवादी थे। यहाँ तक कि मैंने एक अंग्रेज लेखक की पुस्तक गुरिल्ला युद्ध के नेताओं और चिंतकों के बारे में पढ़ी, जिसमें माओत्से-तुंग, फिडेल कास्त्रो, चे-ग्वे-वारा पर तो लिखा ही है, एक अध्याय बाल गंगाधर तिलक के बारे में भी है। लेखक ने उनके लेखन के उदाहरणों से यह सिद्ध किया है कि वे गुरिल्ला युद्ध में विश्वास रखते थे और उसकी तैयारी भी करते

* आजादी के पहले और बाद की राजनीति और साहित्यकार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। गोखले समझौतावादी थे, और अंग्रेज सरकार द्वारा स्थापित समितियों, कौंसिलों आदि में प्रवेश कर कार्य करना चाहते थे। गाँधीजी ने इस देश के मनुष्य की मानसिकता और क्षमता ठीक समझी थी और तदनुसार रणनीति तय की थी। वे जानते थे कि सशस्त्र संघर्ष करने लायक लोग नहीं हैं। वे यह भी जानते थे कि सशस्त्र संघर्ष शुरू किया तो ब्रिटिश सरकार को बेहिसाब हिंसा करने का तर्क मिल जाएगा और वह अपनी संसद तथा विश्व-जनमत को यह विश्वास दिला सकेगी कि हिंसा का सामना करने के लिए हमें हिंसा करनी पड़ी। इसलिए गाँधीजी ने अहिंसक आंदोलन चलाया, जिसमें कानून तोड़ना, असहयोग, सत्याग्रह, धरना इत्यादि थे। पूर्ण अहिंसक आंदोलन के सामने अंग्रेज सरकार की हिंसा करने की क्षमता बहुत कम हो गयी। गाँधीजी ने इसमें आध्यात्मिक और धार्मिक तत्त्व भी मिलाए। लोक-कल्याण, जोकि अव्याख्यायित ही रहा, उसे भी मिलाया। हरिजन-उद्धार, नारी-मुक्ति आदि भी इसमें शामिल किए। यह पूरा आंदोलन एक विशेष प्रकार की भावुकता से ओतप्रोत था और सामान्य लोग इसमें मातृभूमि की भक्ति की भावना से शामिल होते थे। जो नारे लगते थे वे इस तरह के होते थे—गुलामी के घी से आजादी की घास अच्छी! इंकलाब जिंदाबाद : उजड़े घर होंगे आबाद! इस नारे में आजादी की खुशहाली की भावना भी है।

डॉ. मिश्र—परसाईजी, यह आंदोलन लंबा और व्यापक था। गाँधी के सिवाय इस दौरान पं. नेहरू-जैसे नेता भी कार्यशील थे। क्या विचारधारावाला तत्त्व इनमें से किसी के पास मौजूद था?

परसाई—मिश्रजी, पं. नेहरू विचारों से रेडीकल थे। उनका विश्वास समाजवाद में भी था, और 1930 की लाहौर कांग्रेस में उन्होंने समाजवाद को आजादी का लक्ष्य भी घोषित किया था। गाँधीजी के बाद सबसे आकर्षक जननेता वही थे। पं. नेहरू के विचार विभिन्न विचारधाराओं से बने थे। एक तो ब्रिटिश फेबियन समाजवादियों के प्रति उनका गहरा आकर्षण था। बर्नार्ड शॉ, एच. जी. वेल्स इत्यादि से वे प्रभावित थे। उन पर हेराल्ड लॉस्की के विचारों का भी प्रभाव था। वे 1917 की सोवियत समाजवादी क्रांति से भी अत्यधिक प्रभावित थे, और लेनिन के प्रति उनके मन में आदरभाव था। वे मार्क्सवाद के अध्येता थे, और मार्क्स के विचारों का उन पर गहरा असर था। उनकी इतिहास-दृष्टि मार्क्सवादी थी, और वे ऐतिहासिक द्वंद्वात्मकता में विश्वास करते थे। उन्हें ऐतिहासिक शक्तियों की समझ भी गहरी थी। वे समाज का विश्लेषण भी वर्ग-दृष्टि से करते थे, परंतु वे वर्ग-संघर्ष को अनिवार्य नहीं मानते थे। उन्होंने 1951 में यहाँ तक कहा था कि मार्क्स का दर्शन औद्योगिक क्रांति के आरंभिक वर्षों का है, और अब विपुल औद्योगीकरण के इस युग में उतना प्रासंगिक नहीं रहा है। नेहरू पर गाँधीजी के व्यापक मानवतावाद, नैतिक मूल्य, साधन और साध्य की पवित्रता इत्यादि का असर भी था। वे वर्ग-समाजी लोकतंत्र से भावुकता की हद तक प्रभावित थे। इसका संबंध आगे उनके प्रधानमंत्री बनने के बाद उनकी योजनाओं से सीधा जुड़ता है। कांग्रेस में जयप्रकाश के नेतृत्व में लोकतांत्रिक समाजवादियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
का भी एक गुट था और 1939 के पहले तक कम्युनिस्ट भी कांग्रेस के माध्यम से ही अपनी राजनैतिक गतिविधियाँ चलाते थे। कांग्रेस में सरदार पटेल, डॉ. राजेंद्रप्रसाद, गोविंदवल्लभ पंत, राजगोपालाचारी के नेतृत्व में बहुत बड़ा तबका दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादी राजनीतिज्ञों का था। ये स्वाधीनता के बाद पूँजीवादी विकास की कल्पना करते थे और जिसे 'कल्याणकारी' राज्य कहते हैं, उस तक उनका ध्येय जाता था। वास्तव में संगठन पर नेहरू का कब्जा नहीं था, इन दक्षिणपंथियों का था।

डॉ. मिश्र—परसाईजी, पं. नेहरू ने 1945 में कम्युनिस्टों और 1946 में समाजवादियों के कांग्रेस से अलग होने के बाद स्वतंत्र भारत के आर्थिक, राजनैतिक विकास के लिए कौन-सा रास्ता अख्तियार किया? इसके सिवाय क्या उन दिनों की परिस्थितियों में और कोई वेहतर विकल्प नहीं था?

परसाई—मिश्रजी, 1947 के बाद सबसे बड़ी समस्या नेहरू के सामने तो भारत के विभाजन के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई। उन्हें हिंसा की कटुता को मिटाना, विस्थापितों को बसाना और काश्मीर बचाना था। यह वह समय था, जब कम्युनिस्ट नेहरू को 'रनिंग डॉग ऑफ इंपीरियलिज़्म' कहते थे और नेहरू कम्युनिस्टों को 'इरैलेवेंट' कहते थे। तेलंगाना के सशस्त्र आंदोलन से नेहरू और कम्युनिस्टों के बीच दूरी बढ़ी। स्टालिन भी नेहरू के साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष की अवहेलना ही करते रहे। समाजवादियों को जल्दबाजी थी। वे पहले आम चुनाव में ही सत्ता पर कब्जा करने की उम्मीद लिये बैठे थे, किंतु उनका पत्ता साफ हो गया। नेहरू चाहते थे कि समाजवादी कांग्रेस में लौट आएँ तो उनकी ताकत बढ़े और वे समाजवादी कार्यक्रम लागू कर सकें। उन्हें विश्वास था कि जब समाजवादी कार्यक्रम लागू किए जाएँगे तो साम्यवादी उनका समर्थन करेंगे। जयप्रकाश ने 1953 में बारह कार्यक्रमों की लिस्ट नेहरू को दी थी कि ये लागू करो तो हम कांग्रेस में लौटने को तैयार हैं। इन कार्यक्रमों में सार्वजनिक उद्योग खोलना, बैंकों का राष्ट्रीयकरण आदि थे। नेहरू ने इन्हें मान लिया, परंतु कहा कि इन पर धीरे-धीरे अमल होगा। तुरंत अमल करने से अर्थव्यवस्था टूट जाएगी। परंतु समाजवादी डॉ. लोहिया के हठ के कारण मुकर गए।

यह तो तय है कि नेहरू वर्ग-संघर्ष को टालना चाहते थे, पर मार्क्सवाद में काफी हद तक उनका विश्वास था, इसलिए उन्होंने योजना आयोग का गठन किया और सार्वजनिक उद्योग क्षेत्र का प्रारंभ किया। उन्होंने 'मोनोपली' को कंट्रोल करने के लिए कानून बनाया। 1956 में 'इंडस्ट्रियल पालिसी एक्ट' भी बनाया। उनकी कल्पना थी कि सार्वजनिक क्षेत्र धीरे-धीरे बढ़ता जाएगा। संसद के द्वारा निजी पूँजी का क्षेत्र घटता जाएगा और तब ऐसा समय आएगा, जब सार्वजनिक क्षेत्र निजी क्षेत्र को नगण्य कर देगा। इसे मिश्रित अर्थव्यवस्था का नाम दिया गया। यह जरूर है कि इस्पात के बुनियादी उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र में खुले, भारी मशीनों और दवाइयों के कारखाने भी सार्वजनिक क्षेत्र में बने, पर क्योंकि कांग्रेस का संगठन लगभग दक्षिणपंथी था, और उसके पास समाजवाद से प्रतिबद्ध 'केडर' भी नहीं था, इसलिए विकास का मार्ग पूँजीवादी रहा। 1954 में नागपुर-कांग्रेस में नेहरू ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहकारी कृषि का प्रस्ताव पास कराना चाहा, पर मोरारजी, चरणसिंह वगैरह ने यह कहकर उसे पास नहीं होने दिया कि यह तो साम्यवाद का रास्ता है। सीधा 'समाजवाद' शब्द का प्रयोग करने में भी कांग्रेस को कई वर्ष लगे। 1956 की अवाड़ी कांग्रेस पहली बार 'समाजवाद' शब्द का उद्देश्य के रूप में प्रयोग किया गया। अब समाजवाद लोक-चेतना में इतना बैठ गया है कि सामंतवादी-पूँजीवादी दल भारतीय जनता पार्टी ने भी समाजवाद को अपना लिया है।

डॉ. मिश्र—वास्तव में परसाईजी, पं. नेहरू की मृत्यु के पश्चात् भारतीय राजनीति में उन मुद्दों पर भी विवाद प्रारंभ हुआ, जो पहली दो पंचवर्षीय योजनाओं के मूलाधार थे। इस भटकाव के लिए कांग्रेस के भीतर कौन-से तत्त्व उत्तरदायी थे? क्या परवर्ती दिशाहीनता के बीज स्वयं कांग्रेस के अंतर्विरोधी चरित्र के भीतर विद्यमान नहीं थे?

परसाई—मिश्रजी, हुआ यह है कि पं. नेहरू की तो विचारधारा थी, परंतु इंदिरा गाँधी की यदि विचारधारा कोई है, तो उसे कहा जाता है 'प्रेगमेटिज़्म' यानी उपयोगितावाद। इंदिराजी व्यावहारिक उपयोगितावादी हैं। उनकी निश्चित विचारधारा नहीं है, परंतु यह जरूर है कि उन्होंने नेहरू की नीतियों को आगे बढ़ाना चाहा। उन्होंने बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया, भूतपूर्व राजाओं के विशेषाधिकार समाप्त किए, सार्वजनिक क्षेत्र का अधिक विस्तार करना चाहा, विदेशनीति में वे सोवियत रूस के अधिक निकट गयी, और गुटनिरपेक्ष आंदोलन को अधिक शक्तिशाली किया।

पं. नेहरू अपने व्यक्तित्व और बौद्धिक क्षमता के कारण कांग्रेस के भीतर विभिन्न विचारधारावाले गुटों, विशेषकर चतुर दक्षिणपंथियों को इकट्ठा और संतुलित रखने में सफल होते थे, परंतु इंदिरा गाँधी को 1969 में कांग्रेस को तोड़ना पड़ा। कांग्रेस के दक्षिणपंथी 'संगठन कांग्रेस' के नाम से कार्य करने लगे। लगता यह था कि यह विभाजन विचारधारा के आधार पर है और अब इंदिराजी वामपंथी कार्यक्रमों की ओर तेजी से बढ़ेंगी।

डॉ. मिश्र—विभाजन के बाद शेष बची कांग्रेस की संरचना भी पूरी तरह वामपंथी नहीं थी। मुझे लगता है कि इंदिराजी चव्हाण और जगजीवनराम-जैसे नेताओं को भी पूर्ण तरह विश्वस्त नहीं मानती थीं। अन्यथा, वे क्या कारण हैं कि 1971 के बाद भी आपातकाल के पहले इंदिराजी के नेतृत्व में वामपंथी कार्यक्रम तैयार ही नहीं किए गए? मोटे रूप में 20 सूत्रीय कार्यक्रम मात्र सुधारवादी भंगिमा का प्रदर्शन था?

परसाई—वास्तव में 1971 में बहुत बड़े बहुमत से जीतने के बाद भी इंदिराजी को अपनी सत्ता के लिए खतरा लगने लगा था। यह खतरा पार्टी के भीतर से था, और बाहर से भी। 1971 में रूस से जो बीस साला सहयोग और मैत्री की संधि की गयी, उससे देश के दक्षिणपंथी दलों को यह खतरा महसूस हुआ कि इंदिराजी लगभग सोवियत शिविर में चली गयी हैं, जबकि बात ऐसी नहीं थी। वैसे यह सही है, इंदिराजी की विदेशनीति स्पष्ट रूप से साम्राज्यवाद-विरोधी थी। उन्होंने वियतनाम के बारे में सख्त अमेरिका-विरोधी रुख अपनाया। वे दुनिया में कहीं भी अमेरिकी हस्तक्षेप का विरोध करती थीं। वे अमेरिकी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूरोपीय बहुराष्ट्रीय कंपनियों के शोषण का भी विरोध करती थीं। इस कारण कांग्रेस के भीतर भी उनका विरोध पैदा हो गया था, और बाहर संगठन कांग्रेस, जनसंघ, चरणसिंह का क्रांतिदल, बचे हुए प्रजा समाजवादी, स्वतंत्र पार्टी के लोग जो पूरी तरह पूँजीवादी मार्ग अपनाना चाहते थे, उनके विरुद्ध संगठित हो गए। विदेशनीति इस विरोध का खास मुद्दा थी। ये सब घोर रूस-विरोधी लोग थे। बाद में इनके जो सर्वोच्च नेता बने वे जयप्रकाश नारायण तो यहाँ तक कहते थे कि इंदिराजी ने देश को रूस के हाथों बेच दिया। वे इंदिरा गाँधी को कम्युनिस्ट कहते थे। मिस्र के राष्ट्रपति अनवर सादात की तारीफ करते थे, जिसने स्वयं को अमेरिका के हाथ बेच दिया था। इस स्थिति में इंदिरा गाँधी की सबसे बड़ी चिंता पार्टी और सत्ता पर कब्जा बनाए रखने की थी। उन्होंने पार्टी की लोकतांत्रिक प्रक्रिया समाप्त कर सारे अधिकार अपने हाथ में ले लिए। यहाँ तक कि लोग उन्हें 'डिक्टेटर' कहने लगे थे। कांग्रेस में सत्ता नीचे से ऊपर नहीं आती थी, ऊपर से नीचे जाती थी।

डॉ. मिश्र—परसाईजी, क्या आप समझते हैं कि इस तरह उस आंदोलन की भूमिका बन रही थी, जिसे संपूर्ण क्रांति कहा गया? क्या आपातकाल के पहले प्रदर्शित संगठित विरोध पूरी तरह से अराजक दक्षिणपंथियों का दिशाहीन नाटक नहीं था?

परसाई—मिश्रजी, मैं इस बात को फिर कहना चाहता हूँ कि जयप्रकाश के नेतृत्व में संपूर्ण क्रांति का आंदोलन शुरू हुआ, वह मुख्यतः इंदिरा गाँधी की विदेशनीति के कारण था, जो कि समाजवादी देशों से सहयोग की थी। इस आंदोलन की प्रेरणा अंतर्राष्ट्रीय अमेरिकी साम्राज्यवाद और पूँजीवाद से मिली थी, यहाँ तक कि इतना अधिक पैसा जो इस आंदोलन में खर्च किया गया, विदेशी था। आपातकाल के दौरान भूमिगत विरोधी नेताओं की गतिविधियों का संचालन चर्च और कूटनीतिक विदेशी संस्थानों से होता था, और अमेरिकी तथा ब्रिटिश हवाई जहाजों के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय समाचार एजेंसियों को समाचार भेजे जाते थे। जिस परिवार का व्यक्ति इमर्जेंसी में जेल में था, उसे प्रतिमाह पैसा मिलता था। यह पैसा कहाँ से आता था? यह विदेशी धन था, और इस आंदोलन में सी. आई. ए. और बहुदेशीय कंपनियों की भूमिका बहुत स्पष्ट थी।

सन् '71 के चुनाव में दक्षिणपंथी दलों की इतनी बुरी पराजय हुई थी कि वे यह समझने लगे थे कि मतपेटी के द्वारा इंदिरा गाँधी को सत्ता से नहीं हटाया जा सकता। वे पाँच साल बाद आगामी चुनाव का रास्ता नहीं देखना चाहते थे, क्योंकि चुनाव से उन्हें कोई उम्मीद नहीं थी। वे बीच में ही एक व्यापक अराजक आंदोलन कर देना चाहते थे। जयप्रकाश नारायण ने सेना और पुलिस से भी विद्रोह करने का आवाहन किया था। इसका साफ उद्देश्य, हिंसा, अराजकता, तोड़फोड़, षड्यंत्र, विदेशी सहायता से इंदिरा गाँधी को सत्ता से गिराना था। यह क्रांति नहीं थी, वास्तव में दक्षिणपंथियों की व्यापक अराजकता थी, जिसमें समाजवादी भी शामिल थे, क्योंकि वे सोवियत रूस से निकटता के घोर विरोधी हैं। इस आंदोलन पर पूरा नियंत्रण राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का था, जो एक फासिस्ट संगठन है। इस तरह दक्षिणपंथी फासिस्टों का यह हमला चुनी हुई वर्ग समाजी लोकतांत्रिक सरकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर था।

डॉ. मिश्र—परसाईजी, आपातकाल की घोषणा के सिवाय क्या इन दक्षिणपंथी फासिस्टी ताकतों से राजनैतिक आधार पर नहीं निपटा जा सकता था? यदि आपातकाल ही एकमात्र विकल्प था, तो यह क्यों न माना जाय कि इंदिरा गाँधी द्वारा नियंत्रित कांग्रेस का कोई मूलभूत जनाधार नहीं रह गया था?

परसाई—मिश्रजी, जहाँ तक राजनैतिक स्तर पर लड़ने का सवाल है, चुनाव में इंदिरा गाँधी इन दलों को हटा चुकी थीं, परंतु कांग्रेस संगठन निकम्मा हो गया। पूरे संगठन में 'एडहाकवाद' चल रहा था। कांग्रेस की नियमित सदस्यता न तब थी और न अब तक है। ब्लॉक-स्तर से लेकर केंद्र तक सारे संगठन में इंदिराजी के नामजद लोग थे। फिर इस पार्टी के पास अनुशासित और प्रशिक्षित 'कैडर' न तब था और न अब है। कांग्रेसमैन का मूल उद्देश्य सत्ता प्राप्त करना या सत्ता से लाभ उठाना तब था और अब भी है। यह संगठन न होकर एक व्यक्ति इंदिरा गाँधी हो गयी है, इसलिए कांग्रेस संगठन के लिए सत्ता के बाहर मैदान में इन ताकतों से लड़ना संभव नहीं था। मत मिलने के बावजूद कांग्रेस का वास्तविक जन आधार नहीं था। यही मजबूरी थी कि जिसके कारण इंदिरा गाँधी ने 'इमर्जेंसी' लगायी।

डॉ. मिश्र—परसाईजी, आपातकाल की समाप्ति के उपरांत जनता पार्टी शासन के दौरान भी लगभग वही दिशाहीन मतिभ्रम बरकरार रहा, जो संपूर्ण क्रांति के आंदोलन में था। क्या आप यह मानते हैं कि भारत में लोकतांत्रिक राजनीति के साथ जुड़ी उत्तरदायित्व की भावना सर्वथा समाप्त होती जा रही है?

परसाई—मिश्रजी, वास्तव में जनता पार्टी का कोई वैचारिक आधार नहीं था। 1965 के आसपास डॉ. लोहिया ने 'गैर-कांग्रेसवाद' का नारा दिया था, जिसके फलस्वरूप 1967 में कुछ संविद सरकारें बनीं, जो अल्पजीवी रहीं। गैर-कांग्रेसवाद कोई 'आइडियालॉजी' नहीं है, एक नकारात्मक रुख है। संपूर्ण क्रांति आंदोलन और उससे बनी जनता पार्टी इसी गैर-कांग्रेसवाद का विस्तार थी। इस पार्टी में विभिन्न, परस्पर विरोधी विचारों के लोग थे, और सब सत्ता-लोलुप थे। बूढ़े नेताओं जैसे चरणसिंह, जगजीवनराम को प्रधानमंत्री बनने की जल्दी थी। जनसंघ अपनी सदस्य संख्या और 'कैडर' के बल पर जल्दी जनता पार्टी पर कब्जा कर लेना चाहता था। 1979 में भोपाल में बाला साहब देवरस ने अपने संगठन के बीच कहा था कि ढाई साल में भारत सरकार पर हमारा अधिकार हो जाएगा। यह वक्तव्य रिकार्ड कर लिया गया था, और पत्रों में छपा भी था। जनता पार्टी में झगड़े का मुख्य मुद्दा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ था। फिर चरणसिंह की महत्त्वाकांक्षा तथा इंदिरा गाँधी की कूटनीति के कारण जनता पार्टी टूटी। चरणसिंह प्रधानमंत्री तो हो गए किंतु इंदिरा कांग्रेस ने समर्थन वापस ले लिया, तो उन्हें इस्तीफा देना पड़ा। उसके बाद 1980 के चुनावों की घोषणा हो गयी।

डॉ. मिश्र—परसाईजी, वर्तमान राजनैतिक परिदृश्य के भीतर मौजूद दिशाहीनता अब पुनः किस ओर इंगित कर रही है? आंध्र और कर्नाटक के चुनाव परिणाम तथा आसाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और पंजाब की घटनाएँ क्या यह प्रमाणित नहीं करतीं कि जन-असंतोष के बीच पुनः वही ताकतें सक्रिय हो रही हैं, जो विकास की लोकतांत्रिक प्रक्रिया में रोड़ा बनना चाहती हैं और इंदिरा कांग्रेस द्वारा पूँजीवादी विकास के दौरान, उत्पन्न अंतर्विरोधों को पुनः अराजक एवं दक्षिणपंथी नतीजों की ओर ले जाना चाहती हैं?

परसाई—मिश्रजी, इस बीच 1980 के बाद एक साल में यह धारणा पूरी तरह टूट गयी कि सत्ता केवल इंदिरा गाँधी के मार्फत प्राप्त होती है। यह अहसास कांग्रेसमैन को भी हुआ और दूसरे दलों को भी। इंदिरा गाँधी का राजनैतिक एकाधिकार खत्म हो गया। पार्टी पर भी उनका अंकुश ढीला हो गया। राजनैतिक बेईमानी कांग्रेस में बहुत अधिक आ गयी। भजनलाल इसके उदाहरण हैं, जो पूरी जनता पार्टी लेकर कांग्रेस में आ गए और मुख्यमंत्री बने रहे। विधायकों की खरीद अब आम और खुली बात हो गयी है। यानी राजनैतिक अनैतिकता के प्रति कोई घृणा नहीं रह गयी है। आंध्र और कर्नाटक में कांग्रेस (इंदिरा) की हार का कारण जनता का विश्वास उठ जाना है। यह विश्वास इसलिए उठा कि आंध्र में तो कोई स्थिर सरकार नहीं रही। कर्नाटक में भ्रष्ट सरकार रही। जिन बीस सूत्रीय कार्यक्रमों का ढिंढोरा पीटा जाता है, वे लागू नहीं हुए क्योंकि कांग्रेस की सरकारें और पार्टी-मशीनरी खुद उनके विरुद्ध है। ये सभी तत्त्व सामंतवाद-पूँजीवाद समर्थक हैं। समाजवादी कार्यक्रम लागू नहीं किए गए, जनता को राहत नहीं मिली। भ्रष्टाचार बेहद बढ़ा तो स्वाभाविक है कि सत्ता-पार्टी का जनाधार लुप्त हो गया। इसके साथ ही क्षेत्रीय आकांक्षाएँ प्रबल हुईं। लोगों ने यह सोचा कि क्षेत्रीय पार्टी अधिक जवाबदार होगी तो अपने क्षेत्र के लिए ईमानदारी से काम करेगी। आंध्र में रामाराव की सफलता का यह रहस्य है। वे फिल्म ऐक्टर होने के कारण नहीं जीते हैं।

अब दो बातें सामने हैं। एक तो यह कि क्षेत्रीय दल को सत्ता में लाओ, जिससे क्षेत्र का विकास हो। यह आंध्र में हुआ, तमिलनाडु में पहले से है। दूसरी बात यह हुई कि कुछ क्षेत्रों के लोगों ने सोचा कि इस वक्त दबाव, धमकी और आतंक से सरकार को दबाकर विशेष लाभ प्राप्त कर लो। पंजाब का अकाली आंदोलन इसी प्रवृत्ति का परिणाम है। असम की समस्या दूसरी है। असमियों की महत्त्वाकांक्षा और अधिकार-भावना जागी है, यह सही है, पर वहाँ प्रदेश के विकास के लिए केंद्र अधिक कार्य करे, यह माँग न उठकर यह माँग उठी कि विदेशियों को बाहर निकालो। यह विदेशी कौन हैं ? ये बंगला देश के मुसलमान हैं जिन्हें असमी बड़े भूमिपति, चाय बागान के मालिक, जंगल ठेकेदार, उद्योगपति सस्ते मजदूरों के रूप में खुद लाए। ये तीस-चालीस साल से असम में हैं। अब यह मानवीय समस्या हो गयी है। उन लाखों लोगों को कहाँ फेंक दिया जाए ? वहाँ विदेशी शक्ति और विदेशी पैसा काम कर रहा है, यह सही है। विपक्षी दल, विशेषकर भारतीय जनता पार्टी समझौता नहीं होने दे रही। अब यह स्पष्ट हो गया है कि इस आंदोलन पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कब्जा हो गया है और ये असली मुसलमानों के भी विरुद्ध हैं। पिछले महीनों के सामूहिक नर-संहार के बाद छात्र यूनियन के मुसलमान नेताओं की समझ में यह आया कि यह तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदू सांप्रदायिक फासिस्टी आंदोलन है। इसे समझकर वे अलग हो गए हैं और आंदोलन में फूट पड़ गयी है। शायद अब ये आंदोलनकारी आम जनता से अलग पड़ जाएँ, तब असम में शांति हो।

पंजाब में अकाली दल का जनाधार बहुत कमजोर है। वह बड़े भूमिपतियों और ठेकदारों द्वारा समर्थित दल है। इस वर्ग के अपने स्वार्थ हैं। एक तो वे चंडीगढ़ चाहते हैं, दूसरे नदियों के पानी का अधिक हिस्सा चाहते हैं, और राजस्थान और हरियाणा का कुछ भाग भी चाहते हैं। यही नहीं, तथाकथित खालिस्तान के नक्शे में तो उत्तरप्रदेश का भी कुछ हिस्सा है। यह आंदोलन उग्रवादियों के हाथ में चला गया है। लोंगोवाल और बादल अतिवादी नहीं है और न उग्रपंथी हैं, पर उनकी मुश्किल यह है कि उन्मादी, हिंसक, हथियारबंद सिख युवकों का नेतृत्व संत जरनैलसिंह भिंडरावाला के हाथ में है, जो हठी और तर्कहीन है। समझौते के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा यही उग्रवादी तत्त्व हैं। पंजाब में अभी सांप्रदायिकता फैली नहीं है। पर यदि फैल गयी तो उसका असर पूरे देश में होगा। यह शक सही हो सकता है कि इस अकाली आंदोलन को विदेशी शक्तियाँ, विशेषकर अमेरिका का समर्थन हो।

अब वही शक्तियाँ जो 1977 में इकट्ठी हुई थीं, फिर एक होने की कोशिश में हैं, पर पुराने अनुभवों के कारण ये दल एक-दूसरे से चौकन्ने हैं और परस्पर विश्वास नहीं करते। भारतीय जनता पार्टी ने राष्ट्रीय लोकतांत्रिक मोर्चे का नारा दिया है। इस मोर्चे से साम्यवादी दलों और मुस्लिम लीग को दूर रखा गया है। भारतीय जनता पार्टी का डबल रोल है। जहाँ उसकी स्थिति अच्छी है जैसे मध्यप्रदेश और राजस्थान में, वहाँ वह अकेले लड़कर सरकार बनाना चाहेगी। दूसरी जगह तालमेल बिठा सीटें प्राप्त करेगी। अकेले राष्ट्रीय विकल्प बनने का सपना उसने त्याग दिया है। इधर चंद्रशेखर भी जनता पार्टी के छाते के नीचे संयुक्त मोर्चा बनाना चाहते हैं। उन्होंने भारतीय जनता पार्टी से भी कहा है कि आर. एस. एस. को छोड़कर मिल जाओ। यह हो नहीं सकता, क्योंकि भारतीय जनता पार्टी संघ का राजनैतिक मोर्चा है। इस समय धुँधलका छाया हुआ है। चंद्रशेखर समाजवाद और क्रांति की बात करते हैं, किंतु गठजोड़ करना चाहते हैं—भारतीय जनता पार्टी से, जिसका उद्देश्य इससे ठीक उलटा है। लगता ऐसा है कि एक सिद्धांतहीन संयुक्त मोर्चा फिर बनेगा, जिसकी न विचारधारा होगी, और न कोई कार्यक्रम होगा। इसका उद्देश्य केवल सत्ता प्राप्ति होगा। 1974 जैसी संपूर्ण क्रांति-जैसे आंदोलन की संभावना अब नहीं दिखती।

डॉ. मिश्र—परसाईजी, तथाकथित लोकतांत्रिक दलों की एकता का नारा क्या यह प्रमाणित नहीं करता कि इनके बीच आवश्यक विचारधारात्मक भूमिका का कोई महत्त्व नहीं है और यह पुनः उस संभ्रममूलक भटकाव को और अधिक घनीभूत करने की दक्षिणपंथी चेष्टा है, जिसका उपयोग अंततः कांग्रेस (इ) के भीतर की अवसरवादी सत्ताधिकारी शक्तियों को और अधिक दिशाहीन सत्ता राजनीति का मौका देगा?

परसाई—मिश्रजी, जहाँ तक सिद्धांत और विचारधारा का सवाल है, यह केवल तीन भारतीय पार्टियों के पास है। कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया, सी. पी. एम. और भारतीय जनता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पार्टी। कम्युनिस्ट पार्टियों की विचारधारा सर्वविदित है। भारतीय जनता पार्टी अपने गाँधीवादी और समाजवादी मुखौटे के बावजूद हिंदू फासिस्ट संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का राजनैतिक मोर्चा है, जिसका उद्देश्य फासिस्ट हिंदू राष्ट्र की स्थापना है। मैं भारतीय जनता पार्टी को लोकतांत्रिक दल मानता ही नहीं। बाकी बचे लोकदल, जनता पार्टी, कांग्रेस (जे)—ये दल और तत्त्व अतिसामंती पूँजीवादी हितों की रक्षा करते हैं। इनमें जो भूतपूर्व समाजवादी हैं, वे परिस्थिति की मजबूरी और अपने विचारों की उलझन और हताशा के कारण जाने-अनजाने समाजवाद-विरोधी ताकतों का साथ दे रहे हैं। एक विशेष बात ध्यान में रखने की यह है कि देश पर अमेरिकी दबाव बहुत बढ़ रहा है। विशेषकर सातवें गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन के बाद से। प्रधानमंत्री ने स्पष्ट कहा है कि अमेरिका हमें कर्ज नहीं मिलने दे रहा है।

यह बात सही है कि सी. आई. ए. इस देश में सांप्रदायिक, क्षेत्रीय संघर्ष आदि पैदा कर रही है, और अराजकता की स्थिति लाना चाहती है। देश की विघटनकारी दक्षिणपंथी ताकतें जाने-अनजाने इसमें अपने राजनैतिक हितों के कारण सहायता पहुँचा रही हैं। यह सहायता परस्पर है, इस बात के पक्के सबूत हैं, जिनमें सबसे ताजा भारत में भूतपूर्व अमेरिकी राजदूत प्रो. गैलब्रेथ की स्वीकारोक्ति है कि मैंने कुछ दलों और व्यक्तियों को सी. आई. ए. के कहने से पैसा बाँटा। अमेरिका इंदिरा सरकार की विदेश नीति में परिवर्तन कराने में अब समर्थ नहीं है, इसलिए निश्चित चाहेगा कि ये दक्षिणपंथी ताकतें सत्ता में आ जाएँ। जब जनता पार्टी नाम से इनकी सरकार थी, तब इन्होंने गुप्त रूप से मोशे दयान को बुलाया ही था। उसने कभी वियतनाम में अमेरिकी सैनिक हस्तक्षेप की निंदा नहीं की। उसने चिली, फिलिस्तीनियों और कंपूचिया के बारे में कुछ नहीं कहा। यहाँ तक कि अमेरिका पाकिस्तान को इतने हथियार दे रहा है, इसकी भी आलोचना ये नहीं करते। इनमें डॉ. सुब्रह्मण्यम स्वामी-जैसे राजनीतिज्ञ हैं, जो यहाँ तक कह चुके हैं कि भारत पाकिस्तान को एक पहाड़ी फौजी डिवीजन तैयार करके दे, जिससे वह अफगानिस्तान से निपट सके। स्पष्ट है, यदि ये दल सत्ता में आए और इनका बस चला, तो ये भारत की गुटनिरपेक्ष नीति को त्यागकर इस देश को इस क्षेत्र में अमेरिका की सैनिक व्यूह-रचना का हिस्सा बना देंगे।

क्षेत्रीय दल मुख्य रूप से अपने क्षेत्र की समस्याओं में उलझे हैं, और केंद्र से अधिक-से-अधिक लाभ लेना चाहते हैं। इस समय भारतीय जनता पार्टी इस कोशिश में है कि उनके नेतृत्व में तथाकथित लोकतांत्रिक मोर्चा बने और वह उस पर हावी हो जाय। इसी प्रकार की इच्छा जनता पार्टी की भी है।

यदि इंदिरा गाँधी की सत्ता दिलाने की ताकत कम हुई, तो संभव है कि बड़ी संख्या में कांग्रेस (इ) के लोग इन दक्षिणपंथियों के साथ चले आएँ। लगभग आधे कांग्रेसियों को इंदिरा गाँधी की नीतियों में विश्वास नहीं है। वे सत्ता-प्राप्ति के लिए कांग्रेस (इ) में पड़े हुए हैं। दूसरी जगह सत्ता-प्राप्ति पक्की हो, तो वे वहाँ चले जाएँगे। इनकी कोई प्रतिबद्धता नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ. मिश्र—परसाईजी, इस स्थिति में वामपंथी जनवादी एकता की संभावनाओं का कौन-सा रूप संभावित है? क्या कम्युनिस्ट और दूसरे लोकतांत्रिक जनवादियों के बीच राजनीतिक एकता का आधार दिखलायी देता है?

परसाई—मिश्रजी, वास्तव में वामपंथी लोकतांत्रिक मोर्चे की शुरुआत 1967 के तत्काल बाद हो जानी चाहिए थी, जब कांग्रेस की 'मोनोपली' पहली बार टूटी थी। इसके लिए सबसे जरूरी यह है कि दोनों कम्युनिस्ट पार्टियों में मुख्य मुद्दों पर समझौता और सहयोग तथा उद्देश्य निश्चित किए जाएँ। यह तो स्पष्ट ही है कि कम्युनिस्ट पार्टियाँ कोई वर्गसंघर्ष कराने की स्थिति में नहीं हैं। उन्हें संसदीय रास्ते से ही जाना होगा, और साथ ही श्रमिकों, किसानों, छात्रों आदि को शिक्षित और संगठित करते जाना होगा। वामपंथी लोकतांत्रिक मोर्चे की सरकार ने अच्युत मेनन के नेतृत्व में जो काम किया उसकी सब प्रशंसा करते हैं। केरल का यह प्रयोग एक नमूना हो सकता है। अभी बहुगुणा, शरद पवार और गुजरात के अदानी की पार्टियाँ मिलकर एक हो गयी हैं। इनका विश्वास लोकतांत्रिक समाजवाद में है। चंद्रजीत यादव की जनवादी पार्टी भी है। इन पार्टियों से कम्युनिस्ट पार्टियों का समझौता हो सकता है। इसी तरह का समझौता क्षेत्रीय पार्टियों से हो सकता है। यदि चंद्रशेखर के नेतृत्ववाला जनता पार्टी का एक हिस्सा समझ से काम ले तो वह भी इस लोकतांत्रिक वामपंथी मोर्चे में शामिल हो सकता है। इस तरह एक ताकतवर वामपंथी लोकतांत्रिक मोर्चा एक विकल्प के रूप में आ सकता है, परंतु इसमें कठिनाइयाँ बहुत हैं। सबसे बड़ी कठिनाई मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के रुख की है। दूसरी कठिनाई चंद्रशेखर तथा पुराने समाजवादियों के कम्युनिस्ट विरोधी नजरिए की है।

डॉ. मिश्र—परसाईजी, इस संपूर्ण विश्लेषण से स्पष्ट है कि भारतीय राजनीति का यह अस्थिर दौर है। इसके बीच साहित्यकारों की क्या भूमिका हो सकती है? आखिर रचनात्मक प्रतिबद्धता का कोई सुनिश्चित स्वरूप तो होना ही चाहिए? यह प्रतिबद्धता क्या होगी?

परसाई—मिश्रजी, कोई लेखक अराजनैतिक नहीं हो सकता, लेकिन लेखक का माध्यम राजनीतिज्ञ से अलग होता है। लेखक का माध्यम जोड़-तोड़ का नहीं है। संवेदना और ज्ञान का होता है, और वह सीधे अपने समाज को संबोधित करता है। लेखन का उद्देश्य हर लेखक का होता है। वह चाहे सस्ता मनोरंजन करके पैसा कमाना ही क्यों न हो। जो लेखक, लेखक के कर्म को आदर्शीकृत करते हैं, और रूमानी बनाते हैं, वे भ्रमजाल रचते हैं। लेखक का कर्म ठोस और वास्तविक है। लेखक, जैसा माना जाता है, भोला प्राणी नहीं है। सन् '51-'52 में अज्ञेय और धर्मवीर भारती के नेतृत्व में जो 'परिमल' संस्था बनी और इनकी दूसरी गतिविधियाँ चलीं वे राजनीति-प्रेरित थीं। ये लोग जवाहरलाल नेहरू की समाजवादी देशों से मित्रता की विदेश नीति तथा पहली और दूसरी योजना में सार्वजनिक उद्योग क्षेत्र के विस्तार के विरोधी थे। इनमें अधिकतर की आस्था डॉ. लोहिया के प्रति थी। इन्हें पूँजीवादी प्रेस का समर्थन भी था, और अभी तक है। ये लोग साम्यवाद-विरोधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
राजनीति करते रहे हैं, और प्रगतिशील लेखन पर इन्होंने लगातार हमले किए हैं, जो अभी भी जारी है। ये लोग कोई फूल-पत्ती, बादल और बच्चे की मासूम रचना करनेवाले लोग नहीं हैं। ये गहरी दक्षिणपंथी राजनीति के साहित्यिक और बौद्धिक आधुनिकतावादी पैरोकार हैं। इनकी आधुनिकता केवल पश्चिमी यूरोप और अमेरिका की आधुनिकता है। ये समाजवादी देशों को आधुनिक क्यों नहीं मानते, जो मानसिकता, विज्ञान और तकनीक में पीछे नहीं, आगे हैं।

लेकिन इसके साथ ही, '52-'53 से ही प्रगतिशील लेखकों का बड़ा तबका भी उठा। इनकी प्रतिबद्धता स्पष्ट है। ये साम्राज्यवाद, पूँजीवाद-विरोधी हैं। शोषित वर्ग के प्रति इनकी सहानुभूति है, और शोषण की मौजूदा व्यवस्था को बदलना इनका लक्ष्य है। ये दो खेमे बिल्कुल साफ हैं। प्रतिबद्धता से कोई बचाव नहीं है। मार्क्सवादी चिंतन से प्रेरित प्रगतिशील लेखकों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक समझ दूसरे लोगों से बहुत बेहतर और बहुत सही है। शोषित वर्ग के प्रति इनकी गहरी संवेदना है। जीवन-यथार्थ के ये बहुत नजदीक हैं, और उसे समझते भी हैं। इनका जीवन-संघर्ष का चित्रण वास्तविक और प्रभावी है। निश्चित रूप से इनकी रचनाओं का राजनीतिक उद्देश्य है, क्योंकि कोई भी व्यापक क्रांति गैर-राजनीतिक नहीं होती। हम सब लोग अपने अनुभव से जानते हैं कि प्रगतिशील लेखकों का यथार्थवादी लेखन ही पाठकों में अधिक लोकप्रिय और स्वीकृत हुआ है। इसका कारण है कि सामान्य मनुष्य इस साहित्य में अपने जीवन-संघर्षों का विश्वसनीय प्रतिबिंब देखता है। उसकी समस्त आशा, आकांक्षा, निराशा, क्रोध और परिवर्तन की इच्छा इस साहित्य में चित्रित होती है।

डॉ. मिश्र—परसाईजी, वर्तमान स्थिति में लेखक का दायित्व क्या है? इसे आप और अधिक स्पष्ट करें। वर्तमान परिदृश्य जनचेतना के विशिष्ट आग्रह से परिपूर्ण है ?

परसाई—देखिए मिश्रजी, एक बात तो यह समझ लेनी चाहिए कि आम पाठक का बौद्धिक स्तर इन दिनों बहुत बढ़ा है। उसकी समझ बढ़ी है। हो सकता है, वह समझ में लेखक से आगे बढ़ गया हो। इस बात को ध्यान में रखकर हमें लेखन करना चाहिए। दूसरी बात यह है कि वह भ्रम अब टूट जाना चाहिए कि साहित्य का प्रभाव छोटे-से मध्यम वर्ग पर ही पड़ता है। मैंने देखा है कि छोटे-छोटे कस्बों के अर्धशिक्षित लोगों में भी चेतना है, और वे साहित्य को गंभीरता से लेते हैं तथा समझते हैं। आपका भी अनुभव है कि मध्यप्रदेश में हमने जो पोस्टर कविताएँ चिपकाने का अभियान चलाया है, उससे कितना अधिक लोक-शिक्षण हो रहा है। इन कविताओं के शब्द लोगों को मंत्रों की तरह याद हो गए हैं। लेखक का सबसे बड़ा कर्त्तव्य इस समय लोक-शिक्षण ही है। इस काम को न विश्वविद्यालय करते हैं, न कॉलेज और न राजनीतिक दल। निश्चित ही यह शिक्षण सीधा उपदेश न होकर साहित्यिक होगा। दक्षिणपंथी ताकतें इस समय पुनरुत्थानवाद को उभारने में लगी हैं। अपने कल्पित स्वर्णिम अतीत की स्मृति से आधुनिक बोध और जीवन-पद्धति को वे रोकना चाहती हैं। दूसरे यही ताकतें मनुष्य को भाग्यवादी बनाने की कोशिश में हैं। जितने धार्मिक प्रवचन,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुष्ठान, भजन, कीर्तन, यज्ञ इस समय हो रहे हैं, उतने पहले कभी नहीं हुए। ऐसा एक योजना से हो रहा है। जैसा मार्क्स ने कहा है—धर्म भ्रमात्मक सुख देता है, जबकि मनुष्य को वास्तविक सुख चाहिए जो सामाजिक परिवर्तन से प्राप्त होता है। शोषक वर्ग आम आदमी को भ्रमात्मक सुख में उलझाकर उसे वास्तविक सुख के लिए संघर्ष करने से रोकता है। लेखक को इस पुनरुत्थानवाद और भाग्यवाद से संघर्ष करना चाहिए और इस संबंध में जनता को शिक्षित करना चाहिए।

दूसरे, दक्षिणपंथियों का बड़ा हथियार सांप्रदायिकता है। हिंदू और मुसलमान दोनों के सांप्रदायिक नेता पूँजीवाद-सामंतवाद समर्थक हैं, और अमेरिका के पक्षकार हैं। चाहे जमाइते इस्लामी का नेता हो, चाहे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का —दोनों समाजवाद और लोकतंत्र विरोधी हैं। इसलिए अपनी रचना से विभिन्न सम्प्रदाय के लोगों को इस षड्यंत्र से परिचित कराना चाहिए कि धर्म या वर्ण या सम्प्रदाय के आधार पर नहीं, वर्ग के आधार पर संघर्ष करने से उनका कल्याण होगा। इसलिए वे एक हो जाएँ, लड़ें नहीं। बड़ी संख्या में प्रतिबद्ध लेखक विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में पढ़ाते हैं। उन्हें छात्रों को सही शिक्षा देनी चाहिए। उनका राजनैतिक शिक्षण करना चाहिए और उनकी समझ को प्रगतिशील बनाना चाहिए। हमारे लेखक इस काम में अभी तक विशेष रुचि लेते दिखायी नहीं देते। उन्हें अब गंभीरता से इस काम को लेना चाहिए।

लेखकों को श्रमिकों, किसानों, खेत-मजदूरों से भी संपर्क कायम करना चाहिए। उनके बीच जाना चाहिए। इससे लेखक को उनका जीवन-यथार्थ समझ में आएगा, और इनका सही शिक्षण होगा। अब वह समय भी आ गया है कि राजनैतिक दलों के नेताओं और श्रमिक नेताओं से लेखक सीधी और साफ-साफ बात करे। वे गलतियाँ करते हैं, लेकिन उन्हें बतानेवाला कोई नहीं है। जैसे मजदूरों से केवल आर्थिक लड़ाई लड़वाते हैं, उनका राजनैतिक शिक्षण नहीं करते और न उन्हें यह अहसास दिलाते हैं कि वही सच्ची क्रांतिकारी शक्ति हैं। लेखकों को यह बात स्पष्ट करनी चाहिए, जिससे ये नेता अपने को सुधारें। वर्ग-एकजुटता के नाते प्रबुद्ध लेखक का यह अधिकार है।

किस भारत भाग्य विधाता को पुकारें ?

मेरे एक मुलाकाती हैं। वे कान्यकुब्ज हैं। एक दिन वे चिंता से बोले—अब हम कान्यकुब्जों का क्या होगा? मैंने कहा—आप लोगों को क्या डर है? आप लोग जगह-जगह नौकरी कर रहे हैं। राजनीति में ऊँचे पदों पर हैं। द्वारकाप्रसाद मिश्र, श्यामाचरण शुक्ल, विद्याचरण शुक्ल, जगन्नाथ मिश्र, राजेंद्रकुमारी वाजपेयी, नारायणदत्त तिवारी ये सब नेता कान्यकुब्ज हैं। लोग कहते हैं, इस देश में दो विचारधारा प्रबल हैं—कान्यकुब्जवाद और कायस्थवाद। मुझे तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पता चला कि जयप्रकाश नारायण कायस्थ हैं, जब उत्तर प्रदेश कायस्थ सभा ने उनका सम्मान करने की घोषणा की। वे कायस्थ कुल भूषण घोषित होने वाले थे। ऐसे ही कोई कान्यकुब्ज शिरोमणि हो जाएगा। आप ही हो जाइए।

उन्होंने कहा—आप नहीं समझे। हमारी हालत फिलिस्तीनियों जैसी है। हमारी भूमि उत्तरप्रदेश में कान्यकुब्ज छूट गई है। हम लोग दूसरों के राज्यों में रह रहे हैं। सिख पंजाब चाहते हैं, कश्मीरी कश्मीर चाहते हैं, नेपाली गोरखालैंड चाहते हैं। हमारा कोई राज्य, कोई देश नहीं है। हमारे राज्य पर ठाकुर, यादव कब्जा किए हैं। अगर राज्यों में 'कान्यकुब्ज, वापस जाओ' आंदोलन हुआ तो हम कहाँ जाएँगे? यह राज्य हमारा नहीं, देश हमारा नहीं। आगे चलकर पंजाब या असम जाने के लिए पासपोर्ट लेना होगा। हो सकता है, हमारे ही घर उत्तर प्रदेश जाने के लिए पासपोर्ट लेना पड़े। मध्य प्रदेश समुद्र के किनारे भी नहीं है कि कहीं भाग जाएँ।

मैंने कहा—पर मध्य प्रदेश से आपको भगा कौन रहा है? वे बोले—कोई भी भगा सकता है। हम नर्मदा के किनारे हैं, तो नार्मदीय लोग भगा देंगे। यहाँ से छत्तीसगढ़ तबादला हो जाए, तो वहाँ छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा अलग राज्य का आंदोलन कर ही रहा है। वहाँ से भगा दिए जाएँगे।

मैंने कहा—उन्नाव के आसपास का छोटा-सा इलाका कान्यकुब्ज है। यहीं के राजा जयचंद थे। उन्होंने पृथ्वीराज को खत्म करने के लिए मुहम्मद गोरी को बुलाया था। जब गोरी पृथ्वीराज को ले गया, तब जयचंद ने उत्सव मनाने को कहा। तब मंत्री ने कहा—महाराज, यह दिन उत्सव मनाने का नहीं, दुख का है। पृथ्वीराज के बाद आपकी बारी है। ऐसे बदनाम क्षेत्र में क्यों लौट कर जाते हैं?

उनका तर्क था—बदनाम कौन क्षेत्र नहीं है? बंगाल में भी तो मीर जाफर ऐसा ही हो गया है। पर ज्योति बसु को शर्म नहीं आती। वे तो आमार सोनार बांगला—गाते हैं।

मैंने कहा—यह जो आपका संप्रभुता-संपन्न कान्यकुब्ज राज्य बनेगा, उसके अस्तित्व के साधन क्या होंगे? मेरा मतलब है, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर कैसे होगा?

उन्होंने कहा—हर टूटने वाले को जो मदद करते हैं, वही हमें करेंगे। बाल्टिक देशों को सोवियत संघ से टूटने के बाद कौन मदद करते हैं? क्रोशिया दो जिलों के बराबर है। वह किनके दम पर पृथक् होना चाहता है? आप देखेंगे, हमारे राज्य को ये सहायता देंगे—अमेरिका, विश्वबैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, एड कान्यकुब्ज क्लब, एड कान्यकुब्ज कंसोर्टियम! समझे आप? हम अनाथ नहीं हैं। हम तीव्र आंदोलन शुरू करने वाले हैं—मगर गाँधी जी के तरीके से। आप अपनी कहिए। आपका कौन राज्य होगा? कहाँ के हैं और कौन जाति के हैं?

मैंने कहा—हमारे लोग कड़ा-मानिकपुरी के जिझौतिया ब्राह्मण कहलाते हैं। वे तपाक से बोले—बस तो अपने लिए कड़ा-मानिकपुर इलाके की माँग कीजिए, बुंदेलेवीर दान आ जाएँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने कहा—पर एक बात है। मेरा एक भानजा बंगाली कायस्थ लड़की से ब्याहा है और भानजी क्षत्रिय से।

वे बोले—यानी वर्णसंकर? मैंने कहा—आगे तो सुनिए, हम अंतर्राष्ट्रीय ब्राह्मण हैं। हमारी जाति में अंतर्जातीय ही नहीं अंतर्महाद्वीपीय शादी हो चुकी है। उन्नीसवीं सदी के अंत में हमारी जाति की गंगाबाई ने एक अँगरेज अफसर से शादी की थी। एक तरह से हम एंग्लो-इंडियन ब्राह्मण हैं।

उन्होंने कहा—तब तो आपका केस होपलेस है। अधिक-से-अधिक आपको आरक्षण की सुविधा मिल सकती है। विश्वनाथ प्रतापसिंह से बात कीजिए। वे आपको ओ. बी. सी. की सूची में शामिल करा देंगे। मैंने कहा—नहीं, हम अंतर्महाद्वीपीय जाति के हैं। हमारा दावा भारत में कड़ा-मानिकपुर में और इंग्लैंड में एक हिस्से पर बनता है। हम कड़ा-मानिकपुर पर भारत में और केंटरबरी पर इंग्लैंड में दावा करेंगे। अगर आप तैयार हों तो हम लोग अपनी माँग संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाएँ। इस समय जार्ज बुश अलग होने वालों पर विशेष कृपालु हैं। वे हमें हमारा 'होमलैंड' दिलाएँगे।

उन्होंने कहा—यह तो करना ही चाहिए। साथ ही हमें आतंकवादी कार्यवाही भी करनी चाहिए। ब्राह्मणों को इस समय परशुराम की जरूरत है। परशुराम ने कहा था—

भुजबल भूमि भूप बिन कीन्हीं,
सहस बार महि देवन्ह दीन्हीं।

विप्र देवता मुझे क्षमा करें। ऊपर की बातचीत बिलकुल काल्पनिक है। देश में पनप रही अलगाव की प्रवृत्ति की परिणति.क्या हो सकती है, यह अंदाज कराने के लिए मैंने दो विप्रों की काल्पनिक बातचीत दी है।

रवींद्रनाथ ठाकुर ने लिखा है—भारत मानव महासागर है। यहाँ आर्य, द्रविड़, शक, हूण, मुसलमान, ईसाई सब समा गए हैं। हम लहरों की तरह एक-दूसरे से टकराते भी हैं और फिर मिलकर एकाकार हो जाते हैं। कवि क्षमा करें। हो यह गया है कि महासागर नहीं है, संकीर्ण नदियाँ और नाले हैं। अगर यह महासागर है भी तो एक लहर दूसरी से टकराकर दोनों अपने को महासागर समझने लगती हैं। हर लहर महासागर से अलग होकर अलग बहना चाहती है, चाहे वह नाली ही क्यों नहीं हो जाय। नाला हो, डबरा हो, गंदा हो, गर्मी में सूख जाता हो—पर उसकी अलग पहचान है, वह दूसरों से स्वतंत्र और विशिष्ट है, मटमैला पानी है, पर अपना तो है, अपने केंकड़े महासागर के मगर से अच्छे हैं। जंगली घास किनारों पर हो, पर है तो अपनी फसल, अपनी डोंगी जहाज से अच्छी है। अलगाव और लघुता में गर्व देश-भर में दिख रहा है। दूसरे महायुद्ध के बाद साहित्य में 'लघु मानव' आया था। यह हीन भावना से पैदा हुआ था। हाथी अपने को केंचुआ मानने में गर्व करने लगा था। कम-से-कम साहित्य में तो महामानव भी अपने को लघु मानव बनाने की कोशिश में लगे थे। अब विराटता में असुरक्षा लगने लगी है, और संकीर्ण हो जाने में सुरक्षा, गर्व और संपन्नता का अनुभव होने लगा है। नस्ल, भाषा, धर्म, संस्कृति की भिन्नता समझ में आती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। एक ही नस्ल, भाषा, धर्म और संस्कृति के लोगों की निकटता का अनुभव भी स्वाभाविक है। पर राष्ट्र-राज्य इस प्रकार के कई मानव-समूहों से बनता है। इतनी सदियों में विशिष्टता रखते हुए एक हो जाना था। स्वाधीनता संग्राम के कई वर्षों में विशिष्टों की यह एकता थी। सिर्फ मुस्लिम लीग ने अलगाव की माँग की थी। पर स्वाधीन देश में अलगाव बढ़ता गया।

अब यह हाल है कि पंजाब, कश्मीर, असम में पृथकता के आंदोलन। झारखंड और छत्तीसगढ़ की पृथक् राज्य की माँग। उत्तराखंड अलग चाहिए। तमिलनाडु में लिट्टे का बढ़ता प्रभाव। इनकी सेनाएँ—पंजाब में, कश्मीर में, असम में बाकायदा प्रशिक्षित आतंकवादी सेनाएँ। इन सेनाओं का दायरा अखिल भारतीय हो रहा है।

उधर धनी किसानों, पूर्व जमींदारों की बिहार में सेनाएँ—सनलाइट सेना, सवर्णरक्षक सेना।

एक बात गौरतलब है कि कुछ पिछड़े इलाके के लोग, जो मुख्यतः एक ही नस्ल के हैं, की यह शिकायत है कि हमारी उपेक्षा हुई है, हमारा विकास नहीं किया गया। हम अलग राज्य बनाकर अपना विकास करेंगे। हमारी प्राकृतिक संपदा का दोहन करके बाहरवाले ले जाते हैं, और हमारा शोषण होता है। यह सोच इसलिए आई कि विकास का ठीक बँटवारा नहीं हुआ। पर जिस क्षेत्र में कोई प्राकृतिक संपदा नहीं है, वह क्षेत्र यदि इसी आधार पर पृथक् होना चाहे कि हम एक ही नस्ल और जीवन-पद्धति के हैं और सभ्यता के एक ही स्तर पर हैं, तो इसका यही भावात्मक अर्थ है—जिएँगे साथ, मरेंगे साथ!

पृथकतावाद तब और खतरनाक होता है, जब शिवसेना-प्रधान बाल ठाकरे नारा देते हैं—मुंबई मराठी भाषियों की। सुंदर मुंबई, मराठी मुंबई। लोकप्रिय भावना है।—'भूमिपुत्र' (सन आफ दी सायल) व्यवहार में इसका अर्थ है—इस भूमि के वासी ही इसके मालिक हैं और वही इसके साधनों का उपयोग करेंगे। असम के भूमिपुत्र असमी। तो असम का तेल असमियों का, नौकरियाँ असमियों को, व्यापार असमियों का। अब अगर बनारस में ऊँचे पद पर के असमी से कहा जाय—असम के भूमिपुत्र, तुम असम जाओ। तब क्या होगा ? महाराष्ट्र के बाहर सारे देश में इतने मराठी-भाषी ऊँचे और नीचे पदों पर हैं, व्यापारी हैं, वैज्ञानिक हैं। इन्हें बाल ठाकरे क्या मुंबई में बुलाकर बसा लेंगे? क्या काम लेंगे? समुद्र से पानी उलीचने और फिर उसी में डालने का काम ?

संघ राज्य की एकता यह है कि असमी बंबई में हो, मराठा असम में हो। तमिल उत्तरप्रदेश में हो, उत्तरप्रदेशी तमिल में हो। सबके हित परस्पर मिले हों, एक-दूसरे पर निर्भर हों। यह कैसी बात है, 'शेरे पंजाब होटल' जो लोग सारे भारत में ही नहीं, ब्रिटेन, कनाडा, अमेरिका में भी खोलते हों, वे इतने संकीर्ण हो जाएँ कि देश के एक भूखंड को सिर्फ अपना मानें? मेरा मतलब यह नहीं है कि सब ऐसा चाहते हैं।

विघटन, अलगाववाद बढ़ रहा है। अपने-अपने रक्षित क्षेत्र (सेंक्चुअरी) में रहने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। रवींद्रनाथ ने 'जनगणमन' की एकता की बात की है। जनगण की भावना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही घट रही है। संघ भावना (फेडरल स्पिरिट) कम होती जा रही है। जनगण एक-दूसरे से भिड़ रहे हैं। सब टूट रहा है। किस भारत भाग्य विधाता को पुकारें?

जरूरत है सामाजिक आंदोलनों की

एक अच्छा समाचार पढ़ने को मिला। महादेव गोविंद रानाडे ने 1988 में एक संगठन आरंभ किया था। उसका नाम था—'सामाजिक परिषद'। इसका उद्देश्य समाज-सुधार था। न जाने कब इस संगठन ने कार्य बंद कर दिया होगा। पिछले दिनों महाराष्ट्र के बौद्धिकों ने इस संगठन को फिर आरंभ किया है। इसका उद्देश्य समाज-सुधार है। इसमें प्रसिद्ध वैज्ञानिक जयंत नार्लीकर प्रमुख हैं। नार्लीकर ने कहा है—हम लोगों को वैज्ञानिक दृष्टि देंगे और अंधविश्वास मिटाएँगे।

मैं खुश हुआ। कारण है। मैं कई बार मित्रों से यह कहता रहा हूँ कि हमारे देश में कोई सामाजिक आंदोलन नहीं है, जैसे उन्नीसवीं सदी में और इस सदी के आरंभ में थे। सारे आंदोलन राजनैतिक हैं। जातियों के छोटे-छोटे सामाजिक आंदोलन हैं, जिनके बारे में कभी-कभी अखबारों में छपता है कि इन्होंने बिना दहेज सामूहिक विवाह करा दिए। पर उसी जाति के लोग मुझे बताते हैं कि सब दिखावा है। पर्दे के पीछे दहेज का लेन-देन हो जाता है।

स्वाधीनता आंदोलन के दौर में गाँधीजी ने राजनैतिक आंदोलन के साथ सामाजिक सुधार के आंदोलन भी चलाए थे। वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध आंदोलन, हरिजन उद्धार, नारी स्वाधीनता और शिक्षा—ऐसे आंदोलन संपूर्ण स्वाधीनता आंदोलन में समाहित थे। पर आजादी के बाद इस देश में सिर्फ राजनैतिक आंदोलन चलने लगे। 1952 और 1957 के चुनावों तक तो वे लोग थे जो गाँधीजी के नेतृत्व वाले स्वाधीनता आंदोलन में शामिल थे। गाँधीजी का सबसे अधिक जोर नैतिकता पर था। वे सब समस्याओं का हल नैतिकता से करना चाहते थे। आर्थिक समस्याओं का हल भी नैतिकता से करना चाहते थे, जो वैज्ञानिक नहीं है। 52 और 57 के चुनावों वाले राजनेता चाहे कांग्रेसी हों चाहे समाजवादी, कुछ नैतिकता लिये थे। इनमें भी पतनशीलता आ गई थी, इसे भोपाल के प्रचंड नेता शाफिर अली खाँ एक लतीफे से बताया करते थे। लतीफा ऐसा है—

स्वाधीनता संग्राम के नेता जो सत्ता में आ गए थे अपने कस्बे में गए। उन्हें गाँव के बूढ़ों ने घेरा और कहा—आप नारा लगवाते थे—इंकिलाब जिंदाबाद, उजड़े घर होंगे आबाद। हम में से कुछ इस नारे पर जेल भी गए थे। अब इंकिलाब हुए और आजादी आए काफी साल हो गए, पर हमारे घर तो वैसे ही उजड़े हैं। नेता ने संजीदगी से कहा—तुम लोग गलत समझे। वह नारा तुम्हारे घर के बारे में नहीं था, मेरे घर के बारे में था। और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख लो वह मेरा आलीशान घर। यानी पतनशीलता बढ़ रही थी। सन् 1960 के बाद राजनीति में वे बहुतायत से आ गए जिनका स्वाधीनता संग्राम से कोई लेना-देना नहीं था। ऐसे लोगों को 'कैरियर पालिटिशियन' कहते हैं—यानी वे जो दूसरे धंधों की तरह राजनीति को भी धंधे की तरह करते हैं।

अब हुआ यह कि राजनीति के प्रति सबसे बड़ा आकर्षण हो गया—धंधे की राजनीति के प्रति। प्रतिष्ठा राजनीति से मिलने लगी। राजनैतिक पद सबसे शोभावान हो गया। लोकप्रियता राजनीति से मिलने लगी। शक्ति और रोब-दाब राजनीति देने लगी। समाज के दूसरे क्षेत्रों को छोड़कर लोग राजनीति में जाने लगे। हर चुनाव के पहले अच्छे डॉक्टर, अच्छे अध्यापक, अच्छे समाजसेवी, राजनैतिक दलों में जाकर चुनाव टिकिट के याचक होते हैं। पिछले चुनाव के वक्त मेरे अच्छे परिचित एक अच्छे डॉक्टर एकाएक राजनीति में चले गए और विधान सभा की टिकिट माँगने लगे। मैंने कहा—आप इतने अच्छे डॉक्टर हैं। आपको विधायक बनने की ऐसी क्या जरूरत है? क्यों आप जैसा शरीफ आदमी राजनीति में जाना चाहता है, जहाँ अब ज्यादातर लुच्चे-लफंगे हैं? उन्होंने कहा—पैसा कमाना ही जीवन का उद्देश्य नहीं है। कुछ देश-सेवा भी करनी चाहिए। मैंने कहा—देश का अर्थ हिमालय, गंगा, सतपुड़ा नहीं है। देश के नागरिक हैं। आप आधे गरीब मरीजों की मुफ्त सेवा किया कीजिए। यह काफी देश-सेवा होगी और हवाई देश-सेवा नहीं ठोस देश-सेवा होगी। उन्होंने कहा—डॉक्टर विधानचंद्र राय जैसे श्रेष्ठ डॉक्टर देश-सेवा के लिए राजनीति में चले गए थे। मैंने कहा—वह राजनीति दूसरी थी, समय दूसरा था। वह स्वाधीनता संग्राम की राजनीति थी। वह जेल जाने, पिटने की, त्याग और बलिदान की राजनीति थी। अब प्राप्ति की छीन-झपट की, भ्रष्टाचार की राजनीति है। आप क्या करेंगे? तबादले कराएँगे, अपराधियों को पुलिस से बचाएँगे, अफसरों पर रोब गालिब करेंगे, ठेके दिलाएँगे, खुशामदियों से घिरे रहेंगे और जोड़-तोड़ करके मंत्री बनने की कोशिश करेंगे। विधानचंद्र राय तो मुख्यमंत्री थे तब भी चिकित्सा करते थे, अधिकतर गरीबों की। वे बोले—मैं भी डॉक्टरी छोड़ूँगा नहीं। मैंने कहा—साल में लगभग सात महीने विधानसभा का अधिवेशन होता है। आपको पाँच महीने ही डॉक्टरी करने को बचेंगे। आप न ईमानदार विधायक होंगे, न ईमानदार डॉक्टर। उन्होंने कहा—नहीं, मैं जब विधान सभा होगी, हर शुक्रवार को आ जाऊँगा और इतवार रात तक रहूँगा। मैंने कहा—यानी बाकी पाँच दिन आपके गंभीर मरीज यमराज के भरोसे होंगे!

मैं नहीं मानता कि कोई आदमी अराजनैतिक होता है। पर मेरी चिंता है कि अच्छे-अच्छे लोग अच्छे सामाजिक काम छोड़कर राजनैतिक दलों में जाकर सत्ता की जोड़-तोड़ में लग जाते हैं। कहा जाएगा कि राजनीति भी समाज-सेवा करती है। हाँ, करती है। किस तरह करती है? दहेज एक सामाजिक बुराई है। राजनीति दहेज के खिलाफ कानून बना देगी। पर समाज में ऐसे संगठन या शक्तियाँ नहीं हैं जो लोगों को दहेज लेने से रोकें—नैतिक और सामाजिक दबाव में। इसके अभाव में दहेज विरोधी कानून अप्रभावशाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गया। मुझे एक सज्जन ने रोते हुए बताया—मेरे होने वाले समधी ने इतनी अच्छी बातें की थीं। कहा था—दहेज एक पैसा नहीं लेंगे। यह अभिशाप है। पर अब जब हम निमंत्रण-पत्र भेज चुके तब उनका रजिस्टर्ड पत्र मिला कि पचास हजार रुपए लेंगे। हम कर्ज ले रहे हैं। घर के गहने और सामान बेच रहे हैं। मैंने कहा—उस चिट्ठी पर आप फौजदारी मामला दायर कर सकते हैं। उन्होंने कहा—मेरी दो लड़कियाँ और बैठी हैं। उनसे कोई शादी नहीं करेगा।

राजनीतिक लोग लाभ के लिए समाज-सुधार को रोकते भी हैं। जाति-प्रथा मिटनी चाहिए। पर 'वोट बैंक' बनाए रखने के लिए राजनेता जातिवाद फैलाते हैं, जाति-युद्ध कराते हैं। हिंदू-मुसलमान के झगड़े तो मुख्यतः राजनीतिज्ञों के पैदा किए हुए हैं। मतों के लिए दंगे कोई धार्मिक आदमी नहीं कराते। राजनेता कराते हैं। अब दंगे आकस्मिक नहीं भड़कते। योजना बनाकर दंगा कराया जाता है। सामाजिक शक्तियाँ, इतनी बलवान नहीं हैं कि इन्हें रोक सकें।

समाज में 'धन्य' और 'धिक्कार' की शक्तियाँ होती हैं। ये सामाजिक सदाचरण बनाए रखती हैं। मैंने पिछले कुछ सालों में समाज को इन शक्तियों को खाते देखा है। या गलत जगह प्रयोग करते देखा है। जो चालीस साल पहले धिक्कार पाते थे, वे धन्य पाने लगे हैं। और जिन्हें धन्य मिलता था, वे अपमानित, पीड़ित और अवहेलित हैं। सामाजिक शक्तियाँ तटस्थ भी हो गई हैं। चालीस साल पहले जो घूसखोर बदनाम हो गया, वह सिर उठाकर नहीं चलता था। वह समाज से धिक्कार पाता था। आज वह सफल आदमी माना जाता है। वह ऊँचा सिर करके चलता है। लोग उसकी हवेली दिखाकर तारीफ करते हैं—बड़ा चतुर है यह आदमी। देखो क्या हवेली तानी है। लाखों बैंक में हैं। एक हमारे बेटे हैं। दस साल नौकरी करते हो गए। सूखी तनखा घर लाते हैं बिलकुल बुद्धू हैं।

सदियों के अनुभव, विवेक, प्रज्ञा और संवेदना से जो जीवन-मूल्य हमने विकसित किए थे, उन्हें आजादी मिलते ही चालीस सालों में नष्ट कर लिया। अब सरकार और संगठन प्राचीन शिल्प और चित्र ले जाकर विदेशों में दिखाते हैं कि इतनी महान् और समृद्ध हमारी संस्कृति है। कोई पूछे कि अब आप कैसे हैं? सौंदर्य-रचना संस्कृति का अंग है। पर आप तो कुरूपता की रचना कर रहे हैं।

होता यह है कि कोई लोग यदि सामाजिक संगठन बनाकर अपने समुदाय में सुधार लाना चाहें, तो उनमें राजनेता घुस आते हैं। बिन बुलाए आते हैं। एक सज्जन ने मुझे बताया—हमारी जाति का संगठन है। काफी सालों से हम जो बनता है, सुधार कर रहे हैं। मसलन बिना दहेज शादी कराते है। अंधविश्वास भी कुछ तो कम करते हैं। पर हमारी आफत राजनैतिक दल कर रहे हैं। सम्मेलन हो रहा है तो कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी वाले दोनों हम पर जोर डाल रहे हैं कि उनको नहीं, हमको बुलाओ। वे समझते हैं, ये इकट्ठे मत हैं। हड़प लो। हममें सब पार्टियों में विश्वासी लोग हैं। पर हम खुले रूप में किसी पार्टी के साथ होना घोषित नहीं करना चाहते। ये नेता हमारा संगठन ही तोड़ देंगे। मैंने उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सुझाव दिया—तुम हमारे शहर के दोनों विश्वविद्यालयों के कुलपतियों को बुला लो। और यहाँ की चर्च के बिशप को बुला लो। ईसाई मुख्य अतिथि होगा तो हिंदू आपस में नहीं झगड़ेंगे।

कितनी समस्याएँ हैं, जो राजनीतिक आंदोलन और सरकार नहीं हल कर सकती। कई अरब रुपए खर्च करके भी जो किराए के शिक्षा सेवक का काम कर रहे हैं, वे प्रौढ़ों को शिक्षित नहीं कर सके। इस सरकारी प्रौढ़-शिक्षा-मिशन में रजिस्टर में खाए हुए रुपयों का हिसाब और प्रौढ़ों के नाम दर्ज करने का काम होता है। कारण यह कि सब शिक्षाकर्मी 'मिशनरी' नहीं 'मर्सिनरी' हैं। यह इतना बड़ा पाखंड जल्दी खत्म हो तो अच्छा है। इससे विपरीत मुझे बताया गया है कि किन्हीं जिलों में स्वयंसेवी संस्थाओं, लेखकों, संस्कृति कर्मियों ने प्रौढ़ शिक्षा का बहुत काम किया है। एक भी पैसा लिये बिना। दो जिलों के कलेक्टरों के बारे में मुझे बताया कि वे व्यक्तिगत रुचि लेकर इस काम में सहयोग करते हैं। दहेज-प्रथा के विरुद्ध कानून से यह रुका नहीं। बढ़ गया। रकम बढ़ गई। दूल्हे की नीलामी होने लगी। पर मेरी जानकारी में ऐसी शादियाँ हुई हैं, जिनमें सामाजिक दबाव के कारण दहेज नहीं लिया गया। सरकार पुलिसमैन के रूप में साकार होती है। सामाजिक शक्ति अदृश्य पर व्यापक और कानून से अधिक कारगर होती है।

पर समाज की इन शक्तियों को जगाने वाला सामाजिक आंदोलन कोई नहीं है। राजा राममोहनराय और ईश्वरचंद्र विद्यासागर जैसे बौद्धिक नेता और सक्रिय आंदोलनकारी नहीं हैं। राममोहनराय ने आंदोलन करके समाज को तो सचेत किया ही, ब्रिटिश सरकार से सती-प्रथा के विरोध में कानून भी बनवाया। ईश्वरचंद्र विद्यासागर प्रकांड विद्वान थे और उन्होंने विधवा विवाह के लिए सक्रिय आंदोलन भी चलाया। विवेकानंद कोरे वेदांती संन्यासी नहीं थे। वे वर्ग-चेतन क्रांतिकारी थे, साम्राज्यविरोधी थे।

महाराष्ट्र में महात्मा ज्योतिबा फुले हो गए हैं। इस विकट आदमी ने वर्ण-व्यवस्था के खिलाफ आंदोलन चलाया। तब ब्राह्मणवाद को चुनौती दी। स्त्री-शिक्षा का प्रसार किया। इन लोगों ने कोई राजनैतिक पद नहीं चाहा। प्रिंस आफ वेल्स के आगमन पर जो जलसा पूना में हुआ उसमें कुर्सियाँ छोड़कर जमीन पर बैठे महात्मा फुले ने कहा—आप अपने राज्य में शिक्षा का प्रवंध कीजिए। शिक्षा ही उन्नति की कुंजी है। महाराष्ट्र में ही पंडिता रमाबाई रानडे हो गई हैं। वे पंडित की बेटी थीं और वास्तव में पंडिता थीं—वेद, उपनिषद, शास्त्र में पारंगता। पर वे बाद में ईसाई हो गईं। इन पंडिता रमाबाई रानडे ने नारी-मुक्ति और नारी-शिक्षा के लिए बहुत काम किया। केरल में नारायण गुरु हो गए हैं। उन्होंने ब्राह्मणवाद का मुकाबला किया। शूद्रों को ही पुरोहित बनाया। मंदिरों में भगवान की प्रतिमा के स्थान पर दर्पण रखवाया जिसमें आदमी अपने को देखे और समझे।

इन समाज-सुधारकों में कोई राजनीति की तरफ नहीं दौड़ा। किसी ने राजनैतिक महत्त्वाकांक्षा नहीं पाई। पद नहीं चाहा। केवल समाज-सुधार के लिए सक्रिय आंदोलन चलाए। अब ऐसे लोग नहीं हैं, और न ऐसे आंदोलन। जो हो सकते हैं वे राजनैतिक पद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की तरफ दौड़ते हैं। आवश्यकता है सामाजिक आंदोलनों की। लेकिन हमने समाज-सुधार का जिम्मा कानून और पुलिस को दे दिया है।

दलित-कल्याण के कई ठेकेदार

मैंने पिछले लेख में लिखा था कि जैसे मनुष्य को कोई रोग प्रिय हो जाता है वैसे ही जातियों को कोई रोग प्रिय हो जाता है। दाद खुजाने में आदमी को मजा आता है। कष्टकर होने के बावजूद मजा आता है। हमारा समाज सदियों से यह वर्ण-व्यवस्था और जातिवाद की दाद पाले है। रोग है मगर उसे खुजलाकर मजा भी लेता है और शिकायत भी करता जाता है कि यह बुरा रोग है।

पिछली कई सदियों में इतिहास ने कई करवटें बदलीं, कई आंदोलन हुए, कई समाज-सुधारकों ने प्रयत्न किए, पर यह बीमारी जड़ से नहीं गई।

विवेकानंद ने युवकों का आह्वान किया कि 'शूद्रों' को शिक्षित करो। वे संगठित होंगे और सदियों से उत्पीड़ित करती इस सत्ता को नष्ट कर देंगे और अपनी सत्ता कायम करेंगे। 'शूद्र' से विवेकानंद का अर्थ केवल वर्ण से शूद्र नहीं है, सारे शोषित सर्वहारा हैं। महात्मा गाँधी ने 'अछूतोद्धार' आंदोलन चलाया। पर यह पतितों का उद्धार ही था। बराबरी के अधिकार दिलाने का आंदोलन नहीं। यही मतभेद अंबेडकर का गाँधीजी से था। अंबेडकर का कहना था कि वर्ण-व्यवस्था को मिटाना चाहिए। तभी अछूत हिंदू धर्म में रह सकते हैं। अंबेडकर ने महारों के साथ लाखों की तादाद में बौद्ध धर्म ग्रहण किया। पर इससे क्या फर्क पड़ा? अभी आगरा के क्षेत्र के लाखों जाटव (चमार) बौद्ध हो रहे हैं। इससे फर्क नहीं पड़ेगा। केवल हिंदू धर्म के कर्मकांडों से छुटकारा मिला।

इतनी जकड़ है वर्ण-व्यवस्था में कि वे बौद्ध महार और बौद्ध जाटव ही हैं। हिंदू धर्म से जो ईसाई होता है, वह अपनी जाति भी साथ ले जाता है। ब्राह्मण ईसाई है, चमार ईसाई है। ब्राह्मण ईसाई नीची जाति के ईसाई के यहाँ विवाह संबंध नहीं करता। जो नीची जाति से मुसलमान हुए वे इस्लाम में नीची जाति के रहे। शेख और सैयद बुनकरों में, पिंजारों में विवाह संबंध नहीं करते। ये हिंदू नीची जातियों से धर्म परिवर्तन करके मुसलमान हुए हैं। इतना जरूर है कि इन धर्म समाजों में अछूत नहीं होते।

मूल बात है, आर्थिक और वह काम तथा वे औजार जिनसे नीची जाति के लोग काम करते हैं। उत्पादन और उत्पादन का तरीका। ब्राह्मण की जमीन-जायदाद है, वह पुरोहित भी है, तो वह नीचा कर्म करके भी जातिगत श्रेष्ठता कायम रखता है। मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' में पंडित दातादीन के सुपुत्र पंडित मातादीन हैं। मातादीन की रखैल चमारिन हैं, जिसे वे छिपाते नहीं। पर मातादीन ब्राह्मण समाज में तब भी प्रतिष्ठित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हैसियत वाले हैं। परंपरा से पूज्य हैं। उनके पौरोहित्य के औजार अक्षत, चंदन, दूर्वा, कुंकुम और पोथी हैं। मातादीन से कोई कहता है—तुम चमारिन के साथ सोते हो, तो तुम्हारी जाति नहीं चली गई? मातादीन का जवाब है—जाति क्यों जाएगी ? मैं उसके हाथ की रोटी तो नहीं खाता। क्या तर्क है? चमारिन का थूक चाटने में जाति नहीं जाती। उसके हाथ की रोटी खाने से जाति जाती है। अगर किसी नीची जाति का आदमी धन और सत्ता संपन्न हो जाए, तो वह भी ब्राह्मणी को रखैल रख सकता है। रामविलास पासवान को आजकल ऊँची जाति के लोग बहुत गाली दे रहे हैं। मगर उससे काम कराने के लिए बहुत ब्राह्मण उसके चरण छूते होंगे। वह श्रममंत्री थे। वह नौकरी देने वाला और नौकरी लेने वाला था। वह किसी भी चतुर्वेद के ज्ञाता कर्मकांडी पंडित से लड़के की नौकरी के लिए अपने चरण-स्पर्श करवा सकता था।

आर्थिक आधार बहुत कुछ उत्पादन और औजारों पर निर्भर है। कारखानों में नीची जाति के लोगों को भी काम मिलता है। जो लोग अशिक्षित हैं, हाथ से ही छोटे-मोटे काम करते हैं, बोझ उठाते हैं और हजार रुपयों के लगभग वेतन पाते हैं, उनमें जातिगत जातिभेद प्रगट रूप से रहता है। कम रहता है। पर जो अर्द्ध-प्रशिक्षित तथा प्रशिक्षित कर्मचारी मशीनों पर काम करते हैं, वे कारीगर कहलाते हैं, दो-ढाई हजार रुपए हर महीने पाते हैं, उनमें जातिभेद या संघर्ष व्यवहार में नहीं होता।

कुछ चिंतक मानते हैं कि भारत में वर्ग-संघर्ष नहीं वर्ण-संघर्ष है। यहाँ वर्ण ही वर्ग है, यह बिलकुल गलत है और संबंधों का अति सरलीकरण है। माना कि भारत में एक पूरा वर्ण अछूत है और सर्वहारा है। उसका शोषण होता है। पर गरीबी की रेखा के नीचे कई ब्राह्मण भी जाते हैं, वैश्य भी क्षत्रिय भी। वर्ग वर्णों के आर-पार जाता है। शोषण करने वाला जाति नहीं देखता। वह सब जातियों का शोषण करता है। कारखाने का मालिक यह भेद नहीं करता कि ब्राह्मण ठाकुर का कम शोषण करो, चमार का ज्यादा करो। व्यापारी यह खयाल नहीं करता कि ग्राहक किस जाति का है। यह सब जातियों से मुनाफाखोरी करता है। गाँवों में बड़े किसानों के खेतों पर खेत मजदूर चाहे ब्राह्मण हों, जाट हों, ठाकुर हों, या चमार हों—वह सबका शोषण करता है। वह अपनी जाति के मजदूरों का भी शोषण करता है। व्यापारी कहता है—भैया, धंधे में रिश्तेदारी की मुरौवत करो तो धंधा चौपट हो जाता है। सोचिए, वर्ण और वर्ग एक कैसे हुए? वर्ग-संघर्ष की जगह वर्ण-संघर्ष कैसे हुआ? वर्ण-भेद और वर्ग-भेद हमारे समाज में इतना जटिल है, कठोर भी है कि उसके अति सरलीकरण के गलत निष्कर्ष निकलेंगे।

बीच की जातियाँ अछूत नहीं हैं। उनके धंधे हैं। काम करने के औजार निम्न जातियों से अच्छे हैं। लुहार, बढ़ई, सुनार, सपेरा आदि-आदि आर्थिक रूप से संपन्न हैं, तो वे प्रतिष्ठित हैं और उच्चतम जाति की बराबरी पर होते हैं। ये ब्राह्मणों को नौकर रखते हैं। नाई, धोबी आदि नीचे माने जाते हैं। पर बाल काटने के 'सैलून', कपड़े धोने की लॉण्ड्री मशीन होने से इनका स्तर ऊँचा हो जाता है। ये बराबरी के हो जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन नीची जातियों में बहुत सारे डाकू, लुटेरे, अपराधकर्मी हो जाते हैं। इनमें जो अपहरण करके फिरौती का दावा पेश करते हैं, उनकी वेदपाठी ब्राह्मण भी इज्जत करते हैं, और करोड़पति व्यापारी भी। अछूतों में जो बलशाली आतंकवादी हो जाते हैं, उनकी इज्जत सब ऊँची जातियाँ करती हैं। यह उनके आतंक से पैदा हुई इज्जत है। तुलसीदास ने कहा है—भय बिन होय न प्रीत। वरना इन पर जब-तब प्रदर्शन करके कृपा होती है। तुलसीदास ने केवट से हठ करके राम के चरण धुलवाए हैं। और शबरी के बेर राम ने कृपापूर्वक खाए हैं। तुलसीदास की इस कृपा की स्तुति, खुद माँगकर खाने वाले और मस्जिद में सोने वाले तुलसीदास किस तरह गाते हैं।

इनका भोला मुख और मीठे वचन चाहिए। तो इनका शोषण मजे में हो सकता है। तब ये प्रिय भी लगते हैं, क्योंकि समर्पित होते हैं। मगर तमतमाया मुख हो और कठोर वचन हों, तो ये प्रभु को प्यारे नहीं लगते।

गाँधी जी के स्वाधीनता आंदोलन के साथ दूसरे आंदोलन भी चले। नारी-मुक्ति आंदोलन, हरिजन-उद्धार आंदोलन, सफाई का आंदोलन, स्वदेशी आंदोलन, धर्मों की एकता का आंदोलन। तभी डॉ. अंबेडकर ने गाँधी जी की 'उद्धार' की मान्यता और पद्धति का विरोध किया। दलितों को कृपा नहीं चाहिए, बराबरी का अधिकार चाहिए। हिंदू धर्म और समाज यह नहीं दे सकता तो हम इस धर्म को ही त्याग देंगे।

बहरहाल, जब संविधान बनाया था, स्वाधीनता, समानता, समान अधिकार, सामाजिक न्याय के आधार संविधान निर्माताओं के पास थे। इसी कारण पिछड़ी जातियों को उठाकर बराबरी पर लाने और समाज में सम्मान दिलाने के लिए विशेष सुविधाओं और आरक्षण का प्रावधान किया गया। यह उचित था। पिछड़े रहने में उनका कोई कसूर नहीं। ऐतिहासिक और आर्थिक कारणों से पिछड़े रहे। दूसरों के अन्याय के शिकार से पिछड़े रहे। इन्हें विशेष सुविधा, आरक्षण और सहायता न्यायसंगत, संवैधानिक और मानवी उपाय हैं।

मगर आरक्षण और विशेष सुविधाओं का क्रियान्वयन कैसे होता है और फल कितना मिलता है? वस्तुस्थिति यह है, जैसा राजीव गाँधी ने प्रधानमंत्री की हैसियत से कहा था—गरीबों की सहायता के लिए जो एक रुपया निकलता है, उसमें से सिर्फ पंद्रह पैसे उन तक पहुँचते हैं। आज के अखबार में समाचार है कि प्रौढ़ शिक्षा की 'सेवा' में एक अरब से ऊपर रुपए 'सेवकों' ने सलाद के साथ खा लिए। कल पढ़ा था कि जाति सेवा के 'सेवकों' ने एक अरब से ऊपर अपनी ही सेवा में लगा दिए।

हमारी व्यवस्था का हाल यह है। गरीब और पिछड़ी जातियों को शैक्षणिक तथा दूसरे सुभीते, बैंक कर्ज, मदद के लिए गरीबी का प्रमाण-पत्र लेने के लिए सरकारी लोगों को पैसा खिलाना पड़ता है। जो वास्तव में गरीब हैं, वे पैसा नहीं खिला सकते, इसलिए उन्हें गरीबी का प्रमाण-पत्र नहीं मिलता। मगर उसी जाति में जो अपेक्षाकृत पैसे वाले हैं, वे घूस खिलाकर गरीबी का प्रमाण-पत्र ले लेते हैं। गरीबी की जाँच और उन्हें गरीबी का प्रमाण-पत्र देने का काम न महात्मा गाँधी करते न सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र। वास्तविक गरीबों की सुविधाएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उसी पिछड़ी जाति के वे लोग हड़प लेते हैं, जो गरीब नहीं हैं। इस षड्यंत्र में रेवेन्यू विभाग के लोग, सरपंच, बैंक, सब शामिल हैं।

पिछड़ी जातियों के छात्रों के लिए छात्रवृत्तियाँ स्कूल या कॉलेज के प्राचार्य के मारफत आती रही हैं। काफी प्राचार्य इस पैसे को या तो पूरा खा जाते हैं या उसमें से हिस्सा ले लेते हैं। मुझे स्कूलों, कॉलेजों के अध्यापक और पिछड़ी जातियों के छात्र बताते हैं। मैं खुद कभी एक कॉलेज की प्रबंध समिति का सदस्य था। एक मीटिंग में प्राचार्य के प्रतिद्वंद्वी ने पोल खोल दी कि प्राचार्य हरिजन छात्रों की छात्रवृत्ति खा जाते हैं। जाँच करने पर आरोप सही निकला। प्राचार्य ने मुझसे बाहर ले जाकर कहा—परसाई जी, गलती मुझसे हो गई है। मैंने कहा—आपकी गलती नहीं है, चरित्र है। वे बोले—मैं अभी इस्तीफा दे देता हूँ। मेरी इज्जत बचा लीजिए। मैंने कहा—पैसा जमा कर दीजिए। रिटायर आप होने वाले हैं।

मुझे बताया गया है कि अधिकतर स्कूलों, कॉलेजों में यह होता है। आदिवासियों, हरिजनों के लिए जो छात्रावास बने हैं, उनके हालात जाकर देखें। वह भोजन खाकर देखें जो छात्रों को खिलाया जाता है। और फिर हिसाब देखिए कि कितना पैसा एलाट और खर्च हुआ है।

विशेष शिक्षण (ट्यूटोरियल) का इंतजाम जगह-जगह है। पर रिपोर्ट है कि न पढ़ने वाले छात्र आते न पढ़ाने वाले शिक्षक जाते। कारण? छात्रों को उत्साहित नहीं किया जाता। और अध्यापक? एक प्रोफेसर साहब से मैंने पूछा कि आपको पैसा मिलता है, तो आप पढ़ाने जाते होंगे। उनका जवाब था—उतनी दूर जाने में जो पेट्रोल लगता है उसकी कीमत भी तो नहीं मिलती।

हाई स्कूल के अध्यापक ने बताया—किसी पिछड़ी जाति के लड़के की छात्रवृत्ति यदि चार-पाँच तारीख तक न मिले, तो उसका बाप स्कूल आ जाता है और प्राचार्य से कहता है—साब, मेरे लड़के की तनखा अभी तक नहीं मिली। गरीब परिवार लड़के की छात्रवृत्ति को 'तनखा' मानकर उसका उपयोग करता है। छात्र न पुस्तकें खरीदता न पढ़ने में मन लगाता। इसका कारण घोर गरीबी है।

आदिवासी क्षेत्रों में कॉलेज खोले गए हैं। इनके अध्यापक बताते हैं कि इनमें से केवल दस लड़के आदिवासी होते हैं, बाकी नब्बे गैर आदिवासी सरकारी कर्मचारियों, बनियों, ठेकेदारों आदि के लड़के। कारण एक तो यह कि छोटी उम्र से ही लड़का कुछ करके थोड़ा-सा कमाने लगता है। दूसरे, कोई प्रोत्साहन उनके बीच से नहीं। तीसरे, अध्यापकों की सहानुभूतिहीनता। कहते हैं—कहाँ नर्क में डाल दिया सरकार ने! गोंडों, कोरकुओं, जंगलियों के लड़के पढ़ाना हमारी किस्मत में लिखा है!

इन पिछड़े लोगों में एक बड़ा हिस्सा ऐसा है, जो आशा-आकांक्षा के मामले में जिंदा नहीं है। जड़ (स्टेटिक) है। इसमें हलचल, बदलाव (डाइनेमिज्म) नहीं है। मैं समाज-सेवकों से पूछता हूँ—गाँव की पंचायत में टेलीविजन होता है। गाँव के लोग इसे देखते होंगे। टेलीविजन में अच्छी-अच्छी चीजों के विज्ञापन दिखाए जाते हैं। क्या गरीबों के मन में यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छा नहीं जागती कि ये चीजें हमारे पास भी होनी चाहिए? क्या उन्हें अपनी स्थिति से असंतोष नहीं होता? समाज-सेवक ने कहा—गरीबों की न इच्छा होती है न उन्हें अपनी हीनता से असंतोष। वे माने बैठे हैं कि हमारे भाग्य में सिर्फ इन्हें देखना है। बात यह है कि इच्छा को आर्थिक आधार चाहिए। पर जो संपन्न किसान हैं, वे शहर जाकर खरीद लाते हैं। संपन्न किसान शहरी हो गया। उसके पास सबसे अच्छा साबुन होता है और 'स्काच' शराब भी।

यह जो मुर्दनी से ग्रस्त समाज के हिस्से हैं। इन्हें कौन जगाए? कौन हलचल पैदा करे। कौन गतिशीलता लाए? ये तो प्रतिवाद करना भी भूल गए।

यह काम उन्हीं के बीच के नेताओं को करना चाहिए। इनमें जो डॉक्टर, इंजीनियर, आदि हो गए हैं, उन्हें करना चाहिए। पर इनमें अधिकतर लौटकर अपने लोगों की तरफ नहीं देखते। वे नहीं चाहते कि उनकी पहचान (आइडेंटिटी) पिछड़े लोगों की हो। वे अपनी जाति के शोषक भी हो गए हैं।

बाईस फीसदी आरक्षण इकतालीस सालों से चल रहा है। पर सरकारी नौकरियों में वे सिर्फ आठ फीसदी हैं। कोई राजदूत अभी तक नीची जाति का नहीं हुआ। मैं मानता हूँ कि बेरोजगारी की समस्या सरकारी नौकरियों से हल नहीं होगी। मगर सरकारी नौकरियों में भी उनके साथ अन्याय होता है।

सरकार आरक्षण करके काम खत्म समझ बैठती है। कर्त्तव्य पूरा हुआ। पर जिस मशीनरी से काम कराया जाता है, वह पूरी भ्रष्ट है। पिछड़ों में निहित स्वार्थी पैदा हो गए हैं। वे बीच में लाभ ले लेते हैं। फिर लोक-कल्याण की नीलामी इस देश में होती है। इससे लोक-कल्याण के ठेकेदार पैदा हो गए हैं। ये कल्याण भरसक नहीं होने देंगे।

ओ. हेनरी

उस आदमी का वास्तविक नाम ओ. हेनरी नहीं था। अमेरिका में शिकागो के एक बैंक में एक आदमी काम करता था। वह गबन के अपराध में जेल गया। जेल में वक्त काटने के लिए वह कहानियाँ लिखने लगा। उसने अपना नाम ओ. हेनरी रख लिया। वह मशहूर कहानी-लेखक हो गया।

ओ. हेनरी दुनिया के दूसरे बड़े कहानीकारों से अलग किस्म का लेखक है। उसमें बड़ा बारीक व्यंग्य है। भाषा विलक्षण है। विरोधाभास पकड़ने की क्षमता अद्‌भुत है। उसके प्रहार बहुत जोरदार होते हैं। उसकी शैली का कमाल यह है कि लिखते-लिखते दो-चार जगह कटाक्ष के बाण छोड़ देता है, जिसे अंग्रेजी में 'टेंजेंट' कहते हैं। मूल विषय जिस पर वह लिख रहा है उसके बहाने दूसरी चीजों, व्यक्तियों और वर्गों पर वह कटाक्ष कर देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
व्यक्तियों का चित्रण वह अद्भुत तरीके से करता है। जैसे किसी की कंजूसी बताना है तो वह लिखता है कि—ही वाज सो रिच दैट ही कुड अफोर्ड टू वाक ए फ्यू ब्लाक्स बिफोर टेकिंग ए टैक्सी। इसके साथ ही लेखन में बहुत गहरी मानवीय संवेदना है, चेतना है। भाषा की रवानी और मुहावरों की बनावट बहुत मोहक है।

उसकी एक कहानी है 'जीवन की भँवर'। बहुत मार्मिक है। गाँव में किसान दंपति रहते हैं। उनका आपस में झगड़ा होता रहता है। एक दिन वे तय करते हैं कि चलें तलाक ले लेते हैं। पाँच डालर का नोट लेकर वे पास के कस्बे के रजिस्ट्रार के आफिस में जाते हैं। तलाक की अर्जी पेश करते हैं। अधिकारी और पूछताछ करके तलाक मंजूर कर देता है। अब वे दोनों बाहर आते हैं। एक-दूसरे से बिना बोले बरामदे में खड़े रहते हैं। कभी इधर देखते हैं कभी उधर देखते हैं। इतने साल साथ रहकर एक तरह का जीवन जीने का उन्हें अभ्यास हो गया था। इस नई परिस्थिति में दोनों भौचक थे। उनमें कुछ इस तरह की बातचीत होगी—

पु. : अब तू कहाँ जाएगी?

स्त्री : मैं कहीं भी जाऊँ तुम्हें हमसे क्या मतलब? अब तो हमारा रिश्ता रहा नहीं।

पु. : फिर भी बताने में क्या हर्ज है?

स्त्री : मैं अपने मामा के घर जाऊँगी जो इस पहाड़ी के उस पार रहते हैं।

पु. : चल घोड़ा-गाड़ी में, मैं तुझे वहाँ पहुँचा दूँगा।

स्त्री : पर जब हमारा-तुम्हारा कोई संबंध ही नहीं है तो तुम ऐसा क्यों करोगे ? हम एक-दूसरे के लिए अपरिचित हैं। और देखो गाय को घास समय पर खिला देना।

पु. : तुम्हें गाय से अब क्या मतलब?

स्त्री : सुबह की बची हुई सब्जी और रोटी मैं सम्हाल कर रख आई हूँ। रात को इससे तुम्हारा काम चल जाएगा।

पु. : पर तुम्हें इससे मतलब क्या जब हम एक-दूसरे के कोई नहीं?

स्त्री : तुम अलमारी बंद करना भूल जाते हो और उसमें चूहे घुस जाते हैं इसका ध्यान रखना।

इस तरह की बातें उनमें देर तक होती हैं।

अंत में वे तय करते हैं कि वे एक-दूसरे के बिना नहीं रह सकते। और तय करते हैं कि फिर से शादी कर लें। पर स्त्री कहती है—कि शादी करने में पाँच डालर लगते हैं और वे अपने पास नहीं हैं। पुरुष कहता है कि उसका इंतजाम मैं कर लूँगा। वह कैसे इंतजाम करता है? विवाह अधिकारी दफ्तर से घर जाने लगता है। धुँधलका हो जाता है। रास्ते में झुरमुट पड़ता है। किसान उसका पीछा करता है और झुरमुट में उसे दबोच कर पाँच डालर का नोट छीन लेता है। दूसरे दिन वे विवाह का आवेदन अधिकारी के सामने पेश करते हैं। किसान पाँच डालर का नोट भी देता है। उस मुड़े हुए नोट को देखकर अधिकारी जान जाता है कि वह उसी से छीना हुआ नोट है। वह अर्थपूर्ण दृष्टि से किसान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ओर देखता है।

चौबीस घंटे में तलाक और विवाह दोनों हो जाते हैं। किसान और उसकी पत्नी गाड़ी में बैठकर घर आते हैं। मानवीय संबंधों की वह बहुत कोमल और नाजुक कहानी है।

बिलकुल दूसरे प्रकार की कहानी है—'चेयर ऑफ फिलेन्थ्रो मैथिमेटिक्स'। दो लुटेरे हैं—राबर्ट और स्मिथ। वे लूट का जब बहुत पैसा इकट्ठा कर लेते हैं तो एक शाम को दार्शनिक हो जाते हैं। राबर्ट कहता है—स्मिथ, तुम जरा इस बात पर ध्यान दो कि लूटने वाले जिन्हें लूटते हैं, उनकी भलाई के लिए भी कुछ करते हैं। जैसे ये खदानों के मालिक हैं। ये मजदूरों को लूटते हैं पर उनके लिए अस्पताल भी खुलवाते हैं और उनके बच्चों के लिए स्कूल भी। स्मिथ कहता है कि बात बिलकुल ठीक है, लुटेरों में भी नैतिकता और दानशीलता होनी चाहिए। हम लोगों ने जिनको लूटा है उनकी भलाई के लिए हमें कुछ करना चाहिए। वे सोच-विचार के बाद निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जिन धनियों को हमने लूटा है, उनके आवारा लड़कों के लिए विश्वविद्यालय खोल देना चाहिए। वे एक कस्बे की तरफ जाते हैं, जहाँ एक इमारत की चार मंजिलें खड़ी हैं, बनवाने वाले के पास पाँचवीं मंजिल बनवाने के लिए पैसा नहीं था। इसलिए उसने चौथी मंजिल से कूदकर जान दे दी। राबर्ट और स्मिथ इसी इमारत में फ्री वर्ल्ड यूनिवर्सिटी खोलने का तय करते हैं।

दफ्तर खुल जाता है। बड़े शहर के अखबारों में विज्ञापन छप जाते हैं—'यह विश्वविद्यालय निःशुल्क होगा और सारे विषय इसमें पढ़ाए जाएँगे। डीन, प्रोफेसर आदि के लिए भी 'आवश्यकता है' के विज्ञापन छप जाते हैं। धीरे-धीरे विश्वविद्यालय में चहल-पहल हो जाती है।

राबर्ट स्मिथ से कहता है—ये मुफ्त में पढ़ने जो लड़के आए हैं, ये कौन के हैं, इस पर तुमने ध्यान दिया? ये उन्हीं धनिक सुअरों और कुत्तों के लड़के हैं। ये पढ़ने नहीं मौज करने आए हैं।

राबर्ट और स्मिथ गाउन पहनकर डीन हो जाते हैं। राबर्ट इजिप्ट की प्राचीन सभ्यता पर भाषण देता है। लड़के मौज-मजा करते हैं। जुआ खेलते हैं।

बैंक में जमा रुपया निकलता जाता है और विश्वविद्यालय चलता जाता है। एक दिन राबर्ट हिसाब देखता है। वह स्मिथ से कहता है कि बहुत कम पैसा बचा है। इसमें तो विश्वविद्यालय आगे चल नहीं सकता। दो-तीन दिन बाद राबर्ट 'न्यूयार्क-टाइम्स' में देखता है कि विश्वविद्यालय में 'चेयर आफ फिलेन्थ्रो मैथिमैटिक्स' के लिए एक प्रोफेसर की नियुक्ति के लिए 'आवश्यकता है' विज्ञापन छपा। राबर्ट स्मिथ से कहता है कि यह विज्ञापन तुमने दिया है? अपने पास पैसा खत्म हो रहा है, और तुम एक नए डीन की नियुक्ति कर रहे हो। ये विषय क्या है? स्मिथ ने कहा कि धीरज रखो, आगे सब मालूम हो जाएगा।

क्रिसमस की छुट्टियाँ आती हैं। एक हफ्ते तक विश्वविद्यालर्य में मनोरंजन मेला चलता है। आखिरी रात को राबर्ट और स्मिथ दफ्तर के कमरे में बैठे हैं। इतने में एक आदमी दो बड़े-बड़े थैले लेकर आता है। वो थैले खोलता है, और उनमें भरे नोट उड़ेलकर कहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—यह आज की कमाई है। स्मिथ राबर्ट से कहता है—यही डीन चेयर आफ फिलेन्थ्रो मैथिमैटिक्स है। यह जुए का बहुत बड़ा उस्ताद है। लड़कों को जुए में लूट लेता है। यह प्रोफेसर विश्वविद्यालय को चलाता रहेगा।

मनुष्य के अहं को—उच्चता की भावना को लेकर अच्छी कहानी लिखी गई है--'प्राइड आफ सिटीज'। एक शिकागो शहर का रहने वाला न्यूयार्क आ जाता है। वहाँ उसे एक न्यूयार्क वाला मिलता है। दोनों में दोस्ती हो जाती है। न्यूयार्कवासी उसे कॉफी पिलाने होटल में ले जाता है। दोनों बैठते हैं। उनमें परस्पर बड़ी सद्भावना है। बातचीत चलती है। न्यूयार्कवासी कहता है—न्यूयार्क के अमुक बाजार से अच्छा बाजार अमेरिका में नहीं है। शिकागो वाला कहता है कि हमारे शिकागो का अमुक बाजार तुम्हारे इस बाजार से अच्छा है। इस तरह 'मेरा अच्छा' और 'तेरा घटिया' होने लगता है। न्यूयार्कवासी कहता है कि हमारे सिटी पुलिस सुपरिंटेंडेंट से अच्छा अफसर कहीं और नहीं है। शिकागोवासी कहता है कि हमारे पुलिस आफीसर सुपरिंटेंडेंट राबर्ट को तुमने नहीं देखा। तुम्हारा अफसर उसके सामने कुछ नहीं है। वे इस तरह अपने-अपने शहर का अहंकार बताते हैं। और उनकी बातचीत कटु होती जाती है। आखिर शिकागो का निवासी यह कहकर कि तुमसे हमारी पट नहीं सकती, दूसरी टेबल पर चला जाता है।

ओ. हेनरी की कहानियों की बड़ी विशेषता यह है कि उनमें व्यंग्य और विनोद मिले रहते हैं। फिर, वे मनुष्य के बाहरी जीवन तथा मनोजगत् का अध्ययन करती हैं। तीसरे, उनमें मानवीय संवेदना गहरी होती है।

एक कहानी है जिसमें एक लड़का है, जो बहुत ऊधमी है। घर और मुहल्ले के लोग उससे परेशान हैं। वह धनवान आदमी का लड़का है। उसे फिरौती के लिए डाकू उठा ले जाते हैं। लड़का डाकुओं के पास रहता है और उन्हें भी तंग करता है। घोड़े की तरह उन पर सवारी करता है, उन पर कूदता है, नींद में उन्हें चिकोटी काटता है। डाकू उसके पिता को खबर भेजते हैं कि एक लाख डालर देकर अपने लड़के को छुड़ा लें। लड़के का पिता जवाब देता है कि मैं कुछ नहीं दूंगा। तब वे डाकू पचास हजार और पच्चीस हजार डालर की खबर भेजते हैं। पर लड़के का पिता नामंजूर कर देता है। तब डाकू खबर भेजते हैं कि हम बिना कुछ लिये ही लड़का तुमको दे जाएँगे।

लड़के का बाप खबर करता है कि ठीक है, आधी रात को आना। दिन में लड़के को लेकर मत आना। मुहल्ले के लोग तुमको मार डालेंगे।

ओ. हेनरी ने बहुत कहानियाँ नहीं लिखीं, पर जो भी लिखी हैं वे बहुत अच्छी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत मानव महासागर तीरे

हमें संस्कृति में, भारत की संस्कृति में, समन्वय पर सोचना है। मेरा विनम्र मत है कि दुनिया की सारी संस्कृतियों में समन्वय है, हालाँकि जैसा पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है, हर जाति अपनी संस्कृति को विशिष्ट मानती है। नेहरू ने यह भी लिखा है कि संस्कृति की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती। यह उन्होंने जरूर लिखा है कि किस तरह संस्कृति के लक्षण देखे जा सकते हैं। दूसरे के विचार को चाहे उससे आप असहमत हों, खुले दिमाग से सुनना या पढ़ना संस्कृति का लक्षण है। दूसरों के प्रति सहनशीलता संस्कृति का लक्षण है।

दो शब्द हैं, दो चीजें हैं—सभ्यता और संस्कृति। यह माना जाता है कि सभ्यता बाह्य उपलब्धि है और संस्कृति आंतरिक। मनुष्य ने अपने सुख-साधन के लिए जो निर्मित किया वह सभ्यता है। इनमें मकान से लेकर महल और बैलगाड़ी से लेकर वायुयान हैं। सुख की सामग्री हैं। पर मनुष्य का एक आंतरिक अस्तित्व भी है। यह उदात्त है। इसमें सौंदर्य की चाह है। दया, प्रेम, सहानुभूति, दूसरे के मंगल की कामना है। मनुष्य केवल बाहरी सुख-साधनों से संतुष्ट नहीं होता। वह मंगलमय जीवन-मूल्यों को ग्रहण करना चाहता है। वह आत्मा का उदात्तीकरण और उन्नयन भी चाहता है। यह संस्कृति है। पर सभ्यता और संस्कृति की परस्पर क्रिया-प्रक्रिया होती है और दोनों एक-दूसरे को प्रभावित भी करती हैं। केवल सभ्यता एक आत्महीन उपलब्धि होती है। मिस्र के प्राचीन पिरामिड अत्यंत भव्य हैं। वे चमत्कृत करते हैं। मालूम होता है कि मिस्र की प्राचीन सभ्यता बहुत उन्नत थी। पर इन पिरामिडों में मृत राजा को दफनाया गया है। उसके साथ उसकी रानियाँ तथा दास-दासी भी जीवित दफना दिए गए थे। सवाल उठता हैं कि यह कैसी सभ्यता थी, जिसमें मुर्दे के साथ ही जीवित मनुष्य भी दफना दिए जाते थे? लगता है यह सभ्यता थी जिसमें संस्कृति का अभाव था।

संस्कृति एक अनवरत मूल्यधारा है। यह जातियों के आत्म सचेत अस्तित्व से, आत्मबोध से आरंभ होती है और मुख्य धारा में संस्कृति की दूसरी धाराएँ मिलती जाती हैं। उनका समन्वय होता जाता है। इसलिए, किसी जाति की संस्कृति उसी मूल रूप में नहीं रहती बल्कि समन्वय से वह अधिक संपन्न अधिक व्यापक होती जाती है। जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है—

> *"Some inner urge towards synthesis is the dominant feature of our INDIAN cultural development."*

यानी समन्वय की भीतरी उत्सुकता भारतीय संस्कृति की खास विशेषता रही है।

आर्य जब इस देश में आए तो वे विजेता थे। इतिहासकार मानते हैं कि विजेता जाति विजित जाति की सभ्यता और संस्कृति के कुछ तत्त्व ग्रहण कर लेती है। आर्यों के पहले मोहन-जोदड़ो और हड़प्पा की सभ्यता-संस्कृति थी। उससे आर्यों का संपर्क नहीं हो सका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हो जाता तो बहुत-सी बातें उन लोगों से वे सीख लेते। आर्य जब आए तब इस देश में द्रविड़ और आदिवासी थे। आदिवासी तब भी आदिम अवस्था में थे। द्रविड़ सभ्यता और संस्कृति उन्नत थी। इससे समन्वय में थोड़ा समय लगा, पर समन्वय हुआ। शिव मूलतः किरात जाति के देवता हैं। द्रविड़ों ने शिव को अपना देवता मान लिया। जब सांस्कृतिक समन्वय हुआ तो आर्यों ने शिव को अपना देवता मान लिया। और द्रविड़ों ने कितना आर्यों से ग्रहण किया यह तो नामों से ही मालूम होता है। द्रविड़ कजगम के आदिनेता, जो कट्टर आर्य संस्कृति विरोधी थे, उनका नाम रामस्वामी नाइफर था। उनके नाम में ही राम था।

समन्वय की यह परंपरा तब से लगातार कायम है। सांस्कृतिक प्रभाव हमारे जीवन में, आचरण में, जीवन-पद्धति में, परस्पर व्यवहार में प्रगट होते हैं। इससे सौंदर्य की रचना होती है, कलाएँ, संगीत, साहित्य, स्थापत्य में उपलब्धियाँ होती हैं। कलाएँ हमारी आत्मा का उदात्तीकरण करती हैं। हमें बेहतर मनुष्य बनाती हैं। जितनी देर हम संगीत सुनते हैं उतनी देर हमारे मन में मैल नहीं रहता, किसी के प्रति द्वेष नहीं रहता, हम बुरा नहीं सोचते। हम बेहतर मनुष्य हो जाते हैं। इसीलिए संगीत तथा अन्य कलाएँ संस्कृति के उपादान होते हैं। इनमें भी लगातार समन्वय होता गया।

आर्यों ने सभ्यता की एक मंजिल तय कर ली। तब चिंतन गहन हुआ। बहुतायत से कृषि होने लगी थी। गायें थीं—अच्छा भोजन, संपन्न जीवन। गहन चिंतन हुआ। अपने भीतर देखा। जगत् को देखा। प्राणिमात्र को देखा। इसी अनुभव, अनुभूति और चिंतन का निष्कर्ष सांस्कृतिक मूल्यों के रूप में इस तरह हुआ—

आत्मवत् सर्वभूतेषु

और—

सर्वे सुखिनः संतु सर्वे संतु निरामयः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नयात्।

सबकी मंगल कामना। सब सुखी हों। यह संस्कृति लोक से ही आई और शास्त्रबद्ध हुई।

तब से अनेक जातियाँ भारत में आईं। कुछ हमला करने और लूटने तथा कुछ यहीं बस जाने। ग्रीक यूनानी आए। ग्रीक सभ्यता और संस्कृति बहुत उन्नत थी। उनका चिंतन, उनका काव्य, नाटक, मूर्तिकला बहुत विकसित थी। सुकरात, प्लेटो, अरस्तु जैसे चिंतक और सोफोक्लीज जैसे नाटककार थे। नगर प्रशासन की लोकतांत्रिक विधि उन्होंने विकसित की थी। भारत में भी बहुत पुराने समय से ग्राम प्रशासन और ऊँचे स्तर पर गणतंत्र थे। लिच्छिवी गणतंत्र इतिहास-प्रसिद्ध है। सिकन्दर अपने साथ कूटनीतिक और विद्वान भी लाया था। वह वापस एथेंस लौट गया, पर अपने प्रतिनिधि सिल्यूकस को यहाँ छोड़ गया, जिसकी लड़की की शादी चंद्रगुप्त से हुई। ग्रीक विद्वान नालंदा और तक्षशिला के विश्वविद्यालयों में रहे। सीखे और सिखाया। 'सत्यं शिवं सुंदरम्' ग्रीक कथन है। भारत ने ले लिया। दर्शन, कला, विज्ञान का आदान-प्रदान हुआ। शक आए, हूण आए। ये यहीं बस गए। ये भारतीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
धर्मों में दीक्षित हुए और किसी जाति में समा गए। ऐसा ही तुर्कों का हुआ। वे इस्लाम के पहले आए थे। योद्धा थे और अच्छे कारीगर थे।

पंडित नेहरू ने लिखा है कि जैन धर्म और बौद्ध धर्म का प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ा, विशेषकर आचरण पर। बौद्ध धर्म बाहर भी गया—श्रीलंका, इंडोनेशिया, चीन आदि में बौद्ध भिक्षु गए और धर्म का प्रचार किया। चीनी भिक्षु ह्वेनसांग भारत आया और मूल बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन किया। बौद्ध धर्म और जैन धर्म दोनों ने मूर्तिकला, चित्रकला, और स्थापत्य कला के विकास में बहुत योगदान किया। बुद्ध की अति सुंदर और भावपूर्ण मूर्तियाँ बनीं। महावीर की विभिन्न मुद्राओं में बहुत सुंदर मूर्तियाँ बनीं। अजंता की गुफाओं की प्राचीन सुंदर कलाकृतियाँ बुद्धकाल की और बौद्ध धर्म से प्रभावित हैं। इन दोनों धर्मों ने समाज को अहिंसा, दया, करुणा की प्रेरणा दी। धार्मिक कर्मकांडों में जो हिंसा की प्रधानता हो गई थी, उसका विरोध इन धर्मों का एक लक्ष्य था। इन धर्मों के साथ पदार्थवादी दर्शन भी बना। बौद्ध धर्म अधिक वैज्ञानिक है।

अरब के मुसलमान सातवीं सदी में ही सिंधु आ गए थे। इसके बाद हमलावर आए जैसे महमूद गजनवी। ये न इस्लाम फैलाने आए थे न यहाँ बसने। ये मात्र हमलावर और लुटेरे थे। इनके बाद खिलजी और तुगलक वंश ने दिल्ली पर राज किया। इस समय राजाओं और सुल्तानों में जहाँ ऊँचे स्तर पर युद्ध हुए, वहीं निचले स्तरों पर मेलजोल होने लगा। मुसलमान शासकों की अधिक लड़ाइयाँ मुसलमानों से हुईं। सिपाही धर्म के कारण नहीं, वेतन के कारण किसी की तरफ से लड़ते थे। उच्च वर्ग के हिंदू और मुसलमानों की जीवन-पद्धति एक जैसी होने लगी। गाँव में मेलजोल अधिक हुआ। सूफी संत आए। सूफी संत निराकार ईश्वर की मधुर साधना करते थे। सूफी प्रेममार्गी अधिक हैं। कव्वाली सूफी ही लाए। सूफियों ने धार्मिक कट्टरता को भाई-चारे में बदला। वे प्रेम, सौंदर्य, संगीत के उपासक थे। सूफी साधना-पद्धति का बहुत असर हुआ। सामाजिक मेलजोल, भाईचारा, मानवतावाद, सदाचरण सूफियों ने सिखाया। मुसलमान भारतीय लोक भाषाएँ सीखने लगे थे। कुछ संस्कृत भी पढ़ते थे। खिलजियों के राज में एक अमीर खुसरो हो गए हैं। वे अद्भुत प्रतिभावान सूफी थे। उन्होंने फारसी में तो काव्य लिखा ही, फारसी और संस्कृत मिला कर भी लिखा और भारत की लोक भाषाओं में भी लिखा। जैसे यह दोहा—

खुसरो रैन सुहाग की, जागी पी के संग।
तन मेरो मन पीउ को, दोऊ भए इक रंग।।

अमीर खुसरो संगीतज्ञ भी था। ऐसा माना जाता है कि वीणा से सितार और पखावज तथा तबला उसी ने बनाए। सूफियों का असर भारतीय काव्य पर भी पड़ा। रहस्यवाद सूफियों का विश्वास भी है। कबीर जैसे संत कवियों की पूरी परंपरा पर सूफियों का असर पड़ा। उधर मुसलमान कवियों ने हिंदू परंपरा अपनाई। भारतीय भाषाओं में लिखा। हिंदू पुराणों को ग्रहण किया। काव्य परंपरा ग्रहण की। रसखान ने कृष्ण और राधा का प्रेम काव्य लिखा। आगे चलकर नजीर अकबराबादी ने तो लिखा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन,
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन ।

रहीम कवि को जब अकबर ने निकाल दिया तब वे कुछ समय चित्रकूट में रहे। उन्होंने लिखा है—

चित्रकूट में बस रहे, रहिमन अवध नरेस।
जापर विपदा परत है, सो आवत यहि देस।।

सोलहवीं सदी के आरंभ में जब मुगल आए, तब वे यहाँ बसने ही आए थे। वे अपने साथ एक समाज-व्यवस्था लाए थे। वे सभ्य थे। कलाओं के ज्ञाता थे।

भवन निर्माण कला, स्थापत्य कला, वास्तुकला उन्हें आती थी। मुगलकाल में जीवन-पद्धति का तथा संस्कृति का समन्वय बहुत हुआ।

इसके वाद यूरोप के लोग आए। ये गोरे लोग थे। ईसाई थे। ये तिजारत करने आए थे। फिर साम्राज्यवादी हो गए। साम्राज्य बना अंग्रेजों का। ये यहाँ बसने नहीं आए थे। राज करने और शोषण करने आए थे। अठारहवीं सदी के आरंभ में यूरोप में भाप की शक्ति खोज ली गई थी। कल-कारखाने चलने लगे, आविष्कार हुआ। विज्ञान आया। अंग्रेज साम्राज्यवादी थे, तथापि उन्होंने विज्ञान दिया, साहित्य में योगदान दिया, भाषा दी, जीवन-पद्धति दी जो अब अंतर्राष्ट्रीय जीवन-पद्धति ही हो गई है।

संस्कृति वास्तव में लोक संस्कृति है। वह लोक से पैदा होती है और लोक में व्याप्त होती है। सामान्य जन की संस्कृति होती है और छोटे अभिजात वर्ग की दिखावट नहीं होती। जैसा मैंने बताया, पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है कि भारत की समन्वित संस्कृति है। यह समन्वय लोक जीवन में हुआ। रवींद्रनाथ ठाकुर की एक कविता है—'भारत तीर्थ'। इसमें कहा गया है—भारत देश महा मानवता का पारावार है। हे मेरे हृदय, इस पवित्र तीर्थ में अपनी आँखें खोलो। यहाँ आर्य हैं, यहाँ अनार्य हैं, यहाँ द्रविड़ और चीनी वंश के लोग भी हैं। शक, हूण, पठान और मुगल न जाने कितनी जातियों के लोग इस देश में आए और सबके सब एक ही शरीर में समाकर एक हो गए।

अंधविश्वास से वैज्ञानिक दृष्टि

मेरे एक मित्र को पीलिया हो गया था। वे अस्पताल में भरती थे। प्रभावशाली आदमी थे। सब डॉक्टर लगे थे। एक दिन मैं देखने गया तो पाया कि वे पानी की थाली में हथेलियाँ रखे हैं, और एक पंडित मंत्र पढ़ रहा है। कार्यक्रम खत्म होने पर मैंने कहा—आप तो दो इलाज करवा रहे हैं। एक एलोपैथी का और दूसरा यह जो पता नहीं कौन-सी 'पैथी' है। उन्होंने कहा—दोनों ही कराना ठीक है। परंपरा से यह चला आ रहा है। एलोपैथी तो अभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की है। मैंने कहा—परंपरा इसलिए पड़ी कि तब कोई वैज्ञानिक चिकित्सा-पद्धति थी नहीं। थी भी, तो लोग उससे डरते थे। विश्वास नहीं करते थे पर अब पूरी वैज्ञानिक जाँच के बाद आपका इलाज हो रहा है। मगर आप एक अवैज्ञानिक परंपरा का पालन भी करते जाते हैं। आपका विश्वास है किसमें? आप किस चिकित्सा से अच्छे होंगे ?

मेरे-उनके आत्मीय और खुले संबंध थे। वे बुद्धिमान आदमी थे। इसलिए इस तरह कह गया। वे सोचते रहे। फिर शांति से बोले—विश्वास तो मेरा वैज्ञानिक पद्धति में है। वही चिकित्सा करा रहा हूँ। मगर इसे मेरी कमजोरी कह लीजिए या अंधविश्वास—सब कुछ जानते हुए भी मेरे मन में यह खटका शुरू से बना था कि कुछ यह भी करा लेना चाहिए।

मैं अस्पताल में भरती था। मेरे कमरे में दो बिस्तर थे। एक पर मैं पड़ा था और दूसरे पर एक युवा इंजीनियर। हम लोगों में अच्छी बातचीत होती। मरीज के पिता भी संपन्न और शिक्षित थे। एक दिन उस मरीज के पिता एक पुरोहित को ले आए। साथ में पूजा का सामान भी था। वहाँ छोटा-सा अनुष्ठान होने लगा। मरीज के पिता मेरी तरफ देखकर कुछ झेंपे और बोले—दवा के साथ दुआ भी होनी चाहिए।

अनुष्ठान खत्म होने पर इन सज्जन ने पुरोहित के हाथ में नोट दिए। उसने नोट गिने और उत्तेजित होकर कहा—यह क्या है? ये सत्तर रुपए हैं। आपने सवा सौ रुपए देने को कहा था। इधर से ये तैश में बोले—कतई नहीं। आपने कहा था कि इच्छानुसार दे दीजिए। पुरोहित ने कहा—झूठ मत बोलिए। मैंने साफ कहा था कि सवा सौ लूँगा। दोनों काफी देर तक गर्म बहस करते रहे। आखिर अस्सी रुपए लेकर पुरोहित मुनमुनाते हुए चला गया।

मैंने उन सज्जन से कहा—पुरोहित ने पहले मंगल कामना की थी। पर रुपए कम मिलने से वह आपके अमंगल की कामना करता चला गया। दोनों में से उसकी कौन-सी बात असर करेगी? वे सोचने लगे।

उनके लड़के ने बिस्तर पर से कहा—मैंने बाबूजी को बहुत समझाया कि यह मत कराइए। सज्जन ने खिन्न भाव से कहा—अरे बेटे, मैं क्या समझता नहीं हूँ। पर मन में कहीं बात है कि यह भी करा लेना चाहिए।

जिसे वैज्ञानिक स्वभाव और वैज्ञानिक दृष्टि कहते हैं, उसके विकसित होने में यही एक अटक है। अविज्ञान के युग में जो विश्वास, संस्कार और मन की प्रयासहीन क्रियाएँ पड़ गई हैं, वे विज्ञान के ऊपर जाकर तत्काल प्रतिक्रिया कर देती हैं।

विज्ञान के प्रोफेसर हैं। प्रयोगशाला में पूरी तरह वैज्ञानिक हैं। कोई अंधविश्वास नहीं मानते। मगर प्रयोगशाला के बाहर सफलता के लिए साँई बाबा की भभूत, शनि-शांति, मंत्र-जाप कराते हैं। वैज्ञानिक तरीके से वे कार्य-कारण संबंध जानते हैं। वे पदार्थों के गुण जानते हैं। वे पदार्थों में परस्पर रासायनिक क्रिया जानते हैं। किसी वैज्ञानिक तरीके से वे भभूत और तरक्की का संबंध नहीं जोड़ सकते। वे खुद भी यह बता देंगे। पर फिर कहेंगे—भाई, संस्कारों से मन में यह बात पड़ी है कि इससे भी कुछ होता है। इस तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञानी अविज्ञानी से लड़ता है और जीतता भी है। पर अंधविश्वास के मोर्चे पर विज्ञानी अविज्ञान से हार जाता है।

चमत्कार होते हैं। दैवी भी और प्राकृतिक भी। यह आदमी शुरू से मानता आ रहा है। इनमें मनुष्य का कोई हाथ नहीं होता। दो साल पहले मध्यप्रदेश और राजस्थान के पत्तों पर साँप के आकार बन गए थे। बात फैली कि नाग देवता पत्तों पर प्रगट हो गए हैं। वे सेवा माँगते हैं। नहीं करोगे तो काट लेंगे। तमाम लोग नाग से डरने लगे। उन पत्तों से डरने लगे। पत्तों के पास दूध के कटोरे रखे जाने लगे। भजन-कीर्तन होने लगे। कहीं वनस्पति-विज्ञान की एक छात्रा ने सुन लिया। उसने बगीचे से उन्हीं नाग वाले पत्तों को तोड़कर सब्जी बनाकर परिवार को खिला दी। शाम को परिवार को बताया कि मैंने सबको नाग पकाकर खिला दिए और कुछ नहीं हुआ। तब कृषि विश्वविद्यालय के आचार्यों के बयान आए कि यह पत्तों की बीमारी है जिसमें साँप की आकृति बन जाती है।

अप्रत्याशित हो सकता है। चमत्कार हो सकता है। कोई रहस्यमय शक्ति है जो कुछ कर देगी। यह भावना आदिम मनुष्य ने प्रकृति की शक्तियों और अपने वातावरण से पाई थी, क्योंकि उसे सृष्टि का, पदार्थों की प्रकृति का, अपने परिवेश का और कार्य-कारण का कोई ज्ञान नहीं था। विज्ञान ने बहुत कुछ समझा दिया। जैसे ग्रह-नक्षत्र कोई जीवित देवी-देवता नहीं, पदार्थों के पिंड हैं। अंतरिक्ष में इनका मार्ग और गति तय है। पर कई साल पहले एक दिन आया, जब आठ ग्रहों के एक ही कक्षा में होने का योग था। यह मात्र भौतिक संयोग था। इसमें दैवी कुछ नहीं था। पर महीने-भर पहले से पुरोहित-वर्ग ने हल्ला मचाया कि महाभारत काल के बाद अब यह योग आया है। बड़ा अनिष्टकारी हो सकता है। महीने-भर पूजा-पाठ, कीर्तन, भजन होते रहे। अंधविश्वासियों का कितना पैसा इस बहाने लूट लिया गया, कोई हिसाब नहीं। प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने इस सबको गलत और अवैज्ञानिक बताया। पर इसका कुछ असर नहीं हुआ। वैसे ही अनुष्ठान चलते रहे।

कुछ साल बाद इससे ज्यादा दिलचस्प घटना घट गई। एक अमेरिकी अंतरिक्ष प्रयोगशाला (स्काई लैब) मार्ग से भटक गई। वैज्ञानिकों ने घोषित किया कि स्काई लैब से संबंध टूट गया है और वह अनियंत्रित है। वह कहीं भी गिर सकती है। अनुमानित क्षेत्र भी वैज्ञानिक बता रहे थे। पर हमारे यहाँ शाम से ही कीर्तन, भजन आदि होते रहे। लोग यह समझ रहे थे कि पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन से 'स्काई लैब' हमें छोड़कर कहीं और गिर जाएगी। अमेरिकी स्काई लैब हमारा आग्रह कैसे मान लेगी? स्काई लैब गिरी वायु की दिशा से, अंतरिक्ष की अपनी शक्ति से और पृथ्वी के आकर्षण की शक्ति से।

आरंभ में मनुष्य को ज्ञान नहीं था। प्राकृतिक क्रियाओं को नहीं समझता था। वृक्ष भी उसके लिए रहस्यमय था। सूर्य, चंद्र आदि भी रहस्यात्मक थे। पदार्थों और उनकी परस्पर प्रक्रियाओं के बारे में नहीं मालूम था। हर घटना उसके लिए चमत्कार थी। वह कार्य-कारण संबंध नहीं जोड़ सका था। वह असाधारण घटना को उस शक्ति का किया हुआ मानता था, जिसे वह जानता ही नहीं है। उसने निष्कर्ष निकाला कि ये अलौकिक शक्तियाँ भला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी करती हैं और बुरा भी। इसलिए इन्हें प्रसन्न करो। इनके प्रतीक बनाओ। इस तरह अंधविश्वास चलता गया।

विज्ञान ने धीरे-धीरे रहस्य खोलना शुरू किया। प्रमाण, तर्क, प्रयोग पर ज़ोर दिया। प्रकृति के रहस्य एक के बाद एक खोले। कार्य-कारण संबंध बताए। सृष्टि की पदार्थों की घटनाओं की तर्कपूर्ण जानकारी दी। केवल ऐसे चमत्कार या ऐसे अंधविश्वास ही नहीं हैं, जिनका संबंध धर्म से हो। धर्म से अलग भी ऐसे अंधविश्वास हैं, चमत्कार हैं, जिन्हें आदमी मानता है। हर असामान्यता को या उस घटना को जो समझ में नहीं आती, चमत्कार मान लिया जाता है।

अंधविश्वासों को लेकर निहित स्वार्थ कायम हो गए थे। पूजा दान आदि से कल्पित विपदा का शमन करके कर्मकांड चलाने वाले पुरोहित-वर्ग को इससे धन, सोना, दूसरी सामग्री मिलती थी। इस पुरोहित-वर्ग का प्रमुख आमदनी का जरिया अंधविश्वास हो गए। यह वर्ग इन्हें जीवित रखना चाहता था और उसने ऐसा किया। सामंतवाद को भी प्रजा का अज्ञानी रहना फायदेमंद था। सामंतवाद ने भी अंधविश्वासों का समर्थन किया। हर तर्क को, हर वैज्ञानिक समझ को ये वर्ग नकारने लगे।

साथ ही धर्म-सत्ता अपने पुराणों और परंपराओं के विश्वासों को कट्टरता से ग्रहण किए थी। इस कट्टरता और अपरिवर्तनशील दृष्टि के दम पर धर्म-सत्ता टिकी थी। ज्ञान, विज्ञान, अनुभव से ऊपर धर्म-सत्ता अपने को मानती थी, जिसका आधार था उसमें आरोपित दैवी शक्ति और ज्ञान। जहाँ-जहाँ वैज्ञानिक आविष्कार हुए धर्म-सत्ता ने इसका विरोध किया। सबसे अधिक यूरोप में हुआ। वैज्ञानिक की शोध का परीक्षण चर्च के पादरी करते थे। वे अपने माने हुए अटल सत्य को ही मानते थे। वैज्ञानिकों को दंड दिया जाता था। ब्रूनी और गेलीलियो इसके उदाहरण हैं। मध्ययुग में चर्च विज्ञान के विरोध में खड़ी रही। अब हमारे जमाने में चर्च की इस सत्ता को नहीं माना जाता।

इस तरह दुहरे व्यक्तित्व होने लगे। सोच वैज्ञानिक और आचरण अवैज्ञानिक। सोच भी अधबीच की। विज्ञान भी सही है और परंपरा से चली आती आस्था भी सही हो सकती थी। इसीलिए पढ़े-लिखे भी वैज्ञानिक दृष्टि-संपन्न नहीं हो पाते।

वैज्ञानिक दृष्टि के प्रचार के लिए बाहर समाज में एक आंदोलन चलना चाहिए। ऐसा एक आंदोलन लंका के प्रो. कोकर ने चलाया था। उन्होंने सारे चमत्कारी देवपुरुषों को चुनौती दी थी। कुछ सालों से विज्ञान-जत्था निकलता है। इससे कम है। मैं खुश हुआ अखबारों में यह पढ़कर कि दो शहरों में 'अंधविश्वास निवारण आंदोलन' चल रहा है। इन लोगों ने लोगों को अपने हाथ में से भभूत निकालकर थमा दी। इसी तरह लोकशिक्षण आंदोलन से लोगों में वैज्ञानिक दृष्टि आएगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म और विज्ञान

अपनी दुनिया और संपूर्ण सृष्टि की व्याख्या और समझ सबसे पहले धर्म ने दी, विज्ञान ने नहीं। या यों कहें कि धर्म पहला विज्ञान है। बाद में विज्ञानों ने जब दूसरी व्याख्याएँ कीं, दूसरे कार्य-कारण बताए, दूसरे अर्थ समझाए, तब धर्म ने इन सबको नामंजूर कर दिया। इस तरह धर्म ने विज्ञान को नकारा ही नहीं, वैज्ञानिकों को ज्ञान देने के लिए सजा भी दी—बूनी और गेलीलियो इसके उदाहरण हैं। इससे भी पहले धर्म की आदिम अतार्किक धारणाओं को जब सुकरात ने तर्कों से गलत सिद्ध किया, तब उन्हें जहर का प्याला पीना पड़ा। धर्म और विज्ञान की पटरी कभी नहीं बैठी। कुछ साल पहले जब अमेरिकी 'स्काई लैब' गिरने की सूचना दी गई, तो हमारे देश में उससे बचने के लिए भजन-कीर्तन रात-भर होते रहे।

मगर धर्म और विज्ञान का वैसा संघर्ष नहीं है, जैसा लोग समझते हैं। मेरा मतलब धर्म के मूल तत्त्वों से हैं। कर्मकांडों, अंधविश्वासों, भाग्यवाद, सांप्रदायिक विद्वेष, जड़वाद, गलत रूढ़ियाँ, सड़ी-गली परंपराओं, तर्कहीनता, प्रमाणहीनता जो धर्म के नाम पर ही चलती हैं, इन्हें विज्ञान अस्वीकार करता है और उनका विरोधी है। मगर मूल तत्त्व से विज्ञान का विरोध नहीं है। महान् वैज्ञानिक आइंस्टीन वैसे नास्तिक थे, पर उन्होंने लिखा है—"वैज्ञानिक की धर्म-भावना प्राकृतिक नियमों की एकता और सुसंगति को देखकर आनंदातिरेक जनित विस्मय के रूप में प्रगट होती है। प्राकृतिक नियमों की इस एकता में जिस श्रेष्ठ बुद्धि-वैभव के दर्शन होते हैं, उसकी तुलना में मानव-जाति की समस्त व्यवस्थित चिंतना और क्रिया नितांत महत्त्वहीन बौद्धिक शक्ति जान पड़ती है। मनुष्य को जहाँ तक स्वार्थपूर्ण इच्छाओं के बंधनों से अपने को मुक्त रखने में सफलता मिल पाती है, वहाँ तक परभावना उसके जीवन और कार्य का निर्देशक-सिद्धांत बनती है। निर्विवाद रूप से यह युगों की धार्मिक प्रतिभाओं को प्रभावित करने वाली चेतना से मिलती-जुलती भावना है।"

आइंस्टीन ने ऊपर दो महत्त्वपूर्ण बातें कही हैं—एक तो परम आनंद की उपलब्धि और दूसरे स्वभावना त्याग कर परभावना को ग्रहण करना। अब इनकी धार्मिक मान्यताओं से तुलना कीजिए। ब्रह्मचिंतन में ब्रह्म को त्याग 'प्रज्ञानंदम् ब्रह्म' कहा है—प्रज्ञा के साथ आनंद और स्व को त्यागकर पर को ग्रहण करने की बात तुलसीदास ने सरलता से कह दी है—

परहित सरस धरम नहिं भाई,
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।

स्व को त्याग मुक्त चेतना जब शुद्ध आनंद का अनुभव करती है तो वह ईश्वर-प्राप्ति होती है। विश्वविख्यात वायलिन-वादक यहूदी मेन्यूहिन का संगीत सुनकर आइंस्टीन ने कहा—तुमने मुझे संगीत से ईश्वर में विश्वासी बना दिया—वही संगीत से परम आनंद की अनुभूति है। दुष्ट से दुष्ट आदमी जितनी देर रविशंकर का सितार सुनता है, दुष्टता भूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है; उसके मन में, मैल, द्वेष, शत्रु-भाव नहीं होते।

यह धर्मानुभूति स्व के त्याग से ऊँचे स्तर की है। यह ऐसी धर्मानुभूति नहीं है—सुबह भगवान की पूजा की, एक सौ ग्यारह नंबर का तिलक लगाया, दूकान गए और दिन-भर आदमियों को लूटा।

सत्य की खोज धर्म और विज्ञान दोनों का लक्ष्य है। इरेस्मक ने कहा है—जहाँ कहीं तुम्हारा सत्य से सामना हो उसे ईसाई मानो। यह भी कह सकते हैं—जहाँ कहीं सत्य से तुम्हारा सामना हो, उसे वैष्णव धर्म मानो। जहाँ कहीं तुम्हारा सत्य से सामना हो, उसे इस्लाम धर्म मानो। बहुत-से साधक-चिंतक सत्य को ही ईश्वर मानते हैं। वैज्ञानिक मानते हैं कि सत्य यदि ईश्वर है, तो प्रयोगों से हम उसी की खोज कर रहे हैं। परंतु यह सब—धर्म की साधना और विज्ञान की खोज का एक ही उद्देश्य है—मनुष्य का उदात्तीकरण, उसकी ऊर्ध्वगति, मनुष्य का मंगल। आखिर धर्म और विज्ञान का सत्य किसके लिए? कवि चंडीदास ने कहा है—शुन के मानुष भाई। सवार ऊपर मानुष सत्य तेहार ऊपर नाई। जब धर्म मनुष्य के मंगल के ऊँचे पद से गिराया जाता है तब उसके नाम से निहित स्वार्थ अधर्मी दंगा कराकर मनुष्यों की हत्या कराते हैं। और जब विज्ञान को उसके ऊँचे लक्ष्य से स्वार्थी साम्राज्यवादी उतारते हैं तो हिरोशिमा और नागासाकी पर अणु बम गिरते हैं और लाखों मनुष्य मारे जाते हैं। वह मनुष्य ही है जो धर्म और विज्ञान का सही या गलत प्रयोग करता है। वरना धर्म पोथी में है और विज्ञान प्रयोगशाला में। ईश्वर को रामकृष्ण परमहंस ने सार्वभौमिक सत्य, विवेक और प्रेम माना है।

विज्ञानों में सत्य की शोध तो होती है। वैज्ञानिकों में विवेक और प्रेम हो सकता है। विज्ञान निरपेक्ष होता है। इसलिए धर्म का कहना है कि ज्ञानेन्द्रियाँ मनुष्य को बहिर्मुखी बनाती हैं। अपने अंतर में देखो। अपनी आत्मा में उतरो। वहाँ क्या मिलेगा? संवेदना, प्रेम, करुणा, दया। इस बाह्य और अंतर का जब मेल होगा, तब धर्म अवैज्ञानिक नहीं होगा और विज्ञान संवेदनहीन नहीं होगा। 'अविद्या' को सब धर्मों ने घातक बताया है। पर धर्म जिनके हाथों में चला जाता है, वे निहित स्वार्थी विद्या को भरसक नकारते हैं। इतिहास बताता है कि हर धर्म के लोग विशेषकर धर्माचार्य यह भ्रम पालते रहे हैं कि ज्ञान उन्हीं के पास है। सत्य केवल उन्हीं ने पा लिया है। दूसरे धर्मावलंबी अज्ञानी हैं, और सत्य से दूर हैं। यह दुराग्रह अंधकार और संकीर्णता देता है। और यही अहंकार और संकीर्णता धर्मावलंबियों को अज्ञान की तरफ ले जाती है और वे सत्य से दूर हो जाते हैं। ज्ञान एक सतत प्रक्रिया है। यह कभी खत्म नहीं होती। इसलिए ज्ञान के अंतिम बिंदु पर पहुँचने और ज्ञान पर एकाधिकार का दावा कोई नहीं कर सकता, यह दावा आत्मघाती है।

विज्ञान धर्म से यही प्रश्न करता है। विज्ञान कई हैं—भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, समाज विज्ञान, अर्थ विज्ञान, नृतत्व विज्ञान आदि। ये सब धर्म को प्रश्न-पत्र देते हैं। उसकी परीक्षा लेते हैं। विज्ञान में कोई पैगम्बर या देवदूत नहीं होता। वैज्ञानिक को कोई 'इलहाम' नहीं होता। विज्ञान किसी पुस्तक को ईश्वर की लिखी नहीं मानता जैसा श्रद्धालु वेदों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ईश्वर की रचना मानते हैं। विज्ञान प्रमाण चाहता है। प्रमाण तीन तरह के माने गए हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। प्रत्यक्ष के आधार पर अनुमान किया जाता है। पर शब्द-प्रमाण? आप्त वाक्य ? विज्ञान पूछता है धर्म से कि तुम यह शब्द-प्रमाण दे रहे हो। यह शब्द कब लिखा गया ? तब सभ्यता किस स्टेज पर थी? समाज-व्यवस्था कैसी थी? ऐतिहासिक स्थिति कैसी थी? अर्थ-व्यवस्था कैसी थी? यह शब्द किन लोगों ने कहा और इससे किस वर्ग का स्वार्थ सधता था? विज्ञानों के इन प्रश्नों का जवाब धर्म को देना होगा। ऐतिहासिक दृष्टि के बिना धर्म अप्रासंगिक हो जाता है। कोई सर्वकालिक आप्त वाक्य नहीं होता। चार्ल्स ई. रैवेन ने लिखा है—"चाहे चर्च हो या बाइबिल या खुद जीसस या और कोई, यह दावा करना कि इन्होंने जो कह दिया है वही अंतिम सत्य है, यह दावा करना कि दैवी संदेश (इलहाम) एक ऐसा भिन्न प्रकार का सत्य है, जिसमें तर्क और बुद्धि का कोई दखल ही नहीं है, जिसकी छानबीन नहीं की जा सकती, या यह मानकर चलना कि कोई भी धार्मिक सिद्धांत एक कामचलाऊ परिकल्पना से कुछ विशेष है। यह सब हम लोगों के गले नहीं उतरता जो अपनी सीमाओं को समझते हैं। इन सब बातों से हमें बड़ी परेशानी होती है।"

शास्त्रों में लिखा है, बाइबिल में लिखा है, कुरान में लिखा है—तो उसे सार्वकालिक सत्य मानो, उस पर प्रश्न मत करो, शंका मत करो, इतिहास की कसौटी पर मत कसो—यह दुराग्रह मनुष्यों को अज्ञान की अंधी गली में ले जाता है। इसीलिए बुद्ध ने कहा था—शिष्यो, कोई बात इसलिए मत मान लेना कि वह बुद्ध ने कही थी। स्वयं सोचना। अपने दीपक आप बनना। यानी हर बदली व्यवस्था के लिए सिद्धांत नया होगा।

कोई भी धर्म सत्य से बड़ा नहीं होता। विज्ञान सत्य की शोध करता है। इसलिए केवल अंधी आस्था पर आधारित धर्म को विज्ञान के तर्क, परीक्षण और परिणाम का सामना करना ही पड़ेगा।

जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है—धर्म का जन्म डर और अज्ञान से हुआ। अज्ञान तो था ही। एकाएक मनुष्य इस विराट ब्रह्मांड में आ गया, जिसके बारे में वह कुछ नहीं जानता था। मैं हूँ कौन? किसने बनाया मुझे? और इस सिंह को? यह प्रकृति, ये नक्षत्र, पहाड़, नदी, सागर ये सब क्या हैं? कैसे बने? मैं तो इन्हें नहीं बना सकता। मनुष्य ने नहीं बनाए। फिर? मनुष्येतर कोई परम शक्ति है, जिसने यह रचना की और जिसे चलाता जाता है और नाश भी करता जाता है। हम नहीं जानते। वेद में कहा गया—वह है या नहीं है। वह है या नहीं के बीच में है। हम नहीं जानते। वही जानता है। संभवतः वह भी नहीं जानता।

फिर ये बादल, गर्जन, तर्जन, वर्षा, बिजली। यह सुंदर है, आह्लादकारिणी है। पर यह भयावह और विनाशकारी भी है। यह देवता है। यह इंद्र है। उसकी पूजा करो। वह हमारा मंगल करे, अमंगल न करे। देवता पैदा हो गए।

विज्ञान कहता है—जल से सूर्य के ताप के कारण भाप बनती है। भाप इकट्ठी होती है, तो बादल बनता है। ये बादल मँडराते हैं। इन्हें ठंड मिलने पर भाप फिर पानी में बदल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती है और पृथ्वी पर पानी गिरता है। और यह जो बिजली है। बादलों में ऋण और धन विद्युत् होती है। जब ये बादल पास आते हैं तब विस्फोट के साथ बिजली पैदा होती है, अनंत प्रकाशवान और विनाशकारी। अधिकतर बिजली आकाश में ही बुझ जाती है। पृथ्वी पर गिरती है तो सबसे ऊँचे पाइंट पर। पेड़ पर इसलिए ज्यादा गिरती है कि वह ऊँचा होता है और पत्तों में लौह होता है। धातु बिजली को खींचती है। मंदिर पर बिजली इसलिए गिरती है कि उसके शिखर पर धातु का कलश होता है। गाँव का मंदिर बिजली से पूरे गाँव को बचा लेता है। बिजली को धातु के 'लाइटनिंग कंडक्टर' से पृथ्वी में भेजा जा सकता है।

विज्ञान ने यह सब बता दिया। कोई देवता यह सब नहीं करता। मगर धर्म क्या इंद्र को नकार देगा? कतई नहीं। कुछ साल पहले कर्नाटक सरकार के जल विभाग ने सरकारी खर्च से पंडितों से 'पर्जण्य यज्ञ' कराया था, बंगलोर पर वर्षा के लिए, जिससे जलाशय भर जाय। उसी दिन मौसम विज्ञान की भविष्यवाणी थी कि बंगलोर और उसके आसपास वर्षा होगी। शाम को वर्षा हुई, पर बंगलोर शहर में नहीं, आसपास। बंगलोर में छींटे ही पड़े।

विज्ञान ने बहुत-सा अज्ञान नष्ट कर दिया है। अंधविश्वास के लिए मनुष्य बाध्य नहीं। आस्था की जगह उसे तर्क मिल गए हैं। विज्ञान ने बहुत-से भय भी दूर कर दिए हैं, हालाँकि नए भय भी पैदा कर दिए हैं। विज्ञान तटस्थ (न्यूट्रल) होता है। उसके सवालों का, चुनौतियों का जवाब धर्म को देना होगा। मगर विज्ञान का उपयोग जो लोग करते हैं, उनमें वह गुण होना चाहिए जिसे धर्म देता है। वह 'आध्यात्मिक' (स्पिरिचुएलिज्म)—अंततः मानवतावाद। वरना विज्ञान विनाशकारी भी हो जाता है।

धर्म और सामाजिक परिवर्तन

बुद्ध की मूल चिंता दुःख थी। दुःख से मुक्ति मनुष्य को कैसे मिले? जो समाज उन्हें मिला उसमें दो वर्ग स्पष्ट थे। वे जो धन-संपन्न थे और वे असंख्य जो वंचित और शोषित थे। समाज में एक ओर अति भोग था और दूसरी ओर अति त्याग था। स्वेच्छा से सब कुछ त्याग कर संन्यास ले लेना और अपने को तरह-तरह के दुःख देना भी 'साधना' माना जाता था। बुद्ध ने दुःख के कारण खोजे। इनमें एक कारण संचय भी है। कुछ लोगों द्वारा संचय, असंख्य लोगों को वंचित करता है और वे दुःखी होते हैं। इस अतिरेकी समाज-व्यवस्था में अत्याचार, शोषण, दुःख के शिकार असंख्य लोग होते हैं। वैदिक कर्मकांड ने जो पुरोहित वर्ग पैदा किया था, वह भी शोषण करता था और शोषकों की मदद करता था। बुद्ध ने इस समाज-व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था और धार्मिक व्यवस्था से विद्रोह किया। बुद्ध ने कहा—आचरण के दोनों अतिवाद गलत हैं—असीमित भोग भी और असीमित त्याग भी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उत्तम मार्ग है—मध्यम मार्ग, न अति भोग, न अति त्याग। अति भोग से तुम इंद्रियों की बढ़ती जाती इच्छाओं की पूर्ति करते हो, जो कभी संतुष्ट नहीं होतीं। यही अति भोग तुम्हें दुःखी करता है और तुम जो स्वेच्छा से सर्वस्व त्याग संन्यास लेकर शरीर को दुःख देते हो, इंद्रियों का दमन करते हो, और समझते हो तुम्हें 'ब्रह्म' मिल जाएगा—तो ब्रह्म नहीं मिलेगा। इसलिए मध्यम मार्ग ग्रहण करो। बुद्ध का विद्रोह धर्म, मनुष्य जाति की मुक्ति और सुख के लिए है। कैसी व्यवस्था की कल्पना बुद्ध करते थे? बुद्ध की कल्पना समाजवाद के निकट जाती है। यह व्यवस्था ईसा के 'ईश्वरी राज्य' सरीखी है। ईसा ने कहा—दीन धन्य हैं क्योंकि वे ही ईश्वरी राज्य के अधिकारी होंगे।

बुद्ध के बाद उनके अनुयायियों ने इस शुद्ध जागतिक दुःख को, जो समाज-व्यवस्था बदलने से मिटता, आध्यात्मिक दुःख बना दिया। वे तरह-तरह के कर्मकांडों में भी लिप्त हो गए। अवतारवाद ग्रहण कर लिया और 'बोधिसत्व' के अवतारों की कथाएँ बन गईं। वे तांत्रिक हो गए। भ्रष्ट साधनाएँ करने लगे। मनुष्य के दुःख को मिटाने के लिए व्यवस्था-परिवर्तन की बात रह गई। अशोक ने अवश्य जनकल्याणकारी कार्य किए। उसने बुद्ध के सच्चे उपदेशों का प्रचार भी बहुत किया। बुद्ध का प्रभाव बहुत पड़ा। परोक्ष रूप से उनके विचारों ने चिंतन और आचरण को बहुत कुछ दिया। बुद्ध का प्रभाव दुनिया में अभी भी है। नेहरू द्वारा प्रतिपादित 'पंचशील' का सिद्धांत बौद्ध धर्म से आया है।

धर्मों की मूल चिंता मनुष्यों का दुःख मिटाना और उन्हें बेहतर मनुष्य बनाना होती है। फिलिस्तीनी समाज में दासों और दलितों के दुःख से द्रवित हुए थे ईसा। उनका धर्म गरीबों, दलितों, दासों की मुक्ति के लिए और उनके सुख के लिए है। आरंभिक दौर में इस धर्म ने यह कार्य किया। पर आगे चलकर ईसाई धर्म पर रोमन साम्राज्यवादियों ने कब्जा किया और धर्म यूरोप के सामंतों के हाथों में चला गया। तब यह मुक्ति का धर्म नहीं दासता और दमन का धर्म हो गया। इसी के अनुरूप उच्चस्तरीय पुरोहित वर्ग बन गया। यह पुरोहित वर्ग शक्तिशाली था। पुरोहितों ने सामान्य भोले आदमियों के विश्वासों का बहुत अनुचित लाभ उठाया। गोरे पादरी अत्याचार की प्रतिमूर्ति हो गए। इधर धन लेकर स्वर्ग में सुख-साधनों की बुकिंग करने लगे। मार्टिन लूथर ने तब विद्रोह किया था, जिसने आंदोलन का रूप ले लिया। ईसाई धर्म में करुणा, दया, प्रेम, क्षमा, परोपकार का सबसे अधिक महत्त्व है। पर इस धर्म का पुरोहित वर्ग यथास्थितिवादी, मानव-विरोधी और शोषक हो गया। ईसाई धर्म यूरोप के साम्राज्यवादियों का सहायक हो गया। फिर भी इस धर्म में मानव-सेवा की भावना बची है और मदर टेरेसा जैसे व्यक्तित्व यह काम करते हैं।

इस्लाम का जन्म भी सामाजिक परिवर्तन की जरूरत से हुआ। पैगम्बर मोहम्मद ने जो अरब समाज पाया वह भ्रष्ट था। मूर्तिपूजा होती थी और लोगों को लूटा जाता था। सूदखोरी होती थी। नैतिक मूल्यों का पतन हो चुका था। शोषण होता था। खूब धनी व्यापारी और सूदखोर थे और असंख्य लोग गरीब, शोषित थे। मोहम्मद ने इस व्यवस्था और इसे संचालित करने वाली शक्तियों के खिलाफ विद्रोह किया। अगर शायर मोहम्मद इकबाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहते थे कि इस्लाम में लोकतंत्र और समाजवाद दोनों हैं, तो वे सही कहते थे। पैगम्बर ने नई समाज-व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्था दी। गाँव या समूह का प्रधान 'ढाई' कहलाता था। वह सबको बराबर चीजों का वितरण करता था। एक तरह का 'कम्यून' था। खलीफा को भी वही मिलता था, जो समाज के अन्य लोगों को। खलीफा की भी सार्वजनिक आलोचना होती थी और उससे कैफियत भी माँगी जाती थी। खलीफा उमर के बारे में ऐसी घटनाएँ मशहूर हैं। हर मुसलमान को 'जकात' देना लाजिमी है। 'जकात' आयकर है। यह आमदनी के हिसाब से लिया जाता है। सख्ती से लिया जाता है। यह धन गरीबों में वितरण के लिए होता है। मौलाना अबुल आजार ने न्यायपूर्ण अर्थ-व्यवस्था में 'जकात' के महत्त्व पर बहुत लिखा है। वे तो यहाँ तक कहते हैं कि इस अर्थ-व्यवस्था की तुलना समाजवादी व्यवस्था से करें तो कोई हर्ज नहीं। भोपाल के मौलाना बरकतुल्ला भोपाली काबुल में स्थापित स्वतंत्र भारत की सरकार के प्रधानमंत्री थे। यह इस सदी के आरंभ की बात है। वे रूस गए थे। लेनिन से मिले थे। लेनिन ने उनसे कहा कि रूसी गणतंत्र में जो मुस्लिम राज्य हैं, उन्हें आप समझाइए कि समाजवाद इस्लाम के अनुकूल है। मौलाना ने दौरे किए और समझाया कि समाजवाद इस्लाम-विरोधी नहीं है।

इस्लाम की यह न्यायपूर्ण अर्थ-व्यवस्था कुल साठ साल रही—चार खलीफाओं के काल तक। तब इस्लाम सामान्य जन के हाथ में था। फिर वही हुआ जो ईसाई धर्म के साथ हुआ। ईसाई धर्म पर रोमन साम्राज्यवादियों ने कब्जा कर लिया था और धर्म के मूल तत्त्वों को विफल कर दिया था। इस्लाम पर सामंतों ने कब्जा कर लिया और 'जकात' का पैसा गरीबों के पास पहुँचने के बजाय सामंतों के खजानों में और इमामों की तिजोड़ी में पहुँचने लगा। सामंतों ने साम्राज्य बनाने के लिए इस्लाम का उपयोग किया।

हर धर्म के साथ यह दुर्घटना हुई है। न्यायपूर्ण सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के लिए, शोषणहीन समाज-परिवर्तन के लिए धर्म होता है। पर उस पर शक्ति-संपन्न वर्ग कब्जा कर लेता है—सामंत, साम्राज्यवादी, व्यापारी, पूँजीवादी। ये सामाजिक परिवर्तन को रोकते हैं। धर्म के जन-कल्याणकारी तत्त्वों को छोड़ देते हैं और अन्यायपूर्ण मानव-विरोधी व्यवस्था चलाते हैं।

धर्म संस्कृति का एक प्रमुख तत्त्व है। सब धर्मों में मनुष्य के सुख, संतोष, प्रगति और आत्मा के उत्थान के तत्त्व होते हैं। दया, करुणा, न्याय, सदाचार आदि सब धर्म सिखाते हैं। कटुता, घृणा, द्वेष कोई नहीं सिखाता। अहंकार का सब धर्म निषेध करते हैं। पैगम्बर मुहम्मद ने कहा—जो अल्लाह को नहीं मानते, उन्हें तंग मत करो, उनके पीछे मत पड़ो। ऐसा करने से वे अल्लाह के और खिलाफ हो जाएँगे। अशोक के एक शिलालेख में लिखा है—जो मनुष्य अपने धार्मिक संप्रदाय के मोह में पड़कर, उसकी गौरव-वृद्धि की इच्छा से दूसरे धर्म-संप्रदायों की निंदा करता है, और अपने धर्म-संप्रदाय के प्रति समादर प्रगट करता है, वह वास्तव में अपने आचरण से अपने ही धर्म-संप्रदाय को हानि पहुँचाता है। इसलिए विभिन्न धर्म-संप्रदायों के बीच मेल-मिलाप वांछित है। वास्तविक धर्म-भावना से प्रेरित सूफी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अल्लाह को भी मानते हैं, और राम तथा कृष्ण को भी। वे राम और कृष्ण को भी पैगम्बर मानते हैं। वे राम और कृष्ण के भजन और कव्वालियाँ गाते हैं।

दूसरे के धर्म-विश्वास के प्रति सहनशीलता और सद्भाव सब धर्म सिखाते हैं। धर्म मूल रूप में आत्मा में सौंदर्य, प्रेम, उदात्त भावनाएँ, कोमल संवेदनाएँ जगाता है। धर्म संस्कृति का एक प्रमुख तत्त्व है। कला, साहित्य, मूर्तिकला, संगीत, नृत्य, स्थापत्य, चित्रकला, आदि को धर्मों ने बहुत प्रोत्साहन दिया। पश्चिम के प्राचीन चित्रों में सबसे उत्तम वे हैं, जो ईसा के जीवन-प्रसंगों तथा बाइबिल की कथाओं पर आधारित हैं। भारत में ही देखें। धर्म-भावनाओं से बनाए गए मंदिर कितने सुंदर, भव्य और कलात्मक हैं। देवी-देवताओं के चित्र कितने सुंदर हैं। बुद्ध और महावीर की कितने तरह की कितनी कलात्मक मूर्तियाँ हैं। अजंता में कलाकारों ने सनातन धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म से प्रेरित होकर गुफाओं में कितने सुंदर चित्र अंकित किए हैं, जिनके रंग अभी तक फीके नहीं हुए। धर्म ने भक्ति-संगीत को जन्म दिया। भक्ति-संगीत लगभग हर धर्म में है और उच्चकोटि का है। इस्लाम में संगीत वर्जित माना जाता है, पर प्रेममार्गी सूफी कैसे भावमय गीत और फटकलियाँ रखते हैं। भक्ति-भावना से प्रेरित होकर कितना अधिक और कितनी उच्चकोटि का साहित्य हर भाषा में लिखा गया है। सूरदास और तुलसीदास का धर्म-प्रेरित काव्य कितना अद्भुत है। हमारे यहाँ एक पूरा काल-खंड रहा है, जिसमें सैकड़ों कवियों ने भक्ति-काव्य लिखा। मंदिरों में नृत्य का विकास हुआ। वास्तव में नृत्य का आरंभ ही देवता को प्रसन्न करने के लिए हुआ। इन कलाओं से, साहित्य से मनुष्य की आत्मा का उदात्तीकरण होता है, भावनाओं का परिष्कार होता है, संवेदना गहरी और व्यापक होती है।

समाज गतिशील होता है। नई-नई वास्तविकताएँ आती हैं। नए विचार आते हैं। नई समस्याएँ और नई चुनौतियाँ आती हैं। धर्म अगर नए विचार ग्रहण कर यदि रचनात्मक ढंग से इन नई वास्तविकताओं को स्वीकार करता है, चुनौतियों का रचनात्मक समाधान करता है और इस तरह समाज को बदलने वाले विचारों और ताकतों से सहयोग करता है, तो धर्म सार्थक ओर जन-कल्याणकारी है। इतिहास धर्म के लिए ठहरता नहीं है। यदि धर्म की दृष्टि में साधारण जन नहीं है, उसकी आशाओं-आकांक्षाओं और परिवर्तन की इच्छा से सहानुभूति नहीं है, तो धर्म जड़ हो जाता है और मनुष्य की प्रगति के रास्ते में दीवार बन जाता है। पहले कई बार हो चुका है कि इतिहास धर्म और उस जाति को कुचलते हुए आगे बढ़ गया है और वह जाति पिछड़ गई है।

इस तरह जब धर्म समाज की गतिशील धाराओं से दूर हो जाता है, तब वह सिर्फ कर्मकांडों, रूढ़ियों, सड़ी परंपराओं, अर्थहीन मान्यताओं का समुच्चय हो जाता है। धर्म अपने समय से पीछे हो जाता है। वह हर उस चीज का, विचार का, आंदोलन का विरोध करता है, जो समाज को आगे बढ़ाते हैं। धर्म के नाम पर संप्रदाय बन जाते हैं। इनके नेता संप्रदाय के लोगों को परस्पर द्वेष करना सिखाते हैं। संप्रदायवाद का उपयोग निहित स्वार्थी अपने लाभ के लिए करते हैं। राजनीतिकर्मी धर्म पर बने संप्रदायवाद को ले लेते हैं और संप्रदायों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
में संघर्ष कराते हैं। ऐसे में धर्म का रूप सांप्रदायिक घृणा का हो जाता है।

धर्म की सही भूमिका क्या हो, यह स्वामी विवेकानंद ने बताया। और अब बता रहे हैं लेटिन अमेरिका और अफ्रीका के पादरी 'लिबरेशन थियोलॉजी' (मुक्ति की धार्मिकता) मानते हैं। विवेकानंद संन्यासी थे। अद्वैतवादी थे। लेकिन समाज-चेतना और विश्व-चेतना उनमें थी। उन्होंने अंगरेज साम्राज्यवादियों द्वारा भारत की जनता के शोषण के खिलाफ आवाज उठाई। उन्होंने इस शोषण के तरीकों का अध्ययन किया और उन्हें उजागर किया। उन्होंने कहा कि भारत में साम्राज्यवाद उच्चवर्गीय संस्कृतिविहीन लोगों, ऐसे लोगों जिनकी जड़ें कहीं नहीं हैं, के कंधों पर टिका है। विवेकानंद न केवल भारत बल्कि विश्व-साम्राज्यवाद के विरोधी थे। अमेरिका में नीग्रो लोगों की दुर्दशा पर उन्होंने गोरे अमेरीकियों को वहीं शिकागो में लताड़ा था। वे वर्ण-व्यवस्था के खिलाफ थे। उनकी सहानुभूति निचले वर्ग के साथ थी। वे कहते थे—उच्च वर्ग और वर्ण के लोगों ने सदियों से समाज पर कब्जा कर रखा है। इनका कब्जा कभी का खत्म हो जाना था। आगामी युग शूद्रों की सत्ता का है। उनका मतलब है, सर्वहारा वर्ग। युवकों का उन्होंने आह्वान किया कि शूद्रों को शिक्षित करो। शोषितों और दलितों को शिक्षित करो। उनमें चेतना और अधिकार-भावना जगाओ। ये संगठित होंगे और उच्च वर्ग और वर्ण की सत्ता को खत्म कर देंगे। ये शासक और समाज के नियंता होंगे और सामाजिक व्यवस्था बदल देंगे। विवेकानंद साम्राज्यवाद और शोषण दोनों से मुक्ति चाहते थे। बंगाल के देशभक्त तरुणों का मातृभूमि की मुक्ति के लिए क्रांतिकारी आंदोलन की प्रेरणा विवेकानंद थे। वे एक विश्व-धर्म, मानव-धर्म मानते थे। कहते थे—विभिन्न धर्म और पंथ धाराएँ हैं, जो विश्व-धर्म के सागर में समा जाएँगी।

ईसाई धर्माचार्यों में से बहुतेरों ने 'लिबरेशन थियालॉजी' (मुक्ति की धार्मिकता) स्वीकारी है। यह लेटिन अमेरिका में शुरू हुई। अफ्रीका के अनेक पादरी 'आर्कबिशप' के पदधारी भी इस 'लिबरेशन थियालॉजी' को मानते हैं और संघर्ष करते हैं। ये साम्राज्यवाद से मुक्ति, रंगभेद से मुक्ति के लिए चल रहे संघर्ष में अगुआई करते हैं। ये अमेरिका द्वारा समर्पित तानाशाहों के अत्याचार के खिलाफ भी लड़ते हैं। इनमें कई वामपंथी विचारधारा वाले हैं और कई राष्ट्रवादी तथा सामाजिक न्याय के विश्वासी। दक्षिण अफ्रीका के आर्कबिशप रेवरेंड डेसमंड टुटु, जो नोबुल पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं, इस आंदोलन में अगुआ हैं। नेलसन मंडेला जब जेल से रिहा हुए, तब डेसमंड टुटु ने उनकी पहली पत्रवार्ता अपने निवास पर चर्च के अहाते में आयोजित की। इन पर जब आक्षेप होता है, तब ये जवाब देते हैं—हम वही कर रहे हैं जो बाइबिल में लिखा है। हम जीसस के आदर्शों का ही पालन कर रहे हैं।

सामाजिक प्रगति और परिवर्तन के लिए धर्म को इतना सक्षम होना चाहिए कि वह यह भूमिका निभा सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाकिस्तान में इकबाल की फजीहत

दिल्ली में एवाने ग़ालिब में मशहूर शायर डॉ. मोहम्मद इकबाल की वर्षगाँठ मनाई गई। इसमें पाकिस्तान से भी एक प्रतिनिधि शरीक हुए। मैंने इस समारोह का विवरण अखबारों में पढ़ा। मैं पाकिस्तान के दिल्ली स्थित राजदूत, जो संयोग से खुद भी फजल इकबाल नाम रखते हैं, के भाषण को पढ़कर मुग्ध हो गया। उन्होंने कहा—इकबाल की नज्म 'सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्ताँ हमारा' से यह नहीं समझना चाहिए कि उन्होंने हिंदोस्तान की शान में यह लिखा। नहीं, उन्होंने यह समूचे विश्व के लिए लिखा है। वे विश्व-नागरिक थे।

मैं मानता हूँ, कवि विश्वकवि ही होता है। रवींद्रनाथ भी विश्वकवि थे। कवि की संवेदना सारी मनुष्य-जाति के लिए है। मगर इकबाल ने इस नज्म में आगे लिखा है—

पर्वत वो सबसे ऊँचा
हमसाया आसमाँ का
वो संतरी हमारा
वो पासवाँ हमारा
मज़हब नहीं सिखाता, आपस में बैर करना
हिंदी हैं, हम वतन है
हिंदोस्ताँ हमारा

मैं फजल इकबाल साहब से जानना चाहूँगा कि यह सबसे ऊँचा पर्वत क्या एंडीज है या हिमालय? और गंगा क्या अमेरिका में है और यमुना सऊदी अरब में? और 'हिंदोस्ताँ हमारा' क्या यूरोप है? फजल इकबाल नहीं समझते हों यह बात नहीं है। वे अच्छी तरह समझते हैं कि इकबाल ने यह नज्म हिंदोस्तान के लिए लिखी थी। इस उपमहाद्वीप के पहले दो हिस्से हुए भारत और पाकिस्तान। फिर पाकिस्तान का पूर्वी हिस्सा टूटकर बांग्लादेश हो गया। फजल इकबाल की चिंता यह है कि कहीं भारतवासी यह न समझ लें कि इकबाल ने हमारे देश को सारे जहाँ से अच्छा कहा था। इकबाल की मृत्यु 1938 में हुई। यानी इस नज्म में भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश तीनों को सारे जहाँ से अच्छा कहा है। मगर फजल इकबाल चाहते हैं 'सारे जहाँ से अच्छा पाकिस्तान हमारा' कहा होता। पर तब पाकिस्तान था ही नहीं।

पाकिस्तान में हीनता की भावना शुरू से है। इसे वह शुरू से उच्चता की भावना में बदलना चाहता है। 'इनफीरियारिटी कॉम्प्लेक्स' और 'सुपीरियारिटी कॉम्प्लेक्स' एक ही सिक्के के दो पहलू कहे जाते हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब हीनता की भावना को जबर्दस्ती उच्चतर की भावना में बदला जाता है तब वह भयानक, आक्रामक, तर्कहीन, विचारहीन होती है। यह परिणाम में मनुष्य को और कमजोर, असहनशील, चिड़चिड़ा और अविश्वासी बनाती है। जो व्यक्ति के बारे में सही है, वह देश के बारे में भी सही है।

पाकिस्तान एक महादेश से अलग हुआ हिस्सा है। यह महादेश हिंदुस्तान एक राष्ट्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है। पाकिस्तान को शुरू से एक स्वतंत्र और प्राचीन राष्ट्र सिद्ध करने की चिंता रही है। राष्ट्र के तत्त्व हैं–इतिहास, संस्कृति, भूमि, आबादी, प्रभुसत्ता। धर्म राष्ट्र का तत्त्व नहीं है। पर धर्म-राष्ट्र के रूप में ही पाकिस्तान ने अपने को बनाया और भारत से श्रेष्ठ होने में लगा रहा। यह कुंठा कि हम एक देश के टुकड़े हैं, राष्ट्र नहीं, पाकिस्तान की आक्रामकता, संकीर्णता, अलगाव का कारण है। बचकानी बातें इतिहासकार करते हैं, जैसे–पाकिस्तान मोहनजोदड़ो, हड़प्पा की सभ्यता की परंपरा में है। हमारी जड़ें इतनी पुरानी हैं। भारत के आर्यों की तो भारत में जड़ें ही नहीं हैं। और मोहनजोदड़ो, हड़प्पा की इस्लामी सभ्यता थी। दिलचस्प नासमझी यह कि इस्लाम का जन्म ही सातवीं सदी में हुआ। दुनिया के दूसरे लोग भी इतिहास जानते, लिखते, पढ़ते हैं, यह पाकिस्तानी नहीं मानते। रूस में निकिता ख्रुश्चेव ने जब स्तालिन की छवि को ध्वस्त किया तो उसके बाद पुस्तकों में, इतिहास में, लेखों में स्तालिन का नाम नहीं आता था, जैसे रूस में जोजेफ स्तालिन नाम का कोई राजनेता हुआ ही नहीं। रूसी इतिहासकार भूल गए कि इतिहास सिर्फ हम ही नहीं लिख रहे हैं, दुनिया के दूसरे इतिहासकार भी लिख रहे हैं। पंथवादी जुनून यह भी है।

हिंदुस्तान का इतिहास और संस्कृति एक रहे हैं। एक समन्वित संस्कृति इस महादेश की विशेषता है। रवींद्रनाथ, अरविंद, महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आजाद आदि का यही मत है। अनेक जातियाँ इस महादेश में बाहर से आईं। मूल जातियों से तथा आपस में सबके समन्वय से यहाँ की संस्कृति बनी। जहाँ तक राष्ट्रवाद का सवाल है, व्यवहार, उपयोगिता और भावना इसमें निहित है। पर जब भावना को उन्माद के स्तर तक उठाकर कण-कण पवित्र मान लिया जाता है, तब राष्ट्रों में भूमि को लेकर समझौते नहीं होते। तनाव रहता है, और युद्ध भी हो जाता है। संकीर्ण और उन्मादी राष्ट्रवाद घातक होता है। यह हमारे देश में भी किन्हीं लोगों में है। पर पाकिस्तान में स्वतंत्र और विशिष्ट राष्ट्र की पहचान बनाने की बहुत चिंता है।

मलयाली लेखक तकषि शिवशंकर पिल्लै ने एक घटना लिखी है। ताशकंद में अफ्रोएशियाई लेखक सम्मेलन में भाग लेने भारतीय लेखकों का मंडल गया था, जिसके नेता शिवशंकर पिल्लै थे। उन्होंने जो लिखा है उसका सार यह है–मैंने पाकिस्तान और बांग्लादेश के प्रतिनिधि मंडलों के नेताओं के साथ बैठकर यह प्रस्तावित किया कि हम तीनों एक संयुक्त वक्तव्य जारी करें जिसमें बताएँ कि हम तीनों देशों की एक ही संस्कृति है। तीनों की साहित्य-परंपरा भी एक है। तीनों का एक ही इतिहास है। यह सुनकर पाकिस्तानी नेता ने कहा–यह हरगिज नहीं होगा। पाकिस्तान की संस्कृति, साहित्य-परंपरा और इतिहास अलग है। मैंने कहा–यह आप क्या कहते हैं? हमारे एक ही महादेश से अलग होकर 1947 में पाकिस्तान बना। हदें बन गई हैं, पर संस्कृति हमारी वही है जो 1947 तक थी। इस पर पाकिस्तानी लेखक बोले–1947 नहीं, पाकिस्तान का इतिहास हजारों साल पुराना है। हमारी हजारों साल पुरानी संस्कृति है। भारत की संस्कृति से उसका कोई संबंध या समानता नहीं है। मेरी उनसे बहस चली। बांग्लादेश का लेखक मुस्कराता हुआ हमारी बहस का मजा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ले रहा था। आखिर वे राजी नहीं हुए। मैं उन्हें नहीं जानता था। मैंने उत्तर भारत के लेखक मित्रों से पूछा तो उन्होंने बताया—ये फैज अहमद फैज हैं।

बहुत लोग यह पढ़कर चकित होंगे, अविश्वास भी कर सकते हैं कि महान् शायर फैज के ये विचार होंगे! फैज जीवन-भर पाकिस्तान के हुक्मरानों और मुल्ला-मौलवियों से लड़ते रहे। वे सन् 50 के लगभग राजद्रोह के आरोप में गिरफ्तार किए गए थे। मुकदमा चला और उन्हें फाँसी भी हो सकती थी। पर काफी समय जेल में रहकर वे इस आरोप से बरी हो गए। फैज कहते थे कि दिन-भर तो अदालत में अफसर और सरकारी वकील मुझे सजा दिलाने की कोशिश करते थे, और शाम को घर में मेरी कविताएँ पढ़ते थे। उसके बाद संघर्ष का सिलसिला चला। वे सताए गए। फिर वे पाकिस्तान में पर्यटक की हैसियत से ही जाते थे। ज्यादा लेबनान में रहते, कभी भारत में, अधिक रूस में। वे कई देशों में रहे। उनकी अंगरेज पत्नी एलिस और बच्चे पाकिस्तान में रहते थे। जीवन के अंतिम वर्षों में उन्हें परिवार के साथ रहने के लिए समझौता करना पड़ा। उन्होंने पाकिस्तान की नीतियाँ मान लीं। इमामों ने पूछा—खुदा में यकीन करते हो? फैज नास्तिक थे पर उन्होंने कहा—हाँ, उस खुदा में यकीन करता हूँ, जिसमें सभी यकीन करते थे। सभी क्या विश्वास करते थे ? 'अनलहक' अर्थात् 'अहं ब्रह्मास्मि'। अनलहक मानने वाले मंसूर को सूली पर चढ़ा दिया गया था—

किया दावा अनलहक का, हुआ सरदार आलम का,
अगर चढ़ता न सूली पर, तो वह मंसूर क्यों होता।

जिंदगी-भर के संघर्ष, परिवार-विछोह, देश-निकाला, जैसा भोगते हुए फैज सत्तर से ऊपर उम्र में टूट गए थे। एक हद भी तो होती है। पर फ़ैज़ शायर की महानता इससे कम नहीं होती।

धर्माधारित संकीर्ण राष्ट्रवाद और अधिक संकीर्ण और कट्टर होता जाता है। राजसत्ता और पुरोहित वर्ग मिलकर उन्मादी व्यवहार करते हैं। अपने ही लोगों को अलग करते हैं। उदारता का स्वर बरदाश्त नहीं करते। इन दिनों पाकिस्तान में इकबाल के खिलाफ अभियान चलाया जा रहा है। इकबाल के पत्रों का संग्रह छपा है, पर उस पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। कारण यह बताया गया है कि इकबाल कादियानी या अहमदिया पंथ के थे और यह पंथ गैर इस्लामी करार दे दिया गया है। पाकिस्तान के पहले विदेशमंत्री मोहम्मद जफसल्लाह खाँ थे। उन्हें भी कादियानी होने के कारण राजनैतिक क्षेत्र से निकाल दिया था। उन्होंने पाकिस्तान छोड़ दिया था। इकबाल सरीखा सच्चा मुसलमान पाकिस्तान में शायद ही कोई हो। अंतिम सालों में तो वे इस्लाम के भजन लिखने लगे थे। इतने बड़े कवि को इस बिना पर खारिज किया जा रहा है कि वे तथाकथित कादियानी थे—यानी काव्य, प्रतिभा, धर्म, जाति और पंथ के हिसाब से खुदा इनायत करता है। और खुदा के सलाहकार पाकिस्तान के शासक तथा मौलवी हैं।

आम विश्वास है कि 'पाकिस्तान' का विचार इकबाल ने दिया था। यह गलत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कई दस्तावेजों से सिद्ध होता है। खानवलीखाँ ने अपनी पुस्तक 'फैक्ट्स आर फैक्ट्स' में लिखा है कि पाकिस्तान का विचार इकबाल का नहीं था। इसके दस-बारह साल पहले मैंने एक लेख पढ़ा था, जिसमें बंबई की प्रतिष्ठित महिला बेगम अतैया को इकबाल द्वारा लिखे पत्र का हवाला दिया था। बेगम अतैया की मित्रता रवींद्रनाथ ठाकुर से भी थी और मोहम्मद इकबाल से भी। इकबाल ने उन्हें लिखा था कि यह गलत प्रचार किया जा रहा है कि मैंने पाकिस्तान की योजना दी। फिर पाकिस्तान का विचार किसका था। लंदन के 'रिज' होटल में मुस्लिम नेताओं की एक बैठक हुई थी। इसमें रहमत अली चौधरी ने पाकिस्तान का विचार दिया जो सबने स्वीकार किया।

फिर इकबाल के विचार क्या थे? इकबाल विचारों से लोकतंत्रवादी थे, समाजवादी थे। उनकी एक कविता कार्ल मार्क्स पर भी है। असल में इकबाल एक आदर्श व्यवस्था की खोज में थे। यह व्यवस्था उनके विचार से इस्लाम में है। उनका दावा था कि इस्लाम में बराबरी लोकतंत्र है। न्यायपूर्ण व्यवस्था है। इकबाल के दिमाग में वह व्यवस्था थी, जो अरब में पैगम्बर के बाद चार खलीफाओं के जमाने में कुल साठ साल चली। इसके बाद सामंतवाद आ गया। सामंतवाद यजीद नहीं, यजीद का बाप लाया था। हजरत हुसैन उस व्यवस्था के लिए संघर्ष करने आए थे यजीद के जमाने में। वे करबला में शहीद हुए। यह बहुत करुण कथा है। शायद अनीस का इस पर मरसिया पढ़ते वक्त रोने लगते हैं।

इस्लाम के आरंभ की यह व्यवस्था कैसी थी? सातवीं सदी के अरब में कबीले थे और छोटे-छोटे समुदाय बसे हुए थे। खलीफा को भी वही मिलता था, जो साधारण आदमी को। लोग खलीफा से सवाल कर सकते थे, कैफियत तलब कर सकते थे। समुदाय में प्रधान 'दाई' होता था। वह सबको बराबर वितरण करता था। बराबर वसूली भी करता था। तब वास्तव में बराबरी थी, समाजवाद भी था। पर यह सातवीं सदी की व्यवस्था है। तब अरब में समाज कैसा था? उत्पादन के साधन क्या थे? उत्पादन क्या होता था? अब आधुनिक युग की जटिल सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में वही पद्धति लागू नहीं हो सकती।

जवाहरलाल नेहरू और मोहम्मद इकबाल में इन मान्यताओं को लेकर पत्र-व्यवहार हुआ था। दोनों की तीन-तीन चिट्ठियाँ हैं। ये छहों तो मैंने पढ़ी हैं। इकबाल ने इस्लाम की उसी व्यवस्था की वकालत की है और नेहरू ने यही कहा है हमारे उद्योग तकनीक के जमाने में, विश्व अर्थ-व्यवस्था के जमाने में वह पद्धति लागू नहीं हो सकती। इकबाल ने दावा किया है कि इस्लाम में सब मनुष्यों में बराबरी है। उनकी अपनी एक कविता का हवाला दिया है कि मस्जिद में नमाज के लिए छोटे-बड़े एक कतार में खड़े हो गए—न कोई बंदा रहा न बंदानवाज़। जवाहरलाल ने लिखा है—यह तो मस्जिद में आधा-आधा घंटे की बराबरी है। मस्जिद के बाहर क्या हाल है? क्या बाहर भी सब मुसलमान बराबर हैं? क्या रिक्शा चलानेवाला मुसलमान और सर आगाखाँ बराबर हैं?

इन दिनों मोहम्मद इकबाल के खिलाफ पाकिस्तान में अभियान चल रहा है। पर भारत में इकबाल का अध्ययन होता है, इकबाल 'एकेडेमी' और इकबाल 'मरकज' चल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हैं। यह संस्कृति का लक्षण है। कवि किसी धर्म या जाति या देश का नहीं होता। वह संपूर्ण मनुष्य-जाति का कवि होता है। रवींद्रनाथ को बंगालियों का ही कवि माननेवालों से पशु अच्छे। मौलाना आजाद ने खीझकर कहा—जी हाँ, वह पाक हैं जहाँ आप हैं। बाकी सारी दुनिया नापाक है।

पाकिस्तान नहीं माने इकबाल को क्योंकि वे कादयानी थे। प्रचार है कि इकबाल ने हज नहीं किया। वे साल में सिर्फ दो बार नमाज पढ़ते थे। कौन कहता है कि इकबाल को आप पढ़ें। वह जैसा भी हो। गालिब ने चुनौती से कहा है—

हाँ वो नहीं खुदा परस्त
माना वो बेवफ़ा सही
जिस फ़ोटो से दीन-ओ-दिल अज़ीज़
उसकी गली में जाए क्यों
कभी ऐ हक़ीक़ते मुंतज़िर तू नजर आ
लियासे मज़ाज में
हज़ारों सजदे उठ रहे हैं, मेरे जबीने
नियाज़ में।

चेखव की संवेदना

एंटन चेखव बहुत संवेदनशील व्यक्ति और लेखक थे। उनके फोटोग्राफ में उनकी गहरी भावपूर्ण आँखें उनकी संवेदना को बताती हैं। गोर्की तथा अन्य उनके समकालीनों ने उनके बारे में कहा है। गोर्की ने लिखा है कि ताल्सताय चेखव को देखकर कहते थे—देखो, कितना कोमल है। उसकी अँगुलियाँ स्त्रियों की तरह हैं।

चेखव अध्यापकों के प्रति बहुत सहानुभूति रखते थे। वे चाहते थे कि अध्यापकों की आर्थिक हालत अच्छी हो और उनकी प्रतिष्ठा हो; पर साथ ही वे चाहते थे कि अध्यापक छात्रों से स्नेह करें, उन्हें तंग न करें, पीटें नहीं। गोर्की ने ही लिखा है, कुछ अध्यापक अपनी शिकायतें चेखव को सुना रहे थे। एकाएक चेखव ने पूछा—तुम्हारे क्षेत्र में वह कौन अध्यापक है, जो बच्चों को पीटता है? संयोग से वह वही अध्यापक था जो सबसे ज्यादा शिकायत कर रहा था।

चेखव की संवेदना व्यापक थी। साइबेरिया में जार की सरकार जिन लोगों को देश-निकाला दे देती थी वे अत्यंत कष्टमय जीवन जीते थे। उनकी हालत देखने चेखव खुद बेहद ठंडे साइबेरिया गए। वहाँ कैदियों की हालत देखी। वे बीमार होकर लौटे। उन्होंने उन लोगों के हालात पर एक किताब भी लिखी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेखव बनावट और पाखंड को एकदम पकड़ लेते थे। एक दिन तीन उच्चवर्गीय स्त्रियाँ सजी-धजी और इत्र से महकती उनके पास आईं। वे ऊँचा स्तर बताने के लिए कहने लगीं—चेखव साहब, ग्रीस और तुर्कों की लड़ाई में कौन जीतेगा? चेखव ने कहा--जो अधिक ताकतवर होगा। वे इस बात को और आगे बढ़ा रही थीं। चेखव ने कहा—मुझे सेब का मुरब्बा पसंद है। आप में से कौन सेब का मुरब्बा अच्छा बनाती है? तीनों एक साथ बोलीं—मैं बहुत अच्छा बनाती हूँ। आपको लाकर दूँगी। उनके जाने के बाद चेखव ने गोर्की से कहा—हर आदमी को अपनी भाषा बोलनी चाहिए।

चेखव की कहानियों तथा नाटकों में गहरी संवेदना और पीड़ा भी है और कुछ रचनाओं में व्यंग्य भी। चेखव की संवेदना बहुत सूक्ष्म और बहुस्तरीय होती है। वह मानवीय मन में गहरी जाती है और इसीलिए हर समय सभ्य होती है। समय के साथ चेखव की कहानियाँ पुरानी नहीं पड़तीं। वे नित नई होती हैं। इसका कारण समकालीनता में भी मानव-मन की शाश्वत स्थिति की पकड़ है। उनकी एक कहानी है—'तितली'। छोटे शहर की एक लड़की है। वह स्थानीय कलाकारों के एक दल में है। वे सब लोग अपने को महान् कलाकार मानते हैं और जिस आदमी का संबंध-सरोकार कला से नहीं है उसे घटिया मानते हैं। वे अपनी दुनिया में मगन हैं। लड़की की शादी एक डॉक्टर से होती है। वह हीनता अनुभव करती है, दोस्तों के सामने। पति कलाकार नहीं है। अब उनके घर कलाकारों का जमघट होने लगता है। डॉक्टर बहुत प्रतिभावान है। डिप्थीरिया का विशेषज्ञ है। आगे शोध कर रहा है। वह घर में उन अधकचरे कलाकारों की सेवा करता है। उनके कमरे में आकर कहता है—भोजन तैयार है। उसकी पत्नी उसे इस बात का उलाहना देती है कि वह कला में दखल नहीं रखता। आखिर वह जवाब देता है—हर आदमी हर काम नहीं कर सकता। ये तुम्हारे कलाकार मित्र डिप्थीरिया का इलाज नहीं कर सकते। वह पत्नी के लिए रंग-बिरंगे कपड़े खरीदने के लिए अनुदान से पैसे कमाता है।

लड़की कलाकार मित्रों के साथ बाहर भी जाती है। एक दिन वह वहाँ से तार करती है कि मेरा अमुक गाऊन दे जाओ।

आखिर डॉक्टर को विश्वास हो जाता है कि वह उसके प्रति वफादार नहीं रही। वह अस्पताल में डिप्थीरिया के एक मरीज का मवाद नली से चूस लेता है। घर जाता है। तड़पता है। मर जाता है। उसका साथी उस तितली को बहुत डाँटता है।

इस कहानी में डॉक्टर की सौम्यता, सहनशीलता और पत्नी के प्रति प्रेम है। उधर उसकी पत्नी खेलने वाली हलाकी गुड़िया बनी रहती है। उसमें तनिक भी समझ और संवेदनशीलता नहीं है। पूरी कहानी में गंभीर डॉक्टर, सौम्यता और सहनशीलता से पत्नी की फरमाइशें पूरी करता है। उधर वे अधकचरे अहंकारी अमानवीय लोग जो अपने को महान् कलाकार मानते हैं, डॉक्टर की भलमनसाहत का शोषण करते हैं। आखिर वह दुर्घटना होती है कि बहुत संभावना वाला डॉक्टर, जो मानव-जाति के भले के लिए चिकित्सा के क्षेत्र में शोध करता, अपना अंत कर लेता है, एक बहुत मामूली तितली के कारण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
चेखव की एक और कहानी है। अंगरेजी में शीर्षक है–'अन्ना ऑन द नेक'। गाँव की बहुत गरीब घर की पर बुद्धिमती लड़की है–अन्ना। सुंदरी है। पर शहर के किसी होनहार युवक का ध्यान उस पर नहीं जाता। आखिर शहर के एक बड़े बाबू जो अधेड़ हैं, उससे शादी करने को राजी होते हैं। बाबू की तारीफ में कहा जाता है–वह सिद्धांतप्रिय आदमी है। उस भुखमरी-ग्रस्त परिवार में बाबू बहुत बड़ा आदमी माना जाता है। शादी हो जाती है। रेलवे स्टेशन पर दंपति को विदा करने परिवार आता है। लड़की के पिता नशे में धुत्त हैं।

रेल चलती है। अधेड़ बाबू लड़की के प्रति प्रेम प्रकट करता है। पर लड़की रो रही है कि मेरे परिवार के पास शाम को खाने के लिए कुछ नहीं है। अपने घर में लड़की अपनी दीनता में दबी रहती है। पति बड़ा बाबू है। सिद्धांतवादी आदमी है। चेखव की ये लड़कियाँ अलग-अलग तरह की होती हैं। यह लड़की तितली सरीखी सपाट नहीं है। न एक कहानी की उस कस्बाई लड़की की तरह जिसमें प्रतिभा नहीं है, पर वह महान् संगीतज्ञ बनने का सपना देखती है। वह उसे चाहने वाले एक डॉक्टर से विवाह करने से इनकार कर देती है और मास्को चली जाती है। पाँच साल बाद वह निराश होकर लौटती है और चाहती है कि डॉक्टर से शादी ही कर ले। पर डॉक्टर बदल चुका होता है। उसकी जिंदगी का ढर्रा दूसरा हो गया है। वह इनकार कर देता है।

यह लड़की अन्ना दूसरे ढंग की है। दीन है, अपनी क्षमता जानती है। 'बाल' (नृत्य) का मौसम आने वाला है। उसका पति उससे कहता है–अमुक प्रतिष्ठित महिला से सुझाव लेकर 'बाल' के लिए स्कर्ट बनवा लेना। पर वह जानती है। वह बढ़िया स्कर्ट बनवाती है। पहला प्रतिष्ठा-प्राप्त 'बाल' होता है। वह खूब नाचती है। वह सबसे अच्छा नाचती है। वह सुंदरी है। वह सर्वोत्तम नृत्य करने वाली मानी जाती है। उससे सांकेतिक रूप से चीजें बेचने के लिए कहा जाता है। वह खूब बेचती है।

सबसे सम्मोहक और सफल अन्ना सुबह देर तक सोई है। उसके पति के विभाग का अधिकारी भी 'बाल' में नाचा था। वह गुलदस्ता लेकर जाता है। तब तक वह जाग चुकी है। इधर यह बड़ा बाबू हड़बड़ा जाता है। अधिकारी गुलदस्ता लेकर अन्ना के कमरे में जाता है। उसे गुलदस्ता भेंट करता है। तारीफ करता है। बधाई देता है। बड़े बाबू गद्‌गद हैं। वे अन्ना के कमरे में जाते हैं। एक नृत्य-उत्सव ने उनकी नजरों में अन्ना को उठा दिया। उधर अन्ना कल की अन्ना नहीं रही। वह अपनी और दूसरों की नजरों में बहुत चढ़ गई है। उसका पति उसके कमरे में जाता है और कहता है–साहब से मेरे बारे में दो शब्द कह देना।

अन्ना भड़क कर कहती है–बेवकूफ, बाहर निकल जाओ।

अपनी योग्यता दिखाने का एक मौका मिला तो अन्ना प्रतिभा दिखाकर बदल गई। अब वह परम स्वतंत्र हो गई। वह सैर-सपाटे करती है। ऊँचे समाज में जाती है। वह घुड़सवारी करती है। घोड़े को तेज दौड़ाती हुई अपने गाँव की तरफ से निकलती है। उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाई उसे रोकते हैं। पर उसका बाप कहता है–उसे मत रोको। वह अब नहीं रुकेगी।

विविध रंगों का चरित्र इस लड़की का है, जिसे चेखव ने बड़ी तटस्थता से चित्रित किया है।

यह संवेदना वहाँ भी है जहाँ वे व्यंग्य करते हैं। जिस पर व्यंग्य किया जाता है वह अंततः अपनी मजबूरियों के कारण वैसा विरोधाभासी व्यवहार करता है। वह कहानी है एक प्राइवेट स्कूल की। स्कूल में वार्षिक उत्सव चल रहा है। एक आदमी मुखौटा लगाकर दो-तीन लोगों के साथ वहाँ आता है और अध्यापक/अध्यापिकाओं के सामने बदतमीजी करता है। वे लोग उसे तरह-तरह से प्रताड़ते हैं। सबको उस आदमी पर गुस्सा है। एकाएक वह आदमी मुखौटा उतार देता है। सब पहचानते हैं, वह प्रबंध समिति का अध्यक्ष है। गुस्से में भरे अध्यापक बदल जाते हैं। वे खुशामद करते हैं–हम तो पहले ही जानते थे कि ऐसा मजाक भैया जी के सिवा और कौन कर सकता है। हम भी गुस्से का नाटक कर रहे थे। वाह भैया जी! क्या बात है!

कितनी करुण-मजबूरी है, अध्यापकों की!

ब्राह्मण से शूद्र तक

ऋषि जाबालि ने अपने नए शिष्य से पूछा–तेरा पिता कौन है? तू किस जाति का है? बालक ने माँ से पूछा तो उसने कहा कि मुझे भी पता नहीं है कि तेरा पिता कौन था और किस जाति का था। बालक ने यही गुरु से कह दिया। जाबालि प्रसन्न हुए और कहा–तूने सत्य कह दिया। सत्य केवल ब्राह्मण बोलता है। तू ब्राह्मण है। तेरा नाम होगा–सत्यकाम। सिद्ध हुआ कि वे ही झूठ बोलते थे। आगे खींचो तो यह कहा जाएगा कि ब्राह्मण सत्य नहीं बोलता। पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में अघोर भैरव बाणभट्ट से कहता है–तू ब्राह्मण है न रे! तेरी जाति ही झूठी है। यानी सम्राट् हर्ष के समय यह धारणा बन गई थी।

तुलसीदास बहुत उदार, बहुत संवेदनशील, बहुत मानवीय थे। ब्राह्मण-पुत्र होने का प्रमाण उनके पास नहीं होने के कारण काशी के ब्राह्मणों द्वारा वे अपमानित व प्रताड़ित हुए। पर वे लिखते हैं–

पूजिए विप्र सील गुण हीना
शूद्र न पूजिए जदपि प्रवीना

रामराज में एक ब्राह्मण अपने मरे बच्चे को हाथों में लेकर राम के सामने आया और बोला–मर्यादा पुरुषोत्तम, आपके राज में मेरे बेटे की अकाल मृत्यु हो गई। राम क्षुब्ध हुए। सोचा, कहीं मर्यादा भंग हुई है। राजपुरोहित ने बताया–महाराज, शूद्र को तपस्या करने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अधिकार नहीं है पर शम्बूक नाम का एक शूद्र तपस्या कर रहा है। यह धर्म विरुद्ध है, पाप है, मर्यादाहीनता है। इसी कारण इस बालक की मृत्यु हुई है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने जाकर तपस्यारत शम्बूक को मार डाला। तपस्या, प्रभु-प्रार्थना, प्रभु-पूजा करते हुए व्यक्ति को मारना घोर पाप है। पर शम्बूक तो शूद्र था। उसे तपस्या करते मारना पुण्य हुआ। मर्यादा पुरुषोत्तम के लिए धर्म विधान है कि शूद्र की हत्या करने पर उतना प्रायश्चित्त पर्याप्त है जितना सूअर को मारने पर।

बेचन शर्मा 'उग्र' की अतीत काल की एक कहानी में आया है कि एक आदमी किसी घर में घुसकर स्त्री से व्यभिचार कर रहा था। बाहर आसपास के आदमी उसे मारने को खड़े थे। वह बाहर निकला तो लोग झपटे। उसने तुरंत अपनी जनेऊ निकालकर दिखा दी। लोगों ने उसे छोड़ दिया—संभवतः उसके चरण छूकर।

सत्यनारायण की कथा सुनने से मंगल होता है, ऐसा विश्वास बनाया गया। सत्यनारायण की कथा अकसर लोग सुनते हैं। इसमें ऐसी कथाएँ हैं—किसी बनिए का जहाज डूब रहा था। उसने सत्यनारायण की कथा ब्राह्मण से सुनी। दान दिया। चमत्कार ! जहाज ऊपर आ गया। सवाल है—वह कथा कौन-सी थी जिसे बनिए को सुनाया गया। वास्तव में कोई कथा नहीं थी। यह जो सत्यनारायण कथा है, वह धंधे के लिए बनाई गई थी। हिंदू-मुसलमान, मेलजोल के नतीजे में बंगाल में 'सत्यवीर' कथा बन गई है।

मनु ने तो वर्ण-व्यवस्था को ही धर्म बना दिया। ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण पैदा हुए, भुजाओं से क्षत्रिय, पेट से वैश्य और पाँवों से शूद्र। शूद्रों का धर्म, ऊपर के तीनों वर्णों की सेवा करना। वे अछूत। जो काम शूद्र करते हैं, वही काम दुनिया की दूसरी जातियों में भी कुछ लोग करते हैं, पर वे अछूत नहीं होते। दास भी अछूत नहीं होते थे। प्राचीन ग्रीस में दास मालिक के साथ बैठकर भोजन करते थे। वे पढ़े-लिखे होते थे और संपन्नों के बच्चों को पढ़ाते थे। वर्ण-व्यवस्था इतनी जड़ हो गई कि 'वर्ण संकर' होना सबसे बड़ा लांछन हो गया। वर्ण संकर उसी तरह गाली हो गया जैसे—अंगरेजी का 'बास्टर्ड'। धर्म का अर्थ अपना निर्धारित कर्म है। 'धर्म' का अर्थ 'रिलिजन' नहीं है। गीता में एक जगह कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, कि ऐसे-वैसे कुकर्म करने से 'वर्ण संकर' संतानें होंगी। इतनी कठोर वर्ण मर्यादा। आज ब्राह्मण चाहे तो ईसाई हो सकता है, पर कायस्थ नहीं हो सकता।

अकेले ब्राह्मणों की यह देन नहीं है। समाज में उत्पादन के साधनों पर जिनका अधिकार होता है, वे धर्म-संस्कृति पर भी कब्जा कर लेते हैं। पशु-पालन और कबीलाई स्टेज के बाद आर्य कृषि-कर्म करके एक स्थान पर रहने लगे, बस्तियाँ बसीं। विशाल पैमाने पर खेती शुरू हुई, हस्तोद्योग चलने लगे, व्यापार होने लगा, तब इस तरह के विभाजन की जरूरत महसूस हुई। ब्राह्मणों ने क्षत्रियों और वैश्यों से समझौता किया। सामंतवाद का उदय हुआ, ब्राह्मण सामंतों के आश्रित हो गए। तब ब्राह्मण, जो विद्या-दान और धार्मिक अनुष्ठान कराने के कारण पूज्य और विधान देनेवाले माने जाने लगे थे, अपने और अपने दाताओं के हितों की सुरक्षा के विषय में सोचने लगे। एक वर्ण को शूद्र बनाना, उसे अछूत बनाना,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे शिक्षा-संस्कृति से वंचित करना, उसे पशु से भी बदतर स्थिति में जीने को मजबूर करना इसी वर्ग षड्यंत्र का परिणाम है, जिसे विदेशी 'श्रम-विभाजन' (डिवीजन ऑफ लेबर) कहकर व्याख्यायित करते हैं।

अछूतों की जिंदगी कई सदियों तक कितनी कष्टकर रही है, यह सब जानते हैं। नीची जातियों ने विद्रोह न किया हो, ऐसा नहीं है। संत, भक्त और कवि पैदा करना ब्राह्मणों का एकाधिकार नहीं है। नीची जातियों ने मध्य युग में अपने संत और कवि पैदा कर लिए। कबीरदास (जुलाहा), रैदास (चमार), कुम्भनदास (कुम्हार), नामदेव (दरजी), फिर महाराष्ट्र में महात्मा फुले और केरल में नारायण गुरु ने हमारे जमाने में संघर्ष किया। महाराष्ट्र में दलित कवि और लेखक थे दया पवार, नारायण सुर्वे, नामदेव ढसाल आदि। हर मराठी साहित्य-सम्मेलन में इनसे उच्च वर्ण के लेखकों की टकराहट होती है। दया पवार की आत्मकथा 'अछूत' पढ़कर देखिए। रवींद्रकुमार ठाकुर ने लिखा है—मेरे देशवासियो, तुमने अपने ही लोगों पर सदियों से इतने अत्याचार किए हैं कि तुम्हें इस पाप का फल भोगना पड़ेगा।

वर्ण-व्यवस्था बनाने वाले ब्राह्मणों का क्या हाल हुआ? उनका काम था चिंतन, मनन, विद्यादान। ज्ञान पर इनका एकाधिकार था। ऋषि के पास रहे बिना ज्ञान-प्राप्ति संभव नहीं थी। ज्ञान ऋषि के मुख में या उनके पास रखी हस्तलिखित पोथी में ही होता था। सबसे बड़ा दान विद्या-दान माना गया। जिन ऋषियों का उल्लेख पुराणों में आता है, सिर्फ उतने ही नहीं होते थे। उनके तो कुल (विश्वविद्यालय) होते थे जिसके वे कुलपति होते थे। मगर गाँव-गाँव में विद्या-दान करने वाले ब्राह्मण थे। इन्हें सम्मानपूर्वक समाज पालता था। इन्हें चरण छूकर दान दिया जाता था। ब्राह्मणों में से ही 'पुरोहित' पैदा हुए। ये भिक्षा नहीं माँगते थे। ये धार्मिक कर्मकांड कराते थे, पुत्र-जन्म, मुंडन, कनछेदन, विवाह, श्राद्ध आदि से इन्हें काफी धन और अनाज मिल जाता था। इन ब्राह्मणों ने धंधे में व्यवसायी वर्ग को भी मात कर दिया।

आगे ज्ञान का एकाधिकार ब्राह्मणों का नहीं रहा। क्षत्रिय जब बस गए, भूमिपति हो गए, तब उन्होंने ज्ञानार्जन और चिंतन किया। ब्राह्मणों से क्षत्रियों के शस्त्र और शास्त्र दोनों से संघर्ष हुए। क्षत्रियों में बड़े-बड़े ऋषि और चिंतक हुए। ब्राह्मणों ने कोई उत्पादन नहीं सीखा, न किया। सुदामा पत्नी से कहते हैं—'औरन को धन चाहिए बावरि, बाँभन को धन केवल भिच्छा।' पौरोहित्य की सीमा होती है। ब्राह्मण भिक्षा-वृत्ति पर जीवित रहने लगे। पहले सम्मान से गृहस्थ भिक्षा देता था, बाद में कहने लगा—आगे देखो। फिर कहने लगा—अरे भाग, चला आता है कभी भी। जो जाति उत्पादन नहीं करेगी, उसे भीख माँगना ही पड़ेगा।

वर्णों में जातियाँ, उपजातियाँ बनीं। ये ज्यादातर भौगोलिक कारणों से तथा आवागमन की कठिनाइयों के कारण बनीं। सरयू बड़ी नदी है। बरसात में उफनती है। पुल नहीं है। तो इस पार के ब्राह्मण आपस में विवाहादि संबंध कर लो। उस पार मत करो ये 'सरयूपारी' ब्राह्मण हो गए। नर्मदा के किनारे बसने वाले ब्राह्मण 'नार्मदीय' या 'नारमदेव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण हो गए।

इसी तरह क्षत्रियों और वैश्यों में भी सैकड़ों जातियाँ और उपजातियाँ हो गयीं। इनमें अपनों में ही खान-पान और विवाह संपन्न होने लगे। दहेज-प्रथा का एक कारण एक सीमित छोटी उपजाति में ही लड़की के लिए पति प्राप्त करना भी है। माँग की पूर्ति कर दो तो कीमत बढ़ जाती है।

तीनों ऊँचे वर्गों ने वे कर्म, जो ब्रह्मा ने मनु के द्वारा उन्हें दिए, उन्हें छोड़ कर दूसरे काम-धंधे अपना लिए। ब्राह्मण भोजन बनाने, पानी पिलाने, झूठी गवाही देने और दलाली करने में लग गए। अकबर-बीरबल विनोद में यह बिलकुल सही है—

लाओ बीरबल ऐसा नर, पीर बवर्ची भिश्ती खर।

बीरबल ने एक ब्राह्मण लाकर अकबर के सामने खड़ा कर दिया।

पर अब ब्राह्मण ऊँची से ऊँची नौकरियों में हैं। नीची से नीची नौकरियों पर भी हैं। ब्राह्मण व्यवसायी हैं, एजेंट हैं, पुलिस अफसर हैं और डाकू भी हैं। ब्राह्मण जमींदार रहे हैं, अब बड़े भूमिपति हैं।

पर यह भी सही है कि बहुत-से ब्राह्मण गरीबी की रेखा के नीचे जीवित रहते हैं। क्षत्रियों ने एक वर्ण के रूप में युद्धकर्म छोड़ दिया। वे जमींदार हो गए, व्यापारी हो गए। ऊँची नौकरियों पर हैं, नीची से नीची नौकरी पर भी हैं ठाकुर साहब। साहब भी ठाकुर हैं और चपरासी भी ठाकुर हैं। ठाकुर डाकू भी हैं, पुलिस अफसर भी हैं और डकैतों का शिकार भी हैं। मगर बहुत-से ठाकुर-क्षत्रिय गरीबी की रेखा के नीचे रहते हैं। इन जातियों में गरीबी की रेखा के नीचे जीनेवाले बहुत कम प्रतिशत होते हैं। मगर सबसे अधिक बेकारी इन्हीं वर्णों में होती है। शिक्षित, बेरोजगारी के शिकार इन जातियों में काफी प्रतिशत होते हैं। इनमें जो भूमिपति हैं या व्यापारी हैं, उनके लड़के भी अपने धंधों को छोड़कर नौकरी चाहते हैं। गाँव से बड़े किसान का लड़का शहर पढ़ने आ गया तो वह लौटकर जमीन पर नहीं जाना चाहता। वह शहर में ही छोटी नौकरी भी कर लेगा। इन वर्णों ने निम्न वर्ण के धंधे भी हथिया लिए हैं। मशीन से धुलाई होने लगी तो ब्राह्मण ने भी 'लॉण्ड्री' खोल ली और दो नौकर रख लिए। धोबियों का धंधा आधा रह गया। औद्योगीकरण और उपभोक्तावाद ने हस्तोद्योग नष्ट किए। यह सही है कि हस्तोद्योग से इतना विपुल उत्पादन नहीं हो सकता जो देश की जरूरत को पूरा कर सकें।

नीची जातियाँ और शूद्र धंधे नहीं बदल सकते। ये परंपरागत धंधे करने को मजबूर हैं। चमार अगर छोटी-सी परचून की दूकान खोल ले, तो ऊँची जाति के लोग 'चमरे' की दूकान से वस्तु नहीं खरीदेंगे। इन जातियों में जो कार्य-विधि है, वह उनकी पहचान हो गई है। उनके औजार उनकी घटिया जाति की पहचान बन गए हैं। गाँव का चमार जो अपने औजारों से हाथ से काम करता है, चमार है और अछूत है। पर उसका लड़का तकनीक सीखकर जूते के कारखाने में काम करता है तो वह कारीगर होता है और अछूत नहीं रहता। पर ऐसे मौके बहुत कम लोगों को मिलते हैं। जहाँ 'फ्लश' पाखाने हो गए हैं, वहाँ मेहतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर पर मैला नहीं ढोते। वे सफाई जरूर करते हैं। वे मैला ढोने वालों से कम अछूत हैं। काम करने के औजार और तरीके बदलने से जाति-भेद भी कम हो जाता है।

मेरे शहर में रक्षा-उत्पादन के पाँच कारखाने हैं। इनमें बिना आरक्षण के काफी नीची जातियों के लोग 'अप्रशिक्षित' (अनस्किल्ड) कर्मचारी हैं। कुछ प्रशिक्षित भी। इन्हें अच्छा वेतन मिलता है और ये कुछ बेहतर स्थिति में रहते हैं। औद्योगीकरण जाति-भेद पूरी तरह नहीं मिटा सका, फिर भी कुछ फर्क पड़ा है। विडंबना यह है कि साहब चपरासी भी नीची जाति का नहीं रखना चाहता। चौथी श्रेणी की नौकरी भी नीची जातिवालों को नहीं मिलती। साहब, ब्राह्मण चपरासी रखना चाहता है, क्योंकि वह घर में अफसरनी की चौके में मदद भी कर सकता है। बच्चों को गोदी में खिला सकता है।

इन नीची जातियों के धंधे भी ऊँची जातियों ने छीन लिए। ब्राह्मण और वैश्य जब जूते बनवाएँगे और बेचेंगे, तो चमार का धंधा गया। शास्त्रों, स्मृतियों, पुराणों को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में नहीं समझने से भूलें होती हैं, गलत निष्कर्ष निकलते हैं। शास्त्र, स्मृति, पुराण औद्योगिक सभ्यता के युग में नहीं लिखे गए, कृषि सभ्यता के युग में लिखे गए थे। उन्हें जैसा का तैसा आज लागू करना संपूर्ण जाति के आत्मघात का प्रयास है। कब लिखा, किसने लिखा, किसके हित के लिए लिखा, उत्पादन के साधन क्या थे, वे किनके हाथों में थे—इन सब बातों को समझे बिना शास्त्रों और स्मृतियों के उद्धरण देकर समाज के एक हिस्से को उसके मानवीय अधिकारों से वंचित करना अज्ञान तो है ही, कुछ लोगों की स्वार्थपरता है। वास्तविकता बदलती रहती है। बदलती वास्तविकता के साथ नए विचार और नई व्यवस्था आनी चाहिए। यदि यह नहीं होता तो समाज में संकट पैदा होता है, जैसा इस समय है। यह पुराना रोग है। पर कुछ रोग रोगी को प्रिय हो जाते हैं, जैसे दाद का रोग। दाद खुजलाने में मजा आता है। जातियों को भी दाद हो जाती है, जिसका वे इलाज न करके उसे खुजलाने का मजा लेने लगती हैं।

हिंदी और हिंदिंगलिश

उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री मुलायमसिंह यादव के इस आदेश से कि सरकारी कामकाज में अनिवार्य रूप से हिंदी का प्रयोग हो, अंगरेजी को त्याग दिया जाए, प्रशासन के लोगों में कुछ डर पैदा हुआ होगा। जो आदमी शंकराचार्य को जेल में रख सकता है, वह हम पर भी कार्यवाही कर सकता है। चलो, निकालो शब्दकोश और लिखो हिंदी में। जिसे यह कागज जाएगा, वह शब्दकोश में सिर मारेगा। मध्य प्रदेश के भूतपूर्व प्रधान सचिव र. प. नरोन्हा ने अपने संस्मरण में लिखा है : मैं पूरी रिपोर्ट अंगरेजी में लिखता था और उसके साथ एक कागज नत्थी करता जिस पर हिंदी में लिखता—महोदय प्रतिवेदन संलग्न है। विनीत र. प.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
नरोन्हा। इस प्रतिवेदन को मुख्यमंत्री द्वारकाप्रसाद मिश्र को सौंप देता। हो गया हिंदी में काम। एक बार मैंने पूरी लंबी टिप्पणी हिंदी में लिखी और मिश्र जी को सौंपी। मिश्र जी ने पढ़ा। मैंने पूछा—सर, आपको मेरी हिंदी कैसी लगी? मिश्रजी ने कहा—तुम्हारी हिंदी पढ़कर तो मैं अपनी हिंदी भूले जा रहा हूँ।

इस बात को तीस साल हो गए होंगे। नरोन्हा आई. सी. एस. थे, गोवा निवासी थे। तब से अब तक शासकीय कार्यों में हिंदी का प्रयोग बहुत बढ़ा है। और क्षेत्रों में भी हिंदी-पत्रकारिता की भाषा लगातार समृद्ध हुई है। मगर यह बात निस्संकोच कही जा सकती है कि जिस ईमानदारी से तमिलनाडु में काम तमिल में होता है या तेलगु में आंध्र प्रदेश में होता है, उस ईमानदारी से हिंदी प्रदेशों में हिंदीवाला काम नहीं करता। वास्तव में हिंदीभाषी कुछ भी ईमानदारी से नहीं करता। सिर्फ शिकायत करने में माहिर है। हिंदीभाषी से अच्छी हिंदी दक्षिण भारतीय बोलता है। वह मेहनत से हिंदी सीखता है। हिंदीभाषी हिंदी सीखता नहीं है। उसे हिंदी 'आ जाती' है। इन 'आ जाती' हिंदीवालों से हिंदी के लिए मेहनत करने, नए शब्द सीखने, अपना शब्द-भंडार बढ़ाने, पारिभाषिक मुहावरे ग्रहण करने की आशा करके मुलायमसिंह उन्हें तकलीफ दे रहे हैं। वे क्यों सीखें ? हिंदी तो उनकी मातृभाषा है।

मगर मुलायमसिंह का जोर हिंदी लाने पर उतना नहीं है, जितना अंगरेजी हटाने पर। वे देश की सब भाषाओं को बराबर मानते हैं। वे डॉ. लोहिया के चेले हैं, जो अंगरेजी हटाओ आंदोलन चलाते थे। ठीक करते थे समाजवादी कार्यकर्ता—बाजार में घूमते और अंगरेजी के बोर्ड हटाते। दूकान का नाम साईनबोर्ड पर लिखा है (अंगरेजी में) मोडर्न स्टोर्स। इस नाम से बैंक खाता है, रजिस्ट्रेशन है, लेना-देना है। दूकानदार कैसे बदले? होशियार दूकानदार ने रात को ही बोर्ड पर लिखवा दिया 'मार्डन स्टोर्स'। 'आधुनिक भंडार' नहीं। लिपि बदल दी, देवनागरी कर दी। हिंदी के उफान का दौर जब-तब आता है। कुकर की सब्जी पक जाती है और भाप निकलने लगती है, तब एकाध आंदोलन एक-दो दिन चल जाता है। भावुक वक्तव्य दे दिए जाते हैं, हिंदी की स्तुति गाई जाती है। समझना चाहिए कि हिंदी सिर्फ भावना की चीज नहीं है, व्यवहार की चीज भी है।

मुलायमसिंह ने एक जाति को फिर प्रोत्साहन दे दिया। यह 'हिंदी-सेवक' की जाति है, जिसका गोत्र 'हिंदी-भक्ति' है। यह जाति 'गो-सेवक' या 'गो-भक्त' जैसी है। हिंदी-भक्त के लिए हिंदी भावना की चीज है, उपयोगिता की नहीं। संविधान बनते ही यह जाति पैदा हो गई थी। यह जाति अभी भी है। वंश चल रहा है। हिंदी-सेवकों के उद्‌गार हैं—

—हिंदी भारत माता भाल की बिंदी है।

—हिंदी अपने ही घर में निर्वासिता है।

—हाय, हिंदी को उसका अधिकार अभी तक नहीं मिला।

—हाय, हिंदी आज अनाथ है।

—हाय, हिंदी जिसे रानी होना था, वह अभी भी चेरी है।

ठीक गो-भक्तों की शैली में—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—गाय हमारी माता है।

—जिसे पूजना चाहिए उसे काटा जाता है।

—गौ माता की जय!

गो-भक्त और हिंदी-भक्त एक जैसी भक्ति करते हैं। भावोद्गार निकालते हैं, प्रदर्शन करते हैं, कड़ुआहट पैदा करते हैं। चंदे का पैसा खा जाते हैं। गो-सेवक 'माता' को डंडा मार-मारकर भगा देता है। गौशाला में अपंग और बेकार बूढ़ी गायों के लिए आनेवाले घास को गाय के सपूत, प्रबंधक खा जाते हैं।

गो-भक्ति की भावना का उपयोग सांप्रदायिक राजनीतिवालों ने खूब किया। संसद पर साधुओं से हमला करवा दिया। इस पर गोली चली और एक गौ—गृहमंत्री गुलजारीलाल नंदा—मारी गई। बाद में जब राजनीतिवालों ने देखा कि गाय का दूध पूरा हम निचोड़ चुके, यह बूढ़ी हो गई तो उसे विनोबा भावे को सौंप दिया।

हिंदी का हाल यह रहा। संविधान में हिंदी को भारत की राजभाषा और अंतर्राज्यीय संपर्क-भाषा मानने के बाद हिंदी उन्मादी खड़े हो गए—

—हिंदी की विजय!

—हिंदी राष्ट्र भाषा हो गई।

—हिंदी की भारत विजय!

—जो हिंदी-विरोधी है, वह राष्ट्र-विरोधी है।

ये उन्मादी नारे लगने लगे, तो दूसरी भाषाओं के लोग चौंके : 'यह तो हिंदी साम्राज्यवाद है।' 'हिंदी साम्राज्यवाद' स्वीकार नहीं करेंगे।

इन हिंदी उन्मादियों के अपने बच्चे अंगरेजी माध्यम के पब्लिक स्कूल, कान्वेंट में पढ़ते थे। अब भी हिंदी की जय बोलने वाले, हिंदी का माल खाने वाले के बेटे अंगरेजी माध्यम के स्कूल में पढ़ते हैं। हिंदी उनके लिए विदेशी भाषा है। बाप हिंदी माता की गोशाला खोलकर हिंदी का घास चरे, और बेटे हिंदी की हत्या करें! मैं नहीं जानता—मुलायमसिंह यादव के बेटा-बेटी कौन-से स्कूल में पढ़ते हैं। पर उनकी सरकार के सचिवों, आई. ए. एस. और आई. पी. एस. अफसरों के बेटा-बेटी अंगरेजी माध्यम के स्कूल में पढ़ते हैं। मैंने एक हिंदी की मलाई चाटने वाले हिंदी-सेवक से कहा—मगर अपने बेटों को तो आप अंगरेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़ाते हैं। उन्होंने कहा—लड़कों को हिंदी पढ़ाकर क्या उनकी जिंदगी खराब करना है?

हिंदी-माध्यम से पढ़ने से जिंदगी खराब होती है, ऐसा कौन मानते हैं? हिंदी के त्यागी तपस्वी सेवक, हाय हिंदी करके रोने वाले और हिंदी के नाम पर लूटने वाले। इस संकट नस्ल का क्या करेंगे मुलायमसिंह।

मेरा घर मुख्य मार्ग पर नहीं है पर मेरे सामने के रास्ते से रोज चार रिक्शे भरकर टाई और यूनीफार्म पहने बच्चे अंगरेजी माध्यम की नर्सरी को जाते हैं। कारवालों के कार से जाते होंगे। ये नर्सरी शहरों में कई हैं। इनमें अभिभावक को एक लड़के पर पाँच-छः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सौ रुपए खर्च आता है। मध्यम वर्ग के लोग पेट काटकर यह पैसा खर्च करते हैं। यदि पति-पत्नी दोनों नौकरी करते हैं तो वे बच्चों को नर्सरी में डाल जाते हैं। उच्चवर्गीयों के लिए जो ईसाई संतों ने अपने नाम से स्कूल खोल रखे हैं, उनमें तो प्रतिमाह हजारों रुपए लगते हैं। ये स्कूल छोटे-छोटे कस्बों तक में खुल गए हैं। 'जैक ऐंड जिल वेंट आप द हिल, टु फेच ए फेल ऑफ वाटर' भजन गाया जाता है। और 'डम्पटी डम्पटी सैट ऑन ए बाल'—कीर्तन होता है। मैं मध्यवर्गीय से पूछता हूँ—इतना खर्च करके लड़के को वहाँ क्यों भेजते हो? उसका जवाब होता है—वहाँ पढ़ाई अच्छी होती है। लड़के की जिंदगी बन जाएगी। इन हिंदी के स्कूलों में पढ़ाई नहीं होती। प्रायमरी स्कूलों में तो बिलकुल नहीं पढ़ाया जाता। घर पर पढ़ाना पड़ता है। कुछ सालों से हिंदी के नर्सरी भी खुलने लगे हैं, पर ये काफी नहीं हैं!

जब अंगरेजों का शासन था, तब ये नर्सरी और कान्वेंट कम थे। अब एक की जगह बीस हो गए हैं। सचमुच इनमें पढ़ाई अच्छी होती है। फिर हिंदी माता के स्कूल किनके लिए हैं? मजदूर, चपरासी, रिक्शावाला के बच्चों के लिए। जिंदगी इन बच्चों की वैसे ही खराब होनी है क्योंकि वे गरीबों के बच्चे हैं। हिंदी के द्वारा जिंदगी खराब हो, यह भी हिंदी की सेवा ही है। सरकारों को और समाजसेवी संस्थाओं को अच्छे हिंदी स्कूल खोलना चाहिए, अच्छे अध्यापक रखना चाहिए, उन्हें अच्छा वेतन देना चाहिए। तब हिंदी और हिंदी माध्यम से अच्छी पढ़ाई होगी।

इस तरफ ध्यान नहीं है। बच्चे के जन्मदिन में आमतौर पर सुनता हूँ लय के साथ—हैपी वर्थ डे टु यू! जन्मदिन मुबारक हो—यह कम सुनाई देता है। अनपढ़ आदमी भी कहता है—मेरी वाइफ को बुखार आ गया। इसमें 'वाइफ' अंगरेजी और 'बुखार' फारसी है। यह भाषा चलेगी। भाषा वह होती है जिसे लोग बोलते हैं। वह भाषा नहीं होती जो विश्वविद्यालय और हिंदी के दर्जनों संस्थान बनाते हैं। जिससे लोग चलेंगे वही आम रास्ता होगा। दूर कहीं सीमेंट डामर की सड़क बना दो तो वह आम रास्ता नहीं होगा। सड़क बनी रहेगी, लोग नहीं चलेंगे, भाषा की समृद्धि शब्द-संख्या बढ़ाते जाने से होती है। इसके लिए दूसरी भाषाओं के शब्द लेना चाहिए। मगर पवित्रतावादियों ने यह रास्ता बंद कर दिया है। उर्दू को मुसलमानों की भाषा कहकर उससे परहेज किया जाता है; जबकि उर्दू, फारसी के शब्दों, मुहावरों से हिंदी बहुत समृद्ध हुई है। वास्तव में हिंदी-आंदोलन भी ऊँची जातियों के हिंदुओं के हाथों में है। ये द्विज हिंदी को तिलक और माला से सजाकर अगरबत्ती जलाकर नारियल फोड़ते हैं। हिंदी उनके लिए इसी काम की है। इसी कारण हिंदी सांप्रदायिकता की भाषा सरीखी लगने लगी—हालाँकि वह है नहीं।

इसके विपरीत दूसरी भाषाओं के लोगों को देखिए। वे अपनी ही समृद्धि के लिए बहुत प्रयत्न करते हैं। तमिलनाडु, केरल, आंध्र, कर्नाटक में अपनी-अपनी भाषा का उपयोग करते हैं। बंगाल में काम बांग्ला में होता है। ये अंगरेजी से परहेज नहीं करते। तमिलनाडु में जरूर हिंदी का विरोध है। मगर केरल, आंध्र में नहीं है। महाराष्ट्र और गुजरात के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन लोगों की भाषा है। मगर हिंदी-साम्राज्यवाद के सब विरोधी हैं। यह केवल भावनात्मक प्रतिक्रिया नहीं है, व्यावहारिक विरोध है। यह हिंदी-उन्मादियों के कारण है। इन प्रदेशों के शिक्षा-बोर्डों और विश्वविद्यालयों से मेरे पास पत्र आते हैं। महाराष्ट्र, गुजरात और केरल से हिंदी में पत्र आते हैं। आंध्र, कर्नाटक से तेलगु, कन्नड के पत्र के साथ अंगरेजी या हिंदी में उसका अनुवाद भी आता है।

मुलायमसिंह यादव का यह कहना ठीक है कि गाँव का लड़का जो अंगरेजी नहीं पढ़ा, हिंदी पढ़ा है, उसे आई. ए. एस. में बैठने को मिलना चाहिए। यह मैं भी चाहता हूँ। मगर हिंदी में वे पुस्तकें कहाँ हैं, जिनका अध्ययन करके वह आई. ए. एस. की परीक्षा दे। वे अंगरेजी में होती हैं। वह परीक्षा में बैठेगा तो अंगरेजी वाले से पिछड़ जाएगा। किसी भारतीय भाषा का उम्मीदवार अंगरेजी वाले की बराबरी नहीं कर सकता। अगर वह मातृभाषा में ही परीक्षा दे, फिर ट्रेनिंग अंगरेजी में होती है। पहले मुलायमसिंह विभिन्न विषयों के विद्वानों को कोड़े लगाकर उनसे हिंदी में पुस्तकें लिखवाएँ। प्रशासनिक शब्दावली काफी बन गई है और उसका प्रयोग भी होने लगा है। मगर काम हिंदी में भी होता है और अंगरेजी में भी। राज्यों में मातृभाषा और अंगरेजी दोनों का उपयोग होता है। हिंदी वालों में ईमानदारी और मेहनत चाहिए। हिंदी के स्तर को उठाना चाहिए। अखबारों में देखता हूँ कि असंख्य हिंदी पारिभाषिक शब्द आ रहे हैं, और वे लोगों की जबान पर चढ़ रहे हैं। अब एम. एल. ए. कोई नहीं कहता, 'विधायक' कहता है। मगर 'दूरदर्शन' मैंने किसी हिंदीभाषी के मुँह से अभी तक तो नहीं सुना। टी. वी. सुनता हूँ पर 'दूरदर्शन' धीरे-धीरे जबान पर आ जाएगा। जो सहज होगा, वही लोग बोलेंगे।

कठिनाई आती है पारिभाषिक शब्दावली में। मुगल शासन-काल में शासन की भाषा सरल फारसी थी। मुगल प्रशासन का ढाँचा और यह भाषा मराठों और पेशवाओं ने भी ले ली थी। खास पदों पर से कुलनाम पड़ गए हैं—मजूमदार, जकातदार, खासकलम, अर्जीमदीस। यह भाषा अंगरेजी के साथ-साथ अंगरेजी शासन ने भी चलाई। देवनागरी में भी यह भाषा लिखी जाती थी···मुछई रामकिशन को मुंसिफ अभ्रक की अदालत में इस्तगासा पेश करने—

यह सही है कि अंगरेजी वर्ग-भेद और शोषण की भाषा है। वकील अपढ़ मुवक्किल के सामने, न्यायाधीश के सामने गलत अंगरेजी में अनर्गल बातें बड़ी देर बोलता है। बाद में मुवक्किल कहता है—वकील साहब अदालत में खूब बोले। और बड़ी फीस दे देता है। अगर वकील हिंदी में बोले तो मुवक्किल समझ जाए कि यह तो मैं भी बोल सकता था। वह वकील को फीस कम दे। कई तरह से शोषण अंगरेजी के द्वारा होते हैं। शासकीय कार्यों से, न्यायालयों से, सारी सार्वजनिक संस्थाओं से अंगरेजी को जाना ही चाहिए। आई. ए. एस., आई. पी. एस. की परीक्षाओं में बैठने के लिए जिन विषयों का अध्ययन करना पड़ता है, उनकी योग्य पुस्तकें हिंदी में बहुत कम हैं। बाकी सब अंगरेजी भाषा में पढ़ना पड़ता है। इसीलिए अक्सर अंगरेजी में परीक्षा देने वाले का चयन हो जाता है। हिंदी में इन विषयों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की समस्त पुस्तकें बननी चाहिए।

बोलचाल की भाषा में अछूत प्रथा नहीं मानना चाहिए। बोलचाल की भाषा में जो अंगरेजी शब्द आ गए हैं, उन्हें हिंदी मान लेना चाहिए। हिंदी को अधिक से अधिक दूसरी भाषाओं के शब्द ले लेना चाहिए। तब हिंदी समृद्ध होगी।

विज्ञानों के तकनीकी शब्द लगभग अंतर्राष्ट्रीय होते हैं। पूरे यूरोप के तकनीकी शब्द लैटिन या ग्रीक धातु से बने हैं। ये पूरे यूरोप अमेरिका, लैटिन अमेरिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड में माने जाते हैं। भारत में संस्कृत धातु से शब्द बने हैं। कुछ अच्छे हैं, कुछ बिलकुल बेकार। 'एंजिन' डॉ. रघुवीर के बावजूद एंजिन ही कहलाएगा। अंगरेजी के जो शब्द धातु नहीं बनने को हैं, वे अगर बोलचाल में हैं तो उन्हें हिंदी मान लेना चाहिए। सरकार यदि यह समझती है कि पुलिस लोगों से हिंदी बुलवा लेगी, तो यह उतना ही बड़ा भ्रम है, जितना बड़ा यह कि पुलिस सांप्रदायिक एकता कायम कर देगी।

हिंदी को ही भारत की भाषा होना चाहिए। जब 1946 में पूर्ण स्वाधीनता के पहले मध्यावधि सरकार बनी थी, तब पंडित नेहरू ने विजयलक्ष्मी पंडित को रूस में राजदूत बनाकर जून 1947 में ही भेज दिया था। विजयलक्ष्मी पंडित ने लिखा है कि मेरा परिचय और अधिकार-पत्र हिंदी में था। यह संविधान बनने के पहले की बात है। मगर हिंदी फिर भी विश्व-भाषा नहीं है। विश्व-भाषा अंगरेजी है। दुनिया से हमारा संपर्क अभी भी अंगरेजी के माध्यम से है। पश्चिम का ज्ञान, विज्ञान हमें अंगरेजी के माध्यम से प्राप्त होता है। यदि अंगरेजी की पढ़ाई हमने पूरी तरह खत्म कर दी तो हम पूरी तरह फिर से कूपमंडूक हो जाएँगे। 'रानी' और 'चेरी' शब्दों का प्रयोग करनेवाले भावुक मूर्ख हैं। अंगरेजी भाषा पढ़ना अनिवार्य नहीं होना चाहिए, पर ऐच्छिक रूप से अंगरेजी की पढ़ाई उच्चतम स्तर तक होनी चाहिए। वैसे भी संविधान की आठवीं सूची में अंगरेजी है।

हास्य और व्यंग्य

हास्य और व्यंग्य को लेकर अब चर्चा अधिक होने लगी है। इसका कारण है। स्वाधीनता के बाद ऐसे चेतना-संपन्न लेखक हुए, जिन्होंने समाज के हर क्षेत्र में विसंगतियों, अतिचारों, ढोंग, पाखंड, मिथ्याचार, अन्याय आदि को बहुत गंभीरता से लिया। कोई भी क्षेत्र हो—राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षिक, प्रशासनिक, लगातार विसंगतियाँ बढ़ती गईं, पतनशीलता आती गई और व्यक्ति तथा समाज का अमानवीकरण होता गया। जीवन-मूल्यों का लगातार पतन होता गया। आज हालत यहाँ तक हो गई है कि कोई किसी का विश्वास नहीं करता। राजनीति में व्यक्ति या दल जो कहते हैं उसे आम आदमी पहले झूठ मानता है। अस्पताल प्राण बचाने की जगह है, पर उसे लोग प्राण लेने की जगह मानने लगे हैं। विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान का प्रकाश देनेवाले हैं, मगर इनमें इतनी क्षुद्र राजनीति व्याप्त होती है, कि छात्र नहीं जानता उसके साथ क्या होगा।

इन सब परिस्थितियों का अनुभव करके, भोगकर, संवेदित होकर कई लेखकों ने गहराई से क्षुब्ध होकर लिखा। इस लेखन में ग्लानि है, क्रोध है, बदलाव की इच्छा है। इन स्थितियों को हँसकर टाला नहीं जा सकता, उन्हें लिखकर अपना और दूसरों का मनोरंजन नहीं किया जा सकता। ये विकृतियाँ आज जनसामान्य को पीड़ित करती हैं, और भविष्य को नियंत्रित करनेवाली हैं। तब इस वास्तविकता पर एक विशेष ढंग से लेखकों ने प्रहार किया। वास्तविक विकृतियों और विसंगतियों को उजागर किया, जीवन की आलोचना की, समाज को आत्म-साक्षात्कार कराया, परिवर्तन की चेतना पैदा की। इस तरह का लेखन 'व्यंग्य' कहलाया और वह इतना लिखा गया है और लिखा जाता रहेगा कि उस पर गंभीरता से विचार किया जाने लगा है। व्यंग्य को एक साहित्य-विधा मानने का आग्रह हो रहा है। हास्य कहने या लिखने का एक ढंग है, जिससे हँसी आती है, मनोरंजन होता है। नवरसों में हास्य रस भी एक है। कई बातों पर हँसी आ जाती है। किसी की नाक मोटी और बेडौल है, तो कह दिया—इस आदमी को बनाते समय भगवान आलू बँडा खा रहे थे। नाक बनाने की बारी आई तो वहाँ आलू बँडा रख दिया। अगर वह आदमी सुने नहीं, तो यह शुद्ध हास्य है। इसमें कोई मैल, द्वेष नहीं है। पर उसे सुनाकर बात कही जाए, तो उसके मन पर चोट लगेगी। यह उपहास हुआ और ऐसी बात पर, जिस पर उसका कोई वश नहीं है। यह हास्य नहीं करता है। ब्राह्मणों के पेटपन को लेकर यों मजाक कर दिया गया—एक जगह ब्राह्मण-भोजन था। गाँव के कुछ ब्राह्मण वहाँ गए। कुछ खाके लौटे। गाँववालों ने पूछा—खा आए पंडित जी? ब्राह्मण बोले—क्या खा आए। अरे खानेवाले तो खाटों पर आ रहे हैं। ब्राह्मण इतना खा गए थे कि उन्हें खाट पर लादकर लाया जा रहा था। राह में उनसे किसी ने पूछा—पंडित जी, खा आए? वे बोले—अरे क्या खा आए। खानेवाले तो वहीं पड़े हैं। वह आदमी यजमान के घर गया। वहाँ कुछ ब्राह्मण पड़े थे। उनसे पूछा—खा लिया पंडित जी? वे बोले—अरे क्या खा लिया। खानेवाले तो स्वर्ग सिधार गए। इसमें हास्य है, मगर उन गरीब ब्राह्मणों का उपहास भी है, जिन्हें अच्छा खाने के लिए यजमान के घर में ही मिलता है। प्राचीन साहित्य में इन पेटू ब्राह्मणों का मजाक उड़ाकर हास्य पैदा किया गया है।

पीड़ित, मजबूर, गरीब, शारीरिक विकृति का शिकार, नारी, नौकर आदि को हास्य का विषय बनाना कुरुचिपूर्ण और क्रूर है। लेखक को यह विवेक होना चाहिए कि किस पर हँसना और किस पर रोना है। पीटनेवाले पर भी हँसना और पिटनेवाले पर भी हँसना विवेकहीन हास्य है। ऐसा लेखक संवेदना-शून्य होता है।

हास्य का उद्देश्य मनोरंजन होता है। पर इस हास्य में खोट, मैल, द्वेष नहीं होना चाहिए। लिखते समय किसी व्यक्ति, समूह या जाति के प्रति घृणा या द्वेष नहीं होना चाहिए।

इस प्रकार के लेखन के कई रूप हैं। हास्य, परिहास, उपहास, वक्रोक्ति, कटाक्ष, व्याजस्तुति, व्याजनिंदा आदि। अंगरेजी में ह्यूमर, विट्, आयरनी, पन लेम्पून—इन सब रूपों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में प्रधान उद्देश्य मनोरंजन होता है। प्रयोजन व्यक्तिगत होता है—हँसना-हँसाना। कभी-कभी शब्दों के खेल पर ही हँसी आ जाती है। ऑस्कर वाइल्ड का हास्य नाटक 'द इम्पोर्ट्स ऑफ बीइंग अर्नेस्ट' सिर्फ 'अर्नेस्ट' शब्द से पैदा हुई गलतफहमी पर आधारित है। नाटक मनोरंजक है। इसके आगे कुछ नहीं। अंगरेजी लेखक पी. जी. वोडहाउस विनोद लिखते हैं। इनके उपन्यासों में एक पात्र है—'स्मिथ'। इसके नाम के हिज्जे. में 'एस' के पहले 'पी' अक्षर है यानी वह 'पिस्मिथ' हो गया। यही पात्र हास्यास्पद स्थितियाँ पैदा करता है। कौतूहल पैदा करता है। चमत्कार करता है। पर वोडहाउस में सामाजिक समीक्षा नहीं है। रामचरितमानस में शंकर की बारात के वर्णन में विनोद है। भूतनाथ की बारात में भूत-प्रेत बाराती हैं। बारात में विष्णु तथा और देवता भी हैं। विष्णु इस बारात पर कटाक्ष करते जाते हैं—

जस दूल्हा तस सजी बराता,
कौतुक विविध होंहि मग जाता।

विष्णु के कटाक्ष शंकर सुन लेते हैं। तुलसीदास लिखते हैं—

मन ही मन महेस मुसकाहीं,
हरि के विंग्य वचन नहिं जाहीं।

बारात के इस कटाक्ष के शब्द शंकर को व्यंग्य लगे। उपहास भी है, पर उसमें दुर्भावना नहीं है। किसी उपहास में दुर्भावना होती है, जो किसी की कमजोरी पर किया जाता है।

हास्य और व्यंग्य की परिभाषा करना कठिन है। यह तय करना भी कठिन है कि कहाँ हास्य खत्म होता है और व्यंग्य शुरू होता है। व्यंग्य से हँसी भी आ सकती है, पर इससे वह हास्य नहीं हो जाता। मुख्य बात है कथित वस्तु का उद्देश्य और सरोकार क्या है। व्यंग्य का सामाजिक सरोकार होता है। इस सरोकार से व्यक्ति नहीं छूटता। आलोचक डॉ. सुवास कुमार का यहाँ तक कहना है कि व्यंग्य श्रेष्ठतम लेखन की आंतरिक प्रकृति होता है। श्रेष्ठ रचना चाहे वह किसी भी विधा में क्यों न हो, अनिवार्यतः और अंततः व्यंग्य ही होती है। इस अर्थ में हम व्यंग्य को चाहें तो तीव्रतम क्षमताशाली व्यंजनात्मकता के रूप में देख सकते हैं। व्यंग्य सहृदय में हलचल पैदा करता है। अपने प्रभाव में व्यंग्य करुण या कटु कुछ भी हो सकता है, मगर वह बेचैनी जरूर पैदा करेगा।

मगर उपहास के साथ व्यंग्य भी किसी समुदाय-विशेष पर हो सकता है। तुलसीदास राम के वन-गमन के प्रसंग में तपस्वियों पर कटाक्ष करते हैं—

विन्ध्य के वासी उदासी महा बिनु नारि दुखारे
गौतमतीय तरी तुलसी सो कथा सुनि में मुनिवृंद सुखारे।
हुइहैं सिला सब चंद्रमुखी परसे पद 'मंजुल' कंज तिहारे
कीन्हीं भली रघुनायक जू करुणा कर कानन को पग धारे।

अर्थात् विन्ध्याचल में जो मुनि रहते थे वे यह जानकर बहुत खुश हुए कि राम के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरण-स्पर्श से गौतम-शाप से पत्थर हुई अहल्या फिर सुंदर नारी हो गई थी। राम यहाँ से निकलेंगे तो उनके चरण-स्पर्श से ये शिलाएँ चंद्रमुखी स्त्रियाँ हो जाएँगी और हमें मिल जाएँगी। हम नारी के बिना बहुत दुःखी हैं। हे राम, तुमने वन-गमन करके हम पर बड़ा उपकार किया।—इस पद में तुलसीदास ने मुनियों का उपहास तो किया ही है, इस प्रवृत्ति पर भी व्यंग्य किया है बिना इंद्रियों और इच्छाओं का दमन किए लोग तपस्वी हो जाते हैं।

जैसा मैंने पहले कहा, व्यंग्य में हँसी आ सकती है, पर व्यंग्य का मूल उद्देश्य समाज की आलोचना है। वैसे तो सब प्रकार का साहित्य जीवन की आलोचना होता है। पर व्यंग्य यह कार्य एक विशिष्ट और प्रभावकारी ढंग से करता है। यह शैली अधिक कारगर होती है। समाज में व्याप्त कुरीतियाँ, आडंबर, विसंगतियाँ, दोमुँहापन, मिथ्याचार, अन्याय, अव्यवस्था, अनैतिकता, शोषण आदि को देखकर लेखक दुःख का अनुभव करता है। साथ ही उसकी संवेदना उन लोगों के प्रति जाग्रत होती है जो इस भ्रष्ट, क्रूर व्यवस्था के शिकार होते हैं। इसलिए, मूलतः व्यंग्य लेखक समाज में व्याप्त इन बुराइयों को उजागर करके उसे आत्म-साक्षात्कार कराता है और उसकी संवेदना जगाता है। व्यंग्य के प्रहार कठोर भी होते हैं, जो पढ़नेवाले की बेचैनी भर देते हैं। मैं व्यंग्य लिखता हूँ। मुझे ऐसे बहुत लोगों की चिट्ठियाँ मिलती हैं, जो मेरे लेखन के निहितार्थ को समझ जाते हैं और जिनकी सहानुभूति होती है। कुछ पत्र उनके भी मिल जाते हैं, जो मेरा अर्थ ही नहीं समझते। मुझे गालियाँ-भरी चिट्ठियाँ भी मिलती हैं और धमकी भरी भी। इसका कारण, एक तो नासमझी; दूसरा यह कि मनुष्य अपना सच्चा रूप देखकर आत्मावलोकन न करके गुस्सा करता है और उसे गाली देता है जिसने उसे उसका सच्चा रूप दिखा दिया।

कुछ लोग कहते हैं कि व्यंग्य लेखक की मानसिकता नकारात्मक होती है। वह 'सिनिक' होता है। इनके नजरिए से जॉर्ज बर्नार्ड शॉ इस सदी का सबसे बड़ा 'सिनिक' था। कहते हैं—व्यंग्य लेखक को बुराई ही बुराई दिखती है। मेरा जवाब है—डॉक्टर लोगों की बीमारियाँ बताता है, तो क्या वह रुग्ण और नकारात्मक मानसिकता का है? क्या वह आस्थाहीन है ? अमानवीय है? डॉक्टर बीमारी बताता है, तो उसे ठीक भी करता है। वह जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिवाला, आस्थावान, आशावान होता है। अगर डॉक्टर बीमारी न बताए तो जरूर वह अमानवीय है, क्योंकि वह आदमी मर जाएगा। व्यंग्य लेखक की आस्था मनुष्य में उसके अच्छे भविष्य में होती है। वह आशावान है। आशावान न होता तो क्यों रोता मनुष्य की दुर्गति पर? आस्था और आशा के कारण ही वह बुराइयों को बताता है। लोग पूछते हैं—क्या व्यंग्य साहित्य से सामाजिक परिवर्तन या क्रांति हो सकती है? मेरा जवाब है—नहीं! पर व्यंग्य सामाजिक परिवर्तन की चेतना उत्पन्न करता है और परिवर्तन या क्रांति के लिए मानसिक तैयारी कराता है। फ्रांसीसी क्रांति की पूर्व मानसिकता बनानेवाले लेखकों में वाल्तेयर अग्रणी हैं। वे कटु व्यंग्य लिखते थे। वाल्तेयर ने सामंती राजसत्ता, शासक-वर्ग और धर्म के ठेकेदार पादरियों पर जीवन-भर प्रहार किया। वह जेल गया। देश-निकाला भोगा, बड़ी दुःखमय हालत में मरा। पेरिस की कोई चर्च उसके शव को दफनाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
के लिए तैयार नहीं हुई। एक गाँव की चर्च के साधारण पादरी ने उसे अपने यहाँ दफनाया। पादरी ने कहा—धर्म के नियम महान् प्रतिभाओं पर लागू नहीं होते। क्रांति के दौर में क्रांतिकारियों ने वाल्तेयर के शव को निकाला, जुलूस के साथ पेरिस लाए और सबसे प्रतिष्ठित कब्रगाह में उसे दफनाया। व्यंग्य-लेखक की ताकत के बारे में वाल्तेयर ने कहा है—हँसते हुए शेर आएँगे और हँसी से (बुराई को) नष्ट कर देंगे।

फ्रांस के शासक ने खर्च कम करने के लिए शाही अस्तबल के आधे घोड़े बेच दिए। वाल्तेयर ने टिप्पणी की—इससे अच्छा होता कि राजदरबार के आधे गधे बेच दिए जाते। पादरियों के चरित्र की पोल अंगरेजी लेखक ए. जी. गार्डनर ने एक ही वाक्य में खोल दी है। उसने लिखा है—'ही वाज ए फर्स्ट क्लास प्रीचर हू वाज फाउंड डेड इन ए फर्स्ट क्लास रेल्वे कंपार्टमेंट विद ए थर्ड क्लास टिकिट इन हिज पाकेट'।— यानी वह श्रेष्ठ धर्मोपदेशक था जो पहले दर्जे के रेल के डिब्बे में मरा पाया गया और उसकी जेब में तीसरे दरजे का टिकिट मिला।

दुनिया के साहित्य में व्यंग्य बहुत लिखा गया है। अपने समाज, उसके विभिन्न अंग, राजसत्ता, धर्मसत्ता, साम्राज्यवाद, सामंतवाद, लोकतंत्र की विकृतियाँ आदि पर व्यंग्य लिखे गए हैं। सोलहवीं शताब्दी में स्पेन के लेखक सर्वेटीस ने मध्य युग के सामंतों पर अपने उपन्यास 'डान क्विज्होट' में व्यंग्य किया है। फ्रांस के लेखक मोलियर ने तत्कालीन फ्रांसीसी बुर्जुआ वर्ग पर व्यंग्य किया है। ब्रिटेन के जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने अंगरेज जाति और उसकी साम्राज्यवादी नीतियों पर करारा व्यंग्य किया है। बर्नार्ड शॉ ने कई संस्थाओं, परंपराओं, प्रचलित नैतिक मान्यताओं पर भी व्यंग्य किया है। बर्नार्ड शॉ के असंख्य व्यंग्य वाक्य लोगों की जबान पर हैं। अंगरेज जाति पर उसका व्यंग्य वाक्य है—व्हेन ऐन इंग्लिश मेंन इज मॉरल। यानी जब अंगरेज अड़चन में होता है, तब वह सोचता है कि मैं नैतिक हूँ। अमेरिकी लेखक मार्क ट्वेन ने अमेरिकी समाज पर तीखे व्यंग्य किए हैं। चार्ल्स डिकिंस ने ब्रिटिश लोकतंत्र की विडंबनाओं पर 'पिकबिक पेपर्स' स्तंभ में बहुत व्यंग्य किया है। एक जगह पर लिखता है कि ब्रिटिश लोकतंत्र खतरे में है, मंत्रिमंडल पर संकट आ गया है और देश का नाश हो रहा है, क्योंकि मिस्टर नूडल को मंत्रिमंडल में जगह नहीं दी जा रही है। रूसी लेखक गोगोल ने जार के जमाने की नौकरशाही पर तीखा व्यंग्य किया है। इन व्यंग्यों का प्रयोजन सामाजिक सुधार है।

मैं भी लगभग चालीस सालों से व्यंग्य लिख रहा हूँ। मैं अपने साहित्य में आई असंख्य व्यंग्योक्तियों में से कुछ दे रहा हूँ—

—इस देश के बुद्धिजीवी शेर हैं, पर वे सियारों की बारात में बैंड बजाते हैं।

—जनतंत्र की सब्जी पर जो 'जन' का छिलका चिपका रहता है, उसे छील दो और खालिस तंत्र को पका लो। आदर्शों का मसाला, कागजी कार्यक्रमों का मसाला और नमक डालो और नौकरशाही की चम्मच से खाओ। बड़ा मजा आता है—कहते हैं खानेवाले।

—भारतीय दंड संहिता अगर महाकाव्य है, तो जब-तब जारी होनेवाले अध्यादेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ललित गीत हैं।

—आप अनुभव की बात करते हैं? केंचुए ने अनेक पीढ़ियों के अनुभव से यह सीखा है कि रीढ़ की हड्डी नहीं होनी चाहिए।

—गणतंत्र को उन्हीं हाथों की तालियाँ मिलती हैं, जिनके मालिक के पास हाथ गरमाने के लिए गर्म कोट नहीं है।

हुसेन के नंगे पाँव और भारतीयता

घटना कुछ दिनों की हो गई मगर बात विचारणीय है। प्रसिद्ध चित्रकार मकबूल फिदा हुसेन बंबई के एक क्लब 'विलिंगडन क्लब' में रात्रि-भोज के लिए एक मेहमान की हैसियत से गए। वे जिनके मेहमान थे वे एक लेडी डॉक्टर हैं; और क्लब की सदस्या होंगी ही। हुसेन को इसलिए क्लब से 'नम्रतापूर्वक' बाहर कर दिया गया कि वे नंगे पैर थे। इस देश में समस्या हरिजनों के मंदिर प्रवेश की ही नहीं, नंगे पाँव या उघाड़े या धोती पहन कर क्लब और होटल प्रवेश की भी है। 'एक्सक्यूसिव' मंदिर भी इस देश में हैं और क्लब भी। यह खबर अखबारों में छपी तो भावुकता आई लोगों में, राष्ट्रीयता जागी, जातीय गर्व जागा और बंबई में विद्यार्थी परिषद् ने क्लब के सामने प्रदर्शन किया। हुसेन की प्रतिष्ठा और भारतीयता की रक्षा एक सांप्रदायिक पुरातनवादी संगठन ने ले ली। अगर समाजवादी दल होता, डॉ. लोहिया होते, तो प्रदर्शन समाजवादी करते और क्लब में घुस भी जाते। ऐसी ही घटना कलकत्ता के 'एक्सक्यूसिव' स्विमिंग पूल पर हो चुकी है।

हुसेन कहते हैं कि यह भारतीयता का अपमान है। मगर भारतीय तो उस क्लब के सदस्य भी हैं और डिनर के वक्त वहाँ होंगे भी। हुसेन को बाहर जाने के लिए कहनेवाले भी भारतीय हैं। क्लब के भारतीय सूट या बंद गले का कोट पहने होंगे और पाँवों में जूते पहने होंगे। तो हुसेन की वह कौन-सी भारतीयता है जिसका अपमान दूसरे भारतीयों ने कर दिया? क्या नंगे पाँव रहना भारतीयता है? क्या उघाड़े रहना भारतीयता है? क्या लँगोटी लगाना भारतीयता है ? क्या फर्श पर नाक छिनकना भारतीयता है? यानी क्या गरीबी और असभ्यता भारतीयता है? मुझे नहीं मालूम—क्या हुसेन ने नंगे पाँव रहने का व्रत लिया है और क्यों लिया है? या कलाकार की बदहवासी के कारण या बदहवासी दिखाने के लिए वे नंगे पाँव चले गए। बदहवासी के भी दाम मिलते हैं—प्रचार और पैसे में।

उत्तरीय, अधोवस्त्र और खड़ाऊँ को जो भारतीयता मानते हैं, उनसे कुछ भी कहना बेकार है। हमारे देश में विकृत आधुनिकता अंगरेजियत की तरफ ले जाती है और अति-राष्ट्रीयता फासिस्टवाद की तरफ। नकल की जाती है भारत पर शासन करने आए उच्च पदस्थ अंगरेजों की। इंग्लैंड में इनकी हैसियत एक नौकर रखने की नहीं होती थी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मगर भारत में वे दस नौकर रखते थे। 'छोटा हाजरी' (नाश्ता) का नौकर अलग और 'बड़ा हाज़री' का (दोपहर का भोजन) अलग। बावर्ची, साईस, मेमसाहब को नहलानेवालियाँ, बाबा लोगों को खिलानेवालियाँ। इंग्लैंड लौटने पर ये साहब खुद फर्श की सफाई करते थे। इनकी नकल करनेवालों को यह नहीं मालूम कि गरीब अंगरेज भी होते हैं। झोंपड़पट्टी और झुग्गी-झोंपड़ी में रहने वाले अंगरेज भी हैं, जिनके रहन-सहन का ढंग गरीब या निम्न मध्यमवर्गीय भारतीयों-जैसा ही है। साधारण अंगरेज जब नौकर होकर भारत आता था, तो वह आभिजात्य का ढोंग करता था। इस ढोंगी अंगरेज की नकल हमारे यहाँ के आभिजात्यों और संपन्नों ने भोंड़े ढंग से की। ये लोग अपनी संस्कृति से उखड़े हुए लोग थे (और अब ज्यादा हैं), जिन्होंने उच्चता, आधुनिकता और विशिष्टता के मोह में अंगरेजों की नकल की। शासक जाति अपने को जन-सामान्य से अलग रखती है, विशिष्टता बनाए रखती है और 'एक्सक्यूसिव' होती है। क्लब अलग, स्विमिंग पूल अलग, होटल अलग। उच्चवर्गीय कुछ भारतीयों को भी वे अपने में मिला लेते—बड़े व्यापारी, बड़े वकील, बड़े डॉक्टर। ये क्लब इन भारतीयों को साम्राज्यवादी अंगरेजों से विरासत में मिले हैं और ये भारतीय अंगरेजों की नकल करके सभ्य नहीं हुए, फूहड़ हो गए। इनका रहन-सहन फूहड़ नकल, बातचीत फूहड़, हँसी-मजांक फूहड़। लेकिन ये बेवकूफों के संसर्ग में रहते हैं। अगर आयकर विभाग का बाबू भी इनसे कहे कि मेरे पास लँगोटी लगाकर नंगे पाँव आओ, तो ये ऐसे ही चले जाएँगे। मगर अपने क्लब में किसी को भारतीय पोशाक में नहीं आने देंगे। ये एक हफ्ते पहले का 'लंदन टाइम्स' पढ़ते हैं।

अंगरेज सत्ताधारी गए तो भारतीय सत्ताधारी आए। काले साहब नहीं, 'ब्राउन साहब' (ताँबे के रंग के साहब)। 1947 से भारतीय सत्ताधारी ताँबिया साहबों की भी पोशाक बनी—कुरता, धोती, गाँधी टोपी। पंडित नेहरू की नकल पर शेरवानी और चूड़ीदार पाजामा भी सत्ता की पोशाक हुआ। अब बंद गले का जोधपुरी कोट और पेंट भी सत्ता की पोशाक हुआ। गाँधी टोपियाँ और धोतियाँ दो अक्तूबर को राजघाट पर गाँधीजी की समाधि पर भी होती हैं। सत्ता की इस पोशाकवाला आदमी कहीं भी जा सकता है—इन क्लबों में भी, अगर मालूम हो जाए कि वह वास्तव में सत्ता में है। अगर क्लब के सदस्यों को झूठ ही यह बता दिया जाता कि इनकी बात अर्थ मंत्री मानता है तो हुसेन नंगे शरीर भी स्वागत पाते। जोधपुरी कोट और पेंट अब बहुत लोग पहनने लगे हैं।

पोशाक, आबोहवा, परंपरा, उपलब्धता, काम की प्रकृति से बनती है। जब सिलाई की कला नहीं थी, सिलाई की मशीनें नहीं थीं, तब भारतीय ऋषि भी एक कपड़ा लपेटते थे और ग्रीक ऋषि भी। ठंडे देशों में टाई ठीक रहती है। गर्म आबोहवा में नहीं। गरमी में लुंगी अच्छी होती है। जाँघों तक हवा जाती है। अरब देशों में गरमी और मरुस्थली तूफान से बचाव के लिए सफेद ढीली-ढाली पोशाक और सिर ढाँकता कपड़ा। मशीन पर काम करनेवाला अगर धोती पहने है तो डर है वह मशीन में फँस जाएगी। इसलिए कारखाने में पेंट पहनना भारतीयता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मानना चाहिए कि बहुत चीजें अब अंतर्राष्ट्रीय हो गई हैं। रहन-सहन का ढंग अंतर्राष्ट्रीय हो गया है। पोशाक अंतर्राष्ट्रीय हो गई है। सूट और टाई पश्चिमी यूरोप के पूँजीवादी देशों में भी पहनी जाती है और पूर्वी यूरोप के समाजवादी देशों में भी। पूर्व में भारत, पाकिस्तान, ईरान, वर्मा सबमें सूट-टाई पहने जाते हैं। मध्यम और संपन्न वर्ग के लोग इन्हें पहनते हैं। चीनी सूट-टाई नहीं पहनते। बुश्शर्ट और पैंट भी अंतर्राष्ट्रीय हो गए हैं। इन पोशाकों को पहनने से देशीपन, राष्ट्रीयता मारी नहीं जाती। भारत में भी धोती गाँवों की पुरानी पीढ़ी ही पहनती है। जवान किसान पैंट पहनता है। भाषा का मामला यह है कि उत्तर भारत में यह भाषा बोली जाती है—मेरी वाइफ को बुखार आ गया। 'मेरी' हिंदी, 'वाइफ' अंगरेजी, 'बुखार' फारसी से आया हुआ, 'आ गया' हिंदी-उर्दू का क्रियांत! यह भाषा लोगों की जबान पर आ गई है। जो लोग बोलेंगे, वही भाषा होगी, जैसे जहाँ से लोग चलेंगे वही रास्ता होगा। सीमेंट की सड़क बनाने से क्या होता है।

भारतीयता की भी विजय हो रही है। रविशंकर, अली अकबर खाँ दुनिया-भर में सितार और सरोद बजाते हैं। लता मंगेशकर और आशा भोंसले पश्चिम में गाती हैं। छत्तीसगढ़ की तीजनबाई यूरोप में 'पंडवानी' (महाभारत) गा आई हैं। भारत महोत्सव विदेशों में हो रहे हैं। राजस्थान की लाख की बाँगड़ी (चूड़ियाँ) विदेशी महिलाएँ भारत से खरीदकर ले जाती हैं। मैक्समुलर ने वैदिक साहित्य की सराहना की ही थी। इवर्सन पर गीता का असर था। टी. एस. इलियट पर उपनिषदों का प्रभाव था। रोम्या रोलाँ ने गाँधीजी और विवेकानंद की जीवनी लिखी है। कार्ल मार्क्स अंतिम दिनों में संस्कृत पढ़ रहे थे। रवींद्रनाथ ठाकुर दुनिया-भर में हैं। ताजमहल दुनिया-भर के लोग देखते हैं। इतने से फूल उठना काफी है। और क्या है भारतीयता? सती-प्रथा, अछूत-प्रथा? चाहो तो इन्हें दुनिया को सिखा दो।

सवाल है कि वह जीवन-मूल्य-पद्धति कहाँ है जो वास्तविक भारतीयता है। वह विश्वबंधुत्व, वह दया, करुणा, त्याग कहाँ है? सहनशीलता और दूसरे मतों का आदर कहाँ है? सामाजिक न्याय कहाँ है? दृष्टि की विराटता कहाँ है?

वे आदर्श, वे मूल्य, वह दर्शन, वह संस्कृति ग्रंथों में है, भाषणों में है, उपदेशों में है, प्रदर्शनियों में है। आचरण में वही है। वह मूल्य-पद्धति जो सदियों में विकसित हुई थी, आजादी के चालीस वर्षों में तहस-नहस हो गई । तो क्या स्वाधीनता मूल्य-पद्धति के खिलाफ होती है? नहीं। बात यह है कि जब राष्ट्रीय स्वाधीनता के महान् संघर्ष में लगे थे, तब वे मूल्य हमारे जीवन में थे। स्वाधीनता के बाद वे नष्ट होते गए। अब हम दुनिया में किसी से कम क्रूर, बेईमान, नीच और पाखंडी नहीं हैं। इस वक्त भारतीयता का मतलब पुनरुत्थानवाद हो गया है और धर्म तथा संस्कृति के नाम पर पुनरुत्थान हो रहा है, जो रास्ता जातिगत, नस्लगत, रक्तगत फासिस्टवाद की तरफ ले जाता है। दुनिया को भारतीयता के नाम पर हम क्या दिखाएँ। वधू-दहन अनुष्ठान, कन्या-वध यज्ञ और शूद्र-हत्या महोत्सव?

राष्ट्रीयता के साथ अंतर्राष्ट्रीयता निभाई जा सकती है। सर्वदेशिता के साथ देशीपन मजे में रह सकता है। हमारे देश में—बल्कि तीसरी दुनिया के तमाम यूरोप की पराधीनता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
में रहे देशों में—एक दूसरी प्रक्रिया हुई। हमारे देश को लें। हम अंगरेजों की हुकूमत में रहे। मगर भारतीयों के बड़े हिस्से ने उन्हें उच्च मान लिया और उनकी नकल करने लगे। एक तो यह हीनता-भावना और इसी के साथ महान् जाति होने और उसके प्राचीन इतिहास तथा उज्ज्वल संस्कृति का गर्व! हीनता और उच्चता एक साथ रही। बल्कि हीनता में से ही उच्चता का गर्व पैदा हुआ। 1947 के बाद उच्चता धीरे-धीरे खत्म होती गई, हम हीनता से दबते गए। साम्राज्यवादी, जिनसे हम लड़े, वही हमारे आदर्श होते गए।

1947 में अंगरेज चले गए मगर हमारी अंगरेजियत बढ़ती गई। हमारा रहन-सहन, व्यवहार का ढंग, जीवन-दृष्टि, जीवन-मूल्य—सब अंगरेज जाति के होते गए। हमारे यहाँ का एक वर्ग अपने ही देश में साम्राज्यवादी होता चला गया। भारतीयता का नारा और गैर-भारतीय होने की कोशिश। हम अपनी जड़ों से अब तक उखड़ चुके हैं। हमारे रंगीन पत्र-पत्रिकाओं के रंगीन विज्ञापन देखिए। मैं यह नहीं कहता कि हल्दी, अक्षत, कुश और आरती के विज्ञापन होने चाहिए। मेरा कहना है, गौर से देखिए ये विज्ञापन, कैसी रुचि और अरुचि पैदा करते हैं।

अंगरेजी भाषा अच्छी है। अंगरेजी नहीं छोड़ना चाहिए। शेक्सपीयर अंगरेज जाति की दौलत नहीं है, वह हमारा भी है। मगर विरोधाभास देखिए—हिंदी को गाय की तरह माँ माननेवाले, 'हाय हिंदी' का विलाप करनेवाले, हिंदी अभिमान को साम्राज्यवादी अभिमान बनानेवाले तमाम फटे-कंठ हिंदी नेताओं के बच्चे अंगरेजी की नर्सरी से शुरू करके अंगरेजी कान्वेंट या पब्लिक स्कूल में पढ़ते हैं। गरीबो, तुच्छो, गँवारो, हिंदी तुम्हारे लिए—अंगरेजी हमारे लिए! घोर पाखंड है यह। उच्च वर्ग की नकल मध्यम वर्ग ने की। उच्च वर्ग के बच्चे कारों में स्कूल जाते हैं। मध्यम वर्ग के बच्चे रिक्शों में। टाई बाँधे, नाक पोंछते, इन मध्यमवर्गीय बच्चों को मैं रोज सुबह रिक्शों में भरे देखता हूँ। जो 'क्लास फोर' के कर्मचारी कहलाते हैं, वे भी नकल कर रहे हैं। औद्योगिक मजदूर, बैंक और बीमा के चपरासी आदि को बहुत अच्छा वेतन मिलता है। ये भी अपने बच्चे अंगरेजी की नर्सरी में भेजना पसंद करते हैं। मेरे इस मध्यम श्रेणी के शहर में एक बच्चे के सौ से डेढ़ सौ रुपए प्रतिमाह लगते हैं। भारतीयता आपको सरकारी प्रायमरी स्कूलों में मिलेगी, जहाँ न पढ़ानेवाले पढ़ाते हैं, न पढ़नेवाले पढ़ते हैं। दोनों 'हीनता' की भावना के कारण निष्कर्म हो गए हैं।

हुसेन को और उन्हीं की तरफ से भारतीयता का हल्ला करनेवालों को जानना चाहिए कि हमारा वर्ग समाज है। इसमें विलिंगडन क्लब भी होंगे, रिपन क्लब भी, जिमखाना क्लब भी। वर्ग-हीन समाज की स्थापना के बिना ये फूहड़ संपन्नता के द्वीप नहीं मिटेंगे। विद्यार्थी परिषद् जो विलिंगडन क्लब जूतों की भाषा लेकर पहुँची थी, उसकी सारी लड़ाई तो वर्ग-हीन समाज की स्थापना रोकने की है। यानी इस उच्च वर्ग की और उसके हितों की रक्षा करने की लड़ाई, जिसने हुसेन का अपमान किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दहेज और विवाह-पूर्व आत्महत्या

इस देश के लोग दहेज के कारण बहू की हत्या या आत्महत्या की घटनाओं के अभ्यस्त हो चले हैं। अखबारों में रोज ही ऐसी घटनाओं के समाचार छपते हैं। रोज-रोज इन समाचारों के पढ़ने से जन-संवेदना भोथरी हो जाती है। पिछले सालों में पुलिस में रिपोर्ट होने लगी है, अखबारों में रिपोर्ट भेजी जाने लगी है, लड़की के माता-पिता कानूनी कार्यवाही करने लगे हैं। महिला-थाने भी खुलते जा रहे हैं। पहले ऐसी घटना को बरदाश्त कर लिया जाता था। अब बरदाश्त नहीं किया जाता। दूसरे कारणों से भी स्त्रियाँ आत्महत्या करती हैं—सास-जिठानी के तंग करने के कारण, गृह-कलह के कारण, पति की नशे की आदत के कारण। ये घटनाएँ भी दहेज के खाते में जाने लगी हैं। जैसे पंजाब के बारे में खबरें पढ़ने के लोग अभ्यस्त हो गए हैं। अखबार में खबर पढ़ते हैं और कहते हैं—अच्छा आज सात मारे गए। और आगे की खबर पर फिसल जाते हैं। ज्यादा चौंकते हैं बड़े आदमी की या बड़े आतंकवादी की हत्या पर। मेजर जनरल कुमार की हत्या की खबर पढ़कर मेरे पास बैठे दो मित्र बड़ी देर चिंता से बात करते रहे। एक ने कहा—पंजाब में इस समस्या का हल आखिर कब होगा और कैसे होगा? दूसरे ने कहा—पंजाब के राज्यपाल के सलाहकार रिबेरो ने कहा है कि यह लंबे समय तक चलेगा। आतंकवादी हत्याएँ करते जाएँगे और पुलिस उन्हें मारती और पकड़ती जाएगी। आतंकवादी हिंसा तब बंद करेंगे जब उन्हें यह समझ में आ जाएगा कि खालिस्तान नहीं मिलेगा। यह अलगाववाद की हिंसा है, विचारधारा से प्रेरित नहीं। यह आयरिश रिपब्लिकन आर्मी की हिंसा सरीखी है। आयरिश आतंकवादी अल्सटर क्षेत्र को भी आयरलैंड में मिलाना चाहते हैं। इन्होंने भारत के आखिरी वायसराय लॉर्ड माउंटबेटन की हत्या की थी। पंजाब में सामान्य अपराध भी आतंकवादियों के खाते में डाल दिए जाते हैं।

वधू-हत्या या आत्महत्या तथा आतंकवादियों द्वारा हत्या के समाचार पढ़ने के अभ्यस्त लोग हो जरूर गए हैं, पर संवेदनहीन नहीं हुए। एक खरोंच पड़ ही जाती है।

पिछले तीन-चार महीनों में हुई दो घटनाओं ने मेरी संवेदना को बहुत आंदोलित किया। पहली घटना कानपुर की है। वहाँ एक साहू परिवार की दो विवाह-योग्य लड़कियों ने इसलिए आत्महत्या कर ली कि उनके विवाह के लिए दहेज जुटाने की चिंता में अपने माता-पिता की दयनीय हालत उनसे देखी नहीं जाती थी। वे संभवतः अपने को परिवार का संकट मानने लगी थीं। वे अपराध-बोध से बहुत पीड़ित हो गई होंगी। इस पीड़ा से अपने कों और दहेज की चिंता से माता-पिता को मुक्त करने के लिए उन्होंने सलाह करके आत्महत्या कर ली। दूसरी घटना दक्षिण भारत की है। दहेज देश-व्यापी है—उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम। पालघाट के एक कांस्टेबल की चार लड़कियों ने एक साथ आत्महत्या कर ली। ये अपनी सबसे बड़ी बहन की शादी के समय माता-पिता की विपत्ति देख चुकी थीं। वे जानती थीं कि हममें से हरएक की शादी एक विपदा होगी। कांस्टेबल पिता चार लड़कियों के लिए पति खरीदने के लिए पैसा कहाँ से लाएगा। हमारी शादी भी शायद नहीं हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कांस्टेबल उन चारों को इतनी शिक्षा भी नहीं दिला पाया होगा कि वे नौकरी करके जीवन काट लें। इस भविष्य की भयावहता से आतंकित होकर चरम निराशा की मनःस्थिति में चारों ने आत्महत्या कर ली।

ये दो घटनाएँ ऐसी भयावह और इतनी क्रूर सांकेतिक हैं कि हर विचारवान और संवेदनशील व्यक्ति को झटका लगेगा और वह सोचने के लिए बाध्य होगा। ये घटनाएँ नए प्रकार की हैं। लड़कियों को उनके विवाह को लेकर माता-पिता की परेशानी बरदाश्त नहीं होती। ये पूरे देश में दो ही घटनाएँ हैं। मगर यह मानसिकता लड़कियों की बनती गई कि वे आत्महत्या को समस्या का हल मानने लगीं, तो क्या होगा? घर-घर में विवाह-योग्य लड़कियाँ हैं और उनके माता-पिता परेशान हैं। ऐसी घटनाओं की जानकारी से माता-पिता को भी डर लगा रहेगा कि कहीं लड़की कुछ कर न बैठे।

इस देश की हालत अब यह हो गई है कि घर में लड़की का जन्म एक अपराध, एक पाप हो गया है। एक आदमी मुझे बता रहा था—मेरी शादी को बारह साल हो गए। पिछले हफ्ते मेरी पत्नी ने लड़की को जन्म दिया। हम दोनों खुश थे कि संतान हुई। पर अमुक सज्जन घर आए तो इस तरह जैसे मातमपुर्सी करने आए हों। उदास होकर बोले—भैया, भाग्य में जो होता है, वही होता है। उन्होंने मुझे बताया कि मैं अपने एक मित्र के घर पर बैठा था। पति-पत्नी दोनों शिक्षित हैं। लड़की ने आकर पिता से शिकायत की—बाबूजी, भैया हमें मारता है। मेरे शिक्षित मित्र ने लड़की से कहा—तुम लड़की हो और भैया लड़का है। भैया तो तुम्हें मारेगा ही।

आत्महत्या की दोनों घटनाएँ अंधे की भी आँखें खोल देंगी। यह समस्या कोई नई नहीं है, न मैं पहली बार इसे उठा रहा हूँ। पर अभी तक हम विवाह के बाद कम-दहेज या लगातार माँग के कारण होनेवाली दुर्घटनाएँ जानते थे। यह नई बात है कि लड़कियाँ विवाह के पहले ही आत्महत्या करने लगीं।

समाज में नारी की स्थिति के बारे में समाज के नेता, समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री सोचते हैं। कुछ का कहना है कि स्त्री को आर्थिक रूप से आत्म-निर्भर हो जाना चाहिए। मगर परिवारों में कम और ज्यादा अर्थ से ही संबंध बनते हैं। दो बहुएँ नौकरी करके कमाती हैं। जो बहू कम कमाती है, उसकी बेइज्जती होती है। उसे ताने सुनने पड़ते हैं—इतना-सा पैसा देती है। इसमें तेरा पेट भी तो नहीं भर सकता।

कुछ विचारकों का मत है कि लड़की पढ़-लिखकर नौकरी करे। बिना दहेज शादी होती हो तो कर ले। वरना अविवाहित और स्वतंत्र रहे। ऊपर से यह स्थिति लुभावनी लगती है। मगर दूसरी समस्याएँ हैं। मानसिक और दैहिक जरूरतें होती हैं। सबसे बड़ी यातना अकेलेपन की होती है। दूसरे, दैहिक भावात्मक आवश्यकताएँ होती हैं। इनकी पूर्ति कैसे होगी? या तो समाज स्वतंत्र यौन-संबंध की इजाजत दे या स्त्री केवल भावात्मक संबंधों से संतुष्ट रहे। यदि ऐसी लड़की परिवार में रहती है तो भाई-भाइयों को संतुष्ट करके रहे। यदि अकेली रहती है, तो असुरक्षित रहती है। 'वर्किंग वीमेंस होस्टल' हैं पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनमें भी मामले बहुत गड़बड़ होते हैं। अविवाहित स्त्री कितनी भी पवित्र रहे, वह लांछित होती ही है। लांछनों की पीड़ा विकट होती है। उसे घटिया किस्म की स्त्री माना जाता है। फिर बीमारी और बुढ़ापे में कौन सहारा होगा। इस तरह का स्वतंत्र जीवन आखिर किस वर्ग की स्त्रियाँ निभा सकती हैं। उच्च वर्ग संपन्न होता है। वहाँ न विवाह समस्या है न अविवाहित रहना। वह मध्यम वर्ग की स्त्री है, जिससे यह उम्मीद की जाती है। मगर मध्यम वर्ग सबसे ज्यादा असुरक्षित है और दकियानूसी परंपराओं से जकड़ा है। बर्नार्ड शॉ जैसे अतिवादी चिंतक समस्या का हल यह देते हैं—जब तक नारी अपने नारीत्व को नहीं त्यागती, जब तक वह अपने पति, बच्चों और समाज के प्रति कर्त्तव्यों को तिलांजलि नहीं देती, कानून की भी अवहेलना नहीं करती, किसी के प्रति नहीं केवल अपने प्रति कर्त्तव्य का बोध नहीं करती—वह मुक्त नहीं हो सकती। यह कैसी मुक्ति है! यह तो नारीत्व से ही नहीं, मनुष्यता से भी मुक्ति है। बर्नार्ड शॉ बौद्धिक पर कम संवेदना के आदमी थे। वे नारी-मुक्ति का नितांत संवेदनहीन, अमानवीय और परम स्वार्थी सूत्र देते हैं। पर खुद उनका क्या हाल था। एनीबेसेंट अपने पति को तलाक देकर बर्नार्ड शॉ से विवाह करने को तैयार थीं। पर बर्नार्ड शॉ ने जो शर्तें रखीं, दकियानूस भारतीय परिवार की कुल-वधू उनसे अधिक बंधन-मुक्त थी। इसके पहले की घटना। मजदूर हड़ताल थी। बर्नार्ड शॉ ने बहुत गरम भाषण केबियन सोसाइटी में दिया और तय हुआ कि केबियन समाजवादी मजदूरों के जुलूस में जाएँगे। शॉ और एनीबेसेंट साथ-साथ थे। पुलिस ने डंडा चलाया। एनीबेसेंट को डंडा लगा। बगल में देखा—बर्नार्ड शॉ गायब थे। शाम को उसने बर्नार्ड शॉ से कहा, तुम भाग आए। तुम कायर हो। बर्नार्ड शॉ का जवाब चकित कर देनेवाला है—बेवकूफ होने से कायर होना अच्छा है। एनीबेसेंट भारत आ गई थीं।

दहेज के बिना प्रेम विवाह होते हैं। साथ पढ़नेवाले कुछ लड़के-लड़की विवाह भी कर लेते हैं। इनमें माँ-बाप का दिल टूटता है क्योंकि दहेज की रकम जाती है। पर नया बनाने के लिए पुराने को तोड़ना होगा और इस टूटन से एक पीढ़ी को दर्द होगा। इन प्रेम विवाहों में कुछ असफल भी होते हैं। पर परंपरागत विवाहों में ज्यादा प्रतिशत असफल होते हैं मगर घुटते हुए निभाए जाते हैं। उम्मीद थी कि नई पीढ़ी दहेज दानव से मुक्ति दिलाएगी। पर इस पीढ़ी ने निराश किया। इस पीढ़ी के युवक अपने पिता से अधिक लोभी और संवेदनहीन हो गए हैं। कारण है, समाज में चौतरफा व्याप्त पतनशीलता। इसी से युवक सीखते हैं।

कोई सीधा हल नहीं है। समस्या जटिल है और व्यापक सामाजिक मूल्यों से जुड़ी है। अलग से अस्पताल, शिक्षा संस्था को सुधारा नहीं जा सकता। दहेज की समस्या भी अलग से पूरी तरह हल नहीं की जा सकती। समाज की संपूर्ण मूल्य-पद्धति होती है, खंड-खंड नहीं। हमारी जीवन-मूल्य-पद्धति के केंद्र में मनुष्यता की जगह पैसा बैठ गया है। यह सब क्षेत्रों में, सब संबंधों में है। पूरे समाज की पतनशील विकृत मूल्य-पद्धति की जगह स्वस्थ मानवीय मूल्य-पद्धति आए, तभी यह समस्या हल होगी। अभी तो मरुस्थल में जो कहीं-कहीं हरित भूमि दिख जाती है, उसी की जय बोलना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम इक उम्र से वाकिफ़ हैं

संस्मरण लिखने का प्रस्ताव आया, तो अचानक फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ का यह शैर याद आ गया :

हम इक उम्र से वाकिफ़ हैं अब न समझाओ,
के लुत्फ़ क्या है मेरे मेहरबाँ सितम क्या है।

मैंने शैर का आरंभ का हिस्सा शीर्षक बना दिया : हम इक उम्र से वाकिफ़ हैं।

न जाने क्यों उपचेतन से अचानक बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की ये पंक्तियाँ भी कौंध उठीं :

हम विषपायी जनम के, सहें अबोल कुबोल। नेक न मानत अनख हम, जानत अपनो मोल।।

कहीं उपचेतन में जीवन-संघर्ष के अनुभव, कडुवाहट, अपमान और उत्पीड़न, अन्याय, यातना की स्मृतियाँ होंगी। साथ ही विष को पचाकर जीने और लड़ने की स्मृति। और इसके साथ ही आत्मगौरव कि हमने टुच्ची बातों का बुरा नहीं माना। हम अपनी कीमत जानते हैं। वह कीमत हम वसूलते हैं और तुम, कभी हँसने और तकलीफ देनेवाले, अब अपने निर्लज्ज व्यक्तित्व के साथ वह कीमत देते हो, क्योंकि वह कीमत देकर अब तुम छोटे से थोड़ा बड़े होते हो। ये अनुभव मुझे बहुत हुए हैं कि जो कभी मेरी निंदा और उपहास करके बड़े बनते थे, वही अब यह कहकर बड़े बनते हैं कि दर्शन करके आ रहे हैं। मुझे इनकी दरिद्रता पर दया आती है और अटपटेपन पर हँसी। गुस्सा नहीं आता। पवित्र गुस्सा अत्यंत मूल्यवान और कारगर अस्त्र है। इसे मक्खियों पर बरबाद नहीं करना चाहिए।

सचेत आदमी सीखना मरते दम तक नहीं छोड़ता। जो सीखने की उम्र में ही सीखना छोड़ देते हैं, वे मूर्खता व अहंकार के दयनीय जानवर हो जाते हैं। मैंने कहीं लिखा है कि आत्मविश्वास कई तरह का होता है। धन का, बल का, ज्ञान का। पर सबसे विकट आत्मविश्वास मूर्खता का होता है। देखिए, अपने आपको उद्धृत सिर्फ प्रभाकर माचवे नहीं करते, मैं भी करता हूँ।

तो सीखना तो अंतिम क्षण तक खत्म नहीं होता। मगर एक स्टेज आती है जब सिखानेवालों से चिढ़ आती है। यह सीख खोखली होती है। औपचारिक होती है। आत्महीन होती है। उच्चतर समझ का घमंड होती है। तब यह कि : *हम इक उम्र से वाकिफ़ हैं अब न समझाओ, के लुत्फ़ क्या है मेरे मेहरबाँ सितम क्या है।* और *ये कहाँ की दोस्ती है के बने हैं दोस्त नासेह कोई चारासाज होता कोई गम गुसार होता। (ग़ालिब)*

भाई मियाँ, हम समझे हुए हैं। हमने दुनिया देखी और समझी है। तुम पहली कक्षा की बातें एम. ए. के छात्र को क्यों समझा रहे हो। लुत्फ क्या है मेहरबाँ और सितम क्या है, यह हम जानते हैं। दोनों भोगे हुए हैं। आप समझाने की तकलीफ गवारा क्यों करते हैं।

'नवीन' कहते हैं—हम विषपायी जनम के! यह माना कि जन्म से विषपायी रहे। मगर ख्वाहमख्वाह उद्देश्यरहित विष पीना भी बेवकूफी है। पीना ही पड़े तो पचा जाना और मोर्चे पर डटे रहना बहादुरी है। पर दो मानसिक बीमारियाँ होती हैं। एक है 'सेडिज्म'—इसमें दूसरों को दुख देकर आदमी सुख का अनुभव करता है। दूसरी बीमारी है—'मेसाफिज्म'। इसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुद को दुख देकर, उसका ढिंढोरा पीटकर सुख का अनुभव किया जाता है। समाजशास्त्री बताते हैं कि भारत में काफी साँसें इन दोनों रोगों से पीड़ित होती हैं।

यह जो लेखकों, कलाकारों का 'विषपान' वाला ढिंढोरा है, इसमें 'मेसाफिज्म' (स्वपीड़न प्रमोद) भी होता है। यह सही है कि सृजन की आंतरिक पीड़ा विकट होती है। इसे सर्जक के सिवा कोई नहीं समझ सकता। इतने साल मुझे लिखते हो गए, पर आज भी काग़ज़ पर कलम चलाना शुरू करता हूँ तो घबड़ाता हूँ लगता है पहली बार लिख रहा हूँ। बहुत पहले 'पेरिस रिव्यू' में सौ प्रसिद्ध लेखकों का साक्षात्कार छपा था। लगभग सभी लेखकों ने कहा था : Writing is torture. I hate it. तो यह विषपान तो जरूरी है। मगर रूमानी विषपान? यह दर्दनाक मगर हास्यास्पद होता है। किसने कहा था कि आप विकल जी या आकुल जी या बलिपंथी जी हो जाइए। किसने कहा था आपसे कि बाल बढ़ाइए, दाढ़ी मत बनाइए, स्वास्थ्य कोशिश करके बिगाड़िए, बौखलाए रहिए। किसके लिए? किसके सिर पर अहसान लाद रहे हैं? और आप सृजन क्या कर रहे हैं? कलावती औरत चीख इतना रही है, जैसे भीमसेन पैदा कर रही हो, मगर निकाल रही है चुहिया।

बड़े लेखकों में भी यह रूमानी आत्मघाती प्रवृत्ति पाई जाती है। विशेषकर उर्दू शायर बरबादी से अपने को महिमामंडित करते हैं। फ़न के लिए कुरबान हो रहे हैं साहब! मुरीद ऐसा वातावरण बनाते हैं कि बेचारा न मरता हो तो शराब पी-पीकर मर जाए। मेरा अनुभव है कि हस्बे-मामूल (नार्मल) रहकर भी सृजन किया जा सकता है। मैं छोटा लेखक हूँ मगर मैंने अपने को त्याग और बलिदान की महिमा से मंडित नहीं किया। कुछ साल शराब ज़रूर पी। पर बाकी जिंदगी बिलकुल सामान्य रहा। बड़े-बड़े पारिवारिक दायित्व निबाहे। कई समाजसेवी संस्थाओं में जिम्मेदारी के पदों पर रहा—अभी भी हूँ। मैंने कोई त्याग, कोई बलिदान नहीं किया। मैं नकली कफ़न नहीं लपेटता। नौकरी की तो वेतन लिया। सिर्फ लिखने का काम किया तो दाम लिए। मैंने लिखकर किसी पर कोई अहसान नहीं किया। समाज पर मेरा कोई कर्ज़ नहीं है। लिखना मेरा अपना फैसला था। दुख भी भोगे तो वे अपने ही फैसले के नतीजे हैं। कमजोर पड़ा तो सताया भी गया। ताकतवर हो गया तो उन्हीं से चरणों पर माथा रखवाया। विषपान के बारे में इतना बहुत है।

मैं न सेडिस्ट, न मेसाफिस्ट, न तपस्वी, न एबनार्मल, न कलंकभूषण, न अटपटा, न सनकी, न उचक्का—तो मेरी आत्मकथा या संस्मरण में धरा क्या है? खाक! उबाऊ चीज़ ही होगी—सो पाठक भोगें।

अब—जानत अपनो मोल ! ये आत्मविश्वास के बोल हैं। पर मोल के भी अलग-अलग संदर्भ होते हैं। 'नवीन' कहना यह चाहते हैं कि मैं अपनी अहमियत जानता हूँ। जो काम मैं कर रहा हूँ वह कितना महत्त्वपूर्ण है यह जानता हूँ। मैं अपना और अपने काम का मूल्य जानता हूँ। न जाननेवालों की मुझे परवाह नहीं।

मगर यही न जाननेवाले बाजार भाव बनाते हैं। यही माल का विज्ञापन करते हैं और उसे खपाते हैं। बाजार भाव बदलते रहते हैं। साहित्य के मूल्य बदलते रहते हैं। हम जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखते हैं, उसका मूल्य हम जानते हैं। पर हम साहित्य में भी उसका मूल्य चाहते हैं और बाजार में भी। यह चाहना जायज है। वैसे कीमत घटती-बढ़ती है, इसके मुझे अनुभव बहुत हैं। मैंने शुरू से ही साहित्यशास्त्र के कोई बंधन नहीं माने। आचार्यों के चौखटे तोड़ डाले। मेरी लिखी हुई यह अगर कहानी नहीं मानते, तो परिभाषा बदल दो। यही नहीं, मुझे काफी जड़, दकियानूस, कट्टर, अविवेकी शास्त्रियों से भी लड़ाई लड़नी पड़ी। न ये नई वास्तविकता को ग्रहण कर सकते हैं, न नया सोच सकते हैं। दर्शन के फाटक पर चौकीदार बने बैठे हैं और दिनभर मक्खी उड़ाने की रोटी खाते हैं।

मैं भारतीय क्लासिकों का शुरू से अध्येता रहा हूँ और इनका खुलकर उपयोग करता हूँ। मध्य युग के तुलसीदास, सूरदास, कबीरदास, कुंभनदास, रहीम आदि के संदर्भ और उद्धरण खूब देता हूँ। पर इन शास्त्रियों के पास जो सूचियाँ रखी हैं उनमें ये पतनशील, सामंती और जातिवादी हैं। सूरदास, पतनशील रूमानी थे। तुलसीदास घृणित जातिवादी और सामंती। और मैं—पुरातनवादी! बहुत लड़ाइयाँ लड़ीं मैंने इन कवियों के लिए। तुलसीदास ने खुद जितनी लड़ाई लड़ी होगी उससे अधिक मैंने उनके लिए लड़ी। फिर मैं 'प्रथम पुरुष एक वचन' का प्रयोग करता हूँ। कुछ व्याकरणाचार्य प्रथम पुरुष को 'उत्तम पुरुष' कहते हैं। वे होंगे। मैं नहीं। मेरे लेखन में यह 'मैं' हरिशंकर परसाई नहीं है। पर तब और अब भी बहुत लोग मानते हैं कि यह 'मैं' खुद परसाई है, व्यक्तिनिष्ठ है, आत्म-मोहित है, व्यक्तिगत प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करता है। अब जरूर पिछले कुछ सालों से प्रबुद्ध समीक्षक यह समझने-समझाने में लगे हैं कि 'मैं' परसाई नहीं है। यह एक प्रतिनिधि व्यक्ति है।

बहरहाल मुझे 5-6 साल लिखते हुए हो गए, तो मैंने एक समझदार माने जानेवाले प्रकाशक को पुस्तक की पांडुलिपि प्रकाशन की विनती के साथ दी। कुछ दिनों बाद उन्होंने पांडुलिपि लौटाते हुए कहा—माफ कीजिए, इन रचनाओं में पुरातनवाद है और व्यक्तिगत प्रतिक्रियाएँ हैं। तब 5-6 साल मैंने जिसे 'बुर्जुआ प्रेस' कहा जाता है, उसमें लगातार वैसी ही रचनाएँ सैकड़ों छपवाईं। शायद बुर्जुआ प्रेस ने भी मुझे वही समझा जो प्रगतिशीलों ने। मेरी तीन पुस्तकें भी बड़े प्रकाशकों ने प्रकाशित कीं। वे खूब बिक रही थीं। तब उन्हीं प्रकाशक ने एक दिन मुझसे कहा—हमें भी अपनी पुस्तक छापने का अवसर दीजिए न ! मैंने तपाक से कहा—आपको पुस्तक देने से क्या फायदा। बिक्री आपकी बहुत कम है। मुझे क्या रायल्टी मिलेगी ? एक तरह से किताब कुएँ में डालना ही होगा। यह 'जानत अपनो मोल' का रहस्य है। आप मोल सिर्फ जानिए ही नहीं, उसे मनवाइए भी। वसूलिए भी।

संस्मरण लिखने की बात कुछ ऐसे ही उठी। आत्मकथा नहीं लिखूँगा। लोग यह मानते हैं कि आत्मकथा में सच छिपा लिया जाता है। जो व्यक्तित्व को महिमा दे, वही लिखा जाता है। मगर हर सच को लिखने की ज़रूरत भी क्या है? अपनी हर टुच्ची हरकत का बयान आखिर क्यों करूँ? उस टुच्ची हरकत का क्या महत्त्व है, पाठकों के लिए? कोई उसका सामाजिक मूल्य है क्या? नहीं है। तो फिर मैं सिर्फ यह अहंकार ही तो बताऊँगा कि मैं कितना महान् हूँ कि अपने टुच्चेपन को भी खोल देता हूँ। सार्थक सच हो तो लिखो। यही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आग्रह है 'सत्य' के बारे में। सत्य-सत्य-सत्य! आखिर सत्य है क्या? बहुत पढ़ा मैंने। सुकरात भी, उपनिषद भी, टाल्सटाय भी, गाँधी भी। सत्य का आग्रह सबका है पर किसी ने सत्य को परिभाषित नहीं किया। मैं नहीं जानता कि सत्य क्या है।

जे. कृष्णमूर्ति कहते हैं : सत्य तक पहुँचने का मार्ग कोई नहीं है। पर जो ऐसा अगम है, वह सत्य क्या है, यह कृष्णमूर्ति ने भी नहीं बताया। जिसे जानते ही नहीं उसके लिए मार्ग खोजना एक बेवकूफी है। और यह कहना कि उस तक पहुँचने का कोई मार्ग नहीं है, निरर्थक प्रलाप है। ये परा-चेतना की बातें हैं, जो शायद पुपुल जयकर समझती हों, जिनका कृष्णमूर्ति की संगति में उदात्तीकरण हो चुका होगा।

मुझे तो कृष्णमूर्ति के प्रसंग में यह याद आ गया कि वे एनीबेसेंट के दत्तक पुत्र थे। बर्नार्ड शॉ और एनीबेसेंट दोनों फेबियन सोसाइटी में थे और घनिष्ठ मित्र थे। यह मित्रता विवाह बननेवाली थी, पर कई कारणों से एनीबेसेंट शॉ से कट गई। मज़दूरों की हड़ताल के समर्थन में फेबियन सोसाइटी की बैठक में शॉ ने बहुत लड़ाकू भाषण दिया। तय हुआ कि कल मजदूरों के साथ फेबियन लोग भी जुलूस में होंगे। शॉ और एनीबेसेंट साथ थे। पुलिस ने 'बेटन' चलाए। एनीबेसेंट को सिर पर चोट लगी। उसने आसपास देखा तो शॉ गायब थे। शाम को वह शॉ के पास गई और कहा—"तुम भाग आए। यू आर ए कावर्ड!" शॉ ने कहा : "इट इज़ बेटर टु बी ए कावर्ड दैन ए फूल!" जब विश्वयात्रा के लिए बर्नार्ड शॉ निकले तो बंबई में तीन दिन रुके। एनीबेसेंट ने कृष्णमूर्ति से कहा कि तुम शॉ से मिलना। कृष्णमूर्ति मिले। परिचय दिया कि मैं एनीबेसेंट का दत्तक पुत्र हूँ। शॉ ने पूछा : "तुम्हारी माँ कैसी है?" कृष्णमूर्ति ने कहा : "वैसे तो ठीक है पर कभी-कभी मानसिक रूप से कुछ गड़बड़ हो जाती है।" शॉ ने कहा : "ओह, शी नेव्हर हैड ए माइंड!" बहुत क्रूर बात कही अहंकारी ने।

बहरहाल संस्मरण लिखूँगा। मैं इनमें कम होऊँगा, मेरे साथ बदलता ज़माना ज्यादा होगा। लोग आत्मकथा और संस्मरण से आशा करते हैं कि हम सीखेंगे और हमें सही रास्ता मिलेगा। अपने और दूसरे के अनुभव से आदमी ज़रूर सीखता है, पर रास्ते अलग-अलग होते हैं। वन मेंस फूड इज़ एनदर मेंस पायज़न। मुझ पर कभी बहुत जोर डाला गया कि अपनी ज़िंदगी का रास्ता दूसरों को बताऊँ। तब मैंने जो कहा था, वह तभी छप भी गया था। वह यह है : यों तो मेरी ज़िंदगी चमत्कारों से भरी है, मगर कुछ भी ऐसा नहीं हुआ जिससे मुझे प्रेरणा मिली हो या जिसके बयान से किसी को प्रेरणा मिले। साधारण आदमी के जीवन में आनेवाली स्थितियाँ ही मेरे जीवन में आईं, मगर मैंने साधारण आदमी से बदतर काम किया। जिन स्थितियों में आदमी व्यावहारिक विवेक से काम लेता है, मैंने अविवेक से काम लिया। दुनियादारी में विवेक का अर्थ है लाभ-हानि का हिसाब लगाकर अपनी सुरक्षा को निश्चित करनेवाला बोध। पर मैंने जहाँ बहादुरी दिखानी थी, वहाँ कायरता दिखाई। जहाँ कायरता फायदेमंद थी, वहाँ बहादुरी दिखा बैठा। जहाँ सधा हुआ आदमी खतरा नहीं उठाता, वहाँ मैं खतरा उठा बैठा। कुछ पिट-पिटाकर फिर आगे बढ़ गया। ऐसा मेरे पराक्रम से नहीं हुआ। लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बनने में भी कोई आकस्मिक घटना या प्रेरणा नहीं थी। ऐसा नहीं हुआ कि शैशव में माँ की गोद में टट्टी-पेशाब करके किलकारी मारी तो लोगों ने कहा : सुनो, बच्चा महाकाव्य बोल रहा है। ज़िंदगी भर, अब भी 35-40 साल कलम घिसते हो गए, पर जब लिखने बैठ जाता हूँ हाथ-पाँव ठंडे पड़ जाते हैं। जो लिखा, बाद में पढ़ा तो उससे और अपने से नफरत हुई। पछतावा हुआ लिखने का। मगर जब लेखक बन ही गया, तब उस काम को पूरी ईमानदारी के साथ किया।

दो बार नर्मदा नदी में डूबते-डूबते बचा। दो बार रेलगाड़ी से कटते-कटते रह गया। एक बार हत्या से बचा और पिटाई से ही छूट गया। पहली बार तीन साल की उम्र में नर्मदा में डूबना दुर्घटना थी। दूसरी बार अविवेक के कारण मौत तक पहुँचा। विवेकशील आदमी पैसे का इंतजाम करके शादी तय करता है। पर मैंने पैसे के बिना दो बहनों की शादी तय कर दी। किसी चमत्कार से वे अच्छी तरह हो भी गईं। रोटी का विकल्प खोजे बिना नौकरियाँ छोड़ता गया। आखिरी नौकरी छोड़ने के तीन महीने बाद ही मेरी बहन विधवा हो गई। वह जबलपुर रहने आ गई। मैंने बिना यह सोचे कि कल इन पाँच प्राणियों को क्या खिलाऊँगा, जिम्मेदारी ले ली। घर में एक दिन के आटा-दाल के भरोसे बीस सालों की ज़िम्मेदारी। चमत्कारों से यह काम भी पूरा हो गया। जब अभी तक काम चला है तो आगे क्यों नहीं चलेगा—इसी विश्वास पर चलता रहा। मेरे भीतर चार्ल्स डिकिन्स के डेविड कापर फील्ड का एक चरित्र मिस्टर मिकाबर बैठा है, जो मुफलिसी में भी मस्त रहता है और कहता है—'समथिंग विल टर्न अप! कुछ हो जाएगा' जिस लिखने के कारण पिटा, वह न लिखता तब भी चलता। उसे लिखने से कोई क्रांति तो हो नहीं गई। पर लिख दिया और पिट गया। पीटनेवालों ने सोचा होगा कि अब यह हमारे खिलाफ नहीं लिखेगा। पर मैं अभी भी उनके खिलाफ लिख रहा हूँ। यह भी अविवेक हुआ।

इन सब चीजों से कोई अगर प्रेरणा ले तो वह मजे में ज़िंदगी बरबाद कर सकता है। मुझे कोई एतराज़ नहीं।

परिवार

ज्योतिषियों ने मेरे पिता को बताया कि लड़के के ग्रह ऐसे पड़े हैं कि पुलिस इंस्पेक्टर बनेगा। अंग्रेजों के शासनकाल में गाँवों, कस्बों में मनुष्यता का सर्वोच्च शिखर पुलिस थानेदार होता था। वह राम भी होता था और कृष्ण भी। मर्यादा पुरुषोत्तम भी और लीलामय भी। मेरे फुफेरे भाई हेड कांस्टेबिल थे। मगर क्या रोब था। लोगों को लोकतांत्रिक अधिकार नहीं थे। जो अधिकार साम्राज्यवादी सरकार ने दिए थे, उनकी भी जानकारी लोगों को नहीं थी। चेतना भी नहीं थी। इसीलिए पुलिस का इतना दबदबा था। मेरे पिता लकड़ी के कोयले का धंधा करते थे, और बाहर कोयला भेजने के लिए रेलवे बैगन जल्दी पाने के लिए स्टेशन मास्टर को घूस खिलाते थे। वे खुद बाहर से आते तो रेल टिकिट नहीं लेते थे। मैं भी बिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिकिट आता था। मेरे पिता की घूस खाने वाले बाबू थे न सब। तो पिता की नज़र में आदर्श नौकरी रेलवे बाबू की!

घूस थानेदार भी खाता था और रेलवे स्टेशन मास्टर भी। देशी साहब भी और अंग्रेज़ साहब भी। मगर अंग्रेज साम्राज्यवादी के शोषण और भ्रष्टाचार में 'साफिस्टिकेशन' होता था—ब्लीडिंग व्हाइट विथ ग्रेस। 'ग्रेस' था। आज जैसा भौंडापन नहीं। अंग्रेज़ साहब यह नहीं कहता था : पिपरिया से एक बोरा अच्छी दाल लेते आना। नहीं, नहीं। टू क्रूड ! These petty natives आई एम इंग्लिश! तो साहब को बड़े लोग 'डाली' लगाते थे—डाली में फल, फूल, मेवे और इनके साथ रुपए। साहब बोलता था : ''टोम सेठ गोपालदास अच्छा आदमी हाय। नाईस मेन! हामको पसंड है।''

'ग्रेस' था साम्राज्यवादी में। इस तरह का—दॅ वाइसराय इन काउंसिल इज़ एजोल्ड टु कनफर्म दॅ सेंटेंस ऑफ डेथ—प्लीज्ड टु कनफर्म! लंदन में छपे 'क्लासिफाइड डाक्यूमेंट्स' के पोथों में ऐसे नमूने मिलेंगे।

क्या बनूँ, यह बात तब उठी जब मैं मैट्रिक में था। उसके पहले की पृष्ठभूमि बता दूँ। मेरे पिता तीन भाई थे। ब्राह्मण थे, पर पौरोहित्य नहीं करते थे। उनकी मौसी मालगुजार थी। यानी मालगुजार परिवार के थे, पर कानूनी हिस्सा मालगुजारी में नहीं था। इसका मतलब है कोई बुनियाद नहीं थी। मौसी ने खेती दे दी होगी। घर थे ही। यानी आश्रित थे। किसी कारण मौसी के बेटे से झगड़ा हुआ। मेरे बड़े दादा ने मुझे बताया कि इस मँझले श्यामलाल ने लट्ठ चला दिए और हम लोग गाँव से उखड़ गए।

बड़े दादा कहते थे : 'पास-पास पाँच-छः गाँव थे। हम ब्राह्मण हैं। वैसे ही मजे में रह लेते।'

आधी शताब्दी से पहले की बात है यह। तब ब्राह्मण को श्रद्धालु गाँववाले पाल लेते थे। पौरोहित्य न करें, सिर्फ चंदन लगाया करें तो भी पाल लेते थे। जनेऊ और चंदन बड़ी पूँजी थी। ये सुरक्षा कवच भी थे। बेचन शर्मा 'उग्र' ने किसी पौराणिक कहानी में लिखा है कि ब्राह्मण देवदत्त किसी स्त्री के घर से व्यभिचार करके निकला तो बाहर लोग लाठियाँ लिये मारने को खड़े थे। देवदत्त ने झट मिरजई में से जनेऊ निकालकर बताई तो लोगों ने कहा : 'जाने दो। ब्राह्मण है।' शायद किन्हीं ने देवदत्त को अपने घर पधारने का निमंत्रण भी दिया हो। मैंने भी एक वाकया देखा था। लोग एक आदमी से कह रहे थे : 'काम तो तुमने ऐसा किया है कि तुम्हारे हाथ-पाँव तोड़ दिए जाएँ। पर तुम ब्राह्मण हो, तो छोड़ देते हैं।'

ब्राह्मण ने उच्चतम बौद्धिक स्तर पर और निम्नतम भिक्षाटन के स्तर पर धंधा जमाकर रखा था। इतिहास में ब्राह्मण ने चिंतन किया, तत्त्वज्ञान दिया। पर क्षत्रिय भी पीछे नहीं रहे। ब्राह्मण और क्षत्रिय का शस्त्र और शास्त्र दोनों में संघर्ष हुआ। तत्त्वचिंतन और दर्शन में क्षत्रिय पीछे नहीं थे। पर ये जो आश्रमवासी ऋषि चिंतन करते थे, उसका कोई उत्पादक उपयोग नहीं होता था। कारण, जो श्रम करके उत्पादन करते थे, उन्हें इन्हीं ब्राह्मणों ने नीची जाति का करार दे दिया था और उनसे कोई संपर्क नहीं था। चिंतन अलग और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रम अलग। कोई तकनीक विकसित नहीं की इन चिंतकों ने। हल के फल तक में तो कोई सुधार किया नहीं। इस पूरे ब्राह्मण संप्रदाय ने न कोई उत्पादन सीखा, न किया। ये समाज की आध्यात्मिक आवश्यकता की पूर्ति करते थे और समाज इन्हें सम्मान के साथ पाल लेता था। पर अध्यात्म अनुत्पादक है।

आगे जब सामंतवाद जम गया, तो ब्राह्मण देवता राजाश्रयी हो गए। सामंती शोषण के लिए उन्होंने विधि-विधान दिए, नीतियाँ बनाईं। तब ब्राह्मण के प्रवेश करते ही सामंत अपने आसन से उठकर विप्रदेव को प्रणाम करता था। सामान्य समाज में ब्राह्मण पौरोहित्य करते थे। पर जो जाति उत्पादन नहीं करती उसकी दुर्गति होती है। कभी पूजे जानेवाले ब्राह्मण आगे भिखमंगे हो गए और इस द्वार से उस द्वार भगाए जाने लगे। जातिवाद और अस्पृश्यता को स्थापित करनेवाले ब्राह्मण देवता का बेटा अब जूतों की दूकान में काम करता है और चमार अफसर को अपने हाथ से जूता पहनाकर कहता है : 'यह आपको फिट बैठता है सर!' मैं कहता हूँ ब्राह्मण को भी यही फिट बैठता है।

नीचे के पौरोहित्य के स्तर पर भी ब्राह्मण ने अच्छा जमाकर रखा था। तरह-तरह के पर्व, पूजा, अनुष्ठान, मुंडन, कनछेदन, लग्न आदि तो थे ही, ब्राह्मण ने अच्छा माल खाने की एक नई तरकीब ईजाद कर ली थी। दोपहर में हमारे दरवाजे पर पंडित जी रुके। मेरे पिता बरामदे में थे। पंडित ने पूछा : 'कौन जाति है?' पिता जी ने कहा : 'ब्राह्मण।' पंडित जी बोले—'तो बस जल पिला दो। आगे बढ़ जाएँगे।' पिता जी ने कहा : 'दोपहर हो गई है। भोजन भी कर लीजिए।' पंडित ने पूछा :'कौन ब्राह्मण हैं आप?' पिता जी ने कहा : 'जिझौतिया।' पंडित जी ने कहा : 'हम कान्यकुब्ज हैं। कच्चा भोजन तो कर नहीं सकते गैर जाति में। पक्का भोजन जरूर कर लेंगे।' कच्चा भोजन यानी दाल, रोटी, सब्जी और पक्का भोजन यानी पूड़ी, हलवा, मिठाई। पक्का भोजन ब्राह्मण तेली, बनिया, कुर्मी के घर कर लेता है। अगर दक्षिणा की रकम बड़ी हो तो भंगी के घर भी पक्का भोजन कर ले। माल खाने की क्या बढ़िया तरकीब निकाली ब्राह्मण देवता ने।

परिवार के बारे में मुझे बहुत कम याद है। हाँ, वे मेरे लठैत चाचा श्यामलाल याद हैं। क्योंकि मैंने उन्हें घोर अक्खड़ता और कारुणिक टूटन दोनों स्थितियों में देखा। जवानी में विधुर हो गए। एक लड़की थी, जिसे वे मेरे पिता के पास छोड़कर गायब हो गए थे। आवारा प्रवृत्ति के थे। लठैत थे। कटोरे में तिल का तेल भरकर उसमें लाठी का सिरा डुबाकर उसे दीवार से टिकाते थे। कहते थे : 'लाठी तेल को पी जाएगी।' लट्ठ को वे 'दुख-भंजन' कहते थे। कोई बड़ी लड़ाई उन्होंने नहीं लड़ी। लट्ठ कम चलाते थे, रंग ज्यादा बाँधते थे। उनकी बड़ी इच्छा यह थी कि वे पुलिसवाले माने जाएँ। वे खाकी कमीज पहनते थे। पुलिस विभाग में पुराने 'फुलबूट' बहुत सस्ते में पुलिसवालों को ही बेच देते हैं। उनके भानजे हैड कांस्टेबिल खरीद लेते थे। हमारे दादा वे फुलबूट पहनते, खाकी शर्ट पहनते और सिर पर तिरछी खाकी टोपी सजाते थे। इस तरह वे बस्ती में हाथ में 'दुख-भंजन' लेकर घूमते थे। किसी से कहते : 'हवालात में सड़ा दूँगा।' किसी से कहते : 'जिंदगी-भर जेल में चक्की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलवाऊँगा।' और पुरातत्ववेत्ताओं का खयाल रखकर कहते : 'जमीन में ऐसा गाड़ूँगा कि हज़ार साल तक नहीं मिलेगा।' अधिकतर लोग उनकी भभकियाँ जानते थे। कुछ पर रोब भी ग़ालिब हो जाता।

वे कहाँ रहते थे, हमें पता नहीं। आवारा थे। हरफनमौला थे। कहीं मंदिर के पुजारी बन जाते, कहीं किसी सेठ के यहाँ उधारी वसूलनेवाले। कभी हमारे पास आकर कुछ दिन रहते। एक बार तीन साल मेरे पिता के कोयले के भट्ठों की देखरेख करते रहे। मेरे पिता के मित्र पोस्ट मास्टर मेहता जी ने मेरे पिता से कहा : 'श्यामलाल तो भट्ठों पर बड़ी मुस्तैदी से काम कर रहे हैं।' पिता जी ने कहा : 'हाँ, दो रेजा (मज़दूरनी) खूबसूरत हैं।'

दादा अपने पुलिसवाले भानजे से खूब गप्प करते थे। अपने कारनामे सुनाते थे। मैं पढ़ने का बहाना किए सुनता रहता था। एक दिन बता रहे थे : 'सेठ के छोटे-से लड़के के गुदा स्थान से ऊपर मैंने एक घान खोंस दी। घान दोनों तरफ से गड़ती थी और लड़का रोता था। सेठ-सेठानी जब घंटे-भर तक तंग हो गए और लड़के का चीखना बंद नहीं हुआ, तब मैंने कहा : 'सेठ जी, यह प्रेत बाधा है। मुझे प्रेत उतारना आता है। आप लोग सब कमरे से बाहर चले जाइए। मैं प्रेत उतारता हूँ। मैंने कमरा बंद किया। ज़ोर-ज़ोर से अंट-शंट जैसा बोलता रहा—उतर साले! भाग साले! प्रेत के बच्चे! हनुमान विक्रम बजरंगी!'और मैंने घान निकाल दी। बच्चे ने रोना बंद कर दिया। दरवाज़ा खोला। बच्चा माँ की गोद में किलकारी मारने लगा। अब तो मैं बड़ा 'गुनिया' माना जाने लगा। सेठ ने पूरे कपड़े दिए और ग्यारह रुपए भेंट।'

कई साल बाद सन् 1960 में जबलपुर में घर के सामने रिक्शा रुका और उसमें से उतरे हमारे दादा। वे 80 साल से ऊपर थे, मगर तगड़े थे। फुर्ती वैसी ही थी। 4-6 किलोमीटर यों ही चल लेते थे। पर दोनों आँखों में मोतियाबिंद था। कहने लगे : 'बेटा, ऑपरेशन कराके मेरी आँखें ठीक करा दे।' पर डॉक्टरों ने मुझसे कहा कि कोई आशा नहीं है।

मेरे साथ तब मेरी छोटी विधवा बहन और उसके चार बच्चे भी थे। दादा सोचते थे—मैंने कभी लड़के-लड़की के लिए कुछ नहीं किया। पैसा मेरे पास है नहीं। ये क्यों मेरी सेवा करेंगे। इन्हें भ्रम पैदा करना चाहिए कि मेरे पास बहुत धन है। अपनी समझ के हिसाब से वे झूठा भरोसा देते थे : 'बेटा, पिछली बार जब मैं यहाँ रहा था, तब एक सोने की ईंट अमुक के पास मैंने रख दी थी। और दस हज़ार रुपए मेरे फलाँ के पास जमा हैं। मुझे इनके पास ले चल। मैं अपना सोना और रुपया ले आऊँगा।' मैं जानता था कि यह झूठ है। वे अर्द्ध-विक्षिप्त भी हो गए थे।

आखिर उनके बहुत हठ करने पर मोतियाबिंद का ऑपरेशन हुआ। हम उन्हें आशा देते थे कि पट्टी खुलने पर साफ दिखेगा। एक दिन पट्टी खुली। आँखें खुलीं। हमने पूछा : 'हाथ दिखता है? पाँचों अँगुलियाँ दिखती हैं? हम दिखते हैं?' उन्होंने अपने को और हमें धोखा दिया। बोले : 'हाँ, अब दिखता है।' फिर फफककर रोने लगे और बोले : 'बेटा, मैं अंधा हो गया।'

उनकी जीने की इच्छा उसी क्षण खत्म हो गई। वे रोज़ स्नान करके पूजा करते और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब भोजन करते थे। उस दिन से उन्होंने नहाना और पूजा करना छोड़ दिया। बिलकुल चुप पड़े रहते। 7-8 दिनों में वे मर गए। मरने के पहले कई बार बोले : 'अच्छा है। बेटा भी यहीं है। बेटी भी यहीं है। बच्चे भी यहीं हैं। मेरे सभी मेरे पास हैं।' उन्होंने अटकल से मेरे, मेरे छोटे भाई के तथा बहन के सिर पर हाथ रखा। बोलते गए : 'बेटा शंकर है, ये गौरी का बेटा है, ये सीता बेटी है।' जीवन-भर के निर्मोही का अंतिम मोह था यह। उन्होंने प्राण त्याग दिए।

लोगों ने कहा—श्राद्ध करो, पिंडदान करो सद्गति के लिए। मैंने कहा कि 'सद्गति और दुर्गति उसकी होती है और स्वर्ग या नरक वह जाता है, जो सत्कर्म या दुष्कर्म करे। हमारे दादा ने ज़िंदगी-भर कुछ किया ही नहीं।' अकर्म योगी थे। सीधे स्वर्ग पहुँच गए होंगे।

मेरे पिता जंगल नीलामी में लेते थे और लकड़ी का कोयला बनवाते थे। जहाँ जंगल लेते वहीं पास की बस्ती में रहने लगते। जंगल में कोयला बनाने के लिए बड़े-बड़े भट्ठे लगाते थे। इस गाँव से उस गाँव हम लोग जाते रहे। बिच्छू का डेरा पीठ पर था।

मेरे पिता मुझसे भी ऊँचे थे। तगड़े थे। कोशे का साफा बाँधते थे। झर्राटेदार मूँछें रखते थे। घोड़े पर सवारी करते थे। 'ठेकेदार साहब' कहलाते थे। वे घोड़े पर साथ बिठाकर मुझे भी जंगल ले जाते। मैं सिर्फ आठ साल का था। घोड़ा अपनी परछी में घास खा रहा था। न रस्सी, न लगाम, न जीन। मैं चबूतरे पर से उसकी नंगी पीठ पर बैठ गया। उसकी गर्दन के बाल पकड़ लिए और झटका लगते ही घोड़ा अपने रोज़ के परिचित जंगल के रास्ते पर चल पड़ा। सामने का मैदान पार कर लिया तो मुझे डर लगा। मैं उसे लौटाना चाहता था पर लौटाना मुझे आता नहीं था। घोड़ा दौड़ने लगा। मैंने उसे रोकने के लिए बाल ज़ोर से खींचे। इसे उसने और तेज़ दौड़ने का इशारा समझा। वह खूब तेज़ दौड़ने लगा। घबड़ाकर मैं उसकी गर्दन से चिपट गया। घोड़ा भाग रहा था और मैं चीख रहा था। आखिर मैं फिसलकर गिर पड़ा। मेरे गिरते ही घोड़ा रुक गया। मेरे पास आकर खड़ा हो गया। मुझे देखता रहा। मुझे घुटने में चोट आई थी। ज़रा देर बाद देखा कि मेरे पिता कुछ आदमियों के साथ दौड़ते आ रहे हैं। वे गुस्से में थे। पर मुझे पड़ा देखकर वे चिंतित हो गए। मुझे उसी घोड़े की पीठ पर बिठाकर घर लाया गया। यह मेरा पहला दुस्साहसिकता का काम था। आगे तो मैंने बहुत दुस्साहस के काम किए।

पिता का दबंगपन मुझे अच्छा लगता था। पर वे मेरे 'हीरो' नहीं थे। मैंने उनसे कुछ नहीं सीखा। इतनी ज़रूर मुझमें प्रेरणा आई कि आदमी को तगड़ा होना चाहिए। बल्कि तब वे बहुत बुरे आदमी लगते थे, जब हर इतवार को भट्ठे पर काम करनेवाले गोंडों को डाँटते और गाली देते थे। वे उनके पैसे भी काट लेते थे और मुझे गोंडों के विवश-पीड़ामय चेहरों को देखकर दुःख होता था। माँ-बाप मुझे प्यार बहुत करते थे। जंगल में रहने पर भी उन्होंने मेरी पढ़ाई में व्यवधान नहीं आने दिया। 5-6 किलोमीटर दूर प्राथमिक शाला तक एक गोंड मुझे कंधे पर बिठाकर ले जाता था। वहाँ तीन-चार घंटे रुकता और मुझे कंधे पर बिठाकर घर लौटा लाता। यह क्रम एक साल चला।

दूसरा काम मेरे पिता ने अच्छा किया कि उसी अवस्था में मुझे 'रामचरितमानस'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
का कई बार पाठ करा दिया। सुबह 'रामचरित मानस' का पाठ और शाम को भगवान की आरती—यह नियम था। 'रामचरित मानस' की छोटी-मोटी दिलचस्प बातें ही समझ में आती थीं। 'सुंदरकांड' बहुत अच्छा लगता था। हनुमान मेरे हीरो थे। मुझे आधी 'रामचरितमानस' कंठस्थ हो गई थी। इससे मुझे आगे बहुत लाभ हुए।

क्या कहूँ आज जो...

'निराला' ने लिखा है :

दुख ही जीवन की कथा रही। क्या कहूँ आज जो नहीं कही।।

बहुत सहज वक्तव्य है यह और दुखों के सधे हुए लेखन के कई पन्नों से अधिक मार्मिक। मैंने अपने दुखों का ढिंढोरा नहीं पीटा। लेखन के आरंभ में कुछ उद्वेलित हुआ था और बाद में एक लेख 'गर्दिश के दिन' में लिखा था : मैं नहीं चाहता अपने दुखों को बहुत महत्त्व देना, उन्हें महिमामंडित करना और बड़े लेखक होने के लिए जो 'मार्कशीट' तैयार होती है उसमें दुख के विषय में अधिक नंबर जुड़वाना। अधिक दुख भोगने मात्र से कोई बड़ा लेखक नहीं होता। अधिक दुख भोगनेवाला चोर भी हो जाता है। किसी को बड़ा लेखक इसलिए नहीं माना जा सकता कि उसने बहुत दुख भोगे हैं। सिर्फ हाय-हाय की कूँची से कला में रंग नहीं भरे जाते।

दुख सबको होते हैं। यह पूरी तरह सही नहीं है कि दुख मनुष्य को 'माँजता' है, दुख आदमी को उठाता है, उसका उदात्तीकरण करता है। यह प्रचार दुख देनेवालों ने किया है—जिससे वे दूसरों का सुख छीनकर उसका भोग करें और अपने द्वारा दुखी बनाए गए लोगों से कहें कि तुम महान् हो और हम क्षुद्र हैं। दुख किसी की संवेदना को व्यापक और गहरा बनाता है। उसे पर-दुख कातर बनाता है। पर दुख मनुष्य को गिराता भी है। उसे नीच और क्षुद्र बनाता है। दुख मनुष्य को अधिक क्रूर भी बनाता है।

रचनाकार दुख को दो तरह से झेलता है—सामान्य मनुष्य की तरह और रचनाकार की तरह। वह दुख से दो तरह से जूझता और निपटता है। मेरा खयाल है कि आम आदमी भी दुख से दो तरह से पेश आता है। एक तो यही कि दुख पर चोट दे रहा है, आप चीख रहे हैं, दया माँग रहे हैं। मगर दुख दया नहीं करता। एक दिन वह आपको तोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर देगा, बिखेर देगा। दूसरा तरीका यह है कि आप दुख पर जवाबी चोटें करें—सकारात्मक भी और नकारात्मक भी। निश्चित ही दुख आप पर ज्यादा तीखे प्रहार करेगा, मगर इस तरीके में संभावना है कि आप टूटने और बिखरने से बच जाएँ। ऐसी लड़ाई में हर हालत में जिजीविषा को जगाए रखना होता है, हताशा को दुत्कारना होता है और व्यक्तित्व को खंडित होने से बचाना होता है।

मेरी याद में मेरा पहला दुख मेरी माँ की बीमारी और मृत्यु था। इससे पहले दुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने नहीं जाना था। जिसे अच्छा 'खाता-पीता' परिवार कहते हैं, वह था हमारा। कोई दुर्घटना नहीं हुई थी बल्कि बुआ की सबसे छोटी लड़की की शादी भी बहुत अच्छी तरह हो गई। कोई दहेज नहीं लगा।

दहेज तब भी दिया जाता था। अधिकतर वधू-पक्ष स्वेच्छा से देता था। मैं लोगों को कहते सुनता था : 'परिवार में एक ही तो अपनी लड़की है। इसे काफी दो।' वर का पिता अगर माँगता भी था, तो वह भी संकोच के साथ। मर्यादा का एक पर्दा था। वह लड़की-पक्ष से पैसा माँगना मूलतः कुछ अशोभन बात मानता था। वह किसी विश्वासी आदमी को कुछ शर्म के साथ ही इशारा करता था। मैंने सुना था, कोई मेरे पिता से कहता था : 'परसाई जी, वैसे तो हमें कन्या-पक्ष से कुछ नहीं चाहिए। मगर हमारी हालत आप जानते ही हैं। शादी में खर्च लगेगा ही! फिर लड़के का नया घर बसेगा। इसमें खर्च लगेगा। तो आप ज़रा तिवारी जी को हमारी कठिनाई समझा दें। हम तो अपने मुँह से कुछ नहीं कहेंगे।' ऐसा नहीं था कि लोभ लोगों में नहीं था। लोभ था। मगर बेटे की कीमत खुले माँगना नहीं होता था। मवेशी-बाजार नहीं खुले थे। अब तो लड़के का बाप 'टेंडर' बुलाता है। कुछ इस तरह कि नगरपालिका के 'डंप' किए हुए माल को खरीदने के लिए टेंडर आमंत्रित किए जाते हैं। या इस तरह कि हमारे पास दो बकरे अगली ईद पर कटने को तैयार हैं—इतना कद, इतनी मोटाई, इतना वज़न! खरीदार हमसे मिलकर सौदा करें। अब तो लड़के का बाप बेटे के पालन, पढ़ाई, बल्कि जचकी का खर्च भी वसूल करता है। उपभोक्तावाद और बाज़ार की सभ्यता ने अब पति को जिन्स बना दिया है। वह बैल हो गया है। पचास साल पहले बैल विवाह मंडप में नहीं अड़ता था कि स्कूटर अभी दो, वरना शादी नहीं करूँगा। हर पीढ़ी से क्रांति की उम्मीद की जाती है। यही हमारी नई पीढ़ी का क्रांतिकारी रूप है, जो सार्वजनिक रूप से जनेऊ तोड़कर फेंक देता है और उधर विवाह मंडप में अपने-आपको बेचता है। दोमुँहापन, मुखौटा, पाखंड, क्षुद्रता, बेशर्मी पहले से ज्यादा है। गनीमत है कि बहुत से युवक इससे बचे हैं।

सुनता हूँ—आजकल आई. ए. एस. का रेट दो लाख पर पहुँच गया है। सुनता हूँ—यूनिवर्सिटी में पढ़ानेवाले लड़के को लड़की देने से क्या फायदा? सूखी तनख्वाह पर ही तो गुज़ारा होगा। इससे अच्छा है, सिंचाई विभाग के उस सब-इंजीनियर को लड़की दे दो। ऊपरी आमदनी बहुत होगी तो सुख से रहेगी।

वर उपभोक्ता वस्तु की तरह बाज़ार में है। यह अनिवार्य उपभोक्ता वस्तु होता गया है—प्राणरक्षक दवा की तरह। यह माल कई प्रकार का होता है, कई क्वालिटियों में मिलता है, अलग-अलग स्टेंडर्ड का होता है। जिसकी जैसी हैसियत है, वैसा माल खरीदा जाता है। मजबूरी है।

बिना दहेज के प्रेमविवाह अब कुछ बढ़े हैं। पर जो विवाह रूपोन्माद-यौनोन्माद में होते हैं वे चार-पाँच महीने में असफल हो जाते हैं। अंतर्जातीय प्रेमविवाह मेरी जानकारी में, कुछ मेरी मदद से, हुए हैं। मेरे विचारों के कारण मैं युवक-युवतियों को बिगाड़नेवाला माना जाता हूँ, बुजुर्गों द्वारा। मैंने देखा है, माता-पिता पहले गुस्सा करते हैं, पुलिस की शरण में जाते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ गुंडागर्दी करते हैं। पर चार-पाँच महीनों में दोनों परिवार ऐसे विवाह को स्वीकार कर लेते हैं। लड़के के माँ-बाप कमाऊ पूत को हाथ से निकलने नहीं देना चाहते। लड़की के माँ-बाप समझ लेते हैं कि बुढ़ापे का सहारा 'प्राविडेंट फंड' लड़की ने बचा दिया। दो हफ्ते पहले ही मेरा एक प्रिय युवक दूसरी जाति की लड़की से शादी करके इधर आ गया। उसने बताया कि पचास हज़ार रुपए में मेरे परिवार ने किसी परिवार में मेरी शादी तय कर ली थी। परिवार को यह दुख नहीं है कि कान्यकुब्जों में नाक कट गई। दुख पचास हज़ार जाने का है। उन्हें लगता है, जैसे रात को तिजोरी में से उनके पचास हज़ार रुपए चोरी चले गए। एक लड़के-लड़की ने इसी तरह शादी करने का तय किया। लड़का-लड़की दोनों अच्छी नौकरियों पर हैं। लड़के के माँ-बाप ने विरोध किया। लड़का लड़की सहित अपने पिता के पास आया और कहा : 'पिताजी, आपको हमसे पचास हज़ार ही चाहिए न! हम दोनों का वेतन मिलाकर साढ़े पाँच हज़ार हैं। हम पचीस हज़ार आपको अभी एकमुश्त देते हैं। और फिर आगामी पचीस महीनों तक हज़ार रुपया देते जाएँगे। अब तो आशीर्वाद दे दीजिए।'

लिख तो मैं रहा था अपने पहले दुख माँ की मृत्यु के बारे में। मैं तब आठवीं कक्षा में पढ़ता था। मुझसे छोटा एक भाई और तीन बहनें थीं। बचपन में बहुत से बच्चों की माँ की मौत हो जाती है। बहुत दिन दुख रहता है। फिर सामान्य हो जाता है। मेरी माँ की मृत्यु मेरी स्मृति में इतने गहरे क्यों जमी है? एक कारण तो यह कि यह मृत्यु भयावह आतंक के वातावरण में हुई। दूसरे, इस मृत्यु ने वह सुरक्षित रास्ता छुड़वा दिया, जिस पर हमारा परिवार आगे बढ़ रहा था। माँ की मृत्यु ने हमें काँटों पर चलने को मजबूर कर दिया।

काफी अरसे से माँ बीमार थी। पिता जंगल में काम देखने कम जा पाते थे और धंधा बिगड़ रहा था। बीमारी का अंतिम दौर जब आया तब प्लेग पड़ा था। सारा कस्बा खाली हो गया। लोग खेतों में छप्पर डालकर रह रहे थे। कुछ ही परिवार मजबूरी में बस्ती में रह गए थे। शाम से भयावह सन्नाटा। रात को माँ की दर्द से चीख। कभी किसी कुत्ते के भौंकने की आवाज। तीन लालटेनें रात-भर जलती थीं। मेरे पिता और दादा एक लालटेन और लाठी लेकर घूम-घूमकर पहरा देते। मेरी बुआ, उनकी बड़ी लड़की और मेरे साथ पढ़नेवाला उनका लड़का घर में थे। बुआ ने हमें हमेशा हिम्मत दी और कभी नहीं छोड़ा। मेरे पिता की मृत्यु भी उनके बनापुरा के घर में उनकी गोद में हुई। हमारा तब कोई घर नहीं था।

शाम को हम सब आरती करते हुए प्रार्थना करते थे : *जय जगदीश हरे स्वामी जय जगदीश हरे। भक्त जनों के संकट छन में दूर करे।।*

भजन के बाद हम सब रोने लगते थे। हम जानते थे कि माँ मरनेवाली है और जगदीश कुछ नहीं कर रहे हैं। अभी भी यह प्रार्थना गाते कहीं लोगों को सुन लेता हूँ, तो आतंकित हो जाता हूँ। पचास साल बाद भी यह भजन मेरे लिए अशुभ है, त्रासदायक है। मैं इससे नफरत करता हूँ। जवानी से ही मैं सब प्रार्थनाओं और भजनों से नफरत करने लगा। माँ भजन के बाद हम बच्चों को चिपका लेती और हम सब रोते। हम कहते : 'माँ, तू अच्छी हो जा।' वह कहती, 'बेटा, जल्दी अच्छी हो जाऊँगी'—और रोने लगती। पिता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
भी रोने लगते। सभी रोने लगते। सिर्फ बुआ नहीं रोती थी। कहती : 'अरे, तुम लोग पढ़ने बैठो और लड़कियो, रोटी बनाना शुरू कर दो।'

'जय जगदीश हरे' से कुछ नहीं हो रहा था। जगदीश हर दिन प्रार्थना के बाद हालत बिगाड़ते जाते थे। प्रार्थना से कोई फायदा नहीं। स्कूलों में प्रार्थना कराई जाती है—शरण में आए हैं हम तुम्हारी, दया करो हे दयालु भगवन्! बचपन में ही शरण में डाल दिया बच्चे को। उसे पुरुषार्थ की जगह शरण में जाना सिखाते हैं। सार्थक श्रम से बड़ी कोई प्रार्थना नहीं है। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि माँ-बाप को कोई अधिकार नहीं है कि बच्चे को, जब वह अबोध है, ज़बरदस्ती अपना धर्म भी दे दें। यह अपराध है। बच्चा जब बड़ा हो जाएगा, समझने लगेगा, तब यदि उसे जरूरत होगी तो कोई धर्म ले लेगा। या बिना धर्म के रहेगा। यह प्रावधान संविधान में होना चाहिए। बालिग होने के पहले बच्चे को कोई धर्म दे देना दंडनीय अपराध होना चाहिए। बच्चा समझता नहीं है और आपने उसे जिंदगी-भर के लिए मुसलमान या हिंदू बना दिया। क्या धाँधली है।

एक रात दो बजे माँ की मृत्यु हो गई। सुबह उन्हें दफनाने के बाद हमारे परिवार की ज़िंदगी बिलकुल बदल गई। पिता टूट गए, बीमार रहने लगे, धंधा चौपट होने लगा और एक निश्चित अनिश्चय मगर भयावहता की ओर हम पाँच भाई-बहन बढ़ने लगे। भाइयों में मैं सबसे बड़ा था। और जिम्मेदारी के अहसास में पंद्रह साल से बढ़कर पचास साल का हो गया। मुझसे छोटी तेरह साल की बहन गृहस्थिन हो गई।

इस उम्र का कुछ नहीं भूला जाता, मगर वह कितना ही त्रासदायक हो तत्काल भूलकर दूसरे कामों में, शौकों में, मनोरंजनों में लड़का लगा रहता है। पिताजी अधिक बीमार होते गए, धंधा खत्म हो गया। कोयले की आखिरी दो वैगनें उन्होंने बंबई के किसी व्यापारी को बेचीं और धंधे के औज़ार फावड़े, गेंती, तगाड़ी बेचकर खा गए। दो वैगनों के वे रुपए पिता जी कलेजे से चिपकाए रहते। एक-एक पैसा मुश्किल से निकालते। इन्हीं रुपयों से रोटी चल रही थी, इन्हीं से पिता का इलाज हो रहा था और इन्हीं पैसों से उम्मीद की जा रही थी कि वे तब तक साथ दें, जब तक बड़ा लड़का हरिशंकर मैट्रिक पास करके नौकरी पर नहीं लग जाता।

मेरी समझ में यह आ गया था कि कॉलेज की पढ़ाई का सपना खत्म हो चुका है।

मेरे चरित्र में एक बात है, जो मेरी बड़ी ताकत है। कोई भी चिंता हो, मुसीबत हो, आसन्न सकंट हो, गर्दिश हो, मैं सब भुलाकर गैर-जिम्मेदार होकर वह सब नियमित रूप से कर लेता हूँ जिसमें मेरी दिलचस्पी है। तब भी, नौकरी की तलाश की गर्दिश में भी, बिखरे परिवार की समस्याओं में भी तथा और और सैकड़ों मुसीबतों के बीच भी कुछ चीज़ें मैं सब भूलकर कर लेता रहा। अब भी यह मेरी प्रकृति है।

मैं पहले की तरह ही रोज़ सुबह मनोहर के साथ घूमने जाता, वैसी ही गप्पें होतीं, हम वैसे ही पढ़ते और विचार करते, वैसे ही हँसते, शाम को खेलता। और खानदानी ब्राह्मण के बेटे की तरह खूब खाता भी। घर में जो भी बना हो, भरपेट खाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या शुद्ध ब्राह्मण देवता का भोजन करना देखा है? भोजन दोपहर को बन जाने पर ब्राह्मण नहाएगा। गंगा, जमुना, नर्मदा, कृष्णा, कावेरी, क्षिप्रा, मंदाकिनी, वेत्रवती सब नदियों के नाम से पानी के लोटे डालेगा। फिर अंगोछे से सिर और शरीर पोंछकर, धोती पर जनेऊ रगड़कर सुखाते हुए ब्राह्मण पाटे पर बैठ जाएगा। सामने भोजन की थाली आएगी। ब्राह्मण सारे विश्व को असार और भोज्य पदार्थों को ही परम सत्य मानकर खाएगा। भोजन पर शत्रु की तरह झपटेगा। गले तक जब भर जाएगा, तब उठेगा। दाँत खोदकर कुल्ला करेगा। पेट पर हाथ फेरते हुए डकार लेगा और पीछे से अपान वायु के दो-तीन धड़ाके मारेगा। (नौ द्वारे कौं पींजड़ा तामें पंछी मौन) इसके बाद ब्राह्मण बिस्तर पर लेटेगा और पेट पर हाथ फेरते-फेरते उसे झपकी लग जाएगी। ब्राह्मण के भोजन का यह ठाठ था।

एक शाम हम तीन मित्र रोज़ की तरह रेलवे स्टेशन पर घूम रहे थे कि एकाएक तय हुआ चलो हरदा में फिल्म 'अछूत कन्या' देख आएँ। गाड़ी खड़ी थी। हम तीनों उसमें बिना टिकिट बैठ गए। तीसरा स्टेशन हरदा था। एक मित्र के चाचा वहाँ दुकान करते थे। उनके घर गए। भोजन किया। उन्हीं ने सिनेमा की टिकटें खरीद दीं। 'अछूत कन्या' में अशोक कुमार और देविका रानी हैं। ये मेरे आदि और अनंत हीरो-हीरोइन हैं। अशोक कुमार की फोटो देखकर खुश होता हूँ। पिछले दिनों अब की देविकारानी का फोटो उनके रूसी चित्रकार पति रोरिक के साथ एक पत्रिका में देखा। मोटी, बूढ़ी और भद्दी हो गई है। मेरा मन बहुत खिन्न हुआ। पन्ना पलटाया तो दूसरा चित्र दिखा। इसमें वही हमारी सन् चालीस के आसपास की देविकारानी थी—फिल्म 'ममता' वाली। दिल खुश हुआ। बड़ी देर तक देखता रहा।

'अछूत कन्या' देखने के बाद हम तीनों ने प्रण किया था कि हम अछूत लड़की से शादी करेंगे। पर उन दो ने तो अपनी अग्रवाल जाति में ही शादी कर ली, और मेरी अछूत कन्या तो क्या, ब्राह्मण कन्या तक से शादी नहीं हुई।

जब मैं मैट्रिक में था, तब एक घटना घटी, जिसने मुझे बहुत गहरा आघात दिया। हम बहुत गरीब हो गए थे। मेरी आधी फीस माफ थी। मेरे गरीबी के कपड़े थे। मेरे पास कोई जेबखर्च नहीं होता था, जिससे मैं दूसरे कई लड़कों की तरह छुट्टी में चाट खाता। मगर हीनता की भावना मुझमें कतई नहीं थी। इसका कारण यह था कि मैं दूसरी बातों में बहुत संपन्न था। शिक्षक के प्रश्न पूछने पर सबसे पहले मेरा हाथ उठता था। भाषण मैं बहुत अच्छा देता था। पढ़ाई में बहुत तेज़ था। बग्गा मास्साब ने मेरे पास हो जाने के बाद किसी से पूछा कि उनकी जगह अंग्रेजी अब कौन पढ़ाता है। उसने किसी अध्यापक का नाम बताया। बग्गा मास्साब ने कहा : 'उनसे अच्छा तो हरिशंकर पढ़ा सकता है।' मैं बाहर का बहुत पढ़ता था। दूसरा महायुद्ध शुरू हो गया था। इस महायुद्ध की पृष्ठभूमि तथा लड़नेवाली शक्तियों के बारे में जितना मनोहर तिवारी और मैं जानते थे, उतना एक-दो अध्यापक ही जानते होंगे। उसी उम्र में मैं एक ट्यूशन करता था। सब अध्यापक कहते थे कि हरिशंकर स्कूल को परीक्षा में गौरव देगा। मैं हीनता की भावना से नहीं, उच्चता की भावना से पीड़ित था।

तभी मैट्रिक की परीक्षा के पंद्रह दिन पहले यह घटना घटी। हम फुटबॉल खेल रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। शाम हो गई थी। दो लड़के फुटबॉल को किक करते-करते खेल के मैदान से लगे नाले तक ले गए। मैं दूर था—मैदान के बीच में। थोड़ी देर तक वे लड़के नहीं लौटे तो मैं घर लौट आया। दूसरे दिन खेल के अध्यापक ने मुझे बुलाया और पूछा कि वह फुटबॉल कहाँ है। मैंने बता दिया कि वे दो लड़के उसे नाले तक ले गए थे। अध्यापक ने कहा : 'नहीं, फुटबॉल तुम्हारे पास थी। वह गायब है। या तो तुमने वह गुमा दी या कुछ और किया।' कुछ और किया का मतलब था, चुरा ली। मैंने बहुत विनती की कि सर, फुटबॉल उन दोनों लड़कों के पास थी। पर अध्यापक ने कहा : 'नहीं, वे ऐसा नहीं कर सकते। वे बड़े आदमियों के लड़के हैं।' एक लड़का सेठ का था और दूसरा स्टेशन मास्टर का। मैं सन्न खड़ा रहा। मैं गरीब हूँ, तो चोर माना जाता हूँ। अध्यापक ने एक रुपया जुर्माना कर दिया।

मुझे जो आघात लगा, उसका बयान नहीं कर सकता। मेरी मर जाने की तबीयत हुई। क्रोध भी बहुत आया। आत्मग्लानि बहुत हुई। मैं नफरत करने लगा अध्यापक से और उनसे जो 'बड़े आदमी' कहलाते हैं। मेरी स्थिति आखिर क्या है? सारा स्कूल, सारा कस्बा मुझ पर गर्व करता है। पर मेरे पिता बहुत गरीब हो गए हैं, तो मुझ पर चोर होने का शक भी किया जाता है। मेरे भीतर घोर कटुता पैदा हुई।

मैंने किसी से यह बात नहीं कही। एक-दो बार अध्यापक से जुर्माना माफ कर देने के लिए ज़रूर कहा। पर उन्होंने दुर्व्यवहार किया। मैं आज भी नहीं समझ पाता कि आखिर मैं हेडमास्टर माथुर साहब के पास क्यों नहीं गया। वे बहुत शरीफ और सुसंस्कृत आदमी थे। मुझे बहुत चाहते थे। मैं बग्गा साहब के पास भी नहीं गया। वे उन अध्यापक को बहुत लताड़ते। मैंने पिता जी से भी नहीं कहा।

मैट्रिक की परीक्षा आरंभ होने के तीन दिन पहले जब मैं परीक्षा प्रवेश-पत्र लेने लगा, तब क्लर्क ने कहा : 'एक रुपया जुर्माना चुकाओ, तब प्रवेश-पत्र मिलेगा।'

मैं हक्का-बक्का रह गया। पिता जी से बात करना कठिन हो गया था। वे बहुत निराश, जिद्दी और कठोर हो गए थे। फिर भी उनसे कहा। उन्होंने पहले तो मुझे लापरवाही के लिए बहुत डाँटा। फिर कहा कि अगर यह झूठा दोष मढ़ा गया है, तो जुर्माना माफ कराओ। मैं एक पैसा भी नहीं दूँगा।

मैं फिर खेल के अध्यापक और क्लर्क के पास गया, पर अपमान ही मिला। शायद मैं हेडमास्टर के पास इसलिए नहीं गया था कि इसे मैं आत्म-सम्मान के विरुद्ध समझता था। मुझे यह भी विश्वास था कि एक रुपया पिता जी दे देंगे और जुर्माना दे देना अधिक सम्मानजनक होगा।

दूसरे दिन भी पिता जी ने रुपया नहीं दिया। जब परीक्षा शुरू होने में कुल चौबीस घंटे रह गए, तब मैंने फिर कहा। वे बहुत खीझे मगर रुपया नहीं दिया। वे शायद समझते थे कि परीक्षा में बैठने से नहीं रोका जाएगा।

मैं घर से जाकर उस बागीचे में दिन-भर अकेला बैठा रहा जिसमें बैठकर मैं और मेरा एक दोस्त पढ़ा करते थे। मैं बहुत त्रास में था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाम को मैं लौटा। पिता जी से मैंने बहुत कठोरता से कहा : 'एक रुपए के कारण मैं परीक्षा में नहीं बैठ सकूँगा। मैं कल सुबह घर से भाग जाऊँगा और कभी नहीं लौटूँगा। आप जो आशाएँ मुझसे लगाए बैठे हैं, वे सब छोड़ दीजिए। मरिए और बच्चों को मारिए।'

वे उठकर बैठ गए। ऐसा मैं कभी नहीं बोला था। उन्होंने चुपचाप एक रुपया दे दिया। मैं सीधा स्कूल के दफ्तर गया। पास ही क्लर्क रहता था। उसे बुलाया, और रात को आठ बजे एक रुपया देकर प्रवेश-पत्र लिया।

मुझे बड़ा दुख इस बात का था कि ये लोग कितने हृदयहीन हैं। ये किसी के भी प्राण बिना पछतावे के ले सकते हैं क्योंकि रजिस्टर में उसके नाम एक रुपया लिखा है। हेडमास्टर तक ने इस बात की जाँच नहीं की कि सारे प्रवेश-पत्र जारी हो गए या नहीं। उन्हें यह पता तक नहीं था कि अपने सबसे अच्छे छात्र का प्रवेश-पत्र पड़ा हुआ है और वह परीक्षा में नहीं बैठ रहा है।

मेरे मन पर, मेरे विचारों पर बहुत असर डाला इस घटना ने। लंबे अरसे तक मैं इस घटना के असर में रहा। आगे मेरी जो दृष्टि बनी वह शायद इस घटना से ही बनना शुरू हुई।

गाँधी जी रसोईघर में

जैसा मैंने पहले लिखा है, सारी घरू गर्दिशों के बावजूद मैं डटकर खाता था, खेलता था, पढ़ता था, और सामाजिक-राजनैतिक कार्यों में भाग लेता था। घर से बाहर होते ही बदल जाता था। घर लौटने में ज़रूर डर लगता था। वहाँ बीमार, दुखी, और चिड़चिड़े पिता होते और उदास छोटे भाई-बहनें होते। बुआ चौथे स्टेशन बनापुरा चली गई थी और वहाँ उसने छोटा-सा घर बना लिया था। हमारे लठैत दादा ज़रूर लगातार रहे और मेरे पिता की सेवा करते रहे। वे दोनों भाई सलाह करते रहते थे कि कोई छोटा धंधा कर लें, जिससे बच्चे पल जाएँ। किसी धंधे की योजना पक्की नहीं हुई और पास के पैसे खाये जा रहे थे। सारी बातचीत के बाद वे एक ही पंचवर्षीय, दसवर्षीय या स्थायी योजना पर पहुँचते थे, और उस योजना का नाम था—हरिशंकर! कहते थे—कुछ ही महीनों में शंकर मैट्रिक पास हो जाएगा। पहला दर्जा आएगा और नौकरी फौरन लग जाएगी।

मैं कांग्रेस के कार्यक्रमों में खूब हिस्सा लेता था। हमारे स्थानीय नेता थे—नाना साहब गद्रे। वे सभा में हर संभावित वक्ता से कहते थे : 'कुछ तो भी बोलिए। दो शब्द।' वे खुद 'कुछ तो भी' बोलते थे, मगर दो नहीं हज़ारों शब्द। पर आदमी सच्चे और कर्मठ थे। एक हमारे नेता हरदा के महेशदत्त मिश्र थे। छरहरे बदन के, गोरे, सुंदर, तरुण! इलाहाबाद विश्वविद्यालय से पहले दर्जे में राजनीतिशास्त्र में एम. ए. किया था। वे गाँधी जी के सचिव रहे। फिर इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्यापक हो गए और कुछ साल पहले जबलपुर विश्वविद्यालय के राजनीतिशास्त्र विभाग के अध्यक्ष पद से रिटायर हुए। वे सुभाषचंद्र बोस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
के साथी भी रहे। वे विधानसभा और लोकसभा सदस्य रहे। ये 'महेश बाबू' हम किशोरों के 'हीरो' थे। पिछले कई सालों से हम उनके साथ विश्व शांति आंदोलन, भारत-रूस मैत्री संघ आदि में काम कर रहे हैं।

हमारे होशंगाबाद जिले के वास्तविक जननेता लाला अर्जुनसिंह थे। वे सच्चे भूमिपुत्र थे। नेता की कोई बनावट उनमें नहीं थी। जनता की भाषा अर्द्ध बुंदेली या 'हुसंगाबादी' में बहुत प्रभावशाली भाषण देते थे। आशु कवि थे। दोहे और पद बनाकर बोलते जाते थे। दो पंक्तियाँ वे भाषण के अंत में ज़रूर कहते थे :

बई द्वारे तें पूत हैं, बई द्वारे तें मूत
देशभक्त होय तो पूत है नहीं मूत को मूत

लाला अर्जुनसिंह विधानसभा के सदस्य चुने गए। वहाँ उन्होंने अपने भाषण में कहा : 'न हम पूँजीवाद समझे, न समाजवाद। हम समझे-हुसंगाबाद। हमारे हुसंगाबाद ज़िले की उन्नति होनी चाहिए।' वे इसका एक अर्थ और करते थे : होसंग-आबाद! संगठित हो जाओ।

मैं सुनता था अंग्रेज़-भक्त अफवाहें भी फैलाते थे। कहते थे : 'यह गाँधी बड़ा धूर्त है। हरिजनों के नाम से चंदा इकट्ठा करता है, और उस पैसे से अहमदाबाद में लड़कों के नाम से कपड़ा मिलें खोलता है।'

उस ज़माने की राजनीति त्याग की राजनीति थी, 1947 के बाद राजनीति प्राप्ति की हो गई। तब स्वाधीनता आंदोलन में शामिल हर आदमी कोई संत था, ऐसा नहीं था। संगठन के भीतर होड़ थी। विचारधारा के विवाद भी थे और संगठन में पद-प्राप्ति की लड़ाई भी। काँग्रेसी एक-दूसरे को काटते भी थे। कांग्रेसी दुकानदार मुनाफाखोरी भी करता था। पर आम भ्रष्टाचार नहीं था। जब एक जाति राष्ट्रीय स्वाधीनता जैसे महान् संघर्ष में लगी हो, तब व्यक्तिगत और सामूहिक नैतिकता ऊँची होती ही है। गाँधी तब सभा के मैदान में ही नहीं थे, वे घर-घर में घुसे थे। 'गाँधी का प्रभाव रसोईघर तक में था। गाँधी हर विषय में दखलंदाजी करते थे। विश्व राजनीति और राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम से लेकर रसोईघर और पाखाना तक में। औरतें कहती थीं : 'गाँधी जी कहते हैं कि सादगी से रहो। तो अपन ये तामझाम नहीं करते।' गाँधी जी को सफाई पसंद है। तो पाखाने में सुबह-शाम एक बालटी पानी ऊपर डालते हैं हम।' जब गाँधी जी किसी समस्या को लेकर उपवास पर बैठते थे, तब गैर कांग्रेसी घरों की कई औरतें भी एक दिन भोजन नहीं करती थीं। गाँधी फिल्म में भी घुसे थे। 'अछूत कन्या' फिल्म गाँधी के आंदोलन से पैदा हुई थी। जो लोग समझते हैं कि गाँधी के नेतृत्ववाला आंदोलन कांग्रेसी ही चलाते थे और वह केवल राजनैतिक था, वे गलत हैं। गाँधी का आंदोलन रसोईघर और पाखाने में भी था, दांपत्य संबंधों में भी था, परिवार की व्यवस्था में भी था। यह जीवनव्यापी आंदोलन था। इसमें बहुत बड़ा योगदान उन असंख्य पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों का था, जिनका नाम अखबार में कभी नहीं छपा।

इन्हीं दिनों लखनऊ में मुस्लिम सांप्रदायिक संगठन 'ख़ाकसार' बना, जिसका शस्त्र बेलचा था। इसने कुछ उपद्रव किए। मगर हैदराबाद में बहुत बड़ा फासिस्ट संगठन बन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुका था—'रज़ाकार'। इसके डिक्टेटर कासिम रिज़वी थे। हैदराबाद में हिंदू-मुस्लिम फ़िसाद बहुत हो रहे थे। हिंदुओं के नेता रामानंद तीर्थ थे। आर्य समाज ने हिंदुओं को जगाने और उनकी रक्षा करने के लिए उत्तर भारत से जत्थे भेजे। इनमें प्रवचन करनेवाले भी होते थे। ये हारमोनियम रखते थे। जोशीले भाषण देते थे। बीच-बीच में हारमोनियम पर भजन गाते थे। ये लोग पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के होते थे, इसलिए उर्दू इनकी मातृभाषा-जैसी थी। धाराप्रवाह भावुकतामय प्रवचन करते थे ये। एक शे'र इनका मुझे अभी भी याद है :

तसब्बुर खींच वो तस्वीर आँखें हों रसाई हो,
उधर शमशीर खींची हो इधर गर्दन झुकाई हो।

हमारे कस्बे में भी ये रुकते थे। बड़े जोशीले भाषण देते थे। रास्ते के कस्बों, शहरों में ये रुकते, प्रवचन करते और किराया इकट्ठा करके हैदराबाद की तरफ आगे बढ़ जाते। आर्य समाजी प्रचारकों के बारे में भदंत आनंद कौसल्यायन ने बड़ी दिलचस्प बात लिखी है। शहर में एक आर्य समाजी प्रचारक स्वामी जी के तीन भाषण हुए। हमने भाषण के बाद उनसे पूछा : 'स्वामी जी, और कितने दिन यहाँ मुकाम है?' स्वामी जी ने सहज भाव से कहा—'हम पाँच भाषणवाले हैं। तीन हो चुके। दो दिन दो भाषण और देकर चल देंगे।' स्वामी जी पाँच भाषणों के आधार पर छठवाँ भाषण नहीं बना सकते थे।

आर्य समाज का सुधारवादी आंदोलन था। पर यह पुनरुत्थानवादी और कट्टर सांप्रदायिक था। आर्य समाजियों का विश्वास कुछ इस तरह का होता है कि वैदिक साहित्य की रचना के बाद पाँच हज़ार सालों में पूरी मनुष्य जाति ने कुछ नहीं सोचा। इसी तरह का यह विश्वास है कि पैगंबर मुहम्मद के बाद तेरह शताब्दियों में पूरी मनुष्य जाति ने कुछ नहीं सोचा। ऐसा विश्वास जातियों को जड़ बनाता है। जवाहरलाल नेहरू ने ठीक ही कहा है : Religion gives static view of things.

मुझे पहला दर्जा नहीं मिला। कारण मेरा अहंकार कि पाठ्यक्रम में बेवकूफ उलझते हैं। मुझे यह सब मालूम है जो इन किताबों में लिखा है और जो ये अध्यापक बोलते हैं। पहले दर्जे के लिए योजना होती है। संभावित प्रश्न खोजने पड़ते हैं। उनके सधे हुए उत्तर तैयार करने पड़ते हैं। उन्हें घोंटना पड़ता है और सधे हुए उत्तर लिखने पड़ते हैं। मैं यों ही लापरवाह तरीके से परीक्षा में बैठ गया। बहुत कम नंबरों से पहला दर्जा छूट गया। 'डिस्टिंक्शन' मिला उस विषय में जिसमें मैं बहुत कच्चा था—गणित में।

एक-दो दिन दुखी रहा। फिर अखबारों में सबसे लुभावनी सामग्री पढ़ने लगा—(WANTED) आवश्यकता है। नौकरी तत्काल और कोई भी मिलनी चाहिए, वरना परिवार भूखा मर जाएगा। मैं खुद क्या बनना चाहता था? मेरी क्या महत्त्वाकांक्षा थी? वास्तव में मेरी कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं थी। सबसे प्रबल इच्छा अध्यापक होने की थी—बग्गा मास्साब की तरह। लोग अध्यापकी को 'पापड़ बेलना' कहते थे। मैं इसमें इतना इज़ाफ़ा और कर सकता था कि प्राइवेट एम. ए. करके कॉलेज में अध्यापक हो जाऊँ—तब चावल के पापड़ से आगे मूँग के पापड़ बेलता। मेरी एकमात्र इच्छा आदर्श अध्यापक होने की थी। लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
इसे महत्त्वाकांक्षा न तब मानते थे, न अब मानते हैं। इसे बेवकूफी मानते हैं।

सही यह है कि मेरी कभी कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं रही। अब भी कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं है। जब पूरी तरह लेखन करने लगा, तब भी कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं रही। मेहनत से लिखता था। बस! यही चाहता था लेखन सार्थक हो और पाठक कहें कि यह सही है। मुझे मान-सम्मान बहुत मिल चुके हैं पिछले पाँच सालों में—मानद डाक्टरेट, साहित्य अकादमी पुरस्कार, शिखर सम्मान, दो और पुरस्कार—आगरा के साहित्य वाचस्पति वगैरह। मेरे पास 10 प्रशस्ति-पत्र हं, पर वे सब आलमारी में रखे हैं। मेरे कमरे में सिर्फ एक चित्र टँगा है—गजानन माधव मुक्तिबोध का। भाऊ समर्थ मेरा पोर्ट्रेट बनाना चाहते हैं। मैंने यहाँ बैठे लोगों से कहा : 'अपने कमरे में अपना चित्र या 'पोर्ट्रेट' लगाना संस्कृतिहीनता है। मैं अपना 'पोर्ट्रेट कमरे में नहीं लगाऊँगा।'

कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं रही तो हमेशा यह हाय-हाय, असंतोष और बेचैनी किसलिए ? इसका कारण है—मैं कभी भी वैसा नहीं लिख सका जैसा लिखना चाहता था। यही दुख रहा। यही दुख इस क्षण भी है, जब यह लिख रहा हूँ। वे कितने सुखी हैं जो अपने लिखे को श्रेष्ठ मानते हैं, खुश होते हैं, संतुष्ट होते हैं। बार-बार खुद पढ़ते हैं और दूसरों को सुनाते हैं। 'छगन-मगन' हैं ये लेखक। कस्तूरी मृग हैं—अपनी नाभि को बार-बार सूँघते हैं और अपनी ही सुगंध से मस्त रहते हैं।

नौकरी की तलाश में खूब खाक छानी। हर जगह आवेदन भेज देता। जिस-तिस से मिलता। अपमान सहता। कभी 'गर्दिश के दिन' लिखा था, एक लेख। उसके कुछ अंश यहाँ देता हूँ :

—फिर नौकरी की तलाश। एक विधा मुझे और आ गई थी : बिना टिकिट सफर करना। जबलपुर से इटारसी, टिमरनी, खंडवा, इंदौर, देवास बार-बार चक्कर लगाने पड़ते। पैसे थे नहीं। मैं बिना टिकिट बे-खटके गाड़ी में बैठ जाता। तरकीबें बचने की बहुत आ गई थीं। पकड़ा जाता तो अच्छी अंग्रेजी में अपनी मुसीबत का बखान करता। अंग्रेज़ी के माध्यम से मुसीबत बाबुओं को प्रभावित कर देता और वे कहते : 'लैट्स हेल्प दॅ पुअर ब्वॉय।'

दूसरी विधा सीखी : उधार माँगने की। मैं बिलकुल निःसंकोच भाव से किसी से भी उधार माँग लेता। अभी भी इस विधा में सिद्ध हूँ।

तीसरी चीज़ सीखी बेफिक्री। जो होना होगा होगा, क्या होगा? ठीक ही होगा। मेरी एक बुआ थी। गरीब, ज़िंदगी गर्दिश भरी, मगर अपार जीवन-शक्ति थी उसमें। खाना बनने लगता तो उनकी बहू कहती : 'बाई, न दाल ही है न तरकारी।' बुआ कहती : 'चल चिंता नहीं।' राह-मोहल्ले में निकलती और जहाँ उसे छप्पर पर सब्जी दिख जाती, वहीं अपनी हमउम्र मालकिन से कहती : 'ए कौशल्या, तेरी तोरई अच्छी आ गई है। ज़रा दो मुझे तोड़ के दे।' और खुद तोड़ लेती। बहू से कहती : 'ले बना डाल, ज़रा पानी ज्यादा डाल देना।' मैं यहाँ-वहाँ से मारा हुआ उनके पास जाता तो वह कहती : 'चल, कोई चिंता नहीं। कुछ खा ले। नौकरी तो लग ही जाएगी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका यह वाक्य मेरे लिए ताकत बना : कोई चिंता नहीं। 'गर्दिश फिर गर्दिश'। होशंगाबाद शिक्षा अधिकारी से नौकरी माँगने गया। निराश हुआ। स्टेशन पर इटारसी के लिए गाड़ी पकड़ने के लिए बैठा था। पास में एक रुपया था, जो कहीं गिर गया था। इटारसी तो बिना टिकिट चला जाता। पर खाऊँ क्या? दूसरे महायुद्ध का ज़माना। गाड़ियाँ बहुत लेट होती थीं। पेट खाली। पानी से बार-बार भरता। आखिर बेंच पर लेट गया। 14 घंटे हो गए। एक किसान परिवार पास आ बैठा। टोकरे में उसके अपने खेत के खरबूजे थे, मैं उस वक्त चोरी भी कर सकता था। किसान खरबूजा काटने लगा। मैंने कहा : 'तुम्हारे ही खेत के होंगे। बड़े अच्छे हैं।' किसान ने कहा : 'सब नर्मदा मैया की किरपा है भैया ! शक्कर की तरह है। लो खा के देखो।' उसने दो बड़ी फाँकें दीं। मैंने कम-से-कम छिलका छोड़कर खा लिया। पानी पिया, तभी गाड़ी आई और हम खिड़की से घुस गए।

नौकरी जल्दी ही मिल गई वन विभाग में। इटारसी के बाद नागपुर लाइन पर पहला रेलवे स्टेशन है–ताकू। यहाँ एक बड़ा सरकारी 'टिंबर डिपो' है। यहाँ कुल आठ महीने के लिए मेरी नियुक्ति हुई पच्चीस रुपए महीने पर। मेरा पद था–'जमादार'। मेरे ऊपर डिपो ऑफीसर था। मेरे मातहत दो 'फारेस्ट गार्ड' थे। ये तीनों मुसलमान थे। डिपो ऑफीसर मेरी नियुक्ति से ही नाखुश था। मेरे पिता से उसकी पुरानी जान-पहचान थी। पर मेरे पिता ने उसके मुसलमान होने और अच्छा आदमी न होने की बात किसी से कह दी थी, जो उसे मालूम हो गई। उसने जाते ही मुझसे कहा : 'तुम्हारे वालिद ने फलाँ आदमी से कहा था कि मैं मुसलमान हूँ और तुम्हें तंग करूँगा।' और उसने तंग करना शुरू कर दिया। वह मेरी जगह किसी मुसलमान को चाहता था। मेरे मातहत दोनों फारेस्ट गार्ड मेरे खिलाफ षड्यंत्र करते थे। वे वहाँ 4-5 सालों से थे। इस माहौल में मैं घबड़ा गया और अक्सर काम में गलती कर बैठता।

मेरे साथ मेरे लठैत दादा गए थे। वे एकाध महीना रहे और पिताजी की तबीयत ज्यादा खराब होने का समाचार पाकर घर लौट गए। मैं अकेला रह गया। खुद खाना बनाता था। वहाँ दूध बहुत अच्छा और सस्ता मिलता था। मैं कुल सात रुपयों में अपना खर्च निकाल लेता था और अठारह रुपए घर भेज देता था। 1940 में इतने रुपए बहुत होते थे। डिपो से लगा रेलवे स्टेशन था। उससे लगभग डेढ़ किलोमीटर दूर बड़ी बस्ती थी। हर रेलगाड़ी वहाँ नहीं रुकती थी। सिर्फ पैसेंजर गाड़ियाँ रुकती थीं। रेल के आने की घंटी बजते ही, मैं दौड़कर स्टेशन पहुँच जाता। वहाँ मैं आदमी देखने जाता था। तो क्या हम डिपो के कर्मचारी आदमी नहीं थे? नहीं, हम चाबी से चलनेवाले गुड्डे थे। वही-वही चेहरे, वही-वही आवाज़ें, डिपो साहब की वही दाढ़ी। हमारी आपस में वही मुसकान और वही नफरत। हम छः आदमी एक-दूसरे से ऊबे हुए व्यक्ति थे। मैं वास्तविक मनुष्य देखने रेलगाड़ी पर जाता था। तरह-तरह के पुरुष, रंग-बिरंगी साड़ियाँ पहने स्त्रियाँ, प्यारे-प्यारे बच्चे। उन पाँच मिनटों में मेरी सारी उदासी चली जाती। मैं उत्फुल्ल हो जाता। मैं दुनिया से जुड़ जाता। आदमी को वास्तविक आदमी देखना कितना जरूरी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
दूसरी चीज़ जिसने मुझे दुनिया से जोड़े रखा, वह थी अखबार। मेरी अखबार पढ़ने की आदत थी। मैं उस थोड़े वेतन में से भी अखबार खरीदता था। नागपुर से निकलनेवाले दैनिक अखबार 'हितवाद' को मैंने पैसे भेज दिए थे। यह पत्र मुझे डाक से मिल जाता था। मैं इसे ध्यान से पूरा पढ़ जाता था। दूसरे महायुद्ध के बारे में मैं जानकरी लेता था और घटनाओं को डायरी में लिखता जाता था। सारे मोर्चे और सारी लाइनें मुझे 1945 तक याद थीं। सिगफ्रिड लाइन, मेजिनाट लाइन, डंकर्क, पर्ल हार्बर। मैं युद्ध का एक कुशल संचालक हो गया था। अभी भी 1939 से 1945 तक युद्ध की रोज़ पढ़ी हुई बातें मुझे याद हैं। मुझे याद है म्यूनिख पैक्ट पर पंडित जवाहरलाल नेहरू ने तत्काल टिप्पणी की थी : The Munish Pact is directed against the Soviet Union. म्यूनिख समझौते में फ्रांस और ब्रिटेन ने हिटलर को समर्पण कर दिया था और काफी पूर्वी यूरोप हिटलर को दे दिया था। इस तरह फासिस्ट पूँजीवाद और लोकतांत्रिक पूँजीवाद रूसी साम्यवाद के खिलाफ एक हो गए थे। ब्रिटेन और फ्रांस समझे थे फासिस्ट हिटलर हमें छोड़ देगा, पर हिटलर ने दोनों पर हमला किया।

ताकू फारेस्ट डिपो के जीवन के बारे में मैंने 'गर्दिश के दिन' में लिखा है :

मैट्रिक हुआ, जंगल विभाग में नौकरी मिली। जंगल में सरकारी टपरे में रहता। ईंट रखकर, उन पर पटिए जमाकर बिस्तर लगाता। ज़मीन चूहों ने पोली कर दी थी। रात-भर नीचे चूहे धमा-चौकड़ी करते रहते और मैं सोता रहता। कभी चूहे ऊपर आ जाते तो नींद टूट जाती, पर मैं फिर सो जाता। छः महीने धमा-चौकड़ी करते चूहों पर मैं सोया।

बेचारा परसाई? नहीं, नहीं, मैं खूब मस्त था। दिन-भर काम। शाम को जंगल में घुमाई। फिर हाथ से बनाकर खाया गया भरपेट भोजन—शुद्ध घी और दूध।

और चूहों ने बड़ा उपकार किया। ऐसी आदत डाली कि आगे की ज़िंदगी में भी तरह-तरह के चूहे मेरे नीचे ऊधम करते रहे हैं, साँप तक सर्राते रहे हैं, मगर मैं पटिए बिछाकर उन पर सोता रहा हूँ। चूहों ने ही नहीं, मनुष्यनुमा बिच्छुओं और साँपों ने भी मुझे बहुत काटा है, पर 'जहरमोहरा' मुझे शुरू में ही मिल गया। इसलिए 'बेचारा परसाई' का मौका ही नहीं आने दिया। उसी उम्र से दिखाऊ सहानुभूति से मुझे बेहद नफरत है। अभी भी दिखाऊ सहानुभूतिवाले को चाँटा मार देने की इच्छा होती है—ज़ब्त कर जाता हूँ, वरना कई ॰ चिंतक पिट जाते।

अध्यापकों का संगठन

मैं सरकारी नौकरी में था और 'प्रहरी' उग्र समाजवादियों का पत्र था, उसमें मुझे लिखने की पूरी छूट थी। मुझे इस बात का ध्यान रखना चाहिए था कि मैं राजनैतिक आलोचना करता हूँ और सत्ता कांग्रेस की है, पर मैंने यह सावधानी नहीं बरती। संपादकों को भी मुझे सलाह देनी चाहिए थी कि बचाकर लिखूँ। पर उन्होंने भी ऐसा नहीं किया। मुझमें लिखने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का आवेग बहुत था और विद्रोह भावना थी। मैं एक स्वतंत्र राजनैतिक व्यक्ति की तरह लिखता। इसकी रिपोर्ट हुई, ट्रेनिंग कॉलेज के प्रिंसिपल को अक्सर कैफियत देनी पड़ती। लिखने की धुन में मुझसे स्कूल के काम में भी भूलें होने लगीं। अब मैं अपने अफसरों और सरकार की नज़रों में बहुत खटकने लगा। जबलपुर में मैं अध्यापक और नए लेखक के रूप में कम जाना जाता था और सक्रिय समाजवादी कार्यकर्ता के रूप में अधिक।

मैंने बी.ए. कर लिया था और उच्च श्रेणी अध्यापक के पद के योग्य हो गया था। मैं चाहता था कि इसी स्कूल में मेरी पदोन्नति हो जाए। मैंने इसके लिए आवेदन भी दिया। हेडमास्टर शिवशंकर मिश्र साहित्यप्रेमी थे। वे संस्कृत और अंग्रेज़ी के विद्वान थे। वे मुझे चाहते थे। उन्होंने कहा : यहाँ तो जगह नहीं है। तुम पदोन्नति पर ज़ोर दोगे, कहीं तबादला हो जाएगा। एक-दो साल रुको। Take a philosophical view of things.

मैंने आवेदन वापस ले लिया। पर सरकार को शायद मुझे जबलपुर से बाहर भेजना ही था। तो जून के अंत में मुझे शिक्षा विभाग के निदेशक का आदेश मिला कि मेरा तबादला उच्च श्रेणी अध्यापक के पद पर हरसूद कर दिया गया। हरसूद खंडवा के पास एक कस्बा है। अब एक समस्या खड़ी हो गई। यह तो स्पष्ट हो गया कि सरकार मुझे जबलपुर से हटाना चाहती है। पर मुझमें लिखने की इतनी उत्कट आग थी और इतनी तीव्र अभिव्यक्ति-ऊर्जा थी कि मुझे और मेरे मित्रों को लगा कि हरसूद गया तो लिखना हो नहीं सकेगा।

तब 'प्रहरी' समाज की मंडली बैठी। पंडित भवानीप्रसाद तिवारी ने कहा—"तुम तय कर लो। लेखक रहना है, तो हरसूद मत जाओ। तुममें प्रतिभा बहुत है। हेडमास्टर बनना है तो हरसूद चले जाओ। जीविका का ऐसा है कि प्राइवेट स्कूल में नौकरी कर लो या पत्रकारिता करो।" मैंने अंततः सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया।

एक अध्यापक किशोरीलाल पांडे थे। बहुत सुंदर, आकर्षक और भरा व्यक्तित्व। महत्त्वाकांक्षी और अथक परिश्रमी। उनका व्यवहार इतना मधुर था और व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली कि शहर के एक प्रमुख व्यक्ति बन गए थे। बहुत लोकप्रिय। वे हितकारिणी हाईस्कूल में अध्यापक थे। वहाँ उनकी पटी नहीं। उन्होंने इस्तीफा दिया और एक 'न्यू एजुकेशन सोसाइटी' बनाई। वे खुद स्कूल खोलना चाहते थे।

किशोरीलाल पांडे चंदा करने के उस्ताद थे। वैसे तो कोई उनसे इनकार ही नहीं करता था। करे भी तो वे पीछे पड़कर चंदा लिए बिना छोड़ते नहीं थे। एक धनवान आदमी के घर हर एकादशी को सत्यनारायण की कथा होती थी। पांडे जी 6 महीने तक हर एकादशी को उनके घर सत्यनारायण की कथा सुनते रहे और ढाई हज़ार रुपए चंदा ले आए।

किशोरीलाल पांडे ने 'नवीन विद्या भवन' हाईस्कूल खोला और मैं वहाँ अध्यापक हो गया। मेरी लोकप्रियता का वे काफी फायदा उठाते थे और हम दोनों संस्था के लिए साथ काम करते थे। पांडे जी को पैसा खर्च करने का अनुपात नहीं आता था। वे ऊँचे स्तर की खर्चीली कल्पना में मगन रहते थे। नतीज़ा यह होता कि जो पैसा आता उसे वे ग़ैर-जरूरी दिखावटी चीज़ों में खर्च कर देते और फिर हाय-हाय करते। पैसा लेनेवाले सामने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
के दरवाज़े पर होते तो वे पीछे के दरवाज़े से खिसक जाते। पर वे पैसा कहीं-न-कहीं से ले आते थे। बड़े विकट कार्यकर्ता थे।

तब हमारी तरफ महाकौशल क्षेत्र में अध्यापकों का कोई संगठन नहीं था। प्राइमरी स्कूलों के अध्यापकों का संगठन था, जिसके अध्यक्ष 'प्रहरी' के संपादक समाजवादी नेता भवानीप्रसाद तिवारी थे। माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों का कोई संगठन नहीं था। नागपुर और विदर्भ में संगठन ज़रूर था। उधर एक डी.एच. सहस्रबुद्धे विकट संगठक थे। यह बात सन् 1952-53 की होगी। सहस्रबुद्धे हमारे प्रधानाध्यापक तथा गवर्निंग कमेटी के सचिव किशोरीलाल पांडे के मित्र थे। पांडे जी शिक्षकों के संगठन में रुचि लेते थे। उन्होंने मेरा परिचय सहस्रबुद्धे से कराया और मैं उनका सहयोगी हो गया। पांडे जी नहीं जानते थे कि मेरा शिक्षक संगठन में लाया जाना उन्हीं के लिए सिरदर्द होगा। पांडे जी अब शिक्षक नहीं रहे थे, स्कूल के मालिक हो गए थे। मेरी और उनकी टकराहट आगे चलकर हुई।

अब तो मैं देखता हूँ कि कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के प्रोफेसर जुलूस निकाल लेते हैं, रैली कर लेते हैं, विधानसभा का घेराव तक कर डालते हैं। मैं इनके संगठन में शुरू से सहयोगी रहा हूँ। पर 30-35 साल पहले माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों का संगठन करना, मेढ़कों को तौलने जैसा दुष्कर कार्य था। शिक्षक अपने को श्रमिक मानने को तैयार नहीं थे। अपने को ऋषियों की परंपरा के मानते थे। ऋषियों के ट्रेड यूनियन कहाँ होते थे? गुरु क्या कोई मज़दूर है, जो तनख्वाह बढ़ाने के लिए कहेगा ! गुरु गुरु है। तब अध्यापक का आदर आज से अधिक था। अध्यापक बाहर निकलता तो लोग उसके चरण छूते थे। वह सोचता : मैं, जिसे इतनी श्रद्धा समाज देता है, क्या रोज़ी-रोटी के लिए नारेबाजी करूँगा। लड़के क्या कहेंगे ? इनके माता-पिता क्या सोचेंगे ? मुझे शर्म आएगी। मैं इनकी नज़रों से गिर जाऊँगा। तब प्राइवेट स्कूल के अध्यापकों की नौकरी की कोई सुरक्षा नहीं थी। मनमानी करता था मैनेजमेंट। बहुत कम वेतन और वह भी समय पर नहीं। ये विद्यालय शिक्षा की दुकानें थे। अब भी हैं, पर अब ऐसे नियम-कानून बन गए हैं कि अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षा हो गई है। 35 साल पहले तो अध्यापक दैनिक वेतन-भोगी-जैसा था। उससे कह दिया जाता कि कल से काम पर मत आना, तो वह नहीं आता था। नौकरी बचाने का उसके पास कोई उपाय नहीं था। यह अधपेटा ऋषि रोज़ी-रोटी की लड़ाई को प्रतिष्ठा के विरुद्ध मानता था।

मैं नागपुर प्रांतीय अधिवेशन में गया। विदर्भ के अध्यापक बड़े लड़ाकू और उग्र थे। एक पाँच-फुटे मरियल गुरु जी ने खड़े होकर कहा : "अरे, प्रस्तावों से कुछ नहीं होगा। स्कूल के मैनेजरों को पकड़कर जब तक लड़कों के सामने जूते नहीं मारोगे, कुछ नहीं होगा।"

इसी अधिवेशन के समय मेरी भेंट कवि श्रीकांत वर्मा से हुई। वह बिलासपुर के माध्यमिक विद्यालय में अध्यापक थे।

इस अधिवेशन में सहस्रबुद्धे महासचिव हुए और मैं सहायक सचिव हुआ। इसके बाद ही जबलपुर माध्यमिक शिक्षक संघ का मैं अध्यक्ष चुना गया। मुझे अध्यक्ष बनवाया मेरे हेडमास्टर किशोरीलाल पांडे ने ही। उन्होंने सोचा होगा कि मेरा मातहत है तो जैसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहूँगा वैसा इससे करवाऊँगा। एक तरह से संगठन मेरे हाथ में रहेगा। पर उनका सोचना गलत निकला। पहला 'काम बंद' मैंने अपने ही स्कूल में पांडे जी के सामने करवाया।

मैं पूरी तरह अध्यापकों के संगठन में लग गया। अध्यापक बहुत संकोच करते थे। कहते थे : "हम लोग कोई मज़दूर हैं क्या? लोग क्या कहेंगे? मज़दूर की तरह तनख़्वाह बढ़ाने की माँग करना क्या गुरुओं को शोभा देता है?" मैं उन्हें समझाता : "हम श्रम करते हैं, तो श्रमिक हैं ही। हमारी हालत तो देखिए। जो हमारे साथ किया जाता है, वह दैनिक मज़दूर के साथ भी नहीं किया जा सकता। हम तो गुलाम सरीखे हैं। संगठित हो जाएँगे तो ताकतवर हो जाएँगे और न्याय पा सकेंगे।" अध्यापक डरते भी थे कि शिक्षक संघ में शामिल हुए तो हेडमास्टर और मैनेजर नाराज़ हो जाएँगे।

बड़ी मुश्किल से अध्यापकों को हम संगठन में लाते। एक गुरुजी तो इतने डरे हुए थे कि मैं जब भी उनके घर जाता, लड़का कह देता कि बाज़ार गए हैं। एक दूसरे गुरुजी का लड़का तो मुझे देखते ही कह देता : 'पिताजी बाथरूम में हैं। शाम को आइए।' एक गुरु दिन-भर बाज़ार में रहते और दूसरे दिन भर बाथरूम में। पर मैं पीछे पड़ा ही रहता। कुछ तरुण अध्यापक मेरे साथ उत्साह से काम करते थे। पाठक नाम के एक बुजुर्ग शिक्षक बहुत दमदार थे। वे कहते : 'अरे परसाई, ये ज़िंदा मुर्दे हैं। मारे जाओ कोड़े। कभी जाग जाएँगे।'

हमने एक जुलूस निकालकर तिलकभूमि में सभा करने का प्रयोग किया। प्रांतीय सरकार के किसी नए आदेश का विरोध हमें करना था। करीब सौ अध्यापक लेकर हम महाकौशल स्कूल से जुलूस की शक्ल में चले। तिलकभूमि पहुँचे तो कुल साठ बचे थे। बाकी चालीस गायब। अवस्थी ने कहा : 'यार, रास्ते में सड़क से लगी जो गली पड़ती उसी में कुछ अध्यापक पेशाब करने बैठ जाते और जुलूस दूर निकल जाता, तब उठकर घर खिसक जाते।'

अब उस विरोध सभा का यह हाल रहा। हम कई अध्यापक उस सरकारी आदेश के खिलाफ गरमागरम बोले। माँग की कि आदेश तुरंत वापस लिया जाए। सभा की अध्यक्षता कर रहे थे बाबूराव ओक। ये भी चंदा-उस्ताद थे। 'ओक चेरिटी ट्रस्ट' बना रखा था और लाखों रुपए दान में लेते थे। दो स्कूल चलाते थे। ट्रस्ट की 3-4 और इमारतें भी थीं। ट्रस्ट की घपलेबाज़ी सब जानते थे। बाबूराव ओक हेडमास्टर भी थे और प्रबंध समिति के सदस्य भी। सबको खुश रखते थे। वे बोलने को खड़े हुए तो हमें आशा थी कि बुजुर्ग ज़ोरदार विरोध करेंगे, पर वे बोले : 'जैसे भगवान के राज में देर है, पर अंधेर नहीं है, वैसे ही मुख्यमंत्री पंडित रविशंकर शुक्ल के राज में देर हो सकती है, पर अंधेर नहीं होगा। उनकी कृपा-दृष्टि हम दीन अध्यापकों पर पड़ेगी। सियावर रामचंद्र की जय ! पंडित रविशंकर शुक्ल की जय !' हमने माथा ठोंका और सभा खत्म कर दी।

उन दिनों प्रदेश के गृहमंत्री पंडित द्वारिकाप्रसाद मिश्र थे। विद्वान थे, विद्याव्यसनी थे, साहित्यिक थे। मगर शासक के रूप में वे कठोर माने जाते रहे। वे 'लौह पुरुष' कहलाते थे। उन्होंने विधानसभा में पेश करने के लिए एक 'स्कूल कोड बिल' तैयार किया। यह अध्यापक-विरोधी था। शिक्षकों के अधिकार और स्वाधीनताएँ छीन ली गई थीं। हमने इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
विरुद्ध प्रांत व्यापी आंदोलन किया और अंततः सरकार को वह बिल वापस लेना पड़ा।

आरंभ में मेरे जैसे नेता को मज़दूर-आंदोलन का कोई अनुभव तो था नहीं। अध्यापक भी कोई ठोस औद्योगिक मज़दूर नहीं थे। संगठन था ढीला-ढाला। मैं तो तब श्रम-कानून भी नहीं जानता था। मैं जो सीखता था, वह प्राथमिक शिक्षक संघ के अध्यक्ष पंडित भवानीप्रसाद तिवारी से। तिवारी जी मूल रूप से कवि थे। वे सुरक्षा सामग्री के यानी तोप, बारूद, राइफल बनानेवाले कारखानों की यूनियन के भी अध्यक्ष थे। तब की इनके राष्ट्रीय नेता एस.एम. बनर्जी थे। मैं ढीले शिक्षक संगठन को लेकर उग्र आंदोलन चलाना चाहता था, जो हो नहीं सकता था। मैनेजर की एक भृकुटी पर शिक्षक हमसे कट जाता था। हम अपीलें निकालते, प्रतिनिधि मंडल लेकर मैनेजमेंट से मिलते, निवेदन करते, कभी अदालत जाने की हल्की-सी धमकी दे देते। पर धीरे-धीरे दम आई। दम आने का बड़ा कारण तो यह था कि मैं कोई भी खतरा उठा सकता था। मेरे पारिवारिक दायित्व खत्म हो चुके थे। मैं अकेला रह गया था। मेरा छोटा भाई किताबें बेचने का धंधा करता था।

मैंने पहली लड़ाई अपने ही स्कूल में कराई और उन्हीं किशोरीलाल पांडे के खिलाफ जिन्होंने मुझे नेता बनाया था। पांडे जी की सबसे बड़ी शक्ति थी उनका मोहक व्यक्तित्व, तरल मुस्कान और वाणी की अतिशय मिठास। वे कुछ माँगते तो कोई 'न' नहीं कर सकता था। मगर वे अब हेडमास्टर तथा प्रबंध समिति के सचिव हो गए थे। यानी कार्यकर्ता से मालिक हो गए थे। उनमें अहंकार भी आ गया था। उन्होंने अपने कमरे के दरवाज़े पर मोटा पर्दा लगा लिया था और भीतर टाइपराइटर लिए बैठे रहते थे। मोहक आदमी चला गया था, काला टाइपराइटर आ गया था। वेतन बहुत कम देते और वह भी किस्तों में। चाहे जिस अध्यापक को चपरासी टाइप किया काग़ज़ दे जाता, जिसमें कैफियत तलब की जाती। वे जब बात भी करते तो डाँटते और शिक्षक का अपमान करते। सब परेशान थे। क्या किया जाए? मैंने पांडे जी से कहा : 'देखिए, वेतन कम और किस्तों में। किसी के घर में ज़रूरत के लायक आटा-दाल नहीं होता। भुखमरी की स्थिति है। इधर आपने अपनी सबसे बड़ी ताकत—व्यक्तित्व की मोहकता, वाणी की मिठास, मुस्कान त्याग दी है। यह होती तो लोग तकलीफ भी भोग लेते और शिकायत नहीं करते। तनख़्वाह आप देते नहीं हैं, मगर डाँटते और कैफियत तलब करते हैं। आप पहले जैसे हो जाइए और आर्थिक मामले थोड़े सुधार लीजिए।' इस पर पांडे जी का जवाब था : 'परसाई जी, संस्था अभी बन रही है। तकलीफ सबको सहनी पड़ेगी। जो नहीं सह सकते, वे छोड़कर चले जाएँ। अनुशासन-भंग मैं किसी भी तरह बर्दाश्त नहीं करूँगा।'

आखिर मैंने शिक्षकों की 2-3 मीटिंगें लीं। कुछ करना ही पड़ेगा। लोग तंग थे, पर डरते भी थे। बाकायदा नोटिस देकर दीर्घकालीन हड़ताल करने की हमारी ताकत नहीं थी। हम प्रतीकात्मक रूप से सामूहिक असंतोष ज़ाहिर करना चाहते थे। दो पीरियड के बाद दस मिनिट की छुट्टी होती थी। हमने तय किया कि छुट्टी खत्म की घंटी पर हम कक्षा में न जाएँ। तीसरे पीरियड में कोई शिक्षक कक्षा में नहीं आया। हम सब टीचर्स-रूम में बैठे रहे। मैं दरवाज़े के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर खड़ा था। पांडे जी आए। गुस्से में थे उन्होंने मुझे देखा। मैंने उन्हें देखा। कोई कुछ नहीं बोला। पांडे जी वापस लौटे और चपरासी से कहा कि पूरी छुट्टी की घंटी बजा दो।

डॉक्टर बराट प्रबंध समिति के अध्यक्ष थे। दूसरे दिन उन्होंने हमें बुलाया। पांडे जी थे, मैं था, दूसरे सदस्य थे। मैंने सारी बातें समझाईं। यह भी कहा कि हमने हड़ताल की ही नहीं। मगर आप लोगों को वेतन का इंतजाम तो करना चाहिए। डॉक्टर बराट बड़े संवेदनशील हैं। उन्होंने तीन सदस्यों की एक अर्थ समिति बिठाई और अगले महीने से वेतन में काफी सुधार हुआ। इसकी खबर सब जगह फैली और यह हमारी बड़ी जीत मानी गई। मैनेजमेंटों ने मुझसे नफरत करना चालू कर दिया।

एक नाटकीय भूख हड़ताल मैंने और कराई। स्कूलों में पढ़ाई 31 मार्च तक होती है। फिर अप्रैल में परीक्षाएँ होती हैं। फिर मई-जून की छुट्टी। तब आम बात थी, कि पाँच-पाँच साल तक नए अध्यापक को 31 मार्च को नौकरी से अलग कर दिया और जुलाई में फिर नियुक्त कर लिया। इस तरह मैनेजमेंट तीन महीने की फीस बचा लेता था। जब छात्र ही नहीं हैं, तो अध्यापक को वेतन क्यों देना। जब ढोर ही नहीं हैं तो चरवाहे को मज़दूरी क्यों देना। अध्यापक विवश थे। साल में नौ महीने का वेतन पाते थे। फिर यह भी पक्का नहीं था कि जुलाई में फिर नियुक्ति हो ही जाएगी।

महाराष्ट्र स्कूल में एक अध्यापक था जवाहरलाल नाम का। उसका चौथा साल था और उसे फिर नोटिस मिल गया कि 31 मार्च से सेवाएँ समाप्त। मैं उस स्कूल में गया। छुट्टी में अध्यापकों की मीटिंग ली। सबने कहा कि यह बेईमानी यहाँ आम है। मैंने कहा : 'कुछ किए बिना तो कुछ नहीं सुधरेगा। आप लोग हड़ताल को तो तैयार होंगे नहीं। ऐसा करें—ये जवाहरलाल परसों स्कूल खुलते ही अध्यापक-कक्ष में आमरण अनशन पर बैठ जाएँ। आप लोग माला-वाला डाल दीजिए इन्हें। बाकी मैं देख लूँगा। इन्हें कुछ घंटे ही बैठना पड़ेगा। इस मैनेजमेंट की तीन रिपोर्टें तो मैंने ही शिक्षा मंत्री को की हैं। यह डरता है।'

जवाहरलाल अनशन पर बैठ गए। थोड़ी देर में भीड़ लग गई। हेडमास्टर और प्रबंध समिति के सबसे प्रभावशाली सदस्य बाबूराम ओक आए। बोले : 'हे काय आहे ?' इससे आगे वे नहीं बोले। जवाहरलाल ने अपना माँग-पत्र उनके हाथ दिया। उन्होंने पढ़ा। मैंने पूछा : 'ओक साहब, ऐसा आप क्यों करते हैं।' ओक ने सफाई दी : 'मैं तो इनको अलग नहीं कर रहा था। पर लेले मास्टर अड़ गए।' मैं लेले साहब के पास गया। वे बोले : 'वह शिक्षक अनुशासनहीन है।' मैंने कहा : 'अगर वह अनुशासनहीन हैं, तो चार सालों से आप उसे बार-बार नियुक्त क्यों कर रहे हैं?' लेले मास्टर ने कहा : 'कमेटी के सेक्रेटरी भाऊ साहब मुले हैं। उन्हीं से पूछिए।' मैं मुले के पास गया। वे किराने की दुकान करते थे। उन्होंने कहा : 'सारी गड़बड़ी ये बाबूराम ओक और नीलकंठ लेले करते हैं। हमको तो दुकानदारी से ही फुरसत नहीं है।'

मैं जब दुबारा स्कूल पहुँचा तो वहाँ लेले; ओक और मुले तीनों व समिति के 5-6 सदस्य और थे। मैंने कहा : 'बड़ा अन्याय करते हैं आप लोग। आगे हम बर्दाश्त नहीं करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हम आप लोगों से नहीं डरते अब। ये जवाहरलाल अनन्त काल तक अनशन करते रहेंगे। आप लोग अपना फैसला बदलिए और इनकी नौकरी जारी रखिए। अभी मैं समझौता कराने में लगा हूँ। रात के बारह बजे के बाद यानी कल मैं इन जवाहरलाल का पक्ष ले लूँगा और जबलपुर के सारे स्कूलों के अध्यापकों की 'जनरल स्ट्राइक' का आह्वान कर दूँगा। तब आप सँभालिए।'

वे डरे। ओक साहब ने कहा : 'अब शाम हो गई है। प्रबंध समिति की बैठक बुलानी पड़ेगी। इतनी जल्दी कैसे संभव होगा?'

मैंने कहा : 'आपके सारे सदस्य राइट टाउन और नेपियर टाउन में रहते हैं। एक घंटे में सबको नोटिस मिल जाएगा। आधी रात के पहले फैसला कर लीजिए वरना कल जो हो, वह भुगतिए।'

तीनों ने अलग जाकर सलाह की।

रात को दस बजे प्रबंध समिति ने तय किया कि पहले का आदेश निरस्त किया जाता है। जवाहरलाल की नौकरी जारी रहेगी। तब तक वहाँ दूसरे स्कूलों के भी सौ-डेढ़ सौ अध्यापक इकट्ठे हो गए थे। खूब जय-जयकार हुआ। अब अनशन तुड़वाना था। मुसम्मी का रस बुलवाने की बात उठी। मेरे कर-कमलों से गिलास जवाहरलाल को देना था। उतनी रात को कहाँ से मुसम्मी लाई जाए। मैंने कहा : 'देखिए, यह जवाहर सुबह साढ़े दस बजे खूब भरपेट खाकर यहाँ बैठा था। अभी कुल बारह-तेरह घंटे तो हुए ही हैं। इसे मुसम्मी के रस की क्या ज़रूरत? वह सिनेमा के पास का होटल अभी खुला है। वहाँ से समोसे ले आओ और इन्हें खिला दो।' मैंने अपने कर-कमल से समोसा जवाहर के मुँह में दिया और तालियाँ बजने लगीं।

क्रिश्चियन स्कूल में भी कुछ संघर्ष हुआ। मैं हर स्कूल के मामले में दखलंदाजी करता था। जहाँ से कोई ऐसी-वैसी खबर मिलती, मैं मैनेजर और हेडमास्टर के सिर पर सवार हो जाता।

ये मालिक लोग तंग आ गए। मुझसे पिंड छुड़ाना ज़रूरी था। इन्होंने अध्यापकों पर दवाब डाला। डराया। आगामी चुनाव में अपना आदमी खड़ा किया।

चुनाव हुआ और मैं बुरी तरह हार गया। मैनेजमेंट का आदमी अध्यक्ष हो गया। थोड़ी देर बाद मैदान में अध्यापकों ने मुझे घेर लिया और कहा : 'हम बहुत शर्मिंदा हैं। पर हम मजबूर थे। पेट का डर सबको है। आप हारने के बाद भी हमारे नेता हैं।' मैं प्रादेशिक संगठन का उपसचिव फिर भी रहा।

तब जबलपुर के कुछ व्यक्तित्व

तब शहर में बहुत प्रतिभाएँ थीं। पंडित केशव प्रसाद पाठक थे। हिंदी, उर्दू, अंग्रेज़ी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान। यूरोप की रोमांटिक कविता उनके बराबर कोई नहीं जानता था, वे कवि थे। रहस्यवादी थे। भाषा के मास्टर थे। उनके कई गीत हैं। रहस्यवादी काव्य में वे महादेवी से बराबर पड़ते हैं। लिखा बहुत कम है। उमर ख़य्याम की रुबाइयों का हिंदी अनुवाद उनका सबसे अच्छा है। मगर ज़िंदगी को वे रूमानी चश्मे से देखते थे और बेहद शराब पीने लगे थे। अच्छा पैतृक छापाखाना था, पर उसे नहीं चलाया और टाइप बेच-बेचकर पीते गए। फर्नीचर की दुकान खोली। उसे भी पी गए। इस सब पर उनकी जय-जयकार होती थी। अरे, वह केशव पाठक है। बादशाह है कविता का। वाह पाठक जी! वे कवि-सम्मेलन के मंच पर नशे में लड़खड़ाते हुए आते तो दूसरे कवि, भवानीप्रसाद तिवारी तक, चिल्लाते : 'अरे बादशाह आ रहा है।' बादशाह को मैंने दस-बारह साल बहुत पास से देखा। सुबह से लेकर शाम तक वे एक ही काम करते थे—शाम को एक पौआ शराब के लिए पैसे का इंतज़ाम। इससे माँगा, उससे माँगा। कुल दस-बारह साल रचना-काल रहा। पढ़ना भी बंद कर दिया था। इस सामंती भावुक शहर ने जय-जयकार करके, कमज़ोरियों को महिमा देकर कवि को असमय मार डाला। वे लगभग 55 साल की उम्र में क्षय से मरे। छिंदवाड़ा सेनेटोरियम में मैं ही उन्हें भरती करा आया था। सामंती संस्कार के कस्बे ने उन्हें मार डाला।

पंडित भवानीप्रसाद तिवारी प्रखर व्यक्तित्व के आदमी थे। बड़े दबंग नेता थे। बहुत प्रभावी वक्ता थे। श्रोताओं को चाहे जैसा हिलाते-डुलाते थे। साहसी थे, संघर्षशील थे। उनमें बेपरवाही और मस्ती थी। वे इलाके के 'हीरो' थे। उनका कुछ भी प्राइवेट नहीं था। सब खुला जीवन था। उनमें अपार धीरज था, असीम सहनशीलता थी, अथाह गंभीरता थी। मैंने थोड़े उनसे ये गुण सीखे। वे विचलित नहीं होते थे। परिवार के प्रति गैर ज़िम्मेदार और पूरी तरह जनता को समर्पित। अपनी सफलता, हीरो होना, शहर पर राज करना—एक तरह के नशे में रहते थे। बहुत छोटी उम्र में, 35 साल के आसपास वे 'पंडित जी' कहलाने लगे थे। जिस रास्ते से निकल जाते, दोनों तरफ से लोग आकर चरण छूते थे। कवि अच्छे थे। 'गीतांजलि' का बहुत अच्छा अनुवाद किया था। इतनी छोटी उम्र में जय-जयकार से घिर गए, पूजा होने लगी। प्रकृति से रूमानी थे ही। बस आलसी हो गए, पूरी तरह अलाल। अब कुछ करने की ज़रूरत ही नहीं थी। परिवार है, आगे क्या होगा, वे सोचते ही नहीं थे। ज़िंदगी रूमान-ही-रूमान थी। सुबह से मुँह में तमाखू डालकर बैठ जाते। अखबार पलट लेते। भक्त-मंडली आ जाती। गप्पें होतीं। ठहाके लगते। दोपहर को पंडित जी पेट में दाल-भात भरकर जो सोते, तो शाम को उठते। शाम को किसी अड्डे पर पहुँच जाते तो दो बजे रात को घर लौटते। भाँग का गोला शाम को ही कोई भक्त दे जाता। पंडितानी कटोरे-भर दूध में दो रोटियाँ डालकर रख देती थीं। पंडित जी दूध-रोटी खाकर सो जाते।

कारण क्या था? बहुत छोटी उम्र में चारों तरफ से जय-जयकार, श्रद्धा और भक्ति। इस शहर ने एक और उद्भट व्यक्तित्व को असमय मार डाला। पंडित जी में अद्भुत गुण थे। वे द्वेष-ईर्ष्या से परे थे। अपना नुकसान करनेवालों से भी स्नेह करते थे। किसी की निंदा नहीं करते थे और न सुनते थे। कोई किसी की निंदा करे तो वे कहते : 'अरे छोड़ो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाई, मनुष्य ऐसा ही होता है। वे शालीनता नहीं छोड़ते थे। बर्नार्ड शॉ ने कहा है : 'Courage is grace under pressure.' यह तिवारी जी पर लागू होता था। मेरा-उनका रिश्ता बड़े और छोटे भाई का था। मैंने उनसे बहुत सीखा। काश, यह शहर उन्हें अकर्मण्य न बनाता। वे बहुत लिखते, बहुत ऊँची पत्रकारिता करते और बहुत बड़े नेता होते। राजनीति में ऐसे ईमानदार आदमी दुर्लभ हैं।

'प्रहरी' के दूसरे संपादक रामेश्वर गुरु बहुत सुदर्शन पुरुष थे। 'क्राइस्ट चर्च ब्वॉयज़ हाईस्कूल' में गणित के अध्यापक और बड़े पत्रकार थे। जीवन-भर वे 'अमृत बाज़ार पत्रिका' के प्रतिनिधि रहे। वे साहित्य के अध्येता थे और अद्भुत गद्य लिखते थे। ऐसा मार्मिक सशक्त गद्य मैंने बहुत कम पढ़ा है। दूसरे, वे अकेले एक 'एनसाइक्लोपीडिया' हैं। कितने विषयों का कितना ज्ञान है उन्हें। अभी भी मैं उनसे पचास साल पहले का कोई राजनैतिक-साहित्यिक संदर्भ पूछ लेता हूँ और वे तत्काल बता देते हैं।

हँसमुख, मिठ-बोले, विराट परिचय और व्यापक संबंधों के आदमी। हर सड़क और गली में उनके कक्का जी, बुआ जी, भौजाई और मौसी होती थी। उनमें दो कमज़ोरियाँ हैं—एक तो सबके प्यारे बनने की कोशिश करना और दूसरे, किसी को 'नहीं' कहने का साहस न होना।

गुरुजी अत्यंत स्नेही आदमी हैं। पहले परिचय के बाद उन्होंने मुझे इतवार को भोजन के लिए निमंत्रित कर दिया। मैं 11 बजे पहुँचा तो वे घर पर नहीं थे। मैं इंतज़ार करता रहा। बारह बज गए, एक बज गया, दो बज गया। घर में मैं किसी और सदस्य को जानता नहीं था। एक लड़का पूछ जाता : 'कोई ज़रूरी काम है क्या?' मैं कैसे कहता कि मुझे उन्होंने भोजन के लिए बुलाया था। भीतर स्त्रियों की 'ठिल-ठिल' मुझे सुनाई देती : 'कैसा आदमी है। बैठा है तो बैठा ही है। कुछ बताता ही नहीं है।' इतने में अध्यापक अवधेश प्रसाद गौतम आ गए। उनसे मैंने कहा तो वे खूब हँसे। बोले : 'तुम भी गुरुजी के चक्कर में आ गए। अरे, वे खुद किसी दूसरे के यहाँ खाना खा चुके होंगे।' वे सचमुच नारद जी के घर खाना खाकर लेटे थे और मैं उनका मेहमान भूखा बैठा था। गौतम पास में ही अपने घर ले गए और मुझे भोजन कराया।

गुरुजी के दो शौक थे—नमकीन चटपटी चीज़ें खाना और पत्र लिखना। न जाने कितने पत्र वे रोज़ लिखते थे। आगे चलकर मैंने उनके साथ मिलकर 'वसुधा' मासिक पत्रिका निकाली। यह विस्तार से आगे लिखूँगा।

गुरु जी नए लेखकों को बहुत प्रोत्साहन देते थे। घर बुलाते। उनकी रचना सुनते। सुधारते। मिठाई खिलाते। फिर रचना छापते। वे खुद कई तरह की कविता और गद्य रूप लिखते थे। मैं तो चमत्कृत था, सवैया से लेकर दादरा और प्रगतिशील काव्य तक लिखते थे। लोकगीतों को यों ही बोल देते। गद्य में नाटक, कहानी, रेखाचित्र, चुटकुले, सब लिखते।

तब जबलपुर के बौद्धिक जगत् में सबसे प्रबुद्ध रामेश्वर गुरु ही थे। उनमें और भवानीप्रसाद तिवारी में बारीक स्पर्धा थी। तिवारी जी मंच के हीरो थे, गुरु जी टेबिल टॉक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के उस्ताद थे। महत्त्वाकांक्षी गुरुजी भी थे, पर संकोची स्वभाव के कारण 'नहीं' में से 'हाँ' निकलवाते थे। एक बार मेयर के पद के लिए उनमें और तिवारी जी में मतदान हो गया। गुरुजी जीत गए। तिवारी जी हार गए। बाहर बरामदे में निकले तो दोनों रोने लगे और लिपट गए। दूसरी तरफ इस पूरे कांड के रचयिता, मित्रों को लड़ानेवाले उस्ताद गुलाबचंद गुप्त मुँह में अँगुली डालकर उलटी कर रहे थे और रो रहे थे : 'हाय, मेरे कलेजे का एक टुकड़ा भवानी और दूसरा गुरु। आज दोनों लड़ लिए। मुझे मौत आ जाए तो अच्छा हो।'—और लड़वाया इन्हीं ने था। लेकिन तिवारी जी और गुरुजी में मैत्री बनी रही।

गुरुजी के बारे में बड़े भ्रम हैं। एक तो यह कि वे बालक की तरह भोले हैं जबकि सच यह है कि वे चतुर, चालाक, योजना से काम करनेवाले आदमी हैं। दूसरा भ्रम है कि वे लापरवाह हैं। लेकिन वास्तव में वे बहुत सावधान, सधे हुए, मेहनती और अनुशासित व्यक्ति हैं। वे फाइलिंग के उस्ताद हैं। किसी संदर्भ की चार लाइनों के अखबारी समाचार की कटिंग भी उनकी फाइल में मिल जाएगी। एक भ्रम यह कि कोई भी उन्हें बुद्धू बनाकर काम करा सकता है, यह भी भ्रम ही है। वे योजना से बुद्धू बनते हैं। उन्हें बेवकूफ नहीं बनाया जा सकता। एक भ्रम यह कि इतने उदार हैं कि अपनी लंगोटी भी उतारकर दे देते हैं। पर मैंने उन्हें कई की लंगोटी उतरवाते देखा है। मित्रों पर पैसा दिल खोलकर खर्च करते हैं, पर उड़ाऊ नहीं हैं।

ये न समझो कि फकत ठूँठ हूँ मैं / मये-मंसूर के दो घूँट हूँ मैं
जिसपे लैला हुई सौ बार सवार / हल्फ़िया कहता हूँ वो 'ऊँट' हूँ मैं।

ये हजरत 'ऊँट' शहर की सबसे अजीम हस्तियों में थे। शहर की कला-चेतना, संस्कृति, साहित्य-साधना, तहजीब जिन पर टिकी थी, उनमें वे सबसे आगे की पंक्ति में थे। वे वास्तव में 'ऊँट' जैसे थे, जो व्यंग्य लिखने का उनका तखल्लुस था। 'प्रहरी' में उन्होंने धारावाहिक 'जज़्बाते-ऊँट' लिखा। उसके बाद उसी नियमितता से धारावाहिक रूप से हिंदी-भाषियों को 'ग़ालिब' की शायरी अद्भुत सहजता से समझाई। दोनों पुस्तक रूप में बाद में छपे। वे बहुत गंभीर काव्य भी लिखते थे। नगर निगम प्रांगण में सुभद्राकुमारी चौहान की प्रतिमा पर उनकी ये पंक्तियां अंकित हैं :

जानते हैं सब तुम्हें उद्दाम हो, उद्दंडिका हो,
आग हो, तूफान हो, भूचाल हो, रणचंडिका हो,

और रूमानी गीतों की लड़ी : 'उनींदी रातें'

पिछले पहर नींद की वेला / तुम आ पहुँची नेह जताने।

कहानियाँ भी लिखते थे। एक संग्रह है : 'हम इश्क के बंदे हैं'। अनुवाद करते थे। चेखव की कहानियों का सबसे पहले अनुवाद उन्हीं ने 'सरस्वती' में किया था।

'अनीस' के मरसिए 'करबला' पर टिप्पणियों सहित बड़ी किताब लिखी। इसके लिए कठिन शोध कार्य किया।

'प्रेमा' मासिक पत्रिका निकाली, जिसके कुछ ही अंक निकले। प्रकांड विद्वान थे। गंभीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अध्येता थे। हिंदी, अंग्रेज़ी, उर्दू, फ़ारसी के परम विद्वान थे। बहुपठित थे। विद्याव्यसनी थे।

साढ़े-छः फीट से अधिक ऊँचे, दुबले बाबू रामानुजलाल श्रीवास्तव इंडियन प्रेस की शाखा के मैनेजर थे। एक बड़े बँगले में डिपो और दफ़्तर था। ऊपर रहते थे। तब हमारे यहाँ इंडियन प्रेस की ही पाठ्य-पुस्तकें चलती थीं। रामानुज बाबू खूब वेतन और कमीशन पाते थे। नवाब की तरह रहते थे। उनके मिज़ाज में लखनऊ की सामंती शान तथा आधुनिक जीवन पद्धति और चेतना मिले हुए थे।

इतने ऊँचे व दुबले आदमी सब तरह के कपड़ों का शौक करते थे—शेरवानी और चूड़ीदार पाजामा, छींट की अचकन, कुरता-पायजामा, सूट और टाई। यही नहीं, यह आदमी हाफ पेंट और हाफ शर्ट पहनता था।

रामानुज बाबू खिलाड़ी भी थे। 'जबलपुर क्लब' जिनके दम पर चलता था, उनमें वे प्रमुख थे। टेनिस के उस्ताद। रोज़ शाम को टेनिस खेलते। ब्रिज खेलने में भी माहिर थे। 'बार' उनकी दम पर आबाद रहता। वे हर महफिल की शान थे। बहुत गंभीर, साथ ही बहुत विनोदशील भी। अपने सम्मान के जवाब में उन्होंने भरी सभा में कहा : 'मैं गद्य में, पद्य में और मद्य में तीनों में पारंगत हूँ।' एक समारोह में वे ठीक वक्त पर पहुँचे। हॉल खाली था। पीछे-पीछे मैं चला आ रहा था। मुझे देखा तो बोले : 'The tragedy of being punctual is that there is no one to appreciate it.' सैकड़ों लतीफ़े और मज़ाक उनके खाते में जमा हैं।

वे अकेले एक साहित्यिक आंदोलन थे। मध्ययुगीन भक्त कवियों-जैसी श्रद्धा उनमें साहित्य के प्रति थी। वे साहित्य के मामले में कोई समझौता नहीं करते थे। धंधे में नुकसान उठाकर भी साहसी और स्पष्टवादी थे। पंडित द्वारिकाप्रसाद मिश्र से उनकी व्यक्तिगत मित्रता थी। मिश्र जी मध्यप्रदेश के गृहमंत्री हो गए। सब जानते हैं कि मिश्र जी कठोर शासक थे। तभी उनका महाकाव्य 'कृष्णायन' प्रकाशित हुआ। एक साहित्य सभा में मिश्र जी की उपस्थिति में दो सरकारी कॉलेजों के आचार्यों ने 'कृष्णायन' की बेहद भटैती की। रामानुजलाल श्रीवास्तव बर्दाश्त न कर सके। वे खड़े हो गए, बोले और आचार्यों को बहुत लताड़ा।

अत्यंत उदार दिल के रामानुज बाबू साहित्यिक गतिविधियाँ चलाते रहते थे। वे अच्छे संगठक भी थे। मेरे प्रति उनका विशेष स्नेह था। 'प्रगतिवाद' से चिढ़ते थे, पर मेरे यथार्थवादी लेखन के प्रशंसक थे।

उनकी शव-यात्रा में उन्हीं का लिखा गीत गाया गया, जिसके कुछ शब्द हैं :

ये मस्त चला इस बस्ती से थोड़ी-थोड़ी मस्ती ले लो।
इसने तो पाई सब कुछ खोकर तुम इससे सस्ती ले लो।

यह निरभिमानी, विनम्र पर गरिमामय व्यक्तित्व हमें बहुत कुछ सिखा गया। उर्दू-फ़ारसी के प्रकांड विद्वान महादेव प्रसाद श्रीवास्तव 'सामी' यहीं रहते थे। वे फ़ारसी के काव्य-सिद्धांतकार और समीक्षक थे। गोल काली टोपी पहनते और बीड़ी फूँकते। अंग्रेज़ी क्लासिकल तथा रोमांटिक काव्य के मर्मज्ञ। हम लोग उन्हें नहीं समझते थे। केशव पाठक और रामानुज बाबू उन्हें कुछ-कुछ समझते थे। वे अवहेलित मनीषी थे। अंतिम वर्ष बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कष्ट में बीते। उनकी शवयात्रा में कुल 15-20 आदमी थे।

मेरे हम उम्रों में श्री बाल पांडे थे। वे प्रखर वर्ग-चेतना के कवि थे और बहुत प्यारे गीत भी लिखते थे। मेरा-उनका 1950 से साथ है। 'वसुधा' निकालने में उनका विशेष सहयोग रहा। वे प्रबंध संपादक थे और दिन-भर सुरक्षा कारखाने की नौकरी करके रात एक बजे तक 'वसुधा' का काम करते थे। कवि-सम्मेलनों में श्री बाल बहुत जमते थे।

गोविंदप्रसाद तिवारी हमसे कुछ बड़े थे। अध्यापक थे। अत्यंत भावुक और भोले आदमी। कवि बहुत अच्छे थे। स्वाधीनता आंदोलन में जेल भी गए थे। वे हम नवतरुणों को बहुत प्यार करते और बहुत प्रोत्साहित करते थे।

प्रभातकुमार तिवारी 'प्रभात' सबसे कम उम्र के उन्माद की हद को पहुँचे हुए उग्र कवि थे। वे मेधावान छात्र थे, तबसे मैं उन्हें जानता था। वे व्यक्तिगत रूप से मुझसे जुड़े थे। उन्होंने उर्दू सीख ली थी। कैफ़ी आज़मी, अली सरदार जाफ़री, मखदूम मुहिउद्दीन की लाइन पर चल रहे थे। तब जवाहरलाल नेहरू इन कम्युनिस्ट शायरों की नज़र में 'साम्राज्यवाद का कुत्ता' थे। पार्टी का यही विश्लेषण और मूल्यांकन था। दूसरे तब इन्हें और पार्टी को कल ही क्रांति होती नज़र आती थी। साम्यवादी आंदोलन में वह रणदिवे काल था। ये सारे बहिर्मुख शायर गाली-गलौज की हद तक शायरी को ले जाते थे।

'प्रभात' भावुक थे, अव्यावहारिक थे, उग्र थे, जल्दबाज़ थे और मार्क्सवाद का उनका अध्ययन बहुत कम था। बी.ए. हो गए वे, पर काफ़ी साल बेकार रहे। घरू हालत ठीक नहीं थी। वे क्रांतिकारी काव्य के पीछे रात-दिन पागल थे। कुछ कमाते नहीं थे, बदहवास रहते और रात-रात-भर जागते, घोर बहिर्मुख उनकी अभिव्यक्ति थी। लंबी-लंबी नज़्में लिखते और सुनाते थे। विनोद-क्षमता बिलकुल नहीं थी, इसलिए चिढ़ जाते थे, कटु हो जाते थे। घर में दबाव था कि कमाओ, उनका भीतरी दबाव था कि लिखो, क्रांतिकारी लिखो। वे असामान्य हो गए।

एक हाईस्कूल में उनकी नौकरी लग गई। फिर वे अध्यापक की ट्रेनिंग के लिए भेजे गए। सिगरेट और चाय की लत थी। लगातार तनाव में रहते। उन्होंने अपना सब कुछ एक ही दाँव पर लगा दिया था—भावहीन उग्र क्रांतिकारी कविता पर। वे निराश हुए। उन्होंने आत्महत्या कर ली। परिवार में अपनी स्थिति से पीड़ित थे। वे कुंठाग्रस्त हो गए—अपने को अन्याय का शिकार मानने लगे। अपने काव्य पर फिर भी उनकी अटल आस्था थी।

उनके घनिष्ठ संबंध कला निकेतन के कला गुरु अमृतलाल वेगड़ से थे, मुझसे थे और प्रखर कवि रामकृष्ण श्रीवास्तव से थे, जो नागपुर चले गए थे।

हमें बाद में मालूम हुआ कि वे बाकायदा आत्महत्या की योजना बना रहे थे। आत्महत्या आदमी आवेग में करता है, पर वे विधिवत् योजना बना रहे थे। उन्होंने अपनी पुस्तक की पांडुलिपि तैयार की, उसकी प्रस्तावना लिखी, हिसाब लिखा कि किससे कितना लेना है और किसका कितना देना है और फिर आत्महत्या पर एक नज़्म लिखकर स्थानीय अखबारों को भेजी। एकदम निरुद्वेग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मैं उस दिन सुबह भोपाल होता हुआ हैदराबाद से लौटा था। मेरी बहन भी उसी सुबह आई थी। 'प्रभात' मेरे घर अक्सर ही आते थे। अक्सर भोजन कर लेते थे। उस दिन वे लगभग दो घंटे बैठे। बहन ने भोजन का बहुत आग्रह किया पर उन्होंने नहीं माना। उनके जाने के बड़ी देर बाद बहन ने कहा कि 'प्रभात' की हालत आज गड़बड़ है। मैं बस स्टैंड गया जहाँ वे रहते थे। वे वहाँ और घर पर नहीं मिले।

अमृतलाल बेगड़ ने बाद में बताया कि शाम को वे उनके घर गए थे। बेगड़ के साथ उन्होंने पूड़ी-सब्ज़ी खाई। फिर यह कहकर चल दिए कि मुझे एक ज़रूरी काम है। बेगड़ भी नहीं समझ पाए कि कुछ गड़बड़ है। रात को आठ बजे के लगभग खबर मिली कि 'प्रभात' ने रेल से कटकर आत्महत्या कर ली।

जो आखिरी नज़्म लिखकर वे अखबारों को भेज गए थे, उसमें ये शब्द थे : 'इंसान तो मक़तल में यहाँ कौन जिए।' 'प्रभात' ने अपना व्यक्तित्व, स्वास्थ्य, पूरी चेतना, पूरा समय, पारिवारिक स्थिति, आर्थिक मामले, सब जुए के एक ही दाँव पर लगा दिए थे, एक ही 'स्टेक' पर—वहिर्मुखी कच्ची, उग्र, आक्रोशभरी, क्रांतिकारी शायरी। यह दाँव वे हार गए क्योंकि काव्य युग बदल गया था और वे वहीं अड़े थे। ज़िंदगी में हारे हुए वे पहले से ही थे।

एक और प्रतिभावान कवि इंद्र बहादुर खरे थे। वे धर्मवीर भारती से प्रभावित थे और उन्होंने 'परिमल' की शाखा भी खोली थी। उनकी युवावस्था में ही मृत्यु हो गई।

नगर का स्नायु केंद्र था तिलकभूमि स्थित मिस्त्री का होटल। पुरानी दोमंज़िला इमारत। बरामदा। भीतर बहुत लंबा-चौड़ा हॉलनुमा कमरा, जिसमें बहुत लंबी-चौड़ी शताब्दी पुरानी टेबिल। इसके आसपास टूटी हुई 15-20 कुर्सियाँ। बाहर दो सिगड़ियों पर पानी उबालते हुए मिस्त्री जी। जब मैं पहली बार उनसे मिला, वे लगभग 45 साल के होंगे। चाँद निकल चुकी थी। शरीर तगड़ा था। चेहरे पर रोब था। मिस्त्री बहुत लोगों के विश्वासभाजन थे। स्वाधीनता संग्राम की गुप्त योजनाएँ मिस्त्री के होटल में ही बनती थीं। सामने ही सभास्थल तिलकभूमि है।

दो सीढ़ियाँ चढ़ने पर बाएँ मोटे खंभे से टिकी लकड़ी की एक मज़बूत टूटी संदूक रखी रहती थी। साबुन का कोई बड़ा बक्सा था यह। इस पर विराजमान रहते थे कांग्रेसी नेता, कवि और युवकों के प्रेरक प्रखर व्यक्ति पंडित भवानी प्रसाद तिवारी। वे अपने को 'टूटी संदूक का राजा' कहते थे। वे हमेशा उसी टूटी संदूक पर बैठे मिलते। सड़क लगी हुई थी। सैकड़ों लोग वहाँ उनसे मिलते थे। वह टूटी संदूक नगर का स्पंदन था। तिवारी जी ने खुद एक बढ़िया आत्म-लेख लिखा है : 'टूटी संदूक का राजा।'

मिस्त्री लगभग मौन रहते, सबकी सुनते जाते, गुनते जाते, समझते जाते और चाय के कप देते जाते थे। रोबदार समझदार आदमी थे। कभी स्पष्ट बोल देते : 'तिवारी जी, जैसा आप समझ रहे हैं, वैसा नहीं है।' सही बात यह है कि मिस्त्री की बात सच होती थी। कभी कोई चायप्रेमी घुसते ही कहता : 'एक 'स्पेशल' चाय।' मिस्त्री चिढ़ जाते। कहते : 'उठो और सामने वाले उस होटल में 'स्पेशल' चाय पीओ। इधर 'आर्डनरी' ही मिलेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस देश में कोई 'स्पेशल' नहीं।' एक थे मिस्त्री के सहायक नेता जी नारायण वर्मा। वे कहते : 'भैया, इधर आदमी स्पेशल मिलते हैं, चाय नहीं।'

ऊपर की मंजिल में एक और विभूति का मुकाम था—पंडित महादेव प्रसाद मिश्र 'मनीषी' का। पत्रकार, वैद्य, राजनेता आदि। खादी की मिरजई, घुटनों तक धोती, सुनहरी फ्रेम का चश्मा, लंबे घुँघराले बाल, गौर वर्ण, सुंदर सुख—कई बार वे कांग्रेस नेत्री समझ लिए गए। एक बार तो उनका स्वागत रेलवे स्टेशन पर श्रमिक नेता आर. एस. रुईकर की पत्नी के रूप में कर दिया गया था।

मैंने 'मनीषी' पर पूरा रेखाचित्र लिखा है, जो छपा तो मनीषी ने पढ़कर खुद मुझसे उनकी तारीफ़ की। मनीषी उद्भुत व्यक्ति थे। वे साहित्य मनीषी, साहित्याचार्य, आयुर्वेदाचार्य—न जाने क्या-क्या थे। गाली-गलौज का एक हाथ से छपा हुआ, साप्ताहिक पत्र—'हिमाचल' निकाल चुके थे और पिट चुके थे। व्यक्तित्व अत्यंत मोहक। पर पेट भरने का जरिया कोई नहीं जानते थे। उन पर लिखे रेखाचित्र के कुछ अंश :

'मनीषी इसी होटल के ऊपरी हिस्से में न जाने कब से रह रहे हैं और इस इमारत के गिरने तक शायद यहीं रहेंगे। उनका धंधा कुछ भी नहीं है। भोजन आने का क्या जरिया है, किसी को नहीं मालूम। कपड़े कहाँ से मिल जाते हैं, और हमेशा इतने उजले कैसे रहते हैं, यह भी एक रहस्य है, परंतु इस व्यक्ति के मुख पर मैंने कभी चिंता रेखा नहीं देखी। कभी परेशानी की छाया नहीं देखी, कभी दुख की मलिनता नहीं देखी। जिसके खाने का ठिकाना नहीं है, जो दो दिन भूखा पड़ा रहता है, एक फटा टाट जिसकी शैया है, वर्षों पहले का ईंट का चूल्हा, जिस पर अभी तक मिट्टी नहीं चढ़ पाई, एक मिट्टी का घड़ा, एक टीन का गिलास, एक तवा और डेगची जिसकी समस्त संपत्ति है, शरीर पर पहने हुए कपड़ों के सिवा जिसके पास एक अंगोछा और एक फटा कंबल मात्र है—वह चिर यौवन से कैसे लदा है? वार्धक्य इससे क्यों डरता है? केश किस भय से श्वेत नहीं होते? झुर्रियाँ चेहरे को क्यों नहीं छूतीं? चिंताओं के दैत्य इससे क्यों दूर रहते हैं? दुख इसके पास क्यों नहीं फटकता ? यह किस स्रोत से जीवन-रस खींचता है कि सदा हरा-भरा रहता है? किस अमृत-घट से इसने घूँट पी लिया है कि संसार का ज़हर इस पर चढ़ता ही नहीं।

एक दिन मैं होटल में बैठा था। ऊपर से बाँसुरी की आवाज़ आई। मैंने होटल मालिक से पूछा : 'बाँसुरी कौन बजा रहा है?' उन्होंने कहा : 'वही होगा मनीषी। खाना नहीं मिला होगा, तो बाँसुरी बजा रहा है।' उन्होंने उसे पुकारा और पूछा : 'अरे खाना खाया कि नहीं ?' भूखे मनीषी के मुख पर मुस्कान आई, जैसी भरे पेटवाले के मुख पर भी दुर्लभ है। वह बोला : 'खाया था लेकिन परसों।' होटल मालिक ने उसे कुछ पैसे देकर कहा : 'जा कुछ खा ले और यह गाना-बजाना बंद कर दे।' बाद में मुझे मालूम हुआ कि अगर मनीषी बाँसुरी बजाता हो तो इसका यह अर्थ है कि वह भूखा है। भरपेट वह कभी बाँसुरी नहीं बजाता। एक-दो रोज़ का भूखा होता है तब टाट पर पड़ा-पड़ा बाँसुरी बजाया करता है। आगामी कल की जिसे चिंता न हो ऐसा आदमी दुर्लभ है, पर मनीषी को आज की भी चिंता नहीं है। कल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कहीं से रोटी मिल गई थी, तो आज भी कहीं से मिल जाएगी। आज न आई तो झक मारकर कल आएगी, ऐसा उनका विश्वास है।

उनके कमरे में एक मिट्टी का घड़ा है, जिसमें ज्वार, बाजरा, गेहूँ, किसी का भी या सबका मिला हुआ आटा कभी-कभी रखा रहता है। एक छोटे से बर्तन में नमक और मिर्च हैं। जब कहीं से खाना नहीं मिलता और घड़े में आटा हुआ तो मनीषी एक-दो रोटी सेंककर नमक-मिर्च से खा लेता है। यदि आटा नहीं हुआ तो पड़ा-पड़ा बाँसुरी बजाता है। भूख को इस प्रकार संगीत बनाकर आसपास बिखेरता है। कोई सुन लेता है और भोजन करा देता है।

उनके चिकित्सा ज्ञान पर जब किसी ने आक्षेप किया तो उन्होंने समझाया : 'देखो भाई गरीब आदमी न तो ऐलोपैथी से अच्छा होता है और न होमियोपैथी से, उसे तो सिम्पैथी (सहानुभूति) चाहिए। मैं 'सिम्पैथी' की सहस्रपुटी मात्रा देता हूँ, रोगी अच्छा होता जाता है।' अपनी चिकित्सा की सफलता के संबंध में उन्होंने एक बार कहा : 'सौ में पचास रोगी अपने आप अच्छे हो जाते हैं—दस डॉक्टर की दवा से अच्छे होते हैं। जो चालीस मरते हैं, उनमें पंद्रह तो जीवन शक्ति की समाप्ति के कारण मरते हैं और पच्चीस को डॉक्टर की दवा मार डालती है। मैं इन पच्चीस लोगों को साफ़ बचा लेता हूँ क्योंकि मेरी पुड़िया न अच्छा असर करती है, न बुरा। पंद्रह तो धन्वंतरि के इलाज में भी मरेंगे ही। शेष को मैं अपनी 'सिम्पैथी' की डोज से बचा लेता हूँ। इस तरह मेरे इलाज में पचासी फीसदी रोगी अच्छे हो जाते हैं।'

अपने खाने का ठिकाना नहीं है पर उदारता में कर्ण हैं। बड़े शरणागतवत्सल हैं। कोई भी आफ़त का मारा आ जाए, मनीषी के एक गज टाट पर और मक्के की दो रोटी पर उसका अधिकार है। जब तक घड़े में आटा है तब तक दो रोटी खिलाएगा और आप खाएगा। जब आटा चुक जाएगा तब मनीषी बाँसुरी बजाएगा और अतिथि कुढ़ता हुआ सुनेगा। जिसे कहीं जगह नहीं मिलती, उसे मनीषी के यहाँ ज़रूर आश्रय मिल जाएगा। जिसे सब तिरस्कृत करें, वह अगर मनीषी के यहाँ पहुँच गया तो मनीषी उसे अपना भाई बना लेंगे। कितने ही लोग उनका आश्रय पाते हैं। घर से निकले हुए लड़के, बेकार आदमी, तिरस्कृत नारियाँ। लेकिन मनुष्य—सब उनके औदार्य की छाया में आ बैठते हैं। कोई-कोई कृतघ्न जिस वृक्ष की छाया में बैठते हैं उसे एक-दो कुल्हाड़ी मार जाते हैं या कुछ शाखाएँ ही नोच जाते हैं। सुनते हैं ये आश्रयहीन लोग जाते वक्त उनका फटा कंबल या लोटा ही ले भागते हैं।

एक बार अनाथालय से भागी हुई तीन-चार तिरस्कृत और लांछित लड़कियाँ मनीषी के आश्रय में आईं। मनीषी ने उन्हें धर्म-पुत्री मान लिया। दो-चार दिनों में उनके यहाँ धर्म-पुत्र भी आने लगे और जब इन धर्म-पुत्रों ने धर्म-पुत्रियों को धर्म-पत्नियाँ बनाने का उपक्रम किया तो मुहल्लेवालों ने बड़ा हल्ला-गुल्ला मचाया। वे लड़कियाँ धर्म-पिता को छोड़कर भागीं। अभी भी मनीषी जी बड़े दर्द से धर्म-पुत्रियों को याद करते हैं। कहते हैं : 'न जाने बेटियाँ कहाँ हैं? किस हालत में हैं?'

फिर मनीषी ने राजनीति का व्यवसाय अपनाया। नेता हो जाना बड़ा अच्छा धंधा है। पर वे किसी भी दल के प्रति पक्षपात नहीं करते थे। वे एक साथ ही कांग्रेस, समाजवादी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दल, साम्यवादी दल, जनसंघ, राम राज्य परिषद् आदि सब में थे। हर मंच से भाषण देते। घंटों बोलते और लोग ऊबते नहीं, क्योंकि वे कुछ बोलते ही नहीं हैं। एक बार वे एक सभा में बोलने खड़े हो गए। बड़े जोश में बोले; 'कांग्रेसी चोर हैं। समाजवादी उचक्के हैं, साम्यवादी लुच्चे हैं आदि-आदि।' आधा घंटे तक सब दलों को गाली देते रहे। श्रोताओं ने हल्ला मचाया : 'अपने शब्द वापस लो।' मनीषी ने हँसते हुए कहा : 'तुम शब्द वापस लेने की कहते हो, मैं अपना पूरा भाषण वापस लेता हूँ और फिर नया भाषण आरंभ करता हूँ। सुनो भाइयो और बहनो...' फिर आधा घंटे तक भाषण देते रहे।

सब काम कर देखे और जब कोई नहीं बना तब मनीषी ने सोचा कि कोई काम नहीं करना ही अच्छा है।

पर हौसले उनके बहुत ऊँचे हैं। मुझसे कभी-कभी बड़ी गंभीरता से कहते हैं : 'मैं शीघ्र ही अंतर्राष्ट्रीय पत्रकार संघ खोलनेवाला हूँ।' एक फिल्म कंपनी खोलने की भी उनकी योजना चल रही है, जिसमें मुझे नायक का काम देने का वादा वे कर चुके हैं।

नीचे वे मुझसे फिल्म कंपनी की योजना पर चर्चा करते रहे। थोड़ी देर बाद ऊपर उठकर गए तो बाँसुरी बजाने लगे। भूखे थे।

थोड़ी देर बाद नीचे उतरे तो चेहरे पर वही मस्ती, वही हँसी थी। मैं सोचता हूँ, क्या यह हँसी विक्षिप्त की हँसी है? क्या यह निरपेक्ष जीवन का हास्य है? क्या यह उस चरम विफलता की हँसी है, जब आदमी सोच लेता है कि हमसे अब कुछ नहीं बनेगा? क्या यह उस उदासीन वृत्ति का हास्य है कि हमारे बनने या बिगड़ने में कोई मतलब नहीं अथवा दर्द को कलेजे की भट्ठी में गलाकर इसने हँसी के रूप में प्रवाहित कर दिया है?

मिस्त्री का होटल एक विश्वविद्यालय था। पास ही 20-25 कदम पर 'प्रहरी' का दफ़्तर था। यह दूसरा विश्वविद्यालय था। शहर के इन दो विश्वविद्यालयों में पढ़ना लेखक, नेता, समाजसेवी आदि के लिए जरूरी था।

कुछ लेखकों से रिश्ते

अपने से ऊपर की पीढ़ी के बहुत कम लेखकों से मैं मिला हूँ। आम रिवाज यह है कि सामान्यतः लेखक बड़े नामधारी, श्रद्धास्पद लेखकों से मिलना एक ज़रूरी साहित्यिक कर्म मानता है। मैंने यह किया नहीं। कारण कई हैं। एक तो गरिमा के सामने लघुता को लेकर जाने में मेरा संकोच-अहंकार नहीं। दूसरे, मुझमें यह उत्सुकता ही नहीं रही कि बड़े-बड़ों से मिलूँ। लेकिन सबसे बड़ा कारण मेरा यह डर कि ये सिर्फ़ साहित्य की ही बात करेंगे और हम दोनों नाटक करेंगे और सहज नहीं होंगे। मुझे इस बात पर चिढ़ होती है कि लेखक मिलते हैं तो सिर्फ़ साहित्य की बात करते हैं। मैं खुद साहित्य की बात सबसे कम करता हूँ। मैं दूसरे विषयों की बात करता हूँ—किसी वर्तमान सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
समस्या पर बात करता हूँ। मैं रोनाल्ड रेगन और मिखाईल गोर्बाचेव पर बात शुरू करता हूँ और वहाँ बैठे लेखक अड़चन महसूस करते हैं। मैं इतिहास, राजनीति, संस्कृति, यहाँ तक कि रसायन-शास्त्र पर भी बात करता हूँ।

इस कारण मैं बहुत कम बड़े लेखकों से मिला। मैं उन अभागों में हूँ, जिसने 'अज्ञेय' से भेंट नहीं की। दो बार देखा ज़रूर है। एक दिन श्रीकांत वर्मा के पास 'दिनमान' के दफ़्तर में बैठा था। 'अज्ञेय' लिफ्ट से उतरकर फुर्ती से बिना किसी को देखे सीधे संपादक के केबिन में घुस गए। श्रीकांत ने कहा : 'चलिए, आपको मिलवा दूँ।' मैंने कहा : 'रहने दो।' मेरा अहंकार नहीं था। मन ही नहीं हुआ। जो आसपास बैठे अपने मित्रों-सहकर्मियों की तरफ नज़र न डालकर सीधा अपने केबिन में घुस जाए, वह आदमी मुझे अच्छा नहीं लगा। दूसरी बार देखा 'दिनमान' में काम करनेवाले श्यामलाल शर्मा के पुत्र की शादी में। पुरानी दिल्ली में पास ही लड़कीवालों का घर था। वहाँ बरात में श्रीकांत, सर्वेश्वर और मैं पहुँचे। श्रीकांत ने छोटे-से मैदान के उस पार संकेत किया, और कहा : 'वे खड़े हैं अज्ञेय और कपिला जी।' बस, दो बार दर्शन किए।

सुमित्रानंदन पंत से एक बार छोटी-सी भेंट हुई। मुक्तिबोध का पुत्र दिल्ली से पिता की अस्थियाँ लेकर प्रयाग आया। साथ शमशेर बहादुर सिंह और मैं थे। शाम को बेसेंट हॉल में शोकसभा हुई। सभा खत्म होने पर पंत जी मेरे पास आए और बोले : 'मैं भी आपका प्रशंसक हूँ। 'कल्पना' में आपका कालम ज़रूर पढ़ता हूँ।' मैं तब 'कल्पना' में 'और अंत में' स्तंभ नियमित लिखता था। यह पत्रिका के अंत के पृष्ठों में होता था। धर्मवीर भारती ने कहा था : 'आपके कारण 'कल्पना' को शुरू से नहीं, अंत से पढ़ना आरंभ करते हैं। जिसकी 'खिंचाई' हो गई हो, वह फिर पत्रिका पढ़ता ही नहीं।' पंत जी से मैंने कुछ औपचारिक विनम्रता निबाही होगी। दूसरी भेंट कभी नहीं हुई।

महादेवी जी को कुल तीन बार देखा। सुभद्राकुमारी चौहान की प्रतिमा का अनावरण करने वे आई थीं। सुभद्रा जी के घर बड़ी देर उन्हें देखा। बात नहीं हुई। सुभद्रा जी के संदर्भ में उनके भाषण के अंश मुझे अभी भी याद हैं। कहा था : 'नदियों के जय स्तंभ नहीं बनते। दीपक की लौ को सोने से नहीं मढ़ा जाता।'

एक और छोटी-सी मीटिंग में महादेवी जी के साथ एक घंटा बैठा था। चर्चा और चिंता का विषय था : लेखकों की आर्थिक समस्या। भदंत आनंद कौसल्यायन ने कुछ कहा तो महादेवी जी ने रिमार्क किया : 'आप तो संन्यासी हैं। आपको रोटी की क्या चिंता ?' भदंत ने जवाब दिया : 'रोटी की सबसे ज़्यादह चिंता संन्यासी को ही होती है, देवी जी !' तीसरी बार महादेवी जी को 'लोक भारती' प्रकाशन में यशपाल की किताब 'मेरी तेरी उनकी बात' के विमोचन समारोह में देखा था।

भदंत आनंद कौसल्यायन बहुत प्रभावी वक्ता थे। उनके भाषण मैंने सुने हैं। एक समारोह में वे काफ़ी बोल चुके, तो कहा : 'अब मुझे खत्म करना चाहिए क्योंकि यहाँ कवि-सम्मेलन होगा।' इस पर लोग चिल्लाए : 'बोलते जाइए! बोलते जाइए!' मंच पर कवियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में 'नीरज' जैसे मुग्ध करनेवाले गीतकार बैठे थे। जो कवि-सम्मेलन को काट दे, वह बहुत सिद्ध वक्ता होता है। भदंत के साथ 4-5 बार की मुलाकात है। दो बार एक ही मंच से हम दोनों बोले। दोनों आयोजन 'आल इंडिया शिड्यूल्ड कास्ट्स फेडरेशन' के थे। भदंत से मेरी अच्छी बातें होती थीं। नागार्जुन 1975 में जयप्रकाश नारायण के 'संपूर्ण क्रांति' आंदोलन में शामिल हो गए। मैंने इसकी आलोचना 'जनयुग' में की थी। भदंत ने कहा : 'ऐसी समझ के कारण ही नागार्जुन का चीवर बहुत पहले उतर गया।' नागार्जुन बौद्ध भिक्षु रहे हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी से मेरी भेंट सिर्फ़ दो ही बार की है। मैं तुलसी जयंती पर भाषण देने खंडवा गया था। वहाँ विपिन जोशी तथा दो और कवियों के साथ मैं उनसे मिलने गया। वे बिस्तर पर लेटे थे। बहुत अशक्त थे। करीब आधा घंटा बैठे। वही बोलते रहे। बातचीत में कविता बोलते थे वे। ऐसी प्रतिभा का दूसरा लेखक नहीं हुआ। वे जैसा लिखते थे, वैसा ही बोलते। उनमें समर्पण और विद्रोह, लालित्य और कठोरता, प्रेम और क्रोध, मनुहार और फटकार एक साथ थे। उनके लेखन की रचनावली नौ खंडों में छप गई है। वे जेल जानेवाले प्रथम सत्याग्रहियों में थे। सत्ता राजनीति में वे मात खा गए। इन नौ खंडों में अद्भुत काव्य और गद्य है। वे 'कर्मवीर' साप्ताहिक के संपादक थे। छोटी-छोटी संपादकीय टिप्पणियाँ भी कवित्वमय होती थीं। लंबे लेख भी लिखते थे। किसान समस्या की बहुत अच्छी समझ थी। साम्राज्यवादी शोषण के तरीके वे समझते थे। उनकी विश्व-दृष्टि थी। माखनलाल चतुर्वेदी के साहित्य का पुनर्मूल्यांकन होना चाहिए। वे उससे कहीं बड़े थे जितने माने गए। ऐसे निर्भीक पत्रकार भी कम होते हैं। उनके संबंध में एक घटना मैंने कहीं पढ़ी थी। शब्दशः मुझे याद नहीं। स्मृति से बताता हूँ।

'कर्मवीर' जबलपुर से निकलता था। गोरे कलेक्टर ने उन्हें एक दिन बुलाया। तब जो बातचीत हुई वह कुछ इस तरह थी :

कलेक्टर : आपके अखबार में काबिले-एतराज़ बातें छपती हैं।

माखनलाल : काबिले-एतराज़ बातें छापने के लिए ही हमने अखबार निकाला है।

कलेक्टर : आप सरकार की आलोचना करते हैं।

माखनलाल : सरकार की आलोचना करने के लिए ही हमने अखबार निकाला है।

कलेक्टर : मैं आपका अखबार बंद करवा सकता हूँ।

माखनलाल : हमने यह मानकर ही अखबार निकाला है कि आप इसे बंद करवा सकते हैं।

कलेक्टर : मैं आपको जेल में डाल सकता हूँ।

माखनलाल : हम यही मानकर यह सब करते हैं कि आप हमें जेल में डाल सकते हैं।

कलेक्टर हँसा। बोला : Look here, I am not English, I am Irish, but I am an employee of these bastards, Englishmen. I will have to take some action to show them. So be cautious.

यशपाल से मेरी मुलाकातें कुल तीन हुईं। इलाहाबाद में 1957 में साहित्यकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सम्मेलन हुआ था। इसके पहले इलाहाबाद में ही 'अज्ञेय' के नेतृत्व में 'परिमल' का साहित्यकार सम्मेलन हुआ था, जिसका उद्घाटन ताराशंकर बंद्योपाध्याय ने किया था। 1957 का यह सम्मेलन बिखरे हुए प्रगतिशीलों ने बुलाया था और इसका उद्घाटन पंडित हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने किया। पांडित्यपूर्ण, ओजस्वी और प्रगतिशील मूल्योंवाला भाषण था वह। इस सम्मेलन में यशपाल भी गए थे और मैं भी। मेरे ठहरने का इंतज़ाम मेरे मित्र प्रोफेसर महेशदत्त मिश्र के घर था। पर 'अश्क' का बेटा मेहमान घर में भर लेने के लिए इतना उत्साही था कि मुझे, मुक्तिबोध और प्रमोद वर्मा को भी ताँगे में बिठाकर ले आया। 'अश्क' के अपने घर में ठहरे थे यशपाल और मोहन राकेश। मजबूर कौशल्या जी को हम तीनों को आउट हाउस में ठहराना पड़ा। वहाँ यशपाल सिर्फ भोजन की टेबिल पर मिलते थे या फिर मीटिंगों में। मेरी उनसे बात ही नहीं हुई। वे भूल भी गए कि 'अश्क' के घर कोई लेखक हरिशंकर परसाई भी था। आगे दो मुलाकातें हुईं। मैं इनके बारे में लिख चुका हूँ। यों हुआ :

1964 में दिल्ली से मुक्तिबोध की अस्थियाँ लेकर उनका बेटा रमेश आया। साथ में मैं और शमशेर जी थे। अस्थि कलश साहित्य सम्मेलन भवन ले जाया गया। अमरकांत ने मुझसे कहा कि आपसे यशपाल जी मिलना चाहते हैं। मैं गया। यशपाल घास पर बैठे थे। मुझे देखते ही हाथ जोड़कर झुककर बोले : 'अरे महाराज, महाराज, मैं कब से आपसे मिलने को उत्सुक हूँ।' मैं थोड़े असमंजस में पड़ा। मैंने बहुत नम्रता से कुछ बातें कहीं। बस!

दूसरी मुलाकात हुई लखनऊ में। उत्तरप्रदेश साहित्य परिषद् का पुरस्कार लेने मैं गया था। पुरस्कार यशपाल को भी मिला था। बड़े हॉल में यशपाल की और मेरी कुर्सी लगी हुई थी। लेखकों और अफ़सरों से हॉल भरा था। मंच से घोषणा हुई कि महामहिम राज्यपाल पधार रहे हैं। तमाम लोग खड़े हो गए। पर, हालाँकि मेरी और यशपाल की कोई बात नहीं हुई थी, हम दोनों खड़े नहीं हुए। काफ़ी लोग हम दोनों को बैठा देख रहे थे। यशपाल ने कहा : 'ठीक किया महाराज! क्यों खड़े हों? होंगे गवर्नर!' इसके बाद 'जन-गण-मन' शुरू हुआ तब यशपाल ने खड़े होते हुए कहा : 'अब खड़े होंगे। यह राष्ट्रीयगीत है।'

1965 में जैनेंद्र कुमार से कहानीकार सम्मेलन में कई बार भेंट हुई। वह 'नई कहानी' का दौर था। पता नहीं यह नाम किसने दिया। शायद नामवर सिंह ने निर्मल वर्मा की 'परिंदे' को हिंदी की पहली नई कहानी कहा था। उन्होंने उषा प्रियंवदा की 'वापसी' को भी नई कहानी कहा था। पर इस 'नई कहानी', आंदोलन को उठा लिया तीन तिलंगों ने—कमलेश्वर, मोहन राकेश और राजेंद्र यादव। कमलेश्वर आंदोलनप्रेमी आदमी हैं। वे सबसे तीखे और मुखर थे। मेरा कोई वास्ता इस आंदोलन से नहीं था। मैं कहानी-लेखक माना ही नहीं जाता था। 'व्यंग्यकार' कहकर दरकिनार कर देने में समीक्षकों, सिद्धांतकारों को भी सुभीता था और मुझे भी। पर हमारे बाद की पीढ़ी के काफ़ी लोग 'अकहानी' वाले थे। ये अपने को मरा हुआ मानकर फिर लिखते थे। एक किताब इनमें से एक की तब निकली थी। उसमें उनका परिचय था। जन्म का सन् दिया और लिखा था : मृत्यु 1964। जी हाँ। मगर 1965

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को कलकत्ता में उसी सम्मेलन में वे मेरे सामने थे। मेरी अपनी हिस्सेदारी यथार्थ की वास्तविकता, विचार और जीवन-दृष्टि पर थी।

इस सम्मेलन में लगभग सब कम उम्र के लेखकों ने जैनेंद्र को अपने हमले का लक्ष्य बनाया। मैंने भी उनकी जीवन-दृष्टि तथा जीवन-यथार्थ के सवाल उठाए। तब उनसे व्यक्तिगत रूप से कोई बात नहीं हुई।

मैंने 'कल्पना' में 'और अंत में' शीर्षक अपने स्तंभ में जैनेंद्र की जीवन-दृष्टि और उलझी-सुलझी बातों पर व्यंग्य लिखा था। वह बहुत मशहूर हुआ। और जगह भी मैंने उन पर व्यंग्य किए। एक बार वे दिल्ली में मिल गए। कहने लगे 'तुम जो मुझ पर व्यंग्य करते हो, उपहास करते हो, तो मुझे बुरा नहीं लगता। इसमें तुम्हारी कोई योजना नहीं है, न निहित स्वार्थ हैं। पर ये जो तुम्हारे 3-4 लुच्चे दोस्त हैं⋯' मैं उन दोस्तों के नाम नहीं बताऊँगा। मेरी आखिरी मुलाकात जैनेंद्र से अफ्रो-एशियाई शांति सम्मेलन में हुई। कार्यक्रम समाप्ति पर मैं बाहर आया तो देखा कि जैनेंद्र खड़े हैं। मैंने कहा : 'जैनेंद्र जी, आपकी कार कहाँ खड़ी है ?' जैनेंद्र ने कहा : 'मेरे पास कार कहाँ है भाई!' मैंने कहा : 'अज्ञेय के पास तो है।' वे बोले : 'कहाँ अज्ञेय और कहाँ मैं। वे बड़े आदमी हैं और मैं गरीब हूँ।' फिर उन्होंने मुझ पर कटाक्ष किया : 'बड़ी दूर से आए हो। इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए रूस से बहुत पैसा मिला होगा।' मैंने जवाब दिया : 'हाँ, जितना पैसा आपको इस सम्मेलन को असफल कराने को सी.आई.ए. से मिला है, उससे कुछ ही ज़्यादा मुझे रूसी पैसा मिला है।'

हम दोनों हँसने लगे वे कहने लगे : 'तुम आदतन ऐसा बोलते-लिखते हो।' मुझे अच्छा लगा कि मेरे व्यंग्य का बुरा जैनेंद्र ने नहीं माना। इसमें उनकी शालीनता तो प्रगट हुई ही, मुझे यह भी भरोसा हुआ कि मेरा व्यंग्य द्वेष-प्रेरित नहीं माना जाता। इसी प्रकार मैंने 'आंचलिकता' को लेकर ऐसा ही उपहास फणीश्वरनाथ 'रेणु' की भाषा-शैली का 'कल्पना' में किया। मुझे उनकी चिट्ठी मिली कि हँस-हँसकर उनकी हालत खराब हो गई, पान का पीक कुरते पर गिर गया। बाद में मुझे पटना के कुछ लेखकों ने बताया कि मेरे लिखे को वे खुद पढ़कर सुनाते थे।

पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी से मेरी मुलाकातें काफ़ी हुईं। हमारी जबलपुरी मंडली के पं. मोहनलाल वाजपेयी 'शांतिनिकेतन' में हिंदी-विभाग में अध्यापक थे। वे द्विवेदी जी के साथ छात्र-छात्राओं को लेकर भ्रमणार्थ जबलपुर भी आए। तब तक मेरी पहली किताब ही छपी थी, जो मैंने भाई मोहनलाल वाजपेयी को भेजी थी। वह शायद उन्होंने देखी हो। वे और वाजपेयी जी पंडित भवानीप्रसाद तिवारी के घर ठहरे थे। खूब गप्पें होती थीं। द्विवेदी जी में अद्भुत विनोद-प्रतिभा थी। उनके ठहाके गूँजते थे। पांडित्य को किस कदर फूल की तरह ढोते थे। तीसरे दिन वे बोले : 'जबलपुर में हर बात और चीज़ जमती है। सबेरे आप लोग कहते हो : नाश्ता जमा जाए। फिर पान जमता है, उस पर तमाखू जमती है। भाषण जमता है। कविता जमती है, यहाँ तक कि रात को मच्छड़दानी जमती है।'

सन् 1957 में इलाहाबाद में साहित्यकार सम्मेलन में उनका बहुत अच्छा भाषण सुना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कोई व्यक्तिगत बातचीत नहीं हुई।

फिर उनसे कई मुलाकातें हुईं। हम 'बाणभट्ट की आत्मकथा' कई मित्र साथ बैठकर पढ़ते थे। जब खुलकर बातें होने लगीं, तब मैंने कहा : 'पंडित जी, उस चाँदनी रात में छत पर आपने भट्ट और भट्टिनी को साथ करके एक बिंदु तक ले जाकर फिर बचा दिया है। यह अच्छा नहीं है। या तो यह मध्ययुगीन आदर्शवादी दैहिक पवित्रतावाद की मजबूरी है या आप वर्जनाग्रस्त हो गए।' उनके जवाब का सार यह था कि भट्ट-भट्टिनी को और पास ले आते, तो आगे कथा ही बदल जाती। मर्यादा इस हेतु ज़रूरी थी।

पंडित जी हास-उपहास के बहुत शौकीन थे। गप्प-गोष्ठी के शौकीन थे। वे क्लासिकों के आदर्श पात्रों का बहुत अच्छा उपहास कर लेते थे। साधारण बात में से भी विनोद निकाल लेते थे। जबलपुर विश्वविद्यालय आए तो हिंदी-विभागाध्यक्ष पंडित उदयनारायण तिवारी से कहा कि शाम को परसाई को ज़रूर बुला लेना। मैं गया। उनका भाषण सुना। बाहर निकले तो मेरे कंधे पर हाथ रखकर कहा : 'चलो, कहीं बैठकर गप्पें करेंगे। पांडित्य बहुत बघार लिया।' हम 10-12 लोग उदयनारायण तिवारी के घर जाकर बैठे। खूब गप्पें हुईं! द्विवेदी जी का अट्टहास गूँजता रहा। द्विवेदी जी, उदयनारायण तिवारी और राजबली पांडे के गाँवों के फूहड़ मज़ाक हम लोग सुनते रहे।

द्विवेदी जी की मेरे प्रति आत्मीयता थी। मेरा लिखा वे पसंद भी करते थे। उनकी लड़की मालती ने बताया कि जब आपकी कोई रचना छपकर आती, तो वे पूरे परिवार को बुलाकर बिठा लेते और आपकी रचना पढ़कर सुनाते और अट्टहास करते जाते। उनका पांडित्य आतंकित नहीं करता था। उनके कई लतीफ़े मशहूर हैं।

जो उनके निकट रहे हैं उन्हें सैकड़ों लतीफ़े उनके मालूम होंगे, मुझे भी कुछ मालूम हैं।

द्विवेदी जी कहते हैं : 'एक बार डॉ. धीरेंद्र वर्मा और मैं मौखिक परीक्षा ले रहे थे। एक लड़की बहुत डरती-सहमती आई।' धीरेंद्र जी ने उससे पूछा : 'मीराबाई की विरह वेदना का वर्णन करो।' वह लड़की घबड़ाई। उसके मुँह से दो-तीन बार मीरा-मीरा निकला और वह रोने लगी। हमने उससे जाने के लिए कह दिया। धीरेंद्र जी ने कहा : 'इसे तो कुछ भी नहीं आता।' मैंने कहा : 'आपने उससे वेदना का वर्णन करने को कहा था। वेदना का इतना अच्छा वर्णन और कौन कर सकता है। लड़की को मालूम है, पर घबड़ाहट में बोल नहीं पाई।'

एक मौखिक परीक्षा में लड़के से पूछा : 'हिंदी के सबसे बड़े कवि कौन हैं?'

उसने जवाब दिया : सूरदास।

पूछा : उनके बाद दूसरे?

जवाब दिया : तुलसीदास।

मैंने पूछा : तुलसीदास के बाद?

उसने जवाब दिया—कवि उडगन।

निर्णयात्मक दोहा यह प्रचलित है :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर सूर तुलसी ससी, उडगन केसवदास।
अबके कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करहिं प्रकास।।

'उडगन' का अर्थ तारा या नक्षत्र है। केशवदास को नक्षत्र कहा गया है, जो बहुत छोटा है और टिमटिमाता है। लड़के का खयाल था कि 'उडगन' नाम का कोई कवि था।

आखिरी बार 1976 में दिल्ली में 'राजकमल प्रकाशन' में शीला संधू के कमरे में उनसे यह सुना : ये विदेशी छात्र-छात्राएँ बड़ा गडबड़ करते हैं। ये हिंदी भाषा तो अच्छी सीख लेते हैं, पर हमारे पारिवारिक-सामाजिक जीवन को नहीं समझते। अभी एक पोलिश छात्रा मुझसे मिलने वाराणसी आई। मैं लखनऊ गया था। दिल्ली लौटकर उसने पत्र लिखा : पंडित जी, मैं आपके दर्शनार्थ वाराणसी गई थी। आपके दर्शन नहीं हो सके। पर आपकी 'सुपत्नी' से भेंट करके मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।—बताइए भला, यह मेरी पत्नी को सुपत्नी समझती है। शीला जी, इस देश में क्या कोई पत्नी सुपत्नी होती है? ये विदेशी समझते हैं कि जैसे 'सुपुत्र' होता है, वैसे ही 'सुपत्नी' भी होती होगी।

उपेंद्रनाथ 'अश्क' बुजुर्ग हैं, महिमामय हैं। पर वे बुज़ुर्गी का आभास कभी नहीं देते। मैं जब भी उनसे मिला, मुझे लगा कि यह कोई नवोदित किशोर लेखक हैं, जो अपना लिखा हुआ सुनाने को बेताब हैं और तारीफ़ सुनने को उत्सुक हैं और इन किशोर को शिकायत है कि उन्हें प्रोत्साहन नहीं मिलता। 'अश्क' अस्सी साल की उम्र में भी किशोर-जैसा बर्ताव करते हैं। 'अश्क' के पास जी कड़ा करके इस तैयारी के साथ जाना चाहिए कि उन्होंने जो ताज़ा लिखा है वह सुनाएँगे—चाहे पूरी किताब ही क्यों न हो। एक दिन 'नई कहानियाँ' के संपादक भीष्म साहनी के कमरे में घुसा तो देखा कि वहाँ कृश्नचंदर और 'अश्क' बैठे हैं। मुझे देखते ही 'अश्क' ने कहानी पर अपना लंबा लेख सुना दिया, जिसे वे 'नई कहानियाँ' में छपाना चाहते थे। लेख पूरा होने पर उन्होंने मुझसे पूछा : 'कहो, कैसा है ?' मैंने कहा 'शिक्षाप्रद है।' 'अश्क' संतुष्ट नज़र आए। कृश्नचंदर ने एक ठहाका लगाया और कहा : 'यार 'अश्क', ज़िदगी-भर लिखते हो गए तुझे और तू यह भी नहीं समझा कि परसाई जी ने तेरे लेख को घटिया कह दिया। वे कहते हैं कि तेरा लेख शिक्षाप्रद है, यानी स्कूल-कॉलेज के लड़कों के लिए है।'

'अश्क' से मेरी कई मुलाकातें हुईं। मैंने कभी भी उनसे मतभेद प्रगट नहीं किया, इसलिए बात आगे बढ़ाना मुश्किल होता था। मैं जानबूझकर उनकी हर बात को 'ठीक' कहता था। वे मुझे समझदार मानने लगे थे। और लोग भी होते, तो महफिल जमती और 'अश्क' कुछ विनोद करते।

'अश्क' बेहद मेहनती आदमी हैं। बड़ी मेहनत से लिखते हैं। अपने दूसरे कामों में भी वे बड़ी मेहनत करते हैं। उन्होंने परिवार को पालने तथा 'पेट भरने' के लिए 'परचून' की दुकान खोली तो प्रचार पर कितनी मेहनत की। अंग्रेज़ी अखबारवालों ने 'परचून' में से 'चून' पकड़ा और प्रचार कर दिया कि अश्क ने 'लाइम शाप' खोली है। 'अश्क' ने प्रचार कर डाला कि मुझे और मेरे परिवार को समाज पाले। अब समाज तो बहुत विराट है! इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
समाज में से कौन पाले? क्या तब के मुख्यमंत्री नारायणदत्त तिवारी पालें या प्रधानमंत्री राजीव गांधी पालें। उन्होंने यह भी दुख बताया कि मुझे कई सालों से कोई पुरस्कार नहीं मिला। पुरस्कार देनेवालों को इस शिकायत पर ध्यान देना था।

'अश्क' भले आदमी हैं। उनसे मिलने और बातचीत करने के बाद निष्कर्ष निकलता है कि 'अश्क' निहायत भले और भोले आदमी हैं। पर सब उन्हें सताते हैं, और वे सबका भला करते हैं। 'अश्क' के पास हिंदी साहित्य जगत् की सारी जानकारियाँ मिल जाती हैं। कौन लेखक कहाँ है, क्या कर रहा है—'अश्क' से आप हर लेखक की कलंक कथा जान लीजिए। सबकी पोलें उनके पास हैं। ताजा 'स्कैंडल' क्या है और निकट भविष्य में कौन-सा 'स्कैंडल' घटित होनेवाला है। बेचारे 'अश्क' इतनी माया के बाद 'ग्रीव' हैं और बेचारे हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा को, 'वसुधा' में आलोचकों के प्रकार तय करते हुए, 'फौज़दारी' आलोचक बताया गया था। आमतौर पर हिंदी के साहित्यिक यह समझते हैं कि वे हमेशा लाठी चार्ज करते रहते हैं। पहलवान वे हैं ही। अखाड़े खेले हुए हैं। पीठ में मिट्टी नहीं लगने देते। तगड़े हैं, छः-फुटे हैं। प्रातः भ्रमण करते हैं, व्यायाम करते हैं। मगर वे हमेशा फौज़दारी नहीं करते।

उनसे मेरी भेंट मेरे घर पर ही 1953 में हुई। वे निजी काम से आए थे। वे मुझसे मिलने भी आए। थोड़ी देर बातें हुईं। फिर भोपाल में भेंट हुई। मगर ज़्यादा उनके साथ रहा आगरा में। आगरा के एक प्रकाशक ने मुझ पर और मेरे प्रकाशक सरदार जगजीतसिंह खन्ना के ऊपर मुकदमा चला दिया था। उस सिलसिले में आगरा पेशी पर सरदार और मैं जाते और राजा मंडी स्टेशन के पास दिल्ली दरवाज़ा तरफ के होटल में ठहरते।

रामविलास जी का मकान स्टेशन के दूसरी तरफ है। बहुत पास। पहली बार मैं जब उनसे मिला तो वे खुश हुए। मुकदमे के बारे में पूछा। मैंने बताया कि कुछ प्रकाशकों ने माध्यमिक शिक्षा बोर्ड को पटा लिया है और विश्वविद्यालयों में चलनेवाली किताबों का कुछ हिस्सा बोर्ड से मध्यप्रदेश के हाईस्कूल के कोर्स में लगवा लिया है। 21 कवियों का संग्रह विश्वविद्यालय में चल रहा है। इन 21 कवियों में से तीन—सूरदास, तुलसीदास, कबीरदास को बोर्ड ने हाईस्कूल के पाठ्यक्रम में लगा दिया है। वह मोटी पुस्तक सात रुपए की है। इन तीन कवियों की पुस्तिका पचास पैसे की होगी। यानी छात्र सिर्फ इन तीन कवियों के लिए 21 कवियों वाली वह किताब खरीदते हैं। यह शोषण है। मैंने प्रकाशक खन्ना से बात की कि इस लूट से लड़ना चाहिए। तीनों कवियों पर कापीराइट नहीं रहा। क्रम बदल देते हैं और पुस्तिका छाप देते हैं। पचास पैसा कीमत रख देते हैं। मैंने संपादन किया। वह पुस्तिका बिकी और पहले दौर में खूब बिकी। प्रकाशक ने 'इंजक्शन' लगवाया और हमारे प्रकाशक का स्टाक ज़ब्त हो गया। सरदार खन्ना और मुझ पर फौज़दारी मुकदमा चला। हमारी जमानत हुई। अब हमें हर पेशी पर आना पड़ता है।

रामविलास जी सुनकर खुश हुए। बोले : 'आपने बहुत अच्छा किया। इतनी लूट मची है, पर उसका विरोध करने का साहस किसी ने नहीं दिखाया। आपने चुनौती तो दी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामविलास जी की आत्मीयता मुझे मिली। न जाने क्यों लोग उनसे डरते हैं। वे खूब गप्प करते हैं। मज़ाक करते हैं। ठहाका लगाते हैं। हाँ, अपने विश्वास के मामले में कठोर हैं। यहाँ न नरमाई, न समझौता। अखाड़े में निपट लें।

एक बार वहीं अमृतलाल नागर आ गए। उनकी ननिहाल राजामंडी में ही है। हम तीनों घंटों बैठते और खूब बातें होतीं। रामविलास जी, नागर जी और घनश्याम अस्थाना घूमकर लौटते तो होटल में हमारे क़मरे में आ जाते। एक-डेढ़ घंटे नागर जी के लतीफ़े गूँजते और हम लोगों का अट्टहास।

अमृतलाल नागर से बहुत मुलाकात हैं। वे बहुत बेतकल्लुफ हैं। अड्डेबाज़ हैं। महफ़िल जमाते हैं। वे जबलपुर आए दो बार। समारोह के बाद हम चले गए प्रो. हनुमान वर्मा के घर रात के भोजन के लिए। हनुमान ने गिलासों में रम डाली तो वे बोले : 'यारो, शाम को रेलगाड़ी में ही माजूम भांग ले ली थी, फिर भवानी तिवारी के घर एक गोला निगला और ऊपर से यह रम। कैसे बर्दाश्त होगा।' खूब बर्दाश्त हुई और दो बजे रात तक हमलोग गप्पें करते रहे।

नागर जी के सामने संकोच टूट जाते हैं। वे एकदम आत्मीयता स्थापित कर लेते हैं। स्नेही हैं। भावुक हैं। बहुत हद तक राग-द्वेष से परे हैं। वे निंदा नहीं करते। किसी की कमज़ोरी का उपहास नहीं करते। शरीर और मन से बहुत स्वस्थ हैं नागर जी। मगर अपने विश्वासों के लिए वे भी रामविलास जी की तरह किटकिटाकर भिड़ जाते हैं।

नागर जी से मिलना एक आह्लादकारी अनुभव है, जिससे मिलनेवाला खुद क्षुद्रताओं से ऊपर उठता है।

मुक्तिबोध का साथ और 'वसुधा'

गजानन माधव मुक्तिबोध का 1954 में मिलना मेरे लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना 1938 में हाई स्कूल में बग्गा मास्साब का मिलना। मुक्तिबोध ने जबलपुर में उसी स्कूल में नौकरी की थी, जिसमें बाद में मैंने भी की। उन्होंने 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना की थी और एक समारोह में राहुल सांकृत्यायन भी आए थे। वे साम्यवादी पार्टी के बहुत सक्रिय सदस्य थे। तीन साल वे और मैं इसी शहर में रहे, पर मेरी-उनकी भेंट नहीं हुई। नाम ज़रूर सुनता था। मैंने तब लिखना शुरू नहीं किया था।

मैंने लिखना शुरू किया, तब तक मुक्तिबोध नागपुर जा चुके थे, जहाँ वे सूचना और प्रकाशन विभाग में नौकरी करने लगे थे। मैं 1954 में प्राइवेट तौर पर एम.ए. करने नागपुर गया। मुझे कवि रामकृष्ण श्रीवास्तव के कमरे में ठहराया मेरे मित्रों ने। मैंने देखा, कमरे की दीवारों पर, विशेषकर भाषा-विज्ञान और साधारणतः हिंदी के अन्य पक्षों के सूत्र बड़े-बड़े अक्षरों में लिखे हैं। मैंने कवि 'विद्रोही' से पूछा : 'ये क्यों लिखे हैं?' विद्रोही ने समझाया : 'पिछले साल इसी कमरे में रहकर मुक्तिबोध जी, रामकृष्ण श्रीवास्तव और भोपाल के मित्र अक्षय कुमार जैन ने एम.ए. किया है। यहाँ प्रमोद वर्मा भी आते थे, जो विश्वविद्यालय के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
नियमित छात्र थे, और जिन्होंने सर्वोच्च स्थान पाकर स्वर्ण-पदक पाया। मुक्तिबोध प्रमोद को आचार्य शंकुक कहते थे। मुक्तिबोध भाषा-विज्ञान से बहुत घबड़ाते थे। उन्होंने आचार्य शंकुक से कहा कि दीवारों पर भाषा-विज्ञान के सूत्र लिख दीजिए। मैं उन्हें जब-तब पढ़ लूँगा। फिर दूसरे विषयों के नोट्स भी। प्रमोद वर्मा ने ये सूत्र लिखे हैं, जिन्हें पढ़कर तीन मित्र पिछले साल एम.ए. कर चुके हैं। अभी पूरी तरह मिटे नहीं हैं। तुम्हारे काम भी आएँगे।'

परीक्षा शुरू होने के पंद्रह दिन पहले मैं नागपुर पहुँच गया था। जबलपुर में खास पढ़ाई नहीं हुई थी। सोचा, नागपुर में पढ़ लूँगा। तीसरे दिन 'विद्रोही' और रामकृष्ण मुझे मुक्तिबोध के घर ले गए। एक मामूली मकान का कमरा, जिसमें दरी पर वे पालथी मारे बैठे थे। बगल में खास आकार का वह लोटा और उस पर रखा वह छोटा गिलास जो महाराष्ट्रीय परिवारों में होता है। दूसरी दरी पर हम बैठ गए।

मैंने देखा सामने जो आदमी बैठा था, वह छह-फुटा तो होगा ही। दुबला, पिचके गाल, गाल की हड्डियाँ उठी हुईं, लंबी नुकीली नाक, बड़ी-बड़ी भावपूर्ण बेधक आँखें—निश्चय ही यह दुखभोग आदमी था। मुझसे उन्होंने बहुत थोड़ी औपचारिक बातें ही कीं। कोई खास दिलचस्पी नहीं दिखाई पर उनकी वे बेधक आँखें बार-बार मेरे ऊपर गड़ जाती थीं। मुक्तिबोध एकदम गले लगानेवाले, उद्वेलित व्यक्तित्ववाले आदमी नहीं थे। बहुत सावधान थे संबंधों के मामले में। एकदम किसी से निकटता स्थापित नहीं करते थे। वे अविश्वास से शुरू करके विश्वास पर आते। खूब जाँचते-परखते, तब निजी संबंध बनाते थे। यों भी वे गप्प-गोष्ठीवाले आदमी नहीं थे। जिनसे बात करना है और काम की बातें करना है, उनसे रातभर बातें करते थे। एक पूरी रात मुक्तिबोध ने श्रीकांत वर्मा, प्रमोद वर्मा और मेरे साथ भोपाल की सड़कों पर चलते, चाय पीते, बतियाते गुज़ार दी थी।

अगले ही साल मैं नागपुर गया रेडियो कार्यक्रम के लिए। तब वे 'नया खून' के संपादक हो गए थे।

मैं सीधा 'नया खून' के दफ्तर पहुँच गया। इस बार वे इस तरह मिले जैसे पहले कई मुलाकातें हो चुकी हों। तपाक से हाथ मिलाया, बहुत देर हाथ में हाथ लिये रहे। बोले : 'आइए पार्टनर, वाह साहब, खूब आए। वाह! वाह!' सचमुच पुलकित हुए। इस बार डेढ़ दिन उनके साथ रहा। कई घंटे बातें हुईं, सब तरह की। वे खुले। मैं भी खुला। उन्होंने 'नया खून' दफ्तर में ही मेरे रहने का इंतज़ाम कर दिया। उनका निवास पास ही था। मुक्तिबोध की आत्मीयता बहुत प्रेरक होती थी और बहुत शिक्षाप्रद भी। मैं उनसे प्रेरणा और पहले से साफ़ नज़रिया लेकर लौटा।

कुछ महीने बाद ही उन्होंने 'नया खून' में पूरे पृष्ठ का लेख लिखा : 'हरिशंकर परसाई और 'थॉट' की स्पिरिट में अंतर है।' हुआ यह कि मेरी एक कहानी तब दिल्ली से निकलनेवाले अंग्रेज़ी के साप्ताहिक पत्र 'Thought' में अनुवाद करके छाप ली गई थी। मेरी अनुमति नहीं ली गई थी, पर मुझे वह अंक और पचहत्तर रुपए भेजे गए थे। यह पत्र 'फ्रीडम ऑफ कल्चर' वालों का था। जवाहरलाल नेहरू रोज़ ही संस्कृति की बात करते थे और एक समन्वित राष्ट्रीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृति के बारे में जनता को शिक्षित करते थे। उनके राज में संस्कृति को क्या खतरा था? संस्कृति की स्वतंत्रता कौन छीन रहा था? फिर 'फ्रीडम ऑफ कल्चर' की लड़ाई किसलिए? बात यह थी कि नेहरू समाजवाद की बात लगभग रोज़ करते थे और कभी-कभी स्पष्ट भी करते थे कि जब मैं समाजवाद की बात करता हूँ तब वायवी, भावात्मक समाजवाद की नहीं, 'वैज्ञानिक समाजवाद' की बात करता हूँ। फिर पहली पंचवर्षीय योजना में नेहरू ने सार्वजनिक उद्योग क्षेत्र शुरू कर दिया था। पूँजीवाद को इतना खतरा महसूस होने लगा था कि उसकी रक्षा और स्वतंत्र उद्योग नीति के लिए एक 'स्वतंत्र पार्टी' बन गई थी। इसके अध्यक्ष कट्टर समाजवाद विरोधी, भारत के पहले देशी गवर्नर जनरल (भूतपूर्व) चक्रवर्ती राजगोपालाचारी थे और महासचिव मीनू मसानी (जिनका गॉड फेल हो गया था)। फिर नेहरू गुटनिरपेक्ष रहकर गुटनिरपेक्ष देशों का एक संगठन बना रहे थे। वे भारत को अमरीकी गुट में नहीं ले गए बल्कि सोवियत रूस से संबंध अधिक नज़दीकी बना रहे थे। इन सब कारणों से समाजवाद-विरोधियों और अमेरीका-समर्थक साहित्यकारों को संस्कृति की स्वाधीनता खतरे में लगने लगी। इन लोगों का पत्र 'थॉट' था, जिसे अमेरीकी मदद मिलती थी। मेरी कहानी राजनीतिक थी। मैंने उसमें पूँजीवादी लोकतंत्र के पाखंड को उजागर किया था और बताया था कि कैसे इस लोकतंत्र में भी 'सर्वसत्तावाद' (Totalitarianism) स्थापित हो सकता था। 'थॉट' वालों ने कहानी का दूसरा अर्थ निकाला—साम्यवादी सर्वसत्तावाद, और उसे अपने काम की समझकर उसका अनुवाद छाप दिया। मुक्तिबोध सतर्क थे। वे अपनों पर भी निगरानी की नज़र रखते थे। श्रीकांत वर्मा को उन्होंने कितनी ही नसीहत की चिट्ठियाँ लिखी थीं। उन्होंने 'नया खून' में लिखा था कि परसाई और 'थॉट' की विचारधारा बिलकुल विपरीत है। पर ये लोग किसी भी तेजस्वी नए लेखक को पकड़कर अपने खेमे में ले जाने की कोशिश करते हैं। मुझे तो वह टिप्पणी अच्छी लगी। पर नागपुर में किन्हीं लेखकों ने उनसे झूठ कह दिया कि मुझे बुरा लगा है। उन्होंने मेरी दो चिट्ठियों का जवाब ही नहीं दिया। तीसरी का जवाब दिया, जिसके शुरू में ही उन्होंने लिखा कि मुझे बताया गया था कि आप उस टिप्पणी के कारण मुझसे नाराज़ हैं। मैंने स्पष्ट किया कि टिप्पणी मुझे अच्छी लगी। आपसे झूठ बोला गया, जिससे हमारे संबंध घनिष्ठ न हों।

मुक्तिबोध से घनिष्ठ संबंध 1956 में बने, जब हम लोगों ने जबलपुर से 'वसुधा' मासिक पत्रिका निकाली। इसके पहले बिलासपुर से श्रीकांत वर्मा ने 'नई दिशा' के सिर्फ़ तीन अंक निकाले थे। मुक्तिबोध को मैंने जब 'वसुधा' निकालने की बात लिखी, तो उनका उत्साहभरा पत्र आया। वे 'अपनी' पत्रिका पाकर बहुत खुश थे। 'मैं लिखूँगा, खूब लिखूँगा'—उन्होंने लिखा था; और 'वसुधा' में उन्होंने खूब लिखा। एक विचित्र विरोधाभास था उनकी प्रकृति में। वे पैसे-पैसे के मोहताज थे, पर अच्छा पारिश्रमिक देनेवाली प्रचार-प्रसारवाली पत्रिकाओं में नहीं लिखते थे। मैं आग्रह भी करता कि इन पत्रिकाओं में लिखिए। आपकी रचनाएँ और आपके विचार लाखों लोगों तक पहुँचेंगे और पैसा मिलेगा तो कुछ आर्थिक कष्ट कम होगा। वे जवाब देते : 'पार्टनर, ये पत्रिकाएँ किनकी हैं, आप जानते हैं। इनसे अपनी पटरी नहीं बैठेगी। अपन उस खेमे में नहीं जाएँगे।' उनकी कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जड़ीभूत मान्यताएँ थीं। पत्रिकाओं का प्रकाशन मुख्यतः व्यावसायिक मामला है। उन्हें अच्छी सामग्री चाहिए, जो बाज़ार में चले। लेखक को प्रकाशन और पैसा चाहिए। यह सीधा सौदा है। यह भी सही है कि इन पत्रिकाओं की विचारधारा दक्षिणपंथी है। पर वामपंथी लेखक को छापना उनकी मजबूरी भी है। उन्हें बाज़ार में अच्छा माल लाना है। मगर मुक्तिबोध यह समझौता नहीं करते थे।

यह सही है कि मुक्तिबोध असुरक्षित महसूस करते थे और किसी आसन्न संकट की आशंका उन्हें घेरे रहती थी। वे संदेही थे। या तो किसी आदमी पर पूर्ण विश्वास या पूर्ण अविश्वास। उन्हें यह भी लगता था कि मैं दुश्मनों से घिर गया हूँ। वे अतिशयता से भी ग्रस्त थे। वास्तविक से कई गुना कल्पना से अनुभव करते थे। स्नेह को वे पराकाष्ठा तक ले जाते थे। आशा को भी अनुपात से ऊपर ले जाते थे। सीमांतता और अतिशयता उनमें हमेशा रहती थी। वे चिंतक थे इसीलिए हमेशा बेचैन रहते थे। मानसिक स्थिति उनकी तनावग्रस्त थी। भीतरी और बाहरी संघर्ष उनका विकट था। आशंका, संकट के भय, सतर्कता और असुरक्षा की भावना का कारण थे उनके कटु अनुभव। वे सताए बहुत गए थे। उन्होंने लिखा भी है :

पिस गया वह भीतरी औ बाहरी
दो कठिन पाटों बीच
ऐसी 'ट्रेजडी' है नीच!

सही है कि जीवन के अनुभवों के कारण मुक्तिबोध ऐसे हो गए थे। उनके विरोधी खेमे के हमले तो उन पर होते ही थे, उनका कहना था कि मैं अपने ही खेमे में मारा गया।

मुक्तिबोध को इतना सताया गया था कि थोड़ी-सी उदारता भी उन्हें उद्वेलित कर देती थी। वह उन्हें अविश्वसनीय लगती थी। 'कामायनीः पुनर्विचार' के प्रकाशक शेषनारायण राय वास्तव में पुस्तक-विक्रेता थे। वे हमारे मित्र थे और साम्यवादी पार्टी के सदस्य भी थे। इसी कारण उन्होंने पुस्तक छाप दी। मुक्तिबोध को उन्होंने शायद दो सौ रुपए दिए और सौ की किताबें अपनी दुकान से ले जाने दीं। मुक्तिबोध बहुत गद्‌गद थे। उन्हें यह अविश्वसनीय भी लग रहा था। इसी तरह 'भारत : इतिहास और संस्कृति' के प्रकाशक के मामले में हुआ। उन्होंने मुझसे कहा : 'प्रकाशक अगर दो सौ रुपए दे दे तो बच्चों के लिए कपड़े लेता जाऊँ।' मैंने प्रकाशक से अलग कह दिया कि इन्हें पाँच सौ रुपए दे देना। जब वह पाँच सौ रुपए लेकर सड़क पर आए तो चमत्कृत थे। बोले : 'यह प्रकाशक भी, साहब, अद्‌भुत है। मैंने तो संकोच से दो सौ माँगे थे, पर उसने पाँच सौ दे दिए। अब कपड़े नहीं खरीदेंगे, कर्ज़ चुकाएँगे।'

सारे कष्टों के बावजूद मुक्तिबोध पठन, चिंतन और सृजन में लगातार लगे रहते थे। रातें सोचने और लिखने में गुज़ार देते। पौष्टिक भोजन पाते नहीं थे, चिंताग्रस्त रहते।

उस पर इतना मानसिक श्रम करते थे। इसी कारण वे जवानी में ही बूढ़े-से हो गए थे और कुल 47 साल की उम्र में उनकी मृत्यु हो गई इस सारे चक्कर में आदमी शरीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और बुद्धि से शिथिल हो जाता है। पर वे शिथिल बिलकुल नहीं हुए थे। वे बहुत सचेत और सक्रिय थे। बेहोशी के पहले वे पंडित जवाहरलाल नेहरू की तबीयत के बारे में पूछ रहे थे और बता रहे थे कि नेहरू की मृत्यु के बाद कौन-सी ताकतें ज़ोर पकड़ेंगी।

मुक्तिबोध कट्टरपंथी मार्क्सवादी नहीं थे। कट्टरता से तो उनका झगड़ा ही था। पर वे कभी-कभी वर्ग-दृष्टि से दिलचस्प निर्णय देते थे। वे जबलपुर आए। मेरे साथ ही ठहरे। हमारे एक मित्र प्रोफेसर हनुमान वर्मा ने उन्हें और मुझे भोजन के लिए बुलाया। हनुमान के घर सोफा था और डाइनिंग टेबल थी। हमलोग भोजन करके लौटे। मुक्तिबोध पूरी गंभीरता से बोले : 'आप कहते हैं ये वर्मा जी आपके घनिष्ठ मित्र हैं। पर ये हमारे कैसे हो सकते हैं! उनके घर सोफा है, डाइनिंग टेबल है। रहने का ऊँचा ढंग है। ही बिलांग्ज टू एनादर वर्ल्ड! वे हमारी 'क्लास' के नहीं हैं। वे हमारे मित्र कैसे हो सकते हैं।' मैंने उन्हें समझाया कि हनुमान कुल हज़ार रुपया महीना पाता है। उसी में टीम-टाम कर लेता है। वह हमारे ही वर्ग का है।

आगरावाले मुकदमे की जबलपुर में ही तीसरी पेशी थी। मैंने करीब दस बजे मुक्तिबोध से कहा : 'मुझे तो अदालत जाना है। आप आराम से भोजन कीजिए।' मुक्तिबोध ने पूछा : 'पार्टनर, मजिस्ट्रेट कौन है?' मैंने कहा : 'एक जाघव हैं।' मुक्तिबोध ने कहा : 'जाघव महाराष्ट्र में नीची जाति है। मजिस्ट्रेट की वर्ग-सहानुभूति लेखक के साथ होगी, प्रकाशक के साथ नहीं। आप छूट जाएँगे।'

पिछली दो पेशियों पर प्रकाशक अदालत में नहीं आया था, और अपना मेडिकल सर्टिफिकेट भेज दिया था। उसका बयान होना था। इस बार भी मैंने कहा : 'मैं हाज़िर हूँ।' जाघव साहब ने प्रकाशक के वकील से पूछा : 'और आपके मुवक्किल ?' वकील साहब एक काग़ज़ लेकर आगे बढ़े। न्यायाधीश ने काग़ज़ लेकर देखा और कहा : 'तीसरी पेशी पर भी बीमार हैं। वाह साहब, यह खूब है। आगरा में बैठे हैं। बस एक काग़ज़ भेज दिया और लेखक पर मुकदमा दायर कर दिया। अब लेखक हर पेशी पर आ रहा है और आपके प्रकाशक साहब आगरा में बैठे हैं। एक डॉक्टर का सर्टिफिकेट भेज दिया। मुकदमा कैसे आगे बढ़ेगा? जानते हैं वकील साहब, आप इन लेखकों को! ये इसी सब पर तो लिखते हैं—भ्रष्टाचार, शासन में बेईमानी, झूठ वग़ैरह पर। कहीं इन्होंने लिख दिया कि मैं ही पैसा खा गया तो! नहीं, नहीं। मैं मुकदमा खारिज करता हूँ।' मैं चलने लगा तो जाघव साहब ने हँसकर मेरे भाई से कहा : 'अब क्या लिखेंगे?'

घर लौटा तो मुक्तिबोध को बताया कि मैं छूट गया, मुकदमा खारिज हो गया। वे बोले : 'मैंने कहा था न, पार्टनर! अटल सत्य है!'

भोपाल में एक साहित्यकार सम्मेलन बुलाया गया था। मुक्तिबोध, श्रीकांत वर्मा, प्रमोद वर्मा और मैं वहाँ गए थे। हम लोगों ने तय किया कि अपने भाषणों में मार्क्सवाद के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग नहीं करेंगे। संस्कृति पर गोष्ठी थी। साफ़ दिख रहा था कि पंडित नंददुलारे वाजपेयी और मुक्तिबोध में वैचारिक भिड़ंत होगी। वाजपेयी जी बोल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
चुके। मुक्तिबोध बोलने लगे। वे मस्त होकर, हिलते-डुलते, कटाक्ष करते बोलते थे। वे मूड में बोल गए : 'और ये बुर्जुआ प्रतिक्रियावादी बुद्धिजीवी...' फिर एकदम सचेत हुए कि वादा किया था मार्क्सवाद की पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग नहीं करेंगे। प्रमोद, श्रीकांत और मैं सामने ही बैठे थे। उन्होंने हमारी तरफ देखा और मुस्कराकर कहा : 'कुछ भी कहो पार्टनर, अपन को ये शब्द पसंद हैं।'

हम होटल लौटे। मुक्तिबोध समझाने लगे : 'प्रो. रामलाल सिंह यादव हैं, अहीर। उनकी वर्ग-सहानुभूति हमारे साथ है। पर वे वाजपेयी के समर्थन में इसलिए बोले कि वे रीडर हैं और वाजपेयी जी विभागाध्यक्ष हैं।'

बहुत सतर्क और सक्रिय मुक्तिबोध ने लकवे से शिथिल होकर अपने को मित्रों को सौंप दिया। वे कोई निर्णय नहीं लेते थे। उनके लिए हम लोग निर्णय लेते थे। मैं दिल्ली में श्रीकांत वर्मा के पास था। श्रीकांत के नाम उनका पत्र आया कि बाएँ बाजू में लकवा मार गया है। मैं दूसरे दिन ही भोपाल गया। तब पंडित द्वारिका प्रसाद मिश्र मुख्यमंत्री थे। वे जबलपुर के ही हैं। मुक्तिबोध उनके आग्रह पर उनके साप्ताहिक पत्र 'सारथी' में 'अवंतीलाल' के नाम से अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं पर नियमित लिखते थे। 'योगंधरायण' नाम से भी उन्होंने कुछ लेख लिखे थे। दोनों के विचारों में काफी अंतर था। पर मिश्र जी लिखवाते थे और मुक्तिबोध लिखते थे। मिश्र जी के घर उनकी लंबी चर्चाएँ भी होती थीं। मुक्तिबोध के निधन पर रेडियो पर शोक-प्रसारण में मिश्र जी ने कहा भी था : 'मुक्तिबोध को चाय पीने की आदत थी। वे जब भी मेरे पास बैठते तब मैं घर में कह देता था कि चाय का पानी खौलता रहना चाहिए।' मैं बाबू अक्षय कुमार के साथ मिश्र जी के पास गया। उन्होंने कहा : 'किसी भी मेडिकल कॉलेज में उन्हें ले जाइए। मैं शासन की ओर से उनके इलाज का प्रबंध कर देता हूँ।' मैं ज्ञानरंजन के साथ राजनांदगाँव गया। वे बहुत खुश हुए। बीमारी भूल गए। हम लोग उन्हें भोपाल ले आए और मेडिकल कॉलेज से संबद्ध हमीदिया अस्पताल में प्राइवेट वार्ड के एक कमरे में उन्हें दाखिल करा दिया।

भोपाल में उनके और हमारे बहुत मित्र और स्नेही हैं। वहाँ भीड़ लगी रहती। वे बोलते बहुत कम थे। अखबार रोज़ पढ़ते थे। मोहम्मद अली 'ताज़' को अक्षय कुमार जी ले आए और परिचय कराया। 'ताज़' ने कहा : मुक्तिबोध साहब ग़ालिब ने कहा है :

आह को चाहिए इक उम्र असर होने तक।
कौन जीता है तेरी ज़ुल्फ़ के सर होने तक।।

इसी ज़मीन पर मैंने एक शे'र कहा है :

आह से हमने निकाली है अभय की सूरत
हमको जीना है तेरी ज़ुल्फ़ के सर होने तक।

मुक्तिबोध बहुत खुश हुए : 'वाह, खूब है। बड़ा ग्रेट शे'र है यह।' शे'र को दो-तीन बार सुना।

उन्हें 'ट्यूबरकुलर मैनेनजाइटिस' रोग था। हालत गिरती गई। वे गुमसुम रहने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब उन्हें दिल्ली ऑल इंडिया मेडिकल इंस्टीट्यूट में ले जाया गया, तब वे 'कोमा' में जा चुके थे और वहाँ से फिर लौटे नहीं।

मुक्तिबोध से मैंने बहुत सीखा–चर्चा से और उनके लेखन से। मुक्तिबोध में बंधुत्व भाव बहुत था। हम लोगों के साथ वे बड़े मुक्त स्नेह से बैठते थे और बड़े भाई की तरह सिखाते थे। वैचारिक कपट को वे एकदम पहचान लेते थे और हमलोगों को सावधान करते थे। वैचारिक छल उनके सामने चल नहीं सकता था। हमारी पीढ़ी के एक बड़े हिस्से ने उनसे सीखा। देखता हूँ कि हमारे बाद की पीढ़ी उनसे और अधिक प्रभावित है। बहुत-से लेखक समय के बढ़ते संदर्भहीन होते जाते हैं। मगर मुक्तिबोध ज्यों-ज्यों समय बीतता है और नए रचनाकार आते हैं, अधिक संदर्भवान होते जाते हैं। बीस से पचीस साल की उम्रवाले तरुण रचनाकार शायद हमसे अधिक उन्हें अपने निकट पाते हैं।

मुक्तिबोध ने 'वसुधा' में बड़े उत्साह से 'एक साहित्यिक की डायरी' नियमित रूप से लिखी। 'वसुधा' मासिक लघु पत्रिका हमने 1956 में निकाली थी। वह ढाई साल चली। बिलासपुर से श्रीकांत वर्मा ने रामकृष्ण श्रीवास्तव के सहयोग में 'नई दिशा' पत्रिका निकाली थी, जिसके कुल तीन अंक निकल सके। 1956 में हमारे कुछ बाहर के मित्र जबलपुर में ही थे। प्रो. प्रमोद वर्मा, प्रो. कांतिकुमार जैन यहाँ तबादले पर, शोध-संस्थान में आए थे। प्रो. हनुमान वर्मा यहीं प्राइवेट कॉलेज में थे। श्रीबाल पांडे भी यहीं थे। हमारी बैठक 'प्रहरी' के एक संपादक रामेश्वर गुरु के घर होती थी। इनके विषय में मैं विस्तार से लिख चुका हूँ। उस समय प्रगतिशील लेखक संघ बिखर चुका था। 'नया पथ' पत्र बंद हो गया था। 'अज्ञेय' के निर्देशन में, डॉ. धर्मवीर भारती के नेतृत्व में 'परिमल' संस्था चलती थी। तब धर्मवीर भारती का प्रभाव बहुत था और ज़्यादातर तरुण लेखक उनके साथ थे। तब 'लघुमानव', 'क्षणवाद', 'नदी के द्वीपवाद', 'मृत्यु-बोध' का बोलबाला था।

हम लोगों ने तय कर डाला कि एक मासिक पत्रिका निकाली जाए। नाम 'वसुधा' भी तय कर डाला। रामेश्वर गुरु चंदा लेने में उस्ताद हैं। उन्होंने कई कार्यों के लिए चंदा किया है। बाकी हम लोग थे ही। तीस साल हो गए हैं। हमें अपेक्षित सहयोग जाने-माने, प्रगतिशीलों का नहीं मिला। मुक्तिबोध ने ज़रूर नियमित लिखा। नागार्जुन की दो कविताएँ मिलीं। शमशेर की एक कविता और एक रुबाई। तब रमेश बक्षी और शरद जोशी लगभग 'नवोदित' थे, मित्र भी थे। इनकी रचनाएँ काफी मिलीं। हम लोग ही कल्पित नामों से लिखते थे। श्रीकांत वर्मा 'समुद्रगुप्त' नाम से 'कलम की दिशा' स्तंभ नियमित लिखते थे। प्रमोद वर्मा 'गोरखनाथ' नाम से लिखते थे और मैं 'आनंद स्वामी' नाम से लिखता था। वे बहुत अच्छे दिन थे। हम लोग शाम को गुरु जी के घर पहुँच जाते और रात ग्यारह बजे तक काम और गपशप करते। दिन में नौकरी करते थे। इसके बावजूद अपना पढ़ना-लिखना कर लेते थे।

हमलोग चंदा भी करते थे और ग्राहक बनाने भी निकलते थे। विज्ञापन गुरु जी ले आते थे। हम दूसरे छोटे शहरों जैसे सागर, गाडरवारा, इटारसी आदि से भी चंदा लाते थे और वहाँ ग्राहक भी बनाते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'संतन कहा सीकरी सों काम !'

फतेहपुर सीकरी में शहंशाह अकबर थे। उन्होंने संत कवि कुंभनदास को दरबार में बुलाया। बहुत घेराघेरी के बाद संत सीकरी गए। लौटकर पछताए। कहा :

संतन कहा सीकरी सों काम
आवत जात पन्हैया घिस गई,
बिसर गयो हरि नाम।
जिनके देखे दुख उपजत है,
तिनकों करवो पड़ै सलाम।।

तुलसीदास को भी मनसबदारी से अलंकृत करने के लिए अकबर ने बुलाया था। संत ने जवाब दिया :

हम चाकर रघुवीर के, पढ़ौ लिखौ दरबार।
अब तुलसी का होंहिंगे, नर से मनसबदार।।

यह जो लिखा वह भूमिका नहीं है अपने को संत सिद्ध करने की। संत बिलकुल नहीं हूँ। खास महत्त्वाकांक्षी भी नहीं हूँ, मगर रास्ते में लाभ दिख जाए तो उसे लेने की कोशिश करता हूँ। साधारण आदमी हूँ। साधारण आदमी के गुण और दोष मुझमें हैं। हम लोग—इस युग के अधिकतर लेखक, बुद्धिजीवी—इस व्यवस्था की जारज संतानें हैं। हम मानसिक रूप से 'दोगले' नहीं, 'तिगले' हैं। संस्कारों से सामंतवादी हैं, जीवन मूल्य अर्द्ध-पूँजीवादी हैं और बातें समाजवाद की करते हैं। अधिकांश हम लोग 'रेटारिक' खाते हैं और 'पोलेमिक्स' की कै करते हैं।

मैं समझता हूँ, मेरी कुल उपलब्धि मानवीय संवेदना और सरोकार है। मनुष्य के जीवन की बेहतरी की चिंता मेरी रही है। इसी से मैंने लिखा है और कुछ मशहूर भी हो गया हूँ। यह आस्था न होती तो मैं कुछ नहीं होता। तुलसीदास ने लिखा :

का गिनती महँ गिनती जस वन घास।
नाम जपत भए तुलसी, तुलसीदास।

वह घास ही हूँ। विनम्र हूँ। मगर कठोर माना जाता हूँ। बात यह है कि व्यक्तिगत कारणों से मुझे गुस्सा लगभग नहीं आता। व्यर्थ गुस्सा आत्म-क्षय करता है। मगर मैं सामाजिक अन्याय को बरदाश्त नहीं करता और कठोर-से-कठोर प्रहार करता हूँ। लेकिन हम अखाड़े के भीतर ही पहलवान हैं। अखाड़े के बाहर अबोध शिशु हैं। हमारा यह नकुछपन भी अहंकार माना जाता है और लोग मेरे नमन पर भी कुड़मुड़ाते हैं। ग़ालिब ने कहा है :

हम कहाँ के दाना थे किस इल्म में यकता थे,
बेसबब हुआ है ग़ालिब दुश्मन आसमाँ अपना।

अहंकार किया तो लड़ाकू तेवर में कहा :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखियो ग़ालिब से जो उलझा कोई,
है वली पोशीदा काफ़िर खुला।

बहरहाल, मैंने पहले कहा है कि रास्ते में लाभ आ जाए तो उसे प्राप्त करने की कोशिश करता हूँ। बीसेक साल पहले राज्यसभा की सदस्यता मेरे रास्ते में आ गई थी। मैंने राज्यसभा की कभी कल्पना नहीं की थी। मैं मानता था और अभी भी मानता हूँ कि राज्यसभा की राष्ट्रपति द्वारा नामजदगी से सदस्यता बुढ़भस लेखकों के लिए है। यहाँ निष्क्रियता का वेतन मिलता है, मानसिक आलस्य का सम्मान होता है। कुछ भी नहीं समझना और कुछ भी नहीं बोलना संसदीय कर्त्तव्य माना जाता है। बजट पर मैथिलीशरण गुप्त तुकबंदी लिखकर राज्यसभा में पढ़ते थे जिसमें ऐसा कुछ होता था : 'हे राम! भारतभूमि पर तुम स्वर्ण की वर्षा करो।' यह कवि का अर्थशास्त्र था। पृथ्वीराज कपूर जब राज्यसभा में पहली बार बोले तो अंग्रेज़ी अखबार में टिप्पणी थी : 'He was charmingly innocent.' 'बच्चन' बौद्धिक हैं, पर वे भी राज्यसभा में बारह साल मौन रहे। उनकी एक संसदीय उपलब्धि है—उन्होंने राजीव गांधी और सोनिया की शादी विलिंगडन क्रीसेंट स्थित सरकारी बंगले से कराई। यह सत्कार्य आज राजीव का संकट है। खुशवंत सिंह ने ज़रूर मुँह खोला मगर बदकिस्मती से भूपेश गुप्त से टकरा गए। भूपेश गुप्त ने खुशवंत सिंह की तरफ इशारा करके कहा : 'Sychophants like him, caused the death of Sanjay Gandhi.' खुशवंत सिंह ने तैश में आकर असंयमित और अशिष्ट बोला। भूपेश गुप्त ने संयमित पर कठोर जवाब दिया। कुछ सदस्यों ने अध्यक्ष से निवेदन किया कि कार्यवाई में से यह बहस निकाल दी जाए। भूपेश गुप्त ने कहा : 'Mr. Chairman, not a word should be expunged and a copy should be sent to the President, so that he may know what type of man he nominates to this house.' फूहड़ लतीफ़ों के शौकीन खुशवंत सिंह के संसदीय जीवन को झटका लगा।

राज्यसभा सदस्यता के लिए मेरी पन्हैया कैसे घिसी, यह बताता हूँ। दिल्ली में मेरे संबंध कांग्रेस के भीतर के और बाहर के वामपंथी नेताओं से थे। मेरे मित्र कवि श्रीकांत वर्मा तब कांग्रेस में नहीं गए थे, पर उनके राजनीतिक संबंध थे। यह बात दिल्ली में मुझसे कही जाती थी कि मुझे दिल्ली आ जाना चाहिए। मगर किस सहारे दिल्ली में बस जाएँ?—माना कि रहेंगे दिल्ली, मगर खाएँगे क्या? (ग़ालिब)

एक दिन मुझे भोपाल में फोन पर खबर दी गई कि चौबीस तारीख को आपको और मायाराम सुरजन को पंडित द्वारिकाप्रसाद मिश्र से मिलना है। मिश्र जी तब प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के बहुत निकट थे। हम मिश्र जी से मिले। उन्होंने मायाराम जी से कहा कि आप कांग्रेस टिकिट पर लोकसभा में चुनकर जाएँगे। मुझसे कहा कि आपको राष्ट्रपति से राज्यसभा की सदस्यता के लिए नामज़द कराएँगे। वहाँ आपको नए अनुभव होंगे, आर्थिक निश्चिंतता होगी और आप बहुत लिखेंगे।

बात मुझे अच्छी लगी। मैं कुछ दिन बाद दिल्ली गया। सुभद्रा जोशी ने कहा कि आपका नाम चल रहा है और ऊपर है। केशवदेव मालवीय आदि ने भी कहा। अब मेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्पना में वेस्टर्न कोर्ट घूमने लगा। वेस्टर्न कोर्ट में रहेंगे। राज्यसभा में 'डमी' नहीं होंगे, सक्रिय होंगे। बहुत सारी योजनाएँ बना डालीं।

मैं जबलपुर लौट आया। एक दिन श्रीकांत वर्मा का तार मिला कि फ़ौरन दिल्ली आइए। मैं पहुँचा। श्रीकांत से मिला। उन्होंने कहा : आपको पहले आ जाना था। कल शायद चार सदस्यों की नामज़दगी हो चुकी है। मैं सुभद्रा जोशी के पास आया। उन्होंने मिश्रा जी से फोन पर बात की। नामज़दगी हो चुकी थी।

मुझे बताया गया कि ज्योति बसु से, धाँधली से बंगाल छीनकर सिद्धार्थशंकर राय आए हैं, और दिल्ली दरबार में उनकी चल रही है। उन्होंने बंगला लेखक प्रमथनाथ विशी को नामज़द करा दिया है। अच्छा हुआ।

हम दिल्ली दरबार नहीं चढ़ सके। दुख तो मुझे हुआ पर मैं जल्दी उससे उबर गया। मुझमें रचना की ऊर्जा और उत्साह बहुत था। इस ताकत से मैं विफलता को परास्त कर देता हूँ। बनिया अलसी के घाटे को मूँगफली के मुनाफ़े से पूरा कर लेता है। इसी तरह मैं दुनियावी विफलताओं और हानियों को लेखन-कर्म से जीत लेता हूँ। यहाँ यह बता दूँ कि 1985 में मुझे दौड़ में मेडल पानेवाली लड़की पी.टी. उषा के साथ पद्मश्री मिल गया।

सो दिल्ली आवत-जात पन्हैया तो घिसी, पर हरि नाम नहीं बिसरा।

एक बार मैं कॉलेज में अध्यापक होते-होते बाल-बाल रह गया। सरकारी स्कूल की नौकरी छोड़ने के बाद मैंने दो प्राइवेट स्कूलों में नौकरी की। मैं तब माध्यमिक अध्यापकों का संगठक और नेता था और स्कूलों के मालिकों से संघर्ष होता रहता था। मैं छात्रों में बहुत लोकप्रिय था। स्कूल की दुकानदारी चलानेवालों की नजर में ये दोनों खतरनाक गुण थे। पहले प्राइवेट स्कूल में मैंने अध्यापकों की हड़ताल कराई थी और मुझे नौकरी छोड़नी पड़ी थी। दूसरे स्कूल के प्रबंधकों ने नौकरी दी। उसी स्कूल के ट्रस्ट का एक कॉलेज भी उसी इमारत में चलता था। ये संस्थाएँ अभी भी हैं और दालचंद नारायणदास जैन ट्रस्ट की हैं। कॉलेज में भी मुझे पार्ट टाइम पढ़ाने का काम दे दिया गया था। कॉलेज में हिंदी के अध्यापक की जगह खाली थी। प्राचार्य महोदय बहुत नाटकीय व्यक्ति थे। वे मेरे प्रति बहुत स्नेह और आदर दिखाते थे और बार-बार कहते थे कि आप तो कॉलेज में पूर्णकालिक अध्यापक हो जाइए। मैं चाहता हूँ कि आप हमारे कॉलेज में हों। मुझे अभी भी उनके व्यवहार को याद करके हँसी आती है। वे जब-तब खंभे की आड़ में या इमारत के एकांत कोने में मुझसे धीरे-धीरे कहते : 'तो फिर आप कॉलेज में आ ही रहे हैं न! आप तय कर लीजिए। आप बुद्धिमान हैं, आपका व्यक्तित्व है, मैं तो आपको कॉलेज में लेकर ही रहूँगा।' वे इस तरह बात करते जैसे कोई पुरुष स्त्री से प्रेम-निवेदन कर रहा हो।

मेरी इच्छा सचमुच कॉलेज में अध्यापक हो जाने की थी। विज्ञापन निकला। आवेदन-पत्र देने की तारीख के तीन दिन पहले मैं प्राचार्य से मिला और पूछा : 'क्या मैं आवेदन कर दूँ?' उन्होंने सीधे मेरी तरफ़ नहीं देखा। अगल-बगल देखते हुए उन्होंने कहा : 'हाँ, आवेदन करने में क्या हर्ज़ है।' मुझे झटका लगा। वे मुझसे तीन माह से प्रेम-निवेदन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रहे थे। अब बदल गए थे। मैंने कहा कि 'मैं आवेदन नहीं करूँगा।' मुझे बाद में मालूम हुआ कि उन्हें एक-दो लोगों ने सलाह दी कि इस परसाई को यदि आपने कॉलेज में ले लिया तो यह आपकी ज़िंदगी की सबसे बड़ी भूल होगी। यह लड़कों को भड़काएगा और उपद्रव कराएगा। अध्यापकों को आपसे लड़वाएगा। प्राचार्य ने ज़िंदगी की सबसे बड़ी भूल नहीं की। फिर मैंने स्कूल की नौकरी भी छोड़ दी।

तीसरा लाभ रास्ते में आया सागर विश्वविद्यालय में मुक्तिबोध पीठ पर आसीन होने का। यह काफी नाटकीय हुआ। 1980 में जबलपुर में राष्ट्रीय प्रगतिशील लेखक महासंघ का अधिवेशन हुआ। बहुत लेखक आए। हमारी तरफ से मुख्यमंत्री से मायाराम सुरजन ने बात की। शिक्षा और संस्कृति सचिव अशोक वाजपेयी थे। मुख्यमंत्री अर्जुनसिंह ने 10 हज़ार रुपया अनुदान दिया और कहा कि मैं लेखकों का स्वागत करने आऊँगा। इस सम्मेलन की अध्यक्षता मैंने की, उद्घाटन केदारनाथ अग्रवाल ने और संचालन ज्ञानरंजन तथा कमलाप्रसाद ने किया। स्थानीय प्रशासन ने हमारे प्रतिनिधि डॉ. श्यामसुंदर मिश्र को बुलाया और पूछा : 'मुख्यमंत्री उद्घाटन कितने बजे करेंगे?' श्यामसुंदर ने कहा : 'वे उद्घाटन नहीं करेंगे।' तो अफ़सर ने पूछा : 'तो अध्यक्षता करेंगे?' श्यामसुंदर ने कहा : 'अध्यक्षता भी नहीं करेंगे।' तो अफ़सर ने पूछा : 'फिर क्यों आ रहे हैं?' श्यामसुंदर ने कहा : 'लेखकों का स्वागत करेंगे।' अफ़सर कुछ चक्कर में आ गए। अफ़सर ने कहा : 'ऐसा तो कभी हुआ नहीं।'

दिलचस्प बात यह है कि प्रशासन की तरह की ही प्रतिक्रिया कुछ लेखकों की भी हुई। कहने लगे कि मुख्यमंत्री को बुला लिया है। व्यवस्था को सिर पर लाद लिया है। मैंने कहा : 'मुख्यमंत्री ने खुद स्वागत करने के लिए आने की इच्छा प्रगट की है। वे हाथ ही जोड़ेंगे, सम्मेलन पर कब्ज़ा नहीं करेंगे। मुख्यमंत्री दंगाग्रस्त क्षेत्रों का और अकाल पीड़ित क्षेत्रों का दौरा करते हैं। यह लेखकों का महासम्मेलन हो रहा है जो खुला है, गुप्त नहीं है। वे इसमें आ रहे हैं। आपको व्यवस्था की जितनी आलोचना करनी हो, विरोध करना हो, आप कीजिए।' पर शिवकुमार मिश्र बहिष्कार करके गुजरात लौट गए। रमेशकुंतल मेघ रहे, विश्वंभर उपाध्याय और नागार्जुन भी रहे। विश्वंभर उपाध्याय ने काफी सख़्त विरोध किया मुख्यमंत्री के आने का। उन्होंने 'हंस' में बाद में गलतबयानी भी की कि मुख्यमंत्री को उद्घाटन के लिए बुला लिया। मैंने प्रतिवाद छपा दिया कि उद्घाटन केदारनाथ अग्रवाल ने किया था।

एक और अति क्रांतिकारी लेखक सरकारी कॉलेज में अध्यापक हैं। मैंने उनसे पूछा : 'अगर आपके कॉलेज में मुख्यमंत्री आनेवाले हों और आपके प्राचार्य आपसे कहें कि उनकी शान में मानपत्र लिख दीजिए तो आप मानपत्र लिखेंगे या नौकरी छोड़ देंगे ?' वे पसोपेश में पड़ गए। मैंने कहा : 'मेरी सलाह होगी कि आप मानपत्र लिख दें, नौकरी न छोड़ें। मौजूदा व्यवस्था में सत्ता और लेखक के संबंध बहुत जटिल हैं। उनका अति सरलीकरण करना गलत निर्णयों पर पहुँचना होगा। नौकरी छोड़कर आप अपना और अपने परिवार का नाश करेंगे और क्रांति के उस झंडे के चिथड़े कर देंगे, जो दिखाते फिरते हैं।'

मुख्यमंत्री ने स्वागत में क्रांतिकारी भाषण दे दिया। मार्क्सवाद की शब्दावली का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
प्रयोग भी किया। कहा कि 'वर्ग-भेद की दीवारें आप लोग तोड़ दीजिए।' अब जो नाराज़ लेखक थे, वे बहुत खुश हुए। मैंने कहा : 'आप पहले भी गलत थे और अब भी गलत हैं। भेद की दीवार तोड़ने जाएँगे तो पुलिस की लाठी से सिर टूटेगा।'

इसी सम्मेलन में यह प्रस्ताव किया गया कि किसी विश्वविद्यालय में 'मुक्तिबोध पीठ' की स्थापना की जाए। महीने-भर बाद मुख्यमंत्री अर्जुनसिंह ने घोषणा कर दी कि सागर विश्वविद्यालय में 'मुक्तिबोध पीठ' की स्थापना की जाएगी। 4-5 दिन बाद संस्कृति सचिव अशोक वाजपेयी का पत्र आ गया कि आपसे अनुरोध है कि आप 'मुक्तिबोध पीठ' पर आसीन हों।

मैं जाना नहीं चाहता था। एक तो मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं था, दूसरे कुछ पारिवारिक समस्याएँ थीं। मैंने एक महीने जवाब नहीं दिया। मुझसे इस अवधि में आग्रह हुए, मेरे ऊपर दबाव डाले गए और मुक्तिबोध से निकटता की भावुकता उभारी गई। मुख्यमंत्री, अशोक वाजपेयी, मायाराम सुरजन, कमलाप्रसाद, ज्ञानरंजन आदि ने काफ़ी आग्रह किया। सागर से शिवकुमार श्रीवास्तव, महेंद्र फुसकेले, डॉ. प्रेमशंकर, डॉ. कांतिकुमार आदि के पत्र आए। कांतिकुमार जबलपुर में रहे थे और पुराने मित्र थे।

एक दिन मेरे मित्र मायाराम का पुत्र ललित सुरजन, जो बचपन से मेरा साथी है, कार लेकर रायपुर से आया और दूसरे दिन मुझे कार में बिठाकर सागर के लिए रवाना हो गया। साथ में मेरा भांजा प्रकाश था और हफ़्ते-भर साथ रहने के लिए डॉक्टर 'मलय' भी थे। दमोह में हनुमान वर्मा एक दिन पहले से थे। वहाँ भोजन किया और सागर को बढ़ लिए। सागर में शिवकुमार और कृष्ण कुमार साथ हो लिए और हम कुलपति के बंगले में पहुँचे। वहाँ चाय-नाश्ते के बाद मैं अपने बंगले में पहुँच गया।

मुझे बताया गया कि आपने आकर कुलपति की एक बड़ी समस्या हल कर दी। इस बंगले में आने के लिए तीन प्रोफेसरों में मल्लयुद्ध हो रहा था क्योंकि यह परिसर का सबसे अच्छा बंगला है। विश्वविद्यालयों में नई शोध या नई बौद्धिक स्थापना के लिए आचार्यों में संघर्ष नहीं होता; अच्छे बंगले, चपरासी, अच्छे बगीचे के लिए संघर्ष होता है।

सागर विश्वविद्यालय में मेरे बहुत अध्यापक मित्र थे। मैं साल में एक-दो बार वहाँ किसी कार्यक्रम में जाता था। सब जाना हुआ था मेरा। मेरे पहुँचने से पहले वहाँ कमलाप्रसाद डी.लिट्. के लिए 'टीचर फेलो' थे। उनके साथी और चेले थे। उनके कनिष्ठ साथियों में कपिल तिवारी और मनोहर देवलिया थे। कपिल तिवारी अद्‌भुत मेधावान और अध्ययनशील युवा हैं। देवलिया ने मुझ पर शोध की है और दो पुस्तकें छपाई हैं। ये दोनों रोज़ ही मेरे पास बैठते थे और बहुत मदद करते थे।

सारे विश्वविद्यालयों के परिसरों और अध्यापकों का हाल एक-सा है।

सभी विश्वविद्यालयों में गुट होते हैं। परनिंदा आध्यात्मिक साधना होती है। गुट-संघर्ष रचनात्मक कार्य होता है। हर विभाग में शोध का स्थायी विषय होता है—शत्रु पक्ष की कमज़ोरियों का पता लगाना। भाषा का विकास निंदा-कर्म से बहुत अच्छा होता है। ये परस्पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संबंधों के समीकरण बदलते रहते हैं। हर सोमवार को कुलपति को सब विभागों में सूचना भेज देनी चाहिए कि इस सप्ताह शत्रु-मित्र के ये समीकरण हैं। तदनुसार निंदास्तुति की जाए। जैसे नए आदमी के लिए यह जानना असंभव था कि वर्तमान समीकरण क्या है। डॉ. 'क' आए हैं और डॉ. 'ख' की बात निकाल दी है। अब मैं नहीं जानता कि डॉ. 'ख' इनके इस सप्ताह मित्र हैं कि शत्रु। अगर मित्र हैं और मैंने 'ख' की बुराई कर दी तो ये मेरे शत्रु हो जाएँगे। अगर शत्रु हैं और मैंने तारीफ़ कर दी तो भी शत्रु हो जाएँगे। मुझे निंदा में कोई रुचि नहीं।

मेरे पास जो आता वह किसी की निंदा ही करता। मैं चुप रहता। पर तीसरे या चौथे दिन राव साहब आए। उन्होंने विभाग की बात शुरू की। मैंने टोका : 'छोड़िए। परिवार के बारे में बताइए। बिटिया की शादी हुई? लड़के काम-धंधे से लगे? कितनी ज़िम्मेदारियाँ पूरी कर चुके?' राव साहब ग्लानिग्रस्त हुए। फिर एकदम खुश होकर कहा : 'यह आपने बहुत अच्छा किया जो परिवार की बात निकाल दी। मुझे बहुत अच्छा लगा। हम लोग यहाँ किस कीचड़ में रहते हैं।'

कभी ऐसा भी होता कि 3-4 अध्यापक बैठे हैं और उनमें विश्वविद्यालय की राजनीति को लेकर गर्म विवाद चलने लगता। मैं तरकीब से विषय बदल देता। किसी विषय के अध्यापक से उनके विषय का कोई गंभीर प्रश्न कर देता। वे उसे समझाने लगते और वह गर्म बहस खत्म हो जाती। एक शाम हाथापाई की नौबत आनेवाली थी। तभी छिपकली गिरी। उसे भगाने में क्षण-भर द्वंद्व थमा तो मैंने प्राणिशास्त्र के आचार्य डॉ. सक्सेना से पूछा : 'सक्सेना साहब, छिपकली का विकास क्यों नहीं हुआ?' डॉ. सक्सेना समझाने लगे और झगड़ा खत्म हो गया।

स्वास्थ्य खराब रहने के बावजूद मैंने काम बहुत किया। वैसे काम मुझे कोई नहीं दिया गया था। दो हज़ार रुपया प्रतिमाह लेना ही मेरा काम था। पर मुझसे अपेक्षा थी कि मैं वहाँ रहकर खुद लिखूँ-पढ़ूँ तथा युवकों-युवतियों को साहित्य रचना के लिए प्रोत्साहित करूँ और सिखाऊँ। मुझे इस काम में रुचि है। यों भी मेरे पास नए-से-नए लेखक आते हैं। मैं बुजुर्ग हुआ ही नहीं। मेरे निवास पर बहुत-से छात्र-छात्राएँ आते थे। नगर के साहित्यिक व पत्रकार भी आते थे। मेरे पास आसपास के कस्बों के अर्द्धशिक्षित रचनाकार भी आते थे। मैं देखता कि इनमें तकनीक की चाहे कमी हो, पॉलिश न हो, पर वास्तविक जीवन-संघर्ष से उत्पन्न उनकी रचनाएँ शक्तिशाली होती हैं।

लिखना सिखाते-सिखाते मैं खुद भी सीखता था। एक लड़की 'प्रताड़ित बहू' की कहानी लिखकर लाई। सास द्वारा बहू प्रताड़ित की जाती है और वह आत्महत्या कर लेती है। मैंने पढ़कर कहा : 'यह तो अखबार का समाचार है। इसे पढ़कर मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। तुम क्या किसी ऐसी बहू को जानती हो जो सास द्वारा सताई जाती हो?' लड़की ने कहा : 'हाँ, बिलकुल पड़ोस में दीवार के उस पार ऐसी बहू है।' मैंने कहा : 'तो ऐसा करो, दो दिन तक तुम सिर्फ़ यह नोट करो कि सास किस तरह से पीड़ा देती है। सुबह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
से ही सुनो, सास क्या बोलती है। उसके शब्द जैसे-के-तैसे लिख लो। वह क्या करती है उसे पीड़ा देने के लिए, यह जैसा-का-तैसा नोट करो। बहू से तुम्हारी बात होती ही होगी। वे बातें जैसी-की-तैसी नोट कर लो। अपनी तरफ़ से कुछ मत लिखो। जो कहा जाता है और जो होता है वही सिलसिलेवार लिख डालो। अपनी तरफ से करुणा मत पैदा करो। करुणा उसी में से पैदा होने दो।' लड़की चार दिन बाद इस तरह लिख लाई। मैंने दूसरों के सामने वह रचना पढ़वाई। वह सचमुच बहुत प्रभावकारी हो गई थी।

कुल पाँच महीने काम कर पाया था कि मैं बहुत बीमार हो गया। भोपाल हमीदिया अस्पताल में भरती किया गया। तीन महीने इलाज के बाद सागर लौटा, पर फिर मन लगा नहीं। मैं उसी क्षण जबलपुर लौट आया।

122609

साधु संगत में

आदम धार्मिक निष्ठा का आदमी है। महीने-भर से उज्जैन में कुंभ-स्नान कर रहा था। महीने-भर के इस स्नान के पुण्य का परिणाम यह हुआ कि दो बार मेरी जेब कटी। होटल का खाना खाने से एक बार कै-दस्त से बीमार हुआ। और अब सारे शरीर में खुजली होती है और फुंसियाँ उठती हैं। इंजेक्शन और दवा ले रहा हूँ। यह 'मोक्ष' के पहले की स्टेज है। कहते हैं, मोक्ष-प्राप्ति के पहले आत्मा को खुजली, खाज या दाद होती है। दाद खुजाने का आनंद परमानंद की तरह होता है। तीर्थ जल में स्नान करने का इसीलिए विधान है कि वहाँ खुजली अथवा दाद होती है, जिसे खुजाते हुए जीव यह अनुभव करता है कि जब आत्मा जन्म-मरण के बंधन से मोक्ष पाकर ब्रह्म से मिलती है, तब कैसा आनंद आता है।

आदम ने उज्जैन में साधुओं के दर्शन किये और धन्य हो गया। मुझे विश्वास हो गया कि अभी भी देश में सबसे अच्छा धंधा धर्म का है। साधुओं के बड़े-बड़े अखाड़े। उनके महंत। हाथी, घोड़े, सोने, चाँदी के सिंहासन। चंवर। शंख। घड़ियाल। हजारों की तादाद में साधुओं की जमात के साथ ये महंत स्नान के लिए निकलते थे। सुबह 5 से शाम 5 तक 'शाही' स्नान हुआ। यानी इन 12 घंटों में सिर्फ साधु ही राजसी ठाठ से नहाए और हम-जैसे लाखों पापी, नरक के कीड़े, भारतवासी उस पवित्र साधुई नंगेपन को नहाते देखते रहे और धन्य होते रहे। जगत् का कल्याण हो गया।

मगर लोग बड़े पापी हैं। साधु को दुख देते हैं। पत्रकारों को बदरीनाथ के हाईकोर्ट से हारे शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानंद ने बताया। बदरीनाथ के दो शंकराचार्य हैं—कोर्ट से जीते हुए स्वामी शांतानंद और हारे हुए स्वामी स्वरूपानंद। स्वरूपानंद ने बताया कि शंकराचार्यों का अपमान हो रहा है। पुरी के शंकराचार्य की 550 एकड़ जमीन सरकार ने ले ली। घोर पाप। पृथ्वी के रसातल में जाने में देर नहीं है। पुरी के शंकराचार्य वही निरंजनदेव हैं जो जनसंघ के गौ-रक्षा आंदोलन में शामिल थे। सिर्फ 'ब्रह्मसूत्र' पढ़ने और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके बाहर ज्ञान-विज्ञान न मानने से आदमी जितना आदर्श-मूढ़ हो सकता है उतने ही निरंजनदेव हैं। वे शंकराचार्य जमानत पर थे। इन पर फौज़दारी मुकदमा चला था। मुकदमा खारिज हो गया, इसलिए शंकराचार्य की गद्दी पर हैं वरना जेल में होते और शूद्र के हाथ की रोटी खाते। मुकदमा इन पर अस्पृश्यता विरोधी कानून के तहत चला था। निरंजनदेव यह मानते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र भगवान खुद बनाते हैं। भगवान के बगल में निरंजनदेव बैठे रहते हैं और उन्हीं की सलाह से भगवान वर्ण और जाति देते हैं। निरंजनदेव ने सिफारिश कर दी थी तो भगवान ने आदम को ब्राह्मण बना दिया।

स्वरूपानंद का कहना है कि सरकार को मंदिरों, मठों, देवस्थानों पर कोई नियंत्रण नहीं रखना चाहिए। वे ठीक कहते हैं। तिरुपति भारत में सबसे संपन्न मंदिर है। भगवान विष्णु के एक रूप का मंदिर है। कथा है—विष्णु को लक्ष्मी से शादी करनी थी। पैसे की थी तंगी। तो विष्णु ने कुबेर से धन उधार लिया। अब कुबेर का कर्ज पटे कहाँ से? तो यह जो लाखों की भेंट चढ़ाई जाती है तिरुपति में रोज, वह कुबेर का कर्ज ही पट रहा है। अभी तो ब्याज ही पट रहा है! भक्तगण भगवान का कर्ज पटा रहे हैं, तो इसमें कोई सरकार दखल क्यों दे? अत्याचार की हद नहीं है! श्रृंगेरी के शंकराचार्य का चंदनवन था। उससे बारह लाख रुपए की सालाना आमदनी थी। पर सरकार ने उसका राष्ट्रीयकरण कर लिया। इसी तरह द्वारका के शंकराचार्य के सुपारी के फार्मों का राष्ट्रीयकरण कर लिया। नाश हो पापियों का! इतना पाप! इस देश में तभी तो अकाल पड़ता है, बाढ़ से विनाश होता है। दे दिया शाप साधुओं ने—जाओ, तुम्हारी सारी पंचवर्षीय योजनाएँ असफल होंगी। समाजवाद कभी नहीं आएगा।

आदम बहुत दुखी था। आशा के लिए पहुँचा मथुरा—जय गुरुदेव के दर्शन के लिए। जय गुरुदेव अपने को भगवान का अवसर बताते हैं। वे सतयुग लाने की आशा भी दिलाते हैं।

उन्होंने कहा—बैठो बच्चा आदम, कहाँ से आ रहे हो?

मैंने कहा—उज्जैन से। बड़ा दुखी हूँ।

जय गुरुदेव—दुखी तो होगे ही। कलियुग है न। मैं सतयुग ला रहा हूँ। तब तुम सुखी हो जाओगे।

आदम—गुरु, सतयुग आप कब तक ले आएँगे।

गुरुदेव—बस, विधानसभाओं के चुनावों के बाद। मैं अब चुनाव से सतयुग ला रहा हूँ। मैंने 'दूरदर्शी पार्टी' बना ली है, जिसके उम्मीदवार हर राज्य में खड़े कर दिए हैं। ये सब जीतेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

G... ...RARY
Acce
Clas
Cat o i ... 11.6.2002
Tag ... 11
Filing ... 11
22-6-02
11.6.2002

Recommended By...........

Compiled
2002–2003

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

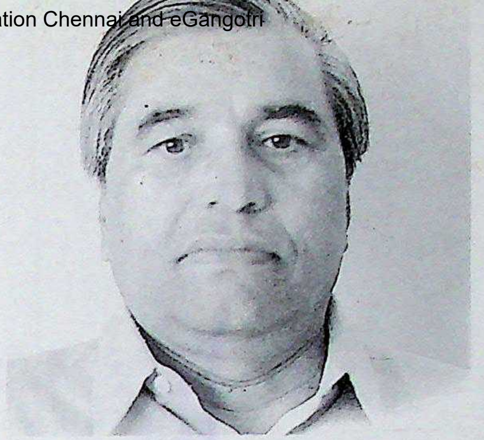

कमला प्रसाद

14 फरवरी 1938 को सतना जिले के छोटे से गांव धौरहरा में पैदा हुए। लगभग पच्चीस वर्ष तक म.प्र. शांसन के उच्चशिक्षा विभागीय महाविद्यालयों में नौकरी की। 1989 अगस्त में अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा में महाकवि केशव अध्यापन एवं अनुसंधान केन्द्र के निदेशक बने। अभी हिन्दी विभाग के अध्यक्ष और अन्तर्भारती संस्कृति केन्द्र (बाणभट्ट परिसर) के समन्वयक के रूप में कार्य कर रहे हैं। म.प्र. हिन्दी केन्द्रीय अध्ययन मंडल के अध्यक्ष तथा अनेक विश्वविद्यालयों की विभिन्न समितियों में विशेषज्ञ के रूप में सम्बद्ध हैं।

प्रकाशित कृतियां हैं—साहित्यशास्त्र, छायावादोत्तर काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, छायावाद प्रकृति और प्रयोग, दरअसल, रचना और आलोचना की द्वन्द्वात्मकता, आधुनिक हिन्दी कविता और आलोचना की द्वन्द्वात्मकता, समकालीन हिन्दी निबन्ध और निबन्धकार, कविता तीरे, साहित्य और विचारधारा, मध्ययुगीन रचना और मूल्य, यशपाल (मोनोग्राफ), गिराअनयन। संपादित पुस्तकें—आंखन देखी, हिन्दी प्रगतिशील आलोचना, नाटक की इबारत, कहानी की वर्णमाला, रचना की कर्मशाला, नवजागरण के अग्रदूत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि।

'पहल' पत्रिका से वर्षों जुड़े रहे। अब 'वसुधा' का संपादन कर रहे हैं। प्रगतिशील लेखक संघ और भारतीय जननाट्य संघ से संबद्ध हैं। मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साथ सक्रिय रिश्ता है। उद्देश्यपूर्ण सामाजिक सांस्कृतिक योजनाओं के क्रियान्वयन में गहरी दिलचस्पी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar